चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१६२
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
(श्री नाथ खण्डेलवाल)

उत्तर भागः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०७७, सन् २०२१
मूल्य : रु. २१५०.०० (सेट)

ISBN : 978-81-7080-468-0 (उत्तर भाग)
ISBN : 978-81-7080-469-7 (सेट)

इस पुस्तक का सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित है। इसके किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे—इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यन्त्र में भण्डारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सके, प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	पृष्ठांक
१. पुत्रतीर्थ वर्णन	१
२. यमतीर्थ वर्णन	१८
३. तप:तीर्थ का वर्णन	२५
४. देवतीर्थ वर्णन	३१
५. तपोवन प्रभृति तीर्थ वर्णन	३९
६. इन्द्रतीर्थ वर्णन	४८
७. आपस्तम्ब तीर्थ वर्णन	६३
८. यमतीर्थ वर्णन	६७
९. यक्षिणी संगम का माहात्म्य वर्णन	७४
१०. शुक्लतीर्थ वर्णन	७५
११. चक्रतीर्थ वर्णन	७८
१२. वाणी संगम तीर्थ वर्णन	८०
१३. विष्णुतीर्थ वर्णन	८३
१४. लक्ष्मीतीर्थ का वर्णन	८८
१५. भानु प्रभृति तीन सहस्र तीर्थ वर्णन	९३
१६. खड्गतीर्थ वर्णन	९८
१७. अन्विन्द्रात्रेय तीर्थ वर्णन	१००
१८. कपिला संगम नामक तीर्थ वर्णन	१०६
१९. देवस्थान तीर्थ का वर्णन	१०९
२०. सिद्धतीर्थ वर्णन	१११
२१. परुष्णी संगम तीर्थ वर्णन	११३
२२. मार्कण्डेय तीर्थ का वर्णन	११७
२३. कालञ्जर तीर्थ वर्णन	११८
२४. अप्सरायुग-संगम तीर्थ वर्णन	१२४
२५. कोटितीर्थ वर्णन	१२६
२६. नारसिंह तीर्थ वर्णन	१२९
२७. पैशाचतीर्थ वर्णन	१३१
२८. निम्नभेदतीर्थ वर्णन	१३४
२९. आनन्दतीर्थ वर्णन	१३७
३०. भावतीर्थ का वर्णन	१४२
३१. सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ का वर्णन	१४३
३२. कपिलातीर्थ का वर्णन	१४७
३३. शंखह्रदतीर्थ वर्णन	१४८
३४. किष्किन्धातीर्थ वर्णन	१५०
३५. व्यासतीर्थ वर्णन	१५४
३६. वञ्जरासंगमतीर्थ वर्णन	१५८
३७. देवागमतीर्थ का वर्णन	१६४
३८. कुशतर्पणतीर्थ प्रसंग वर्णन	१६७
३९. मन्युतीर्थ वर्णन	१७५
४०. सारस्वततीर्थ का वर्णन	१७८
४१. चिच्चिकतीर्थ का वर्णन	१८४
४२. भद्रतीर्थ वर्णन	१९०
४३. पतत्रितीर्थ का वर्णन	१९५
४४. विप्रतीर्थ वर्णन	१९७
४५. भानुतीर्थ वर्णन	२०१
४६. भिल्लतीर्थ वर्णन	२०५
४७. चक्षुतीर्थ वर्णन	२१०
४८. उर्वशीतीर्थ वर्णन	२२१
४९. सामुद्रतीर्थ वर्णन	२२७
५०. भीमेश्वरतीर्थ का वर्णन	२२९
५१. गंगासागर-संगम वर्णन	२३३
५२. तीर्थों का चतुर्विध्यादि (चार प्रकार का) निरूपण	२३७
५३. अनन्त वासुदेव माहात्म्य का वर्णन	२४७
५४. पुरुषोत्तम क्षेत्र माहात्म्य वर्णन	२५२
५५. कण्डु का चरित्र वर्णन	२५६
५६. मुनिगण द्वारा वादरायण से श्रीकृष्णावतार विषयक प्रश्न करना	२७४
५७. श्रीकृष्ण चरित्र वर्णन	२८१
५८. अवतार के प्रयोज़न का वर्णन	२८५
५९. श्रीकृष्णोत्पत्ति कथा निरूपण	२९१
६०. कंस विचार कथन	२९५
६१. श्रीकृष्ण बाल चरित वर्णन	२९६
६२. कालीय दमन का वर्णन	३०२
६३. धेनुवध का आख्यान	३०७
६४. रामकृष्ण कृत अनेक लीला वर्णन	३०९

६५. गोवर्द्धन आख्यान का वर्णन ३१५
६६. अरिष्टवध निरूपण ३२०
६७. केशी वध का वर्णन ३२६
६८. अक्रूर के व्रज जाने का वर्णन ३३०
६९. अक्रूर का वापस लौटना ३३४
७०. कुब्जा के उद्धार का वर्णन ३४२
७१. देवकी-वसुदेव के साथ इन्द्र का संवाद ३५०
७२. जरासन्ध सहित राम-जनार्दन के युद्ध का वर्णन ३५४
७३. कालयवन का उपाख्यान ३५५
७४. गोकुल में बलराम का पुन: आना ३६०
७५. हलधर बलराम की क्रीड़ा का वर्णन ३६२
७६. रुक्मिणी विवाह वर्णन ३६४
७७. प्रद्युम्न के आख्यान का वर्णन ३६६
७८. अनिरुद्ध के विवाह काल में रुक्मीवध वर्णन ३६९
७९. नरक वध वर्णन ३७३
८०. अदिति कृत भगवान् की स्तुति ३७६
८१. इन्द्र तथा कृष्ण के संवाद का वर्णन ३८४
८२. अनिरुद्ध के चरित्र का वर्णन ३८६
८३. बाण के साथ कृष्ण के युद्ध का वर्णन ३८९
८७. पौंड्रक वध का वर्णन ३९४
८५. बलदेव माहात्म्य वर्णन ३९९
८६. द्विविद वानर वध वर्णन ४०३
८७. भगवान् द्वारा भूमिभार हटाने का वर्णन ४०६
८८. कृष्ण द्वारा मनुष्य देह का विसर्जन ४१२
८९. रुक्मिणी आदि का परलोकगमन ४१३
९०. वराहावतार वर्णन ४२३
९१. नरक वर्णन ४३९
९२. दक्षिण मार्ग वर्णन ४५०
९३. नरकगत दु:खों का निवारण तथा धर्माचरण का वर्णन ४६२
९४. धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन ४७१
९५. अन्नदान की प्रशंसा का वर्णन ४८१
९६. श्राद्ध विधि वर्णन ४८४
९७. श्राद्ध कल्प वर्णन ४९६
९८. सदाचार वर्णन ५१७
९९. वर्णाश्रम धर्म वर्णन ५३३
१००. संकर जातियों का लक्षण वर्णन ५३९
१०१. मानव को उत्तम गति प्राप्ति का वर्णन ५४६
१०२. उमामहेश्वर संवाद में देवलोक प्राप्ति कारण का वर्णन ५५१
१०३. मुनि तथा महेश्वर संवाद के अन्तर्गत् वासुदेव महिमा का वर्णन ५५७
१०४. मुनि व्यास संवाद के अन्तर्गत् विष्णुपूजा कथन ५६३
१०५. व्यास तथा मुनिगण के संवाद में विष्णु-पूजा का वर्णन ५६८
१०६. व्यास-मुनि संवादान्तर्गत् विष्णुभक्ति साधन वर्णन ५८४
१०७. व्यास तथा मुनिसंवाद के अन्तर्गत् महाप्रलय का वर्णन ५९५
१०८. व्यास-मुनि संवाद प्रसंग में द्वापर युगान्त का वर्णन ६०३
१०९. व्यास तथा मुनियों के संवादक्रम में प्रकृत प्रलय वर्णन ६१२
११०. प्रकृत लय निरूपण ६१६
१११. आत्यन्तिक लय निरूपण ६२१
११२. योगाभ्यास निरूपण ६२८
११३. सांख्ययोग का वर्णन ६३१
११४. ज्ञानियों को मोक्षलाभ का वर्णन ६३८
११५. गुणसृष्टि का वर्णन ६४७
११६. योगविधि का निरूपण ६५४
११७. सांख्यविधि का वर्णन ६६०
११८. वसिष्ठ-करालजनक संवाद के अन्तर्गत् क्षर-अक्षर निरूपण ६७१
११९. वसिष्ठ-करालजनक के संवाद का वर्णन ६७६
१२०. मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से करालजनक द्वारा प्रश्न ६८१
१२१. विद्या-अविद्या का स्वरूप वर्णन ६८९
१२२. अज का (अजन्मा) भी विक्रिया से नाना होना ६९४
१२३. ब्रह्मपुराण पठन-श्रवण फल ६९९

।। श्रीगणेशायनमः।।

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

ब्रह्मपुराणम्

उत्तर भागः

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पुत्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

पुत्रतीर्थमिति ख्यातं पुण्यतीर्थं तदुच्यते। सर्वान्कामानवाप्नोति यन्महिम्नः श्रुतेरपि।।१।।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद। दितेः पुत्राश्च दनुजाः परिक्षीणा यदाऽभवन्।
अदितेस्तु सुता ज्येष्ठाः सर्वभावेन नारद।।२।।
तदा दितिः पुत्रवियोगदुःखात्संस्पर्धमाना दनुमाजगाम।।३।।

ब्रह्मा कहते हैं—जिसके माहात्म्य को सुनने से सभी कामनायें प्राप्त हो जाती हैं, उस पुण्यतीर्थ के प्रसंग में मैंने नाना तीर्थों का वर्णन किया है। अब उस पुण्य तीर्थ का विवरण कहता हूं। हे नारद! पहले उसके स्वरूप को कहता हूं। यत्नतः श्रवण करो। पूर्वकाल में देवासुर युद्ध में दिति तथा दनु के पुत्र (दैत्य-दानव) पूर्णतः क्षीण हो गये। अदिति के पुत्रों ने सभी प्रकार की प्रधानता प्राप्त किया था। हे नारद! उस समय दिति पुत्र वियोग से पीड़ित होकर अपनी सौत अदिति से ईर्ष्यालु होकर सौत दनु के पास गयीं। वे उनसे कहने लगीं—।।१-३।।

दितिरुवाच

क्षीणाः सुता आवयोरेव भद्रे, किं कुर्महे कर्म लोके गरीयः।
पश्यादितेर्वंशमभिन्नमुत्तमं, सौराज्ययुक्तं यशसा जयश्रिया।।४।।
जितारिमभ्युन्नतकीर्तिधर्मं, मच्चित्तसंहर्षविनाशदक्षम्।
समानभर्तृत्वसमानधर्मे, समानगोत्रेऽपि समानरूपे।।५।।
न जीवयेयं श्रियमुन्नतिं च, जीर्णाऽस्मि दृष्ट्वा त्वदितिप्रसूतान्।
कामप्यवस्थामनुयामि दुःस्थाऽदितेर्विलोक्याथ परां समृद्धिम्।
दावप्रवेशोऽपि सुखाय नूनं, स्वप्नेऽप्यवेक्ष्या न सपत्नलक्ष्मीः।।६।।

दिति कहती हैं—हे भद्रे! हम दोनों के पुत्र नष्ट हो रहे हैं। क्या किया जाये। संसार में कर्म ही प्रधान है। अदिति के वंशजों को देखो! वे समृद्ध राज्य, यश, जयश्री से युक्त होकर आनन्द के साथ विचरण कर रहे हैं। वे शत्रुगण का संहार करके कीर्त्ति एवं यशलाभ पाकर मेरे चित्त के हर्ष का विनाश करने में पटु हो गये हैं। हमारे पति एक ही हैं। हममें धर्मगत तथा गुण-कर्मगत समता है, तथापि अदिति के पुत्रों की इस प्रकार की उन्नति एवं समृद्धि देख कर मैं अधिक जीवित नहीं रह सकूंगी। मैं दिनों-दिन क्षीण होती जा रही हूं। अदिति की इस प्रकार की परमा समृद्धि देखकर अब मैं दुःखी तथा दुःस्थिति में पड़ी और कौन अवस्था प्राप्त करूंगी? इस जीवन से तो मेरे द्वारा दावाग्नि में प्रवेश कर लेना अधिक सुख का कारण होगा। इस बात में सन्देह ही नहीं है। सौत की लक्ष्मीवृद्धि तो स्वप्न में भी नहीं सहन होती।।४-६।।

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवाणामतिदीनवक्त्रां, विनिश्वसन्तीं परमेष्ठिपुत्रः।
कृताभिपूजो विगतश्रमस्तां, स सान्त्वयन्नाह मनोभिरामाम्॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—दिति उस समय दीर्घ निःश्वास लेकर म्लान मुख से यह सब कह ही रही थीं, तभी वहां ब्रह्मा के पुत्र नारद पहुंच गये। उन्होंने अपने भाई की इन दोनों पत्नियों की चरणवन्दना आदि पूजा सम्पन्न किया। तत्पश्चात् वे विश्रान्त होकर उनको सान्त्वना देते हुये मन को अच्छे लगने वाले वाक्य कहने लगे।।७।।

परमेष्ठिपुत्र उवाच

खेदो न कार्यः समभीप्सितं यत्तत्प्राप्यते पुण्यत एव भद्रे।
तत्साधनं वेत्ति महानुभावः, प्रजापतिस्ते स तु वक्ष्यतीति॥८॥
साध्व्येतत्सर्वभावेन प्रश्रयावनता सती॥९॥

ब्रह्मपुत्र नारद कहते हैं—हे भद्रे! आपका खेद करना उचित नहीं है। प्राणियों को जो अभीप्सित है, उसे पुण्य से ही पाया जा सकता है। उसका उपाय महाभाग प्रजापति को ही ज्ञात है। वे ही वह उपाय आपसे कहेंगे।।८-९।।

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवाणां च दितिं दनुः प्रोवाच नारद॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब नारद का यह वचन सुनकर दिति से दनु ने कहा—।।१०।।

दनुरुवाच

भर्तारं कश्यपं भद्रे तोषयस्व निजैर्गुणैः। तुष्टो यदि भेवद्भर्ता ततः कामानवाप्स्यसि॥११॥

दनु कहती हैं—हे भद्रे! हम पति कश्यप को अपने गुणों से प्रसन्न करें। यदि पति प्रसन्न हो जाता है तब हम अपनी कामना सफल कर लेंगे।।११।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सर्वभावैस्तोषयामास कश्यपम्। दितिं प्रोवाच भगवान्कश्यपोऽथ प्रजापतिः॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—दिति ने कहा—"ऐसा ही हो" उन्होंने समस्त सेवा-सुश्रूषा द्वारा कश्यप ऋषि को प्रसन्न करना प्रारम्भ कर दिया। तब एक बार कश्यप ने दिति से कहा—।।१२।।

कश्यप उवाच

किं ददामि वदाभीष्टं दिते वरय सुव्रते॥१३॥

कश्यप कहते हैं—हे सुव्रते! दिति! तुमको मैं क्या अभीष्ट प्रदान करूं?।।१३।।

ब्रह्मोवाच

दितिरप्याह भर्तारं पुत्रं बहुगुणान्वितम्। जेतारं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम्॥१४॥

येन जातेन लोकेऽस्मिन्भवेयं वीरपुत्रिणी।

तं वरेयं सुरपितरित्याह विनयान्विता॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—दिति ने तब पति से विनयान्वित होकर कहा—"हे सुरगण के पिता! मैं सर्वलोकजित्, सकल लोक नमस्कृत, बहुगुणान्वित एक ऐसा पुत्र चाहती हूं, जिसको जन्म देकर मैं इस लोक में वीर पुत्र की माता कहलाऊं"।।१४-१५।।

कश्यप उवाच

उपदेक्ष्ये व्रतं श्रेष्ठं द्वादशाब्दफलप्रदम्। तत आगत्य ते गर्भमाधास्ये यन्मनोगतम्।

निष्पापतायां जातायां सिध्यन्ति हि मनोरथाः॥१६॥

कश्यप कहते हैं—तथास्तु—यही हो! लेकिन तुम्हारे लिये मैं एक श्रेष्ठ व्रत का उपदेश दे रहा हूं। बारह वर्ष पर्यन्त व्रताचरण करने पर यह फलप्रद होगा। व्रत शेष होने पर मैं तुम्हारा गर्भाधान करूंगा। इससे तुम्हारा मनोगत अभिप्राय साधित होगा। पापशून्य हो जाने वाले के समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।।१६।।

ब्रह्मोवाच

भर्तृवाक्याद्दितिः प्रीता तं नमस्याऽऽयतेक्षणा।

उपदिष्टं व्रतं चक्रे भर्त्राऽऽदिष्टं यथाविधि॥१७॥

तीर्थसेवापात्रदानव्रतचर्यादिवर्जिताः। कथमासादयिष्यन्ति प्राणिनोऽत्र मनोरथान्॥१८॥

ततश्चीर्णे व्रते तस्यां दित्यां गर्भमधारयत्।

पुनः कान्तामथोवाच कश्यपस्तां दितिं रहः॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—दिति देवी पति का कथन सुनकर प्रसन्न हो गईं तथा उन्होंने प्रीति पूर्वक पति को प्रणाम किया। तदनन्तर वे विशाल नेत्रों वाली दिति पति द्वारा उपदिष्ट व्रताचरण में तत्पर हो गयीं। उन्होंने तीर्थ सेवा, सत्पात्र को दान, व्रतचर्या का पालन किया; क्योंकि जो यह सब नहीं पालन करते, वे प्राणीगण कैसे अपना मनोरथ सफल कर सकेंगे? जब दिति का यह द्वादश वर्षीय व्रत सम्पन्न हो गया, तब कश्यप ने दिति को गर्भाधान करके उनसे एकान्त में यह कहा—।।१७-१९।।

कश्यप उवाच

न प्राप्नुवन्ति यत्कामान्मुनयोऽपि तपस्थिताः।
यथाविहितकर्माङ्गावज्ञया तच्छुचिस्मिते॥२०॥
निन्दितं च न कर्तव्यं संध्ययोरुभयोरपि।
न स्वप्तव्यं न गन्तव्यं मुक्तकेशी च नो भव॥२१॥
भोक्तव्यं सुभगे नैव क्षुतं वा जृम्भणं तथा।
सन्ध्याकाले न कर्तव्यं भूतसङ्घसमाकुले॥२२॥
सान्तर्धानं सदा कार्यं हसितं तु विशेषतः।
गृहान्तदेशे सन्ध्यासु न स्थातव्यं कदाचन॥२३॥
मुशलोलूखलादीनि शूर्पपीठपिधानकम्। नैवातिक्रमणीयानि दिवा रात्रौ सदा प्रिये॥२४॥
उदक्शीर्षं तु शयनं न सन्ध्यासु विशेषतः। वक्तव्यं नानृतं किञ्चिन्नान्यगेहाटनं तथा॥२५॥
कान्तादन्यो न वीक्ष्यस्तु प्रयत्नेन नरः क्वचित्।
इत्यादिनियमैर्युक्ता यदि त्वमनुवर्तसे।
ततस्ते भविता पुत्रस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाजनम्॥२६॥

ऋषि कश्यप कहते हैं—हे शुचिस्मिते! तपस्या में निरत मुनिजन भी यदि नियमों की अवहेलना करते हैं, तब कर्म के अंगों की उपेक्षा के कारण उनकी वांछित कामना पूर्ण नहीं हो पाती। अतः दोनों सन्ध्या काल में सोना, निन्दित कार्य करना, कहीं उस समय जाना, भोजन करना, जंभाई लेना, छींकना, केशों को बिखराये रहना वर्जित है। सन्ध्याकाल में भूत समूह यत्र-तत्र विचरते रहते हैं। उस समय हंसी आने पर मुख ढांक लेना चाहिये। सन्ध्याकाल में अन्य के गृह में कदापि न रहे। दिन-रात, कभी भी ऊखल, मूसल, सूप, पीढ़ा, पिधान आदि का कदापि लंघन न करे। हे प्रिये! उत्तर की ओर शिर करके कभी शयन न करे। विशेषतः सन्ध्या काल में उत्तर की ओर शिर करके कदापि न सोये। तनिक असत्य न बोले, अन्य के गृह सन्ध्याकाल में न जाये। सर्व प्रयत्न पूर्वक पति के अतिरिक्त सन्ध्याकाल में किसी भी पुरुष को न देखे। यदि तुम इन नियमों से युक्त रहोगी, तब तुमको त्रैलोक्य ऐश्वर्य का भोग करने वाला पुत्र प्राप्त होगा।।२०-२६।।

ब्रह्मोवाच

तथेति प्रतिजज्ञे सा भर्तारं लोकपूजितम्। गतश्च कश्यपो ब्रह्मन्नितश्चेतः सुरान्प्रति।२७॥
दितेर्गर्भोऽपि ववृधे बलवान्पुण्यसम्भवः।
एतत्सर्वं मयो दैत्यो मायया वेत्ति तत्त्वतः॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्रह्मन्! नारद! दिति ने यह सुनकर त्रैलोक्यपूजित पति से कहा—"ऐसा ही करूंगी।" तब ऋषि कश्यप भी देवताओं के यहां चले गये। बलवान् तथा पुण्य से उत्पत्तियुक्त दिति का गर्भ दिनोंदिन वर्द्धित होने लगा। यह सब वृत्तान्त मय दानव अपनी माया से जानता था।।२७-२८।।

इन्द्रस्य सख्यमभवन्मयेन प्रीतिपूर्वकम्। मयो गत्वा रहः प्राह इन्द्रं स विनयान्वितः॥२९॥
दितेर्दनोरभिप्रायं व्रतं गर्भस्य वर्धनम्। तस्य वीर्यं च विविधं प्रीत्येन्द्राय न्यवेदयत्॥३०॥
विश्वासैकगृहं मित्रमपायत्रासवर्जितम्। अर्जितं सुकृतं नानाविधं चेत्तदवाप्यते॥३१॥

इन्द्र के साथ मयदानव का अत्यन्त प्रीति पूर्वक सखा भाव था। अतः मय ने इन्द्र के यहां जाकर उनसे विनय के साथ दिति तथा दनु का अभिप्राय, व्रताचरण, गर्भ की वृद्धि, उस पुत्र का भावी परम पराक्रमी रूप आदि विविध तथ्यों को प्रीति पूर्वक कह दिया। मित्र ही विश्वसनीय अपार भय रहित एकमात्र आश्रय होता है। अनेक सुकृत संचित रहने से ही ऐसे मित्र की प्राप्ति होती है।।२९-३१।।

नारद उवाच

नमुचेश्च प्रियो भ्राता मयो दैत्यो महाबलः।
भ्रातृहन्त्रा कथं मैत्र्यं मयस्याऽसीत्सुरेश्वर॥३२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—महाबली मय दानव तो महादानव नमुचि का प्रिय भाई था। वह मय अपने भ्राता के हत्यारे इन्द्र का मित्र कैसे हो गया?।।३२।।

ब्रह्मोवाच

दैत्यानामधिपश्चाऽऽसीद्बलवान्नमुचिः पुरा। इन्द्रेण वैरमभवद्भीषणं लोमहर्षणम्॥३३॥
युद्धं हित्वा कदाचिद्धी गच्छन्तं तु शतक्रतुम्।
दृष्ट्वा दैत्यपतिः शूरो नमुचिः पृष्ठतोऽन्वगात्॥३४॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य शचीभर्ता भयातुरः।
ऐरावतं गजं त्यक्त्वा इन्द्रः फेनमथाऽऽविशत्॥३५॥
स वज्रपाणिस्तरसा फेनेनैवाहनद्रिपुम्। नमुचिर्नाशमगमत्तस्य भ्राता मयोऽनुजः॥३६॥
भ्रातृहन्तृविनाशाय तपस्तेपे मयो महत्।
मायां च विविधामाप देवानामतिभीषणाम्॥३७॥
वरांश्चावाप्य तपसा विष्णोर्लोकपरायणात्।
दानशौण्डः प्रियालापी तदाऽभवदसौ मयः॥३८॥

ब्रह्मा कहते हैं—पूर्व में बली नमुचि दानव दैत्यों का अधिपति था। इन्द्र के साथ उसका लोमहर्षण वैर था। हे नारद! एक बार इन्द्र उससे पराजित होकर जब युद्ध से पलायित होने लगे, तब शूरवीर दैत्येश्वर नमुचि ने उनका पीछा किया। शचीपति ने जब नमुचि को अपने पीछे आते देखा, तब उन्होंने भय के कारण ऐरावत हाथी को छोड़ दिया तथा सागर के फेन में छिप गये। तब भी जब नमुचि ने उन पर आक्रमण का प्रयास किया, तब इन्द्र ने अन्य उपाय न देख कर उस सामुद्रिक फेन से ही वेग पूर्वक नमुचि पर आघात किया। उस फेन द्वारा नमुचि का विनाश हो गया। यह देख कर नमुचि के भाई मय ने अपने भाई के हत्यारे इन्द्र के विनाशार्थ महान् तप प्रारम्भ कर दिया। उस समय मय दानव ने लोकपरायण विष्णु की आराधना के प्रभाव से अनेक वर

तथा देवगण को भी डरा देने वाली भीषण माया को प्राप्त किया। वह लोकों का पालन करने वाले भगवान् विष्णु से वर पाकर अत्यन्त मधुरभाषी, दानी हो गया।।३३-३८।।

अग्नींश्च ब्राह्मणान्पूज्य जेतुमिन्द्रे कृतक्षणः।
दातारं च तदाऽर्थिभ्यः स्तूयमानं च बन्दिभिः॥३९॥
विदित्वा मघवा वायोर्मयं मायाविनं रिपुम्।
उपक्रान्तं सुयुद्धाय विप्रो भूत्वा तमभ्यगात्।
शचीभर्ता मयं दैत्यं प्रोवाचेदं पुनः पुनः॥४०॥

वह अग्नि तथा ब्राह्मणों की सदा पूजा करता रहता था। वह इन्द्र को पराजित करने का अवसर खोजने लगा। इस हेतु उसने जब युद्ध की साज-सज्जा कर लिया, उस समय वह वन्दीगणों से स्तुत होकर याचकों को दान देने लगा। जब इन्द्र ने ऐसे प्रबल मायावी शत्रु का यह प्रयास वायुदेव से सुना, तब वे उस मायावी को छलने के लिये विप्र वेश धारण करके उस दैत्य के पास जाकर यह वाक्य उससे कहने लगे।।३९-४०।।

इन्द्र उवाच

देहि दैत्यपते मह्यमर्थिनेऽपेक्षितं वरम्। त्वां श्रुत्वा दातृतिलकमागतोऽहं द्विजोत्तमः॥४१॥

देवराज इन्द्र कहते हैं—हे दैत्यराज! मैं अर्थी हूं। मुझे अपेक्षित वर दीजिये। मैंने आपको दाताओं का तिलक रूप सुना है। तभी मैं उत्तम ब्राह्मण यहां आया हूं।।४१।।

ब्रह्मोवाच

मयोऽपि ब्राह्मणं मत्वाऽवदद्दत्तं मया तव।
विचारयन्ति कृतिनो बह्वल्पं वा पुरोऽर्थिनि॥४२॥
इत्युक्ते तु हरिः प्राह सख्यमिच्छे ह्यहं त्वया।
इन्द्रं मयः पुनः प्राह किमनेन द्विजोत्तम॥४३॥
न त्वया मम वैरं भोः स्वस्तीत्याह हरिर्मयम्।
तत्त्वं वदेति स हरिर्दैत्येनोक्त स्वकं वपुः॥४४॥
दर्शयामास दैत्याय सहस्राक्षं यदुच्यते। ततः सविस्मयो दैत्यो मयो हरिमुवाच ह॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र का वाक्य सुनकर मय ने उन्हें ब्राह्मण जानकर कहा—"आपका प्रार्थित मैंने आपको दिया। अर्थी व्यक्ति को सामने देख कर साधुजन यह विचार नहीं करते कि यह अधिक अथवा अल्प, क्या मांग रहा है।" मय का मन्तव्य सुनकर इन्द्र ने कहा—"मैं तुम्हारी मित्रता चाहता हूं।" तब मय ने पुनः इन्द्र से कहा—"मैं तुम्हारी मित्रता सदैव चाहता हूं।" तब मय ने कहा—"हे द्विजोत्तम! इसका क्या तात्पर्य? आपके साथ मेरा तो कोई वैर ही नहीं है।"

तब इन्द्र ने कहा—"स्वस्ति"। यह सुनकर दैत्य मय ने कहा—"इसका तत्त्व बतलाओ।" यह सुन कर इन्द्र ने दैत्य को अपना सहस्राक्ष रूप प्रदर्शित किया। तब विस्मय से मय दानव कहने लगा—।।४२-४५।।

मय उवाच

किमिदं वज्रपाणिस्त्वं तवायोग्या कृतिः सखे॥४६॥

मय कहता है—हे सखा! यह तो तुम वज्रपाणि इन्द्र हो। यह (कपट) कार्य तुम्हारे लायक नहीं है।।४६।।

ब्रह्मोवाच

परिष्वज्य विहस्याथ वृत्तमित्यब्रवीद्धरिः।
केनापि साधयन्त्यत्र पण्डिताश्च समीहितम्॥४७॥
व्रतः प्रभृति शक्रस्य मयेन महती ह्यभूत्। सुप्रीतिर्मुनिशार्दूल मयो हरिहितः सदा॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब इन्द्र ने मय दानव का आलिङ्गन करते हुये तथा हंसते हुये कहा—"पण्डित व्यक्ति इस लोक में येन-केन-प्रकारेण कार्य का साधन कर लेते हैं।" हे मुनिशार्दूल! उसी समय से मय दानव के साथ इन्द्र की महती प्रीति हो गई। तभी से मय भी देवराज के हित में निरत रहने लगा।।४७-४८।।

इन्द्रस्य भवनं गत्वा तस्मै सर्वं न्यवेदयत्।
किं मे कृत्यमिति प्राह मयं मायाविनं हरिः॥४९॥
हरये च मयो मायां प्रादात्प्रीत्या तथा हरिः।
प्राप्तः सम्प्रीतिमानाह किं कृत्यं मय तद्वद॥५०॥

अतः उसी क्रम में मय ने इन्द्र के यहां जाकर समस्त वृत्तान्त कह दिया था। यह सुन कर इन्द्र ने मायावी मयदानव से पूछा कि "मुझे अब क्या करना होगा" यह प्रश्न करने पर (हरि) इन्द्र को अपनी माया रूपी विद्या मय ने प्रदान कर दिया। इन्द्र भी मायाविद्या पाकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने मय से कहा—"अब मुझे क्या करना होगा? वह कहो!।।४९-५०।।

मय उवाच

अगस्त्यस्याऽऽश्रमं गच्छ तत्राऽऽस्ते गर्भिणी दितिः।
तस्याः शुश्रूषणं कुर्वन्नास्स्व तत्र कियन्ति च॥५१॥
अहानि मघवंस्तस्या गर्भमाविश्य वज्रधृक्।
वर्धमानं च तं छिन्धि यावद्वश्योऽथवा मृतिम्।
प्राप्नोति तावद्वज्रेण ततो न भविता रिपुः॥५२॥

मय दानव कहता है—तुम अगत्स्याश्रम जाओ। वहां गर्भावस्था में दिति रहती हैं। उनकी सेवा करते हुये कुछ दिनों तक वहीं रहो। हे वज्रपाणि इन्द्र! अवसर देख कर उनके वर्द्धित हो रहे गर्भ में प्रवेश करके तब तक उसका छेदन करना, जब तक वह वशीभूत किंवा मृत न हो जाये। इस कार्य को करने से तुम्हारा शत्रु नहीं रह जायेगा।।५१-५२।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा मयं पूज्य मघवानेक एव हि। विनीतवत्तदा प्रायाद्दितिं मातरमञ्जसा॥५३॥

शुश्रूषमाणस्तां देवीं शक्रो दैतेयमातरम्।
सा न जानाति तच्चित्तं शक्रस्य द्विषतो दितिः॥५४॥
गर्भे स्थितं तु यद्भूतं देवेन्द्रस्य विचेष्टितम्।
अमोघं तन्मुनेस्तेजः कश्यपस्य दुरासदम्॥५५॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर मघवान् इन्द्र ने वैसा ही करने का वचन दिया। वे मय दानव की पूजा करके एकाकी विनीत भाव के साथ विमाता अदिति के पास पहुंच गये। वे सरलता पूर्वक दैत्यमाता दिति की सेवा में निरत हो गये। वे दिति देवी उस द्वेषभाव से भरे इन्द्र के अभिप्राय को नहीं जान सकीं। वे यह नहीं समझ पाईं कि ऋषिप्रवर कश्यप के इस अमोघ तथा दुर्लभ-दुरासद् तेज के प्रति इन्द्र का क्या मन्तव्य है?।।५३-५५।।

ततः प्रगृह्य कुलिशं सहस्राक्षः पुरन्दरः। अन्तःप्रवेशकामोऽसौ बहुकालं समावसन्॥५६॥

सन्ध्योदक्शीर्षनिद्रां तामवेक्ष्य कुलिशायुधः।
इदमन्तरमित्युक्त्वा दित्याः कुक्षिं समाविशत्॥५७॥
अन्तर्वर्ति च यद्भूतमिन्द्रं दृष्ट्वा धृतायुधम्।
हन्तुकामं तदोवाच पुनः पुनरभीतवत्॥५८॥

उस समय सहस्राक्ष इन्द्र वज्रपाणि होकर दीर्घकाल पर्यन्त उस गर्भ में प्रविष्ट होने का अवसर खोजते रह गये। तदनन्तर उन्होंने (नियमोल्लंघन करती हुई) दिति को एक वार सन्ध्या काल में उत्तर दिशा की ओर शिर किये सोते देखकर यह निश्चय किया कि यही अवसर है। वे वज्र लिये हुये दिति की कोख में प्रविष्ट हो गये। उस समय गर्भस्थ (शिशु) ने इन्द्र को आयुध लिये अपने वधार्थ उद्यत देखकर निर्भयता पूर्वक बारम्बार कहा—।।५६-५८।।

गर्भस्थ उवाच

किं मां न रक्षसे वज्रिन्भ्रातरं त्वं जिघांससि।
नारणे मारणादन्यत्पातकं विद्यते महत्॥५९॥

ऋते युद्धान्महाबाहो शक्र युध्यस्व निर्गते। मयि तस्मान्नैतदेवं तव युक्तं भविष्यति॥६०॥
शतक्रतुः सहस्राक्षः शचीभर्ता पुरन्दरः। वज्रपाणिः सुरेन्द्रस्त्वं ते न युक्तं भवेत्प्रभो॥६१॥
अथवा युद्धकामस्त्वं मम निष्क्रमणं यथा। तथा कुरु महाबाहो मार्गादस्मादपासर॥६२॥
कुमार्गे न प्रवर्तन्ते महान्तोऽपि विपद्गताः। अविद्यश्चाप्यशस्त्रश्च नैव चाऽऽयुधसङ्ग्रहः॥६३॥

त्वं विद्यावान्वज्रपाणे मां निघ्नन्किं न लज्जसे।
कुर्वन्ति गर्हितं कर्म न कुलीनाः कदाचन॥६४॥

हत्वा वा किं तु जायेत यशो वा पुण्यमेव वा।
वध्यन्ते भ्रातरः कामाद्गर्भस्थाः किं न पौरुषम्॥६५॥
यदि वा युद्धभक्तिस्ते मयि भ्रातरसंशयम्।
ततो मुष्टिं पुरस्कृत्य वज्रिणेऽसौ व्यवस्थितः॥६६॥
बालघाती ब्रह्मघाती तथा विश्वासघातकः। एवंभूतं फलं शक्र कस्मान्मां हन्तुमुद्यतः॥६७॥
यस्याऽऽज्ञया सर्वमिदं वर्तते सचराचरम्।
स हन्ता बालकं मां वै किं यशः किन्तु पौरुषम्॥६८॥

गर्भस्थ शिशु कहता है—हे वज्रपाणि! तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करते हो? हे महाबाहु! रणक्षेत्र के बिना अन्य स्थान पर युद्ध रहित स्थिति में किसी का वध करने पर महापातक होता है। इससे बढ़ कर कोई पातक नहीं है। हे इन्द्र! मैं गर्भ से निकल जाता हूं, तब मुझसे युद्ध करना। तुम सौ यज्ञ करने वाले, सहस्राक्ष, शचीपति, पुरन्दर, वज्रपाणि तथा सुरेन्द्र हो। तुम्हारे लिये यह करना उचित नहीं है। अथवा यदि तुम युद्ध ही करना चाहो, तब वह उपाय करो, जिससे मैं मातृगर्भ से बहिर्गत् हो सकूं। हे महाबाहो! इस गलत कृत्य रूपी कुमार्ग से हट जाओ। महान् लोग विपत्तिग्रस्त हो जाने पर भी कुमार्ग का अवलम्बन नहीं लेते। मैं विद्या रहित, अस्त्र रहित हूं। यहां आयुध संग्रह भी मेरे पास नहीं है। हे वज्रपाणि इन्द्र! तुम विद्यावान् होकर भी मुझे मार रहे हो, क्या इस कृत्य से तुमको लज्जा नहीं है? कुलीन जन कदापि गर्हित कृत्य नहीं करते। मेरी हत्या द्वारा तुमको कौन सा यश किंवा पुण्य मिलेगा? गर्भस्थ भाई को गर्भ में मारने में क्या पौरुष है? हे भ्राता! यदि तुम निश्चित रूप से युद्ध की ही इच्छा रखते हो (उस गर्भ ने अपना मुक्का इन्द्र को प्रदर्शित करते वज्री इन्द्र से कहा) तब तो तुम बालहत्यारे, ब्रह्महत्यारे तथा विश्वासघाती हो। हे इन्द्र! इस हत्या से तुमको इस पाप से क्या फल मिलेगा? तुम्हारी आज्ञा से सम्पूर्ण सचराचर चालित होता है, वह एक बालक की हत्या द्वारा कैसा यश पायेगा तथा कैसा पौरुषवान् होगा?॥५९-६८॥

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवन्तं तं गर्भं चिच्छेद कुलिशेन सः।
क्रोधान्धानां लोभिनां च न घृणा क्वापि विद्यते॥६९॥
न ममार ततो दुःखादाहुस्ते भ्रातरो वयम्।
पुनश्चिच्छेद तान्खण्डान्मा वधीरिति चाब्रुवन्॥७०॥
विश्वस्तान्मातृगर्भस्थान्निजभ्रातॄञ्शतक्रतो। द्वेषविध्वस्तबुद्धीनां न चित्ते करुणाकणः॥७१॥
एवं तु खण्डितं खण्डं हस्तपादादिजीववत्।
निर्विकारं ततो दृष्ट्वा सप्तसप्त सुविस्मितः॥७२॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब वह गर्भ यह कह ही रहा था, इन्द्र ने अपने वज्र से उसके सात खण्ड कर दिये। क्रोध तथा लोभग्रस्त के मन में कहीं भी दया नहीं रहती। तथापि इस तरह खण्ड-खण्ड होने पर भी वह गर्भ

मृत नहीं हो सका। तथापि वे सातों खण्ड कहने लगे कि "हम तुम्हारे भ्राता हैं। हे शतक्रतु! मातृगर्भस्थ हमारा वध मत करो।" द्वेष से विध्वस्त बुद्धि वालों के चित्त में करुणा का कणमात्र नहीं रहता। अब इन्द्र ने उन खण्डों को और भी खण्डित कर दिया (प्रत्येक खण्ड के सात-सात भाग कर दिये)। तथापि इन्द्र ने उन उनचास खण्डों को हाथ-पैर युक्त जीव के समान देखा तथा उनको निर्विकार देख कर विस्मित हो गये!।।६९-७२।।

एकवद्बहुरूपाणि गर्भस्थानि शुभानि च। रुदन्ति बहुरूपाणि मा रुतेत्यब्रवीद्धरिः॥७३॥

ततस्ते मरुतो जाता बलवन्तो महौजसः।
गर्भस्था एव तेऽन्योन्यमूचुः शक्रं गतभ्रमाः॥७४॥
अगस्त्यं मुनिशार्दूलं माता यस्याऽऽश्रमे स्थिता।
अस्मत्पिता तव भ्राता सख्यं ते बहु मन्यते॥७५॥

अस्मानुपरि सस्नेहं मनस्ते विद्महे मुने। न यत्करोति श्वपचः प्रवृत्तस्तत्र वज्रधृक्॥७६॥

तब इन्द्र ने एक ही प्रकार के उन ४९ खण्डों को शुभ आकृति वालों को गर्भस्थान में अनेक प्रकार से रुदन करते देख कर कहा—"मत रोओ"। इस कारण वे सभी (४९) प्राणी महातेजा बली मारुत कहलाये। तदनन्तर उन गर्भस्थ ४९ प्राणियों ने इन्द्र का भय किये बिना उन अगतस्य ऋषि से जिनके आश्रम में उनकी माता दिति थीं, एक साथ कहा—हमारे पिता आपके भाई हैं। आपके साथ उनका सखात्व अत्यन्त विश्वसनीय है। हमें यह विदित है कि हमारे प्रति भी आपके मन में स्नेह है। जैसा कर्म चाण्डाल भी नहीं करते, वह इन्द्र कर रहे हैं।।७३-७६।।

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा अगस्त्योऽगात्ससम्भ्रमः।
दितिं सम्बोधयामास व्यथितां गर्भवेदनात्।
तत्रागस्त्यः शचीकान्तमशपत्कुपितो भृशम्॥७७॥

उन गर्भस्थ जीवों का यह कथन सुनकर ऋषि अगतस्य वहां शीघ्रता पूर्वक आये तथा उन्होंने गर्भ वेदना से पीड़ित दिति को सम्बोधित किया। तब उन महर्षि ने कुपित होकर इन्द्र को शाप भी दिया।।७७।।

अगस्त्य उवाच

सङ्ग्रामे रिपवः पृष्ठं पश्येयुस्ते सदा हरे। जीवतामेव मरणमेतदेव हि मानिनाम्।
पृष्ठं पलायमानानां यत्पश्यन्त्यहिता रणे॥७८॥

महर्षि अगतस्य कहते हैं—हे इन्द्र! सभी काल में तुम्हारे शत्रु तुमको रण में पीठ दिखलाते देखेंगे। रणक्षेत्रस्थ शत्रु जिस विपक्षी को पीठ दिखलाकर भागते देखते हैं, यदि वह मानी व्यक्ति है, तब तो वह जीते-जीते मरणतुल्य स्थिति वाला है।।७८।।

ब्रह्मोवाच

साऽपि तं गर्भसंस्थं च शशापेन्द्रं रुषा दितिः॥७९॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय दिति ने भी क्रोध पूर्वक इन्द्र को शाप प्रदान किया।।७९।।

दितिरुवाच

न पौरुषं कृतं तस्माच्छापोऽयं भविता तव।
स्त्रीभिः परिभवं प्राप्य राज्यात्प्रभ्रश्यसे हरे॥८०॥

देवी दिति कहती हैं—हे हरि (इन्द्र)! तुमने पुरुषोचित कर्म नहीं किया है। अतः यह शाप देती हूं कि तुम स्त्रियों से परिभव (अपमान) पाकर राज्यभ्रष्ट हो जाओगे।।८०।।

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्यपो वै प्रजापतिः।
प्रायाच्च व्यथितोऽगस्त्याच्छ्रुत्वा शक्रविचेष्टितम्।
गर्भान्तरगतः शक्रः पितरं प्राह भीतवत्॥८१॥

ब्रह्मा कहते हैं—वहां पर इसी बीच प्रजापति कश्यप भी पुत्र का यह आचरण जाकर व्यथित चित्त से उपस्थित हो गये। उस समय डरे हुये इन्द्र ने गर्भ के भीतर से ही पिता कश्यप से कहा—।।८१।।

शक्र उवाच

अगस्त्याच्च दितेश्चैव बिभेमि क्रमितुं बहिः॥८२॥

इन्द्र कहते हैं—मैं अगत्स्य एवं दिति के भय से बाहर निकलने में डर रहा हूं!।।८२।।

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नतरे प्राप्य कश्यपोऽपि प्रजापतिः।
पुत्रकर्म च तद्दृष्ट्वा गर्भान्तः स्थितिमेव च।
दितिशापमगस्त्यस्य श्रुत्वाऽसौ दुःखितोऽभवत्॥८३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तभी प्रजापति कश्यप भी अपने पुत्र इन्द्र के कर्म तथा उनको गर्भ में स्थित देखकर तथा अगत्स्य तथा दिति द्वारा इन्द्र को प्रदत्त शाप के सम्वन्ध में सुन कर अतीव व्यथित हो गये।।८३।।

कश्यप उवाच

निर्गच्छ शक्र पुत्रैतत्पापं किं कृतवानसि।
न निर्मलकुलोत्पन्ना मनः कुर्वन्ति पातके॥८४॥

ऋषि कश्यप कहते हैं—हे इन्द्र! पुत्र! बाहर आओ। ऐसा पापयुक्त कृत्य तुमने क्यों किया? निर्मल कुल में उत्पन्न लोग ऐसे पातक में मन नहीं लगाते।।८४।।

ब्रह्मोवाच

स निर्गतो वज्रपाणिः सव्रीडोऽधोमुखोऽब्रवीत्। तन्मूर्तिरिव वदति सदसच्चेष्टितं नृणाम्॥८५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब वज्रपाणि इन्द्र लज्जावनत होकर तथा मुख को नीचे करके बाहर निकले। उस समय उन्होंने कहा—"मनुष्य की आकृति देख कर उसके सत् तथा असत् कर्मों का ज्ञान हो जाता है"।।८५।।

शक्र उवाच

यदुक्तमत्र श्रेयः स्यात्तत्कर्ताऽहमसंशयम्॥८६॥

इन्द्र कहते हैं—जो मेरे लिये श्रेयस्कर हो, वही कहिये। मैं निःसंशय रूप से वही करूंगा।।८६।।

ब्रह्मोवाच

ततो ममान्तिकं प्रायाल्लोकपालैः स कश्यपः।
सर्वं वृत्तमथोवाच पुनः पप्रच्छ मां सुरैः॥८७॥
दितिगर्भस्य वै शान्तिं सहस्राक्षविशापताम्।
गर्भस्थानां च सर्वेषामिन्द्रेण सह मित्रताम्॥८८॥
तेषामारोग्यतां चापि शचीभर्तुरदोषताम्। अगस्त्यदत्तशापस्य विशापत्वमपि क्रमात्॥८९॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस घटना के उपरान्त प्रजापति कश्यप मेरे यहां लोकपालगण के साथ आये। उन्होंने समस्त घटना का वृत्तान्त कहने के पश्चात् यह प्रश्न किया कि "कृपया वह उपाय बतलाने का कष्ट करें, जिससे दिति गर्भस्थ शिशुओं की शान्ति, इन्द्र की शाप से रक्षा, गर्भस्थ शिशुओं के साथ इन्द्र की मित्रता, उन गर्भस्थ जीवों की आरोग्यता, शचिपति के द्वारा कृत दोषों का निवारण और महर्षि अगत्स्य के शाप का परिहार हो जाये। यह सब कार्य क्रमशः सम्पन्न हो।।८७-८९।।

ततोऽहमब्रवं वाक्यं कश्यपं विनयान्वितम्।
प्रजापते कश्यप त्वं वसुभिर्लोकपालकैः॥९०॥
इन्द्रेण सहितः शीघ्रं गौतमीं याहि मानद।
तत्र स्नात्वा महेशानं स्तुहि सर्वैः समन्वितः॥९१॥
ततः शिवप्रसादेन सर्वं श्रेयो भवेदिति।
तथेत्युक्त्वा जगामासौ कश्यपो गौतमीं तदा॥९२॥
स्नात्वा तुष्टाव देवेशमेभिरेव पदक्रमैः। सर्वदुःखापनोदाय द्वयमेव प्रकीर्तितम्।
गौतमी वा पुण्यनदी शिवो वा करुणाकरः॥९३॥

तब मैंने विनीत हो रहे कश्यप से कहा—"हे प्रजापति कश्यप! यथाशीघ्र तुम वसुओं एवं लोकपालों के साथ इन्द्र को लेकर गौतमी तट पर जाओ। हे मानद! वहां सब लोग मिल कर स्नानान्त में महेश्वर का स्तव करना। इससे शिव की कृपा द्वारा सबका मंगल होगा।" मेरे यह कहने पर कश्यप ने कहा—"यही होगा" तथा वे सब लोग गौतमी नदी पर गये। वहां स्नानोपरान्त इस पदक्रम से वे लोग शिव का स्तव करने लगे। पुण्यमयी गौतमी नदी अथवा करुणा करने वाले शिव सभी दुःखों का नाश करने के लिये प्रसिद्ध कहे गये हैं।।९०-९३।।

कश्यप उवाच

पाहि शंकर देवेश पाहि लोकनमस्कृत। पाहि पावन वागीश पाहि पन्नगभूषण॥९४॥

पाहि धर्मवृषारूढ़ पाहि वेदत्रयेक्षण। पाहि गोधरलक्ष्मीश पाहि शर्व गजाम्बर॥९५॥
पाहि त्रिपुरहन्नाथ पाहि सोमार्धभूषण। पाहि यज्ञेश सोमेश पाह्यभीष्टप्रदायक॥९६॥

कश्यप कहते हैं—हे देवाधिदेव शंकर! रक्षा करिये। आप सर्वलोक नमस्कृत हैं। हे पावन! वागीश, पन्नगभूषण, धर्म रूपी वृषारूढ़, तीन वेद रूपी, तीन नेत्रों वाले हैं, आप हमारी रक्षा करिये। हे गोधरलक्ष्मीश (कैलास की लक्ष्मी के ईश), शर्व, गजचर्मधारी, त्रिपुरनाशक नाथ, अर्द्धचन्द्र के शिरः आभूषण से युक्त, यज्ञेश, सोमेश, अभीष्टप्रद! आप हमारी रक्षा करिये।।९४-९६।।

पाहि कारुण्यनिलय पाहि मङ्गलदायक। पाहि प्रभव सर्वस्य पाहि पालक वासव॥९७॥
पाहि भास्कर वित्तेश पाहि ब्रह्मनमस्कृत।
पाहि विश्वेश सिद्धेश पाहि पूर्ण नमोऽस्तु ते॥९८॥
घोरसंसारकान्तारसञ्चारोद्विग्नचेतसाम्। शरीरिणां कृपासिन्धो त्वमेव शरणं शिव॥९९॥

हे करुणानिलय! मंगलदायक, सबको उत्पन्न करने वाले, वासव, पालक, भास्कर, दिनेश, ब्रह्मा द्वारा नमस्कृत, विश्वेश, सिद्धेश, पूर्ण! आप हमारी रक्षा करिये। आपको प्रणाम! घोर संसार रूपी वन में संचरण से व्यथित चित्त प्राणियों के एकमात्र शरण्य, शिव, कृपासिन्धु! रक्षा करिये। आपको प्रणाम!।।९७-९९।।

ब्रह्मोवाच

एवं संस्तुवतस्तस्य पुरतोऽभूद्वृषभध्वजः।
वरेण च्छन्दयामास कश्यपं तं प्रजापतिम्॥१००॥
कश्यपोऽपि शिवं प्राह विनीतवदिदं वचः।
स प्राह विस्तरेणाथ इन्द्रस्य तु विचेष्टितम्॥१०१॥
शापं नाशं च पुत्राणां परस्परममित्रताम्। पापप्राप्तिं तु शक्रस्य शापप्राप्तिं तथैव च।
ततो वृषाकपिः प्राह दितिं चागस्त्यमेव च॥१०२॥

ब्रह्मा कहते हैं—कश्यप ऋषि द्वारा इस प्रकार स्तव किये जाने से प्रसन्न होकर इसी बीच भगवान् वृषध्वज उन प्रजापति (कश्यप) के समक्ष आविर्भूत होकर वरदानोद्यत हो गये। उस समय कश्यप ने भी विनय पूर्वक शिव से इन्द्र के कृत्य का विस्तार से वर्णन करते हुये इन्द्र को शाप दिया जाना, पापग्रस्त होना, भावी राज्य नाश, दिति के इन ४९ पुत्रों द्वारा इन्द्र के प्रति वैरभावना प्रभृति के परिहार की प्रार्थना किया। तदनन्तर वृषाकपि शिव ने दिति एवं अगत्स्य ऋषि से कहा—।।१००-१०२।।

शिव उवाच

मरुतो ये भवत्पुत्राः पञ्चाशच्चैकवर्जिताः। सर्वे भवेयुः सुभगा भवेयुर्यज्ञभागिनः॥१०३॥
इन्द्रेण सहिता नित्यं वर्तयेयुर्मुदाऽन्विताः॥१०४॥
इन्द्रस्य तु हविर्भागो यत्र यत्र मखे भवेत्। आदौ तु मरुतस्तत्र भवेयुर्नात्र संशयः॥१०५॥
मरुद्भिः सहितं शक्रं न जयेयुः कदाचन। जेता भवेत्सर्वदैव सुखं तिष्ठ प्रजापते॥१०६॥

अद्यप्रभृति ये कुर्युरनयाद्भ्रातृघातनम्। वंशच्छेदो विपत्तिश्च नित्यं तेषां भविष्यति॥१०७॥

भगवान् शिव कहते हैं—हे दिति! तुम्हारे ये ४९ पुत्रगण मरुत् नाम वाले, सुभग, यज्ञभागी हो जायेंगे। इन्द्र के साथ ये सभी प्रीति पूर्वक आमोद के साथ समय अतिवाहित करेंगे। जहां कहीं भी इन्द्र का यज्ञभाग होगा, वहां इन्द्र के भी पहले मरुतों को यज्ञभाग मिलेगा। यह सुनिश्चित है। मरुतों के साथ विराजमान इन्द्र को शत्रु लोग कभी भी जीत नहीं सकेंगे। इन्द्र की ही सदा जय होगी। हे प्रजापति कश्यप! आप भी स्वस्थ मन से रहिये। यह आपका पुत्र इन्द्र विजय लाभ करेगा। अब आज से जो व्यक्ति अन्याय के साथ भ्रातृहत्या करेगा, उनका वंशच्छेद होगा। उसे पग-पग पर विपत्ति प्राप्त होगी।।१०३-१०७।।

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यमृषिशार्दूलं शम्भुरप्याह यत्नतः॥१०८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब शंभु ने आग्रह पूर्वक ऋषि अगत्स्य से कहा—।।१०८।।

शम्भुरुवाच

न कुर्यास्त्वं च कोपं च शचीभर्तरि वै मुने।
शमं व्रज महाप्राज्ञ मरुतस्त्वमरा भवन्॥१०९॥

भगवान् शिव कहते हैं—हे मुनिवर! शचीपति के प्रति आप कोप न करिये। हे महाप्राज्ञ! आप शान्त हो जायें। अब मरुतों को अमरत्व लाभ हो गया।।१०९।।

ब्रह्मोवाच

दितिं चापि शिवः प्राह प्रसन्नो वृषभध्वजः॥११०॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय वृषारूढ़ शिव ने अतीव प्रसन्नता पूर्वक देवी दिति से कहा—।।११०।।

शिव उवाच

एको भूयान्मम सुतस्त्रैलोक्यैश्वर्यमण्डितः।
इत्येवं चिन्तयन्ती त्वं तपसे नियताऽभवः॥१११॥
तदेतत्सफलं तेऽद्य पुत्रा बहुगुणाः शुभाः।
अभवन्बलिनः शूरास्तस्माज्जहि मनोरुजम्।
अन्यानपि वरान्सुभ्रूर्याचस्व गतसम्भ्रमा॥११२॥

शिव कहते हैं—तुमने यह कामना किया था कि "मुझे त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से मण्डित एक पुत्र हो" तथा इसी हेतु तपस्या व्रत ग्रहण किया था। वह कामना आज सफल हो गयी। शुभदर्शन, बली, शूर, विशिष्ट गुण वाले अनेक पुत्र तुमको प्राप्त हो गये। अतः अब मानसिक दुःख-पीड़ा का त्याग करो। हे सुभ्रु! तुम संकोच त्याग कर मुझसे अनेक वर मांगो।।१११-११२।।

ब्रह्मोवाच

तदेतद्वचनं श्रुत्वा देवदेवस्य सा दिति। कृताञ्जलिपुटा नत्वा शम्भुं वाक्यमथाब्रवीत्॥११३॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवाधिदेव का यह वचन सुनकर दिति ने हाथों को जोड़कर शंभुदेव से कहा—।।११३।।

दितिरुवाच

लोके यदेतत्परमं यत्पित्रोः पुत्रदर्शनम्। विशेषेण तु तन्मातुः प्रियं स्यात्सुरपूजित।।११४।।

तत्रापि रूपसम्पत्तिशौर्यविक्रमवान्भवेत्। एकोऽपि तनयः किन्तु बहवश्चेत्किमुच्यते।।११५।।

मत्पुत्रास्ते प्रभावाच्च जेतारो बलिनो ध्रुवम्।
इन्द्रस्य भ्रातरः सत्यं पुत्राश्चैव प्रजापते।।११६।।
अगस्त्यस्य प्रसादाच्च गङ्गायाश्च प्रसादतः।
यत्र देव प्रसादस्ते तच्छुभं कोऽत्र संशयः।।११७।।
कृतार्थाऽहं तथाऽपि त्वां भक्त्या विज्ञापयाम्यहम्।
शृणुष्व देव वचनं कुरुष्व च जगद्धितम्।।११८।।

दिति कहती हैं—हे सुरपूजित! इस विश्व के माता-पिता के लिये, विशेषतः माता के लिये पुत्र दर्शन अत्यन्त प्रीतिकर है। यदि एक पुत्र भी रूप, सम्पत्ति, शौर्य, विक्रमयुक्त हो, तब उससे कितनी अधिक प्रसन्नता माता को होती है। यदि इस प्रकार गुणवान् अनेक पुत्र हों, तब कितनी प्रसन्नता होगी, उसका वर्णन कर सकना सम्भव ही नहीं है। आपकी कृपा तथा गोमतीगंगा के प्रभाव से मेरे ये सभी पुत्र अति बली, युद्धजयी हैं। ये प्रजापति की सन्तान तथा विजयी इन्द्र के भ्राता हैं। जहां आप कृपालु हों, वह निःसन्देह शुभमय होगा। यह निःसंदिग्ध है। मैं तो अब कृतार्थ हूं। हे देव! भक्तिभाव से यह प्रार्थना है कि जैसे जगत् मंगल हो, वही करिये।।११४-११८।।

ब्रह्मोवाच

वदेत्युक्ता जगद्धात्रा दितिर्नम्राऽब्रवीदिदम्।।११९।।

ब्रह्मा कहते हैं—दिति देवी का कथन सुनकर जगद्धाता महेश्वर ने दिति से बोलने हेतु कहा। यह आदेश पाकर दिति कहने लगीं—।।११९।।

दितिरुवाच

सन्ततिप्रापणं लोके दुर्लभं सुरवन्दित। विशेषेण प्रियं मातुः पुत्रश्चेत्किं नु वर्ण्यते।।१२०।।

स चापि गुणवाञ्श्रीमानायुष्मान्यदि जायते।
किन्तु स्वर्गेण देवेश पारमेष्ठ्यपदेन वा।।१२१।।

सर्वेषामपि भूतानामिहामुत्र फलैषिणाम्। गुणवत्पुत्रसम्प्राप्तिरभीष्टा सर्वदैव हि।
तस्मादाप्लवनादत्र क्रियतां समनुग्रहः।।१२२।।

दिति कहती हैं—हे देववन्दित! इस लोक में पुत्रलाभ दुर्लभ है। विशेषतया माता को सन्तान अत्यन्त प्रिय लगती है। विशेष करके यदि वह सन्तान पुत्र हो, तब उसका कैसे वर्णन करूं? यदि वह पुत्र गुणी,

श्रीमान्, आयुष्मान् हो, उस स्थिति में हे देवेश! तब स्वर्ग की क्या आवश्यकता? उस समय तो ब्रह्मपद का क्या प्रयोजन! ऐहिक तथा पारलौकिक, उभय सुखाभिलाषी प्राणीगण हेतु गुणी पुत्र ही सदैव वांछित रहता है। हे महेश्वर! कृपा पूर्वक आप सभी के कल्याण के लिये ऐसा विधान करिये कि यहां स्नान करने वाला गुणी पुत्रलाभ करे।।१२०-१२२।।

शङ्कर उवाच

महापापफलं चेदं यदेतदनपत्यता। स्त्रिया वा पुरुषस्यापि वन्ध्यत्वं यदि जायते॥१२३॥

तदत्र स्नानमात्रेण तद्दोषो नाशमाप्नुयात्।
स्नात्वा तत्र फलं दद्यात्स्तोत्रमेतच्च यः पठेत्॥१२४॥

स तु पुत्रमवाप्नोति त्रिमासस्नानदानतः। अपुत्रिणी त्वत्र स्नानं कृत्वा पुत्रमवाप्नुयात्॥१२५॥

ऋतुस्नाता तु या काचित्तत्र स्नाता सुताँल्लभेत्।
त्रिमासाभ्यन्तरं या तु गुर्विणी भक्तितस्त्विह॥१२६॥
फलैः स्नात्वा तु मां पश्येत्स्तोत्रेण स्तौति मां तथा।
तस्याः शक्रसमः पुत्रो जायते नात्र संशयः॥१२७॥

भगवान् शंकर कहते हैं—पुत्रहीनता महापाप का ही फल है। यहां स्नान मात्र से इस पुत्रहीनता का नाश होगा। यहां जो कोई स्नानोपरान्त सत्पात्र को फल प्रदान करेगा तथा इस स्तोत्र का पाठ करेगा, वह पुत्रलाभ करेगा। तीन मास पर्यन्त यहां स्नान-दान करने से उसे वांछित पुत्र का लाभ होगा। यदि पुत्रहीना स्त्री भी यहां स्नानादि कार्य सम्पन्न करेगी, उसे पुत्रलाभ होकर रहेगा। यहां ऋतु स्नानोपरान्त जो नारी स्नान करेगी, वह अनेक पुत्रलाभ करेगी। यदि गर्भिणी नारी यहां भक्तिभाव के साथ प्रभूत फल स्नानोपरान्त हाथ में लेकर मेरा दर्शन करेगी तथा इस स्तोत्र द्वारा मेरा स्तव करेगी, उसे निःसंदिग्धरूपेण इन्द्र जैसा पुत्र उत्पन्न होगा।।१२३-१२७।।

पितृदोषैश्च ये पुत्रं न लभन्ते दिते शृणु। धनापहारदोषैश्च तत्रैषा निष्कृतिः परा॥१२८॥

तत्रैषां पिण्डदानेन पितृणां प्रीणनेन च।
किञ्चित्सुवर्णदानेन ततः पुत्रो भवेद्ध्रुवम्॥१२९॥

जो पितृदोष के कारण पुत्रलाभ नहीं कर पा रहे हैं, किंवा धनाभाव तथा अन्य आपत्तियों के कारण पुत्रलाभ में सक्षम नहीं हो पा रहे हैं, धनापहरण आदि के पाप दोष के कारण जिनको पुत्रलाभ नहीं हो पा रहा है, उनकी निष्कृति का यह विधान है कि वे पितृदोष शान्त्यर्थ वहां पिण्ड प्रदान करके पितरों को प्रसन्न करें। साथ ही वहां किंचित् स्वर्णदान करने पर उनको अवश्यमेव पुत्रलाभ होकर रहेगा।।१२८-१२९।।

ये न्यसाद्यपहर्तारो रत्नापह्लवकारकाः। श्राद्धकर्मविहीनाश्च तेषां वंशो न वर्धते॥१३०॥
दोषिणां तु परेतानां गतिरेषा भवेदिति। सन्ततिर्जायतां श्लाघ्या जीवतां तीर्थसेवनात्॥१३१॥
सङ्गमे दितिगङ्गायाः स्नात्वा सिद्धेश्वरं प्रभुम्। अनाद्यपारमजरं चित्सदानन्दविग्रहम्॥१३२॥

देवर्षिसिद्धगन्धर्वयोगीश्वरनिषेवितम्। लिङ्गात्मकं महादेवं ज्योतिर्मयमनामयम्॥१३३॥
पूजयित्वोपचारैश्च नित्यं भक्त्या यतव्रतः।
स्तोत्रेणानेन यः स्तौति चतुर्दश्यष्टमीषु च॥१३४॥
यथाशक्त्या (क्ति) स्वर्णदानं ब्राह्मणानां च भोजनम्।
यः करोत्यत्र गङ्गायांस पुत्रशतमाप्नुयात्॥१३५॥

जिन्होंने दूसरों की धरोहर किंवा रत्नों को हड़प लिया है अथवा जिन्होंने श्राद्धादि पितृकर्म नहीं किया है, ऐसे लोगों का वंश नहीं बढ़ता। ऐसे दोषी लोगों की मृत्यु के पश्चात् अगले जन्म में वंशहीनता की स्थिति प्राप्त होती है। जो तीर्थ सेवन करते हैं, उन जीवित लोगों को उत्तम सन्तान लाभ होता है। दिति नदी तथा गंगा के संगम में स्नानोपरान्त अनादि, अपार, अजर, चित्, सत्, सदानन्द विग्रह, देव, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, योगीश्वरगण से सदैव सेवित लिंगात्मक सिद्धेश्वर महादेव प्रभु की पूजा करें, जो ज्योतिर्मय तथा अनामय हैं। जो व्रतशील होकर भक्ति के साथ उपचारयुक्त पूजन करता है तथा चतुर्दशी, अष्टमी प्रभृति तिथियों पर उनकी स्तुति करता है तथा अपनी शक्ति के अनुरूप स्वर्णदान तथा ब्राह्मण भोजन कराता है, उसे सौ पुत्रों की प्राप्ति होती है।।१३०-१३५।।।

सम्प्राप्य सकलान्कामानन्ते शिवपुरं व्रजेत्।
स्तोत्रेणानेन यः कश्चिद्यत्र क्वापि स्तवीति माम्।
षण्मासात्पुत्रमाप्नोति अपि वन्ध्याऽप्यशङ्कितम्॥१३६॥

वे अपनी सभी कामनाओं की पूर्त्ति पाकर नाना भोगों का उपभोग करने के उपरान्त देहान्त होने पर शिवलोक जाते हैं। यदि कोई भी स्त्री कहीं भी इस स्तोत्र से मेरा स्तव करेगी, वह वन्ध्या होने पर भी निःसन्देह पुत्रलाभ करेगी।।१३६।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति तत्तीर्थं पुत्रतीर्थमुदाहृतम्। तत्र तु स्नानदानाद्यैः सर्वकामानवाप्नुयात्॥१३७॥
मरुद्भिः सह मैत्र्येण मित्रतीर्थं तदुच्यते। निष्पापत्वेन चेन्द्रस्य शक्रतीर्थं तदुच्यते॥१३८॥
ऐन्द्रीं श्रियं यत्र लेभे तत्तीर्थं कमलाभिधम्।
एतानि सर्वतीर्थानि सर्वाभीष्टप्रदानि हि॥१३९॥
सर्वं भविष्यतीत्युक्त्वा शिवश्चान्तरधीयत।
कृतकृत्याश्च ते जग्मुः सर्व एव यथागतम्।
तीर्थानां पुण्यदं तत्र लक्षमेकं प्रकीर्तितम्॥१४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये पुत्रतीर्थादिलक्षतीर्थवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२४।।

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।

ब्रह्मा कहते हैं—तभी से यह तीर्थ पुत्रतीर्थ कहा गया है। यहां पर स्नान-दानादि से सर्वकामना फल प्राप्त होता है। यहां मरुतों के साथ इन्द्र की मित्रता हो गयी थी, अतः इसे मित्रतीर्थ भी कहते हैं। शक्रइन्द्र यहीं पर निष्पाप हो गये थे। इसलिये इसका नाम शक्रतीर्थ भी है। जहां इन्द्र को लक्ष्मी मिली थी, उसे कमलातीर्थ कहते हैं। ये सभी तीर्थ सभी अभीष्ट देने वाले हैं। तब भगवान् शिव ने दिति प्रभृति से कहा—"सब कुछ तुम लोगों की प्रार्थना के अनुसार ही होगा।" यह कह कर वे अन्तर्हित् हो गये। तब अन्य सभी लोग भी कृतार्थ होकर अपने-अपने स्थान पर चले गये। वहां पुण्यप्रद एक लाख तीर्थों की स्थिति कही जाती है।।१३७-१४०।।

।।चतुर्विंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतिवर्धनम्। दृष्टादृष्टेष्टदं सर्वदेवर्षिगणसेवितम्।।१।।
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम्। अनुह्लाद इति ख्यातः कपोतो बलवानभूत्।।२।।
तस्य भार्या हेतिनाम्नी पक्षिणी कामरूपिणी।
मृत्योः पौत्रो ह्यनुह्लादो दौहित्री हेतिरेव च।।३।।
कालेनाथ तयोः पुत्राः पौत्राश्चैव बभूविरे। तस्य शत्रुश्च बलवानुलूको नाम पक्षिराट्।।४।।
तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च आग्नेयास्ते बलोत्कटाः। तयोश्च वैरमभवद्बहुकालं द्विजन्मनोः।।५।।
गङ्गाया उत्तरे तीरे कपोतस्याऽऽश्रमोऽभवत्।
तस्याश्च दक्षिणे कूल उलूको नाम पक्षिराट्।।६।।

ब्रह्मा कहते हैं—यहां यमतीर्थ नामक जो प्रसिद्ध तीर्थ है, वह पितरों को अधिक प्रीतिदायक है तथा दृष्ट-अदृष्ट इष्टसाधक भी है। यह समस्त देवर्षिगण द्वारा सेवित है। इस तीर्थ का सर्वपातक नाशक प्रभाव कहता हूं। पूर्वकाल में अनुह्लाद नामक एक बली कपोत था, जिसकी भार्या कपोती का नाम हेति था। उस कपोत की यह पत्नी कामरूपिणी थी। अनुह्लाद मृत्यु का पौत्र था। हेति मृत्यु की दौहित्री थी। कालक्रमेण उनके अनेकों पौत्र जन्मे। उनका शत्रु था पक्षिराज उलूक। उलूक के सभी पुत्र-पौत्रगण आग्नेय कहलाते थे। वे अतिशय बलवान् भी थे। इन उलूक तथा कपोत के कुल में दीर्घकालीन पारस्परिक वैर भी था।।१-६।।

वासं चक्रे तत्र पुत्रैः पौत्रैश्च द्विजसत्तम। तयोश्च युद्धमभवद्बहुकालं विरुद्धयोः।।७।।

पुत्रैः पौत्रैश्च वृतयोर्बलिनोर्बलिभिः सह।
उलूको वा कपोतो वा नैवाऽऽप्नोति जयाजयौ॥८॥
कपोतो यममाराध्य मृत्युं पैतामहं तथा।
याम्यमस्त्रमवाप्याथ सर्वेभ्योऽप्यधिकोऽभवत्॥९॥
तथोलूकोऽग्निमाराध्य बलवानभवद्भृशम्। वैरुन्मत्तयोर्युद्धमभवच्चातिभीषणम्॥१०॥
तत्राऽऽग्नेयमुलूकोऽपि कपोतायास्त्रमाक्षिपत्।
कपोतोऽप्यथ पाशान्वै याम्यानाक्षिप्य शत्रवे॥११॥
उलूकायाथ दण्डं च मृत्युपाशानवासृजत्। पुनस्तदभवद्युद्धं पुराऽऽडीबकयोर्यथा॥१२॥

हे द्विजोत्तम! वे वहां पुत्र-पौत्रों के साथ निवास करते थे। उनमें एक दूसरे के विरुद्ध दीर्घकालीन युद्ध चला। पुत्र-पौत्रादि से परिवृत होकर उन बलशाली पक्षिद्वय के पक्ष का युद्ध चलने पर भी उनके बीच जय-पराजय का निर्णय नहीं हो सका। कपोत ने यम तथा पितामह मृत्यु की आराधना द्वारा याम्यास्त्र प्राप्त करके सर्वापेक्षा अधिक श्रेष्ठत्व प्राप्त कर लिया था। उधर उलूक ने भी अग्नि की आराधना द्वारा अतिशय बल प्राप्त कर लिया था। कपोत ने यम से तथा उलूक ने अग्नि से बल पा लिया था, अतः वे उन्मत्त होकर अतीव भीषण युद्ध करने लगे। उलूक ने कपोतों पर आग्नेयास्त्र छोड़ा, तब कपोत ने उलूकों पर यमपाश का प्रहार किया। एवंविध कपोत ने पाश एवं यमदण्ड छोड़ा तथा अन्त में मृत्यु पाश का प्रहार किया। उनमें ऐसा युद्ध होने लगा, जैसा घोर युद्ध पूर्वकाल में आड़ी तथा बक पक्षियों के मध्य हो चुका था।।७-१२।।

हेतिः कपोतकी दृष्ट्वा ज्वलनं प्राप्तमन्तिके।
पतिव्रता महायुद्धे भर्तुः सा दुःखविह्वला॥१३॥
अग्निना वेष्ट्यमानांश्च पुत्रान्दृष्ट्वा विशेषतः।
सा गत्वा ज्वलनं हेतिस्तुष्टाव विविधोक्तिभिः॥१४॥

जब पतिव्रता कपोत पत्नी हेति ने इस महायुद्ध में पति को आग्नेयास्त्र की लपट से आवरित देखा तथा पुत्रों को भी इसी हालत में देखा, तब वह अत्यन्त कातर होकर विह्वलता पूर्वक अग्नि का स्तव करने लगी।।१३-१४।।

हेतिरुवाच

रूपं न दानं न परोक्षमस्ति, यस्याऽऽत्मभूतं च पदार्थजातम्।
अश्नन्ति हव्यानि च येन देवाः, स्वाहापतिं यज्ञभुजं नमस्ये॥१५॥
मुखभूतं च देवानां देवानां हव्यवाहनम्। होतारं चापि देवानां देवानां दूतमेव च॥१६॥
तं देवं शरणं यामि आदिदेवं विभावसुम्।
अन्तःस्थितः प्राणरूपो बहिश्चान्नप्रदो हि यः।
यो यज्ञसाधनं यामि शरणं तं धनञ्जयम्॥१७॥

हेति कहती है—जिनका कोई रूप नहीं है, जिनका दान किसी के लिये परोक्ष (गुप्त) नहीं है, जो जगत् के सभी पदार्थों को आत्मभूत कर लेते हैं, जिनके द्वारा समस्त देवता हव्यभोजन करते हैं, मैं उन यज्ञभुक् स्वाहापति अग्नि को प्रणाम करती हूं! जो देवताओं के मुखरूप हैं, जो देवगण के हव्यवाहन हैं, जो देवताओं के होता हैं, जो देवगण के दूत हैं, मैं उन विभावसु की शरण लेती हूं। जो प्राणीगण के अन्तर में प्राणरूपेण तथा प्राणियों के बहिर्भाग में अन्नप्रदरूपेण विराजित हैं, जो यज्ञ के साधनस्वरूप हैं, मैं उन धनंजय अग्निदेव की शरण लेती हूं।।१५-१७।।

अग्निरुवाच

अमोघमेतदस्त्रं मे न्यस्तं युद्धे कपोतकि। यत्र विश्रमयेदस्त्रं तन्मे ब्रूहि पतिव्रते॥१८॥

अग्निदेव कहते हैं—हे पतिव्रता कपोती! युद्ध में छोड़ा गया मेरा यह आग्नेयास्त्र अमोघ है। अतः जहां यह जाकर शान्त हो सके, वह स्थान कहो।।१८।।

कपोत्युवाच

मयि विश्रम्यतामस्त्रं न पुत्रे न च भर्तरि। सत्यवाग्भव हव्येश जातवेदो नमोऽस्तु ते॥१९॥

कपोती कहती है—हे हव्येश! वह अस्त्र मुझ पर विश्राम करे (मुझे मार कर शान्त हो), लेकिन मेरे पुत्र तथा पति के ऊपर वह विश्राम न करे। हे जातवेदा! आप सत्यवाक् रहें। आपको प्रणाम!।।१९।।

जातवेदा उवाच

तुष्टोऽस्मि तव वाक्येन भर्तृभक्त्या पतिव्रते।
तवापि भर्तृपुत्राणां हेति क्षेमं ददाम्यहम्॥२०॥
आग्नेयमेतदस्त्रं मे न भर्तारं सुतानपि। न त्वां देहेत्ततो याहि सुखेन त्वं कपोतकि॥२१॥

अग्निदेव कहते हैं—हे पतिव्रते! मैं तुम्हारा पतिभक्ति से पूर्ण वाक्य सुन कर तुष्ट हो गया। हे हेति! मैं तुमको, तुम्हारे पति तथा पुत्रों को क्षमा प्रदान करता हूं। मेरा यह आग्नेयास्त्र तुमको, तुम्हारे पति तथा पुत्रों को दग्ध नहीं करेगा। हे कपोती! तुम सुख पूर्वक जाओ।।२०-२१।।

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र उलूकी ददृशे पतिम्। वेष्ट्यमानं याम्यपाशैर्यमदण्डेन ताडितम्।
उलूकी दुःखिता भूत्वा यमं प्रायाद्भयातुरा॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—उधर उलूकी ने जब अपने भर्त्ता को रणभूमि में यमपाश से बंधा तथा यमदण्ड से ताड़ित देखा, तब वह भयातुरा एवं दुःखी होकर यम के पास जाकर उनसे कहने लगी—।।२२।।

उलूक्युवाच

त्वद्भीता अनुद्रवन्ते जनास्त्वद्भीता ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
त्वद्भीताः साधु चरन्ति धीरास्त्वद्भीताः कर्मनिष्ठा भवन्ति॥२३॥

त्वद्भीता अनाशकमाचरन्ति, ग्रामादरण्यमभि यच्चरन्ति।
त्वद्भीताः सौम्यतामाश्रयन्ते, त्वद्भीताः सोमपानं भजन्ते।
त्वद्भीताश्चान्नगोदाननिष्ठास्त्वद्भीता ब्रह्मवादं वदन्ति॥२४॥

उलूकी कहती है—हे देव! यमराज! लोग आपके भय से पलायन कर जाते हैं। आपके ही भय से ब्रह्मचर्यानुष्ठान करते हैं। धीर लोग आपके ही भय से कर्मनिष्ठ बने रहते हैं। वे आपके भय से अनशन करते हैं, वे आपके भय से ही ग्राम से भाग कर अरण्य का आश्रय लेते हैं। आपके ही भय से भीत होकर लोग सौम्य होते हैं। वे आपसे ही डर कर सोमपान करते हैं तथा वेदोच्चारणादि करते हैं, आपके ही भय से वे गोदान, अन्नदान के प्रति निष्ठा रखते हैं। वे आपसे ही भयभीत होकर ब्रह्मवादी होते हैं।।२३-२४।।

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवत्यां तस्यां तामाह दक्षिणदिक्पतिः॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—उलूक पत्नी के इस स्तव के करते समय दक्षिण दिशा के अधिपति यमराज ने उससे कहा—।।२५।।

यम उवाच

वरं वरय भद्रं ते दास्येऽहं मनसः प्रियम्॥२६॥

यमराज कहते हैं—हे भद्रे! तुम वांछित वर मांगो। जो तुम्हारे मन को रुचे, वह मैं प्रदान करूंगा।।२६।।

ब्रह्मोवाच

यमस्येति वचः श्रुत्वा सा तमाह पतिव्रता॥२७॥

ब्रह्मा कहते हैं—यम का वचन सुनकर उनसे पतिव्रता उलूकी ने कहा—।।२७।।

उलूक्युवाच

भर्ता मे वेष्टितः पाशैर्दण्डेनाभिहतस्तव।
तस्माद्रक्ष सुरश्रेष्ठ पुत्रान्भर्तारमेव च॥२८॥

उलूकी कहती है—मेरा पति यमपाश से बंधा है। वह यमदण्ड द्वारा ताड़ित हो रहा है। हे देवप्रवर यम! आप मेरे पुत्र तथा पति की रक्षा करिये।।२८।।

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यात्कृपया युक्तो यमः प्राह पुनः पुनः॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—उलूकी का कथन सुनकर कृपा पूर्वक यम ने उससे पुनः कहा—।।२९।।

यम उवाच

पाशानां चापि दण्डस्य स्थानं वद शुभानने॥३०॥

यम कहते हैं—हे शुभानने! तुम मेरे पाश तथा दण्ड हेतु स्थान कहो।।३०।।

ब्रह्मोवाच

सा प्रोवाच यमं देवं मयि पाशास्त्वयेरिताः।
आविशन्तु जगन्नाथ दण्डो मय्येव संविशेत्।
ततः प्रोवाच भगवान्यमस्तां कृपया पुनः॥३१॥

ब्रह्मा कहते हैं—उलूकी ने यमराज से कहा—"हे जगन्नाथ! आपका पाश मुझ पर आविष्ट हो जाये। आपका दण्ड मुझ पर प्रहार करे।" यह सुनकर भगवान् यम कृपा पूर्वक कहने लगे।।३१।।

यम उवाच

तव भर्ता च पुत्राश्च सर्वे जीवन्तु विज्वराः॥३२॥

यमराज कहते हैं—तुम्हारे पति एवं पुत्रगण सभी दुःख रहित होकर जीवित रहें।।३२।।

ब्रह्मोवाच

न्यवारयद्यमः पाशानाग्नेयास्त्रं तु हव्यवाट्।
कपोतोलूकयोश्चापि प्रीतिं वै चक्रतुः सुरौ।
आहतुश्च द्विजन्मानौ व्रियतां वर ईप्सितः॥३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब यम ने अपने पाशादि का निवारण किया तथा हव्यवाहन अग्नि ने भी अपने आग्नेयास्त्र को संयत किया। तदनन्तर अग्नि एवं यम ने मिल कर कपोत एवं उलूक के बीच मित्रता सम्बन्ध करा दिया। तब इन्होंने इन दोनों पक्षियों से प्रसन्नता पूर्वक कहा—"तुम लोग वांछित वर मांगो"।।३३।।

पक्षिणावूचतुः

भवतोर्दर्शनं लब्धं वैरव्याजेन दुष्करम्।
वयं च पक्षिणः पापाः किं वरेण सुरोत्तमौ॥३४॥
अथ देयो वरोऽस्माकं भवद्भ्यां प्रीतिपूर्वकम्।
नाऽऽत्मार्थमनुयाचावो दीयमानं वरं शुभम्॥३५॥
आत्मार्थं यस्तु याचेत स शोच्यो हि सुरेश्वरौ।
जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा॥३६॥
अग्निरापो रविः पृथ्वी धान्यानि विविधानि च।
परार्थं वर्तनं तेषां सतां चापि विशेषतः॥३७॥
ब्रह्मादयोऽपि हि यतो युज्यन्ते मृत्युना सह।
एवं ज्ञात्वा तु देवेशौ वृथा स्वार्थपरिश्रमः॥३८॥
जन्मना सह यत्पुंसां विहितं परमेष्ठिना।
कदाचिन्नान्यथा तद्वै वृथा क्लिश्यन्ति जन्तवः॥३९॥

तस्माद्याचावहे किंचिद्धिताय जगतां शुभम्।
गुणदायि तु सर्वेषां तद्युवा (युवाभ्या) मनुमन्यताम्॥४०॥

पक्षीगण कहते हैं—हे सुरोत्तमद्वय! हम लोगों ने आपसी वैर के बहाने आप लोगों के दुर्लभ दशर्न का लाभ किया। हम पातकी पक्षी हैं। हमें अब वर का क्या प्रयोजन! फिर भी यदि आप लोग प्रेम पूर्वक प्रसन्नता से हमें वर प्रदान करना चाहें, तब हम अपने लिये कोई शुभ व्रत नहीं मांग सकते। हे सुरेश्वरद्वय! जो व्यक्ति अपने लिये प्रार्थना करता है, वह वास्तव में शोचनीय ही है। जो सदा परार्थ (हित) के लिये उद्यत रहता है, उसी का जीवन सफल है। अग्नि, जल, सूर्य, पृथिवी, विविध धान्य तथा विशेषतया साधु व्यक्ति परार्थ साधनार्थ ही विद्यमान रहते हैं। ब्रह्मादि देवताओं की भी मृत्यु हो जाती है, तब अन्य लोगों की तो बात ही क्या? हे देवद्वय! यह देख कर स्वार्थ हेतु उद्योग करना नितान्त व्यर्थ बोध होता है। परमेष्ठी ब्रह्मा प्राणीगण के जन्म के समय उसके लिये जो निर्दिष्ट कर देते हैं, वह कदापि अन्यथा नहीं होता। प्राणीगण व्यर्थ में वृषा पुरुषार्थ द्वारा क्लेश ही पाते हैं। इसलिये हम जगत् के हित के लिये हितप्रद कुछ शुभ वर की प्रार्थना करते हैं। आप उनके लिये अनुमति दीजिये।।३४-४०।।

ब्रह्मोवाच

तावाहतुरुभौ देवौ पक्षिणौ लोकविश्रुतौ।
धर्मस्य यशसोऽवाप्त्यै लोकानां हितकाम्यया॥४१॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय उन पक्षिद्वय ने उन लोकप्रसिद्ध दोनों देवगण से धर्म, यश तथा लोगों के लिये हितप्रद यह वर मांगा।।४१।।

पक्षिणावूचतुः

आवाभ्यामाश्रमौ तीर्थे गङ्गाया उभये तटे।
भवेतां जगतां नाथावेष एव परो वरः॥४२॥
स्नानं दानं जपो होमः पितॄणां चापि पूजनम्।
सुकृती दुष्कृती वाऽपि यः करोति यथा तथा।
सर्वं तदक्षयं पुण्यं स्यादित्येष परो वरः॥४३॥

पक्षीगण कहते हैं—हे जगन्नाथद्वय! गंगा गोमती के उभय तटों पर हमारे आश्रम (घोंसले) हैं। वे आश्रम तीर्थरूपी हो जायें, यही हमारा उत्तम वर प्रार्थित है। वहां जो कोई दुष्कृति अथवा सुकृति व्यक्ति स्नान, दान, जप, होम तथा पितृपूजनादि करे, वह सब अक्षय हो जाये। हम यही परम वर मांगते हैं।।४२-४३।।

देवावूचतुः

एवमस्तु तथाचान्यत्सुप्रीतौ तु ब्रुवावहे॥४४॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर उन दोनों देवगण ने कहा कि हम दोनों प्रसन्न होकर कहते हैं कि 'ऐसा ही हो' तथा हम अन्य वर भी देते हैं।।४४।।

यम उवाच

उत्तरे गौतमीतीरे यमस्तोत्रं पठन्ति ये। तेषां सप्तसु वंशेषु नाकाले मृत्युमाप्नुयात्॥४५॥
पुरुषो भाजनं च स्यात्सर्वदा सर्वसम्पदाम्।
यास्त्विदं पठते नित्यं मृत्युस्तोत्रं जितात्मवान्॥४६॥
अष्टाशीतिसहस्त्रैश्च व्याधिभिर्न स बाध्यते।
अस्मिन्स्तीर्थे द्विजश्रेष्ठौ त्रिमासाद्गुर्विणी सती॥४७॥
अर्वाग्वन्ध्या च षण्मासात्सप्ताहं स्नानमाचरेत्।
वीरसूः सा भवेन्नारी शतायुः स सुतो भवेत्।
लक्ष्मीवान्मतिमाञ्शूरः पुत्रपौत्रविवर्धनः। तत्र पिण्डादिदानेन पितरो मुक्तिमाप्नुयुः॥४८॥
मनोवाक्कायजात्पापात्स्नानन्मुक्तो भवेन्नरः॥४९॥

यम कहते हैं—गौतमी नदी के उत्तर तट पर जो कोई इस यमस्तोत्र का पाठ करेगा, उनकी सात पीढ़ी में किसी की भी अकाल मृत्यु नहीं होगी। वह पुरुष सदा सर्वदा सर्वसम्पदा का अधिकारी होगा। जो प्रतिदिन संयत होकर इस मृत्युस्तव का पाठ करेंगे, वे अट्ठासी हजार व्याधियों द्वारा कभी आक्रान्त नहीं होंगे। हे पक्षिश्रेष्ठद्वय! इस तीर्थ में एक सप्ताह मात्र स्नान करने से सती नारी तीन माह में तथा वन्ध्या नारी छः मास में गर्भवती होगी। उसे वीर सन्तान उत्पन्न होगी। वह सन्तान शतायु होगी। वह लक्ष्मीवान्, मतिमान्, बली एवं पुत्र-पौत्र सम्पन्न होगी। यहां पिण्ड आदि प्रदान करने पर पितृगण मुक्त होंगे। यहां व्यक्ति मात्र स्नान करके मनसा-वाचा-कर्मणा किये पापों से मुक्त हो जायेगा।।४५-४९।।

ब्रह्मोवाच

यमवाक्यादनु तथा हव्यवाडाह पक्षिणौ॥५०॥

ब्रह्मा कहते हैं—यम के द्वारा यह कहे जाने के उपरान्त अग्निदेव पक्षियों से कहने लगे।।५०।।

अग्निरुवाच

मत्स्तोत्रं दक्षिणे तीरे ये पठन्ति यतव्रताः। तेषामारोग्यमैश्वर्यं लक्ष्मीं रूपं ददाम्यहम्॥५१॥
इदं स्तोत्रं तु यः कश्चिद्यत्र क्वापि पठेन्नरः।
नैवग्नितो भयं तस्य लिखितेऽपि गृहे स्थिते॥५२॥
स्नानं दानं च यः कुर्यादग्नितीर्थे शुचिर्नरः। अग्निष्टोमफलं तस्य भवेदेव न संशयः॥५३॥

अग्निदेव कहते हैं—जो व्रती होकर गौतमी नदी के दक्षिण तट पर मेरे स्तोत्र का पाठ करेंगे, मैं उनको आरोग्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, रूप प्रदान करूंगा। कहीं भी वह स्तोत्र पाठ करने वाले को अग्निभय नहीं होगा। घर में लिख कर इसे रखने पर घर में अग्निभय नहीं होगा। उक्त अग्नितीर्थ में जो कोई व्यक्ति शुद्ध भाव से दानादि करेगा, उसे अग्निष्टोम यज्ञफल की प्राप्ति निःसंदिग्ध रूप से होगी।।५१-५३।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति तत्तीर्थं याम्यमाग्नेयमेव च। कपोतं च तथोलूकं हेत्युलूकं विदुर्बुधाः।।५४।।

तत्र त्रीणि सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च।
पुनर्नवतितीर्थानि प्रत्येकं मुक्तिभाजनम्।।५५।।

तेषु स्नानेन दानेन प्रेतीभूताश्च ये नराः। पूतास्ते पुत्रवित्ताढ्या आक्रमेयुर्दिवं शुभाः।।५६।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यमाग्न्यादिनवत्युत्तरत्रिशताधिकसहस्रतीर्थवर्णनं नाम पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः।।१२५।।

गौतमीमाहात्म्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५६।।

ब्रह्मा कहते हैं—तभी से ये दोनों स्थान क्रमशः यमतीर्थ तथा अग्नितीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गये। बुद्धिमान् लोग इनको याम्य, आग्नेय, कपोत, उलूक, हेत्युलूक प्रभृति नाम से पुकारते हैं। यहां तीन हजार तीन सौ नब्बे तीर्थ हैं। ये सभी मुक्तिदायक हैं। इन सभी तीर्थों में स्नान-दानादि से मानव पावन हो जाता है। वह नाना पुत्र-पौत्रवान् होकर मृत्यु के अनन्तर स्वर्गगामी होता है।।५४-५६।।

।।पञ्चविंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

तपःतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

तपस्तीर्थमिति ख्यातं तपोवृद्धिकरं महत्। सर्वकामप्रदं पुण्यां पितॄणां प्रीतिवर्धनम्।।१।।

तस्मिंस्तीर्थे तु यद्वृत्तं शृणु पापप्रणाशनम्। अपामग्नेश्च संवादमृषीणां च परस्परम्।।२।।

अपो ज्येष्ठतमाः केचिन्मेनिरेऽग्निं तथाऽपरे।
एवं ब्रुवन्तो मुनयः संवादं चाग्निवारिणोः।।३।।

विनाऽग्निं जीवनं क्व स्याज्जीवभूतो यतोऽनलः।
आत्मभूतो हव्यभूतश्चाग्निना जायतेऽखिलम्।।४।।

ब्रह्मा कहते हैं—तपतीर्थ नामक प्रसिद्ध तीर्थ अतिशय तपवृद्धि करने वाला है। वह सर्वकामप्रद, पुण्यजनक तथा पितरों को प्रसन्न करने वाला कहा गया है। वहां जो जल, अग्नि तथा ऋषियों के पारस्परिक

संवाद सम्बन्धित पापनाशक घटना घटित हुई थी, उसे सुनो। पूर्वकाल में एक बार इस बात की आलोचना मुनियों में होने लगी थी कि जल श्रेष्ठ है अथवा अग्नि! उस समय किसी मुनि ने जल को तो, किसी ने अग्नि को प्रधान कहा। इससे उनमें वाद, प्रतिवाद चलने लगा। उस अवसर पर कोई मुनि कहने लगे कि अग्नि के अभाव में जीवन ही नहीं रह सकता। अग्नि ही आत्मभूत, हव्यभूत है। अग्नि से ही अखिल विश्वोत्पत्ति होती है।।१-४।।

अग्निना ध्रियते लोको ह्यग्निर्ज्योतिर्मयं जगत्।
तस्मादग्नेः परं नास्ति पावनं देवतं महत्॥५॥
अन्तर्ज्योतिः स एवोक्तः परं ज्योतिः स एव हि।
विनाऽग्निना किञ्चिदस्ति यस्य धाम जगत्त्रयम्॥६॥
तस्मादग्नेः परं नास्ति भूतानां ज्यैष्ठ्यभाजनम्।
योषित्क्षेत्रेऽर्पितं बीजं पुरुषेण यथा तथा॥७॥
तस्य देहादिका शक्तिः कृशानोरेव नान्यथा।
देवानां हि मुखं वह्निस्तस्मान्नातः परं विदुः॥८॥

अग्नि ने ही विश्व को धारण किया है। अग्नि से ही जगत् ज्योतित होता है। अतः अग्नि से बढ़कर पावन देवता ही कोई नहीं है। वह अग्नि ही अन्तर्ज्योति है। वही परमाज्योति भी है! अग्नि के अभाव में किसी पदार्थ की सत्ता तीनों लोकों में नहीं हो सकती। इस कारण से अग्नि की अपेक्षा सर्वभूतों में श्रेष्ठताभाजन कुछ भी नहीं है। पुरुष द्वारा स्त्री के क्षेत्र में जो (वीर्य रूपी) बीज आरोपित किया जाता है, उसकी जो देहाकार में परिणति होती है, वह शक्ति भी कृशाणु अग्नि ही है। यह बात अन्यथा नहीं है। यह अग्नि ही देवतागण का मुख है। इसलिये इसकी अपेक्षा प्रधान पदार्थ कोई नहीं है। यही सुधीगण जानते हैं।।५-८।।

अपरे तु ह्यपां ज्यैष्ठ्यं मेनिरे वेदवादिन·।
अद्भिः सम्पत्स्यते ह्यन्नं शुचिरद्भिः प्रज ।९॥
अद्भिरेव धृतं सर्वमापो वै मातरः स्मृताः। त्रैलोक्यजीवनं वारि ।८-ताति पुराविदः॥१०॥
उत्पन्नममृतं ह्यद्भ्यस्ताभ्यश्चौषधिसम्भवः। अग्निर्ज्येष्ठ इति प्राहुरापो ज्येष्ठतमाः परे॥११॥
एवं मीमांसमानास्ते ऋषयो वेदवादिनः। विरुद्धवादिनो मां च समभ्येत्येदमब्रुवन्॥१२॥

तब अन्य वेदज्ञ कहने लगे कि जल ही श्रेष्ठ है। जल से ही अग्नि की उत्पत्ति होती है। जल से ही लोग पवित्र होते हैं। जल से ही सचराचर की रक्षा संभव है। यही जल जगन्माता भी है। जल ही त्रैलोक्य का जीवन स्वरूप है। प्राचीन विद्वानों का भी यही मत रहा है। जल से ही अमृतोत्पत्ति हो सकी थी। उससे ही औषधियां उत्पन्न हो सकी थीं। अतः सभी भूतों में जल की श्रेष्ठता सिद्ध है। एवंविध कतिपय लोग जल की तो कतिपय मुनि अग्नि की प्रधानता स्थापित कर रहे थे, लेकिन कोई भी निश्चित निष्कर्ष एवं मीमांसा न किये जाने पर वे सभी वेदज्ञ परस्परतः विरुद्ध वाद-विवाद करते निर्णयार्थ मेरे पास आये तथा मुझसे कहा—।।९-१२।।

ऋषय ऊचुः

अग्नेरपां वद ज्यैष्ठ्यं त्रैलोक्यस्य भवान्प्रभुः॥१३॥

ऋषिगण कहते हैं—आप त्रैलोक्य प्रभु हैं। आप ही अग्नि अथवा जल के श्रेष्ठत्व का निर्णय करिये।।१३।।

ब्रह्मोवाच

अहमप्यब्रवं प्राप्तानृषीन्सर्वान्यतव्रतान्। उभौ पूज्यतमौ लोके उभाभ्यां जायते जगत्॥१४॥

उभाभ्यां जायते हव्यं कव्यं चामृतमेव च।
उभाभ्यां जीवनं लोके शरीरस्य च धारणम्॥१५॥
नानयोश्च विशेषोऽस्ति ततो ज्यैष्ठ्यं समं मतम्।
ततो मद्वचनाज्ज्यैष्ठ्यमुभयोर्नैव कस्यचित्॥१६॥

ज्यैष्ठ्यमन्यतरस्येति मेनिरे ऋषिसत्तमाः। न तृप्ता मम वाक्येन जग्मुर्वायुं तपस्विनः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैंने वहां समागत उन सभी यतव्रत ऋषियों से कहा कि जल तथा अग्नि, ये दोनों ही जगत् में पुण्यतम ही हैं। दोनों से जगत् उत्पन्न होता है। इन दोनों से ही हव्य, कव्य, अमृतोत्पत्ति होती है। दोनों ही संसार के जीवन स्वरूप तथा शरीर धारण के कारण हैं। इनमें कोई तुलनात्मक रूप से अधिक नहीं है। दोनों की प्रधानता एक जैसी है। तथापि मेरे इस कथन से दोनों में से किसी की भी प्रधानता सिद्ध नहीं हो सकी थी। उन ऋषिसत्तमों की इच्छा थी कि इनमें से किसी एक की श्रेष्ठता-प्रधानता साधित हो। वे तपस्वी मेरे उत्तर से अतृप्त होकर वायुदेव के यहां गये।।१४-१७।।

मुनय ऊचुः

कस्य ज्यैष्ठ्यं भवान्प्राणो वायो सत्यं त्वयि स्थितम्॥१८॥

मुनिगण कहते हैं—हे वायुदेव! आप तो प्राण रूप हैं। जल तथा अग्नि में से कौन श्रेष्ठ है? आप कहिये। आप में ही सत्य की स्थिति रहती है।।१८।।

ब्रह्मोवाच

वायुराहानलो ज्येष्ठः सर्वमग्नौ प्रतिष्ठितम्।
नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमृषयो जग्मुस्तेऽपि वसुन्धराम्॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—ऋषियों का प्रश्न सुनकर वायुदेव ने कहा कि "अग्नि में ही सर्व जगत् प्रतिष्ठित रहता है। अतः अग्नि ही श्रेष्ठ है।" यह सुनकर ऋषियों ने परस्परतः कहा कि यह उचित निर्णय नहीं है। वे इस विवाद को करते धरती के यहां गये।।१९।।

मुनयः ऊचुः

सत्यं भूमे वद ज्यैष्ठ्यमाधाराऽसि चराचरे॥२०॥

मुनिगण कहते हैं—हे पृथिवी, भूमि! तुम तो सचराचर जगत् की आधारभूता हो। अतः सत्यता पूर्वक कहो कि अग्नि तथा जल में से कौन श्रेष्ठ है?।।२०।।

ब्रह्मोवाच

भूमिरप्याह विनयादागतांस्तानृषीनिदम्॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय भूमि ने उन ऋषियों से विनय के साथ कहा—।।२१।।

भूमिरुवाच

ममाप्याधारभूताः स्युरापो देव्यः सनातनाः।
अद्भ्यस्तु जायते सर्वं ज्यैष्ठ्यमप्सु प्रतिष्ठितम्॥२२॥

भूमि कहती है—सभी प्राणीगण हेतु आनन्ददायक सनातन जल मेरा भी आधार है। जल से ही सभी प्राणीगण उत्पन्न होते हैं। अतः श्रेष्ठत्व तो जल में ही है।।२२।।

ब्रह्मोवाच

नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमृषयो जग्मुः क्षीरोदशायिनम्। तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः शङ्खचक्रगदाधरम्॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—ऋषियों ने यह सुनकर इस कथन के प्रति असहमति प्रकट करते इसे स्वीकार नहीं किया। तब वे सभी लोग क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु के यहां गये। उन्होंने शंख-चक्र-गदा धारण करने वाले हरि का विविध स्तोत्रों से स्तव करना प्रारम्भ किया।।२३।।

ऋषय ऊचुः

यो वेद सर्वं भुवनं भविष्यद्यज्जायमानं च गुहानिविष्टम्।
लोकत्रयं चित्रविचित्ररूपमन्ते समस्ते च यमाविवेश॥२४॥
यदक्षरं शाश्वतमप्रमेयं, यं वेदवेद्यमृषयो वदन्ति।
यमाश्रिताः स्वेप्सितमाप्नुवन्ति, तद्वस्तु सत्यं शरणं व्रजामः॥२५॥
भूत महाभूतजगत्प्रधानं, न विन्दते योगिनो विष्णुरूपम्।
तद्वक्तुमेते ऋषयोऽत्र याताः, सत्यं वदस्वेह जगन्निवास॥२६॥
त्वमन्तरात्माऽखिलदेहभाजां, त्वमेव सर्वं त्वयि सर्वमीश।
तथाऽपि जानन्ति न केऽपि, कुत्राप्यहो भवन्तं प्रकृतिप्रभावात्।
अन्तर्बहिः सर्वत एव सन्तं, विश्वात्मना सम्परिवर्तमानम्॥२७॥

ऋषिगण कहते हैं—जो देव जगत् के भूत-भविष्यत्, सबसे अवगत रहते हैं, जो बुद्धिरूपी गुहा में निविष्ट हैं तथा विचित्र परिणामी लोकत्रय को सम्यक् रूप से जानते हैं, सर्वान्त में जिनमें (प्रलयकाल में) सभी प्राणीगण तथा भूतसमूह का लय हो जाता है, जिनको ऋषिगण शाश्वत-अप्रमेय, वेदों से ही जानने योग्य तथा अक्षय रूप से निर्दिष्ट करते हैं, जिनका आश्रय लेकर लोग वांछित कामनाओं की प्राप्ति करते हैं, हम उन सत्य

वस्तु श्रीहरि की शरण लेते हैं। महायोगी लोग भी इस पंचभूतात्मक संसार में तथा तदाश्रित प्रकृतिरूपेण वर्त्तमान रहने पर भी इन व्यापक रूप से विराजित विष्णु को नहीं जान पाते, हे प्रभो! आप ही वे परम देवता हैं। हे जगन्निवास! अग्नि तथा जल में से कौन प्रधान है? इस जिज्ञासा का उत्तर पाने हम यहां समागत हैं। आप ही इसका सत्य उत्तर दीजिये। आप ही समस्त देहीगण की आत्मा हैं। हे ईश्वर! आपमें ही सब कुछ रहता है। आप विश्वात्मा तथा जगत् में अन्दर-बाहर सर्वत्र व्याप्त हैं। आप ही इसका नित्य परिवर्त्तन करते रहते हैं। तथापि आश्चर्य यह है कि प्रकृति के प्रभाव के कारण कोई भी, कहीं पर भी आपको जान नहीं पाता!।।२४-२७।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्राह जगद्धात्री दैवी वागशरीरिणी॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तभी जगद्धात्री अशरीरी दैवीवाक् ने कहा—।।२८।।

दैवी वागुवाच

उभावाराध्य तपसा भक्त्या च नियमेन च। यस्य स्यात्प्रथमं सिद्धिस्तद्भूतं ज्येष्ठमुच्यते॥२९॥

दैवीवाक् कहती है—तुम लोग तप, नियम, भक्ति के साथ जल तथा अग्नि, इन दोनों की आराधना करो। जो उपासना पहले सिद्ध हो जाये, उसे तुम लोग ज्येष्ठ मान लेना।।२९।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ययुः सर्वे ऋषयो लोकपूजिताः।
श्रान्ताः खिन्नान्तरात्मानः परं वैराग्यमाश्रिताः॥३०॥
सर्वलोकैकजननीं भुवनत्रयपावनीम्। गौतमीमगमन्सर्वे तपस्तप्तुं यतव्रताः॥३१॥
अब्दैवतं तथाऽग्निं च पूजनायोद्यतास्तदा।
अग्नेश्च पूजका ये च अपां वै पूजने स्थिताः।
तत्र वागब्रवीद्दैवी वेदमाता सरस्वती॥३२॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब श्रान्त, खिन्न अन्तरात्मा तथा परम वैराग्यवान् वे लोकपूजित ऋषिवृन्द "ऐसा ही हो" कह कर वहां से चले गये तथा सर्वलोक की अद्वितीया जननी, भुवनत्रय को पवित्र करने वाली गौतमी नदी के तट पर गये तथा तपश्चरण का व्रत लेकर वे सभी ऋषि वहां जलदेवता एवं अग्निदेवता के पूजनार्थ उद्यत होकर दोनों की उपासना करने लगे। तभी वेदमाता सरस्वती रूपा अशरीरी दैववाणी ने वहां कहा—।।३०-३२।।

दैवी वागुवाच

अग्नेरापस्तथा योनिरद्भिः शौचमवाप्यते।
अग्नेश्च पूजका ये च विनाऽद्भिः पूजनं कथम्॥३३॥
अप्सु जातासु सर्वत्र कर्मण्यधिकृतो भवेत्।
तावत्कर्मण्यनर्होऽयम-शुचिर्मलिनो नरः॥३४॥

न मग्नः श्रद्धया यावदप्सु शीतासु वेदवित्।
तस्मादपो वरिष्ठा स्युर्मातृभूता यतः स्मृताः।
तस्माज्ज्यैष्ठ्यमपामेव जनन्योऽग्नेर्विशेषतः॥३५॥

दैववाणी कहती है—जल ही समस्त अग्नि की योनि है। जल से ही पवित्रता होती है। जो अग्निपूजा करते हैं, वे भी जल के बिना पूजा नहीं कर सकते। सर्वत्र जल का संचार (स्नान) होने पर ही कर्माधिकार मिलता है। भले ही व्यक्ति वेदज्ञ क्यों न हो, वह जब तक सश्रद्ध भाव से शीतल जल में डुबकी नहीं लगा लेता, तब तक देह मलिन रहने के कारण वह अशुद्ध रहता है। तब तक उसे धर्म के कर्मानुष्ठान का अधिकार नहीं मिलता। अतः जल ही श्रेष्ठ है। वही जगत् का मातृस्थानीय है। इस कारण जल का श्रेष्ठत्व युक्ति से सिद्ध है। वह तो अग्नि की भी माता है।।३३-३५।।

ब्रह्मोवाच

एतद्वचः शुश्रुवस्ते ऋषयो वेदवादिनः। निश्चयं च ततश्चक्रुर्भवेज्जैष्ठ्यमपामिति॥३६॥
यत्र तीर्थे वृत्तमिदमृषिसत्रे च नारद। तपस्तीर्थं तु तत्प्रोक्तं सत्रतीर्थं तदुच्यते॥३७॥
अग्नितीर्थं च तत्प्रोक्तं तथा सारस्वतं विदुः।
तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम्॥३८॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस देववाणी के कथन को सुनकर ऋषियों ने जल की श्रेष्ठता को मान लिया। हे नारद! जिस तीर्थ पर ऋषि सत्र में यह व्यापार घटित हुआ था, वही तीर्थस्थल तपस्तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसे अग्नितीर्थ तथा सारस्वततीर्थ भी कहा जाता है। इन सभी तीर्थ में स्नान-दान करने से व्यक्ति की सभी कामनायें सफल होती हैं तथा शुभ फल मिलता है।।३६-३८।।

चतुर्दश शतान्यत्र तीर्थानां पुण्यदायिनाम्।
तेषु स्नानं च दानं च स्वर्गमोक्षप्रदायकम्॥३९॥
कृतं सन्देहहरणमृषीणां यत्र भाषया। सरस्वत्यभवत्तत्र गङ्गाया सङ्गता नदी।
माहात्म्यं तस्य को वक्तुं सङ्गमस्य क्षमो नरः॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपस्तीर्थादिचतुर्दशशततीर्थवर्णनं नाम षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१२६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५७।।

यहां पुण्यप्रद चौदह सौ तीर्थ भी स्थित हैं। इन सभी तीर्थों में स्नान-दानादि कर्म करना मोक्षदायक है। जहां पर दैववाणी ने ऋषियों का संदेह भंग किया था, वहीं पर सरस्वती का गोमतीगंगा से संगम हुआ है। इस सरस्वती-गोमतीगंगा संगम स्थल का माहात्म्य कौन मनुष्य कह सकेगा?।।३९-४०।।

।।षड्विंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

देवतीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥

आर्ष्टिषेण इति ख्यातो राजा सर्वगुणान्वितः।
तस्य भार्या जया नाम साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा॥२॥

तस्य पुत्रो भरो नाम मतिमान्पितृवत्सलः। धनुर्वेद च वेदे च निष्णातो दक्ष एव च॥३॥
तस्य भार्या रूपवती सुप्रभेत्यभिविश्रुता। आर्ष्टिषेणस्ततो राजा पुत्रे राज्यं निवेश्य सः॥४॥
पुरोधसा च मुख्येन दीक्षां चक्रे नरेश्वरः। सरस्वत्यास्ततस्तीरे हयमेधाय यत्नवान्॥५॥
ऋत्विग्भिर्ऋषिमुख्यैश्च वेदशास्त्रपरायणैः। दीक्षितं तं नृपश्रेष्ठं ब्राह्मणाग्निसमीपतः॥६॥
मिथुर्दानवराट्शूरः पापबुद्धिः प्रतापवान्। मखं विध्वस्य नृपतिं सभार्यं सपुरोहितम्॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—अब मैं इस गंगा के उत्तर तटस्थ प्रख्यात देवतीर्थ के सर्वपापनाशक प्रभाव को कहता हूं। पूर्वकाल में आर्ष्टिषेण नामक प्रसिद्ध तथा सर्वगुणनिधान राजा थे। उनकी पत्नी का नाम था जया, जो मानों द्वितीया लक्ष्मी के समान थीं। उनका पुत्र भर नाम वाला पितृवत्सल, मतिमान, कार्यदक्ष, धनुर्वेद एवं अन्य वेदों का पारदर्शी था। उस पुत्र की पत्नी सुप्रभा नाम से प्रसिद्ध रूपवती स्त्री थी। राजा आर्ष्टिसेन ने पुत्र को राज्यभार देकर अश्वमेध यज्ञ सम्पादन के लिये सरस्वती तट पर अपने पुरोहित से दीक्षा ग्रहण किया था। इन राजा के दीक्षित होकर वेदज्ञ एवं शास्त्रपरायण ऋत्विकों तथा प्रधान-प्रधान ऋषियों के साथ अग्नि के समीप अवस्थित होने पर वहां मिथु नामक वीर प्रतापी दानवराज अपनी पापबुद्धि के कारण पहुंचा। उसने यज्ञ का ध्वंस कर दिया तथा उसने राजा का उनके पुरोहित के साथ अपहरण कर लिया॥१-७॥

आदाय वेगात्स प्रागाद्रसातलतलं मुने। नीते तस्मिन्नृपवरे यज्ञे नष्टे ततोऽमराः॥८॥

ऋत्विजश्च ययुः सर्वे स्वं स्वं स्थानं मखात्ततः।
पुरोहितसुतो राज्ञो देवापिरिति विश्रुतः॥९॥
बालस्तां मातरं दृष्ट्वा आत्मनः पितरं न च।
दृष्ट्वा सविस्मयो भूत्वा दुःखितोऽतीव चाभवत्॥१०॥
स मातरं तु पप्रच्छ पिता मे क्व गतोऽम्बिके।
पितृहीनो न जीवेयं मातः सत्यं वदस्व मे॥११॥
धिग्धिक्पितृविहीनानां जीवितं पापकर्मणाम्।
न वक्षि यदि मे मातर्जलमग्निमथाऽऽविशे॥१२॥

पुत्रं प्रोवाच सा माता राज्ञो भार्या पुरोधसः। दानवेन तलं नीतो राज्ञा सह पिता तव॥१३॥

हे मुनिवर नारद! वह इन सबको पकड़ कर वेग पूर्वक रसातल में चला गया। उस दानव द्वारा राजा का हरण होने तथा यज्ञध्वंस होने पर देवता लोग तथा सभी ऋत्विक् अपने-अपने स्थान पर लौट गये। राजा के पुरोहित का एक पुत्र था देवापि। जब उस बालक ने अपने पिता को नहीं देखा, तब वह विशेष रूप से दुःखी होकर माता से पूछने लगा कि "हे माता! पिता कहां हैं? मैं पितृहीन होकर नहीं जी सकता। आप सत्य कहिये। पिता रहित पापकर्मी के जीवन को धिक्कार है। हे माता! यदि आप मुझे सत्य नहीं बतलातीं, तब मैं अग्नि किंवा जल में प्रविष्ट होकर प्राण विसर्जित करूंगा।" पुत्र का वाक्य सुनकर माता राजपुरोहित पत्नी ने कहा—"हे पुत्र! तुम्हारे पिता को राजा सहित दानव रसातल में ले गया है"।।८-१३।।

देवापिरुवाच

क्व नीतः केन वा नीतः कथं नीतः क्व कर्मणि।
केषु पश्यत्सु किं स्थानं दानवस्य वदस्व मे॥१४॥

देवापि कहते हैं—कौन, कहां, किसलिये, किस कार्य से मेरे पिता को ले गया है? उसे किसने देखा? दानव का निवास कहां है? यह सब कहिये।।१४।।

मातोवाच

दीक्षितिं यज्ञसदसि सभार्यं सपुरोधसम्। राजानं तं मिथुर्दैत्यो नीतवान्स रसातलम्।
पश्यत्सु देवसङ्घेषु वह्निब्राह्मणसन्निधौ॥१५॥

माता कहती है—राजा जब यज्ञकर्म हेतु दीक्षित थे, तभी मिथु नामक एक दैत्य उस यज्ञस्थल में आया। वह पुरोहित तथा रानी के साथ राजा को अग्नि एवं ब्राह्मणों और देवताओं के सामने ही रसातल में ले गया।।१५।।

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा देवापिः कृत्यमस्मरत्।
देवान्पश्येऽथवाऽग्निं वा ऋत्विजो वाऽसुरांस्तथा॥१६॥
एतेष्वेव पिताऽन्वेष्यो नान्यत्रेति मतिर्मम।
इति निश्चित्य देवापिर्भरं प्राह नृपात्मजम्॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवापि ने माता का कथन सुना। वह अपने कर्त्तव्य के विषय में विचार करने लगा कि "क्या देवगण के पास किंवा अग्नि के पास अथवा ऋत्विकों के पास जाना होगा अथवा असुरगण के पास खोजना होगा। वे अन्यत्र नहीं हो सकते। इनमें ही हो सकते हैं। अतः इनमें ही मैं पिता को खोजूंगा।" यह विचार करने के पश्चात् देवापि राजकुमार भर से कहने लगा—॥१६-१७।।

देवापिरुवाच

तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च। आनेतव्या मया सर्वे नीता ये च रसातलम्॥१८॥
जाते पराभवे घोरे यो न कुर्यात्प्रतिक्रियाम्। नराधमेन किं तेन जीवता वा मृतेन वा॥१९॥

त्वं प्रशाधि महीं कृत्स्नामार्ष्टिषेणः पिता यथा।
माता मम त्वया पाल्या राजन्यावन्ममाऽऽगतिः।
भवेच्च कृतकार्यस्य अनुजानीहि मां भर॥२०॥

देवापि कहता है—दैत्यों द्वारा रसातल में जो लोग हरण करके ले जाये गये हैं, उनको मैं अपने तप, ब्रह्मचर्य, व्रत तथा नियमों द्वारा वापस लाऊंगा। घोर रूप से पराजित होकर जो लोग उसकी प्रतिक्रिया में अपमान का बदला नहीं ले पाते, वे नराधम तो जीते जी मृत हैं। उनके जीवन को भी मृत्यु ही समझे। आपके पिता आर्ष्टिषेण जिस विधि से राज्य पालन करते थे, आप भी तद्रूप पृथिवीमण्डल का शासन करिये। हे राजन्! आप मेरी माता का पालन तथा कुशल देखते रहियेगा। जब तक मैं कृतकार्य होकर वापस नहीं लौटता, आप यह सब करिये। हे भर! आप मुझे कृतार्थ होने का आदेश (शुभकामना) प्रदान करें।।१८-२०।।

ब्रह्मोवाच

भरेणोक्तः स देवापिः सर्वं निश्चित्य यत्नतः॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनक राजकुमार भर ने भी अपना कर्त्तव्य निश्चित करके देवापि से कहा—।।२१।।

भर उवाच

सिद्धिं कुरु सुखं याहि मा चिन्तामल्पिकां भज॥२२॥

भर कहते हैं—तुम कार्य में सफलता लाभ करो। सुख पूर्वक जाओ। किसी भी विषय की चिन्ता मत करो।।२२।।

ब्रह्मोवाच

ततो देवापिरमरराजाङ्घ्रिध्यानतत्परः। ऋत्विजोऽन्वेष्य यत्नेन नत्वा तानृत्विजः पृथक्।
कृताञ्जलिपुटो बालो देवापिर्वाक्यमब्रवीत्॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् वह बालक देवापि देवराज के चरणों का ध्यान करता तत्पर होकर यत्नतः ऋत्विकों का पता लगाने में प्रवृत्त हो गया। तदनन्तर उनके समक्ष प्रणत होकर एकान्त में अलग-अलग हाथ जोड़ते हुये प्रत्येक ऋत्विक् से कहने लगा—।।२३।।

देवापिरुवाच

भवद्भिश्च मखो रक्ष्यो यजमानश्च दीक्षितः।
पुरोधाश्च तथा रक्ष्यः पत्नी या दीक्षितस्य तु॥२४॥
भवत्सु तत्र पश्यत्सु यज्ञं विध्वस्य दैत्यराट् (ऋत्विजः)।
राजादयस्तेन नीतास्तन्न युक्ततमं भवेत्॥२५॥
अथाप्येतदहं मन्ये भवन्तस्तानरोगिणः। दातुमर्हन्ति तान्स (वै स) र्वानन्यथा शापमर्हथ॥२६॥

देवापि कहता है—यज्ञ में दीक्षित यजमान, पुरोहित तथा दीक्षित यजमान की पत्नी आप लोगों द्वारा रक्षणीय होती हैं, तथापि आप लोगों के सामने से वह दैत्यराज यज्ञ का ध्वंस करता हुआ राजा प्रभृति को उठा ले गया, यह युक्ततम नहीं है। नितान्त अनुचित है। जो भी हो, अब आप लोग राजा प्रभृति को निरोग तथा स्वस्थ स्थिति में ले आईये, यही मुझे उचित लगता है। यदि आप लोग ऐसा नहीं करते, तब आप सबको मेरा शाप ही मिलेगा।।२४-२६।।

ऋत्विज ऊचुः

मखेऽग्निः प्रथमं पूज्यो ह्यग्निरेवात्र दैवतम्।
तस्माद्वयं न जानीमो ह्यग्नीनां परिचारकाः॥२७॥
स एव दाता भोक्ता च हर्ता कर्ता च हव्यवाट्॥२८॥

ऋत्विक्गण कहते हैं—यज्ञों में अग्नि ही प्रथमतः पूजित होते हैं, अग्नि ही यज्ञ में देवता हैं। इसलिये हम सभी अग्नि के सेवक मात्र हैं। इस विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। वे हव्यवाह अग्नि ही दाता, भोक्ता, हर्त्ता, कर्त्ता तथा हव्यवाहक हैं।।२७-२८।।

ब्रह्मोवाच

ऋत्विजः पृष्ठतः कृत्वा देवापिर्जातवेदसम्। पूजयित्वा यथान्यायमग्नये तन्यवेदयत्॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवापि ने ऋत्विकों को अपने पीछे किया तथा उसने स्वयं आगे होकर जातवेदा अग्नि की यथोक्त पूजा करके उनसे यह प्रसंग कहा—।।२९।।

अग्निरुवाच

यथर्त्विजस्तथा चाहं देवानां परिचारकः। हव्यं वहामि देवानां भोक्तारो रक्षकाश्च ते॥३०॥
देवानाहूय यत्नेन हविर्भागान्पृथक्पृथक्। दास्येऽहमेष दोषो मे तस्माद्याहि सुरान्प्रति॥३१॥

अग्निदेव कहते हैं—ऋत्विक् जिस प्रकार मेरे सेवक हैं, तदनुरूप मैं भी देवगण का सेवक मात्र ही हूं। मैं तो केवल देवताओं तक हव्य को पहुंचा देता हूं। वे ही भोक्ता तथा रक्षक हैं। मैं तो देवगण का अलग-अलग आवाहन करता हूं और उनको यत्नतः हविर्भाग प्रदान करता हूं। मैं तो पृथक्तः देवगण का आवाहन करके उनको हविः का भाग प्रदान करता हूं। मात्र यही मेरा दोष है। तुम अपने कार्य हेतु देवगण के यहां जाओ।।३०-३१।।

ब्रह्मोवाच

देवापिः स सुरान्प्राप्य नत्वा तेभ्यः पृथक्पृथक्।
ऋत्विग्वाक्यं चाग्निवाक्यं शापं चापि न्यवेदयत्॥३२॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब वह देवापि देवराज के पास गया तथा वहां उसने देवगण को पृथक्-पृथक् प्रणाम किया तथा उनमें प्रत्येक से ऋत्विकों ने जो कहा था, वह अग्निवाक्य तथा शाप देने की बातों को निवेदित किया।।३२।।

देवा ऊचुः

आहूता वैदिकैर्मन्त्रैर्ऋत्विग्भिश्च यथाक्रमम्। भोक्ष्यामहे हविर्भागान्न स्वतन्त्रा द्विजोत्तम॥३३॥
तस्माद्वेदानुगा नित्यं वयं वेदेन चोदिता। परतन्त्रास्ततो विप्र वेदेभ्यस्तन्निवेदय॥३४॥

देवगण कहते हैं—हम वैदिक मन्त्रों द्वारा ऋत्विकों के आवाहन पर आकर हविर्भाग का भक्षण करते हैं। हे द्विजोत्तम! हम स्वाधीन नहीं हैं। हम वेदों के अनुगामी हैं। हम तो वेदों द्वारा प्रेरित होकर कार्य करने वाले परतन्त्र हैं। हे ब्राह्मण! तुम अपनी बातों को वेदों से कहो।।३३-३४।।

ब्रह्मोवाच

सा देवापिः शुचिर्भूत्वा वेदानाहूय यत्नतः। ध्यानेन तपसा युक्तो वेदाश्चापि पुरोऽभवन्॥३५॥
वेदानुवाच देवापिर्नमस्य तु पुनः पुनः।
ऋत्विग्वाक्यं चाग्निवाक्यं देववाक्यं न्यवेदयत्॥३६॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवापि ने पवित्र होकर यत्न के साथ वेदों का आवाहन किया। उसने ध्यान एवं तपः द्वारा युक्त होकर आवाहन किया, जिससे वेदगण उसके समक्ष आ गये। देवापि ने उन वेदों को पुनः-पुनः नमस्कार किया तथा उनसे ऋत्विकों, अग्नि तथा देवताओं द्वारा कहे वाक्यों को यथावत् निवेदित किया।।३५-३६।।

वेदा ऊचुः

परतन्त्रा वयं तात ईश्वरस्य वशानुगाः। अशेषजगदाधारो निराधारो निरञ्जनः॥३७॥
सर्वशक्त्यैकसदनं निधानं सर्वसम्पदाम्। स तु कर्ता महादेवः संहर्ता स महेश्वरः॥३८॥
वयं शब्दमया ब्रह्मन्वदामो विद्म एव च।
अस्माकमेतत्कृत्यं स्याद्वदामो यत्तु पृच्छसि॥३९॥
केन नीतास्तस्य नाम तत्पुरं तद्बलं तथा।
भक्षिताः किन्तु नो नष्टा एतज्जानीमहे वयम्॥४०॥
यथा च तव सामर्थ्यं यमाराध्य च यत्र च।
स्यादित्येतच्च जानीमो यथा प्राप्स्यसि तान्पुरः॥४१॥

वेदगण कहते हैं—हे तात! हम सभी परतन्त्र हैं। हम स्वतन्त्र न होकर ईश्वर के वशीभूत रहते हैं। अशेष जगत् के आधार होने पर भी निराधार, निरंजन, सर्वसत्याधार तथा सत्याश्रय, सर्वसम्पत्ति निधान वे महेश्वर महादेव ही जगत्कर्त्ता तथा संहर्त्ता हैं। हे ब्रह्मन्! हम तो शब्दमय हैं। इसीलिये सब जान कर बतलाते हैं। हम सबका यही काम है। तुम्हारे पिता आदि को कौन ले गया, उसका नाम, उसका नगर, बल बता सकते हैं। उन लोगों को खा लिया गया अथवा वे मर गये, यह सब हमें ज्ञात है। हम तुम्हारी स्वयं की शक्ति को जानते हैं। कहां पर किसकी आराधना से तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा, किस प्रकार उनको पा सकोगे, यह सब हम जानते हैं।।३७-४१।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छुत्वाऽवदद्वेदान्विचार्य सुचिरं हृदि॥४२॥

ब्रह्मा कहते हैं—वेदों का कथन सुनकर देवापि ने हृदय में दीर्घकाल पर्यन्त विचार करने के पश्चात् कहा—।।४२।।

देवापिरुवाच

वेदा वदन्त्वेतदेव सर्वमेव यथार्थतः।
सर्वान्प्राप्स्ये तलं नीतानलं तेभ्यो नमोऽस्तु वः॥४३॥

देवापि कहते हैं—हे वेद-देवताओं! आप सबको प्रणाम करता हूं! आप कृपया यह कहिये कि पाताल तल में ले जाये गये उन लोगों को किस प्रकार से प्राप्त कर सकूंगा, यह कहिये। आप लोगों को प्रणाम!।।४३।।

वेदा ऊचुः

गौतमीं गच्छ देवापे तत्र स्तुहि महेश्वरम्। सुप्रसन्नस्तवाभीष्टं दास्यत्येव कृपाकरः॥४४॥
भवेद्देवः शिवः प्रीतः स्तुतः सत्यं महामते।
आर्ष्टिषेणश्च नृपतिस्तस्य जाया जया सती॥४५॥
पिता तवाप्युपमन्युस्तले तिष्ठन्त्यरोगिणः। वरदानान्महेशस्य मिथुं हत्वा च राक्षसम्।
यशः प्राप्स्यसि धर्मं च एतच्छक्यं न चेतरम्॥४६॥

वेद कहते हैं—हे देवापि! तुम गौतमी तट पर जाकर महेश्वर की स्तुति करो। वे कृपालु प्रसन्न होकर अभीष्ट प्रदान करेंगे। हे महामति! वे देव शिव स्तुति द्वारा अवश्य प्रसन्न हो जायेंगे। राजा आर्ष्टिषेण, उनकी पत्नी, तुम्हारे पिता उपमन्यु, ये सभी निरोग शरीर से रसातल में विराजित हैं। तुम शिव के वरदान को पाकर वहां मिथु दैत्य का वध करोगे तथा धर्म एवं यशलाभ करोगे। हमारी यही बतलाने की शक्ति है। इसके अतिरिक्त शक्ति इस सम्बन्ध में नहीं है।।४४-४६।।

ब्रह्मोवाच

तद्वेदवचनाद्बालो देवापिर्गौतमीं गतः। स्नात्वा कृतक्षणो विप्रस्तुष्टाव च महेश्वरम्॥४७॥

ब्रह्मा कहते हैं—वेदाज्ञानुसार वे देवापि गौतमी तट पर चले गये। वहां उन्होंने स्नानोपरान्त उसने कुछ क्षण ध्यानोपरान्त शंकर को प्रसन्न करने हेतु स्तुति किया।।४७।।

देवापिरुवाच

बालोऽहं देवदेवेश गुरूणां त्वं गुरुर्मम।
न मे शक्तिस्त्वत्स्तवने तुभ्यं शम्भो नमोऽस्तु ते॥४८॥
न त्वां जानन्ति निगमा न देवा मुनयो न च।
न ब्रह्मा नापि वैकुण्ठो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥४९॥

येऽनाथा ये च कृपणा ये दरिद्राश्च रोगिणः।
पापात्मानो ये च लोके तांस्त्वं पासि महेश्वर॥५०॥
तपसा नियमैर्मन्त्रैः पूजितास्त्रिदिवौकसः।
त्वया दत्तं फलं तेभ्यो दास्यन्ति जगतां पते॥५१॥
याचितारश्च दातारस्तेभ्यो यद्यन्मनीषतिम्।
भवतीति न चित्रं स्यात्वं विपर्ययकारकः॥५२॥
येऽज्ञानिनो ये च पापा ये मग्ना नरकार्णवे।
शिवेति वचनान्नाथ तान्पासि त्वं जगद्गुरो॥५३॥

देवापि कहते हैं—हे देवदेवेश! मैं बालक हूं। आप तो मेरे गुरु के भी गुरु हैं। मेरी ऐसी शक्ति नहीं है कि आपका स्तव कर सकूं। हे शंभु! आपको नमस्कार! आपको तो निगम तथा देवता एवं मुनि भी नहीं जान पाते। ब्रह्मा एवं वैकुण्ठ के अधिपति विष्णु भी आपका रहस्य नहीं जानते। आपको प्रणाम! आप तो जो हैं, आप वही हैं! मैं आपको नमस्कार करता हूं! हे महेश्वर! लोक में जो अनाथ, कृपण, दरिद्र, रोगी, पापी हैं, आप इन सबका त्राण कर देते हैं। हे जगत् के स्वामी! तप, नियम, मन्त्रों से जो लोग देवपूजा करते हैं, उन लोगों को वे सभी देवता आपसे ही पाये फलों को देते हैं। उन सभी अपने भक्तों के मनोरथों को वे सब देवता आपके सामने याचक बन कर पाते हैं तथा अपने भक्तों को प्रदान करते हैं। इसमें कोई विचित्रता ही नहीं है, क्योंकि आप ही सुख-दुःखादि का विपर्यय करने वाले हैं। हे जगद्गुरु, हे नाथ! जो अज्ञानी हैं, पापी हैं, जो नरकार्णव में डूबे हुये हैं, वे भी यदि "शिव" शब्द का उच्चारण करते हैं, तब आप उनको भी उन सब स्थितियों से छुटकारा प्रदान कर देते हैं।।४८-५३।।

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरः प्राह त्रिलोचनः॥५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब उस बालक ने इस प्रकार से स्तव किया, तब उनके सामने देवाधिदेव त्रिलोचन ने प्रकट होकर कहा—।।५४।।

शिव उवाच

वरं ब्रूह्यथ देवापे अलं दैन्येन बालक॥५५॥

भगवान् शिव कहते हैं—हे देवापि! वर मांगो। अब दैन्य का प्रयोजन नहीं है।।५५।।

देवापिरुवाच

राजानं राजपत्नीं च पितरं च गुरुं मम।
प्राप्तुमिच्छे जगन्नाथ निधनं च रिपोर्मम॥५६॥

देवापि कहते हैं—हे जगन्नाथ! मैं राजा, राजपत्नी तथा अपने पिता, जो मेरे गुरु भी हैं, पाना चाहता हूं। मैं अपने उस शत्रु की मृत्यु कामना करता हूं। यही वर चाहिये।।५६।।

ब्रह्मोवाच

देवापिवचनं श्रुत्वा तथेत्याहाखिलेश्वरः। देवापेः सर्वमभवदाज्ञया शङ्करस्य तत्॥५७॥
पुनरप्याह तं (आहूय स्वगणं) शम्भुर्देवापिकरुणाकरः।
नन्दिनं प्रेषयामास शम्भुः (ततः) शूलेन नारद॥५८॥
रसातले मिथुं नन्दी हत्वा चासुरपुङ्गवान्।
तत्पित्रादीन्समानीय तस्मै तान्स न्यवेदयत्॥५९॥
हयमेधश्च तत्राऽऽसीदार्ष्टिषेणस्य धीमतः। अग्निश्च ऋत्विजो देवा वेदाश्च ऋषयोऽब्रुवन्॥६०॥

ब्रह्मा कहते हैं—अखिलेश्वर त्रिलोचन ने देवापि का कथन सुनकर कहा—"यही हो।" हे नारद! देवापि पर करुणावर्षा करने वाले शंभु ने अपने गणपति नंदी को बुलाकर उनको शूल प्रदान किया तथा उनको रसातल में भेजा। नन्दी ने वहां जाकर मिथु दानव का वध अन्य असुरपुंगवों के साथ किया तथा वे देवापि के पिता तथा अन्य बन्दियों को लेकर आये। उन्होंने सभी को देवापि के हाथों अर्पित कर दिया। अब धीमान् राजा आर्ष्टिषेण का वह अश्वमेध यज्ञ वहीं सम्पन्न हो गया। उस यज्ञ में आये अग्नि, ऋत्विक्, देवता, वेदगण तथा ऋषि कहने लगे॥५७-६०॥

अग्न्यादय ऊचुः

यत्र साक्षादभूच्छम्भुर्देवापे भक्तवत्सलः। देवदेवो जगन्नाथो देवतीर्थमभूच्च तत्॥६१॥
सर्वपापक्षयकरं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम्। पुण्यदं तीर्थमेतत्स्यात्तव कीर्तिश्च शाश्वती॥६२॥

अग्नि प्रभृति कहते हैं—हे देवापि! भक्तवत्सल देवाधिदेव जगन्नाथ शंभु का साक्षात्कार (तुमको) मिला था, वह स्थल अब देवतीर्थ कहा जायेगा। यह मनुष्यों के सभी पापों का क्षय करने वाला, सर्वसिद्धिदाता तथा पुण्यजनक होगा। यह तुम्हारी शाश्वती कीर्त्ति का स्थल है॥६१-६२॥

ब्रह्मोवाच

अश्वमेधे निवृत्ते तु सुरास्तेभ्यो वरान्ददुः। स्नात्वा कृतार्था गङ्गायां ततस्ते दिवमाक्रमन्॥६३॥
ततः प्रभृति तत्राऽऽसंस्तीर्थानि दश पञ्च च।
सहस्राणि शतान्यष्टावुभयोरपि तीरयोः।
तेषु स्नानं च दानं च ह्यतीव फलदं विदुः॥६४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आर्ष्टिषेणाद्यष्टोत्तरशताधिकपञ्चदशसहस्रतीर्थ-वर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥

ब्रह्मा कहते हैं—अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हो जाने पर देवगण (राजा को) ने उनको नाना वस्त्र प्रदान

किया। तदनन्तर उन्होंने कृतार्थ होकर गौतमी गंगा में स्नानोपरान्त स्वर्ग गमन किया। तभी से गौतमी गंगा के उभय तटों पर पन्द्रह सहस्र एक सौ आठ संख्यक तीर्थ समुद्भूत हो गये। इन सभी तीर्थों में स्नान-दान अमित फलप्रद है। सुधी लोग यह जानते हैं।।६३-६४।।

।।सप्तविंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

तपोवन प्रभृति तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

तपोवनमिति ख्यातं नन्दिनीसङ्गमं तथा। सिद्धेश्वरं तत्र तीर्थं गौतम्या दक्षिणे तटे।।१।।
शार्दूलं चेति विख्यातं तेषां वृत्तमिदं शृणु। यस्याऽकर्णनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।।२।।

अग्निर्होता पुरा त्वासीद्देवानां हव्यवाहनः।
भार्यां प्राप्तो दक्षसुतां स्वाहानाम्नीं सुरूपिणीम्।।३।।
साऽनपत्या पुरा चाऽसीत्पुत्रार्थं तप आविशत्।
तपश्चरन्तीं विपुलं तोषयन्तीं हुताशनम्।
स भर्ता हुतभुक्प्राह भार्यां स्वाहामनिन्दिताम्।।४।।

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर गौतमी के दक्षिण तट पर तपोवन, नन्दिनीसंगम, सिद्धेश्वर तथा शार्दूल नाम वाले विख्यात तीर्थ हैं। उनका यह वृत्तान्त सुनो। इसके श्रवणमात्र से मानव को मुक्तिलाभ हो जाता है। पूर्वकाल में अग्नि देवगण के हव्यवाहक तथा होता थे। उनको स्वाहा नामक सुरूपा दक्षकन्या पत्नी रूप में मिली थी। प्रारम्भ में स्वाहा पुत्रहीना थी। उसने पुत्रलाभार्थ तप प्रारम्भ किया। उन्होंने विपुल तप के द्वारा जब अग्नि को सन्तुष्ट करने का उपक्रम किया, तब हुतभुक् अग्निदेव ने आकर उन अनिन्दिता पत्नी से कहा—।।१-४।।

अग्निरुवाच

अपत्यानि भविष्यन्ति मा तपः कुरु शोभने।।५।।

अग्नि कहते हैं—हे शोभने! तुम तप मत करो। तुमको सन्तान लाभ होगा।।५।।

ब्रह्मोवाच

एच्छ्रुत्वा भर्तृवाक्यं निवृत्ता तपसोऽभवत्।
स्त्रीणामभीष्टदं नान्यद्भर्तृवाक्यं विना क्वचित्।।६।।

ततः कतिपये काले तारकाद्भय आगते। अनुत्पन्ने कार्तिकेये चिरकालरहोगते॥७॥
महेश्वरे भवान्या च त्रस्ता देवाः समागताः।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमग्निं प्रोचुर्दिवौकसः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—अपने पति का यह कथन सुनकर स्वाहा तप से विरत हो गयी। पति के वाक्य के अतिरिक्त स्त्रियों की कामना पूर्त्ति अन्य प्रकार से नहीं होती। कुछ काल अतिवाहित होने पर देवताओं को तारकासुर से भय हो गया। महेश्वर तथा भवानी ने दीर्घकाल तक एकान्त में रमण किया, तथापि कार्त्तिवीर्य उससे उत्पन्न नहीं हो सके। इस कारण स्वर्ग निवासी देवताओं ने भयग्रस्त होकर अपने कार्य की सिद्धि के लिये अग्नि के निकट आकर कहा—।।६-८।।

देवा ऊचुः

देव गच्छ महाभाग शम्भुं त्रैलोक्यपूजितम्। तारकाद्भयमुत्पन्नं शम्भवे त्वं निवेदय॥९॥

देवता कहते हैं—हे महाभाग! देवता अग्नि! आप त्रैलोक्य पूजित शंभु से कहिये कि तारक असुर के द्वारा देवगण पर महान् संकट आया है।।९।।

अग्निरुवाच

न गन्तव्यं तत्र देशे दम्पत्योः स्थितयो रहः।
सामान्यमात्रतो न्यायः किं पुनः शूलपाणिनि॥१०॥
एकान्तस्थितयोः स्वैरं जल्पतोर्यः सरागयोः।
दम्पत्योः शृणुयाद्वाक्यं निरयात्तस्य नोद्धृतिः॥११॥
स स्वाम्यखिललोकानां महाकालस्त्रिशूलवान्।
निरीक्षणीयः केन स्याद्भवान्या रहसि स्थितः॥१२॥

अग्नि कहते हैं—वहां जाना उचित नहीं है, जहां दम्पति एक साथ स्थित हैं। यह सर्वसाधारणार्थ विधान है, जब कि वे तो शूलपाणि शिव हैं (उनके एकान्त स्थल में जाना उचित नहीं है)। सामान्यतः यही नीति है। जो व्यक्ति एकान्त में स्थित अनुराग पूर्वक वार्त्तालाप कर रहे निःसंकोच स्थित दम्पति की बातों को सुनता है, उसका नरक से उद्धार नहीं होता। भगवान् शिव सर्वलोकेश्वर, महाकाल, शूलपाणि हैं। जब वे भवानी के साथ एकान्त में स्थित हों, तब उनको देखने का साहस कौन करे।।१०-१२।।

देवा ऊचुः

महाभये चानुगते न्यायः कोऽन्वत्र वर्ण्यते।
तारकाद्भय आपन्ने गच्छ त्वं तारको भवान्॥१३॥
महाभयाब्धौ साधूनां यत्परार्थाय जीवितम्।
रूपेणान्येन वा गच्छ वाचं वद यथा तथा॥१४॥

विश्राव्य देववचनं शम्भुमागच्छ सत्वरः। ततो दास्यामहे पूजामुभयोर्लोकयोः कवे॥१५॥

देवगण कहते हैं—महाभय आ गया है। इस समय न्याय की बात कहना उचित नहीं है। तारक के भय से आप ही रक्षा करने जायें। आप ही हमें तारिये। महासंकट रूपी समुद्र से तारने हेतु साधुगण का जीवन परार्थ साधक होता है। वह परोपकार की भावना से भावित होकर अग्रसर होता है। अतः आप अपने रूप में अथवा अन्य किसी भी इच्छित रूप में जाईये। वहां जाकर चाहे जैसे हो यह प्रसंग उनसे कहिये। आप देवताओं की प्रार्थना भगवान् महेश्वर से कहने के पश्चात् वापस आयें। हे कवे! हम उभय लोकों की पूजा आपको प्रदान करेंगे।।१३-१५।।

ब्रह्मोवाच

शुको भूत्वा जगामाऽऽशु देववाक्याद्हुताशनः।
यत्राऽऽसीज्जगतां नाथो रममाणस्तदोमया॥१६॥
स भीतवदथ प्रायाच्छुको भूत्वा तदाऽनलः। नाशकद्द्वारदेशे तु प्रवेष्टुं हव्यवाहनः॥१७॥
ततो गवाक्षदेशे तु तस्थौ धुन्वन्नधोमुखः। तं दृष्ट्वा प्रहसञ्शम्भुरुमां प्राह रहोगतः॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—अग्नि ने देवगण के कथनानुसार शुक का रूप धारण करके वहां से शीघ्र प्रस्थान किया। अब वे अनलदेव वहां गये, जहां उमा के साथ रमण करते जगन्नाथ शिव विराजमान थे। वे वहां अपने शुक रूप में भयभीत स्थिति में पहुंचे, लेकिन हव्यवाहन अग्नि वहां द्वार से प्रवेश नहीं कर सके। तब वे गवाक्ष (झरोखे से रोशनदान से) अपना मुख नीचे किये तथा किंचित् कम्पित रूप से बैठ गये। उनको देख कर एकान्त में विलासरत शम्भु ने हंसते हुये भगवती उमा से कहा—।।१६-१८।।

शम्भुरुवाच

पश्य देवि शुकं प्राप्तं देववाक्याद्हुताशनम्॥१९॥

भगवान् शंभु कहते हैं—हे देवी! देखो! देवताओं के कहने पर यहां शुकरूप से आये अग्नि को देखो।।१९।।

ब्रह्मोवाच

लज्जिता चावदद्देवमलं देवेति पार्वती। पुरश्चरन्तं देवेशो ह्यग्निं तं द्विजरूपिणम्॥२०॥
आहूय बहुशश्चापि ज्ञातोऽस्यग्नेऽत्र मा वद।
विदारयस्व स्वमुखं गृहाणेदं नयस्व तत्॥२१॥
इत्युक्त्वा तस्य चाऽऽस्येऽग्ने रेतः स प्राक्षिपद्बहु।
रेतोगर्भस्तदा चाग्निर्गन्तुं नैव च शक्तवान्॥२२॥
सुरनद्यास्ततस्तीरं श्रान्तोऽग्निरुपतस्थिवान्।
कृत्तिकासु च तद्रेतः प्रक्षेपात्कार्तिकोऽभवत्॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवी पार्वती यह देख कर लज्जित हो गईं। उन्होंने शंभु से कहा—"हे देव! अब प्रयोजन नहीं है" (विलास का प्रयोजन नहीं है।) तब शंकर ने सामने फिर रहे पक्षीरूपी अग्नि से कहा—"हे

अग्नि! तुम पहचान लिये गये। कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। अपना मुख खोलो तथा उसमें यह लेकर जाओ।'' यह कहकर महेश्वर ने अग्नि के मुख में अपना वीर्य प्रचुर परिमाण में छोड़ दिया। उस समय अग्नि उस शिव के वीर्य का वहन मुख में कर सकने में असमर्थ हो गये। वे किसी प्रकार अत्यन्त कष्ट के साथ थके हुये देवसरिता गंगा के तट पर पहुंचे और वहां समागत कृत्तिकाओं में उन्होंने वह वीर्य छोड़ दिया। कृत्तिकाओं में जाकर वह वीर्य कार्तिक नामक पुत्ररूप में उत्पन्न हो गया।।२०-२३।।

अवशिष्टं च यत्किञ्चिदग्नेर्देहे च शाम्भवम्।
तदेव रेतो वह्निस्तु स्वभार्यायां द्विधाऽक्षिपत्॥२४॥
स्वाहायां प्रियभूतायां पुत्रार्थिन्यां विशेषतः। पुरा साऽऽश्वासिता तेन संततिस्ते भविष्यति॥२५॥
तद्वह्निनाऽथ संस्मृत्य तत्क्षिप्तं शाम्भवं महः। तदग्ने रेतसस्तस्यां जज्ञे मिथुनमुत्तमम्॥२६॥
सुवर्णश्च सुवर्णा च रूपेणाप्रतिमं भुवि। अग्नेः प्रीतिकरं नित्यं लोकानां प्रीतिवर्धनम्॥२७॥
अग्निः प्रीत्या सुवर्णां तां प्रादाद्धर्माय धीमते।
सुवर्णस्याथ पुत्रस्य सङ्कल्पामकरोत्प्रियाम्।
एवं पुत्रस्य पुत्र्याश्च विवाहमकरोत्कविः॥२८॥

शंभु का वह रेतः (वीर्य) अब जो कुछ अग्नि के शरीर में बच गया था, उसे अग्नि ने अपनी प्रियतमा पुत्रकामिनी स्वाहा में छोड़ दिया, क्योंकि पूर्वकाल में अग्नि ने स्वाहा को यह कहकर आश्वस्त किया था कि तुमको सन्तति उत्पन्न होगी। अब उस आश्वासन का स्मरण हो जाने के कारण अग्नि ने शंभु का बचा वीर्य अपनी भार्या में दो भागों में छोड़ दिया। इस अग्नि तेज द्वारा स्वाहा से एक मिथुन (एक जोड़ी) सन्तान की उत्पत्ति हो गयी। ये सुवर्ण एवं सुवर्णा नाम से प्रसिद्ध हो गये तथा ये दोनों पृथिवी पर अनुपम रूप वाले थे। ये अग्नि की प्रसन्नता को सदा बढ़ाने वाले तथा लोकों को विशेषतया आनन्दित करने वाले थे। अग्नि ने अपनी कन्या सुवर्णा धर्म को प्रदान किया। उन्होंने अपने पुत्र सुवर्ण का विवाह संकल्पा नामक कन्या से कर दिया। इस प्रकार कवि अग्नि ने पुत्र तथा कन्या का विवाह भी सम्पन्न कर दिया।।२४-२८।।

अन्योन्यरेतोव्यतिषङ्गदोषादग्नेरपत्यमुभयं तथैव।
पुत्रः सुवर्णो बहुरूपरूपी, रूपाणि कृत्वा सुरसत्तमानाम्॥२९॥
इन्द्रस्य वायोर्धनदस्य भार्या, जलेश्वरस्यापि मुनीश्वराणाम्।
भार्यास्तु गच्छत्यनिशं सुवर्णो, यस्याः प्रियं यच्च वपुः स कृत्वा॥३०॥
याति क्वचिच्चाप कवेस्तनूजस्तद्भर्तृरूपं च पतिव्रतासु।
कृत्वाऽनिशं ताभिरुदारभावः, कुर्वन्कृतार्थं मदनं स रेमे॥३१॥

अन्यान्य वीर्य से मिश्रित होकर जन्म लेने वाले अग्नि के पुत्र-कन्या दोषयुक्त थे। सुवर्ण अनेक रूप धरता था। वह देवगण के उत्तम रूप को धारण करके इन्द्र, वायु, कुबेर, जलेश्वर वरुण तथा अन्य मुनियों का रूप धरता उनकी पत्नियों से सतत् संगम करता रहता। जिस रमणीय रूप को जो नारी रुचिकर मानती, सुवर्ण वैसा ही रूप धारण करता तथा उस नारी से संगम करता। वह अग्निपुत्र इस प्रकार से पतिव्रता नारीगण से भी

उनके पति का रूप धारण करके संगमरत हो जाता। वह इस प्रकार नित्य अपनी इच्छा से कामवासना तृप्त करता रमणरत रहता। वह इस प्रकार कामदेव को तृप्त करता रहता था।।२९-३१।।

कृत्वा गता क्वापि चैवं सुवर्णा, धर्मस्य भार्याऽपि सुवर्णनाम्नी।
स्वाहासुता स्वैरिणी सा बभूव, यस्यापि यस्यापि मनोगता या॥३२॥
भार्यास्वरूपा सैव भूत्वा सुवर्णा, रेमे पतीन्मानुषानासुरांश्च।
देवानृषीन्पितृरूपांस्तथाऽन्यान्रूपौदार्यस्थैर्यगाम्भीर्ययुक्तान् ॥३३॥
याऽभिप्रेता यस्य देवस्य भार्या, तद्रूपा सा रमते तेन सार्धम्।
नानाभेदैः करणैश्चाप्यनेकैराकर्षन्ती तन्मनःकामसिद्धिम्॥३४॥
एवं सुवर्णस्य निरीक्ष्य चेष्टामग्नेः सूनोः पुत्रिकायास्तथाऽग्नेः।
सर्वे च शेपुः कुपितास्तदाऽग्नेः, पुत्रं च पुत्रीं च सुरासुरास्ते॥३५॥

अग्निपुत्री तथा धर्म की पत्नी सुवर्णा भी मनुष्य, असुर, देवता, ऋषि तथा पितरों में रूप, औदार्य, स्थैर्य तथा गांभीर्ययुक्त व्यक्ति से रमण करती रहती। वह देवगण की स्त्रियों का रूप धारण करती तथा उस रूप में उस देवता के साथ रमण करती। वह नाना प्रकार के रूप को धारण करती तथा विविध आचरण से उस पुरुष के मन का आकर्षण करके अपनी वासना सिद्धि करती रहती। अन्ततः अग्नि के सन्तानद्वय सुवर्ण तथा सुवर्णा का यह दुराचरण देख कर देवता-असुर आदि सभी कुपित हो गये तथा उन्होंने इन दोनों को शापित करते कहा—।।३२-३५।।

सुरासुरा ऊचुः

कृतं यदेतद्व्यभिचाररूपं यच्छद्मना वर्तनं पापरूपम्।
तस्मात्सुतस्ते व्यभिचारवांश्च, सर्वत्र गामी जायतां हव्यवाह॥३६॥
तथा सुवर्णाऽपि न चैकनिष्ठा, भूयादग्ने नैकतृप्ता बहूंश्च।
नानाजातीन्निन्दितान्देहभाजो, भजित्री स्यादेष दोषश्च पुत्र्याः॥३७॥

सुर तथा असुरगण कहते हैं—हे हव्यवाह अग्नि! आपके पुत्र ने कपटता पूर्वक जिस व्यभिचार रूप अतिशय पापों का आचरण किया है, उस कारण से वह सर्वत्र गमन करने वाला व्यभिचारी हो जाये। हे अग्नि! आपकी पुत्री सुवर्णा भी एक पुरुष से तृप्त न हो सके। वह अनेक जातियों वाले निन्दनीय देहधारी लोगों के साथ रमण करने वाली हो जाये। आपकी पुत्री ऐसे दोष वाली हो जाये।।३६-३७।।

ब्रह्मोवाच

इत्येतच्छापवचनं श्रुत्वाऽग्निरतिभीतवत्। मामभ्येत्य तदोवाच निष्कृतिं वद पुत्रयोः॥३८॥
तदाऽहमब्रवं वह्ने गौतमीं गच्छ शङ्करम्।
स्तुत्वा तत्र महाबाहो निवेदय जगत्पते॥३९॥
माहेश्वरेण वीर्येण तव देहस्थितेन च। एवंविधं त्वपत्यं ते जातं वह्ने ततो भवान्॥४०॥

निवेदयस्य (तु) देवाय देवानां शापमीदृशम्।
स्वापत्यरक्षणायासौ शम्भुः श्रेयः करिष्यति॥४१॥
स्तुहि देवं च देवीं च भक्त्या प्रीतो भवेच्छिवः।
ततस्त्वपत्यविषये प्रियान्कामानवाप्स्यसि॥४२॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब अग्नि ने यह शापवचन सुना, वे अत्यन्त भयभीत हो गये। वे मेरे पास आकर कहने लगे—"मेरी सन्तानों के छुटकारे का उपाय कहिये।" तब मैंने उनसे कहा—"हे अग्ने! तुम गौतमी तट पर जाओ। हे महाबाहु! वहां शंकर का स्तव करके उन जगत्पति से सब वृत्तान्त निवेदित करो। हे अग्नि! तुम्हारे देहस्थित महेश्वर के वीर्य से ऐसे पुत्र जन्मे हैं। इस निमित्त का वर्णन करो तथा उन प्रभु से देवशाप का भी वर्णन करो। वे शंभु अपनी इन दोनों सन्तानों के रक्षणार्थ श्रेयप्रद विधान करेंगे। तुम देवाधिदेव तथा भगवती का स्तव करो। इससे तुम्हारी भक्ति द्वारा महेश्वर शिव प्रसन्न हो जायेंगे। इससे तुम सन्तान के विषय में अपना मनोरथ पा सकोगे"।।३८-४२।।

ततो मद्वचनादग्निगङ्गां गत्वा महेश्वरम्। तुष्टाव नियतो वाक्यैः स्तुतिभिर्वेदसम्मितैः॥४३॥

तब मेरे वचन को मानकर अग्नि गौतमी गंगा तट पर गये तथा वहां पर नित्य वेदसम्मत स्तुतिवचन से महेश्वर का स्तव करने लगे।।४३।।

अग्निरुवाच

विश्वस्य जगतो धाता विश्वमूर्तिर्निरञ्जनः।
आदिकर्ता स्वयंभूश्च तं नमामि जगत्पतिम्॥४४॥
योऽग्निर्भूत्वा संहरति स्रष्टा वै जलरूपतः।
सूर्यरूपेण यः पाति तं नमामि च त्र्यम्बकम्॥४५॥

अग्निदेव कहते हैं—जो समस्त जगत् का पालन करने वाले, विश्वमूर्त्ति, निरंजन, आदिकर्त्ता, स्वयम्भु हैं, मैं उन जगत्पति शिव को प्रणाम करता हूं! जो (प्रलयकाल में) अग्नि होकर संहार करते हैं, जलरूपेण सृष्टि करते हैं, सूर्यरूप से जगत्पालन करते हैं, मैं उन त्र्यम्बक शिव को प्रणाम करता हूं!।।४४-४५।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाननन्तः शम्भुरव्ययः। वरेण च्छन्दयामास पावकं सुरपूजितम्॥४६॥

स विनीतः शिवं प्राह तव वीर्यं मयि स्थितम्।
तेन जातः सुतो रम्यः सुवर्णो लोकविश्रुतः॥४७॥
तथा सुवर्णा पुत्री च तस्मादेव जगत्प्रभो।
अन्योन्यवीर्यसङ्गाच्च तद्दोषादुभयं त्विदम्॥४८॥
व्यभिचारात्सदोषं च अपत्यमभवच्छिव।
शापं ददुः सुराः सर्वे तयोः शान्तिं कुरु प्रभो॥४९॥

तदग्निवचनाच्छम्भुः प्रोवाचेदं शुभोदयम्॥५०॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् भगवान् अव्यय अनन्त शंभु ने प्रसन्नता पूर्वक सुरपूजित अग्निदेव को वर प्रदान किया। अग्नि ने अत्यन्त विनय के साथ शंकर से कहा—"आपका जो वीर्य मुझमें शेष रह गया था, उसी के द्वारा यह लोकप्रसिद्ध रम्य आकृति पुत्र सुवर्ण जन्मा था। उसी से हे जगत्प्रभु! पुत्री सुवर्णा भी जन्मी। अन्यान्य वीर्य के मिश्रण (पारस्परिक मेरे तथा आपके) जनित दोष से ये दोनों सन्तान व्याभिचार रूपी दोषयुक्त हो गये। हे शिव! इन दोषयुक्त सन्तानों को देवताओं ने शाप प्रदान किया। हे प्रभो! आप इस देवशाप की शान्ति का विधान करिये।" अग्नि की प्रार्थना सुनकर शंभुदेव ने यह शुभोदय वाक्य कहा—॥४६-५०॥

शम्भुरुवाच

मद्वीर्यादभवत्त्वतः सुवर्णो भूरिविक्रमः। समग्रा ऋद्धयः सर्वाः सुवर्णेऽस्मिन्समाहिताः॥५१॥

भविष्यन्ति न सन्देहो वह्ने शृणु वचो मम।
त्रयाणामपि लोकानां पावनः स भविष्यति॥५२॥

स एव चामृतं लोके स एव सुरवल्लभः। स एव भुक्तिमुक्ती च स एव मखदक्षिणा॥५३॥

स एव रूपं सर्वस्य गुरूणामप्यसौ गुरुः। वीर्यं श्रेष्ठतमं विद्याद्वीर्यं मत्तो यदुत्तमम्॥५४॥

विशेषतस्त्वयि क्षिप्तं तस्य का स्याद्विचारणा।
हीनं तेन विना सर्वं सम्पूर्णास्तेन सम्पदः॥५५॥
जीवन्तोऽपि मृताः सर्वे सुवर्णेन विना नराः।
निर्गुणोऽपि धनी मान्यः सगुणोऽप्यधनो नहि॥५६॥

भगवान् शंभु कहते हैं—मेरा वीर्य तुम्हारे अन्दर पहुंचा, जिससे तुम्हारे द्वारा भूरिविक्रमी सुवर्ण का जन्म हुआ। इस सुवर्ण में समस्त ऋद्धि समाहित रहेगी। यह निःसंदिग्ध है। हे वह्नि! अब मेरा कथन श्रवण करो। यह सुवर्ण त्रैलोक्य में पावन माना जायेगा। यह सुरप्रिय तथा अमृत रूप त्रैलोक्य में होगा। यह भुक्ति-मुक्तिरूपी तथा यज्ञ दक्षिणा रूपी होगा। यह स्वर्ण सबका रूप तथा सब गुरुओं का गुरु होगा। वीर्य को सर्वश्रेष्ठ वस्तु जानो। वह जो मेरा उत्तम वीर्य था, तुम्हारे अन्दर प्रक्षिप्त होकर अत्यन्त उत्तम हो गया। इस सम्बन्ध में क्या विचार करना? उसके सभाव में संसार में सब कुछ हीन होता है तथा उसके द्वारा सब कुछ पूर्ण होता है। स्वर्ण के बिना सभी मनुष्य जीवित होकर भी मृत ही हैं। गुण रहित व्यक्ति भी धनी होने पर मान्य हो जाता है, लेकिन यदि गुणी व्यक्ति धनहीन है, तब वह मान्य नहीं होता।॥५१-५६॥

तस्मान्नातः परं किञ्चित्सुवर्णाद्धि भविष्यति।
तथा चैषा सुवर्णाऽपि स्यादुत्कृष्टाऽपि चञ्चला॥५७॥

अनया वीक्षितं सर्वं न्यूनं पूर्णं भविष्यति। तपसा जपहोमैश्च येयं प्राप्या जगत्त्रये॥५८॥

तस्याः प्रभावं प्राशस्त्यमग्ने किञ्चिच्च कीर्त्यते।
सर्वत्र या तु सन्तिष्ठेदायातु विचरिष्यति॥५९॥

सुवर्णा कमला साक्षात्पवित्रा च भविष्यति।
अद्य प्रभृत्यात्मजयोस्तथा स्वैरं विचेष्टतोः॥६०॥
तथाऽपि चैतयोः पुण्यं न भूतं न भविष्यति॥६१॥

इस कारण स्वर्ण की तुलना में कुछ भी उत्तम नहीं हो सकता। तभी तुम्हारी कन्या सुवर्णा अत्यन्त उत्तम तथा चंचला रहेगी। चंचला होकर भी उत्कृष्ट कही जायेगी। उसकी दृष्टि पड़ते ही न्यूनता भी पूर्णता में बदलेगी। हे अग्नि! तीनों लोक में तप-जप-होम से प्राप्त सुवर्णा के प्रभाव तथा उसके महत्व का यत्किंचित् वर्णन मैंने किया। यह सर्वत्र अवस्थित रहेगी। सर्वत्र यातायात करेगी तथा विचरती रहेगी। यह सुवर्णा ही साक्षात् कमला है। यह पवित्र हो जायेगी। यद्यपि तुम्हारी दोनों सन्तानों में स्वेच्छाचार दोष भले ही रहे, आज से इनका जो पुण्य निर्दिष्ट किया है, वैसा पवित्र पुण्य अन्य किसी में न तो है और न तो होगा!।।५७-६१।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा ततः शम्भुः साक्षात्तत्राभवच्छिवः। लिङ्गरूपेण सर्वेषां लोकानां हितकाम्यया॥६२॥
वरान्प्राप्य सुताभ्यां व अग्निस्तुष्टोऽभवत्ततः।
स्वभर्त्रा च सुवर्णा सा धर्मेणाग्निसुता मुदा॥६३॥
वर्तयामास पुत्रोऽपि वह्ने सङ्कल्पया मुदा। एतस्मिन्नन्तरे स्वर्णामग्नेर्दुहितरं मुने॥६४॥
परिभूय च धर्मं तं शार्दूलो दानवेश्वरः। अहरद्भाग्यसौभाग्यविलासवसतिं छलात्॥६५॥
नीता रसातलं तेन सुवर्णा लोकविश्रुता।
जामाताऽग्नेः स धर्मश्च अग्निश्चैव स हव्यवाट्॥६६॥
विष्णवे लोकनाथाय स्तुत्वा चैव पुनः पुनः। कार्यविज्ञापनं चोभौ चक्रतुः प्रभविष्णवे॥६७॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहने के अनन्तर सर्वलोक हितकामना के लिये वहां लिंगरूप में भगवान् शंभु प्रत्यक्ष हो गये। अग्निदेव भी यह वर पाकर पुत्र-कन्या के सहित संतुष्ट हो गये। अग्निपुत्री सुवर्णा भी अपने पति धर्म सहित सानन्द होकर काल व्यतीत करने लगी। अग्निपुत्र सुवर्ण भी अपनी पत्नी संकल्पा सहित प्रसन्न चित्त हो गये। हे मुनि नारद! इसी समय शार्दूल दानव ने धर्म को पराजित किया तथा भाग्य-सौभाग्यनिलया लोकविश्रुता अग्निपुत्री सुवर्णा का छल पूर्वक अपहरण करके उसे रसातल में ले गया। तब अग्नि के दामाद धर्म एवं हव्यवाह अग्नि ने एक साथ लोकनाथ प्रभविष्णु-विष्णु का पुनः-पुनः स्तव करते हुये उनसे इस घटना को कहा—।।६२-६७।।

ततश्चक्रेण चिच्छेद शार्दूलस्य शिरो हरिः।
साऽनीता विष्णुना देवी सुवर्णा लोकसुन्दरी॥६८॥
महेश्वरसुता चैव अग्नेश्चैव तथा प्रिया। महेश्वराय तां विष्णुर्दर्शयामास नारद॥६९॥
प्रीतोऽभवन्महेशोऽपि सस्वजे तां पुनः पुनः।
चक्रं प्रक्षालितं यत्र शार्दूलच्छेदि दीप्तिमत्॥७०॥

चक्रतीर्थं तु विख्यातं शार्दूलं चेति तद्विदुः।
यत्र नीता सुवर्णा सा विष्णुना शङ्करान्तिकम्॥७१॥
तत्तीर्थं शाङ्करं ज्ञेयं वैष्णवं सिद्धमेव तु। यत्राऽऽनन्दमनुप्राप्तो ह्यग्निर्धर्मश्च शाश्वतः॥७२॥
आनन्दाश्रूणि न्यपतन्यत्राग्नेर्मुनिसत्तम।
आनन्देति नदी जाता तथा वै नन्दिनीति च॥७३॥
तस्याश्च सङ्गमः पुण्यो गङ्गायां तत्र वै शिवः।
तत्रैव सङ्गमे साक्षात्सुवर्णाऽद्यापि संस्थिता॥७४॥

हरि ने इस घटना को सुनने के पश्चात् चक्र से उस शार्दूल दानव का शिर काट दिया। वे अग्नि की प्रिय पुत्री महेश्वर वीर्य से उत्पन्ना लोकसुन्दरी देवी सुवर्णा को रसातल से लाये तथा उसे शंकर के समक्ष दिखाया। हे नारद! उसे देखकर शंकर ने प्रसन्नता पूर्वक उस कन्या का बारम्बार आलिंगन भी किया। शार्दूल हन्ता दीप्तिमत् विष्णुचक्र जहां पर धोया गया था, वह स्थल चक्रतीर्थ एवं शार्दूलतीर्थ के नाम से प्रख्यात हो गया। जहां पर विष्णु सुवर्णा को शंकर के पास ले गये थे, वह शांकरतीर्थ, वैष्णवतीर्थ अथवा सिद्धतीर्थ कहा गया। हे मुनिसत्तम नारद! जहां पर अग्नि तथा धर्म को सुवर्णा की प्राप्ति के कारण अत्यधिक आनन्द लाभ हुआ था, वहां अग्नि के नेत्रों से आनन्दातिरेक के कारण आनन्दाश्रु गिरे थे। वहां उसी अश्रु से आनन्दा नदी उत्पन्न हो गयी। इसका अन्य नाम है नन्दिनी। गौतमी गंगा के साथ जहां उसका संगम है, वह स्थल अतिशय पुण्यप्रद एवं मंगलप्रद है। वहां पर अभी भी सुवर्णा तथा शिव विराजमान हैं।।६८-७४।।

दाक्षायणी सैव शिवा आग्नेयी चेति विश्रुता।
अम्बिका जगदाधारा शिवा कात्यायनीश्वरी॥७५॥
भक्ताभीष्टप्रदा नित्यमलङ्कृत्योभयं तटम्। तपस्तेपे यत्र चाग्निस्तत्तीर्थं तु तपोवनम्॥७६॥
एवमादीनि तीर्थानि तीरयोरुभयोर्मुने। तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम्॥७७॥
उत्तरे चैव पारे च सहस्राणि चतुर्दश। दक्षिणे च तथा पारे सहस्राण्यथ षोडश॥७८॥
तत्र तत्र च तीर्थानि साभिज्ञानानि सन्ति वै।
दामानि च पृथक् सन्ति संक्षेपात्तन्मयोच्यते॥७९॥
एतानि यश्च शृणुयाद्यश्च वा पठति स्मरेत्।
सर्वेषु तत्र काम्येषु परिपूर्णो भवेन्नरः॥८०॥
एतद्वृत्तं तु यो ज्ञात्वा तत्र स्नानादिकं चरेत्।
लक्ष्मीवाञ्जायते नित्यं धर्मवांश्च विशेषतः॥८१॥
अब्जकात्पश्चिमे तीर्थं तच्छार्दूलमुदाहृतम्।
वाराणस्यादितीर्थेभ्यः सर्वेभ्यो ह्यधिकं भवेत्॥८२॥
तत्र स्नात्वा पितृन्देवान्वदन्ते तर्पयत्यपि। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥८३॥

तपोवनाच्च शार्दूलान्मध्ये तीर्थान्यशेषतः।
तस्यैकैकस्य माहात्म्यं न केनाप्यत्र वर्ण्यते॥८४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपोवननन्दिनीसङ्गमेश्वरदेवीदाक्षायणीसिद्धेश्वरवैष्णवशार्दूलाग्नि-चक्रतीर्थादित्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥५९॥

वे दाक्षायणी, शिवा, आग्नेयी, अम्बिका, जगदाधारा, कात्यायनी, ईश्वरी इत्यादि नामों से विख्यात हैं। वे भक्तों को अभीष्ट देने वाली तथा जनगण हेतु मंगलप्रदा भी हैं। वे गौतमी गंगा के दोनों तटों को शोभायमान करती विराजमान रहती हैं। जहां अग्नि ने तपःश्चरण किया था, वह स्थल तपोवन नाम से प्रख्यात है। हे मुनिवर नारद! ये तीर्थ वहां उभय तट पर विराजमान हैं, जहां स्नान-दान सर्वकामप्रद तथा शुभप्रद कहे गये हैं। यहां गंगा के उत्तरी तट पर चतुर्दश सहस्र तथा दक्षिणी तट पर षोडश सहस्र तीर्थ हैं। ये सभी तीर्थ अनेक विशिष्ट घटनाओं के स्मृति चिह्नरूप हैं। उनके अलग-अलग नाम भी हैं। मैंने तो मात्र कुछ ही तीर्थों का वर्णन किया है। इन सब विषय को जो सुनता है, किंवा पढ़ता है अथवा स्मरण करता है, वह व्यक्ति अपनी समस्त कामनाओं को पा लेता है। जो व्यक्ति इस वृत्तान्त को जानकर वहां स्नानादि करता है, वह सदा लक्ष्मीवान् एवं धार्मिक हो जाता है। अब्जकतीर्थ से पश्चिम वाला तीर्थ ही शार्दूलतीर्थ है। वह वाराणसी प्रभृति तीर्थों से भी पावन कहा गया है। वहां स्नान तथा देव-पितृतर्पण करने वाला सर्वपाप रहित होकर विष्णुलोक में सम्मानित होता है। तपोवनतीर्थ तथा शार्दूलतीर्थ के मध्य में अनेक तीर्थ हैं। उनमें से एक-एक के माहात्म्य का भी कोई वर्णन नहीं कर सकता!॥७५-८४॥

॥अष्टविंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त॥

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तत्रैव च वृषाकपम्। फेनायाः सङ्गमो यत्र हनूमतं तथैव च॥१॥
अब्जकं चापि यत्प्रोक्तं यत्र देवस्त्रिविक्रमः। तत्र स्नानं च दानं च पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥२॥
तत्र वृत्तान्यथाऽऽख्यास्ये गङ्गाया दक्षिणे तटे।
इन्द्रेश्वरं चोत्तरे च शृणु भक्त्या यतव्रतः॥३॥

नमुचिर्बलवानासीदिन्द्रशत्रुर्मदोत्कटः। तस्येन्द्रेणाभवद्युद्धं फेनेनेन्द्रोऽहरच्छिरः॥४॥
अपां च नमुचेः शत्रोस्तत्फेनवज्ररूपधृक्।
शिरश्छित्वा तच्च फेनं गङ्गाया दक्षिणे तटे॥५॥
न्यपतद्भूमिं भित्त्वा तु रसातलमथाऽऽविशत्।
रसातलभवं गाङ्गं वारि यद्विश्वपावनम्॥६॥
वज्रादिष्टेन मार्गेण व्यगमद्भूमिमण्डलम्। तज्जलं फेननाम्ना तु नदी फेनेति गद्यते॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—यहीं पर विख्यात इन्द्रतीर्थ, वृषाकपितीर्थ, फेनासंगमतीर्थ तथा हनुमन्ततीर्थ हैं। पूर्वकाल में जिसे मैंने अब्जकतीर्थ कहा था, वहां देवता त्रिविक्रम भी विराजित रहते हैं। वहां स्नान-दान करने वाला पुनः संसार में जन्म नहीं लेता। उक्त अब्जकतीर्थ गंगा के दक्षिण तट पर है तथा इन्द्रेश्वरतीर्थ गंगा के उत्तरी तट पर विराजित है। इसका वृत्तान्त क्रमशः कहता हूं। तुम संयतचित्त तथा एकाग्रता के साथ श्रवण करो। इन्द्रशत्रु नमुचि महोत्कट बली दैत्य था। इन्द्र के साथ युद्ध छिड़ने पर इन्द्र ने उसका संहार समुद्र के फेन से किया था। नमुचिहन्ता इन्द्र द्वारा फेंका गया जलफेन वज्ररूपी हो गया। वह नमुचि का शिर काटता हुआ गौतमी गंगा के दक्षिण तट पर गिरा तथा भूमि को विदीर्ण करता रसातल तक चला गया। रसातल में जो विश्वपावन गंगोदक था, वह इस वज्र से बने छिद्र द्वारा पृथिवी पर आ गया। वह गंगोदक ही उक्त जलफेन के नामानुरूप फेना नदी कहलाया।।१-७।।

तस्यास्तु सङ्गमः पुण्यो गङ्गया लोकविश्रुतः। सर्वपापक्षयकरो गङ्गायमुनयोरिव॥८॥
हनूमदुपमाता वै यत्राऽऽप्लवनमात्रतः। मार्जारत्वादभून्मुक्ता विष्णुगङ्गाप्रसादतः॥९॥
मार्जारं चेति तत्तीर्थं पुरा प्रोक्तं मया तव।
हनूमतं च तत्प्रोक्तं तत्राऽऽख्यानं पुरोदितम्॥१०॥

गौतमी गंगा के साथ उस नदी का जहां संगम घटित हुआ, वह भी गंगा-यमुना संगमवत् सर्वपाप क्षयंकररूपेण जगत् विख्यात हो गया। वहां स्नान से ही हनुमान् की सौतेली माता विष्णु तथा गंगा के प्रभाव से मार्जारत्व से मुक्त हो गयीं। यही मार्जारतीर्थस्थल है। पूर्व में मैंने यह कथा तुमसे कहा था। हे निष्पाप नारद! यही हनुमन्ततीर्थ भी कहा गया है। इसका उपाख्यान पूर्वकाल में तुमसे कहा है।।८-१०।।

वृषाकपं चाब्जकं च तत्रेदं प्रयतः शृणु।
हिरण्य इति विख्यातो दैत्यानां पूर्वजो बली॥११॥
तपस्तप्त्वा सुरैः सर्वैरजेयोऽभूत्सुदारुणः। तस्यापि बलवान्पुत्रो देवानां दुर्जयः सदा॥१२॥

वृषाकपि तथा अब्जक तीर्थ का उपाख्यान अब एकाग्रता के साथ सुनो। दैत्यों का पूर्वज हिरण्य महाबली तथा प्रसिद्ध दैत्य था। वह तप द्वारा देवगण से अजेय तथा दारुण हो उठा। उसका महाशनि नामक बली पुत्र भी सदैव देवताओं से अविजित था।।११-१२।।

महाशनिरिति ख्यातस्तस्य भार्या पराजिता। तेनेन्द्रस्याभवद्युद्धं बहुकालं निरन्तरम्॥१३॥
महाशनिर्महावीर्यः सततं रणमूर्धनि। जित्वा नागेन सहितं शक्रं पित्रे न्यवेदयत्॥१४॥

बद्ध्वा हस्तिसमायुक्तं स्वसारं वीक्ष्य तां तदा।
विहाय क्रूरतां दैत्यो हिरण्याय न्यवेदयत्॥१५॥
महाशनिपिता दैत्यः पूर्वेषां पूर्ववत्तरः। शचीकान्तं तले स्थाप्य तस्य रक्षामथाकरोत्॥१६॥
महाशनिर्हरिं जित्वा जेतुं वरुणमभ्यगात्।
वरुणोऽपि महाबुद्धिः प्रादात्कन्यां महाशनेः॥१७॥

इस महाशनि की पत्नी थी अपराजिता। महाशनि तथा इन्द्र में दीर्घकालीन युद्ध छिड़ा, जिसमें महाबली महाशनि ने इन्द्र को परास्त करके उन्हें ऐरावत हाथी के साथ बन्दी बना लिया। उसने अपनी बहन इन्द्रपत्नी शची के कारण क्रूरता त्याग कर पिता हिरण्य को इन्द्र को सौंप दिया। पूर्वतन दैत्यों के पूर्वपुरुष महाशनिपिता हिरण्य ने शचीपति इन्द्र को पाताल तल में सुरक्षा के साथ रख दिया। महाशनि ने एवंविध ही इन्द्र को परास्त करके वरुण पर भी विजय पाने हेतु प्रस्थान कर दिया। महाबुद्धि वरुण ने तब अपनी कन्या महाशनि को प्रदान कर दिया था।।१३-१७।।

उदधिं स्वालयं प्रादाद्वरुणस्तु महाशनेः। तयोश्च सख्यमभवद्वरुणस्य महाशनेः॥१८॥
वारुणी चापि या कन्या सा प्रियाऽभून्महाशनेः।
वीर्येण यशसा चापि शौर्येण च बलेन च॥१९॥
महाशनिर्महादैत्यस्त्रैलोक्ये नोपमीयते। निरिन्द्रत्वं गते लोके देवाः सर्वे न्यमन्त्रयन्॥२०॥

उस समय वरुणदेव ने अपने निवास स्थल उदधि (समुद्र) को भी महाशनि को दे दिया था। इससे महाशनि के साथ वरुण का सखाभाव हो गया। वरुणपुत्री वारुणी भी महाशनि को अतीव प्रिय थी। महाशनि दैत्य वीर्य, यश, शौर्य तथा बल में त्रैलोक्य में अनुपम था। इधर समस्त लोक इन्द्र रहित हो गये। तब सभी देवताओं ने आपस में मन्त्रणा प्रारम्भ कर दिया था।।१८-२०।।

देवा ऊचुः

विष्णुरेवेन्द्रदाता स्याद्दैत्यहन्ता स एव च। मन्त्रदृग्वा स एव स्यादिन्द्रं चान्यं करिष्यति॥२१॥

देवगण कहते हैं—विष्णु ही हमें इन्द्र को प्रदान करा सकते हैं।वे ही दैत्यहन्ता, मन्त्रद्रष्टा हैं। वे अन्य किसी को भी इन्द्र बना सकते हैं।।२१।।

ब्रह्मोवाच

एवं सम्मन्त्र्य ते देवा विष्णोर्मन्त्रं न्यवेदयन्।
ममावध्यो महादैत्यो महाशनिरिति ब्रुवन्॥२२॥
प्रायाद्वारीश्वरं विष्णुः श्वशुरं वरुणं तदा। केशवो वरुणं गत्वा प्राहेन्द्रस्य पराभवम्॥२३॥
तथा त्वयैतत्कर्तव्यं यज्ञाऽऽयाति पुरन्दरः। तद्विष्णुवचनाच्छीघ्रं ययौ जलपतिर्मुने॥२४॥
सुतापतिं हिरण्यसुतं विक्रान्तं तं महाशनिम्।
अतिसम्मानितस्तेन जामात्रा वरुणः प्रभुः॥२५॥

पप्रच्छाऽऽगमनं दैत्यो विनयाच्छ्वशुरं तदा। वरुणः प्राह तं दैत्यं यदागमनकारणम्॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवगण इस प्रकार मन्त्रणा करने के अनन्तर विष्णु के यहां गये तथा उनसे समस्त वृत्तान्त कहा, तथापि विष्णु ने कहा कि "यह महाशनि दैत्य मेरे द्वारा वध्य नहीं है।" यह सुनकर विष्णु तथा सभी देवता जलपति तथा महाशनि के श्वशुर वरुण के यहां गये और उनसे इन्द्र की पराजय का घटनाक्रम कहा। विष्णु तथा देवगण ने वरुण से यह भी प्रार्थना किया कि "आप ऐसा कार्य करिये, जिससे हम पुनः पुरन्दर इन्द्र को पा सकें।" हे नारद! विष्णु का कथन सुनकर जलपति वरुण शीघ्रता पूर्वक हिरण्यदैत्य के पुत्र तथा अपनी पुत्री के पति विक्रान्त महाशनि के यहां गये। जामाता महाशनि ने अपने श्वसुर प्रभु वरुण का अत्यन्त आदर सम्मान किया और उसने विनय पूर्वक उनसे आगमन कारण पूछा। तब वरुण ने दैत्य से अपना आगमन कारण कहा—।।२२-२६।।

वरुण उवाच

इन्द्रं देहि महाबाहो यस्त्वया निर्जितः पुरा। बद्धं रसातलस्थं तं देवानामधिपं सखे॥२७॥

अस्माकं सर्वदा मान्यं देहि त्वं मम शत्रुहन्।
बद्ध्वा विमोक्षणं शत्रोर्महते यशसे सताम्॥२८॥

वरुणदेव कहते हैं—हे महाबाहु! तुमने पूर्व में देवधिप इन्द्र को पराजित करके रसातल में रख छोड़ा है। उनको मुक्त करो। हे सखे! वे हमारे लिये सदैव मान्य हैं। हे शत्रुहन्ता! शत्रु को जो बन्दी बनाकर पुनः छोड़ देता है, वह साधुओं के लिये महान् यश का हेतु हो जाता है।।२७-२८।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा कथंचित्स दैत्येशो वरुणाय तम्।
प्रादादिन्द्रं शचीकान्तं वारणेन समन्वितम्॥२९॥
स दैत्यमध्येऽतिविराजमानो, हरिं तदोवाच जलेशसन्निधौ।
सम्पूज्य चैवाथ महोपचारैर्महाशनिर्मघवन्तं बभाषे॥३०॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब महाशनि ने कहा—"यही हो" तथा वह किसी प्रकार से शचीपति को ऐरावत सहित पृथिवी पर लाया तथा उनको वरुण को सौंप दिया। तदनन्तर महाशनि ने दैत्यों के बीच विराजमान होकर जलेश के समक्ष बैठे उन मघवान् इन्द्र की पूजा महान् उपचारों से करने के अनन्तर कहा—।।२९-३०।।

महाशनिरुवाच

केन त्वमिन्द्रोऽद्य कृतोऽसि केन, वीर्यं तवेदृग्बहु भाषसे च।
त्वं सङ्गरे शत्रुभिर्बाध्यसे च, तथाऽपि चेन्द्रो भवसीति चित्रम्॥३१॥

महाशनि दैत्य कहता है—आपको किसने इन्द्र बनाया? किसके द्वारा पुनः शक्तिलाभ किया। आपके बलवीर्य की तो यह हालत है, तथापि आपके वाक्य-विन्यास तो गर्वपूर्ण हैं। आप तो शत्रु द्वारा (मेरे द्वारा) बन्दी बनाये जाकर पुनः इन्द्रत्व प्राप्त कर रहे हैं। यह विचित्र बात है।।३१।।

अथापि बद्धा पुरुषेण काचित्तस्याः पतिस्तां मोचयतीति युक्तम्।
स्त्रियोऽस्वतन्त्राः पुरुषप्रधानास्त्वं, वै पुमान्भविता शक्र साधो॥३२॥
बद्धो मया सङ्गरे वाहनेन, क्वाप्यस्त्रं ते वज्रमुद्दामशक्ति।
चिन्तारत्नं नन्दनं योषितस्ता, यशो बलं देवराजोपभोग्यम्।
सर्वं हित्वा (त्वं) किन्तु मुक्तो जलेशादाकङ्क्षसे जीवितं धिक्कृतवेदम्॥३३॥

हे इन्द्र! जब कोई स्त्री बन्दी हो जाती है, तब उसका पति ही उसे मुक्त कराता है, यह तो कोई असंगत बात ही नहीं है। नारी पराधीन होती है। वह पुरुष के अधीन है। हे साधु! तुमने तो पुरुष जन्म पाया है। तुम युद्ध में अपने वाहन के साथ कैदी बनाये गये। तुम्हारा उद्दाम शक्ति वज्र कहां रह गया? चिन्तामणि रत्न, नन्दनवन, अप्सरा समूह, देवराज्य का उपभोग, अन्य सभी विषय, तुम्हारा यश-बल कहां चला गया? तुम अब जलेश वरुण द्वारा मुक्त कराये जाकर जीवित रहना चाहते हो? तुम्हारी जीवनेच्छा को धिक्कार है।।३२-३३।।

तज्जीवनं यत्तु यशोनिधानं, स एव मृत्युर्यशसो यद्विरोधि।
एवं जानञ्शक्र कथं जलेशान्मुक्तिं प्राप्तो नैव लज्जां भजेथाः॥३४॥
त्रिविष्टपस्थः परवेष्टितः सन्सर्वैः सुरैः कान्तया वीज्यमानः।
संस्तूयमानश्च तथाऽप्सरोभिर्नूनं लज्जा ते बिभेतीति मन्ये॥३५॥
त्वं वृत्रहा नमुचेश्चापि हन्ता, पुरां भेत्ता गोत्रभिद्वज्रबाहुः।
एवं सुरास्त्वां परिपूजयन्तीत्यतो जिष्णो सर्वमेतत्त्यजस्व॥३६॥
विकारमाप्याप्यहितोद्भवं ये, जीवन्ति लोकाननुसंविशन्ति।
भवादृशां दुश्च्यवनाब्जजन्मा, कथं न हृद्भेदमवाप कर्ता॥३७॥

जो यशनिधान हो, वही तो जीवन है। यश रहित होना तो मरण है। हे इन्द्र! यह जानकर तथा जलेश्वर की कृपा से मुक्त होकर क्या तुम लज्जित नहीं हो? मुझे लगता है कि तुम स्वर्ग में रहकर देवगण से घिरे रहकर तथा कान्ताओं द्वारा चमर झलाये जाने के कारण तथा अप्सराओं से स्तुत होते हो, उस समय लज्जा भी तुमसे भयभीत हो जाती है। तुमको वृत्रघाती, नमुचिहन्ता, पर्वतों का पंख काटने वाले, वज्रबाहु कहते देवगण तुम्हारा पूजन करते हैं! लेकिन हे जिष्णु! आज से अपनी यह सब पूजा करना छोड़ दो। जो लोग तुम्हारे लोक में अपयशयुक्त होकर जीवित रहते हैं, तथा लोकसमाज में प्रविष्ट रहते हैं (मुंह छिपाकर एकान्त में नहीं जाते), ऐसे दुश्च्यवन लोगों का अवलोकन करके उनके निर्माता ब्रह्मा कमलजन्मा का हृदय विदीर्ण क्यों नहीं हो जाता?।।३४-३७।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु दैत्येशो वरुणाय महात्मने। प्रादादिन्द्रं पुनश्चेदं वचनं तदभाषत॥३८॥

ब्रह्मा कहते हैं—दैत्यराज महाशनि ने यह कहने के अनन्तर महात्मा वरुण के हाथों इन्द्र को सौंप करके पुनः कहा—।।३८।।

महाशनिरुवाच

अद्य प्रभृत्यसौ शिष्य इन्द्रः स्याद्वरुणो गुरुः।
श्वशुरो मम येन त्वं मुक्तिमाप्तोऽसि वासव॥३९॥
तथा त्वं भृत्यभावेन वर्तेथा वरुणं प्रति।
नो चेद्बद्ध्वा पुनस्त्वां वै क्षेप्स्ये चैव रसातलम्॥४०॥

महाशनि दैत्य कहता है—हे वासव, इन्द्र! जिनके द्वारा तुमको मुक्ति मिली है, वे मेरे श्वसुर वरुणदेव आज से तुम्हारे गुरु हो गये। तुम उनके शिष्य हो गये। अब से तुम वरुण के भृत्य बनकर व्यवहार करना, अन्यथा मैं तुमको पकड़ कर पुनः रसातल में फेंक दूंगा।।३९-४०।।

ब्रह्मोवाच

एवं निर्भर्त्स्य तं शक्रं हसंश्चापि पुनः पुनः। अब्रवीद्गच्छ गच्छेति वरुणं चानुमन्यतु॥४१॥
स तु प्राप्तः स्वनिलयं लज्जया कलुषीकृतः।
पौलोम्यां प्राह तत्सर्वं यत्तच्छत्रुपराभवम्॥४२॥

ब्रह्मा कहते हैं—महाशनि ने हंसते हुये इन्द्र से इस प्रकार बारम्बार भर्त्सना पूर्वक कहा और वरुणदेव की सेवा करने के लिये कहकर जाने के लिये कह दिया। अब इन्द्र लज्जा के कारण कलुषीकृत चित्त से अपने गृह लौट आये तथा अपनी पत्नी पुलोमपुत्री शची से अपनी पराजय के विवरण को कह दिया।।४१-४२।।

इन्द्र उवाच

एकमुक्तः कृतश्चैव शत्रुणाऽहं वरानने। निर्वापयामि येन स्वमात्मानं सुभगे वद॥४३॥

इन्द्र कहते हैं—हे वरानने! मैं शत्रु द्वारा एवंविध भर्त्सना तथा पराजय पाकर आया हूं। हे सुभगे! मेरी यह दुःखाग्नि कैसे बुझ पायेगी? यह बताओ।।४३।।

इन्द्राण्युवाच

दानवानामथोद्भूतिं शक्र मायां पराभवम्। वरदानं तथा मृत्युं जानेऽहं बलसूदन॥४४॥
तस्माद्यस्मात्तस्य मृत्युरथवापि पराभवः। जायेत शृणु तत्सर्वं वक्ष्येऽहं प्रीतये तव॥४५॥
हिरण्यस्य सुतो वीरः पितृव्यस्य सुतो बली।
तस्मान्मम स्यात्स भ्राता वरदानाच्च दर्पितः॥४६॥

इन्द्राणी कहती हैं—हे बलसूदन! मैं दानवों की उत्पत्ति, माया, उनकी पराजय, वर तथा मृत्यु कारण आदि से अवगत हूं। मैं प्रसन्नता पूर्वक आपको प्रसन्न करने के लिये वह उपाय कहती हूं, जिससे उनकी मृत्यु किंवा पराजय संभव है। महाशनि मेरे चाचा का पुत्र होने के कारण मेरा भ्राता है। वह वरदान द्वारा दर्पित है।।४४-४६।।

ब्रह्माणं तोषयामास तपसा नियमेन च। ईदृशं बलमापन्नं तपसा किं न सिध्यति॥४७॥

तस्मात्त्वया चित्तरागो विस्मयो वा कथञ्चन।
न कार्यः श्रृणु तत्रेदं कार्यं यत्तु क्रमागतम्॥४८॥

उसने तपःश्चरण से एवं नियमों से ब्रह्मा को प्रसन्न किया तथा ब्रह्मा से प्राप्त वरदान के प्रभाव से ऐसा शक्तिमान् तथा दर्पित हो गया है। तप द्वारा क्या नहीं मिलता? अतः आप उसके सम्बन्ध में चिन्तित होकर अथवा विकल चित्त होकर दुःख न करें। इसके क्रमशः प्रतिकार का उपाय श्रवण करिये।।४७-४८।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पौलोमी प्राहेन्द्रं विनयान्विता॥४९॥

यह कह कर पौलोमी शची ने विनय के साथ इन्द्र से कहा—।।४९।।

इन्द्राण्युवाच

नासाध्यमस्ति तपसो नासाध्यं यज्ञकर्मणः।
नासाध्यं लोकनाथस्य विष्णोर्भक्त्या हरस्य च॥५०॥
पुनश्चेदं मया कान्त श्रुतमस्त्यतिशोभनम्।
स्त्रीणां स्वभावं जानन्ति स्त्रिय एव सुराधिप॥५१॥
तस्माद्भूमेस्तथा चापां नासाध्यं विद्यते प्रभो।
तपो वा यज्ञकर्मादि ताभ्यामेव यतो भवेत्॥५२॥
तत्रापि तीर्थभूता तु या भूमिस्तां व्रजेद् भवान्।
तत्र विष्णुं शिवं पूज्य सर्वान्कामानवाप्स्यसि॥५३॥
श्रुतमस्ति पुनश्चेदं स्त्रियो याश्च पतिव्रताः। ता एव सर्वं जानन्ति धृतं ताभिश्चराचरम्॥५४॥

इन्द्राणी कहती हैं—तप द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है। यज्ञानुष्ठान द्वारा भी कुछ असाध्य नहीं है। लोकनाथ विष्णु तथा महेश्वर की भक्ति द्वारा भी कुछ असाध्य नहीं है। हे कान्त! मैंने और भी एक शोभन विषय सुना था। स्त्री स्वभाव तो केवल स्त्रियां ही जानती हैं। हे सुराधिप! भूमि तथा जल के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। तप एवं यज्ञकर्म भूमि एवं जल से ही सम्पन्न किया जाता है। इनमें भी जो तीर्थरूप भूमि है, वहां आप जाईये। वहां विष्णु-शिव की अर्चना द्वारा आप अपनी सभी कामना प्राप्त कर सकते हैं। मैंने यह भी सुना था कि जो नारियां पतिव्रता हैं, वे समस्त सुख-दुःख का कारण जानती हैं। उन्होंने ही चराचर धारण किया है।।५०-५४।।

पृथिव्यां सारभूतं स्यात्तन्मध्ये दण्डकं वनम्। तत्र गङ्गा जगद्धात्री तत्रेशं पूजय प्रभो॥५५॥
विष्णुं वा जगतामीशं दीनार्तार्तिहरं विभुम्।
अनाथानामिह नृणां मज्जतां दुःखसागरे॥५६॥
हरो हरिर्वा गङ्गा वा क्वाप्यन्यच्छरणं नहि। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तोषयैतान्समाहितः॥५७॥

हे प्रभो! पृथिवी में दण्डक वन ही सारभूत स्थल है। उसमें भी जहां महानदी बह रही है, आप वहां

जाकर महेश्वर पूजन करें अथवा दीन तथा आर्त्त लोगों की आर्त्ति का हरण करने वाले सर्वार्त्तिहर जगदीश विष्णु की पूजा करिये। इस जगत् के दुःखसागर में डूब रहे लोगों का हरि-हर-गंगा के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा नहीं है। अतएव आप मेरे साथ समाहित होकर भक्ति पूर्वक सर्वप्रयत्न से इनको सन्तुष्ट करिये।।५५-५७।।

भक्त्या स्तोत्रैश्च तपसा कुरु चैव मया सह। ततः प्राप्स्यसि कल्याणमीशविष्णुप्रसादजम्॥५८॥

अज्ञात्वैकगुणं कर्म फलं दास्यति कर्मिणः।
ज्ञात्वा शतगुणां तत्स्याद्भार्यया च तदक्षयम्॥५९॥
पुंसः सर्वेषु कार्येषु भार्येवेह सहायिनी।
स्वल्पानामपि कार्याणां नहि सिद्धिस्तया विना॥६०॥

एकेन यत्कृतं कर्म तस्मादर्धफलं भवेत्। जायया तु कृतं नाथ पुष्कलं पुरुषो लभेत्॥६१॥
तस्मादेतत्सुविदितमर्धो जाया इति श्रुतेः। श्रूयते दण्डकारण्ये सरिच्छ्रेष्ठाऽस्ति गौतमी॥६२॥

वहां मेरे साथ भक्ति पूर्वक उनका स्तव एवं तप करिये। इससे ईश्वर शिव तथा विष्णु की कृपा से आप कल्याणलाभ कर सकेंगे। फल को जाने बिना जो कर्म किया जाता है, उसका फल मात्र एक गुना मिलता है। फल जानकर कर्म करने से सौ गुना फललाभ होता है। पत्नी के साथ कर्मानुष्ठान करने पर वह कर्म अक्षय फलप्रद हो जाता है। इहलोक में पत्नी ही पुरुष के सभी कार्यों में सहायक होती है। भार्या के बिना कर्म करने से छोटे कार्यों में भी सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। अकेले कर्म करने वाले पुरुष को आधा फल मिलता है, लेकिन पत्नी के साथ (धर्मकार्य) करने पर प्रभूत फललाभ होता है। तभी पत्नी को पति का आधा अंग कहते हैं (यह आपको भी ज्ञात है) दण्डकवन में सरितश्रेष्ठा गौतमी हैं।।५८-६२।।

अशेषाघप्रशमनी सर्वाभीष्टप्रदायिनी। तस्माद्गच्छ मया तत्र कुरु पुण्यं महाफलम्॥६३॥
ततःशत्रून्निहत्याऽऽजौ महत्सुखमवाप्स्यसि॥६४॥

ऐसा सुना गया है कि अशेष पापों का प्रशमन करने वाली तथा सभी अभीष्ट प्रदातृ है। अतः मेरे ही साथ आप भी वहां चल कर महाफलप्रद पुण्य अनुष्ठान करें। इससे आप युद्ध में शत्रुवध करके महत् सुख लाभ कर सकेंगे।।६३-६४।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स गुरुणा भार्यया च शतक्रतुः
ययौ गङ्गां जगद्धात्रीं गौतमीं चेति विश्रुताम्॥६५॥
दण्डकारण्यमध्यस्थां ययौ स (दृष्ट्वा तां) प्रीतिमान्हरिः।
तपः कर्तुं मनश्चक्रे देवदेवाय शम्भवे॥६६॥
गङ्गां नत्वा तु प्रथमं स्नात्वा च स कृताञ्जलिः।
शिवैकशरणो भूत्वा स्तोत्रं चेदं ततोऽब्रवीत्॥६७॥

ब्रह्मा कहते हैं—शतक्रतु इन्द्र ने कहा—"यही हो।" तदनन्तर वे गुरु तथा पत्नी के साथ उस प्रसिद्ध

गंगा-गौतमी नदी तट पर गये। उन्होंने दण्डकारण्य के बीच स्थित उस नदी को जब देखा, तब प्रसन्न हो उठे। उन्होंने वहां देवाधिदेव शम्भु के निमित्त तप प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने सबसे पहले गंगा-गौतमी को प्रणाम किया तथा स्नान के उपरान्त हाथ जोड़कर विवेकयुक्त मन से स्तोत्र की आवृत्ति करने लगे।।६५-६७।।

इन्द्र उवाच

स्वमायया यो ह्यखिलं चराचरं, सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन्।
एकः स्वतन्त्रोऽद्वयचित्सुखात्मकः, स नः प्रसन्नोऽस्तु पिनाकपाणिः॥६८॥
न यस्य तत्त्वं सनकादयोऽपि, जानन्ति वेदान्तरहस्यविज्ञाः।
स पार्वतीशः सकलाभिलाषदाता प्रसन्नोऽस्तु ममान्धकारिः॥६९॥

देवराज इन्द्र कहते हैं—जो अपनी माया से अखिल चर-अचर का सृजन-पालन-लय करते हैं, अथच उसमें आसक्त नहीं होते, वे एक अखण्ड, अद्वितीय, चित्रूप, सुखात्मक पिनाकपाणि हमारे ऊपर प्रसन्न हो जायें। जिनके यथार्थ तत्व को वेदान्त रहस्यवेत्ता सनकादिक ब्रह्मर्षिगण भी नहीं जानते, वे सर्व अभिलाषा प्रदाता, पार्वतीपति, अन्धकशत्रु हमारे प्रति प्रसन्न हो जायें।।६८-६९।।

सृष्ट्वा स्वयंभूर्भगवान्विरिञ्चिं, भयङ्करं चास्य शिरोऽन्वपश्यत्।
छित्त्वा नखाग्रैर्नखसक्तमेतच्चिक्षेप तस्मादभवत्त्रिवर्गः॥७०॥
पापं दरिद्रं त्वथ लोभयाञ्चे मोहो विपच्चेति ततोऽप्यनन्तम्।
जातप्रभावं भवदुःखरूपं, बभूव तैर्व्याप्तमिदं समस्तम्॥७१॥
अवेक्ष्य सर्वं चकितः सुरेशो, देवीमवोचज्जगदस्तमेति।
त्वं पाहि लोकेश्वरि लोकमातरुमे शरण्ये सुभगे सुभद्रे॥७२॥
जगत्प्रतिष्ठे वरदे जय त्वं, भुक्तिः समाधिः परमा च मुक्तिः।
स्वाहा स्वधा स्वस्तिरनादिसिद्धिर्गीर्बुद्धिरासीरजरामरे त्वम्॥७३॥

जिन स्वयम्भु प्रभु ब्रह्मा की सृष्टि करने के पश्चात् उस भयंकर शिर का अवलोकन करके पुनः अपने नखाग्र से उस शिर को काट कर पुनः नख से चिपक गये उस मुण्ड को पुनः फेंका था, उसी से त्रिवर्ग उत्पन्न हो गया। उसी त्रिवर्ग से अतीव क्लेशप्रद, पाप, दरिद्रता, लोभ, याचना, मोह, विपत्ति आदि अनन्त संसार-दुःख उत्पन्न हो गये। इन दुःखों से जगत् व्याप्त हो गया। तब देवेश शिव आपने देवी से कहा—"हे सुभगे! सुभद्रे, शरण्ये, लोकेश्वरी, लोकमाता उमादेवी! तुम विनाशोन्मुख जगत् की रक्षा करो। हे जगत्प्रतिष्ठे! अजरामरे, वरदे! तुम्हारी जय हो! तुम संसार में परमा भुक्ति-मुक्ति-समाधि-स्वाहा-स्वधा-स्वस्ति-अनादि-सिद्धि-वाक् तथा बुद्धिरूपा हो। तुम अजर-अमर हो।।७०-७३।।

विद्यादिरूपेण जगत्त्रये त्वं, रक्षां करोष्येव मदाज्ञया च।
त्वयैव सृष्टं भुवनत्रयं स्याद्यतः प्रकृत्यैव तथैव चित्रम्॥७४॥
इत्येवमुक्ता दयिता हरेण, संश्लेषसंलापपरा बभूव।
श्रान्ता भवस्यार्धतनौ सुलग्ना, चिक्षेप च स्वेदजलं कराग्रैः॥७५॥

"तुम मेरी आज्ञा से इस जगत्त्रय की रक्षा व्यवस्था करती रहती हो। तुमने ही तीनों लोकों की सृष्टि किया है। तुम स्वभावतः विचित्ररूपा हो।" आप हरदेव द्वारा यह कहने पर उनकी पत्नी देवी आप प्रभु से संश्लिष्ट होकर संलाप परायणा हो गयीं तथा अपने कराग्र से उस पसीने को मार्जित करके फेंका, जो आप देवी के श्रान्त होने के कारण छलक आया था।।७४-७५।।

तस्माद्बभूव प्रथमं स धर्मो, लक्ष्मीरथो दानमथो सुवृष्टिः।
सत्त्वं सुसम्पन्नधरं सरांसि, धान्यानि पुष्पाणि फलानि चैव॥७६॥
सौभाग्यवस्तूनि वपुः सुवेषः, श्रङ्गारभाजीनि महौषधानि।
नृत्यानि गीतान्यमृतं पुराणं, श्रुतिस्मृती नीतिरथान्नपाने॥७७॥
शस्त्राणि शास्त्राणि गृहोपयोग्यान्यस्त्राणि तीर्थानि च काननानि।
इष्टानि पूर्तानि च मङ्गलानि, यानानि शुभ्राभरणासनानि॥७८॥

उस स्वेदबिन्दु से क्रमशः धर्म, लक्ष्मी, दान, सुवृष्टि तदनन्तर नाना गुण वाले विविध जन्तु अन्त में नाना सरोवर, धान्य, पुष्प, फल, सौभाग्यवस्तु, सुवेश करने वाले पदार्थ, शृंगार हेतु महौषधिसमूह, नृत्य, गीत, अम्ल, पुराण, स्मृति, श्रुति, नीति, अन्न, पेय, शस्त्र, शास्त्र, गृहोपयोगी अन्य अस्त्रोपकरण, तीर्थ, वन, इष्टकर्म, पूर्त्तकर्म (लोकोपयोगी कर्म), मंगलप्रद वस्तु, यान, शुभ्र आभूषणादि, आसन प्रभृति उत्पन्न हो गये।।७६-७८।।

भवाङ्गसंसर्गसुसम्प्रहारसुस्वेदसंलापरहःप्रकारैः ।
तथैव जातं सचराचरं च, अपापकं देवि ततश्च जातम्॥७९॥
सुखं प्रभूतं च शुभं च नित्यं, विराजि चैतत्तव देवि भावात्।
तस्मात्तु मां रक्ष जगज्जनित्रि, भीतं भयेभ्यो जगतां प्रधाने॥८०॥
एके तर्के विमुह्यन्ति लीयन्ते तत्र चापरे।
शिवशक्त्योस्तदाऽद्वैतं सुन्दरं नौमि विग्रहम्॥८१॥

हे देवी! एवंविध भवदेव (शिव) के अंगों के साथ जनित परमानन्द तथा पारस्परिक गुप्त आलाप के कारण आपके अंगों से जो स्वेदजल क्षरित हुआ था, उससे सचराचर के सभी पाप रहित विषय उद्भूत हो गये थे। आपके उस सात्विक भाव के कारण समुत्पन्न प्रभूत सुख तथा समस्त शुभ-मंगल विराजित देखे गये। हे जगत्प्रधाने! जगत् उत्पन्न करने वाली! आप ही सर्वसुखनिधान हैं। मुझ भयभीत की रक्षा करिये। कोई तर्क से मुग्ध होते हैं। कोई आपमें लीन होते हैं। अतः मैं शिव-शक्ति के इस अद्वय सुन्दर विग्रह को प्रणाम करता हूं!।।७९-८१।।

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिवः॥८२॥

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र के इस स्तव द्वारा उनके समक्ष शिव आविर्भूत होकर कहने लगे।।८२।।

शिव उवाच

किमभीष्टं वरयसे हरे वद परायणम्॥८३॥

भगवान् महेश्वर शिव कहते हैं—हे इन्द्र! तुम किस वांछित वर की कामना करते हो? उसे कहो।।८३।।

इन्द्र उवाच

बलवान्मे रिपुश्चाऽऽसी द्दर्शनैश्च शनिर्यथा। तेन बद्धस्तलं नीतः परिभूतस्त्वनेकधा॥८४॥

वाक्सायकस्तथा विद्धस्तद्वधाय त्वियं कृतिः।
तदर्थं जगतामीश येन जेष्ये रिपुं प्रभो॥८५॥

तदेव देहि वीर्यं मे यच्चान्यद्रिपुनाशनम्। जातः पराभवो यस्मात्तद्विनाशे कृते सति।
पुनर्जातमहं मन्ये वरं कीर्तिर्जयश्रियोः॥८६॥

इन्द्र कहते हैं—जिस प्रकार से देखने मात्र से जिस प्रकार शनि सबको पराभूत कर देते हैं, उसी प्रकार महाशनि नामक हमारा एक महाबली शत्रु है। मैं उसके साथ युद्ध में बांधा जाकर पाताल में ले जाया गया। उसने नाना प्रकार से मेरा अपमान किया और मुझे वाक्‌बाणों से छलनी जैसा बेध दिया। मेरा यह प्रयास उसके वध के ही लिये है। हे जगदीश्वर! तभी कहता हूं। मैं जिस उपाय से उस शत्रु पर विजयी हो सकूं, हे प्रभो! मुझे वैसा बल-वीर्य प्रदान करिये। आप शत्रुहन्तार्थ अन्य जो कुछ उपाय हो, वह कहिये। मैंने जिस शत्रु से पराजय प्राप्त किया है, उस शत्रु का नाश होना मेरा पुनर्जन्म होगा। आप मेरी कीर्त्ति तथा जयश्री हेतु वर दीजिये।।८४-८६।।

ब्रह्मोवाच

स शिवः शक्रमाहेदं न मयैकेन ते रिपुः।
वधमाप्नोति तस्मात्त्वं विष्णुमप्यव्ययं हरिम्॥८७॥

आराधस्व पौलोम्या सह देवं जनार्दनम्। लोकत्रयैकशरणं नारायणमनन्यधीः॥८८॥

ततः प्राप्स्यसि तस्माच्च मत्तश्चापि प्रियं हरे। पुनश्चोवाच भगवानादिकर्ता महेश्वरः॥८९॥

मन्त्राभ्यासस्तपो वापि योगाभ्यसनमेव च।
सङ्गमे यत्र कुत्रापि सिद्धिदं मुनयो विदुः॥९०॥

किं पुनः सङ्गमे विप्र गौतमीसिन्धुफेनयोः। गिरीणां गह्वरे यद्वा सरितामथ सङ्गमे॥९१॥

विप्रो धियैव भवति मुकुन्दाङ्घ्रिनिविष्टया।
गङ्गाया दक्षिणे तीरे आपस्तम्बो मुनीश्वरः॥९२॥

आस्ते तस्याप्यहं तोषमगमं बलसूदन। तेन त्वं भार्यया चैव तोषयस्व गदाधरम्॥९३॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह श्रवण करके शिव ने इन्द्र से कहा—एकाकी मैं तुम्हारा शत्रु नहीं मार सकूंगा।

अतः तुम अनन्यचित्तता के साथ देव नारायण विष्णु की आराधना करो। इससे हे इन्द्र! वे देव तथा मैं मिलकर तुम्हारी प्रिय प्रार्थित विजय प्राप्त कर सकेंगे। आदिदेव महेश्वर भगवान् हर पुनः कहने लगे—"किसी भी नदीसंगम पर मन्त्राभ्यास, तप, योगाभ्यास करना सिद्धिदायक होता है। यह मुनिगण को ज्ञात है। हे विप्र इन्द्र! गौतमी तथा सिन्धुफेन संगम स्थल पर, पर्वत गह्वर में, किंवा अन्य किसी भी नदी संगम पर यह सब कार्य करने पर सिद्धि मिलती है और क्या कहूं। इस विषय में अन्य कुछ कहना ही नहीं है। गंगा के दक्षिण तट पर आपस्तम्ब मुनि रहते हैं। वे विप्र मुकुन्द के चरणकमल में सन्निविष्ट बुद्धि द्वारा सिद्ध हो गये हैं। हे बलसूदन इन्द्र! मैं उनके प्रति भी प्रसन्न हो गया था। तुम पत्नी सहित गदाधर को प्रसन्न करो।।८७-९३।।

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बेन सहितो गङ्गाया दक्षिणे तटे। तुष्टाव देव प्रयतः स्नात्वा पुण्येऽथ सङ्गमे॥९४॥
फेनायाश्चैव गङ्गायास्तत्र देवं जनार्दनम्। वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैस्तपसाऽतोषयत्तदा॥९५॥
ततस्तुष्टोऽभवद्विष्णुः किं देयं चेत्यभाषत। देहि मे शत्रुहन्तारमित्याह भगवान्हरिः॥९६॥
दत्तमित्येव जानीहि तमुवाच जनार्दनः। तत्राभवच्छिवस्यैव गङ्गाविष्ण्वोः प्रसादतः॥९७॥
अम्भसा पुरुषो जातः शिवविष्णुस्वरूपधृक्।
चक्रपाणिः शूलधरः सं गत्वा तु रसातलम्॥९८॥
निजघान तदा दैत्यमिन्द्रशत्रुं महाशनिम्। सखाऽभवत्स चेन्द्रस्य अब्जकः स वृषाकपिः॥९९॥
दिविस्थोऽपि सदा चेन्द्रस्तमन्वेति वृषाकपिम्।
कुपिता प्रणयेनाभूदन्यासक्तं विलोक्य तम्।
शचीं तां सान्त्वयन्नाह शतमन्युर्हसन्निदम्॥१००॥

ब्रह्मा कहते हैं—शिव के आदेशानुरूप इन्द्र ने तब पावन गौतमी गंगा-फेना के संगम पर स्नानोपरान्त गंगा के दक्षिण तट पर स्थित आपस्तम्ब मुनि सहित देवदेव जनार्दन का स्तव किया। उन्होंने विविध वैदिक मन्त्रों तथा तप से जनार्दन को प्रसन्न किया। इससे विष्णु ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—"क्या वर प्रदान करूं?" यह सुनकर इन्द्र ने कहा—"मुझे शत्रुनाशक क्षमता दीजिये।" यह सुनकर जनार्दन ने कहा—"मैंने दे दिया। ऐसा समझो।" तदनन्तर वहीं शिव-विष्णु तथा गौतमी गंगा की कृपा से उस जल से चक्रपाणि विष्णु तथा शूलधारी शिव के समान एक पुरुष उत्पन्न हो गया। इस पुरुष ने तत्काल रसातल जाकर इन्द्र के शत्रु उस महाशनि दैत्य का वध कर दिया। वे अब्जक वृषाकपि नामक पुरुष इन्द्र के सखा हो गये। इन्द्र स्वर्ग में रहने पर भी सदैव उस वृषाकपि का अनुगमन करते रहते थे। इससे शची देवी इन्द्र को अन्यत्र आसक्त देख कर प्रणयकोप से युक्त हो गयीं। तब शतमन्यु इन्द्र हंसते हुये शची को सान्त्वना देते कहने लगे।।९४-१००।।

इन्द्र उवाच

नाहमिन्द्राणि शरणमृते सख्युर्वृषाकपेः।
वारि वाऽपि हविर्यस्य अग्नेः प्रियकरं सदा॥१०१॥

नाहमन्यत्र गन्ताऽस्मि प्रिये चाङ्गेन ते शपे।
तस्मान्नार्हसि मां वक्तुं शङ्कयाऽन्यत्र भामिनि॥१०२॥
पतिव्रता प्रिया मे त्वं धर्मे मन्त्रे सहायिनी।
सापत्या च कुलीना च त्वत्तोऽन्या का प्रिया मम॥१०३॥
तस्मात्तवोपदेशेन गङ्गां प्राप्य महानदीम्। प्रसादाद्देवदेवस्य विष्णोर्वै चक्रपाणिनः॥१०४॥
तथा शिवस्य देवस्य प्रसादाच्च वृषाकपेः।
जलोद्भवाच्च मे मित्रादब्जकाल्लोकविश्रुतात्॥१०५॥
उत्तीर्णदुःख सुभगे इत इन्द्रोऽहमच्युतः। किं न साध्यं यत्र भार्या भर्तृचित्तानुगामिनी॥१०६॥
दुष्करा तत्र नो मुक्तिः किन्त्वर्थादित्रयं शुभे।
जायैव परमं मित्रं लोकद्वयहितैषिणी॥१०७॥

देवराज इन्द्र कहते हैं—हे इन्द्राणी! मैं सखा वृषाकपि के अतिरिक्त अन्य किसी की शरण में नहीं जाता। जिस प्रकार अग्नि को हविः तथा जल, दोनों अति प्रिय है, उसी प्रकार से मैं उसके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं जाता। यह शपथ तुम्हारे अंगों का स्पर्श करके ले रहा हूं। हे भामिनी! तुम व्यर्थ शंका मत करो। तुम पतिव्रता तथा मेरी प्रिय हो। धर्मपथ तथा मन्त्रणा हेतु तुम ही मेरी सहायक हो। तुम सन्तानयुता, कुलीना हो। तुम्हारे अतिरिक्त मुझे और कौन रमणी प्रिय हो सकती है? मैंने तुम्हारी ही उपदेशात्मक मन्त्रणा द्वारा महानदी गौतमी गंगा जाकर वहां पर विष्णु एवं शिव की कृपा से तथा जल से उत्पन्न लोकविश्रुत मित्र वृषाकपि की कृपा से दुःखों से पार होकर अब अच्युत इन्द्रपद पा गया। हे सुभगे! जहां पति की अनुगामिनी पत्नी विद्यमान है, वहां कोई कार्य असाध्य नहीं रहता। हे शुभे! ऐसे पति के लिये मुक्ति भी दुर्लभ नहीं है। अर्थ-धर्म-काम की तो बात ही क्या? पुरुष के लोक-परलोक की हितकामिनी पत्नी ही परम मित्र है॥१०१-१०७॥

सा चेत्कुलीना प्रियभाषिणी च, पतिव्रता रूपवती गुणाढ्या।
सम्पत्सु चाऽऽपत्सु समानरूपा, तया ह्यसाध्यं किमिह त्रिलोक्याम्॥१०८॥
तस्मात्तव धिया कान्ते ममेदं शुभमागतम्।
इतस्तवोदितं चैव कर्तव्यं नान्यदस्ति मे॥१०९॥

यदि भार्या कुलीन, प्रियवादिनी, पतिव्रता, रूपवती तथा सुख-दुःख में समान रूप से गुणवती तथा सहायकर हो, तब ऐसी पत्नी के रहते त्रैलोक्य में क्या असाध्य है? तुम मेरी ऐसी ही पत्नी हो। हे कान्ते! तुम्हारी बुद्धिमत्ता के कारण मुझे शुभ समागम मिला है। अब से तुम्हें जो कुछ उत्तम लगे, वह करो। तुम इस प्रकार जो संकेत दोगी, वही मेरा कर्त्तव्य होगा। अन्य नहीं होगा॥१०८-१०९॥

परलोके च धर्मे च सत्पुत्रसदृशं न च। आर्तस्य पुरुषस्येह भार्यावद्भेषजं न हि॥११०॥
निःश्रेयसपदप्राप्त्यै तथा पापस्य मुक्तये। गङ्गया सदृशं नास्ति शृणु चान्यद्वरानने॥१११॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तये पापमुक्तये। शिवविष्ण्वोरनन्यत्वज्ञानान्नास्त्यत्र मुक्तये॥११२॥

तस्मात्तव धिया साध्वि सर्वमेतनमनोगतम्।
अवाप्तं च शिवाद्विष्णोर्गङ्गायाश्च प्रसादतः॥११३॥
इन्द्रत्वं मे स्थिरं चेतो मन्ये मित्रबलात्पुनः।
वृषाकपिर्मम सखा यो जातस्त्वप्सु भामिनि॥११४॥
त्वं च प्रियसखी नित्यं नान्यत्प्रियतरं मम।
तीर्थानां गौतमी गङ्गा देवानां हरिशङ्करौ॥११५॥
तस्मादेभ्यः प्रसादेन सर्वं चेप्सितमाप्तवान्।
मम प्रीतिकरं चेदं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥११६॥

परलोक तथा धर्मसाधन के सम्बन्ध में सत्पुत्र के समान अन्य कुछ नहीं है। इसी प्रकार इहलोक में आर्त्त-दुःखी पुरुष हेतु भार्यावत् अन्य भेषज (औषधि) भी नहीं है। निःश्रेयस पदलाभ तथा पापमुक्ति विषय में गंगा के समान कुछ नहीं है। हे वरानने! धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्ति तथा पापमुक्ति एवं मुक्तिलाभ के सम्बन्ध में शिव तथा विष्णु के अनन्यत्व (एकत्व) बोध की अपेक्षा उत्तम कुछ भी नहीं है। हे साध्वी! इसलिये तुम्हारी बुद्धि को मान कर मैंने शिव-विष्णु एवं गौतमी गंगा की कृपा से अपने इच्छित सभी विषयों को पा लिया। हे भामिनी! जो जल में जन्मे हैं, उन हितैषी वृषाकपि के बल से मेरा इन्द्रत्व भी स्थिर रहेगा। फलतः ये सखा वृषाकपि तथा प्रिय सखी तुम—इन दो के अतिरिक्त मेरा प्रिय कोई भी नहीं है। तीर्थों में गौतमी गंगा तथा देवताओं में हरि एवं शंकर की कृपा से मैंने सब कुछ वांछित लाभ कर लिया। ये सभी मेरे प्रियतर हैं। ये सभी तीर्थ त्रैलोक्य प्रसिद्ध हैं।।११०-११६।।

तस्मादेतद्धि याचिष्ये देवान्सर्वाननुक्रमात्। अनुमन्यन्तु ऋषयो गङ्गा च हरिशङ्करौ॥११७॥
इन्द्रेश्वरे चाब्जके च उभयोस्तीरयोः सुराः। एकत्र शङ्करो देवो ह्यपरत्र जनार्दनः॥११८॥
पावयन्दण्डकारण्यं साक्षाद्विष्णुस्त्रिविक्रमः।
अन्तरे यानि तीर्थानि सर्वपुण्यप्रदानि च॥११९॥

इसलिये सभी देवगण के समक्ष, यथाक्रमेण इनके माहात्म्य के सम्बन्ध में विशेष प्रार्थना करूंगा। ऋषिगण, गंगा, हरि, शंकर, सभी मेरी प्रार्थना का अनुमोदन करें। इन्द्रेश्वर तीर्थ तथा अब्जक तीर्थ में सभी देवता निवास करें। वहां पर अर्थात् इन्द्रेश्वर में शंकर तथा अब्जक तीर्थ में जनार्दन त्रिविक्रम विष्णु एकत्र निवास करें। ये देवता दण्डकवन को पवित्र करके साक्षात् विराजमान रहें। इस बीच के जितने भी तीर्थ हैं, वे समस्त पुण्यप्रद हो जायें।।११७-११९।।

अत्र तु स्नानमात्रेण सर्वे ते मुक्तिमाप्नुयुः।
पापिष्ठाः पापतो मुक्तिमाप्नुयुर्ये च धर्मिणः॥१२०॥
तेषां तु परमा मुक्तिः पितृभिः पञ्चपञ्चभिः।
अत्र किञ्चिच्च ये दद्युरर्थिभ्यस्तिलमात्रकम्॥१२१॥

दातृभ्यो ह्यक्षयं तत्स्यात्कामदं मोक्षदं तथा। धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यवर्धनम्॥१२२॥
आख्यानं विष्णुशम्भ्वोश्च ज्ञात्वा स्नानाच्चमुक्तिदम्।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं ये शृण्वन्ति पठन्ति च॥१२३॥
पुण्यभाजो भवेयुस्ते तेभ्योऽत्रैव स्मृतिर्भवेत्।
शिवविष्ण्वोरशेषाघसङ्घविच्छेदकारिणी ।
यां प्रार्थयन्ति मुनयो विजितेन्द्रियमानसाः॥१२४॥

इनमें स्नानमात्र से सभी को मुक्ति मिले। जो पापी हैं, वे पापमुक्त हो जायें तथा जो धार्मिक हैं, उनकी पांच पूर्व पीढ़ी तथा पांच बाद वाली पीढ़ी मुक्तिलाभ करे। जो पापिष्ट हैं, वे पापमुक्ति पायें। इस तीर्थक्षेत्र में जो अर्थी लोगों (याचकों) को तिलमात्र भी दान करे, वह दाता के लिये अक्षय तथा मोक्षदायक हो जाये। विष्णु तथा शंभु सम्बन्धित यह उपाख्यान धन, आयु, यश, आरोग्यकारक हो जाये। यह जानकर इस तीर्थ स्नान द्वारा मुक्तिलाभ हो। जो इस तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण अथवा पाठ करें, उनको अतिशय पुण्यलाभ मिले। उनको इहलोक में सर्वपापनाशक विष्णु तथा शिव की स्मृति सदैव बनी रहे।१२०-१२४।।

ब्रह्मोवाच

भविष्यत्येवमेवेति तं देवा ऋषयोऽब्रुवन्।
गौतम्या उत्तरे पारे तीर्थानां मोक्षदायिनाम्॥१२५॥
देवर्षिसिद्धसेव्यानां सहस्राण्यथ सप्त वै। तथैव दक्षिणे तीरे तीर्थान्येकादशैव तु॥१२६॥
अब्जकं हृदयं प्रोक्तं गोदावर्या मुनीश्वरैः।
विश्रामस्थामीशस्य विष्णोर्ब्रह्मण एव च॥१२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गौतम्युत्तरकूलस्थेन्द्रेश्वरादिसप्तसहस्रतीर्थदक्षिणकूलस्थापस्तम्बसोमेश्वर फेनासङ्गमवृषाकपाब्जकवैष्णवहनूमत्तीर्थमाजरित्याद्येकादशतीर्थवर्णनं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१२९।।

गौतमीमाहात्म्ये षष्टितमोऽध्यायः।।६०।।

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र की इस प्रार्थना द्वारा देवता तथा ऋषिगण ने "ऐसा ही हो" कहा। यहां गौतमी के उत्तर तट पर स्थित देवता-ऋषि-सिद्धगण सेवित सात हजार तीर्थ तथा दक्षिण तट पर ग्यारह तीर्थ विराजित हैं। ऋषियों ने इसमें से अब्जक तीर्थ को गोदावरी का हृदय कहा है। यहां विष्णु-ब्रह्मा तथा ईश्वर शिव सदा विराजित हैं।।१२५-१२७।।

।।एकोनत्रिंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

आपस्तम्ब तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। स्मरणादप्यशेषाघसङ्घविध्वंसनक्षमम्॥१॥
आपस्तम्बो महाप्राज्ञो मुनिरासीन्महायशाः। तस्य भार्याऽक्षसूत्रेति पतिधर्मपरायणा॥२॥
तस्य पुत्रो महाप्राज्ञः कर्किनामाऽथ तत्त्ववित्। तस्याऽऽश्रममनुप्राप्तो ह्यगस्त्यो मुनिसत्तमः॥३॥
तमगस्त्यं पूजयित्वा आपस्तम्बो मुनीश्वरः। शिष्यैरनुगतो धीमांस्तं प्रष्टुमुपचक्रमे॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—आपस्तम्ब नामक त्रैलोक्य विख्यात तीर्थ है। वह स्मृतिमात्र से ही अशेष पाप विध्वन्स सक्षम है। आपस्तम्ब नामक महायशस्वी महाप्राज्ञ एक मुनि थे। उनकी अक्षसूत्रा नाम वाली पातिव्रत परायण भार्या थी। वहीं कर्कि नाम वाला एक तत्वज्ञ महाप्राज्ञ पुत्र था। एक बार आपस्तम्ब के आश्रम में मुनिप्रवर अगत्स्य आये। मुनीश्वर धीमान् आपस्तम्ब ने शिष्यों के साथ अगत्स्य की पूजा करके उनसे पूछा।।१-४।।

आपस्तम्ब उवाच

त्रयाणां को नु पूज्यः स्याद्देवानां मुनिसत्तम।
भुक्तिर्मुक्तिश्च कस्माद्वा स्यादनादिश्च को भवेत्॥५॥
अनन्तश्चापि को विप्र देवानामपि दैवतम्। यज्ञैः क इज्यते देवः को वेदेष्वनुगीयते।
एवं मे संशयं छेत्तुं वदागस्त्य महामुने॥६॥

महर्षि आपस्तम्ब कहते हैं—हे मुनिप्रवर! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव में से कौन देव सर्वश्रेष्ठरूपेण पूज्य है? भुक्ति तथा मुक्ति किससे मिलती है? कौन अनादि देव है? हे विप्र! कौन अनन्त है, कौन देवगण का भी देवता है? यज्ञ द्वारा कौन आराधित होता है? वेदों में कौन स्तुत है? हे महामुनि अगत्स्य! मेरे संशय के छेदनार्थ आप इन सभी प्रश्नों का उत्तर दीजिये।।५-६।।

अगस्त्य उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रमाणं शब्द उच्यते। तत्रापि वैदिकः शब्दः प्रमाणं परमं मतः॥७॥
वेदेन गीयते यस्तु पुरुषः स परात्परः। मृतोऽपरः स विज्ञेयो ह्यमृतः पर उच्यते॥८॥
योऽमूर्तः स परो ज्ञेयो ह्यपरो मूर्त उच्यते।
गुणाभिव्याप्तिभेदेन मूर्तोऽसौ त्रिविधो भवेत्॥९॥
ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चेति एक एव त्रिधोच्यते।
त्रयाणामपि देवानां वेद्यमेकं परं हि तत्॥१०॥

एकस्य बहुधा व्याप्तिर्गुणकर्मविभेदतः। लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितयं भवेत्॥११॥
यस्तत्त्वं वेत्ति परमं स च विद्वान्न चेतरः। तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदी स उच्यते॥१२॥

ऋषि अगत्स्य कहते हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के सम्बन्ध में शब्द ही परम प्रमाण कहा गया है। इसमें भी वैदिक शब्द भी परम प्रमाण है। इस शब्दात्मक वेद में जो पुरुष गाये गये हैं, वे परात्पर हैं। जो मरणधर्मा हैं, वे अपर हैं। जो अमृत हैं, अर्थात् मरणशील नहीं हैं, वे पर शब्दवाच्य हैं। जो अमूर्त हैं, वे पर हैं। जो मूर्त हैं, वे अपर कहे गये हैं। गुणत्रय की अभिव्यक्ति के भेद से ये मूर्त पुरुष त्रिविध हो जाते हैं। वे एक ही पुरुष तीन प्रकार से कहे गये हैं। यथा—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव। इन तीनों देवगण को एक ही जानना चाहिये। गुण-कर्म भेद के कारण इस मूर्तपुरुष में ये तीन भेद हैं। वे एक पुरुष ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इस तीन प्रकार से कहे जाते हैं। इन तीन में जो एक स्थित है, जो एकमात्र वेद्य है, वही 'पर' है। एक की ही व्याप्ति गुण-कर्म भेद से अनेक रूप में होती है। तीनों लोकों के उपकार के लिये ये तीन आकृति वाले हो जाते हैं। जो इस परमतत्व को मानते हैं, वे ही विद्वान् हैं। अन्य लोग विद्वान् नहीं हैं। इनमें भी जो भेद देखता है, वह लिंगभेदी कहा गया है।।७-१२।।

प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यश्चैषां व्याहरेद्भिदम्।
त्रयाणामपि देवानां मूर्तिभेदः पृथक्पृथक्॥१३॥
वेदाः प्रमाणं सर्वत्र साकारेषु पृथक्पृथक्। निराकारं च यत्त्वेकं तत्तेभ्यः परमं मतम्॥१४॥

जो इन तीनों में भेद का उल्लेख करते हैं, उनके (इस पाप का) लिये कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। इन तीनों देवगण का मूलतः एकत्व होने पर भी इनकी मूर्त्तियां पृथक्-पृथक् हैं। इनकी पृथक्-पृथक् साकार मूर्त्तियों के सम्बन्ध में इन सबका प्रमाण वेद है। जो एक (अखण्ड) निराकार है, वह सर्व तत्वों से अतीत निरूपित किया गया है। वह इन तीनों से 'पर' है।।१३-१४।।

आपस्तम्ब उवाच

नानेन निर्णयः कश्चिन्मयाऽत्र विदितो भवेत्।
तत्राप्यत्र रहस्यं यत्तद्विमृश्याऽऽशु कीर्त्यताम्।
निःसंशयं निर्विकल्पं भाजनं सर्वसम्पदाम्॥१५॥

आपस्तम्ब कहते हैं—आपके इन उपदेशों से मुझे कोई विशेष सिद्धान्त ज्ञात नहीं हो सका। इस सम्बन्ध में जो निःसंशय, निर्विकल्प तथा सर्व सम्पत्ति पात्रभूत है, उस रहस्य की विवेचना शीघ्र करिये।।१५।।

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य भगवानगस्त्यो वाक्यमब्रवीत्॥१६॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् अगत्स्य ने यह सुनकर कहा—।।१६।।

अगस्त्य उवाच

यद्यप्येषां न भेदोऽस्ति देवानां तु परस्परम्।
तथाऽपि सर्वसिद्धिः स्याच्छिवादेव सुखात्मनः॥१७॥

प्रपञ्चस्य निमित्तं यत्तज्ज्योतिश्च परं शिवः। तमेव साधय हरं भक्त्या परमया मुने।
गौतम्यां सकलाघौघसंहर्ता दण्डके वने॥१८॥

ऋषि अगत्स्य कहते हैं—यद्यपि इन देवत्रय में कोई पारस्परिक भेद नहीं है, तथापि सुखात्मा शिव से ही सर्वसिद्धि लाभ होता है। जो इस सृष्टि प्रपञ्च के निमित्त कारण शिव हैं, वे परम ज्योति रूप हैं। हे मुनिवर! तुम परम भक्ति के साथ उन प्रभु हर की साधना करो। दण्डकवन स्थित गौतमी नदी समस्त पातकों का हरण करती है।१७-१८।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं परां प्रीतिमुपागतः। भुक्तिदो मुक्तिदः पुंसां साकारोऽथ निराकृतिः॥१९॥
सृष्ट्याकारस्ततः शक्तः पालनाकार एव च। दाता च हन्ति सर्वं यो यस्मादेतत्समाप्यते॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अगत्स्य ऋषि का कथन सुनकर आपस्तम्ब को परम प्रसन्नता हो गयी। मनुष्यगण को वे ही भुक्ति भी देते हैं। वे साकार होकर भी निराकार हैं। वे सृष्टि करने वाले, पालक तथा संहारक तथा सबके दाता भी हैं। उनमें ही सबकुछ की समाप्ति (लय) हो जाती है।।१९-२०।।

अगस्त्य उवाच

ब्रह्माकृतिः कर्तृरूपा वैष्णवी पालनी तथा। रुद्राकृतिर्निहन्त्री सा सर्ववेदेषु पठ्यते॥२१॥

ऋषि अगत्स्य कहते हैं—वे प्रभु ही कर्त्तारूपेण ब्रह्मा, पालकरूपेण विष्णु तथा रुद्ररूपेण संहर्त्ता हैं। सभी वेदों में यही पढ़ा गया है।।२१।।

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बस्तदा गङ्गां गत्वा स्नात्वा यतव्रतः। तुष्टाव शङ्करं देवं स्तोत्रेणानेन नारद॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अगत्स्य मुनि का यह कथन सुनकर आपस्तम्ब को परम प्रसन्नता प्राप्त हो गयी। वे तत्काल गंगास्नान करके व्रती हो गये तथा उन्होंने स्नानोपरान्त शंकर का स्तव प्रारम्भ कर दिया।।२२।।

आपस्तम्ब उवाच

काष्ठेषु वह्निः कुसुमेषु गन्धो, बीजेषु वृक्षादि वृषत्सु हेम।
भूतेषु सर्वेषु तथाऽस्ति यो वै, तं सोमनाथं शरणं व्रजामि॥२३॥
यो लीलया विश्वमिदं चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य।
यो विश्वरूपः सदसत्परो यः, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि॥२४॥
यं स्मृत्य दारिद्र्यमहाभिशापरोगादिभिर्न स्पृश्यते शरीरी।
यमाश्रिताश्चेप्सितमाप्नुवन्ति, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि॥२५॥

ऋषि आपस्तम्ब कहते हैं—जैसे काष्ठ में अग्नि, पुष्पों में गन्ध, बीज में वृक्ष, पर्वतों के पत्थरों में स्वर्ण है, तदनुरूप जो नाना रूपों में भूतसमूह में वर्त्तमान है, मैं उन भगवान् सोमनाथ का शरणागत होता हूं। जिन्होंने लीला द्वारा अनायास विश्व सृजन किया है, जो तीनों लोकों के धाता तथा विधाता हैं, विश्वरूप हैं, सत्-

असत् से अतीत हैं, मैं उन परमेश्वर की शरण ग्रहण करता हूं। जिनके स्मरणमात्र से देहधारी लोग दरिद्रता, महान् अभिशाप तथा रोगों के स्पर्श से भी दूर रहते हैं, जिनका आश्रय लेने पर सभी वांछित वस्तु आदि का लाभ होता है, मैं उन सोमेश्वर का शरणापन्न हो रहा हूं।।२३-२५।।

येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं, ब्रह्मादयस्तत्र समीहिताश्च।
एवं द्विधा येन कृतं शरीरं, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि॥२६॥
यस्मै नमो गच्छति मन्त्रपूतं, हुतं हविर्या च कृता च पूजा।
दत्तं हविर्येन सुरा भजन्ते, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि॥२७॥
यस्मात्परं नान्यदस्ति प्रशस्तं, यस्मात्परं नैव सुसूक्ष्ममन्यत्।
यस्मात्परं नो महतां महच्च, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि॥२८॥

पूर्वकाल में वेदविहित ज्ञान जिनसे पाकर ब्रह्मा आदि जहां समाहित हो गये थे तथा जिन्होंने अपने शरीर का दो (निष्काम तथा सकाम) भाग कर दिया था, मैं उन सोमेश्वर की शरण ग्रहण करता हूं। जिनके उद्देश्य से 'नमः' का उच्चारण करके सभी पूजा होती है तथा मन्त्र से पावन आहुति प्राप्त होती है, समस्त पूजा तथा हवि जिनके पास करने पर देवता ग्रहण कर लेते हैं, मैं उन सोमेश्वर देव की शरण में गया हूं। जिनसे बढ़ कर कुछ भी प्रशस्त ही नहीं है, जिनसे सूक्ष्म कुछ भी नहीं है, समस्त स्थूल में जिनसे अधिक स्थूल कुछ भी नहीं है, उन सोमेश्वर की मैं शरण ग्रहण करता हूं। जिससे परे तथा महान् कुछ भी नहीं है, उन सोमेश्वर की मैं शरण ले रहा हूं।।२६-२८।।

यस्याऽऽज्ञया विश्वमिदं विचित्रमचिन्त्यरूपं विविधं महच्च।
एकक्रियं यद्वदनुप्रयाति सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि॥२९॥
यस्मिन्विभूतिः सकलाधिपत्यं, कर्तृत्वदातृत्वमहत्त्वमेव।
प्रीतिर्यशः सौख्यमनादिधर्मः, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि॥३०॥
नित्यं शरण्यः सकलस्य पूज्यो, नित्यं प्रियो यः शरणागतस्य।
नित्यं शिवो यः सकलस्य रूपं, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि॥३१॥

जिनकी आज्ञानुरूप यह विचित्र विश्व जो विविध, महत्, अचिन्त्यरूपी है, एकक्रियावत् (सहगामी, पीछे-पीछे चलने वाला) परिचालित होता रहता है, मैं उन सोमेश्वर की शरण लेता हूं। जिन देव में समस्त विभूति, आधिपत्य, कर्तृत्व, स्वामित्व, दानशीलत्व, महत्व, प्रीति, यश, सौख्य, अनादि धर्म अन्तर्निहित रहते हैं, मैं उन सोमेश्वर देव की शरण लेता हूं। जो सदा सर्वपूज्य, सबके आश्रय, शरणागत से प्रेमयुक्त, नित्य मंगलजनक हैं, मैं उन सोमेश्वर प्रभु की शरण ग्रहण करता हूं।।२९-३१।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवानाह नारद तं मुनि (वरं वृणीष्विति चाह तम्)।
आत्मार्थं च परार्थं च आपस्तम्बोऽब्रवीच्छिवम्॥३२॥

सर्वान्कामानाप्नुयुस्ते ये स्नात्वा देवमीश्वरम्।
पश्येयुर्जगतामीशमस्त्वित्याह शिवो मुनिम्॥३३॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमापस्तम्बमुदाहृतम्। अनाद्यविद्यातिमिरव्रातनिर्मूलनक्षमम्॥३४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दक्षिणकूलस्थापस्तम्बसोमेश्वरतीर्थ-
वर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! भगवान् शिव ने इस प्रकार स्तव से प्रसन्न होकर मुनि से वर मांगने के लिये कहा। तब आपस्तम्ब ने आत्मकल्याणार्थ एवं जगत् कल्याणार्थ देवदेव से कहा—"जो लोग यहां स्नानोपरान्त देवदेव ईश्वर का दर्शन करें, उनकी सभी कामना पूर्ण हो।" तब शिव ने कहा—"ऐसा ही हो।" तभी से यह तीर्थ आपस्तम्ब तीर्थ कहा गया। यह तीर्थ अविद्या रूपी घनान्धकार को मूलतः नष्ट करने में समर्थ है।।३२-३४।।

।।त्रिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतिवर्धनम्। अशेषपापशमनं तत्र वृत्तमिदं शृणु॥१॥
तत्राऽऽख्यानमिदं त्वासीदितिहासं पुरातनम्।
सरमेति प्रसिद्धाऽस्ति नाम्ना देवशुनी मुने॥२॥
तस्याः पुत्रौ महाश्रेष्ठौ श्वानौ नित्यं जनाननु। गामिनौ पवनाहारौ चतुरक्षौ यमप्रियौ॥३॥
गा रक्षति स्म देवानां यज्ञार्थं कल्पितान्पशून्। रक्षन्तीमनुजग्मुस्ते राक्षसा दैत्यदानवाः॥४॥
रक्षन्तीं तां महाप्राज्ञाः श्वानयोर्मातरं शुनीम्।
प्रलोभयित्वा विविधैर्वाक्यैर्दानैश्च यत्नतः॥५॥
हृता गा राक्षसैः पापैः पश्वर्थे कल्पिताः शुभाः।
तत आगत्य सा देवानिदमाह क्रमाच्छुनी॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—यमतीर्थ नामक यहां जो प्रसिद्ध तीर्थ है, वह अशेष पापों का प्रशमन करने वाला तथा पितृगण की प्रसन्नता बढ़ाने वाला है। उसका वृत्तान्त सुनो। हे नारद! देवताओं की एक सरमा नामक कुतिया है। उसके दो श्रेष्ठ पुत्र थे। ये कुक्कुरद्वय वायुपान करके रहने वाले, सदा देवगण के अनुगामी, चतुर्नेत्र तथा यमप्रिय थे। यह देवशुनि सरमा (तथा उसके पुत्र) यज्ञ हेतु पालित पशुगण तथा गौओं के रक्षक थे। एक बार अतीव चतुर दैत्य-दानव-राक्षस भी इस सरमा के पास आये तथा उसे अपनी बातों और भोज्यद्रव्यों से प्रलोभित किया। इस प्रकार उसे वश में करके वे लोग यज्ञार्थ रखे गये पशुओं तथा शुभ गौओं का अपहरण करके ले गये! एवंविध कपटाचरण करके उन पापी लोगों ने उन पशुगण को अपने यज्ञार्थ रख लिया। तब वह कुतिया सरमा देवगण से कहने लगी—॥१-६॥

सरमोवाच

मां बद्ध्वा राक्षसैः पाशैस्ताडयित्वा प्रहारकैः।
नीता गां यज्ञसिद्ध्यर्थं कल्पिताः पशवः सुराः॥७॥

सरमा कहती है—हे देवताओं! राक्षसों ने मुझ पर प्रहार करके ताड़ित किया तथा बांधकर सभी यज्ञपशुओं तथा गौओं का हरण करके ले गये॥७॥

ब्रह्मोवाच

तस्या वाचं निशम्याऽऽशु सुरान्प्राह बृहस्पतिः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस सरमा का कथन सुनकर बृहस्पति ने देवताओं से कहा—॥८॥

बृहस्पतिरुवाच

इयं विकृतरूपाऽऽस्ते अस्याः पापं च लक्षये।
अस्या मतेन ता गावो नीता नान्येन हेतुना।
पापेयं सुकृतीवेति लक्ष्यते देहचेष्टितैः॥९॥

बृहस्पति कहते हैं—यह बात करते समय विकृत सी लग रही है। इससे इसका पाप लक्षित हो रहा है। इसी के सहयोग से गौओं आदि का हरण हो सका है। यह ऊपर से स्वयं को निर्दोष सी प्रदर्शित कर रही है (यह पापिष्ठा मिथ्या कह रही है)॥९॥

ब्रह्मोवाच

तद्गुरोर्वचनाच्छक्रः पदा तां प्राहरच्छुनीम्। पदाघातात्तदा तस्या मुखात्क्षीरं प्रसुस्रुवे॥१०॥
पुनः प्राह शचीभर्ता क्षीरं पीतं त्वया शुनि।
राक्षसैश्च तदा दत्तं तस्मान्नीतास्तु गा मम॥११॥

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र ने गुरु का कथन सुनकर पैरों से सरमा पर प्रहार किया। पदाघात से उसके मुख से पीया हुआ दूध मुख से बाहर निकल पड़ा। यह देख कर इन्द्र ने कहा—तुमने राक्षसों द्वारा प्रदत्त दुग्धपान किया है। अतः तुम्हारे सहयोग से ही राक्षस मेरी गौओं को ले गये हैं॥१०-११॥

सरमोवाच

नापराधोऽस्ति मे नाथ न चान्यस्यापि कस्यचित्।
नापराधो न चोपेक्षा ममास्ति त्रिदशेश्वर।
तस्माद्रुष्टोऽसि किं नाथ रिपवो बलिनस्तु ते।।१२।।

सरमा कहती है—प्रभो! मेरा अपराध नहीं है। हे देवराज! आपके ये शत्रु अतीव बली हैं। इस सम्बन्ध में मैंने कोई अपराध किंवा लापरवाही नहीं किया। आप क्यों क्रोध कर रहे हैं?।।१२।।

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा देवगुरुर्ज्ञात्वा तस्या विचेष्टितम्।
सत्यं शक्रं त्वियं दुष्टा रिपूणां पक्षकारिणी।।१३।।
ततः शशाप तां शक्रः पापिष्ठे त्वं शुनी भव।
मर्त्यलोके पापभूता अज्ञानात्पापकारिणी।।१४।।
तदेन्द्रस्य तु शापेन मानुषे सा व्यजायत। यथा शप्ता मघवता पापात्सा ह्यतिभीषणा।।१५।।
गावो या राक्षसैर्नीतास्तासामानयनाय च। यत्नं कुर्वन्सुरपतिर्विष्णावे तन्न्यवेदयत्।।१६।।

ब्रह्मा कहते हैं—तभी देवगुरु बृहस्पति ने ध्यान द्वारा सरमा का समस्त आचरण जान कर इन्द्र से कहा—"हे शक्र! वास्तव में यह कुतिया दुष्टा है तथा शत्रु का पक्ष लेने वाली है।" यह सुनकर इन्द्र ने उसे शाप देते हुये कहा—"हे पापिनी! तुम मृत्युलोक में पापभूत अज्ञान द्वारा पाप करने वाली कुतिया हो जाओ।" देवराज के द्वारा शाप दिये जाते ही वह सरमा अपने पाप के कारण तत्काल मनुष्य लोक में अति भीषणा कुतिया के रूप में जन्मी। इधर देवराज राक्षसों से अपनी गौयें लाने के उपक्रम में विष्णु के पास गये तथा उनसे समस्त प्रसंग निवेदित किया।।१३-१६।।

विष्णुर्दैत्यांश्च दनुजान्गोहर्तृंश्चैव राक्षसान्। हन्तुं प्रयत्नमकरोज्जगृहे चाहनद्धनुः।।१७।।
शार्ङ्गं यल्लोकविख्यातं दैत्यनाशनमेव च।
जितारिः पूजितो देवैः स्वयं स्थित्वा जनार्दनः।।१८।।
यत्र वै दण्डकारण्ये शार्ङ्गपाणिर्जगत्प्रभुः। तत्रस्थान्दैत्यदनुजान्राक्षसांश्च बलीयसः।।१९।।
पुनर्जघ्ने स वै विष्णुर्गा यैर्नीताश्च राक्षसैः।
तत्र वै दण्डकारण्ये शार्ङ्गपाणिरिति श्रुतः।।२०।।
युध्यमानस्ततो विष्णुर्दितिजै राक्षसैः सह। ते जग्मुर्दक्षिणामाशां विष्णोस्त्रासान्महामुने।।२१।।

तब विष्णु इन गोहर्त्ता राक्षस-दैत्य-दानवों के वधार्थ तत्पर हो गये। उन्होंने दैत्य-दानव नाशक शार्ङ्ग नामक लोक विख्यात धनु उठा कर प्रस्थान किया। वे दैत्य-दानव-राक्षस दण्डकारण्य में थे। विष्णु ने वहां जाकर शार्ङ्ग धनुष से बाणों का जाल छोड़ते हुये उनका वध प्रारम्भ कर दिया। उन गौ चोर राक्षसों को पराजित होता देख कर देवगण प्रभु विष्णु की पूजा करने लगे। तदनन्तर विष्णु का अन्य दैत्य-राक्षसादि से युद्ध छिड़

गया। हे महामुनि नारद! तब पराजित हो गये वे सभी राक्षसादि विष्णु के भय के कारण दक्षिण की ओर पलायित हो गये।।१७-२१।।

अन्वगच्छत्ततो विष्णुस्तानेव परमेश्वरः। गरुत्मता तानवाप्य शार्ङ्गमुक्तैर्मनोजवैः॥२२॥
बाणैस्तान्व्याहनद्विष्णुर्गङ्गाया उत्तरे तटे। देवारयः क्षयं नीता विष्णुना प्रभविष्णुना॥२३॥

यह देख कर परमेश्वर विष्णु ने वेगवान् गरुड़ पर बैठ कर उनका पीछा करते हुये गंगा-गौतमी के उत्तरी तट पर उन पर आक्रमण किया तथा शार्ङ्ग धनुष से छोड़े गये मनोजव बाणों के आघात से उन देवशत्रुओं का संहार कर दिया (मनोजव = मन के वेग से गतिमान)।।२२-२३।।

शार्ङ्गमुक्तैर्महावेगैः सुस्वनैश्च सुमन्त्रितः। क्षयं प्राप्ता विष्णुबाणैस्ततस्ते देवशत्रवः॥२४॥
गावो लब्धा यत्र देवैर्बाणतीर्थं तदुच्यते।
वैष्णवं लोकविदितं गोतीर्थं चेति विश्रुतम्॥२५॥
पश्वर्थे कल्पिता गावो गङ्गाया दक्षिणे तटे। प्रद्रुतास्ते सुराः सर्वे गङ्गायां संन्यवेशयन्॥२६॥
तन्मध्ये कारयामासुर्द्वीपं चैवाऽऽश्रयं गवाम्। तैर्गोभिस्तत्र गङ्गायां सुरयज्ञो व्यजायत॥२७॥
यज्ञतीर्थं तु तत्प्रोक्तं गोद्वीपं गाङ्गमध्यतः। देवानां यजनं तच्च सर्वकामप्रदं शुभम्॥२८॥

वे सभी सुरशत्रुगण शार्ङ्ग धनुष से मुक्त किये गये अभिमंत्रित तथा घोर शब्द करने वाले महावेगयुक्त बाणों से क्षणों में नष्ट हो गये। तत्पश्चात् देवगण ने वहां से अपनी गौओं को पुनः पा लिया था। तब से वह स्थान बाणतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। यही सर्वलोक विदित वैष्णवतीर्थ तथा गोतीर्थ भी कहलाया। यज्ञीय पशुरूपेण कल्पित (संरक्षित) ये गौयें गंगा के दक्षिण तट पर थीं। यह देख कर वे देवता गंगा में शीघ्र गये तथा उन्होंने उस गौतमी गंगा के मध्य में गौ निवासार्थ एक श्रेष्ठ द्वीप का निर्माण भी किया। उस पर उन गौओं को देवगण ने रक्षित किया। इन गौओं द्वारा उस गंगातट पर देवताओं ने यज्ञ भी किया था। यह द्वीप गौ द्वीप कहलाया। यज्ञस्थल यज्ञतीर्थ कहलाया। यह देव यज्ञ सर्वमनोरथपूरक था।।२४-२८।।

स्वयं मूर्तिमती भूत्वा गङ्गाशक्तिर्महाद्युते। असारापारसंसारसागरोत्तरेण तरिः॥२९॥
विश्वेश्वरी योगमाया सद्भक्ताभयदायिनी। गोरक्षं तु ततस्तीर्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे॥३०॥
तौ श्वानौ सरमापुत्रौ चतुरक्षौ यमप्रियौ। मातुः शापं चापराधं सर्वं चापि सविस्तरम्॥३१॥
निवेद्य तु यथान्यायं कार्यं चापि सुखप्रदम्।
विशापकरणं चापि पप्रच्छतुरुभौ यमम्॥३२॥
स ताभ्यां सहितः सौरिः पित्रे सूर्याय चाब्रवीत्।
श्रुत्वा सूर्यः सुतं प्राह गङ्गायां सुरसत्तम॥३३॥
लोकत्रयैकपावन्यां गौतम्यां दण्डके वने। श्रद्धया परया वत्स सुस्नातः सुसमाहितः॥३४॥
ब्रह्माणं चैव विष्णुं च मामीशं च यथाक्रमम्।
स्तुहि त्वं सर्वभावेन भृत्यौ प्रीतिमवाप्स्यतः॥३५॥

हे महाकान्तियुक्त नारद! यहां अपार संसार-सागर से पार ले जाने वाली नौकारूपा, भक्त को अभय प्रदान करने वाली योगमाया विश्वेश्वरी गंगा भी शक्तिमूर्तिधारी होकर स्वयं मूर्तरूप से स्थित हैं। गंगा के दक्षिण तट पर गोरक्षतीर्थ है। सरमा के यमप्रिय तथा चतुरक्ष नामक दोनों पुत्र कुत्तों ने माता के शाप-अपराध के विषय में विस्तृत रूप से यम से कहा और उनसे सुखप्रद शापनाशक कर्म के सम्बन्ध में प्रश्न किया। सूर्यपुत्र यम ने उन दोनों श्वान के साथ अपने पिता सूर्यदेव के पास जाकर यह सब प्रसंग तब कहा था। सूर्यदेव ने वह सब सुनकर अपने पुत्र यम से कहा—"हे पुत्र! सुरसत्तम यम! तुम दण्डकारण्य जाकर तीनों लोकों को पावन करने वाली गौतमी नदी में श्रद्धा पूर्वक स्नान करो। तदनन्तर समाहित होकर ब्रह्मा-विष्णु-शिव तथा मेरा यथाक्रमेण सर्वतोभाव से स्तव करना। इससे तुम्हारे ये दोनों श्वानभृत्य प्रसन्नता प्राप्त कर सकेंगे"।।२९-३५।।

तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा यमः प्रीतमनास्तदा। तयोश्च प्रीतये प्रायाद्देवतर्पणयोर्यमः॥३६॥
गौतम्यामघहारिण्यां सुसमाहितमानसः। तथैव तोषयामास गङ्गायां सुरसत्तमान्॥३७॥
श्वभ्यां च सहितः श्रीमान्दक्षिणाशापतिः प्रभुः।
ब्रह्माणं तोषयामास भानुं वै दक्षिणे तटे॥३८॥
ईशानमुत्तरे विष्णुं स्वयं धर्मं प्रतापवान्। दत्तवन्तो वरं श्रेष्ठं सरमाया विशापकम्।
वरानयाचत बहूंल्लोकानामुपकारकान्॥३९॥

पिता का उपदेश सुनकर यम प्रीति पूर्वक देवतागण के प्रीतिसाधक कुकुरद्वय की प्रसन्नता के लिये पापहारिणी गौतमी नदी के तट पर गये तथा उन्होंने स्नानोपरान्त समाहित होकर गंगा में तर्पणादि से देवगण को सन्तुष्ट किया। इसके पश्चात् उन्होंने सर्वाग्र में गौतमी गंगा के दक्षिण तटस्थ ब्रह्मा तथा सूर्य को तथा उत्तर तटस्थ ईशान तथा विष्णुदेव को स्वयं संतुष्ट किया। प्रतापी यम के इस कार्य से देवता प्रसन्न हो गये। उन्होंने सरमा की शापमुक्ति हेतु उनको श्रेष्ठ वर दिया। उस समय यम ने लोककल्याण हेतु अनेक वरों को भी मांगा।।३६-३९।।

यम उवाच

एषु स्नानं तु ये कुर्युर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
आत्मार्थं च परार्थं च ते कामानाप्नुयुः शुभान्॥४०॥
बाणतीर्थे तु ये स्नात्वा शार्ङ्गपाणिं स्मरन्ति वै।
तेभ्यो दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्युगे युगे॥४१॥
गोतीर्थे ब्रह्मतीर्थे वा यस्तु स्नात्वा यतव्रतः।
ब्रह्माणं तं नमस्याथ द्वीपस्यापि प्रदक्षिणम्॥४२॥
यः कुर्यात्तेन पृथिवी सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
प्रदक्षिणीकृता तत्र किञ्चिद्दत्त्वा वसु द्विजम्॥४३॥
तद्देवयजनं प्राप्य किञ्चिद्धुत्वा हुताशने। अश्वमेधादियज्ञानां फलं प्राप्नोति पुष्कलम्॥४४॥

यः सकृत्तत्र पठति गायत्रीं वेदमातरम्। अधीतास्तेन वेदा वै निष्कामो मुक्तिभाजनम्॥४५॥

यमराज कहते हैं—हे ब्रह्मा-विष्णु-महेश! यहां इन तीर्थों में जो कोई अपने लिये अथवा अन्य के कल्याणार्थ स्नान करें, उनकी सभी शुभ कामनायें सफल हों। जो लोग बाणतीर्थ में स्नानोपरान्त भगवान् शार्ङ्गधारी का स्मरण करें, युगों-युगों तक उन पर दरिद्रता जनित दुःख का आक्रमण न हो। इस गोतीर्थ तथा ब्रह्मतीर्थ में जो लोग व्रताचरण तथा स्नान करके ब्रह्मा को प्रणाम करें, गोद्वीप की प्रदक्षिणा करें, उनको वही फल मिले जो सप्तद्वीप वसुन्धरा की प्रदक्षिणा का फल है। जो कोई यहां ब्राह्मण को यत्किंचित् भी धन दान देकर उस देवयज्ञस्थल जाकर अग्नि में तनिक भी होम करे, उसे अश्वमेध यज्ञ इतना पुष्कल फल प्राप्त हो। वहीं पर जो लोग निष्काम होकर वेदमाता गायत्री का एक भी पाठ करे, उसे समग्र वेदाध्ययन का फल तथा मुक्ति की प्राप्ति हो।।४०-४५।।

स्नात्वा तु दक्षिणे कूले शक्तिं देवीं तु भक्तितः।
पूजयित्वा यथान्यायं सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥४६॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां शक्तिर्माता त्रयीमयी।
सर्वान्कामानवाप्नोति (स्नात्वाऽत्र पूजयेद्यस्तां)।
पुत्रवान्धनवान्भवेत्॥४७॥
आदित्यं भक्तितो यस्तु दक्षिणे नियतो नरः।
स्नात्वा पश्येत तेनेष्टा यज्ञा विविधदक्षिणाः॥४८॥
कूले यश्चोत्तरे चैव गङ्गाया दैत्यसूदनम्।
स्नात्वा पश्येत तं नत्वा तस्य विष्णोः परं पदम्॥४९॥
यमेश्वरं ततो यस्तु यमतीर्थे तु पूजितम्।
स्नातः पश्येति युक्तात्मा स करोत्यचिरेण हि॥५०॥
पितृणामक्षयं पुण्यं फलदं कीर्तिवर्धनम्। तत्र स्नानेन दानेन जपेन स्तवनेन च।
अपि दुष्कृतकर्माणः पितरो मोक्षमाप्नुयुः॥५१॥

जो लोग इसके दक्षिण तट पर स्नान करके भक्ति के साथ शक्तिदेवी का पूजन सम्पन्न करते हैं, उनको सर्वकामलाभ हो, त्रयीमयी शक्ति देवी ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की माता हैं। जो यहां स्नान करके उनकी पूजा करे, वह धनी तथा पुत्रवान् हो जाये। जो व्यक्ति दक्षिण तट पर एकाग्रता पूर्वक भक्ति-भाव से स्नान करके आदित्यदेव का दर्शन करे, उसके द्वारा मानों दक्षिणान्वित यज्ञ किया गया हो, ऐसा फल उसे मिले। जो व्यक्ति गंगा के उत्तरी तट पर स्नानोपरान्त दैत्यनाशक विष्णु का दर्शन तथा उनको प्रणाम करें, उनको विष्णु का परमपद लाभ हो जाये। जो व्यक्ति यमतीर्थ में स्नानोपरान्त संयमित होकर यमेश्वर का दर्शन-पूजन करे, वे शीघ्र ही पितरों को अक्षय फलप्रद पुण्य का संचय करें तथा कीर्त्तिवर्द्धन में सक्षम हो जायें। यहां स्नान, दान, जप, स्तव जो करे, उसके पितृगण भले ही दुष्कृति रहे हों, उनको मोक्ष मिले।।४६-५१।।

ब्रह्मोवाच

इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थानि त्रीणि नारद। तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम्।।५२।।

एतेषां स्मरणं पुण्यं नानाजन्माघनाशनम्।
श्रवणात्पितृभिः सार्धं पठनात्स्वकुलैः सह।।५३।।
तेषामप्यतिपापानि नाशं यान्ति ममाऽऽज्ञया।
तत्र स्नानादि यः कृत्वा किञ्चिद्दत्त्वा यतात्मवान्।।५४।।
पितृणां पिण्डदानादि कृत्वा नत्वा सुरानिमान्।
धनं धान्यं यशो वीर्यमायुरारोग्यसम्पदः।।५५।।
पुत्रान्पौत्रान्प्रियां भार्यां लब्ध्वा चान्यन्मनीषितम्।
अवियुक्तः प्रीतमना बन्धुभिश्चातिमानितः।।५६।।
नरकस्थानपि पितॄंस्तारयित्वा कुलानि च।
पावयित्वा प्रियैर्युक्तो ह्यन्ते विष्णुं शिवं स्मरेत्।
ततो मुक्तिपदं गच्छेद्देवानां वचनं यथा।।५७।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये बाणतीर्थशार्ङ्गपाणीयगोद्वीपदेवयजनब्रह्मतीर्थशक्ति-
यमादित्यसुपर्णदैत्यसूदनयमेश्वरपितृतीर्थादि त्र्यधिकाष्टसहस्रतीर्थवर्णनं
नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३१।।

गौतमीमाहात्म्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः।।६२।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! एवंविध यहां पर आठ सहस्र तीन तीर्थ हैं। इनमें स्नान-दानादि अक्षय पुण्यजनक होता है। इन तीर्थों के स्मरण से नाना जन्मार्जित पापनाशक पुण्य की उत्पत्ति होती है। इनके माहात्म्य श्रवण से पितरों के तथा पाठ से कुल के अमित पातकों का नाश मेरी आज्ञा से नष्ट हो जाता है। जो संयतचित्त मानव यहां तीर्थों में स्नानोपरान्त विप्रगण को किंचित् भी दान अर्पित करेगा तथा पितृगण को पिण्ड प्रदानोपरान्त उनको प्रणाम करेगा, वह धन, धान्य, यश, बल, आयु, आरोग्य, सम्पत्ति, पुत्र-पौत्र, प्रिय भार्या तथा अन्य अभीप्सित पाने के पश्चात् बन्धु-बान्धवगण से सम्मान पाकर निवास करेगा। वह अपने नरकस्थ पितृगण का उद्धारक, कुल पावन कर्त्ता होकर प्रियजनों के सहित अन्तकाल में भी विष्णु तथा शिव स्मरण रत रहेगा। तदनन्तर वह देववचन के अनुसार मुक्तिगामी होगा।।५२-५७।।

।।एकत्रिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यक्षिणी संगम का माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीसङ्गमं नाम तीर्थं सर्वफलप्रदम्। तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥१॥
यत्र यक्षेश्वरो देवो दर्शनाद्भुक्तिमुक्तिदः। तत्र च स्नानमात्रेण सत्रयागफलं लभेत्॥२॥
विश्वावसोः स्वसा नाम्ना पिप्पला गुरुहासिनी। ऋषीणां सत्रमगमद्गौतमीतीरवर्तिनाम्॥३॥
दृष्ट्वा तत्र ऋषीन्क्षामान्सा जहासातिगर्विता।
या गत्वाऽऽश्रावय वौषडस्तु श्रौषडिति स्थिरम्॥४॥
विस्वरेण ब्रुवतो तां ते शेपुः स्राविणी भव। ततो नद्यभवत्तत्र यक्षिणीति सुविश्रुता॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—यक्षिणी संगम नामक तीर्थ अमित फलद है। इसमें स्नान-दान से सभी कामना पूरी हो जाती हैं। इसके दर्शन मात्र से ही तथा भुक्ति-मुक्तिप्रद देव यक्षेश्वर जहां हैं, वहां स्नान मात्र से सत्र-यज्ञफल मिलता है। विश्वावसु की बहन पिप्पला अत्यन्त हंसती रहती थी। वह एक बार गौतमी तटवासी ऋषियों के सत्रक्षेत्र में गई। वहां उस अतिगर्विता पिप्पला ने उन ऋषियों को अत्यन्त दुर्बल देखा। इससे वह हंसते हुये उनके पास जाकर "बौषट्, श्रौषट्" प्रभृति अशुद्ध उच्चारण वाला पाठ करके चिढ़ाने लगी। यह देखकर ऋषियों ने कुपित होकर शाप दिया कि "तुम नदी हो जाओ।" यह सुनते ही वह यक्षिणी नाम वाली विख्यात नदी हो गयी!॥१-५॥

ततो विश्वासवसुः पूज्य ऋषीन्देवं त्रिलोचनम्।
सङ्गम्य चैव गौतम्यां तां विशापामथाकरोत्॥६॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं यक्षिणीसङ्गमं स्मृतम्। तत्र स्नानादिदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥७॥
विश्वावसोः प्रसन्नेऽभूद्यत्र शम्भुः शिवान्वितः।
शैवं तत्परमं तीर्थं दुर्गातीर्थं च विश्रुतम्॥८॥
सर्वपापौघहरणं सर्वदुर्गतिनाशनम्। सर्वेषां तीर्थमुख्यानां तद्धि सारं महामुने।
तीर्थं मुनिवरैः ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम्॥९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यक्षिणीसङ्गमदुर्गादितीर्थवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥

तत्पश्चात् विश्वावसु ने वहां आकर ऋषियों एवं त्रिनेत्र महेश्वर का पूजन किया। उन्होंने यक्षिणी नदी का संगम गौतमी नदी से कराया। इससे पिप्पला शाप रहित हो गयी। तभी से यह तीर्थ यक्षिणी संगम कहा जाने

लगा। यहां स्नान-दानादि से अभिमत कामनायें पूर्ण होती हैं। जहां प्रभु शंभु एवं देवी शिवा विश्वावसु पर प्रसन्न हो गये थे, वह परम स्थान ही शैवतीर्थ अथवा दुर्गातीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान सर्वपाप नाशक एवं सर्वदुर्गति नाशक है। हे महामुनि नारद! मनुष्यों को सर्वसिद्धि देने वाला यह तीर्थ सभी पुण्यतीर्थों का सार है। यह मुनिगण का वचन है।।६-९।।

।।द्वात्रिंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शुक्लतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। यस्य स्मरणमात्रेण सर्वकामानवाप्नुयात्।।१।।
भरद्वाज इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिकः। तस्य पैठीनसी नाम भार्या सुकुलभूषणा।।२।।
गौतमीतीरमध्यास्ते पतिव्रतपरायणा। अग्नीषोमीयमैन्द्राग्नं पुरोडाशमकल्पयत्।।३।।
पुरोडाशे श्रप्यमाणे धूमात्कश्चिदजायत। पुरोडाशं भक्षयित्वा लोकत्रितयभीषणः।।४।।

ब्रह्मा कहते हैं—जिसके स्मरण मात्र से सर्वकामना फल प्राप्त हो जाता है, वह शुक्लतीर्थ मानवों को सर्वसिद्धि देने वाला है। भरद्वाज एक विख्यात परम धार्मिक ऋषि थे। उनकी पैठीनसी नामक मधुर वचन बोलने वाली भार्या थी। ऋषि भरद्वाज इस पातिव्रत परायणा पत्नी के साथ गौतमी तट पर रहा करते थे। एक बार ऋषिभार्या ने अग्नीषोमीय (अग्नि तथा सोम देवता सम्बन्धित) तथा इन्द्राग्न (इन्द्र तथा अग्नि सम्बन्धित) पुरोडाश बनाया। यह पाक होते समय उसी की धुआं से तीनों लोकों को भय देने वाला एक राक्षस पुरोडाश खाने के लिये उत्पन्न हो गया। उसने वह पुरोडाश खा लिया।।१-४।।

यज्ञं मे ह्यत्र को हंसि कोपात्त्वमिति तं मुनिः।
प्रोवाच सत्वरं क्रुद्धो भरद्वाजो द्विजोत्तमः।
तदृषेर्वचनं श्रुत्वा राक्षसः प्रत्युवाच तम्।।५।।

यह देख कर द्विजोत्तम भरद्वाज ने क्रोधित होकर उच्च स्वर में कहा—"तुम कौन हो? यह मेरा यज्ञ क्यों नष्ट किया?" यह सुनकर राक्षस कहने लगा—।।५।।

राक्षस उवाच

हव्यघ्न इति विख्यातं भरद्वाज निबोध माम्।
सन्ध्यासुतोऽहं ज्येष्ठश्च पुनः प्राचीनबर्हिषः।।६।।

ब्रह्मणा मे वरे दत्तो यज्ञान्खाद यथासुखम्। ममानुजः कलिश्चापि बलवानतिभीषणः॥७॥

अहं कृष्णः पिता कृष्णो माता कृष्णा तथाऽनुजः।
अहं मखं हनिष्यामि यूपं छेद्मि कृतान्तकः॥८॥

राक्षस कहता है—हे भरद्वाज! मेरा नाम यज्ञघ्न है। मैं प्राचीनबर्हिस की सन्ध्या नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्र हूं। उनका मैं ज्येष्ठ पुत्र हूं। ब्रह्मदेव ने मुझे वर प्रदान किया है कि तुम यथेच्छ रूप से यज्ञ भोजन करो। मेरा छोटा भ्राता कलि अति भीषण तथा बली है। मैं, मेरे पिता, मेरी माता तथा छोटा भाई, सभी कृष्णवर्ण हैं। मैं यज्ञों को नष्ट करूंगा। यम की तरह यज्ञयूप भी भग्न करूंगा।।६-८।।

भरद्वाज उवाच

रक्ष्यतां मे त्वया यज्ञः प्रियो धर्मः सनातनः।
जाने त्वां यज्ञहन्तारं सद्द्विजं रक्ष मे क्रतुम्॥९॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—मैं तुम यज्ञहन्ता को जानता हूं। तुम सद् द्विज हो। तुम मेरे यज्ञ की रक्षा करो। सनातन धर्म सभी को प्रिय है। तुम मेरे धर्म तथा यज्ञ का रक्षण करो।।९।।

यज्ञघ्न उवाच

भरद्वाजं निबोधेदं वाक्यं मम समासतः। ब्रह्मणाऽहं पुरा शप्तो देवदानवसन्निधौ॥१०॥
ततः प्रसादितो देवो मया लोकपितामहः। अमृतैः प्रोक्षयिष्यन्ति यदा त्वां मुनिसत्तमाः॥११॥

तदा विशापो भविता हव्यघ्न त्वं न चान्यथा।
एवं करिष्यसि यदा ततः सर्वं भविष्यति।
यद्यदाकाङ्क्षितं ब्रह्मन्नैतन्मिथ्या कदाचन॥१२॥

यज्ञघ्न राक्षस कहता है—हे ऋषि भरद्वाज! संक्षेप में मेरा वाक्य सुनकर विवेचना करिये। पूर्व में देवता-दानव के समक्ष ब्रह्मा ने मुझे शाप दिया था। तदनन्तर मेरे द्वारा प्रसन्न किये जाने पर लोकपितामह ब्रह्मा ने मुझसे कहा—"जब मुनिश्रेष्ठ लोग अमृत से तुमको प्रेक्षित करेंगे, हे यज्ञघ्न! तभी तुम शाप रहित हो सकोगे। यह बात व्यर्थ नहीं होगी। हे ब्रह्मन्! भरद्वाज! मुनिगण! जब मुनिगण ऐसा करेंगे, तभी मुझे अपना आकांक्षित सब प्राप्त होगा। यह बात अन्यथा नहीं होगी।।१०-१२।।

ब्रह्मोवाच

भरद्वाजः पुनः प्राह सखा मेऽसि महामते। मखसंरक्षणं येन स्यान्मे वद करोमि तत्॥१३॥
सम्भूय देवा दैतेया ममन्थुः क्षीरसागरम्। अलभन्तामृतं कष्टात्तदस्मत्सुलभं कथम्॥१४॥
प्रीत्या यदि प्रसन्नोऽसि सुलभं यद्वदस्व तत। तदृषेर्वचनं श्रुत्वा रक्षः प्राह तदा मुदा॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—भरद्वाज ने यज्ञघ्न से तब कहा—"हे महामति! हे महामति यज्ञघ्न! तुम मेरे सखा हो गये। जिस प्रकार यह सख्यत्व तथा यज्ञ संरक्षित हो तथा मित्रता बनी रहे, वैसा कहो। मैं तदनुरूप सब करूंगा। देवताओं तथा दैत्यों ने एकत्र होकर क्षीरसागर का मंथन किया था। इससे उनको अतीव कष्ट से अमृत मिला।

वह अमृत हमें कैसे मिले? यदि तुम प्रसन्न हो, तब ऐसा उपाय कहो जो सुलभ हो।'' ऋषि की यह बात सुनकर राक्षस ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—।।१३-१५।।

अमृतं गौतमीवारि अमृतं स्वर्णमुच्यते। अमृतं गोभवं चाऽऽज्यममृतं सोम एव च॥१६॥

एतैर्मामभिषिञ्चस्व अथ वैतैस्तथा त्रिभिः।
गङ्गाया वारिणाऽऽज्येन हिरण्येन तथैव च।
सर्वेभ्योऽप्यधिकं दिव्यममृतं गौतमीजलम्॥१७॥

राक्षस कहता है—ऋषिप्रवर! गौतमी गंगा का जल अमृत है तथा स्वर्ण भी अमृत कहा जाता है। गव्यघृत भी अमृत है। यज्ञीय सोम भी अमृत ही है। इन सब अमृत से आप मेरा अभिषेक करिये। यदि ये सब एक साथ नहीं मिलते, तब गौतमी गंगा जल, स्वर्ण तथा घृत से मेरा अभिषेक करें। इन सबमें से गौतमी जल ही दिव्य अमृत है।।१६-१७।।

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य स ऋषिः परं सन्तोषमागतः। पाणावादाय गङ्गायाः सलिलामृतमादरात्॥१८॥
तेनाकरोदृषी रक्षो ह्यभिषिक्तं तदा मखे। पुनश्च यूपे च पशावृत्विक्षु मखमण्डले॥१९॥
सर्वमेवाभवच्छुक्लमभिषेकान्महात्मनः। तद्रक्षोऽपि तदा शुक्लो भूत्वोत्पन्नो महाबलः॥२०॥

यः पुरा कृष्णरूपोऽभूत्स तु शुक्लोऽभवत्क्षणात्।
यज्ञं सर्वं समाप्याथ भरद्वाजः प्रतापवान्॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सर्वसुलभ हल सुनकर भरद्वाज मुनि को परम सन्तोष प्राप्त हो गया। उन्होंने तब परम आदर के साथ हथेली की अंजलि में उस गंगा का अमृत जल लेकर उस राक्षस के मुख पर अभिषेक किया। तदनन्तर उसे यज्ञीय यूप, पशु, ऋत्विक् वर्ग में तथा उस यज्ञभूमि पर भी पूर्ववत् अभिषिक्त किया। महात्मा भरद्वाज कृत इस अभिषेक के फलस्वरूप वहां सब कुछ शुक्ल हो गया। वह महाबली राक्षस भी जो इतिपूर्व अतिकृष्ण वर्ण था, क्षणमात्र काल में शुक्लवर्ण हो गया। तब प्रतापी भरद्वाज द्वारा उस यज्ञ का समस्त कार्य सम्पन्न किया गया।।१८-२१।।

ऋत्विजोऽपि विसृज्याथ यूपं गङ्गोदकेऽक्षिपत्।
गङ्गामध्ये तद्धि यूपमद्याप्यास्ते महामते॥२२॥

अभिषिक्तं चामृतेन अभिज्ञानं तु तन्महत्। तत्र तीर्थे पुना रक्षो भरद्वाजमुवाच ह॥२३॥

तदनन्तर ऋत्विकों को विदा करने के उपरान्त भरद्वाज ने उस यज्ञयूप को गौतमी गंगा में फेंक दिया। हे महामति नारद! वह विसर्जित यूप अब भी गौतमी गंगा में विराजमान है। इस प्रकार अमृत से अभिषिक्त राक्षस ने अपनी पूर्व विस्मृत अभिज्ञता को पुनः पा लिया। उसे समस्त पूर्व वृत्तान्त गौतमी जल से अभिषिक्त होते ही याद आ गया। तब उसी तीर्थ में वह राक्षस पुनः ऋषि भरद्वाज से कहने लगा—।।२२-२३।।

राक्षस उवाच

अहं यामि भरद्वाज कृतः शुक्लस्त्वया पुनः। तस्मात्तवात्र तीर्थे ये स्नानदानादिपूजनम्॥२४॥

कुर्युस्तेषामभीष्टानि भवेयुर्यत्फलं मखे। स्मरणादपि पापानि नाशं यान्तु सदा मुने॥२५॥

राक्षस कहता है—हे भरद्वाज! मैं जा रहा हूं। आपके द्वारा मैंने शुक्लवर्ण प्राप्त कर लिया। अतः आपके इस तीर्थ में जो कोई स्नान-दान-पूजादि कृत्य सम्पन्न करेगा, उसे अभीष्ट फललाभ होगा तथा उसे यज्ञानुष्ठान का भी पुण्यलाभ होगा। हे मुनिवर! इसके स्मरण से भी समस्त पातक दूर हो जायेंगे।।२४-२५।।

ततः प्रभृति तत्तीर्थं शुक्लतीर्थमिति स्मृतम्। गौतम्यां दण्डकारण्ये स्वर्गद्वारमुपावृतम्॥२६॥
उभयोस्तीरयोः सप्त सहस्राण्यपराणि च। तीर्थानां मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम्॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शुक्लतीर्थाद्युभयतीरस्थसप्तसहस्रतीर्थवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तभी से यह तीर्थ शुक्लतीर्थ के नाम से प्रख्यात है। गौतमीगंगा दण्डकारण्य में स्वर्गद्वार उन्मुक्त करती है। यहां पर गौतमी के उभय तट पर सर्वसिद्धिप्रद सात हजार अन्य तीर्थ भी हैं।।२६-२७।।

।।त्रयस्त्रिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद॥१॥
ऋषयः सप्त विख्याता वसिष्ठप्रमुखा मुने। गौतम्यास्तीरमाश्रित्य सत्रयज्ञमुपासते॥२॥
तत्र विघ्न उपक्रान्ते रक्षोभिरतिभीषणे। मामभ्येत्याथ मुनयो रक्षःकृत्यं न्यवेदयन्॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—चक्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ के स्मरण मात्र से पापों का नाश हो जाता है। अब उसका प्रभाव श्रवण करो। हे मुनिवर! वसिष्ठ आदि प्रसिद्ध सप्तर्षिगण ने गौतमी की तीर्थभूमि का आश्रय लेकर सत्रयज्ञ का अनुष्ठान किया था। उसमें राक्षसों ने अतीव भीषण विघ्न उपस्थित कर दिया। तब उन ऋषियों ने मेरे यहां आकर राक्षस कृत उपद्रव का निवेदन किया।।१-३।।

तदाऽहं प्रमदारूपं माययाऽऽसृज्य नारद। यस्याश्च दर्शनादेव नाशं यान्त्यथ राक्षसाः॥४॥
एवमुक्त्वा तु तां प्रादामृषिभ्यः प्रमदां मुने। मद्वाक्यादृषयो मायामादाय पुनरागमन्॥५॥

अजैका या समाख्याता कृष्णलोहितरूपिणी।
मुक्तकेशीत्यभिधया साऽऽस्तेऽद्यापि स्वरूपिणी॥६॥
लोकत्रितयसम्मोहदायिनी कामरूपिणी। तद्बलात्स्वस्थमनसः सर्वे च मुनिपुङ्गवाः॥७॥
गौतमीं सरितां श्रेष्ठां पुनर्यज्ञाय दीक्षिताः। पुनस्तन्मखनाशाय राक्षसाः समुपागमन्॥८॥

हे नारद! तब मैंने माया से एक नारी की सृष्टि करके यह कहा कि इसके दर्शन मात्र से सभी राक्षस नष्ट हो जायेंगे। तब मैंने वह स्त्री ऋषियों को प्रदान कर दिया। हे मुनिवर! ऋषियों ने मेरी आज्ञा के अनुसार उस स्त्री को साथ लिया तथा यज्ञस्थल में पुनः लौट आये। वह कृष्णलोहित वर्ण वाली अजैका नामक खुले बालों वाली नारी अपने स्वरूप द्वारा तीनों लोकों को सम्मोहित करने वाली कामरूपा थी। उसकी माया के प्रभाव से वे सभी मुनिप्रवरगण नदीप्रवरा गौतमी पर आकर यज्ञ में दीक्षित हो गये। यह यज्ञकर्म होते देख कर राक्षसगण वहां यज्ञ को नष्ट करने पुनः आ गये।।४-८।।

यज्ञवाटान्तिके मायां दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवाः।
ततो नृत्यन्ति गायन्ति हसन्ति च रुदन्ति च॥९॥
माहेश्वरी महामाया प्रभावेणातिदर्पिता। तेषां मध्ये दैत्यपतिः शम्बरो नाम वीर्यवान्॥१०॥
मायारूपां तु प्रमदां भक्षयामास नारद। तदद्भुतमतीवाऽऽसीत्तन्मायाबलदर्शिनाम्॥११॥
मखे विध्वंस्यमाने तु ते विष्णुं शरणं ययुः। प्रादाद्विष्णुश्चक्रमथो मुनीनां रक्षणाय तु॥१२॥
चक्रं तद्राक्षसानाजौ दैत्यांश्च दनुजांस्तथा। चिच्छेद तद्भयादेव मृता राक्षसपुंगवाः॥१३॥

वे राक्षसवीर उस यज्ञपथ पर आ गये तथा वहां पर उस मायावी स्त्री को देखकर नृत्य, गायन, हास्य, रुदन आदि अति गर्व पूर्वक करने लगे। वहां परम पराक्रमी दैत्यराज शम्बर भी आया था। यद्यपि वह महेश्वरी महामाया अपने प्रभाव से अत्यन्त दर्पिता थी, तथापि हे नारद! उसे शम्बर ने खा लिया। यह कृत्य अतीव अद्भुत था, जिसे माया बलदर्शी राक्षसों द्वारा किया गया था। अब राक्षसों द्वारा पुनः यज्ञ विध्वन्स किये जाते देख कर देवगण तथा ऋषि लोग विष्णु की शरण में गये। उस समय विष्णु ने ऋषियों की रक्षा के लिये अपना सुदर्शन चक्र प्रेषित किया। उस चक्र ने उन यज्ञविघ्नकारी दैत्य-दानव-राक्षसगण का वध युद्धभूमि में कर दिया। अनेक राक्षस तो चक्रभय से ही प्राण रहित हो गये।।९-१३।।

ऋषिभिस्तन्महासत्रं सम्पूर्णमभवत्तदा। विष्णोः प्रक्षालितं चक्रं गङ्गाम्भोभिः सुदर्शनम्॥१४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम्। तत्र स्नानेन दानेन सत्रयागफलं लभेत्॥१५॥
तत्र पञ्च शतान्यासंस्तीर्थानां पापहारिणाम्।
तेषु स्नानं तथा दानं प्रत्येकं मुक्तिदायकम्॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थादिपञ्चशततीर्थवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३४।।

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।।६५।।

इसके पश्चात् ऋषियों का महासत्र सम्पूर्ण हो गया। विष्णु ने जहां गौतमी-गंगा के जल में चक्र प्रक्षालित किया था, तभी से वह तीर्थ चक्रतीर्थ कहा जाने लगा। वहां स्नान-दान करने से सत्रयाग इतना फल मिलता है। वहां पर पापहारी पांच सौ तीर्थ अवस्थित हैं। उनमें से प्रत्येक तीर्थ में सम्पन्न स्नान-दानादि कृत्य मुक्तिप्रद है।।१४-१६।।

।।चतुस्त्रिंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वाणी संगम तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

वाणीसङ्गममाख्यातं यत्र वागीश्वरो हरः। तत्तीर्थं सर्वपापानां मोचनं सर्वकामदम्॥१॥
तत्र स्नानेन दानेन ब्रह्महत्यादिनाशनम्। ब्रह्मविष्ण्वोश्च संवादे महत्त्वे च परस्परम्॥२॥
तयोर्मध्ये महादेवो ज्योतिर्मूर्तिरभवत्किल। तत्रैव वागुवाचेदं दैवी पुत्र तयोः शुभा॥३॥
अहमस्मि महांस्तत्र अहमस्मीति वै मिथः।
दैवी वाक्तावुभौ प्राह यस्त्वस्यान्तं तु पश्यति॥४॥
स तु ज्येष्ठो भवेत्तस्मान्मा वादं कर्तुमर्हथः। तद्वाक्याद्विष्णुरगमदधोऽहं चोर्ध्वमेव च॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—वाक् संगम नामक एक विख्यात तीर्थ है, जहां वागीश्वर हर विराजमान हैं। यह तीर्थ सर्वपापमोचक तथा सर्वकामप्रद है। वहां स्नान-दानादि से ब्रह्महत्यादि पाप भी नष्ट हो जाता है। एक बार ब्रह्मा तथा विष्णु में अपने-अपने महत्व को लेकर पारस्परिक विवाद होने लगा। तब उनके मध्य महाभाग महादेव की ज्योतिर्मय मूर्त्ति आविर्भूत हो गयी। हे पुत्र नारद! उनके इस विवाद को भंग करने के लिये दैववाणी सुनाई पड़ी। दैववाणी ने कहा—"यहां जो ज्योतिर्मय शिव हैं, जो कोई भी इनके अन्त को देख लेगा, वही श्रेष्ठ कहा जायेगा।" यह वाणी सुनकर विष्णु अधः की ओर गये तथा मैं ऊर्ध्व में गया।।१-५।।

ततो विष्णुः शीघ्रमेत्य ज्योतिःपार्श्व उपाविशत्। अप्राप्यान्तमहं प्रायां दूराद्दूरतरं मुने॥६॥
ततः श्रान्तो निवृत्तोऽहं द्रष्टुमीशं तु तं प्रभुम्।
तदैवं मम धीरासीद्दृष्टश्चान्तो मया भृशम्॥७॥
अस्य देवस्य तद्विष्णोर्मम ज्यैष्ठ्यं स्फुटं भवेत्।
पुनश्चापि मम त्वेवं मतिरासीन्महामते॥८॥
सत्यैर्वक्त्रैः कथं वक्ष्ये पीडितोऽप्यनृतं वचः। नानाविधेषु पापेषु नानृतात्पातकं परम्॥९॥

सत्यैर्वक्त्रैरसत्यां वा वाचं वक्ष्ये कथं त्विति।
ततोऽहं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृतिभीषणम्॥१०॥
कृत्वा तेनानृतं वक्ष्य इति ध्यात्वा चिरं तदा।
अब्रवं तं हरिं तत्र आसीनं जगतां प्रभुम्॥११॥
अस्य चान्तो मया दृष्टस्तेन ज्यैष्ठ्यं जनार्दन।
ममेति वदतः पार्श्वे उभौ तौ हरिशङ्करौ॥१२॥
एकरूपत्वमापन्नौ सूर्याचन्द्रमसाविव। तौ दृष्ट्वा विस्मितो भीताश्चास्तवं तावुभावपि।
ततः क्रुद्धौ जगन्नाथौ वाचं तामिदमूचतुः?॥१३॥

तदनन्तर विष्णु शीघ्र वापस आ गये। वे उस ज्योतिर्मय देवता के पार्श्व में बैठ गये। मैं उस लिंग का अन्त न पाकर और भी ऊर्ध्व में दूर-दूरतर जाने लगा। हे मुनिवर! तदनन्तर उसका कहीं अन्त न पाकर मैं श्रान्त हो गया तथा प्रभु ईशान के दर्शन कार्य से निवृत्त होकर वापस आ गया। तभी मैंने विचार किया कि मैं दृढ़ता के साथ कहूं कि मैंने इन देव का अन्त तक दर्शन कर लिया। अतः विष्णु की अपेक्षा मेरा श्रेष्ठत्व प्रतिपादित होगा। तथापि मुझे यह भी विचार आया कि पीड़ित होने पर भी सदा सत्य बोलने वाले अपने मुखों द्वारा मैं मिथ्या कैसे कह सकूंगा? अतः मैंने निश्चय किया कि मैं भीषण गर्दभ की आकृति वाला अपने एक पंचम मुख की सृष्टि करके उस मुख से यह झूठ बोलूंगा, क्योंकि नाना पापों से भी बढ़कर असत्य जनित पातक होता है। मैं अपने पूर्व वाले चारों मुख से मिथ्या न कहकर इस पंचम गर्दभाकृति मुख से मिथ्या कहूंगा। तब मैंने कहा—"जनार्दन! मैंने इनका अन्त दर्शन कर लिया है। अतः मेरी ही श्रेष्ठता है।" मैं यह कह ही रहा था, तभी पार्श्वस्थ हरि एवं शंकर, ये दोनों एकाकार हो गये, जैसे सूर्य-चन्द्र की ज्योति एकाकार हो जाती है। यह देख कर मैं विस्मित होकर उन दोनों की स्तुति करने लगा। तब जगन्नाथ ने क्रोधित होकर उस असत्य वाणी से कहा—।।६-१३।।

हरिहरावूचतुः

दुष्टे त्वं निम्नगा भूया नानृतादस्ति पातकम्॥१४॥

हरि तथा हर कहते हैं—हे दुष्टे! झूठ से बढ़ कर पाप नहीं होता। अतः तुम निम्नगा (नदी) हो जाओ।।१४।।

ब्रह्मोवाच

ततः सा विह्वला भूत्वा नदीभावमुपागता।
तद्दृष्ट्वा विस्मितो भीतस्तामब्रवमहं तदा॥१५॥
यस्मादसत्यमुक्ताऽसि ब्रह्मवाचि स्थिता सती।
तस्माददृश्या त्वं भूयाः पापरूपाऽस्यसंशयम्॥१६॥
एतच्छापं विदित्व तु तौ देवौ प्रणता तदा। विशापत्वं प्रार्थयन्ती तुष्टाव च पुनः पुनः॥१७॥

ततस्तुष्टौ देवदेवौ प्रार्थितौ त्रिदशार्चितौ। प्रीत्या हरिहरावेवं वाचं वाचमथोचतुः॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तभी वह मेरी असत्य वाणी व्याकुलित होती नदीरूपी हो गयी। इसे देख कर मैं विस्मित सा हो गया था। मैंने कुछ भयभीत होकर नदी से कहा—"तुमने ब्रह्मा में (मुझमें) अवस्थान करके भी असत्य कहा है, अतः तुम पापरूपा अदृश्य हो जाओ। इसमें संशय नहीं है।" वह असत्य वाणी उस समय दोनों देवताओं को प्रणाम करके स्तव करने लगी तथा शाप मुक्ति की प्रार्थना करने लगी। इससे देवपूजित देवदेव हरि तथा हर ने प्रसन्न होकर उस वाणी से कहा—॥१५-१८॥

हरिहरावूचतुः

गङ्गया सङ्गता भद्रे यदा त्वं लोकपावनी।
तदा पुनर्वपुस्ते स्यात्पवित्रं हि सुशोभने॥१९॥

हरि तथा हर कहते हैं—हे भद्रे! तुम जब गौतमी गंगा से संगम करोगी तब पुनः संसार में पावन हो जाओगी। हे सुशोभने! तभी तुम्हारा शरीर पवित्रता प्राप्त करेगा॥१९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा साऽपि देवी गङ्गया सङ्गताऽभवत्।
भागीरथी गौतमी च ततश्चापि स्वकं वपुः॥२०॥
देवी सा व्यगमद्ब्रह्मन्देवानामपि दुर्लभम्।
गौतम्यां सैव विख्याता नाम्ना वाणीति पुण्यदा॥२१॥
भागीरथ्यां सैव देवी सरस्वत्यभिधीयते उभयत्रापि विख्यातः सङ्गमो लोकपूजितः॥२२॥
सरस्वतीसङ्गमश्च वाणीसङ्गम एव च।
गौतम्या सङ्गता देवी वाणी वाचा सरस्वती॥२३॥
सर्वत्र पूजितं तीर्थं तत्र वाचा शिवं प्रभुम्। देवेश्वरं पूजयित्वा विशापमगमद्यतः॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब वह वाक् "ऐसा ही करूंगी" कहकर गौतमी गंगा से मिल गयी। तदनन्तर भागीरथी गौतमी से मिलकर वह वाणी अपनी पवित्र देह को प्राप्त कर सकी। वह देवदुर्लभ पवित्र देह पाकर स्वर्गगामी हो गयी। गौतमी से संगम हो जाने पर वह वाणी नामक पुण्यप्रदा विख्यात नदी हो गयी थी। वे ही पुनः इस संगम द्वारा सरस्वती कही गईं। अतः प्रसिद्ध सरस्वती संगम तथा वाणी संगम लोकपूजित तीर्थ कहे गये। वे वाक् देवी सरस्वती ने गौतमी से मिलकर यहीं वाणी से प्रभु देवेश्वर महादेव की पूजा करके शापमुक्ति लाभ किया था, अतः इसी कारण यह तीर्थ सर्वत्र पूजित हो गया॥२०-२४॥

ब्रह्मा विधूय वाग्दौष्ट्यं स्वं च धामागमत्पुनः।
तस्मात्तत्र शुचिर्भूत्वा स्नात्वा तत्र च सङ्गमे॥२५॥
वागीश्वरं ततो दृष्ट्वा तावता मुक्तिमाप्नुयात्।
दानहोमादिकं किञ्चिदुपवासादिकां क्रियाम्॥२६॥

यः कुर्यात्सङ्गमे पुण्ये संसारे न भवेत्पुनः। एकोनविंशतिशतं तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः।
नानाजन्मार्जिताशेषपापक्षयविधायिनाम्।।२७।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वाणीसङ्गमवागीश्वराद्युभयतटस्थैकोनविंशतिशततीर्थवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३५।।

गौतमीमाहात्म्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः।।६६।।

ब्रह्मा भी इसी स्थान पर अपना वाक्दोष समाप्त करके पुनः अपने लोक चले गये। इसी कारण इस संगम स्थल में स्नान से पवित्र होकर पुनः वागीश्वर का दर्शन मात्र करने से केवल उतने से ही मुक्ति मिल जाती है। जो मानव दान, होम, उपवासादि क्रिया उक्त पुण्यमय संगम पर करता है, उसका पुनः संसार में जन्म नहीं होता। यहां गौतमी के दोनों तटों पर उन्नीस सौ तीर्थों का अवस्थान है। ये सभी तीर्थ नाना जन्मों के अशेष पापों का नाश कर देते हैं।।२५-२७।।

।।पञ्चत्रिंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

विष्णुतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

विष्णुतीर्थमिति ख्यातं तत्र वृत्तमिदं शृणु। मौद्गल्य इति ख्यातो मुद्गलस्य सुतो ऋषिः।।१।।
तस्य भार्या तु जाबाला नाम्ना ख्याता सुपुत्रिणी।
पिता ऋषिस्तथा वृद्धो मुद्गलो लोकविश्रुतः।।२।।
तस्य भार्या तथा ख्याता नाम्ना भागीरथी शुभा।
स मौद्गल्यः प्रातरेव गङ्गां स्नाति यतव्रतः।।३।।
नित्यमेव त्विदं कर्म तस्याऽऽसीन्मुनिसत्तम। गङ्गातीरे कुशैर्मृद्भिः शमीपुष्पैरहर्निशम्।।४।।
गुरूदितेन मार्गेण स्वमानससरोरुहे। आवाहनं नित्यमेव विष्णोश्चक्रे स मौद्गलिः।।५।।
तेनाऽऽहूतस्त्वरन्नेति लक्ष्मीभर्ता जगत्पतिः। वैनतेयमथाऽऽरुह्य शङ्खचक्रगदाधरः।।६।।
पूजितस्तेन ऋषिणा स मौद्गल्येन यत्नतः। प्रब्रुते च कथाश्चित्रा मौद्गाल्याय जगत्प्रभुः।।७।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! तत्पश्चात् विष्णु नामक तीर्थ है, जहां की घटना सुनो। मुद्गल ऋषि के पुत्र

मौद्गल्य नामक प्रसिद्ध ऋषि थे। उनकी पत्नी जाबाला उत्तम पुत्रों वाली प्रसिद्ध शुभा स्त्री थी। वे मौद्गल्य व्रती रह कर नित्य गौतमी-गंगा में स्नान करते थे। यह उनका नित्य का कृत्य था। हे मुनिसत्तम नारद! वे ऋषि प्रतिदिन गुरु द्वारा उपदिष्ट प्रणाली से गंगा तट पर कुश, मृत्तिका तथा शमीपुष्प द्वारा अपने मानस रूपी कमल पर नित्य विष्णु का आवाहन करते थे। उनके द्वारा आहूत लक्ष्मीपति प्रभु गरुड़ारूढ़ होकर शीघ्रता के साथ चले आते थे। वे शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् उन ऋषि द्वारा यत्नतः पूजित होकर उन ऋषि से विविध वार्त्तालाप भी करते थे।।१-७।।

ततोऽपराह्णसमये विष्णुः प्राह स मौद्गलिम्।
याहि वत्स स्वभवनं श्रान्तोऽसीति पुनः पुनः॥८॥
एवमुक्तः स देवेन विष्णुना याति स द्विजः। जगत्प्रभुस्ततो याति देवैर्युक्तः स्वमन्दिरम्॥९॥
मौद्गल्योऽपि तथाऽभ्येत्य किंचिदादाय नित्यशः।
स्वमेव भवनं विद्वान्भार्यायै स्वार्जितं धनम्॥१०॥
ददाति स महाविष्णुचरणाब्जपरायणः। मौद्गल्यस्य प्रिया साऽपि पतिव्रतपरायणा॥११॥
शाकं मूलं फलं वाऽपि भर्त्राऽऽनीतं तु यत्नतः।
सुसंस्कृत्याप्यतिथीनां बालानां भर्तृरेव च॥१२॥
दत्त्वा तु भोजनं तेभ्यः पश्चाद्भुङ्क्ते यतव्रता।
भुक्तवत्स्वथ सर्वेषु रात्रौ नित्यं स मौद्गलिः॥१३॥
विष्णोः श्रुताः कथाश्चित्रास्तेभ्यो वक्त्यथ हर्षितः।
एवं बहुतिथे काले व्यतीते चातिविस्मिता।
मौद्गल्यस्य रहो भार्या भर्तारं वाक्यमब्रवीत्॥१४॥

तब जब अपराह्न हो आता, तब विष्णु इन ऋषि मौद्गल्य से कहते "हे वत्स! तुम थक गये। अब अपने घर जाओ।" पुनः-पुनः यह कहने पर वे द्विज देव विष्णु की आज्ञा लेकर अपने गृह लौट जाते। जगत्प्रभु विष्णु भी देवगण के साथ अपने मन्दिर चले जाते। वे विद्वान् महाविष्णु चरणकमल परायण मौद्गल्य भी प्रतिदिन इस प्रकार समय से लौट कर सद् उपाय द्वारा कुछ धन संग्रह करके अपनी पत्नी को प्रदान कर देते। उनकी पतिव्रत परायणा सत्यव्रता भार्या भी पति द्वारा लाये शाक, मूल, फलादि से यत्नतः पाक करके अतिथि वर्ग को, बालकों को तथा पति को परोस कर तब स्वयं भोजन करती। तब सबका भोजन सम्पन्न हो जाने पर ऋषि मौद्गल्य रात्रि में नित्य प्रति अपनी पत्नी को विष्णुदेव द्वारा कही गयी विचित्र कथा सानन्द सुनाते। इस प्रकार से दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर मौद्गल्य ऋषि की भार्या ने विस्मित होकर पति से कहा—।।८-१४।।

जाबालोवाच

यदि ते विष्णुरभ्येति समीपं त्रिदशार्चितं।
तथाऽपि कष्टमस्माकं कस्मादिति जगत्प्रभुम्॥१५॥

तत्पृच्छ त्वं महाप्राज्ञ यदाऽसौ विष्णुरेति च।
यस्मिंश्च स्मृतमात्रे तु जराजन्मरुजो मृतिः।
नाशं यान्ति कुतो दृष्टे तस्मात्पृच्छ जगत्पतिम्॥१६॥

जाबाला (ऋषिपत्नी) कहती हैं—देवताओं से अर्चित भगवान् विष्णु यदि आपके पास नित्य आते हैं, तब हमें ऐसा कष्ट क्यों है? हे महाप्राज्ञ! जब विष्णु आपके पास अब आयें, तब आप उनसे पूछिये। उनके दर्शन की तो बात ही क्या? मात्र उनका स्मरण करने से ही लोगों को जरादुःख, जन्मरूपी दुःख, रोग तथा मृत्युभय से छुटकारा मिल जाता है। आप यह सब जगत्पति से अवश्य पूछिये।।१५-१६।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा प्रियावाक्यान्मौद्गल्यो नित्यवद्धरिम्।
पूजयित्वा विनीतश्च पप्रच्छ स कृताञ्जलिः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—मौद्गल्य ने अपनी प्रिय भार्या से कहा 'ऐसा ही हो'। तब वे अन्य दिनों की तरह हरि की पूजा करने के उपरान्त उन्होंने पत्नी के वचन के अनुरूप विनीत होकर हाथ जोड़ा तथा यह पूछा।।१७।।

मौद्गल्य उवाच

त्वयि स्मृते जगन्नाथ शोकदारिद्र्यदुष्कृतम्।
नाशं याति विपत्तिर्मे त्वयि दृष्टे कथं स्थिता॥१८॥

मौद्गल्य कहते हैं—हे जगन्नाथ! आपका दर्शन होने पर शोक, दरिद्रता तथा सभी दुष्कृत सयत्न नष्ट हो जाता है, लेकिन मेरे द्वारा आपका दर्शन होते रहने पर भी मुझे विपत्ति क्यों है?।।१८।।

श्रीविष्णुरुवाच

स्वकृतं भुज्यते भूतैः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा।
न कोऽपि कस्यचित्किञ्चित्करोत्यत्र हिताहिते॥१९॥
यादृशं चोप्यते बीजं फलं भवति तादृशम्।
रसालः स्यान्न निम्बस्य बीजाज्जात्वपि कुत्रचित्॥२०॥
न कृता गौतमीसेवा नार्चितौ हरिशङ्करौ। न दत्तं यैश्च विप्रेभ्यस्ते कथं भाजनं श्रियः॥२१॥
त्वया न दत्तं किञ्चिच्च ब्राह्मणेभ्यो ममापि च। यद्दीयते तदेवेह परस्मिंश्चोपतिष्ठति॥२२॥
मृद्भिर्वार्भिः कुशैर्मन्त्रैः शुचिकर्म सदैव यत्।
करोति तस्मात्पूतात्मा शरीरस्य च शोषणात्॥२३॥

श्रीविष्णु कहते हैं—प्राणियों के स्वकृत कर्मों के अनुसार ही सुख-दुःख का भोग उनको प्राप्त होता है। इस संसार में कोई भी किसी का हित अथवा अहित नहीं कर सकता। जैसा बीज बोते हैं, उसका फल भी वही

होगा। नीम का बीज बोने से कभी भी रसाल फल (आम्रादि) उत्पन्न नहीं हो सकते। जिसने गौतमी की सेवा नहीं किया, हरि तथा शंकरार्चन नहीं किया, जिन्होंने विप्रों को दान नहीं दिया, वे कभी श्रीलाभ कैसे कर सकते हैं? तुमने ब्राह्मणों को अथवा मुझे कुछ भी दान नहीं दिया। पूर्वकाल में जो दान दिया जाता है, परकाल में वही मिलता है। अपना शरीर सुखा कर तुम मिट्टी, वायु, कुश, मन्त्र से पवित्र कर्मानुष्ठान करते रहते हो, उसके फल से शारीरिक कष्ट सह कर भी पूतात्मा हो।।१९-२३।।

विना दानेन न क्वापि भोगावाप्तिर्नृणां भवेत्।
सत्कर्माचरणाच्छुद्धो विरक्तः स्याततो नरः॥२४॥
ततोऽप्रतिहतज्ञानो जीवन्मुक्तस्ततो भवेत्। सर्वेषां सुलभा मुक्तिर्मद्भक्त्या चेह पूर्ततः॥२५॥
भुक्तिर्दानादिना सर्वभूतदुःखनिबर्हणात्।
अथवा लप्स्यसे मुक्तिं भक्त्या भुक्तिं न लप्स्यसे॥२६॥

मनुष्यगण को दान दिये बिना भोग तथा सुख कदापि नहीं मिल सकता। सत्कर्मों को करने से व्यक्ति शुद्ध होता है। उसे वैराग्य की प्राप्ति होती है। तदनन्तर उसे अप्रतिहत ज्ञान का लाभ भी होता है। इससे वह जीवन्मुक्त हो जाता है। मेरी भक्ति तथा पूर्तकर्म करने वाला व्यक्ति (पूर्तकर्म = लोक कल्याणार्थ सरोवर लोककल्याण, कूपादि, गोचरभूमि, मंदिर आदि की व्यवस्था निर्माणादि) इसी लोक में अपने लिये मुक्ति सुलभ कर लेता है। मेरी भक्ति के द्वारा ही तुमको मुक्तिलाभ नहीं होगा। दानादि से तथा प्राणीगण का दुःख दूर करने वाला ही भोग (भुक्ति) पाता है। केवल मेरी भक्ति से मुक्ति मिलती है। दानादि तथा पूर्त कर्मों से भुक्ति (भोग) लाभ होता है।।२४-२६।।

मौद्गल्य उवाच

भक्त्या मुक्तिः कथं भूयाद्भुक्तेर्मुक्तिः सुदुर्लभा।
जाता चेद्देहिनां मुक्तिः किमन्येन प्रयोजनम्॥२७॥
भक्त्या मुक्तिः सर्वपूज्या तामिच्छेयं जगन्मय॥२८॥

मौद्गल्य कहते हैं—भक्ति द्वारा कैसे मुक्ति होती है? मुक्ति तो भुक्ति से अत्यन्त दुर्लभ कही जाती है। विशेषतः शरीरधारी को यदि मुक्तिलाभ ही हो जाये, तब उसे अन्य (भुक्ति आदि) का क्या प्रयोजन? हे जगन्नाथ! यदि भक्ति से ही मुक्तिलाभ होता है, तब मैं केवल वही चाहता हूं।।२७-२८।।

विष्णुरुवाच

एतदेवान्तरं ब्रह्मन्दीयते मामनुस्मरन्। ब्राह्मणायाथवाऽर्थिभ्यस्तदेवाक्षयतां व्रजेत्॥२९॥
मामध्यात्वाऽथ यद्दद्यात्तत्तन्मात्रफलप्रदम्। तत्पुनर्दत्तमेवेह न भोगायात्र कल्पते॥३०॥
तस्माद्देहि महाबुद्धे भोज्यं किञ्चिन्मम ध्रुवम्। अथवा विप्रमुख्याय गौतमीतीरमाश्रितः॥३१॥

श्री विष्णु कहते हैं—हे ब्राह्मण! मौद्गल्य! दान के अनेक रूप हैं। जो दान ब्राह्मणगण तथा याचकों को मेरे स्मरण के साथ दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। मेरा स्मरण, ध्यान किये बिना जो दान प्रदत्त

होता है, उसका अल्प फल है। वह केवल दान ही है, उससे इस जीवन में भोग का सुख नहीं होगा। हे महाबुद्धिमान्! तुम मुझे किंचित् भोज्य प्रदान करो अथवा उत्तम विप्र को गौतमी तट पर दान करो।।२९-३१।।

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्यः प्राह तं विष्णुं देयं मम न विद्यते।
नान्यत्किञ्चन देहादि यत्तत्त्वयि समर्पितम्॥३२॥
ततो विष्णुर्गरुत्मन्तं प्राह शीघ्रं जगत्पतिः। इहाऽऽनयस्व कणिशं ममायं चार्पयिष्यति॥३३॥
ततो योग्यानयं भोगान्प्राप्स्यते मनसः प्रियान्।
आकर्ण्य स्वमिनाऽऽदिष्टं तथा चक्रे स पक्षिराट्॥३४॥
विष्णुहस्ते कणान्प्रादात्स मौद्गल्यो यतव्रतः। एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्विश्वकर्माणमब्रवीत्॥३५॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह भगवद् वाक्य सुनकर मौद्गल्य भगवान् विष्णु से कहने लगे—"मेरे पास देने योग्य कुछ भी नहीं है। देहादि जो कुछ है, वह सब तो आपको समर्पित हो ही चुका है।" यह कथन सुनकर जगत्पति भगवान् ने अपने वाहन गरुड़ से कहा—"तुम शीघ्रता से कुछ अन्न कण लाओ। यह ब्राह्मण वही मुझे अर्पित करेगा। उसी से इसे मनोवांछित उत्तम भोगों की प्राप्ति होगी।" प्रभु की आज्ञा का गरुड़ ने यथावत् पालन किया। यतव्रत मौद्गल्य ने तब विष्णु के करकमलों पर वे अन्नकण अर्पित कर दिया। इसी अवसर पर विष्णु ने विश्वकर्मा से कहा—।।३२-३५।।

विष्णुरुवाच

यावच्चास्य कुले सप्त पुरुषास्तावदेव तु।
भवितारो महाबुद्धे तावत्कामा मनीषिताः।
गावो हिरण्यं धान्यानि वस्त्राण्याभरणानि च॥३६॥

श्रीविष्णु कहते हैं—हे महाबुद्धि! इन मौद्गल्य के कुल में सात पीढ़ी पर्यन्त वांछित गौ,स्वर्ण, धान्य, वस्त्र, आभरण प्रभृति काम्य वस्तु विद्यमान रहे।।३६।।

ब्रह्मोवाच

यच्च किञ्चिन्मनःप्रीत्यै लोके भवति भूषणम्। तत्सर्वमाप मौद्गल्यो विष्णुगङ्गाप्रभावतः॥३७॥
गृहं गच्छेति मौद्गल्यो विष्णुनोक्तस्ततो ययौ। आश्रमे स्वस्य सर्वर्धिं दृष्ट्वा ऋषिरभाषत॥३८॥

ब्रह्मा कहते हैं—विष्णु तथा गौतमी गंगा के प्रभाव से मौद्गल्य को वह सब प्राप्त हो गया, जो कुछ संसार में प्रसन्नता बढ़ाने वाला होता है। तदनन्तर जब विष्णु ने कहा—"अपने घर जाओ" तब वे ब्राह्मण अपने गृह वापस आये। जब उन ऋषि ने अपने आश्रम को सभी ऐश्वर्य से युक्त देखा, तब वे कहने लगे।।३७-३८।।

ऋषिरुवाच

अहो दानप्रभावोऽयमहो विष्णोरनुस्मृतिः। अहो गङ्गाप्रभावश्च कैर्विचार्यो महानयम्॥३९॥

ऋषि मौद्गल्य कहते हैं—यह सब दान का प्रभाव है। यह सब विष्णु की अनुस्मृति (अर्चना) का प्रभाव है। अहो! यह गंगा-गौतमी का प्रभाव है। इसे कौन जान सकेगा?।।३९।।

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्यो भार्यया सार्धं पुत्रैः पौत्रैश्च बन्धुभिः।
पितृभ्यां बुभुजे भोगान्भुक्तिं मुक्तिमवाप च॥४०॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं मौद्गल्यं वैष्णवं तथा। तत्र स्नानं च दानं च भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥४१॥
तत्र श्रुतिः स्मृतिर्वाऽपि तीर्थस्य स्यात्कथञ्चन।
तस्य विष्णुर्भवेत्प्रीतः पापैर्मुक्तः सुखी भवेत्॥४२॥
एकादश सहस्राणि तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः। सर्वार्थदायिनां तत्र स्नानदानजपादिभिः॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मौद्गल्यविष्णुतीर्थाद्येकादशसहस्रतीर्थवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३६।।

गौतमीमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः।।६७।।

ब्रह्मा कहते हैं—उन ब्राह्मण मौद्गल्य ने अपनी पत्नी, पुत्र, पौत्र तथा बन्धुओं एवं माता-पिता सहित इन भोगों का उपभोग किया। फलतः उनको भुक्ति-मुक्ति दोनों मिल गई। तभी से यह स्थान मौद्गल्य तीर्थ तथा विष्णुतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यहां स्नान-दान से मनुष्य भुक्ति तथा मुक्तिफल की प्राप्ति करता है। इस तीर्थ के सम्बन्ध में किसी प्रकार श्रवण करने अथवा स्मरण करने से विष्णु प्रसन्न होते हैं। वह व्यक्ति पापों से मुक्त होकर सुखी हो जाता है। इस स्थान के दोनों तटों पर ग्यारह हजार तीर्थ हैं, जिनमें स्नान, दान तथा जपादि द्वारा मनुष्यों की सर्वार्थसिद्धि होती है।।४०-४३।।

।।षट्त्रिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्ष्मीतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

लक्ष्मीतीर्थमिति ख्यातं साक्षाल्लक्ष्मीविवर्धनम्। अलक्ष्मीनाशनं पुण्यमाख्यानं शृणु नारद॥१॥
संवादश्च पुरा त्वासील्लक्ष्म्याः पुत्र दरिद्रया। परस्परविरोधिन्यावुभे विश्वं समीयतुः॥२॥

ताभ्यामव्यापृतं वस्तु तन्नास्ति भुवनत्रये। मम जैष्ठ्यं मम ज्यैष्ठ्यमित्यूचतुरुभे मिथः।
अहं पूर्वं समुद्भूता इत्याह श्रियमोजसा॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! लक्ष्मीतीर्थ नामक विख्यात जो तीर्थ है, वह साक्षात् लक्ष्मीवर्द्धक एवं अलक्ष्मीनाशक है। उसका उपाख्यान श्रवण करो। हे पुत्र! पूर्वकाल में लक्ष्मी तथा दरिद्रा का संवाद हुआ था। ये परस्परतः विरोध करते विश्व में आ गयीं। इस त्रैलोक्य में इन दोनों से सब कुछ व्याप्त था। वे परस्परतः अपनी-अपनी श्रेष्ठता बखानने लगीं। अलक्ष्मी दरिद्रा ने गर्व के साथ लक्ष्मी से कहा—"मैं तुमसे पहले जन्मी हूं। अतः मैं श्रेष्ठ हूं।।१-३।।

श्रीलक्ष्मीरुवाच

कुलं शीलं जीवितं वा देहिनामहमेव तु। मया विना देहभाजो जीवन्तोऽपि मृता इव॥४॥

श्रीलक्ष्मी कहती हैं—शरीरधारी लोगों का कुल, शील तथा जीवनादि सब मेरे अधीन है। मेरे बिना शरीरधारी यदि जीवित रहते भी हैं तथा वे मृतवत् ही हैं। अतः मैं श्रेष्ठ हूं।।४।।

ब्रह्मोवाच

दरिद्रया च सा प्रोक्तां सर्वेभ्यो ह्यधिका ह्यहम्। मुक्तिर्मदाश्रिता नित्यं दरिद्रैवं वचोऽब्रवीत्॥५॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मात्सर्यमेव च। यत्राहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन॥६॥
न भयोद्भूतिरुन्माद ईर्ष्या उद्धतवृत्तिता। यत्राहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन॥७॥
दरिद्राया वचः श्रुत्वा लक्ष्मीस्तां प्रत्यभाषत॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—इसके उत्तर में दरिद्रा ने श्रीलक्ष्मी से कहा—"मैं सबसे श्रेष्ठ हूं। मुक्ति मेरे ही अधीन है।" तदनन्तर उसने पुनः कहा—"काम-क्रोध, लोभ, मद-मात्सर्य वहां टिक ही नहीं पाते, जहां मैं रहती हूं। वहां पर भयोत्पत्ति, उन्मत्तता, ईर्ष्या, उद्धतभाव-व्यवहार आ ही नहीं पाते।" यह सुनकर लक्ष्मी उत्तर देने लगीं।।५-८।।

लक्ष्मीरुवाच

अलङ्कृतो मया जन्तुः सर्वो भवति पूजितः। निर्धनः शिवतुल्योऽपि सर्वैरप्यभिभूयते॥९॥
देहीति वचनद्वारा देहस्थाः पञ्च देवताः। सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति धीश्रीह्रीशान्तिकीर्तयः॥१०॥
तावद्गुणा गुरुत्वं च यावन्नार्थयते परम्।
अर्थी चेत्पुरुषो जातः क्व गुणाः क्व च गौरवम्॥११॥
तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालयः। नमस्यः सर्वलोकानां यावन्नार्थयते परम्॥१२॥
कष्टमेतन्महापापं निर्धनत्वं शरीरिणाम्। न मानयति नो वक्ति न स्पृशत्यधनं जनः॥१३॥
अहमेव ततः श्रेष्ठा दरिद्रे शृणु मे वचः॥१४॥

श्री लक्ष्मी कहती हैं—मेरे द्वारा अलंकृत होकर प्राणीगण पूजित होते हैं। निर्धन भले ही शिव के समान हो जाये, तथापि वह सबसे अपमान ही पाते हैं। "दो" यह वाक्य सुनते ही धी, श्री, कान्ति, ह्री, शान्ति एवं

कीर्त्ति बहिर्गत् होकर अन्यत्र गमन करते हैं। मनुष्य में सभी गुण तथा महत्व तभी तक विद्यमान रहते हैं, जब तक वह दूसरों से कुछ याचना नहीं करता। पुरुष जब याचक हो जाये, तब उसमें गुण ही कहां रह जायेंगे? गौरव तब कहां रह जायेगा? जीव तभी तक सर्वोत्तम कहलाता है, तभी तक सर्वगुणयुक्त एवं सर्वलोक नमस्कृत होता है, जब तक वह अन्य लोगों से प्रार्थना-याचना नहीं करता। देहधारीगण हेतु निर्धनता महापातक है। निर्धन को लोग सम्मान नहीं देते। उससे बातें नहीं करते। उसका स्पर्श भी नहीं करते। हे दरिद्रे! तभी मैं श्रेष्ठ हूं। मेरी यह बात सुन लो।।९-१४।।

ब्रह्मोवाच

तल्लक्ष्मीवचनं श्रुत्वा दरिद्रा वाक्यमब्रवीत्॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—लक्ष्मी का कथन सुनकर दरिद्रता ने कहा—।।१५।।

दरिद्रोवाच

वक्तुं न लक्ष्मीर्ज्येष्ठाऽहमिति वै लज्जसे मुहुः। पापेषु रमसे विहाय पुरुषोत्तमम्॥१६॥
विश्वस्तवञ्चका नित्यं भवती श्लाघसे कथम्।
सुखं न तादृक्त्वत्प्राप्तौ पश्चात्तापो यथा गुरुः॥१७॥
न तथा जायते पुंसां सुरया दारुणो मदः। त्वत्सन्निधानमात्रेण यथा वै विदुषामपि॥१८॥
सदैव रमसे लक्ष्मीः प्रायस्त्वं पापकारिषु। अहं वसामि योग्येषु धर्मशीलेषु सर्वदा॥१९॥
शिवविष्ण्वनुरक्तेषु कृतज्ञेषु महत्सु च। सदाचारेषु शान्तेषु गुरुसेवोद्यतेषु च॥२०॥
सत्सु विद्वत्सु शूरेषु कृतबुद्धिषु साधुषु।
निवसामि सदा लक्ष्मीस्तस्माज्ज्यैष्ठ्यं मयि स्थितम्॥२१॥
ब्राह्मणेषु शुचिष्मत्सु व्रतचारिषु भिक्षुषु।
निर्भयेषु वसिष्यामि लक्ष्मीस्त्वं शृणु ते स्थितिम्॥२२॥

दरिद्रता कहती है—हे लक्ष्मी! क्या तुम बारम्बार मैं ज्येष्ठा हूं, यह कहते लज्जिता नहीं हो रही हो? तुम पुरुषोत्तम की उपेक्षा करके पापियों के साथ रमती रहती हो। तुम विश्वस्त लोगों के साथ नित्य धोखा देकर मुझसे अपना बड़प्पन हांक रही हो? तुम पाकर लोगों को गुरुतर पश्चात्ताप के अतिरिक्त कोई सुखलाभ नहीं हो पाता। तुम्हारा सन्निधान मात्र होने पर विद्वान् लोग भी मत्ततायुक्त हो जाते हैं। ऐसी मत्तता तो लोगों को मद्यपान से भी नहीं होती। हे लक्ष्मी! तुम सदैव पापी लोगों के साथ ही रमती हो। एतद्विपरीत मेरा निवास सदैव योग्य, धार्मिक, शिव-विष्णुभक्त, कृतज्ञ, महत्, सदाचारी, गुरुसेवातत्पर, शान्त, सत्, विद्वान्, शूर, साधुगण के पास होता है। हे लक्ष्मी! तभी मेरी ही स्थिति श्रेष्ठ है। मैं पवित्र ब्राह्मणों, पावनात्मा, व्रतचारी, भिक्षु, निर्भय के यहां निवास करती हूं। अब तुम अपनी स्थिति श्रवण करो।।१६-२२।।

राजवर्तिषु पापेषु निष्ठुरेषु खलेषु च। पिशुनेषु च लुब्धेषु विकृतेषु शठेषु च॥२३॥
अनार्येषु कृतघ्नेषु धर्मघातिषु सर्वदा। मित्रद्रोहिष्वनिष्टेषु भग्नचित्तेषु वर्तसे॥२४॥

तुम सदा राजसेवक, पापी, निष्ठुर, पीठ पीछे निन्दा करने वाले, लुब्ध विकृत (चंचल), शठ, अनार्य, कृतघ्न, धर्मघाती, मित्रद्रोही, अनिष्ट करने वाले तथा हीनचित्त वालों के साथ रहती हो।।२३-२४।।

ब्रह्मोवाच

एवं विवदमाने ते जग्मतुर्मामुभे अपि। तयोर्वाक्यमुपश्रुत्य मयोक्ते ते उभे अपि॥२५॥

मत्तः पूर्वतरा पृथ्वी आपः पूर्वतरास्ततः।
स्त्रीणां विवादं ता एव स्त्रियो जानन्ति नेतरे॥२६॥
विशेषतः पुनस्ताभ्यः कमण्डलुभवाश्च याः।
तत्रापि गौतमी देवी निश्चयं कथयिष्यति॥२७॥

सैव सर्वार्तिसंहर्त्री सैव संदेहकर्तरी। ते मद्वाक्याद्ध्रुवं गत्वा भूम्या च सहिते अपि॥२८॥

अद्भिश्च सहिताः सर्वा गौतमीं ययुरापगाम्।
भूमिरापस्तयोर्वाक्यं गौतम्यै क्रमशः स्फुटम्॥२९॥
सर्वं निवेदयामासुर्यथावृत्तं प्रणम्य ताम्।
दरिद्रयाश्च लक्ष्म्याश्च वाक्यं मध्यस्थवत्तदा॥३०॥
शृण्वत्सु लोकपालेषु शृण्वत्यां भुवि नारद।
शृण्वतीष्वप्सु सा गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत्।
संप्रशस्य तथा लक्ष्मीं गौतमीं वाक्यमब्रवीत्॥३१॥

ब्रह्मा कहते हैं—एवंविध विवादरत होकर वे दोनों मेरे पास निर्णयार्थ आईं। मैंने उन लोगों का कथन सुनकर उनसे पूछा कि "मुझसे पूर्व पृथिवी थी। उससे भी पहले से जल है। पृथिवी तथा जल स्त्री हैं। स्त्रियों के विवाद का निर्णय वे ही करेंगी। स्त्रियों के विवाद को स्त्रियां ही जानती हैं। अन्य नहीं जानते। उनमें भी विशेषतया कमण्डलु से उत्पन्न गंगा का जल सर्वोत्तम है। उनसे भी गौतमी देवी श्रेष्ठतम हैं। वे ही इसका निश्चित सदुत्तर देंगी। वे सर्व आर्त्ति का हरण करने वाली तथा समस्त सन्देहनाशिनी हैं।" तत्पश्चात् वे दोनों मेरी बात मानकर भूमि तथा जल से जाकर मिलीं। अब चारों ने गौतमी नदी के पास गमन किया। वहां गौतमी को नमस्कार करने के उपरान्त भूमि तथा जल ने दरिद्रा तथा लक्ष्मी का विवाद स्पष्टतया उनके वचनों के साथ गौतमी से यथोक्त कह दिया। हे नारद! उन गौतमी ने दरिद्रा एवं लक्ष्मी का वाक्य मध्यस्थ की तरह लोकपालों, पृथिवी तथा आपः (जल) को सुनते हुये तथा लक्ष्मीं की प्रशंसा करते हुये कहा—।।२५-३१।।

गौतम्युवाच

ब्रह्मश्रीश्च तपःश्रीश्च यज्ञश्रीः कीर्तिसंज्ञिता।
धनश्रीश्च यशःश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती॥३२॥
भुक्तिश्रीश्चाथ मुक्तिश्च स्मृतिर्लज्जा धृतिःक्षमा।
सिद्धिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिः शान्तिरापस्तथा मही॥३३॥

अहंशक्तिरथौषध्य श्रुतिःशुद्धिर्विभावरी।
द्यौर्ज्योत्स्ना आशिषः स्वस्तिर्व्याप्तिर्माया उषा शिवा॥३४॥
यत्किञ्चिद्विद्यते लोके लक्ष्म्या व्याप्तं चराचरम्।
ब्राह्मणेष्वथ धीरेषु क्षमावत्स्वथ साधुषु॥३५॥
विद्यायुक्तेषु चान्येषु भुक्तिमुक्त्यनुसारिषु। यद्यद्रम्यं सुन्दरं वा तत्तल्लक्ष्मीविजृम्भितम्॥३६॥

गौतमीगंगा कहती हैं—ब्रह्मश्री, तपःश्री, यशःश्री, कीर्त्ति, धनश्री, यज्ञश्री, विद्याश्री, प्रज्ञाश्री, सरस्वती, भुक्तिश्री, मुक्ति, स्मृति, लज्जा, धृति, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, आपः, मही, मैं, शक्ति, औषधि, श्रुति, शुद्धि, विभावरी, स्वर्ग, ज्योत्स्ना, आशीः (आशीर्वाद), माया, व्याप्ति, उषा, शिवा प्रभृति यत्किंचित् जो इस लोक में उत्तम वस्तु है, वह सब लक्ष्मी से व्याप्त है। "ब्राह्मण, धीर, क्षमाशील, साधु, विद्वान् तथा भुक्ति एवं मुक्तिकामी अन्य लोग—सबमें लक्ष्मी विराजित है। जो कुछ भी रमणीय तथा सुन्दर है, सर्वत्र लक्ष्मी ही है।।३२-३६।।

किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं लक्ष्मीमयं जगत्।
यस्मिन्कस्मिंश्च यत्किञ्चिदुत्कृष्टं परिदृश्यते॥३७॥
लक्ष्मीमयं तु तत्सर्वं तया हीनं न किञ्चन। अत्रेमां सुन्दरीं देवीं स्पर्धयन्ती न लज्जसे॥३८॥
गच्छ गच्छेति तां गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत्।
ततः प्रभृति गङ्गाम्भो दरिद्रावैरकार्यभूत्॥३९॥
तावद्दरिद्राभिभवो गङ्गा यावन्न सेव्यते। ततः प्रभृति तत्तीर्थमलक्ष्मीनाशनं शुभम्॥४०॥
तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीवान्पुण्यवान्भवेत्।
तीर्थानां षट्सहस्राणि तस्मिन्तीर्थे महामते।
देवर्षिमुनिजुष्टानां सर्वसिद्धिप्रदायिनाम्॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये लक्ष्मीतीर्थादिषट्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३७॥
गौतमीमाहात्म्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

इस सम्बन्ध में अधिक क्या कहूं? सर्व जगत् लक्ष्मीमय ही है। जहां कहीं भी जो कुछ उत्कृष्ट परिलक्षित होता है, सब कुछ लक्ष्मीमय ही है। लक्ष्मी रहित कुछ भी नहीं है। अतः तुम यहां सुन्दरी लक्ष्मी से स्पर्द्धा करके लज्जित क्यों नहीं होती हो। तुम यहां से जाओ।" गौतमी ने एवंविध दरिद्रा से कहा। तभी से दरिद्रा गंगा के साथ वैर भावना रखती है। दरिद्रता द्वारा व्यक्ति तभी तक पराभव पाता है, जब तक वह गौतमी गंगा की सेवा नहीं करता। तभी से यह तीर्थ अलक्ष्मीनाशक तथ शुभप्रद हो गया। यहां स्नान-दान करने वाले लक्ष्मीवान् तथा पुण्यवान् हो जाते हैं। हे महामति नारद! ऋषियों तथा मुनिगण सेवित ६०००० तीर्थ स्थित हैं।।३७-४१।।

।।सप्तत्रिंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भानु प्रभृति तीन सहस्र तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये महापातकनाशनम्॥१॥
शर्यातिरिति विख्यातो राजा परमधार्मिकः। तस्य भार्या स्थविष्ठेति रूपेणाप्रतिमा भुवि॥२॥

मधुच्छन्दा इति ख्यातो वैश्वामित्रो द्विजोत्तमः।
पुरोधास्तस्य नृपतेर्ब्रह्मर्षिः शमिनां प्रभुः॥३॥
दिशो विजेतुं स जगाम राजा, पुरोधसा तेन नृपप्रवीरः।
पुरोधसं प्राह महानुभावं, जित्वा दिशश्चाध्वनि सन्निविष्टः॥४॥
पप्रच्छेदं केन खेदं गतोऽसि, हेतुं वदस्वेति महानुभाव।
त्वमेव राज्ये मम सर्वमान्यः, समस्तविद्यानिरवद्यबोधः॥५॥
विधूतपापः परितापशून्यः, किमन्यचेता इव लक्ष्यसे त्वम्।
जितेयमुर्वी विजिता नरेन्द्रा, हर्षस्य हेतौ महतीह जाते॥६॥
किं त्वं कृशो मे वद सत्यमेव, द्विजातिवर्यातिमहानुभाव।
सम्बोध्य शर्यातिमुवाच विप्रश्छन्दोमधुः प्रेममयीं प्रियोक्तिम्॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—भानुतीर्थ नाम से प्रख्यात तीर्थ सर्वसिद्धिप्रद है। इस सम्बन्ध वाला एक वृत्तान्त कहता हूं। यह उपाख्यान महापापों का नाशक है। शर्याति एक प्रसिद्ध राजा थे। उनकी पत्नी पृथिवी पर अत्यन्त रूपवती स्थविष्ठा नाम्नी थीं। उनके पुरोहित शमगुण परायण, मनुष्यों में श्रेष्ठ, द्विजोत्तम विश्वामित्रनन्दन मधुच्छन्दा नामक ब्राह्मण थे। वे राजा अपने इन पुरोहित के साथ दिग्विजयार्थ निकले तथा नाना दिशाओं के राजाओं पर विजय पाते हुये मार्ग में विश्राम करने लगे। तब उन्होंने अपने महानुभाव पुरोहित से कहा—"हे ब्रह्मन्! आप दुःखी क्यों हो रहे हैं? उसका कारण कहिये। मेरे राज्य में आप तो सर्वमान्य, समस्त विद्या तथा विशुद्ध बुद्धि वाले, पाप रहित एवं परिताप रहित व्यक्ति हैं। आप अभी उद्विग्नचित्त क्यों हो रहे हैं? समस्त महती वसुन्धरा विजित हो गयी, राजा वर्ग पराजित हो गया। इस महान् हर्ष के कारण के विद्यमान रहते आप कृश क्यों होते जा रहे हैं। हे महानुभाव! द्विजप्रवर! आप सत्य-सत्य इसका कारण कहिये।" यह सुनकर विप्रप्रवर मधुच्छन्दा राजा शर्याति से प्रेममय प्रियोक्ति कहने लगे।।१-७।।

मधुच्छन्दा उवाच

शृणु भूपाल मद्वाक्यं भार्यया यदुदीरितम्।
स्थिते यामे वयं यामो यामिनी चार्धगामिनी॥८॥

स्वामिनी चास्य देहस्य कामिनी मां प्रतीक्षते।
स्मृत्वा तत्कामिनीवाक्यं शोषं याति कलेवरम्।
विकारे स्मरसञ्जाते जीवातुर्नलिनानना॥९॥

ऋषि मधुच्छन्दा कहते हैं—हे भूपाल! मेरी पत्नी ने जो कहा है, वही आपसे कहता हूं। श्रवण करें। उसने रात्रि एक याम रहते घर लौटने हेतु कहा था, लेकिन अभी अर्द्धरात्रि हो गई। इस मेरे शरीर की स्वामिनी कामिनी मेरी प्रतीक्षा करती होगी। उस कामिनी की बातों को याद करते-करते मेरा शरीर सूखता जा रहा है। वह काम भाव से प्रतीक्षारत होगी।।८-९।।

ब्रह्मोवाच

विहस्य चाब्रवीद्राजा पुरोधसमरिन्दमः॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर शत्रुहन्ता राजा ने हंसते हुये पुरोहित से कहा—।।१०।।

राजोवाच

त्वं गुरुर्मम मित्रं च किमात्मानं विडम्बसे। किमनेन महाप्राज्ञ मम वाक्येन मानद।
क्षणविध्वंसिनि सुखे का नामाऽऽस्था महात्मनाम्॥११॥

राजा कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आप मेरे गुरु तथा मित्र हैं। क्यों स्वयं को विडम्बित कर रहे हैं? हे महाप्राज्ञ! हे मानद! महात्मा लोग की क्षण में नष्ट हो जाने वाले सुख के प्रति आस्था क्यों?।।११।।

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य मतिमान्मधुच्छन्दा वचोऽब्रवीत्॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—मतिमान् मधुच्छन्दा ने राजा का कथन सुनकर कहा—।।१२।।

मधुच्छन्दा उवाच

यत्राऽऽनुकूल्यं दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते। न चेदं दूषणं राजन्भूषणं चातिमन्यताम्॥१३॥

ऋषि मधुच्छन्दा कहते हैं—जहां दम्पति में पारस्परिक अनुकूलता रहती है, वह धर्म-अर्थ-काम बढ़ते जाते हैं। हे राजन्! ये कदापि दूषण न होकर भूषण हैं। यह लगता है।।१३।।

ब्रह्मोवाच

आजगाम स्वकं देशं महत्या सेनया वृतः। परीक्षार्थं च तत्प्रेम पुर्यां वार्तामदीदिशत्॥१४॥
दिशो विजेतुं शर्यातौ याते राक्षसपुङ्गवः। हत्वा रसातलं यातो राजानं सपुरोधसम्॥१५॥
राज्ञो भार्या निश्चयाय प्रवृत्ता मुनिसत्तम।
वार्तां श्रुत्वा दूतमुखान्मधुच्छन्दःप्रिया पुनः॥१६॥
तदैवाभूद्गतप्राणा तद्विचित्रमिवाभवत्। तस्या वृत्तं तु ते दृष्ट्वा दूता राज्ञे न्यवेदयन्॥१७॥
यत्कृतं राजपत्नीभिः प्रियया च पुरोधसः। विस्मितो दुःखितो राजा पुनर्दूतानभाषत॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर राजा अपनी महती सेना के साथ स्वदेश लौटने लगे। उसने ऋषि मधुच्छन्दा तथा उनकी पत्नी की प्रेम-परीक्षार्थ राजधानी में घोषणा करा दिया कि शर्याति जब दिग्विजय पुरोहित के साथ दिग्विजय हेतु जा रहे थे, मार्ग में एक बली राक्षस ने वहां पुरोहित तथा राजा की हत्या कर दिया तथा रसातल में चला गया। यह सुनकर रानी तो इस घोषणा की सत्यता का पता लगाने लगी, लेकिन मधुच्छन्दा मुनि की पत्नी यह घोषणा सुनते ही मृत हो गयी। यह अतीव विचित्र घटना थी। दूतों ने राजपत्नी का कर्म तथा पुरोहित पत्नी के प्राण त्याग की घटना देख कर यह वृत्तान्त राजा से कहा। राजा इससे दुःखी हो गये। उन्होंने दूतों से कहा—।।१४-१८।।

राजोवाच

शीघ्रं गच्छन्तु हे दूता ब्राह्मण्या यत्कलेवरम्।
रक्षन्तु वार्तां कुरुत राजाऽऽगन्ता पुरोधसा॥१९॥

राजा कहते हैं—हे दूतों! तुम शीघ्र जाकर ब्राह्मणी के कलेवर की सावधानी से रक्षा करो तथा यह संवाद दो कि राजा पुरोहित के साथ आ रहे हैं।।१९।।

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तापुरे राज्ञि वागुवाचाशरीरिणी॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा ने यह आदेश दिया। वे अत्यन्त चिन्तातुर थे, तभी एक आकाशवाणी सुनाई पड़ी।।२०।।

आकाशवागुवाच

विधास्यत्यखिलं गङ्गा राजंस्तव समीहितम्। सर्वाभिषङ्गशमनी पावनी भुवि गौतमी॥२१॥

आकाशवाणी ने कहा—गौतमी गंगा तुम्हारा सब वांछित कार्य सम्पन्न करेगी। भूतल पर पावनी गौतमी तुम्हारा समस्त क्लेश शान्त करेगी।।२१।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा स शर्यातिर्गौतमीतटमाश्रितः। ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्व तर्पयित्वा पितॄन्द्विजान्॥२२॥
पुरोहितं द्विजश्रेष्ठं प्रेषयित्व धनान्वितम्।
अन्यत्र तीर्थे सार्थेषु दानं देहि (ददौ) प्रयत्नतः॥२३॥
एतत्सर्वं न जानाति राज्ञः कृत्यं पुरोहितः। गते तस्मिन्गुरौ राजा वैश्वामित्रे महात्मनि॥२४॥
सर्वं बलं प्रेषयित्वा गङ्गातीरेऽग्निमाविशत्।
इत्युक्त्वा स तु राजेन्द्रो गङ्गां भानुं सुरानपि॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा शर्याति ने यह आकाशवाणी सुनकर गौतमी तट भूमि का आश्रय लेकर वहीं ब्राह्मणों को दान, ब्राह्मणों को तृप्त करना, पितृगण का तर्पण तथा प्रभूत धन के साथ पुरोहितों एवं ब्राह्मणों को उनके गृह वापस भेजना, अन्य तीर्थों में भी दीनों को दान देना सयत्न किया। राजा के इन सब कार्य को पुरोहित

मधुच्छन्दा नहीं जान सके। विश्वामित्रनन्दन राजगुरु महात्मा मधुच्छन्दा के जाने पर राजा ने समस्त सेना को तथा सामन्तों को राजधानी भेज कर गोमतीगंगा तट पर स्वयं अग्निप्रवेश का उपक्रम किया। उन राजा ने वहां गंगा, सूर्य तथा देवताओं से यह कहा—।।२२-२५।।

यदि दत्तं यदि हुतं यदि त्राता प्रजा मया।
तेन सत्येन सा साध्वी ममाऽऽयुष्येण जीवतु॥२६॥
इत्युक्त्वाऽग्नौ प्रविष्टे तु शर्यातौ नृपसत्तमे।
तदैव जीविता भार्या राज्ञस्तस्य पुरोधसः॥२७॥
अग्निप्रविष्टं राजानं श्रुत्वा विस्मयकारणम्।
पतिव्रतां तथा भार्यां मृतां जीवान्वितां पुनः॥२८॥
तदर्थं चापि राजानं त्यक्तात्मानं विशेषतः। आत्मनश्च पुनः कृत्यमस्मरन्नृपतेर्गुरुः॥२९॥
अहमप्यग्निमावेक्ष्य उत यास्ये प्रियान्तिकम्। अथवेह तपस्तप्स्ये ततो निश्चयवान्द्विजः॥३०॥
एतदेवाऽऽत्मनः कृत्यं मन्ये सुकृतमेव च।
जीवयामि च राजानं ततो यामि प्रियां पुनः॥३१॥
एतदेव शुभं मे स्यात्ततस्तुष्टाव भास्करम्।
न ह्यन्यः कोऽपि देवोऽस्ति सर्वाभीष्टप्रदो रवेः॥३२॥

राजा कहते हैं—"यदि मैंने दान, हवन तथा प्रजारक्षण किया है, तब उस पुण्यफल से तथा मेरी शेष आयु द्वारा साध्वी पुरोहित पत्नी जीवित हो जायें।" नृपसत्तम शर्याति ने यह कहकर अग्नि में जैसे ही प्रवेश किया, तभी वे राजपुरोहित पत्नी तत्काल जीवित हो गयीं। जब राजा के गुरु मधुच्छन्दा ने राजा का यह विस्मयप्रद अग्निप्रवेश, अपनी प्रिय पतिव्रता पत्नी का पुनर्जीवन लाभ तथा विशेषतया उस पतिव्रता के जीवनार्थ राजा का ऐसा आत्मत्याग वृत्तान्त सुनकर अपने कर्त्तव्य के सम्बन्ध में विचार किया। उन्होंने यह विचार किया क्या मैं भी अग्नि प्रवेश करूं? अथवा अपनी पत्नी के यहां जाऊं? अथवा यहीं तपःश्चरण करूं? अन्ततः उन्होंने यह निर्णय लिया कि सर्वाग्र में जैसे भी हो, राजा को जीवित कर देना उचित है। यही मेरे लिये उत्तम कार्य होगा। तदनन्तर राजा के जीवित होने पर मैं अपनी प्रिया के पास जाऊंगा। ऐसा करने से मेरा शुभ होगा। राजा के जीवन हेतु मैं भास्कर का स्तव करूं, रवि की अपेक्षा सर्वाभीष्टप्रद कोई देवता नहीं है। यह निश्चय करके वे भास्कर के स्तव में प्रवृत्त हो गये।।२६-३२।।

मधुच्छन्दा उवाच

नमोऽस्तु तस्मै सूर्याय मुक्तयेऽमिततेजसे। छन्दोमयाय देवाय ओङ्कारार्थाय ते नमः॥३३॥
विरूपाय सुरूपाय त्रिगुणाय त्रिमूर्तये। स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतवे प्रभविष्णवे॥३४॥

ऋषि मधुच्छन्दा कहते हैं—मैं उन मुक्ति हेतु, अमित तेजस्वी, सूर्य को प्रणाम करता हूं! हे देव! आप छन्दोमय, ओंकारार्थ स्वरूप हैं। आप ही विरूप, सुरूप, त्रिगुण, त्रिमूर्त्ति तथा उत्पत्ति-स्थिति-विनाश हेतु हैं। हे प्रभविष्णु! आपको नमस्कार!।।३३-३४।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नः सूर्योऽभूद्वरयस्वेत्यभाषत॥३५॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार स्तव करने से सूर्य उनके प्रति प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने वर मांगने हेतु कहा—॥३५॥

मधुच्छन्दा उवाच

राजानं देहि देवेश भार्यां च प्रियवादिनीम्। आत्मनश्च शुभान्पुत्रान्राज्ञश्चैव शुभान्वरान्॥३६॥

ऋषि मधुच्छन्दा कहते हैं—हे देवेश! आप कृपया राजा तथा मेरी प्रियवादिनी पत्नी को जीवन प्रदान करिये। मुझे आप उत्तम पुत्र का तथा राजा को अन्य उत्तम वर दीजिये॥३६॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रादाज्जगन्नाथः शर्यातिं रत्नभूषितम्। तां च भार्यां वरानन्यासर्वं क्षेममयं तथा॥३७॥

ततो यातः प्रियाविष्टः प्रीतेन च पुरोधसा।
ययौ सुखी स्वकं देशं तत्तु तीर्थं शुभं स्मृतम्॥३८॥

तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च। ततः प्रभृति तत्तीर्थं भानुतीर्थमुदाहृतम्॥३९॥

मृतसञ्जीवनं चैव शार्यातं चेति विश्रुतम्। माधुच्छन्दसमाख्यातं स्मरणात्पापनुन्मुने॥४०॥

तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्। मृतसञ्जीवनं तत्स्यादायुरारोग्यवर्धनम्॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥६९॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर जगन्नाथ सूर्य ने रत्नभूषित राजा शर्याति तथा मधुच्छन्दा की भार्या को जीवनदान तथा राजा को अन्य वर प्रदान किया। उन्होंने इन लोगों को अनेक शुभ वरात्मक आशीर्वाद भी प्रदान किया। तब राजा प्रभृति सभी लोग तथा मधुच्छन्दा दम्पति स्वदेश चले गये। तभी से इस शुभ तीर्थ की उत्पत्ति हो गई। यहां तीन हजार तीर्थ हैं। तभी से यह तीर्थ भानुतीर्थ कहा गया। यह तीर्थ मृतसंजीवन तथा शर्याति तीर्थ कहलाया। इसका मधुच्छन्दस तीर्थ भी एक नाम है। हे मुनिवर! यह तीर्थ स्मरण करने से ही पाप नाश कर देता है। यहां इन तीर्थों में स्नान-दान से यज्ञफल मिलता है। उक्त मृतसंजीवन तीर्थ आयु तथा आरोग्य प्रदाता है॥३७-४१॥

॥अष्टत्रिंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

खड्गतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

खड्गतीर्थमिति ख्यातं गौतम्या उत्तरे तटे। तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिभागी भवेन्नरः॥१॥
तत्र वृत्तं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः। पैलूष इति विख्यातः कवषस्य सुतो द्विजः॥२॥
कुटुम्बभारात्परितो ह्यर्थार्थी परिधावति। न किमप्यासससादासौ ततो वैराग्यमास्थितः॥३॥
अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थीभूते तु पौरुषे। न वैराग्यादन्यदस्ति पण्डितस्यावलम्बनम्॥४॥
इति सञ्चिन्तयामास तदाऽसौ निःश्वसन्मुहुः। क्रमागतं धनं नास्ति पोष्याश्च बहवो मम॥५॥
मानी चाऽऽत्मा न कष्टार्हो हा धिग्दुर्दैवचेष्टितम्।
स कदाचिद्वृत्तियुतो वृत्तिभिः परिवर्तयन्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—गौतमी के उत्तर तट पर एक विख्यात तीर्थ खड्गतीर्थ है। वहां स्नान-दान करने से मनुष्य मुक्तिभागी हो जाता है। हे नारद! इस सम्बन्ध में उपाख्यान कहता हूं। आप यत्नतः श्रवण करिये। कवष का पुत्र था प्रसिद्ध द्विज पैलूष। वह परिवार के लोगों का पालन करने हेतु धन कामना से यत्र-तत्र दौड़ता था। तथापि एक दिन उसे कुछ भी नहीं मिला। अतः उसे दुःख के कारण वैराग्य हो गया। यदि दैव विमुख है तथा यदि सर्वदा पौरुष भी नष्ट हो जाये, तब विद्वान् व्यक्ति वैराग्य के अतिरिक्त किसका आश्रय लेगा? उस समय वह ब्राह्मण पुनः-पुनः दीर्घ श्वास छोड़ता यह विचार करने लगा कि "मेरे पास पैतृक कुलक्रम से प्राप्त कुछ भी धन नहीं है। इधर अनेक लोग मेरे आश्रित हैं। मैं स्वाभिमानी हूं। कष्ट भोगने योग्य नहीं हूं। दुर्दैव के कारण कार्य-व्यापार को धिक्कार!" अतः वह ब्राह्मण धन लाभार्थ एक वृत्ति को ग्रहण करता (उसमें असफल होकर) अन्य वृत्ति ग्रहण करता। इस प्रकार वह वृत्ति परिवर्तित करने लगा।।१-६।।

न लेभे तद्धनं वृत्तेर्विरागमगमत्तदा। सेवा निषिद्धा या काचिद्गहना दुष्करं तपः॥७॥
बलादाकर्षतीयं मां तृष्णा सर्वत्र दुष्कृते। त्वयाऽपकृतमज्ञानात्तस्मात्तृष्णे नमोऽस्तु ते॥८॥

तथापि इस वृत्ति बदलने से भी उसे आशानुकूल परिणाम नहीं मिला। उसे पोष्यवर्ग के पालनार्थ उपयोगी धनलाभ नहीं हो सका। अतः वह वैराग्यवान् हो गया। वह विचाररत हो गया कि "मेरे लिये सेवा तो निषिद्ध तथा दुःसाध्य है (ब्राह्मण हेतु सेवा करना वर्जित है)। तप भी अत्यन्त दुष्कर होता है। तथापि यह विषयरूपा तृष्णा बलात् मुझे बारम्बार दुष्कर्म करने हेतु खींच रही है। हे तृष्णा! मैं अज्ञानी हूं, अतः तुमने मेरा अपकार किया है। अब तुमको प्रणाम!"।।७-८।।

एवं विचिन्त्य मेधावी तृष्णाछेदाय किं भवेत्।
इत्यालोच्य स पैलूषः पितरं वाक्यमब्रवीत्॥९॥

वह बुद्धिमान् पैलूष यह कहने के पश्चात् तृष्णाक्षय हेतु विचार करके अपने पिता के पास जाकर कहने लगा—।।९।।

पैलूष उवाच

ज्ञानासिना क्रोधलोभौ संसृतिं चातिदुस्तराम्। छेद्मीमां केन हे तात तमुपायं वद प्रभो॥१०॥

पैलूष कहता है—हे तात! ज्ञानरूप तलवार से क्रोध, लोभ यहां तक कि अत्यन्त दुस्तर संसृति (पुनर्जन्म) का छेदन हो सकता है, तथापि इस तृष्णा का छेदन कैसे हो? उसका उपाय कहें।।१०।।

कवष उवाच

ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः। तस्मादाराधयेशानं ततो ज्ञानमवाप्स्यसि॥११॥

कवष ब्राह्मण कहता है—तृष्णा नाशार्थ ईश्वर से ज्ञान की आकांक्षा करो। इस प्रकार की वैदिकी श्रुति है। अतः ईशानदेव (शंभु) की आराधना करो। इससे ज्ञानलाभ होगा।।११।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स पैलूषो ज्ञानायेश्वरमार्चयत्। ततस्तुष्टो महेशानो ज्ञानं प्रादाद्द्विजातये।
प्राप्तज्ञानो महाबुद्धिर्गाथाः प्रोवाच मुक्तिदाः॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—पैलूष ने कहा—"यही हो" और वह ज्ञानलाभार्थ ईश्वरोपासना करने लगा। इससे महेश्वर सन्तुष्ट हो गये तथा उस द्विज को ज्ञान प्रदान किया। महान् बुद्धिमान् पैलूष ने ज्ञानलाभ के उपरान्त यह मुक्तिप्रद गाथा कहा था।।१२।।

पैलूष उवाच

क्रोधस्तु प्रथमं शत्रुर्निष्फलो देहनाशनः। ज्ञानखड्गेन तं छित्त्वा परमं सुखमाप्नुयात्॥१३॥
तृष्णा बहुविधा माया बन्धनी पापकारिणी।
छित्त्वैतां ज्ञानखड्गेन सुखं तिष्ठति मानवः॥१४॥
सङ्गस्तु परमोऽधर्मो देवादीनामिति श्रुतिः।
असङ्गस्याऽऽत्मनोऽप्यस्य सङ्गोऽयं परमो रिपुः॥१५॥

पैलूष कहता है—क्रोध परम शत्रु है, वह पहला शत्रु है, जो निष्फल एवं देहनाशक है। इसे ज्ञानरूपी खड्ग से छेदन करने से परम पुण्य मिलता है। मायारूपी तृष्णा अनेक प्रकार की होती है। वह पापकारिणी तथा संसार-बन्धन में बद्ध करने वाली है। उसे ज्ञान खड्ग से काट देने वाला व्यक्ति सुख से रहता है। संग परम अधर्म है। यह देवगण की श्रुति है। आत्मा असंग है। संग ही उसका परम शत्रु है।।१३-१५।।

छित्त्वैनं ज्ञानखड्गेन शिवैकत्वमवाप्नुयात्। संशयः परमो नाशो धर्मार्थानां विनाशकृत्॥१६॥
छित्त्वैनं संशयं जन्तुः परमेप्सितमाप्नुयात्।
पिशाचीव विशत्याशा निर्दहत्यखिलं सुखम्।
पूर्णाहन्तासिना छित्त्वा जीवन्मुक्तिमवाप्नुयात्॥१७॥

संग का छेदन ज्ञानरूपी खड्ग से होगा। संशय परम विनाश का उपाय है। वह धर्म-अर्थ विनाशक

है। प्राणी ज्ञान खड्ग से इसे काट कर परम इष्ट की प्राप्ति कर लेता है। आशा तो पिशाचिनी की तरह मनुष्यों के हृदय में जाकर समस्त सुख को दग्ध कर देती है। "मैं पूर्ण हूं" इस प्रकार के ज्ञान खड्ग से इसे काटने वाला व्यक्ति जीवन्मुक्त हो जाता है।।१६-१७।।

ब्रह्मोवाच

ततो ज्ञानमवाप्यासौ गङ्गातीरं समाश्रितः। ज्ञानखड्गेन निर्मोहस्ततो मुक्तिमवाप सः।।१८।।
ततः प्रभृति तत्तीर्थं खड्गतीर्थमिति स्मृतम्। ज्ञानतीर्थं च कवषं पैलूषं सर्वकामदम्।।१९।।
इत्यादिषट्सहस्राणि तीर्थान्याहुर्महर्षयः। अशेषपापतापौघहराणीष्टप्रदानि च।।२०।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये-खड्गतीर्थवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३९।।

गौतमीमाहात्म्ये सप्ततितमोऽध्यायः।।७०।।

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् पैलूष ब्राह्मण ने ज्ञान पाकर गंगा-गौतमी तट का आश्रय लिया तथा ज्ञानरूपी खड्ग से मोह रहित होकर मुक्त हो गया। तभी से यह तीर्थ खड्गतीर्थ कहा गया। इसे ज्ञानतीर्थ, खड्गतीर्थ, कवषतीर्थ तथा पैलूषतीर्थ भी कहते हैं। यह सर्वकामप्रद तीर्थ है। यहां पापसमूहनाशक छः हजार तीर्थ भी हैं। वे सभी महर्षियों के अनुसार अशेष पाप-ताप के समूह का नाश करने वाले तथा वांछित सिद्धिप्रद हैं।।१८-२०।।

।।एकोनचत्वारिंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अन्विन्द्रात्रेय तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

आत्रेयमिति विख्यातमन्विन्द्रं तीर्थमुत्तमम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि भ्रष्टराज्यप्रदायकम्।।१।।
गौतम्या उत्तरे तीरे आत्रेयो भगवानृषिः। अन्वारेभेऽथ सत्राणि ऋत्विग्भिर्मुनिभिर्वृतः।।२।।
तस्य होताऽभवत्त्वग्निर्हव्यवाहन एव च। एवं सत्रे तु सम्पूर्ण इष्टिं माहेश्वरीं पुनः।।३।।
कृत्वैश्वर्यमगाद्विप्रः सर्वत्र गतिमेव च। इन्द्रस्य भवनं रम्यं स्वर्गलोकं रसातलम्।।४।।

ब्रह्मा कहते हैं—आत्रेय नामक जो विख्यात तीर्थ है, वह अत्युत्तम तीर्थ है। यह तीर्थ अन्विन्द्र तीर्थ भी कहा जाता है। यह भ्रष्टराज्य दायक है। उसका प्रभाव कहता हूं। भगवान् आत्रेय ऋषि ने गौतमी के उत्तर तीर

पर मुनि-ऋषिगण के साथ विविध सत्र (यज्ञ) आरंभ किया। उनके इस सत्र में हव्यवाहन अग्नि होता थे। यह सत्र पूर्ण होने पर उन्होंने पुनः माहेश्वरी इष्टि प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने इस इष्टि का सम्पादन करके ऐश्वर्य तथा सर्वत्र आवागमन की शक्ति पा लिया, तब वे विप्रेन्द्र इस शुभ तपबल के द्वारा स्वेच्छानुरूप रमणीय इन्द्रलोक, स्वर्ग, रसातल सर्वत्र आवागमन करने लगे।।१-४।।

स्वेच्छया याति विप्रेन्द्रः प्रभावात्तपसः शुभात्। स कदाचिद्दिवं गत्वा इन्द्रलोकमगात्पुनः।।५।।
तत्रापश्यत्सहस्राक्षं सुरैः परिवृतं शुभैः। स्तूयमानं सिद्धसाध्यैः प्रेक्षन्तं नृत्यमुत्तमम्।
शृण्वानं मधुरं गीतमप्सरोभिश्च वीजितम्।।६।।

अपने शुभ तपः प्रभाव से वे महर्षि स्वेच्छया विचरण करते-करते एक बार स्वर्ग जाकर पर्यटन करते इन्द्रलोक पहुंचे। वहां उन्होंने शुभ देवगण के बीच आसीन सहस्राक्ष इन्द्र को देखा। वे सिद्धों-साध्यों से स्तुत होकर उत्तम नृत्य देख रहे थे। अप्सरायें उनको चमर झल रही थीं। वे वहां मधुर गीतों को सुन रहे थे।।५-६।।

उपोपविष्टैः सुरनायकैस्तैः, सम्पूज्यमानं महदासनस्थम्।
जयन्तमङ्के विनिधाय सूनुं, शच्या युतं प्राप्तरतिं महिष्ठम्।।७।।
सतां शरण्यं वरदं महेन्द्रं, समीक्ष्य विप्राधिपतिर्महात्मा।
विमोहितोऽसौ मुनिरिन्द्रलक्ष्म्या, समीहयामास तदिन्द्रराज्यम्।।८।।
सम्पूजितो देवगणैर्यथावत्स्वमाश्रमं वै पुनराजगाम।
समीक्ष्य तां शक्रपुरीं सुरम्यां, रत्नैर्युतां पुण्यगुणैः सुपूर्णाम्।।९।।
स्वमाश्रमं निष्प्रभहेमवर्ज्यं, समीक्ष्य विप्रो विरमं जगाम।
समीहमानः सुरराज्यमाशु, प्रियां तदोवाच महात्रिपुत्रः।।१०।।

वे इन्द्रदेव समीप बैठे देवगण द्वारा स्तुत हो रहे थे। उन्होंने अपने पुत्र जयन्त को गोद में बैठाया था। वे देवी शचि के साथ प्रसन्न चित्त से महान् आसन पर आसीन थे। विप्राधिपति महात्मा आत्रेय ने उन महान् लोगों के आश्रय वरदाता इन्द्र को देखा। इन्द्र की ऐश्वर्य लक्ष्मी से वे महर्षि अत्रि विमोहित हो गये। वे मन ही मन इन्द्र राज्य पाने की कामना करने लगे। तदनन्तर वे देवगण द्वारा सम्मानित होकर पुनः अपने आश्रम वापस आ गये। महर्षि ने इन्द्रपुरी को सुरम्य, रत्नों से युक्त तथा पुण्य गुणों से पूर्ण देखा। उसकी तुलना में उनको अपना आश्रम स्वर्ण रहित निष्प्रभ लगा, जिससे वे उदास हो गये। यह देख कर वे अत्रिपुत्र ऐश्वर्य पाने की कामना करने लगे। वे वह सुरराज्य पाने के इच्छुक होकर अपनी स्त्री से कहने लगे।।७-१०।।

आत्रेय उवाच

भोक्तुं न शक्तोऽस्मि फलानि मूलान्यनुत्तमान्यप्यतिसंस्कृतानि।
स्मृत्वाऽमृतं पुण्यतमं च तत्र, भक्ष्यं च भोज्यं च वरासनानि।
स्तुतिं च दानं च सभां शुभां च, अस्त्रं च वासांसि पुरीं वनानि।।११।।

ऋषि आत्रेय कहते हैं—हे प्रिये! इन्द्रलोक के अमृत, पुण्यतम भक्ष्य-भोज्य, उत्तम आसन, वहां की

स्तुति, दान, शुभा सभा, अस्त्र, वस्त्र, पुरी, नन्दनवन, इन सब का स्मरण करके मैं अब यहां के अनुत्तम अन्न के अतीव यत्न से संस्कृत होने पर भी उसका भोजन नहीं कर पा रहा हूं।।११।।

ब्रह्मोवाच

ततो महात्मा तपसः प्रभावात्त्वष्टारमाहूय वचो बभाषे॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर महात्मा आत्रेय ने तप के प्रभाव से विश्वकर्मा का आवाहन किया तथा उनसे कहा—।।१२।।

आत्रेय उवाच

इच्छेयमिन्द्रत्वमहं महात्मन्कुरुष्व शीघ्रं पदमैन्द्रमत्र।
ब्रूषेऽन्यथा चेन्मदुदीरितं त्वं, भस्मीकरोम्येव न संशयोऽत्र॥१३॥

ऋषि आत्रेय कहते हैं—हे महात्मन्! मैं इन्द्रत्व चाहता हूं। अतएव आप यहां शीघ्र इन्द्रपद के लिये निर्माण करिये। मैंने जो कुछ कहा है, यदि आपने वह नहीं किया, तब मैं आपको भस्म कर दूंगा। इसमें सन्देह नहीं है।।१३।।

ब्रह्मोवाच

तदत्रिवाक्यात्त्वरितः प्रजानां, स्रष्टा विभुर्विश्वकर्मा तदैव।
चकार मेरुं च पुरीं सुराणां, कल्पद्रुमान्कल्पलतां च धेनुम्॥१४॥
चकार बज्रादिविभूषितानि, गृहाणि शुभ्राण्यतिचित्रितानि।
चकार सर्वावयवानवद्यां, शचीं स्मरस्येव विहारशालाम्॥१५॥
सभां सुधर्माणमहो क्षणेन, तथा चकाराप्सरसो मनोज्ञाः।
चकार चोच्चैःश्रवसं गजं च, वज्रादि चास्त्राणि सुरानशेषान्॥१६॥
निवार्यमाणः प्रिययाऽत्रिपुत्रः, शचीसमामात्मवधूं चकार।
तदाऽत्रिपुत्रोऽत्रिमुखैः समेतो, वज्रादिरूपं च चकार चास्त्रम्॥१७॥
नृत्यादि गीतादि च सर्वमेव, चकार शक्रस्य पुरे च दृष्टम्।
तत्सर्वमासाद्य तदा मुनीन्द्रः, प्रहृष्टचेताः सुतरां बभूव॥१८॥
आपातरम्येष्वपि कस्य नाम, भवत्यपेक्षा न हि गोचरेषु।
श्रुत्वा च दैत्या दनुजाः समेता, रक्षांसि कोपेन युतानि सद्यः॥१९॥
स्वर्गं परित्यज्य कुतो हरिर्भुवं, समागतो न्वेष मिथः सुखाय।
तस्माद्वयं याम इतो नु योद्धुं, वृत्रस्य हन्तारमदीर्घसत्रम्॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—प्रजापति विभु विश्वकर्मा ने ऋषि आत्रेय का यह कथन सुनकर तत्काल वहां मेरुपर्वत, देवपुरी, कल्पद्रुम, कल्पलता, कामदुधा गौ का निर्माण कर दिया। उन्होंने वहां विचित्र मणि हीरकादि से जड़ा

शुभ गृह समूह, सर्वाङ्गसुन्दरी शची, कामदेव की विहारशाला के समान सुन्दर विहारशाला, सुधर्मा सभा, मनोहर अप्सरादल की सृष्टि कर दिया। उन्होंने उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत हाथी, वज्रादि अश्व तथा अनेकानेक देवगण का वहां निर्माण कर दिया। इन आत्रेय ऋषि ने अपनी पत्नी के मना करने पर भी उस शची के समान नारी को अपनी वधू बना दिया। तदनन्तर ऋषि आत्रेय ने अत्रि प्रभृति महर्षियों से मिलित होकर वज्रादि सभी दिव्यास्त्रों का अस्त्र निर्माण कर लिया। उन्होंने स्वर्गीय नृत्य-गीतादि जो कुछ इन्द्रपुरी में देखा था, उन सब विषय का वहां निर्माण करा लिया। तब अत्रिपुत्र मुनीन्द्र आत्रेय इन्द्र का ऐश्वर्यलाभ करके अतीव प्रसन्न चित्त वाले हो गये। यह बात सत्य है कि देखने में आकर्षक विषय यदि दृष्टिगोचर होते हैं, तब उनके प्रति कौन आसक्त नहीं हो जाता। तब दैत्य दानवों ने यह विचार किया कि हरि इन्द्र स्वर्ग छोड़कर भूतल पर सुखभोग हेतु क्यों आ गये? अतः क्रोध के साथ उन्होंने यह निश्चित किया कि जो भी हो, हम वृत्रहन्ता वैरी इन्द्र के साथ युद्धार्थ यहां से चलें (उन लोगों ने अत्रिनन्दन आत्रेय को इन्द्र समझा)।।१४-२०।।

ततः समागत्य तदाऽत्रिपुत्रं, संवेष्टयामासुरथासुरास्ते।
संवेष्टयित्वा पुरमत्रिपुत्रकृतं तथा चेन्द्रपुराभिधानम्।
तैर्वध्यमानः शस्त्रपातैर्महद्भिस्ततो भीतो वाक्यमिदं जगाद॥२१॥

उन्होंने आकर उस इन्द्रपुरी के समान शोभिता आत्रेय की पुरी को घेर लिया। उन्होंने अत्रिपुर को घेर कर वहां भयंकर अस्त्रों का प्रहार करने लगे। इससे ऋषि आत्रेय भयभीत होकर कहने लगे।।२१।।

आत्रेय उवाच

यो जात एवं प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां, नृम्णस्य महना स जनास इन्द्रः॥२२॥

अत्रिपुत्र कहते हैं—जो नित्य आनन्दमय, मनस्वी तथा सर्वप्रथम उद्भूत हैं, जिन्होंने यज्ञ सम्पादन करके देवगण के भूषणस्वरूप स्थितिलाभ किया है, जिनके प्रभाव से स्वर्लोक, भूलोक सम्यक् व्याप्त रहता है, जो समस्त क्लेश के नाशक तथा संसारसुख साधक हैं, वही इन्द्र हैं। मैं इन्द्र नहीं हूं।।२२।।

ब्रह्मोवाच

इत्यादिसूक्तेन रिपूनुवाच, हरिं च तुष्टाव तदाऽत्रिपुत्रः॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब इस सूक्त से आत्रेय ने इन्द्र का महत्व स्थापित करके अपने शत्रुगण से कहा—।।२३।।

आत्रेय उवाच

नाहं हरिर्नैव शची मदीया, नेयं पुरी नैव वनं तदैन्द्रम्।
स एव चेन्द्रो वृत्रहन्ता स वज्री, सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहुः॥२४॥
अहं तु विप्रो वेदविद्ब्रह्मवृन्दैः, समाविष्टो गौतमीतीरसंस्थः।
यत्राऽऽयत्यां नाद्य वा सौख्यहेतुस्तच्चाकार्षं कर्म दुर्दैवयोगात्॥२५॥

ऋषि आत्रेय कहते हैं—मैं इन्द्र नहीं हूं। जिन शचीरूपी नारी को देखते हो, यह भी वास्तविक इन्द्रपत्नी नहीं हैं। यह वन भी इन्द्र का नन्दनवन नहीं है। वे वृत्रहन्ता, गोत्रभेत्ता (पर्वतों के पंख छेदक) वज्रधारी, वज्रबाहु, सहस्राक्ष ही वास्तविक इन्द्र हैं। वे स्वर्गस्थ इन्द्र हैं। मैं तो वेदज्ञ विप्र हूं तथा सदैव गौतमी तीर पर वेदज्ञ ब्राह्मणों के साथ स्थित रहता हूं। दुर्दैव के योग के कारण मैंने ऐसा कर्म किया है, जो वर्तमान किंवा भविष्य के सुख का कारण नहीं है।।२४-२५।।

असुरा ऊचुः

संहरस्वेदमात्रेय यदिन्द्रस्य विडम्बनम्। क्षेमस्ते भविता सत्यं नान्यथा मुनिसत्तम॥२६॥

असुरगण कहते हैं—हे आत्रेय! तुम इन्द्र की नकल करना छोड़ो। इसी से तुम्हारा मंगल होगा। हे मुनिसत्तम! यही तुम्हारे कल्याण का मार्ग है। अन्य कल्याणमार्ग है ही नहीं।।२६।।

ब्रह्मोवाच

तदाऽऽत्रयोऽब्रवीद्वाक्यं यथा वक्ष्यन्ति मामिह।
करोम्येव महाभागाः सत्येनाग्निं समालभे॥२७॥
एवमुक्त्वा स दैतेयांस्त्वष्टारं पुनरब्रवीत्॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब आत्रेय ऋषि ने कहा—"जो कुछ तुम लोगों ने कहा, मैं वैसा ही करूंगा। हे महाभाग! मैं अग्नि की शपथ लेता हुआ सत्य कह रहा हूं।" इस प्रकार आत्रेय ने दैत्यों से यह कहने के अनन्तर त्वष्टा (विश्वकर्मा) से कहा—।।२७-२८।।

आत्रेय उवाच

यत्कृतं त्वत्र मत्प्रीत्या ऐन्द्रं त्वष्टः पदं त्वया।
संहरस्व पुनः शीघ्रं रक्ष मां ब्राह्मणं मुनिम्॥२९॥
पुनर्देहि पदं मह्यमाश्रमं मृगपक्षिणः। वृक्षांश्च वारि यत्राऽऽसीन्न मे दिव्यैः प्रयोजनम्।
सर्वमक्रममायातं न सुखाय मनीषिणाम्॥३०॥

आत्रेय कहते हैं—हे त्वष्टा! आपने मेरी प्रसन्नता के लिये जिस इन्द्रपद को यहां स्थापित किया है, उसका संहार करिये। इस प्रकार इस ब्राह्मण मुनि (मेरी) रक्षा करो। पुनः मृगपक्षियों से भरा आश्रम, वहां के वे वृक्षादि, वहां का जलाशय, जो जैसा था, वैसा पहले की तरह करिये। मुझे इन दिव्य ऐश्वर्य का कोई प्रयोजन नहीं है। वास्तव में विधिविहित नियमपरम्परा का उल्लंघन करने से वह सुखप्रद नहीं होता।।२९-३०।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा प्रजानाथस्त्वष्टा संहृतवांस्तदा।
दैत्याश्च स्वस्थानं जग्मुः कृत्वा देशमकण्टकम्॥३१॥
त्वष्टा चापि ययौ स्थानं स्वकं सम्प्रहसन्निव।
आत्रेयोऽपि तदा शिष्यैः संवृत्तः सह भार्यया॥३२॥
गौतमीतीरमाश्रित्य तपोनिष्ठोऽखिलैर्वृतः। वर्तमाने महायज्ञे लज्जितो वाक्यमब्रवीत्॥३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर प्रजानाथ त्वष्टा ने कहा—"वही करूंगा" तथा उन्होंने इन्द्र ऐश्वर्य वाली माया का संहार कर लिया। तब दैत्यगण भी उस स्थान को निष्कण्टक जानकर स्वस्थान चले गये। त्वष्टा भी हंसते हुये वहां से लौट गये। आत्रेय ऋषि भी गौतमी तट पर स्थित अपने महायज्ञस्थल में पत्नी, शिष्य तथा तपःशील ब्राह्मणों के साथ जाकर लज्जित स्थिति में कहने लगे।।३१-३३।।

आत्रेय उवाच

अहो मोहस्य महिमा ममापि भ्रान्तचित्तता।
किं महेन्द्रपदं लब्धं किं मयाऽत्र पुरा कृतम्॥३४॥

महर्षि आत्रेय कहते हैं—अहो! मोह की कैसी महिमा है! इसके कारण मैं भी भ्रान्तचित्त हो गया था। मैंने पहले तो तपस्या किया था, तत्पश्चात् मोह में आकर महेन्द्रपद पाया!।।३४।।

ब्रह्मोवाच

एवं वदन्तमात्रेयं लज्जितं प्राब्रुवन्सुराः॥३५॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब आत्रेय ने लज्जित होकर ऐसा कहा, तब देवता उनसे कहने लगे।।३५।।

सुरा ऊचुः

लज्जां जहि महाबाहो भविता ख्यातिरुत्तमा।
आत्रेयतीर्थे ये स्नानं प्राणिनः कुर्युरञ्जसा॥३६॥
इन्द्रास्ते भवितारो वै स्मरणात्सुखभागिनः। तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थान्याहुर्मनीषिणः॥३७॥
अन्विन्द्रात्रेयदैतेयनामभिः कीर्तितानि च। तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम्॥३८॥

देवगण कहते हैं—हे महाबाहु! लज्जा त्याग करिये। इससे आपकी उत्तमा प्रसिद्धि होगी। यहां आदित्य तीर्थ में जो लोग स्नान करेंगे, वे इन्द्र होंगे। जो इस वृत्तान्त को स्मरण करेगा, वह सुखभागी होगा। यहां पांच हजार तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। इन तीर्थों का नाम अन्विन्द्र, आत्रेय, दैतेय आदि होंगे। यहां इनमें स्नान-दान करने पर अक्षय पुण्यलाभ होगा।।३६-३८।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विबुधा याताः सन्तुष्टश्चाभवन्मुनिः॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽन्विन्द्रात्रेयादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४०।।

गौतमीमाहात्म्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः।।७१।।

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहकर देवता स्वस्थान चले गये। साथ ही मुनि आत्रेय भी प्रसन्न हो गये।।३९।।

।।चत्वारिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कपिला संगम नामक तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

कपिलासङ्गमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। तत्र नारद वक्ष्यामि कथां पुण्यामनुत्तमाम्॥१॥
कपिलो नाम तत्त्वज्ञो मुनिरासीन्महायशाः। क्रूरश्चापि प्रसन्नश्च तपोव्रतपरायणः॥२॥
तपस्यन्तं मुनिश्रेष्ठं गौतमीतीरमाश्रितम्। तमागत्य महात्मानं वामदेवादयोऽब्रुवन्॥३॥
हत्वा वेनं ब्रह्मशापैर्नष्टधर्मे त्वराजके। कपिलं सिद्धमाचार्यमूचुर्मुनिगणास्तदा॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! कपिला संगम नामक जो त्रैलोक प्रसिद्ध तीर्थ है, उसके सम्बन्ध में पुण्यमय अत्युत्तम कथा श्रवण करो। कभी कपिल नामक एक तत्ववेत्ता महायशस्वी तपःपरायण मुनि थे। वे सामान्य कारणों से ही क्रोधित किंवा प्रसन्न हो जाते थे। जब वामदेव आदि मुनियों ने शाप द्वारा राजा वेण को निहत किया था, तब राज्य में अराजकता फैल गयी। धर्म लुप्तप्रायः होने लगा। ऐसी स्थिति में वे सभी मुनिगण गौतमी तट स्थित तपस्या परायण सिद्ध आचार्य महात्मा मुनिप्रवर कपिल के यहां आकर कहने लगे।।१-४।।

मुनिगणा ऊचुः

गते वेदे गते धर्मे किं कर्त्तव्यं मुनीश्वर॥५॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनीश्वर! वेद लुप्त है, धर्म भी नष्ट हो रहा है। अब क्या करें?।।५।।

ब्रह्मोवाच

ततोऽब्रवीन्मुनिर्ध्यात्वा कपिलस्त्वागतान्मुनीन्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर कपिल मुनि ने ध्यानोपरान्त उन मुनिगण से कहा—।।६।।

कपिल उवाच

वेनस्योरुर्विमथ्योऽभूत्ततः कश्चिद्भविष्यति॥७॥

ऋषि कपिल कहते हैं—वेनराजा के शरीर का उरु प्रदेश मंथन करिये। तभी कुछ हो सकेगा।।७।।

ब्रह्मोवाच

तथैव चक्रुर्मुनयो वेनस्योरुं विमथ्य वै। तत्रोत्पन्नो महापापः कृष्णो रौद्रपराक्रमः॥८॥
तं दृष्ट्वा मुनयो भीता निषीदस्वेति चाब्रुवन्। निषादः सोऽभवत्तस्मान्निषादाश्चाभवंस्ततः॥९॥
वेनबाहुं ममन्थुस्ते दक्षिणं धर्मसंहितम्। ततः पृथुस्वरश्चैव सर्वलक्षणलक्षितः॥१०॥
राजाऽभवत्पृथुः श्रीमान्ब्रह्मसामर्थ्यसंयुतः। तमागत्य सुराः सर्वे अभिनन्द्य वराञ्शुभान्॥११॥
तस्मै ददुस्तथाऽस्त्राणि मन्त्राणि गुणवन्ति च।
ततोऽब्रुवन्मुनिगणास्तं पृथुं कपिलेन च॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर मुनियों ने वेण के उरु प्रदेश का मंथन किया। उससे महापापमय कृष्णवर्ण रौद्र पराक्रमी एक पुरुष जन्मा। मुनियों ने उसे देख कर भीतग्रस्तता पूर्वक कहा—'निषीद' (बैठ जाओ) अतः वह निषाद कहलाया। उससे निषाद उत्पन्न हो गये थे। तत्पश्चात् मुनिगण ने वेण के धर्मसमन्वित दाहिने बाहु का मन्थन किया। उससे सभी उत्तम लक्षणों वाले श्रीमान् ब्रह्मसामर्थ्य समन्वित पृथु स्वर वाले एक पुरुष की उत्पत्ति हो गयी। मुनिगण ने उसे पृथु नाम से युक्त करके राजा बना दिया। उन पृथु के राजा होने पर वहां सभी देवता आये तथा उनका अभिनन्दन करने के पश्चात् उनको नाना शुभ वर, अनेक अस्त्र तथा अनेक गुणों वाले मन्त्रों को प्रदान किया। तत्पश्चात् कपिल एवं सभी मुनिगण ने पृथुराज से कहा—।।८-१२।।

मुनय ऊचुः

आहारं देहि जीवेभ्यो भुवा ग्रस्तौषधीरपि॥१३॥

मुनिगण कहते हैं—हे राजन्! आप क्षुधापीड़ित प्राणीगण को आहार दीजिये। पृथिवी ने जिन समस्त महौषधियों (अन्न आदि का) का ग्रास कर लिया है, वह भी दीजिये।।१३।।

ब्रह्मोवाच

ततः स धनुरादाय भुवमाह नृपोत्तमः॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—ऋषियों से यह सुनकर उन नृपोत्तम ने धनुष उठाया तथा पृथिवी से कहा—।।१४।।

पृथुरुवाच

ओषधीर्देहि या ग्रस्ताः प्रजानां हितकाम्यया॥१५॥

पृथु कहते हैं—तुमने जिन सभी औषधियों का ग्रास किया है, वह अब प्रजागण की हितकामना के लिये प्रदान करो।।१५।।

ब्रह्मोवाच

तमुवाच मही भीता पृथुं तं पृथुलोचनम्॥१६॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब पृथिवी ने भयभीत होकर राजा पृथु से कहा—।।१६।।

मह्युवाच

मयि जीर्णा महौषध्यः कथं दातुमहं क्षमा॥१७॥

पृथिवी कहती है—सभी महौषधि मुझमें जीर्ण हो गयीं। अब उनको कैसे दे सकूंगी?।।१७।।

ब्रह्मोवाच

ततः सकोपो नृपतिस्तामाह पृथिवीं पुनः॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर राजा पृथु ने क्रोधित होकर पुनः कहा—।।१८।।

पृथुरुवाच

नो चेद्दास्यद्य त्वां हत्वा दास्ये महौषधीः॥१९॥

राजा पृथु कहते हैं—यदि तुम उनको प्रदान नहीं करोगी, तब मैं तुम्हारा वध करके उन महौषधियों को प्रजा को प्रदान करूंगा।।१९।।

भूमिरुवाच

कथं हंसि स्त्रियं राजञ्ज्ञानी भूत्वा नृपोत्तम।
विना मया कथं चेमाः प्रजाः सन्धारयिष्यसि॥२०॥

भूमि कहती हैं—हे राजन्! तुम तो ज्ञानी हो। स्त्री हत्या कैसे करोगे? मेरे न रहने पर इन प्रजाओं को कौन धारण करेगा?।।२०।।

पृथुरुवाच

यत्रोपकारोऽनेकानामेकनाशे भविष्यति। न दोषस्तत्र पृथ्वी तपसा धारये प्रजाः॥२१॥
न दोषमत्र पश्यामि नाऽऽचक्षेऽनर्थकं वचः। यस्मिन्निपातिते सौख्यं बहूनामुपजायते।
मुनयस्तद्वधं प्राहुरश्वमेधशताधिकम्॥२२॥

पृथुराज कहते हैं—जहां एक के विनाश से अनेक का उपकार साधित हो, हे पृथिवी! उसके वध से कोई दोष नहीं होगा। मैं तपः के प्रभाव से प्रजा धारण करूंगा। इस कार्य में मैं कोई दोष नहीं देख रहा हूं। मैं अनर्थक वाक्य नहीं कहता। जिसका वध करने पर अनेक लोगों का सुख सम्पन्न हो सके, उसका वध कर देने पर सौ अश्वमेध यज्ञ का फललाभ होता है।।२१-२२।।

ब्रह्मोवाच

ततो देवाश्च ऋषयः सान्त्वयित्वा नृपोत्तमम्। महीं च मातरं देवीमूचुः सुरगणास्तदा॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय देवताओं तथा ऋषियों ने समझा-बुझा कर राजा पृथु को सान्त्वना प्रदान किया तथा शान्त किया। तब देवगण ने माता पृथिवी से कहा—।।२३।।

देवा ऊचुः

भूमे गोरूपिणी भूत्वा पयोरूपा महौषधीः। देहि त्वं पृथवे राज्ञे ततः प्रीतो भवेन्नृपः।
प्रजासंरक्षणं च स्यात्ततः क्षेमं भविष्यति॥२४॥

देवता कहते हैं—हे भूमि! तुम गौ रूप धारण करके पृथु राजा को दुग्धरूपेण महौषधि प्रदान करो। इससे राजा प्रसन्न हो जायेंगे। साथ ही प्रजा की रक्षा भी होगी। इस कार्य से सर्वत्र मंगल होगा।।२४।।

ब्रह्मोवाच

ततो गोरूपमास्थाय भूम्यासीत्कपिलान्तिके।
दुदोह च महौषध्यो (धी) राजा वेनकरोद्भवः॥२५॥
यत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः कपिलो मुनिः। महीं गोरूपमापन्नां नर्मदायां महामुनेः॥२६॥
सरस्वत्यां भागीरथ्यां गोदावर्यां विशेषतः। महानदीषु सर्वासु दुदुहेऽसौ पयो महत्॥२७॥

सा दुह्यमाना पृथुना पुण्यतोयाऽभवन्नदी। गौतम्या सङ्गता चाभूत्तदद्भुतमिवाभवत्॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर धरती ने गौ रूप धारण किया। वे कपिल के पास गयीं। वे वेण की बाहु से उत्पन्न राजा पृथु तब महौषधियों का दोहन करने लगे। हे महामुनि नारद! उन्होंने देवता, गन्धर्व, ऋषिगण तथा कपिल मुनि के निकट स्थित गोरूपा धरती के दुग्ध को नर्मदा, सरस्वती, भागीरथी, गोदावरी प्रभृति श्रेष्ठ महानदियों में दुहा। पृथु के दोहन के कारण वह गौ पवित्र जलमय नदी हो गयी। उसका संगम गौतमी नदी से हो गया। यह एक महान् अद्भुद् घटना थी।।२५-२८।।

ततः प्रभृति तत्तीर्थं कपिलासङ्गमं विदुः। तत्राष्टाशीतिः पूज्यानि सहस्राणि महामते॥२९॥
तीर्थान्याहुर्मुनिगणाः स्मरणादपि नारद। पावनानि जगत्यस्मिंस्तानि सर्वाण्यनुक्रमात्॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासङ्गमाद्याष्टाशीतिसहस्रतीर्थवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४१।।

गौतमीमाहात्म्ये द्विसप्ततितमोऽध्यायः।।७२।।

यह तीर्थ कपिलासंगम नाम से प्रसिद्ध हो गया। यहां पर अस्सी हजार पूज्य तीर्थ हैं। हे महामति नारद! इन तीर्थों का जो क्रमानुसार स्मरण करता है, वह भी पवित्र हो जाता है। यह मुनीश्वरों का कथन है।।२९-३०।।

।।एकचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवस्थान तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

देवस्थानमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद॥१॥
पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ देवदानवसङ्गरे। प्रवृत्ते वा सिंहिकेति विख्याता दैत्यसुन्दरी॥२॥
तस्याः पुत्रो महादैत्यो राहुर्नाम महाबलः। अमृते तु समुत्पन्ने सैहिकेये च भेदिते॥३॥
तस्य पुत्रो महादैत्यो मेघहास इति श्रुतः। पितरं घातितं श्रुत्वा तपस्तेपेऽतिदुःखितः॥४॥
तपस्यन्तं राहुसुतं गौतमीतीरमाश्रितम्। देवाश्च ऋषयः सर्वे तमूचुरतिभीतवत्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवस्थान नामक तीर्थ त्रैलोक्य प्रसिद्ध है। हे नारद! मैं उसके प्रभाव को कह रहा हूं। तुम यत्न पूर्वक श्रवण करो। पूर्वकाल में सत्ययुग के प्रथम चरण में अमृत-मन्थन के उपरान्त देवता तथा दानवों में एक युद्ध छिड़ा था। सिंहिका नामक प्रसिद्ध दैत्यसुन्दरी के पुत्र महाबली सैंहिकेय दैत्य (राहु) था। अमृतपान के अवसर पर राहु का शिर काट दिया गया था। मेघहास नामक महादैत्य राहु का पुत्र था। अपने पिता को निहत हो गया (शिरच्छेद हो गया) सुनकर वह दुःख के कारण तप करने लगा। उस गौतमी तट पर तपस्या करते राहुपुत्र को देख कर देवता तथा ऋषिगण एक साथ वहां आये तथा मेघहास से भय पूर्वक कहने लगे।।१-५।।

देवर्षय ऊचुः

तपो जहि महाबाहो यत्ते मनसि संस्थितम्। सर्वं भवतु नामेदं शिवगङ्गाप्रसादतः।
शिवगङ्गाप्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम्।।६।।

देवता तथा ऋषिगण कहते हैं—हे महाबाहु! तपस्या का त्याग करो। तुम्हारी जो इच्छा है, वह शिवगंगा के प्रभाव से सब सिद्ध हो जाये। यहां इस शिवगंगा-गौतमी नदी की कृपा से कुछ भी दुर्लभ नहीं है।।६।।

मेघहासोवाच

परिभूतः पिता पूज्यो युष्माभिर्मम दैवतम्!।
तस्यापि मम चात्यन्तं प्रीतिश्च क्रियते यदि।।७।।
भवद्भिस्तपसोऽस्माच्च अहं वैरान्निवर्तये। वैरनिर्यातनं कार्यं पुत्रेण पितुरादरात्।
प्रार्थयन्ते भवन्तश्चेत्पूर्णास्तन्मे मनोरथाः।।८।।

मेघहास कहता है—मेरे पूज्य पिता आप लोगों द्वारा पराजित हो गये थे। यदि आप उनकी तथा मेरी प्रसन्नता चाहते हैं, उस स्थिति में आप यह करिये, जिससे यह वैर निवृत्त हो जाये। पुत्र का यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वह सादर अपने पितृवैर का बदला ले। जब आप लोग वैरनाशार्थ प्रार्थना कर ही रहे हैं, तब मेरी इच्छा पूर्ण हो।।७-८।।

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः सर्वे राहुं चक्रुर्ग्रहानुगम्। तं चापि मेघहासं ते चक्रू राक्षसपुङ्गवम्।।९।।
ततोऽभवद्राहुसुतो नैर्ऋताधिपतिः प्रभुः।
पुनश्चाऽऽह सुरान्दैत्यो मम ख्यातिर्यथा भवेत्।।१०।।
तीर्थस्यास्य प्रभावश्च दातव्य इति मे मतिः। तथेत्युक्त्वा ददुर्देवाः सर्वमेव मनोगतम्।।११।।
दैत्येश्वरस्य देवर्षे तन्नाम्ना तीर्थमुच्यते। देवा यतोऽभवन्सर्वे तत्र स्थाने महामते।।१२।।
देवस्थानं तु तत्तीर्थं देवानामपि दुर्लभम्। यत्र देवेश्वरो देवो देवतीर्थं ततः स्मृतम्।।१३।।
तत्राष्टादश तीर्थानि दैत्यपूज्यानि नारद। तेषु स्नानं च दानं च महापातकनाशनम्।।१४।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवस्थानाद्यष्टातीर्थवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४२।।
गौतमीमाहात्म्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवगण ने राहु को भी ग्रहों में सम्मिलित कर लिया। उस मेघहास को भी राक्षसश्रेष्ठ कर दिया। तभी से वह प्रभावशाली राहुपुत्र नैर्ऋत्‌गण का अधिपति हो गया। हे महामति नारद! उस दैत्य ने पुनः देवताओं से कहा—"जिससे मेरी ख्याति बनी रहे, इस निमित्त से आप लोग इस तीर्थ को प्रभावशाली करिये। यही मेरी कामना है।" देवगण ने "ऐसा ही हो" कहा। इस प्रकार उन्होंने मेघहास का मनोगत विषय प्रदान किया। हे देवर्षि नारद! उस श्रेष्ठ दैत्य के नाम से वह तीर्थ कहा जाता है। जहां सभी देवगण ने आकर उस समय अवस्थान किया था, वहीं वह तीर्थ विद्यमान है। यह "देवस्थान" नाम से प्रसिद्ध है। यह देवगण के लिये भी दुर्लभ है। जहां देवेश्वर देव विराजमान हैं, उसे देवतीर्थ कहते हैं। वहां दैत्यपूजित अट्ठारह तीर्थ और भी हैं। वहां स्नान-दान करने से महापातक नष्ट हो जाते हैं।।९-१४।।

।।द्विचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

सिद्धतीर्थमिति ख्यातं यत्र सिद्धेश्वरो हरः। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं नृणाम्।।१।।
पुलस्त्यवंशसम्भूतो रावणो लोकरावणः। दिशो विजित्य सर्वाश्च सोमलोकमजीगमत्।।२।।
सोमेन सह योत्स्यन्तं दशास्यमहमब्रवम्। मन्त्रं दास्ये निवर्तस्व सोमयुद्धाद्दशानन।।३।।

ब्रह्मा कहते हैं—जहां पर सिद्धेश्वर शिव विराजमान हैं, वही सिद्धेश्वरतीर्थ विख्यात है। अब मनुष्यों को सभी सिद्धि देने वाले उस तीर्थ का प्रभाव कहता हूं। हे नारद! श्रवण करो। पूर्वकाल में पुलत्स्य वंशोत्पन्न लोकों को रुलाने वाला रावण था, जिसने सभी दिशाओं को जीत कर सोमलोक पर चढ़ाई किया। वहां सोम के साथ युद्ध करने की इच्छा रखने वाले रावण से मैंने कहा—"हे रावण! दशानन! मैं तुमको एक मन्त्र देता हूं। तुम सोम के साथ युद्ध की इच्छा त्याग दो"।।१-३।।

इत्युक्त्वाऽष्टोत्तरं मन्त्रं शतनामभिरन्वितम्। शिवस्य राक्षसेन्द्राय प्रादां नारद शान्तये।।४।।

निःश्रीकाणां विपन्नानां नानाक्लेषजुषां नृणाम्।
शरणं शिव एवात्र संसारेऽन्यो न कश्चन।।५।।

ततो निवृत्तः स ह मन्त्रियुक्तस्तत्सोमलोकाज्जयमाप्य रक्षः।
स पुष्पकारूढगतिः सगर्वो, लोकान्पुनः प्राप जवाद्दशास्यः।।६।।
स प्रेक्षमाणो दिवमन्तरिक्षं, भुवं च नागांश्च गजांश्च विप्रान्।
आलोकयामास नगं महान्तं, कैलासमावास उमापतेर्यः।।७।।

दृष्ट्वा स्मयोत्फुल्लदृगद्रिराजं, स मन्त्रिणौ रावण इत्युवाच॥८॥

हे नारद! मैंने उसे रहने हेतु उस रावण को शिव के १०८ नामों के साथ मन्त्र प्रदान किया। संसार में श्रीरहित, विपन्न तथा नाना दुःख-कलेश में डूबे मनुष्यों हेतु शिव ही शरण्य हैं। अन्य कोई अवलम्बन नहीं है। तत्पश्चात् रावण सोमलोक जीत कर गर्व के साथ अपने मन्त्रियों को लेकर पुष्पकारूढ़ हो गया तथा नाना लोकों में विचरता सवेग चल पड़ा। पथ में जाते-जाते क्रमशः भू, अन्तरिक्ष, नाग, स्वर्ग, पर्वत, हस्ति, ब्राह्मण तथा उमापति के निवासस्थल महान् कैलास गिरि को देखा। रावण ने उस गिरिराज को देखकर अपने प्रसन्न नेत्रों वाली स्थिति में अपने दोनों मन्त्री शुक, सारण से कहा—।।४-८।।

रावण उवाच

को वा गिरावत्र वसेन्महात्मा, गिरिं नयाम्येनमथाधि भूमेः।
लङ्कागतोऽयं गिरिराशु शोभां, लङ्काऽपि सत्यं श्रियमातनोति॥९॥

रावण कहता है—इस पर्वत पर कौन महात्मा निवास करते हैं? इसे पृथिवी से लंका ले जाऊंगा। यह पर्वत लंका में रहेगा तब वहां की शोभा वर्द्धित होगी तथा लंका की भी श्रीवृद्धि हो सकेगी।।९।।

ब्रह्मोवाच

इत्थं वचो राक्षसमन्त्रिणौ तौ, निशम्य रक्षोधिपतेश्च भावम्।
न युक्तमित्यूचतुरिष्टबुद्ध्या, निशाचरस्तद्वचनं न मेने॥१०॥
संस्थाप्य तत्पुष्पकमाशु रक्षः, पुप्लाव कैलासगिरेश्च मूले।
हिन्दोलयामास गिरिं दशास्यो, ज्ञात्वा भवः कृत्यमिदं चकार॥११॥
जित्वा दिगीशांश्च सगर्वितस्य, कैलासमान्दोलयतः सुरारेः।
अङ्गुष्ठकृत्यैव रसातलादिलोकांश्च यातस्य दशाननस्य॥१२॥
आलूनकायस्य गिरं निशम्य, विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम्।
तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि शम्भुरयुक्तदातेति न संशयोऽत्र॥१३॥

राक्षस मन्त्रीद्वय ने राक्षसराज का यह वाक्य सुनकर तथा उसका मनोभाव जानकर उनकी हितकामना से यह कहा—"यह उचित कर्त्तव्य नहीं है।" निशाचर रावण ने उनकी यह मन्त्रणा नहीं माना। राक्षस दशमुख ने वहीं जमीन पर पुष्पक विमान उतारा तथा वहां से कूद कर वह कैलास के मूल प्रदेश पर पहुंचा तथा उस पर्वत को उखाड़ने के लिये हिलाया। देवाधिदेव महेश्वर भवदेव ने उसका यह कार्य जानकर पर्वत को अपने पैर के अंगूठे से तनिक दबा दिया था। इससे वह रसातल लोक में धंसने लगा। उसका शरीर चूर्णायमान होने लगा। उसकी पीड़ा की चीत्कार सुन कर भगवान् भव कुपित रहने पर भी देवी के साथ हंसने लगे तथा उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक रावण को वांछित वर प्रदान किया। भगवान् शंकर तो अयोग्यों को भी सब देते रहते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।।१०-१३।।

ततोऽयमावाप्य वरान्सुवीरो, भवप्रसादात्कुसुमं जगाम।
गच्छन्स लङ्कां भवपूजनाय, गङ्गामगाच्छम्भुजटाप्रसूताम्॥१४॥

सम्पूजयित्वा विविधैश्च मन्त्रैर्गङ्गाजलैः शम्भुमदीनसत्त्वः।
असिं स लेभे शशिखण्डभूषात्सिद्धिं च सर्वर्धिमभीप्सितां च॥१५॥
महत्तमन्त्रं शशिरक्षणाय, स साधयामास भवं प्रपूज्य।
सिद्धे तु मन्त्रे पुनरेव लङ्कामयात्स रक्षोधिपतिः स तुष्टः॥१६॥
ततः प्रभृत्येतदतिप्रभावं, तीर्थं महासिद्धिदमिष्टदं च।
समस्तपापौघविनाशनं च, सिद्धैरशेषैः परिसेवितं च॥१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सिद्धतीर्थाद्यष्टोत्तरशततीर्थवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४३।।

गौतमीमाहात्म्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।।७४।।

उस वीर दशानन ने उस समय शंभु की कृपा से विविध वर लाभ किया तथा पुष्पक का आवाहन करके उस पर बैठ कर लंका की ओर चल पड़ा। तदनन्तर जाते-जाते मार्ग में भवदेव की पूजा के लिये शिवजटा से निर्मित गंगा नदी के किनारे गया। उसने गंगा में जाकर गंगाजल तथा अनेक मन्त्रों से शंभु पूजन किया। वे मन्त्र मेरी कृपा से मिले थे। फलस्वरूप शशिभूषण ईशानदेव महेश्वर की कृपा से वांछित सिद्धि पाकर वह राक्षसाधिपति सन्तुष्ट होकर लंका चला गया। तभी से वह तीर्थ अत्यन्त प्रभावशाली, महासिद्धिदायक, इष्टप्रद, समस्त पापराशि विनाशक हो गया। यह तीर्थ अनेक सिद्धों द्वारा सेवित होता है।।१४-१७।।

।।त्रिचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

परुष्णी संगम तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

परुष्णीसङ्गमं चेति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापविनाशनम्॥१॥
अत्रिराराधयामास ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। तेषु तुष्टेषु स प्राह पुत्रा यूयं भविष्यथ॥२॥
तथा चैका रूपवती कन्या मम भवेत्सुराः। तथा पुत्रत्वमापुस्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥३॥
कन्यां च जनयामास शुभाऽऽत्रेयीति नामतः।
दत्तः सोमोऽथ दुर्वासाः पुत्रास्तस्य महात्मनः॥४॥

अग्नेरङ्गिरसो जातो ह्यङ्गारैरङ्गिरा यतः। तस्मादङ्गिरसे प्रादादात्रेयीमातरोचिषम्॥५॥
अग्नेः प्रभावात्परुषमात्रेयीं सर्वदाऽवदत्। आत्रेय्यपि च शुश्रूषां कुर्वती सर्वदाऽभवत्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—परुष्णी संगम नामक एक तीर्थ है। मैं उसके पापनाशक स्वरूप को कहता हूं। वहां महर्षि अत्रि ने ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वराराधन किया था। वे सन्तुष्ट होकर वरदानोद्यत होकर कहने लगे—वर मांगो। तब अत्रि ने कहा—"आप लोग मेरे पुत्र हो जायें। हे देवताओं! मेरी एक रूपवती कन्या भी जन्म ग्रहण करे।" तदनन्तर ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर अत्रि को पुत्ररूपेण प्राप्त हो गये। कुल काल पश्चात् अत्रि ऋषि ने आत्रेयी नामक कन्या को भी जन्म दिया। इन महात्मा के पुत्रत्रय का नाम था दत्त, चन्द्र तथा दुर्वासा। अग्नि से अंगीरा ऋषि उत्पन्न हुये थे। अत्रि ऋषि ने अपनी अत्यन्त कान्तिमयी कन्या आत्रेयी अंगीरा ऋषि को प्रदान किया था। अंगीरा स्वयं में अग्नि का प्रभाव होने के कारण आत्रेयी से सदा कठोर वाणी बोलते थे। तथापि आत्रेयी सदैव पति की सेवा करती रहती थीं।।१-६।।

तस्यामाङ्गिरसा जाता महाबलपराक्रमाः। अङ्गिराः परुषं वादीदात्रेयीं नित्यमेव च॥७॥
पुत्रास्त्वाङ्गिरसा नित्यं पितरं शमयन्ति ते। सा कदाचिद्भर्तृवाक्यादुद्विग्ना परुषाक्षरात्।
कृताञ्जलिपुटा दीना प्राब्रवीच्छ्वशुरं गुरुम्॥८॥

इस आत्रेयी से अंगीरा ऋषि ने आंगीरस नामक महाबली-पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया था। अंगीरा आत्रेयी से कठोर वाणी बोलते थे। तथापि पुत्र आंगीरस सदा पिता को शान्त किया करते थे। एक बार आत्रेयी पति की कठोर उक्तियों से उद्विग्न हो गईं। उन्होंने दीनता पूर्वक हाथ जोड़कर श्वसुर अग्नि से कहा—।।७-८।।

आत्रेय्युवाच

अत्रिजाऽहं हव्यवाह भार्या तव सुतस्य वै। शुश्रूषणापरा नित्यं पुत्राणां भर्तुरेव च॥९॥
पतिर्मां परुषं वक्ति वृथैवोद्वीक्षते रुषा। प्रशाधि मां सुरज्येष्ठ भर्तारं मम दैवतम्॥१०॥

आत्रेयी कहती हैं—हे हव्यवाह (अग्नि)! मैं अत्रि सुता तथा आपके पुत्र की पत्नी हूं। मैं सदा नित्य पुत्र, पतिगण की सेवा-सुश्रूषा करती रहती हूं। तथापि पति वृथा मुझे क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखते हैं तथा कठोर वाणी का प्रयोग करते हैं। आप मेरे देवता उन पति को तथा मुझे इस सम्बन्ध में सदुपदेश दीजिये।।९-१०।।

ज्वलन उवाच

अङ्गारेभ्यः समुद्भूतो भर्ता ते ह्यङ्गिरा ऋषिः।
यथा शान्तो भवेद्भद्रे तथा नीतिर्विधीयताम्॥११॥
आग्नेयोऽग्निं समायातो तव भर्ता वरानने।
तदा त्वं जलरूपेण प्लावयेथा मदाज्ञया॥१२॥

अग्निदेव ने कहा—तुम्हारे पति ऋषि अंगीरा अंगार से उत्पन्न हुये हैं। हे भद्रे! वे जिस उपाय से शान्त हो सकें, वह उपाय तुमको करना चाहिये। हे वरानने! तुम्हारे पति आग्नेय अंगीरा जब अग्नि में प्रवेश करें, तब तुम उनको मेरी आज्ञा से जल में उनको प्रवेश करा देना (डुबा देना)।।११-१२।।

आत्रेय्युवाच

सहेयं परुषं वाक्यं मा भर्ताऽग्निं समाविशेत्।
भर्तरि प्रतिकूलानां योषितां जीवनेन किम्॥१३॥

आत्रेयी कहती हैं—मैं परुष वाक्य सहन कर लूंगी, तथापि पति अग्नि-प्रवेश न करें। पति-प्रतिकूला नारीगण के जीवन का फल क्या है? मैं केवल यही इच्छा करती हूं कि मेरे पति शान्त वाणी बोलें। रमणीगण ऐसे पति का लाभ करें।।१३।।

ज्वलन उवाच

इच्छेयं शान्तिवाक्यानि भर्तारं लभते तथा॥१४॥
अग्निस्त्वप्सु शरीरेषु स्थावरे जङ्गमे तथा। तव भर्तुरहं धाम नित्यं च जनको मतः॥१५॥
योऽहं सोऽहमिति ज्ञात्वा न चिन्तां कर्तुमर्हसि।
किञ्चाऽऽपो मातरो देव्यो ह्यग्निः श्वशुर इत्यपि।
इति बुद्ध्या विनिश्चित्य मा विषण्णा भव स्नुषे॥१६॥

ज्वलन (अग्निदेव) कहते हैं—अग्नि ही जल, स्थावर-जंगम सर्वत्र रहते हैं। मैं ही तुम्हारे पति का जनक तथा उसका आश्रयरूप हूं। जो मैं हूं, वही वह है। यह जानकर चिन्ता मत करो। जलदेवी माता हैं तथा मैं तुम्हारा श्वसुर हूं। हे पुत्रवधू! बुद्धि से यह निश्चय करके दुःखी-उदास मत हो।।१४-१६।।

स्नुषोवाच

आपो जनन्य इति यद्वभाषे, अग्नेरहं तव पुत्रस्य भार्या।
कथं भूत्वा जननी चापि भार्या, विरुद्धमेतज्जलरूपेण नाथ॥१७॥

पुत्रवधू कहती है—आपने 'आप' जल को जननी कहा। यह सम्यक् उक्ति नहीं है। मैं आपके पुत्र की भार्या हूं। आप अग्नि हैं, जिनके पुत्र की मैं पत्नी हूं। आपने यह कैसी बात कह दिया? हे नाथ! मैं भार्या होकर तब जलाकार जननी रूप कैसे धारण करूं? यह तो अत्यन्त विरुद्ध बात है।।१७।।

ज्वलन उवाच

आदौ तु पत्नीं भरणात्तु भार्या, जनेस्तु जाया स्वगुणैः कलत्रम्।
इत्यादिरूपाणि बिभर्षि भद्रे, कुरुष्व वाक्यं मदुदीरितं यत्॥१८॥
योऽस्यां प्रजातः स तु पुत्र एव, सा तस्य मातैव न संशयोऽत्र।
तस्माद्वदन्ति श्रुतितत्त्वविज्ञाः, सा नैव योषित्तनयेऽभिजाते॥१९॥

ज्वलन (अग्नि) कहते हैं—विवाहिता स्त्री पहले पत्नी रहती है। तदनन्तर भरण-पोषण करने से भार्या हो जाती है। वह पुत्र उत्पन्न करने के कारण जया तथा अपने गुणों के कारण कलत्र कही जाती है। हे भद्रे! तुम स्त्री हो। इसलिये तुम्हारे भी ये नाना रूप हैं। हे भद्रे! मेरे द्वारा कहे वाक्यों का पालन करो। पत्नी से जन्म

लेने वाले वस्तुतः पुत्र होते हैं। वह पत्नी ही उनकी माता है। इसमें संशय नहीं है। अतः श्रुति तत्वज्ञों का कथन है कि पुत्र जन्म हो जाने पर स्त्री पत्नी न होकर जननी हो जाती है।।१८-१९।।

ब्रह्मोवाच

श्वशुरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽत्रेयी तदैव तत्। आग्नेयं रूपमापन्नमम्भसाऽप्लावयत्पतिम्॥२०॥
उभौ तौ दम्पती ब्रह्मन्सङ्गतौ गाङ्गवारिणा। शान्तरूपधरौ चोभौ दम्पती सम्बभूवतुः॥२१॥
लक्ष्म्या युक्तो यथा विष्णुरुमया शङ्करो यथा।
रोहिण्या च यथा चन्द्रस्तथाऽभून्मिथुनं तदा॥२२॥
भर्तारं प्लावयन्ती सा दधाराम्बुमयं वपुः।
परुष्णी चेति विख्याता गङ्गया सङ्गता नदी॥२३॥
गोशतार्पणजं पुण्यं परुष्णीस्नानतो भवेत्। तत्र चाऽऽङ्गिरसाश्चक्रुर्यज्ञांश्च बहुदक्षिणान्॥२४॥
तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थान्याहुः पुराणगाः।
उभयोस्तीरयोस्तात पृथग्यागफलं विदुः॥२५॥
तेषु स्नानं च दानं च वाजपेयाधिकं मतम्।
विशेषतस्तु गङ्गायाः परुष्ण्या सह सङ्गमे॥२६॥
स्नानदानादिभिः पुण्यं यत्तद्वक्तुं न शक्यते॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये परुष्णीसङ्गमादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४४।।
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।।७५।।

ब्रह्मा कहते हैं—आत्रेयी ने श्वसुर का यह कथन सुना तथा उन्होंने आग्नेय रूप वाले अपने पति को जलरूपेण आप्लावित कर दिया। हे ब्राह्मण! उन दम्पति ने गंगा जल में मिलकर शान्त रूप धारण कर लिया। तब वे लक्ष्मी सहित विष्णु, उमा सहित शंकर तथा रोहिणी समन्वित चन्द्रमा की तरह मिथुन भाव से शोभायमान हो गये। आत्रेयी ने अपने पति को आप्लावित करने हेतु जो उत्तम (जल) देह धारण किया था, वह देह परुष्णी नामक प्रसिद्ध नदीरूपेण गौतमी गंगा से मिलित हो गया। परुष्णी में स्नान करने से सौ गोदान का फल मिलता है। उस संगम तट पर आंगीरसों ने प्रचुर दक्षिणा युक्त अनेक यज्ञानुष्ठान किया था। पुराणज्ञों का कथन है कि वहां तीन सहस्र तीर्थ विद्यमान हैं। हे तात! वहां नदी के उभय तट पर किये जाने वाले यज्ञों का पृथक्-पृथक् फल वर्णित है। यह सुना गया है कि वहां स्नान-दान का फल तो वाजपेय यज्ञ से भी अधिक मिलता है। गंगा एवं परुष्णी संगमस्थल में स्नान-दान से जो पुण्यार्जन होता है, उसका यथायथ वर्णन ही नहीं हो सकता!।।२०-२७।।

।।चतुश्चत्वारिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

मार्कण्डेयं नाम तीर्थं सर्वपापविमोचनम्। सर्वक्रतुफलं पुण्यमघौघविनिवारणम्॥१॥
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः। मार्कण्डेयो भरद्वाजो वसिष्ठोऽत्रिश्च गौतमः॥२॥
याज्ञवल्क्यश्च जाबालिर्मुनयोऽन्येऽपि नारद। एते शास्त्रप्रणेतारो वेदवेदाङ्गपारगाः॥३॥
पुराणन्यायमीमांसाकथासु परिनिष्ठिताः। मिथः समूचुर्विद्वांसो मुक्तिं प्रति यथामति॥४॥
केचिज्ज्ञानं प्रशंसन्ति केचित्कर्म तथोभयम्। एवं विवदमानास्ते मामूचुरुभयं मतम्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—मार्कण्डेय नामक प्रसिद्ध तीर्थ सर्वपापनाशक, सर्वयज्ञफल साधक, पापसमूह निवारक तथा पुण्यप्रद है। हे नारद! उसका प्रभाव कहता हूं। सुनो! मार्कण्डेय, भारद्वाज, वशिष्ठ, अत्रि, गौतम, याज्ञवल्क्य, जाबालि प्रभृति शास्त्रप्रणेता, वेदवेदांग पारंगत, पुराण, न्याय-मीमांसा शास्त्रों की आलोचना में परिमार्जित बुद्धियुक्त विद्वान् अनेक मुनिगण, एक बार एकत्र होकर इस विषय की आलोचना करने लगे कि कैसे अनायास मुक्ति मिले। इनमें कोई अपनी मति के अनुसार ज्ञान की, कोई कर्म की, तो कोई दोनों की ही प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार विवाद उपस्थित होने पर उन सब ने मेरे पास आकर इस सम्बन्ध में जिज्ञासा किया।।१-५।।

मदीयं तु मतं ज्ञात्वा ययुश्चक्रगदाधरम्। तस्य चापि मतं ज्ञात्वा ऋषयस्ते महौजसः॥६॥
पुनर्विवदमानास्ते शङ्करं प्रष्टुमुद्यता। गङ्गायां च भवं पूज्य तमेवार्थं शशंसिरे॥७॥
कर्मणस्तु प्रधानत्वमुवाच त्रिपुरान्तकः। क्रियारूपं च तज्ज्ञानं क्रिया सैव तदुच्यते॥८॥

तस्मात्सर्वाणि भूतानि कर्मणा सिद्धिमाप्नुयुः।
कर्मैव विश्वतोव्यापि तदृते नास्ति किञ्चन॥९॥

उन लोगों ने जब मेरा मत जान लिया, तब वे सभी चक्र-गदाधारी हरि के पास गये। उनका मत जानकर भी उनको सन्तोष नहीं होने पर उनमें से कर्मपरायण महात्मा ऋषि लोग पुनः विवाद करने लगे। अन्त में वे लोग शंकर से पूछने का निश्चय करके गंगा-गौतमी तट पर उनकी पूजा करके उस कर्म की प्रशंसा करने लगे। तब त्रिपुरारि हर ने वहां आविर्भूत होकर कर्म की ही प्रशंसा किया। उन्होंने कर्म को प्रधान कहा था। यद्यपि ज्ञान को प्रधान कहा जाता है, तथापि ज्ञान जब क्रिया का ही रूपान्तर है तथा यही क्रिया कर्म कही जाती है, तब सभी प्राणी कर्म से ही सिद्धिलाभ करते हैं। कर्म ही विश्व में व्याप्त है। कर्म के अतिरिक्त कुछ का भी अस्तित्व दिखलाई नहीं देता।।६-९।।

विद्याभ्यासो यज्ञकृतिर्योगाभ्यासः शिवार्चनम्।
सर्वं कर्मैव नाकर्मी प्राणी क्वाप्यत्र विद्यते॥१०॥

कर्मैव कारणं तस्मादन्यदुन्मत्तचेष्टितम्। ऋषीणां यत्र संवादो यत्र देवो महेश्वरः॥११॥
चकार निर्णयं सर्वं कर्मणाऽवाप्यते नृभिः। मार्कण्डं मुख्यतः कृत्वा ततो मार्कण्डमुच्यते॥१२॥

विद्याभ्यास, यज्ञकृत्य, योगाभ्यास, शिवार्चना, ये सब तो कर्म ही हैं। अकर्मी प्राणी कहीं नहीं है। तभी कर्म ही वस्तुतः मुक्ति कारण है। कर्म के अतिरिक्त ज्ञान को प्रधान कहना तो उन्मत्तवत् प्रलाप ही है। मार्कण्डेय प्रभृति ऋषियों ने जहां कर्म द्वारा ही शिव साक्षात्कार लाभ किया था तथा जहां उन्होंने शिव से यह तत्व जाना था कि "कर्म से ही मनुष्य सभी वांछित लाभ करता है," वही स्थान मार्कण्डेय तीर्थ नाम से प्रसिद्ध है।।१०-१२।।

तीर्थमृषिगणाकीर्णं गङ्गाया उत्तरे तटे। पितृणां पावनं पुण्यं स्मरणादपि सर्वदा॥१३॥
तत्राष्टौ नवतिस्तात तीर्थान्याह जगन्मयः। वेदेन चापि तत्प्रोक्तमृषयो मेनिरे च तत्॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मार्कण्डेयाद्यष्टनवतितीर्थवर्णनं नाम
पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४५॥
गौतमीमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥७६॥

यह तीर्थ ऋषियों से भरा है और गंगा-गौतमी के उत्तरी तट पर अवस्थित है। इस तीर्थ के स्मरण से ही पितृगण को पवित्रता मिल जाती है। हे नारद! यहां जगन्नाथ शिव ने ९८ तीर्थों की स्थिति कहा है। यह वेद में भी कहा गया है तथा ऋषिगण ने भी इसका प्रमाण माना है।।१३-१४।।

।।पञ्चचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालञ्जर तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

यायातमपरं तीर्थं यत्र कालञ्जरः शिवः। सर्वपापप्रशमनं तद्वृत्तमुच्यते मया॥१॥
ययातिर्नाहुषो राजा साक्षादिन्द्रः इवापरः। तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्कुललक्षणभूषितम्॥२॥
ज्येष्ठा तु देवयानीति नाम्ना शुक्रसुता शुभा।
शर्मिष्ठेति द्वितीया सा सुता स्याद्वृषपर्वणः॥३॥
ब्राह्मण्यपि महाप्राज्ञा देवयानी सुमध्यमा। ययातेरभवद्भार्या सा तु शुक्रप्रसादतः॥४॥

शर्मिष्ठा चापि तस्यैव भार्या या वृषपर्वजा। देवयानी शुक्रसुता द्वौ पुत्रौ समजीजनत्।।५।।
यदुं च तुर्वसुं चैव देवपुत्रसमावुभौ। शर्मिष्ठा च नृपाल्लेभे त्रीन्पुत्रान्देवसन्निभान्।।६।।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च ययातेर्नृपसत्तमात्। देवयान्याः सुतौ ब्रह्मन्सदृशौ शुक्ररूपतः।।७।।
शर्मिष्ठायास्तु तनयाः शक्राग्निवरुणप्रभाः। देवयानी कदाचित्तु पितरं प्राह दुःखिता।।८।।

ब्रह्मा कहते हैं—जहां कालञ्जर शिव विराजमान हैं, उस यायात तीर्थ को सर्वपाप प्रशमक कहा गया है। उसका वृत्तान्त कहता हूं। साक्षात् दूसरे इन्द्र के समान नहुष के पुत्र ययाति नामक राजा थे। उनकी कुलीना साधुलक्षणा दो पत्नियां थीं। ज्येष्ठा भार्या शुभा शुक्र ऋषि की पुत्री देवयानी थीं। कनिष्ठा भार्या थीं दानवराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा। वे सुमध्यमा महाप्राज्ञा देवयानी ब्राह्मणी होने पर भी शुक्र की कृपा से राजा ययाति की भार्या हो गयीं। शुक्र की पुत्री देवयानी ने यदु तथा तुर्वसु नामक देवपुत्र जैसे दो पुत्रों को जन्म दिया। शर्मिष्ठा ने भी ययाति से देवताओं समान द्रुह्यु, अनु तथा पुरु नामक पुत्रों को जन्म दिया। हे नारद! देवयानी के पुत्रद्वय देखने में शुक्र के समान थे तथा शर्मिष्ठा के पुत्रगण इन्द्र, अग्नि तथा वरुणवत् प्रभा सम्पन्न थे। एक बार देवयानी ने दुःखी होकर पिता से कहा था।।१-८।।

देवयान्युवाच

मम त्वपत्यद्वितयमभाग्याया भृगूद्वह। मम दास्याः सभाग्याया अपत्यत्रितयं पितः।।९।।
तदेतदनुमृश्यायं दुःखमत्यन्तमागता। मरिष्ये दानवगुरो ययातिकृतविप्रियात्।
मानभङ्गाद्वरं तात मरणं हि मनस्विनाम्।।१०।।

देवयानी कहती है—हे भृगुवर! मैं अभागिन हूं। मेरे मात्र दो पुत्र हैं, तथापि मेरी सौभाग्यवती दासी के (शर्मिष्ठा के) तीन पुत्र हैं। यह चिन्ता करने से मुझे अतीव दुःख हो रहा है। हे दानवगुरु! ययाति ने जो यह अप्रिय कार्य किया है, इससे यह अपमान सहने की अपेक्षा मैं मृत हो जाऊंगी। हे तात! मानभंग की अपेक्षा तो मनीषी लोग मृत्यु को ही उत्तम कह गये हैं।।९-१०।।

ब्रह्मोवाच

तदेतत्पुत्रिकावाक्यं श्रुत्वा शुक्रः प्रतापवान्। कुपितोऽभ्याययौ शीघ्रं ययातिमिदमब्रवीत्।।११।।

ब्रह्मा कहते हैं—पुत्री का यह कथन सुनकर प्रतापी शुक्र कुपित हो गये तथा उन्होंने शीघ्रता के साथ ययाति से कहा—।।११।।

शुक्र उवाच

यदिदं विप्रियं मे त्वं सुतायाः कृतवानसि। रूपोन्मत्तेन राजेन्द्र तस्माद्वृद्धो भविष्यसि।।१२।।
न च भोक्तुं न च त्यक्तुं शक्नोति विषयातुरः।
स्पृहयन्मनसैवाऽऽस्ते निःश्वासोच्छ्वासनष्टधीः।।१३।।
वृद्धत्वमेव मरणं जीवतामपि देहिनाम्। तस्माच्छीघ्रं प्रयादि त्वं जरां भूपतिदुर्धराम्।।१४।।

शुक्राचार्य कहते हैं—हे राजेन्द्र! तुमने रूपोन्मत्त होकर मेरी पुत्री के साथ जो अप्रिय कार्य किया है,

इससे तुम अकाल में ही वृद्ध हो जाओ। विषयों की ओर आकर्षित चित्त वाला वृद्ध व्यक्ति दीर्घ निःश्वास छोड़ता नष्ट बुद्धि हो जाता है। वह भोग नहीं भोग पाता। केवल मन ही मन अतृप्तिमयी श्वास छोड़ता रहता है। उसका मन इच्छा से पूर्ण रहता है, तथापि शरीर वृद्ध हो जाने से वह भोगों के लिये अक्षम हो जाता है। जो शरीरधारी हैं, उनके सम्बन्ध में तो वृद्धावस्था जीवित रहते मृत्युवत् ही है। हे भूपाल! अब तुम शीघ्र दुर्द्धर्श जरावस्था भोगो।।१२-१४।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ययातिस्तु शापं शुक्रस्य धीमतः।
कृताञ्जलिपुटो राजा ययातिः शुक्रमब्रवीत्॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा ययाति ने शुक्र की शापवाणी श्रवण करके हाथों को जोड़कर शुक्राचार्य से कहा—।।१५।।

ययातिरुवाच

नापराध्ये न सङ्कुप्ये नैवाधर्मं प्रवर्तये। अधर्मकारिणः पापाः शास्या एव महात्मनाम्॥१६॥
धर्ममेव चरन्तं वै कथं मां शप्तवानसि। देवयानी द्विजश्रेष्ठ वृथा मां वक्ति किञ्चन॥१७॥
तस्मान्न मम विप्रेन्द्र शापं दातुं त्वमर्हसि।
विद्वांसोऽपि हि निर्दोषे यदि कुप्यन्ति मोहिताः।
तदा न दोषो मूर्खाणां द्वेषाग्निप्लुष्टचेतसाम्॥१८॥

राजा ययाति कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैंने कोई अपराध नहीं किया। अधर्म करने वाले पापीगण ही महात्माओं से शापित होते हैं। मैंने सर्वदा धर्माचरण किया है। अतः आपने मुझे शाप क्यों दे दिया? हे द्विजप्रवर! देवयानी ने मेरे संबंध में व्यर्थ कुछ आपसे कहा है। यदि विद्वान् लोग भी निर्दोष पर क्रोध करते हैं, तब द्वेष से जलते चित्त वाले यदि किसी पर कोप करें, तब उनका क्या दोष? आपको शाप नहीं देना चाहिये!।।१६-१८।।

ब्रह्मोवाच

ययातिवाक्याच्छुक्रोऽपि सस्मार सुतया कृतम्।
असकृद्विप्रियं तस्य दिवा रात्रौ प्रचण्डया॥१९॥
गतकोपोऽहमित्युक्त्वा काव्यो राजानमब्रवीत्॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—ययाति का कथन सुनकर शुक्र को सदा दिन-रात देवयानी जैसी प्रचण्डा कन्या द्वारा किये गये अनेक अप्रिय कृत्यों का स्मरण हो आया। तब उन्होंने कोप रहित होकर राजा से कहा मेरा क्रोध शान्त हो गया।।१९-२०।।

शुक्र उवाच

ज्ञातं मयाऽनयाऽकारि विप्रियं न वदेऽनृतम्।
शापस्येमं करिष्यामि शृणुष्वानुग्रहं नृप॥२१॥

यस्मै पुत्राय सन्दातुं जरामिच्छसि मानद। तस्य सा यात्वियं राजञ्जरा पुत्राय मद्वरात्॥२२॥

शुक्राचार्य कहते हैं—मैंने जान लिया कि देवयानी ने अप्रिय आचरण किया है, तथापि मेरा वचन असत्य नहीं होता। अतः शाप के प्रतिकार करने हेतु कृपा करता हूं। वह सुनो। हे मानद राजन्! मेरे वर के अनुसार तुम जिस पुत्र को भी अपनी वृद्धावस्था दान करोगे, वह तुम्हारे उस पुत्र पर चली जायेगी।।२१-२२।।

ब्रह्मोवाच

पुनर्ययातिः श्वशुरं शुक्रं प्राह विनीतवत्॥२३॥

यो गृह्णाति मया दत्तां जरां भक्तिसमन्वितः। स राजा स्याद्दैत्यगुरो तदेतदनुमन्यताम्॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—ययाति ने पुनः विनीत होकर श्वसुर शुक्र से कहा—जो भक्ति पूर्वक मेरी जरावस्था ग्रहण करे, हे दैत्यगुरु! वही राजा हो जाये। यह अनुमति दीजिये।।२३-२४।।

ययातिरुवाच

यो मद्वाक्यं नाभिनन्देत्सुतो दैत्यगुरो दृढम्। तं शपेयमनुज्ञाऽत्र दातव्यैव त्वया गुरो॥२५॥

राजा ययाति कहते हैं—हे दैत्यगुरु! मेरी आज्ञा को जो पुत्र अमान्य करे, निश्चित रूप से मैं उसे शाप दे सकूं। यह आज्ञा दीजिये, जो उचित है।।२५।।

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति राजानमुवाच भृगुनन्दनः। ततो ययातिः स्वं पुत्रमाहूयेदं वचोऽब्रवीत्॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—भृगुपुत्र शुक्र ने राजा से कहा—"यही हो" तदनन्तर राजा ने ज्येष्ठ पुत्र यदु को बुला कर कहा—।।२६।।

ययातिरुवाच

यदो गृहाण मे शापाज्जरां जातां सुतो भवान्।
ज्येष्ठः सर्वार्थवित्प्रौढः पुत्राणां धुरि संस्थितः।
पुत्री तेनैव जनको यस्तदाज्ञावशे स्थितः॥२७॥

राजा ययाति कहते हैं—हे यदु! शाप से उत्पन्न मेरी यह जरावस्था तुम ग्रहण करो। तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। सबसे अग्रणी पुत्र हो। जिसका पुत्र पिता की आज्ञा के अधीन रहता है, उसी पुत्र के पिता पुत्रवान् कहे जाते हैं।।२७।।

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच यदुस्तातं ययातिं भूरिदक्षिणम्। ययातिश्च यदुं शप्त्वा तुर्वसुं काममब्रवीत्॥२८॥
नागृह्णात्तुर्वसुश्चापि पित्रा दत्तां जरां तदा।
तं शप्त्वा चाब्रवीद्द्रुह्युं गृहाणेमां जरां मम॥२९॥
द्रुह्युश्च नैच्छत्तां दत्तां जरा रूपविनाशिनीम्। अनुमप्यब्रवीद्राजा गृहाणेमां जरां मम॥३०॥

अनुर्नेति तदोवाच शप्त्वा तं पूरुमब्रवीत्। अभिनन्द्य तदा पूरुर्जरां तां जगृहे पितुः॥३१॥

सहस्त्रमेकं वर्षाणां यावत्प्रीतोऽभवत्पिता।

यौवने यानि भोग्यानि वस्तूनि विविधानि च॥३२॥

पुत्रयौवनसम्पुष्टो ययातिर्बुभुजे सुखम्। ततस्तृप्तोऽभवद्राजा सर्वभोगेषु नाहुषः।

ततो हर्षात्समाहूय पुरुं पुत्रमथाब्रवीत्॥३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर यदु ने अपने भूरि दक्षिणा ब्राह्मणों को देने वाले पिता ययाति से "नहीं" कह दिया। तब ययाति ने यदु को शाप देकर तुर्वसु से प्रेम पूर्वक अपनी इच्छा को कहा। तुर्वसु ने भी पिता की जरावस्था को ग्रहण नहीं किया। तब ययाति ने तुर्वसु को भी शाप देकर द्रुह्यु से जरा ग्रहण करने के लिये कहा। तथापि उसने भी पिता प्रदत्त रूप-सौन्दर्य नाशक जरा नहीं लेना चाहा। तब राजा ने उसे भी शाप देकर अनु से कहा—"पुत्र तुम मेरी जरा को ग्रहण करो।" तब अनु ने भी कह दिया "मैं कदापि नहीं लूंगा।" तब ययाति ने उसे भी शाप देकर अपने पुत्र पुरु से कहा। तब पुरु ने पिता का अभिनन्दन करते हुये यह जरा ग्रहण कर लिया। पिता ययाति ने पुत्र के यौवन को लेकर एक हजार वर्ष तक प्रसन्न चित्त से पुत्र के यौवन द्वारा विविध भोग वस्तु समूह का भोग किया। तदनन्तर एक सहस्त्र वर्ष अन्त होने पर नहुषनन्दन ने सभी भोगों से तृप्त होकर सन्तुष्ट चित्त पूर्वक अपने पुत्र पुरु को बुलाकर कहा—।।२८-३३।।

ययातिरुवाच

तृप्तोऽस्मि सर्वभोगेषु यौवनेन तवानघ। गृहाण यौवनं पुत्र जरां मे देहि कश्मलाम्॥३४॥

राजा ययाति कहते हैं—हे निष्पाप! तुम्हारे यौवन द्वारा विषयों को भोगकर मैं तृप्त हो गया। हे पुत्र! अब अपना यौवन ग्रहण करके उस दुःखद जरा को मुझे प्रदान करो।।३४।।

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच तदा पूरुर्जरया क्षीयते मया। विकारास्तात भावानां दुर्निवाराः शरीरिणाम्॥३५॥

बलात्कालागता सह्या जराऽप्यखिलदेहिभिः।

सा चेद्गुरूपकाराय गृहीता त्यज्यते कथम्॥३६॥

स्वीकृतत्यागपापाद्धि देहिनां मरणं वरम्। अथवा तु जरां राजंस्तपसा नाशयाम्यहम्॥३७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब पुत्र ने कहा—"हे तात! भोगों से देहधारीगण में जो दुर्निवार विकारों की उत्पत्ति होती है, मैंने जरा द्वारा उन सबका क्षय कर दिया है। अतः मैं यह जरा वापस नहीं करना चाहता। जब सभी देहधारी काल द्वारा बलात् जराग्रस्त होकर उसे सहने के लिये बाध्य होते हैं, तब यदि उस जरा के द्वारा गुरुजन का उपकार हो जाये, तब उसका क्यों त्याग करूं? स्वीकार की गयी स्थिति का त्याग करने की अपेक्षा शरीरधारी का मर जाना अधिक श्रेष्ठ है। हे राजन्! अथवा मैं इस वृद्धावस्था को तप से नष्ट करता हूं।।३५-३७।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पितरं ययौ गङ्गामनुत्तमाम्। गौतम्या दक्षिणे पारे ततस्तेपे तपो महत्॥३८॥

ततः प्रीतोऽभवद्देवः कालेन महता शिवः। लोकातीतमहोदारगुणसन्मणिभूषिताम्।
किं ददामीति तं प्राह पूरुं स सुरसत्तमः॥३९॥

ब्रह्मा कहते हैं—पुरु ने पिता ययाति से यह कहकर अत्युत्तमा गौतमी गंगा की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने गौतमी के दक्षिण तट पर जाकर महती तपस्या प्रारम्भ कर दिया। दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर सुरसत्तम देव शिव ने प्रसन्न होकर लोकातीत महान् उदार गुण रूपी मणियों से भूषित पुरु से कहा—"मैं क्या वर प्रदान करूं"?।।२८-३९।।

पूरुरुवाच

शापप्राप्तां जरां नाथ पितुर्मम सुराधिप। तां नाशयस्व देवेश पितृशप्तांश्च कोपतः।
मद्भ्रातॄञ्शापतो मुक्तान्कुरुष्व सुरपूजित॥४०॥

पुरु कहते हैं—हे सुराधिप! आप मेरे पिता की शाप द्वारा उत्पन्न जरा का नाश करिये। हे सुरपूजित देवेश! पिता द्वारा कुपितावस्था में शापित मेरे भ्राताओं को भी शापमुक्त करिये।।४०।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगन्नाथः शापाज्जातां जरां तथा। अनाशयज्जगन्नाथो भ्रातॄंश्चक्रे विशापिनः॥४१॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं जरारोगविनाशनम्। अकालजजरादीनां स्मरणादपि नाशनम्॥४२॥
तन्नाम्ना चापि विख्यातं कालञ्जरमुदाहृतम्। यायातं नाहुषं पौरं शौक्रं शर्मिष्ठमेव च॥४३॥
एवमादीनि तीर्थानि तत्राष्टोत्तरमेव च। शतं विद्यान्महाबुद्धे सर्वसिद्धिकरं तथा॥४४॥
तेषु स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा। सर्वपापप्रशमनं भुक्तिमुक्तिप्रदं भवेत्॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कालञ्जराद्यष्टोत्तरशततीर्थवर्णनं नाम
षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४६।।
गौतमीमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।।७७।।

ब्रह्मा कहते हैं—जगन्नाथ शिव ने "ऐसा ही हो" कहकर शाप जनित जरा का विनाश कर दिया तथा पुरु के भ्राताओं को भी शाप रहित कर दिया। तभी से यह तीर्थ जरा-रोगनाशक हो गया। इसके स्मरण से अकाल में उत्पन्न जरा आदि का नाश हो जाता है। तभी यह तीर्थ जरा के ही नाम पर कालंजर कहा गया। यहां ययाति, नहुष, पौर, शौक्र, शर्मिष्ठ, प्रभृति नाना तीर्थ हैं। सब मिलाकर यहां १०८ तीर्थ हैं। ये सर्वसिद्धिदायक हैं। इन सबमें स्नान-दान करने से इनके माहात्म्य के श्रवण तथा पाठ से सर्वपापनाशक भोग तथा मोक्ष, दोनों का लाभ होता है।।४१-४५।।

।।षट्चत्वारिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अप्सरायुग-संगम तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

अप्सरोयुगमाख्यातमप्सरासङ्गमं ततः। तीरे च दक्षिणे पुण्यं स्मरणात्सुभगो भवेत्॥१॥
मुक्तो भवत्यसन्देहं तत्र स्नानादिना नरः। स्त्री सती सङ्गमे तस्मिन्नृतुस्नाता च नारद॥२॥
वन्ध्याऽपि जनयेत्पुत्रं त्रिमासात्पतिना सह।
स्नानदानेन वर्तन्ती नान्यथा मद्वचो भवेत्॥३॥
अप्सरोयुगमाख्यातं तीर्थं येन च हेतुना। तत्रेदं कारणं वक्ष्ये शृणु नारद यत्नतः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर अप्सरा युग संगम नामक तीर्थ प्रसिद्ध है। वह गौतमी के दक्षिण तीर पर स्थित है। इस पुण्यतीर्थ का स्मरण करने मात्र से व्यक्ति सौभाग्यशाली हो जाता है। मनुष्य वहां स्नानादि करके निःसन्देह मुक्त हो जाते हैं। हे नारद! उस संगमस्थल में यदि सती नारी ऋतुस्नान करती है, यदि वहां स्नान, दान करते समय व्यतीत करती है, तब वह वन्ध्या होकर भी तीन माह के भीतर पति संयोग द्वारा पुत्र-सन्तान युक्त हो जायेगी (गर्भ रह जायेगा)। अब मैं वह प्रसंग कहता हूं, जिस कारण से इसे अप्सरोयुग नाम दिया गया है। हे नारद! इसे यत्नतः श्रवण करो।।१-४।।

स्पर्धाऽऽसीन्महती ब्रह्मन्विश्वामित्रवसिष्ठयोः।
तपस्यन्तं गाधिसुतं ब्राह्मण्यार्थे यतव्रतम्॥५॥
गङ्गाद्वारे समासीनं प्रेरितेन्द्रेण मेनका। तं गत्वा तपसो भ्रष्टं कुरु भद्रे ममाऽऽज्ञया॥६॥
तदोक्तेन्द्रेण सा मेना विश्वामित्रं तपश्च्युतम्।
कृत्वा कन्यां तथा दत्त्वा जगामेन्द्रपुरं पुनः॥७॥
तस्यां गतायां सस्मार गाधिपुत्रोऽखिलं कृतम्।
तं तु देशं परित्यज्य तीर्थं तु सुरवल्लभम्॥८॥
जगाम दक्षिणां गङ्गां यत्र कालञ्जरो हरः। तपस्यन्तं तदोवाच पुनरिन्द्रः सहस्रदृक्॥९॥
उर्वशीं च ततो मेनां रम्भां चापि तिलोत्तमाम्।
नैवेत्यूचुर्भयत्रस्ताः पुनराह शचीपतिः॥१०॥

हे ब्रह्मन्! विश्वामित्र तथा वसिष्ठ के बीच महती प्रतिस्पर्द्धा हो गयी थी। गाधिसुत विश्वामित्र ब्राह्मणत्व लाभार्थ व्रताचरण करने लगे। वे गंगाद्वार में तप कर रहे थे। तभी इन्द्र ने मेनका को आदेश दिया "हे भद्रे! मेरी आज्ञा के अनुसार तुम जाकर तप व्रतरत विश्वामित्र के तप को भंग करो।" मेनका ने भी "यही करती हूं" कहा तथा विश्वामित्र के पास आकर उनको प्रलोभित करने लगी। इससे दोनों के संसर्ग द्वारा एक कन्या उत्पन्न हो गयी। मेनका उसे विश्वामित्र को देकर पुनः इन्द्रलोक चली गयी। जब मेनका चली गयी, तब विश्वामित्र ने

अपने किये गये इस कर्म का स्मरण किया। वे उस स्थान को छोड़ कर वहां गये, जहां कालंजर शिव विराजित थे। सुरप्रिय गंगाद्वार तीर्थ को छोड़कर गौतमी के दक्षिण तट पर स्थित कालंजर महादेव के निकट पुनः पूर्ववत् तपःश्चरण करने लगे। उनको तपःश्चरण रत देखकर पुनः सहस्राक्ष इन्द्र ने उर्वशी, मेनका, रंभा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं को आदेश दिया कि विश्वामित्र को तपःभ्रष्ट करो। तथापि वे सभी भयभीत हो गयीं। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।।५-१०।।

गम्भीरां चातिगम्भीरामुभे ये गर्विते तदा। ते ऊचतुरुभे देवं सहस्राक्षं पुरन्दरम्॥११॥

यह देखकर शचीपति ने गंभीरा तथा अतिगंभीरा से कहा। उन गर्विता अप्सराद्वय ने सहस्राक्ष इन्द्रदेव से कहा—।।११।।

गम्भीरातिगम्भीरे ऊचतुः

आवां गत्वा तपस्यन्तं गाधिपुत्रं महाद्युतिम्। च्यावयावो नृत्यगीत रूपयौवनसम्पदा॥१२॥

यासामपाङ्गे हसिते वाचि विभ्रमसम्पदि।
नित्यं वसति पञ्चेषुस्ताभिः कोऽत्र न जीयते॥१३॥

गंभीरा तथा अतिगंभीरा कहती हैं—हम दोनों वहां जाकर तपस्या कर रहे उन महाद्युति गाधिपुत्र को अपने नृत्य-गीत तथा रूप-यौवन सम्पदा से तप से च्युत कर देंगी। जिसके अपाङ्ग (कटाक्ष), हास, विलास, वाणी में सदा पंचबाणधारी कामदेव निवास करते हैं, वह किसे नहीं जीत लेगी?।।१२-१३।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्ते सहस्राक्षे त आगत्य महानदीम्। ददृशाते तपस्यन्तं विश्वामित्रं महामुनिम्॥१४॥
मृत्योरपि दुराधर्षं भूमिस्थमिव धूर्जटिम्। सहस्रमेकं वर्षाणामीक्षितुं न च शक्नुतः॥१५॥
दूरे स्थिते नृत्यगीतचाटुकाररते तदा। विलोक्य मुनिशार्दूलस्ततः कोपाकुलोऽभवत्॥१६॥
प्रतीपाचरणं दृष्ट्वा क्रोधः कस्य न जायते। निस्पृहोऽपि महाबाहुस्तमिन्द्रं प्रहसन्निव॥१७॥

आभ्यां मुक्तः सहस्राक्षो ह्यप्सरोभ्यां ब्रुवन्निव।
शशाप ते स गाधेयो द्रवरूपे भविष्यथः॥१८॥
द्रवितुं मां समायाते यतस्त्विह ततो लघु।
ततः प्रसादितस्ताभ्यां शापमोक्षं चकार सः॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—सहस्राक्ष इन्द्र ने यह सुनकर उनको ऐसा ही करने का आदेश दे दिया। वे दोनों अप्सरायें महानदी तट पर आकर भी मृत्यु से भी अधिक दुराधर्ष, तपःपरायण, भूमिस्थित धूर्जटि शंकर के समान महामुनि विश्वामित्र की ओर एक हजार वर्ष तक भी आंख उठा कर देखने में सक्षम नहीं हो सकीं। इसलिये वे दूर रहकर ही नृत्य, गीत तथा अपने विचित्र विलासमय हाव-भाव का प्रदर्शन करने लगीं। तदनन्तर मुनिशार्दूल विश्वामित्र उनको देख कर क्रोधित हो गये। अत्यन्त विपरीत व्यवहार को देख कर कौन कुपित नहीं होता? उन महाबाहु गाधिनन्दन ने निस्पृह होते हुये भी इन्द्र का उपहास करते हुये मन ही मन विचार किया

कि ये दोनों अप्सरायें इन्द्र को भयमुक्त करने आई हैं। तदनन्तर उन्होंने अप्सराओं को शाप दे दिया। विश्वामित्र ने शाप देते हुये कहा—"तुम लोग मुझे द्रवित (तपःच्युत) करने के लिये आई हो, अतः तुम दोनों अविलम्ब द्रवरूपा (जलरूपा) हो जाओ।" तदनन्तर उन दोनों द्वारा ऋषि को (प्रार्थना द्वारा) प्रसन्न किया गया। इससे महर्षि विश्वामित्र ने उनको शाप से मुक्त करते हुये कहा—।१४-१९।।

भवेतां दिव्यरूपे वां गङ्गया सङ्गते यदा। तच्छापात्ते नदीरूपे तत्क्षणात्सम्बभूवतुः।।२०।।
अप्सरोयुगमाख्यातं नदीद्वयमतोऽभवत्। ताभ्यां परस्परं चापि ताभ्यां गङ्गासु सङ्गमः।।२१।।
सर्वलोकेषु विख्यातो भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः। तत्राऽऽस्ते दृष्ट एवासौ सर्वसिद्धिप्रदायकः।।२२।।
तत्र स्नात्वा तु तं दृष्ट्वा मुच्यते सर्वबन्धनात्।।२३।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽप्सरोयुगसङ्गमतीर्थवर्णनं नाम
सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४७।।

गौतमीमाहात्म्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः।।७८।।

"जब तुम्हारा गौतमी गंगा से संगम होगा, तब तुम लोग दिव्यरूपी हो जाओगी।" अब वे दोनों तत्काल शापवशात् नदीरूपा हो गयीं। ये दोनों नदी इसी कारण अप्सरा-युग नाम से प्रसिद्ध हो गयीं। ये दोनों नदियां आपस में मिलकर जहां पर गौतमी गंगा से युक्त हो गयीं, वहीं संगमतीर्थ पर सर्वलोकप्रसिद्ध भुक्ति-मुक्ति देने वाले शिव विराजमान हैं। इनका दर्शन सर्वसिद्धिदायक है। यहां संगम में स्नानोपरान्त उनका दर्शन करने वाला व्यक्ति सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।।२०-२३।।

।।सप्तचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कोटितीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

कोटितीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया दक्षिणे तटे। यस्यानुस्मरणादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते।।१।।
यत्र कोटीश्वरो देवः सर्वं कोटिगुणं भवेत्। कोटिद्वयं तत्र पूर्णं तीर्थानां शुभदायिनाम्।।२।।
तत्र व्युष्टिं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः।
कण्वस्य तु सुतो ज्येष्ठो बाह्लीक इति विश्रुतः।।३।।
काण्वश्चेति जनैः ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः। इष्टीः पार्वायणानीर्याः सभार्यो वेदपारगः।।४।।

कुर्वन्नास्ते स गौतम्यास्तीरस्थो लोकपूजितः।
प्रातःकाले सभार्योऽसौ जुह्वदग्नौ समाहितः॥५॥
सर्वदाऽऽस्ते कदाचित्तु हवनाय समुद्यतः। एकाहुतिं स हुत्वा तु समिद्धे हव्यवाहने॥६॥
आहुत्यन्तरदानाय हविर्द्रव्यं करेऽग्रहीत्। एतस्मिन्नन्तरे वह्निरुपशान्तोऽभवत्तदा॥७॥
ततश्चिन्तापरः काण्वः कर्तव्यं किं भवेदिति। अन्तर्विचारयामास विषादं परमं गतः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—गंगा के दक्षिण तट पर विख्यात तीर्थ कोटितीर्थ विराजित है। उनके स्मरण मात्र से व्यक्ति सभी पापों से मुक्ति पा जाता है। यहां जहां पर कोटीश्वर देव स्थित हैं, वहां दानादि सभी कार्य करने से करोड़ों गुना फललाभ होता है। यहां पर पूर्णतः दो करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं। हे नारद! मैं इस तीर्थ से सम्बन्धित उपाख्यान कहता हूं। उसे यत्नतः श्रवण करो। कण्व मुनि के ज्येष्ठ पुत्र वाह्लीक नाम से प्रसिद्ध थे। वे वेद-वेदाङ्ग पारंगत ऋषि लोगों द्वारा कहे जाते थे। गौतमी तट पर वे वेदज्ञ लोकपूजित ऋषि पर्व सम्बन्धिनी (दर्श-पौर्णमासादि) इष्टियों का अनुष्ठान करते रहने लगे। वे नित्य प्रति प्रातः भार्या के साथ अग्नि में समाहित होकर होम किया करते थे। एक बार जब वे होम करने बैठे तथा मात्र एक आहुति से समिद्धयुक्त अग्नि में होम किया ही था तथा जैसे ही दूसरी आहुति देने हेतु हविर्द्रव्य ग्रहण ही किया, तभी अग्नि शान्त हो गयी। तब वे काण्व ऋषि अतीव विषाद युक्त हो गये।।१-८।।

आहुत्योश्च द्वयोर्मध्य उपशान्तो हुताशनः। अग्न्यन्तरमुपादेयं वैदिकं लौकिकं तथा॥९॥
क्व होष्यं स्याद्द्वितीयं तु आहुत्यन्तरमेव च। एवं मीमांसमाने तु दैवी वागब्रवीत्तदा॥१०॥

अब काण्व इस चिन्ता में पड़ गये कि "दूसरी आहुति कहां प्रदान करूं? वैदिकी तथा लौकिक अग्नि इस कार्य हेतु प्रयुक्त हो सकता है अथवा नहीं तथा दूसरी आहुति मैं अब कहां प्रदान करूं?" द्वितीय अग्नि में होम करने पर द्वितीय अग्नि में होम करने का दोष होगा। वे यही मीमांसा कर ही रहे थे, तभी दैववाणी सुनाई पड़ी।।९-१०।।

अग्न्यन्तरं नैव तेऽत्र उपादेयं भविष्यति। यानि तत्र भविष्यन्ति शकलानि समीपतः॥११॥
अर्धदग्धेषु काष्ठेषु विप्रराज प्रहूयताम्। नेत्युवाच तदा काण्वः सैव वागब्रवीत्पुनः॥१२॥

आकाशवाणी ने कहा कि "तुम्हारे द्वारा अन्य अग्नि का उपयोग उचित नहीं है। अतएव तुम ऐसा करो कि पूर्व अग्नि के जो काष्ठखण्ड हैं तथा जो अर्द्धदग्ध काष्ठखण्ड हैं, हे विप्रराज! उनमें ही होम करो।" यह सुनकर काण्व ऋषि ने कहा—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।" तब उस वाणी ने पुनः कहा—।।११-१२।।

अग्नेः पुत्रो हिरण्यस्तु पिता पुत्रः स एव तु।
पुत्रे दत्तं प्रियायैव पितुः प्रीत्यै भविष्यति॥१३॥
पित्रे देयं सुते दद्यात्कोटिप्रीतिगुणं भवेत्। दैवी वागब्रवीदेवं ततः सर्वे महर्षयः॥१४॥
निश्चित्य धर्मसर्वस्वं तथा चक्रुर्यथोदितम्। एतज्ज्ञात्वा जगत्यत्र पुत्रे दत्तं पितुर्भवेत्॥१५॥
अपत्याद्युपकारेण पित्रोः प्रीतिर्यथा भवेत्।
तथा नान्येन केनापि जगत्येतद्धि विश्रुतम्॥१६॥

सुप्रसिद्धं जगत्येतत्सर्वलोकेषु पूजितम्।
तस्मिन्दत्ते भवेत्पुण्यं सर्वं कोटिगुणं सुत॥१७॥

दैववाणी ने पुनः कहा—स्वर्ण अग्नि का पुत्र है। जो पिता हैं, वे ही पुत्र हैं। पुत्र को देने पर वह पिता के लिये भी प्रसन्नताप्रद होता है। जो द्रव्य पिता को देय होता है, पुत्र को समर्पण करने से वह भी पिता को कोटिगुणित प्रीति सम्पादन करता है।'' ऐसा उस दैववाणी ने कहा था। तब सभी मुनिगण ने यही धर्मसर्वस्व मानकर तदनुरूप कार्य किया। पुत्र का उपकार करने से जिस प्रकार माता-पिता को प्रसन्नता होती है, तथा पुत्रों का उपकार करने से पिता का ही उपकार जिस प्रकार से होता है, वह अन्य कार्य से नहीं होता। यह सुप्रसिद्ध कथा सभी लोकों में ससम्मान गृहीत हो गयी। इसीलिये पिता के स्थान पर पुत्र को प्रदान करने का फल सभी दानों से एक कोटि गुना अधिक होता है।।१३-१७।।

मनोग्लानिनिवृत्तिश्च जायते च महत्सुखम्।
पुनरप्याह सा वाणी काण्वेऽस्मिन्स्तीर्थ उत्तमे॥१८॥
अभवत्तन्महत्तीर्थं काण्वपुण्यप्रभावतः। लोकत्रयाश्रयाशेषतीर्थेभ्योऽपि महाफलम्॥१९॥
स्नानदानादिकं किञ्चिद्भक्त्या कुर्वन्समाहितः।
फलं प्राप्स्यस्यशेषेण सर्वं कोटिगुणं मुने॥२०॥
यत्किञ्चित्क्रियते चात्र स्नानदानादिकं नरैः।
सर्वं कोटिगुणं विद्यात्कोटितीर्थं ततो विदुः॥२१॥
यत्रैतद्वृत्तमाग्नेयं काण्वं पौत्रं हिरण्यकम्।
वाणीसंज्ञं कोटितीर्थं कोटितीर्थफलं यतः॥२२॥
कोटितीर्थस्य माहात्म्यमत्र वक्तुं न शक्यते। वाचस्पतिप्रभृतिभिरथ वाऽन्यैः सुरैरपि॥२३॥
यत्रानुष्ठीयमानं हि सर्वं कर्म यथा तथा। गोदावर्याः प्रसादेन सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥२४॥
कोटितीर्थे द्विजाग्राय गामेकां यः प्रयच्छति। तस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्गोकोटिफलमश्नुते॥२५॥

''इसके फलस्वरूप व्यक्ति के मानसिक ग्लानि की निवृत्ति होती है तथा महासुखलाभ होता है।'' उस दैववाणी ने आगे और भी कहा—''इस उत्तम मुनि काण्व के तप के प्रभाव से यह तीर्थ महातीर्थ हो गया। तीनों लोकों के प्रचुर तीर्थों की तुलना में यह तीर्थ महाफलप्रद है। इस उत्तम काण्व तीर्थ में भक्ति के साथ समाहित होकर स्नान-दानादि का अशेष फल मिलता है। हे मुनिवर! वहां इन सब कार्यो को करने से अन्य स्थान की तुलना में कोटिगुणित फललाभ होता है। मनुष्यगण यहां स्नान-दानादि जो कोई भी कार्य करते हैं, वह सब अत्यन्त फलप्रद होता है। जहां पर ऊपर कही गयी घटना घटित हुई थी, वहां आग्नेय, काण्व, पौत्र, हिरण्यक, वाणीसंज्ञ तथा कोटितीर्थफल प्रदाता कोटितीर्थ स्थित हैं। यहां कहीं भी अनुष्ठित समस्त कर्म गोदावरी की कृपा से करोड़ों गुणित फल प्रदान करता है। ऐसे कोटितीर्थ का माहात्म्य इस जगत् में बृहस्पति तथा अन्य देवता भी कह सकने में समर्थ नहीं हैं। जो कोई भी इस तीर्थ में ब्राह्मणश्रेष्ठ को एक भी गौ दान करता है, वह इस तीर्थ की महिमा के कारण कोटि गोदान के बराबर फललाभ करता है।।१८-२५।।

तस्मिंस्तीर्थे शुचिर्भूत्वा भूमिदानं करोति यः। श्रद्धायुक्तेन मनसा स्यात्तत्कोटिगुणोत्तरम्॥२६॥
सर्वत्र गौतमीतीरे पितॄणां दानमुत्तमम्। विशेषतः कोटितीर्थे तदनन्तफलप्रदम्।
अत्रैकन्यूनपञ्चाशत्तीर्थानि मुनयो विदुः॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये काण्वाद्येकोनपञ्चाशत्तीर्थवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४८॥

गौतमीमाहात्म्य ऊनाशीतितमोऽध्यायः॥७९॥

इस तीर्थ में जो व्यक्ति पवित्रता पूर्वक भूमिदान श्रद्धायुक्त होकर करेगा, उसे भी कोटिगुणित फल मिलेगा। यहां गौतमी तट पर सर्वत्र पितृगण के निमित्त किया दान उत्तम पुण्यप्रद है। विशेषतः कोटितीर्थ पर यह अनन्त गुणित फलप्रद हो जाता है। यहां उनचास तीर्थ हैं, जो मुनिगण को अच्छी तरह ज्ञात हैं।।२६-२७।।

।।अष्टचत्वारिंशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

नारसिंह तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

नारसिंहमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। तस्यानुभावं वक्ष्यामि सर्वरक्षाविधायकम्॥१॥
हिरण्यकशिपुः पूर्वमभवद्बलिनां वरः। तपसा विक्रमेणापि देवानामपराजितः॥२॥
हरिभक्तात्मजद्वेषकलुषीकृतमानसः। आविर्भूय सभास्तम्भाद्विश्वात्मत्वं प्रदर्शयन्॥३॥
तं हत्वा नरसिंहस्तत्सैन्यमद्रावयत्तदा। सर्वान्हत्वा महादैत्यान्क्रमेणाऽऽजौ महामृगः॥४॥
रसातलस्थाञ्शत्रूंश्च जित्वा स्वर्लोकमीयिवान्।
तत्र जित्वा भुवं गत्वा दैत्यान्हत्वा नगस्थितान्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—गंगा के उत्तर तट पर नारसिंह नाम वाला प्रसिद्ध तीर्थ है, जिसके सर्वरक्षाकारक प्रभाव का वर्णन करता हूं। पूर्वकाल में हिरण्यकशिपु नामक दैत्य ने उत्पन्न होकर तप तथा बल-विक्रम के कारण देवताओं से अपराजेयत्व लाभ किया था। वह अपने हरिभक्त पुत्र के प्रति द्वेष के कारण उसके प्रति कलुषित व्यवहार करता तथा कठोर वाक्य का प्रयोग करता रहता था। तब हरि ने उसके समक्ष अपनी विश्वरूपता का

नृसिंह रूप में प्रदर्शन करते हुये सभाभवन में आविर्भूत होकर उसका वध कर दिया और उसकी सेना को भी निहत कर दिया। तदनन्तर क्रमशः उन मृगराज नृसिंह देव ने रणभूमि में अन्य महादैत्यों का भी संहार कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने रसातलस्थ शत्रुओं पर जय करके स्वर्गलोक प्रस्थान कर दिया। तब उन्होंने वहां पहुंचे शत्रुओं का भी वध करके भूतल पर पुनरागमन किया था। यहां आकर उन्होंने पर्वतस्थ दैत्यों का भी वध कार्य सम्पन्न कर दिया।।१-५।।

समुद्रस्थान्नदीसंस्थान्ग्रामस्थान्वनवासिनः। नानारूपधरान्दैत्यान्निजघान मृगाकृतिः।।६।।
आकाशगान्वायुसंस्थाञ्ज्योतिर्लोकमुपागतान्। वज्रपाताधिकनखः समुद्धूतमहासटः।।७।।
दैत्यगर्भस्त्राविगर्जी निर्जिताशेषराक्षसः। महानादैर्वीक्षितैश्च प्रलयानलसन्निभैः।।८।।
चपेटैरङ्गविक्षेपैरसुरान्पर्यचूर्णयत्। एवं हत्वा बहुविधान्गौतमीमगमद्धरिः।।९।।
स्वपदाम्बुजसम्भूतां मनोनयननन्दिनीम्। तत्राम्बर्य इति ख्यातो दण्डकाधिपते रिपुः।।१०।।

उन देवाधिदेव नृसिंह ने आकाशचारी, समुद्रगत, नदी में स्थित, ग्रामस्थ, वन निवासी, नाना रूपधारी दैत्यों को निहत कर दिया। वे सिंह के आकार वाले, वज्र के समान कठोर नख वाले, महान् सिंह जैसे अयाल वाले (ग्रीवा पर फहराते केशों वाले), दैत्य स्त्रियों के गर्भ का अपनी गर्जना से स्राव करा देने वाले, प्रलयाग्नि युक्त दृष्टि वाले, चपत के ही आघात से तथा अंगविक्षेप से राक्षसों का वध करते थे। ऐसे श्रीहरि राक्षस वधोपरान्त अपने चरण के नखों से उत्पन्न तथा मन एवं नयन को आनन्द देने वाली गौतमी के तट पर आये। वहां अम्बर्य नाम वाला प्रख्यात दण्डकाधिपति प्रधान शत्रु रहता था।।६-१०।।

देवानां दुर्जयो योद्धा बलेन महताऽऽवृतः। तेनाभवन्महारौद्रं भीषणं लोमहर्षणम्।।११।।
शस्त्रास्त्रवर्षणं युद्धं हरिणा दैत्यसूनुना। निजघान हरिः श्रीमांस्तं रिपुं ह्युत्तरे तटे।।१२।।
गङ्गायां नारसिंहं तु तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। स्नानदानादिकं तत्र सर्वपापग्रहार्दनम्।।१३।।
सर्वरक्षाकरं नित्यं जरामरणवारणम्। यथा सुराणां सर्वेषां न कोऽपि हरिणा समः।।१४।।
तीर्थानामप्यशेषाणां तथा तत्तीर्थमुत्तमम्। तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा कुर्यान्नृहरिपूजनम्।।१५।।
स्वर्गे मर्त्ये तले वाऽपि तस्य किञ्चिन्न दुर्लभम्।
इत्याद्यष्टौ मुने तत्र महातीर्थानि नारद।।१६।।
पृथक्पृथक्तीर्थकोटिफलमाहुर्मनीषिणः। अश्रद्धयाऽपि यन्नाम्नि स्मृते सर्वाघसंक्षयः।।१७।।
भवेत्साक्षान्नृसिंहोऽसौ सर्वदा यत्र संस्थितः। तत्तीर्थसेवासञ्जातं फलं कैरिह वर्ण्यते।।१८।।
यथा न देवो नृहरेरधिकः क्वापि वर्तते। तथा नृसिंहतीर्थेन समं तीर्थं न कुत्रचित्।।१९।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नारसिंहाद्यष्टतीर्थवर्णनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४९।।

गौतमीमाहात्म्येशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

यह देवगण के लिये अजेय योद्धा महान् सेना के साथ वहां स्थित था। उसके साथ भगवान् नृसिंह का

भीषण, महारौद्र, लोमहर्षण संग्राम छिड़ गया। श्रीमान् श्रीहरि नृसिंह देव ने गौतमी के उत्तर तट पर उस दैत्य का विनाश कर दिया। वह स्थान त्रैलोक्यविश्रुत नारसिंह तीर्थ कहलाया। यहां स्नान-दानादि कृत्य से सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। यह स्थान सदैव सर्वरक्षाकारी तथा जरा-मरण हरने वाला है। जैसे देवताओं में श्रीहरि की बराबरी करने वाला कोई नहीं है, तदनुरूप अनन्त तीर्थों में इस तीर्थ के समान उत्तम कोई तीर्थ नहीं है। यहां स्नानोपरान्त नृसिंह देव की पूजा करने वाले व्यक्ति के लिये स्वर्ग, मृत्युलोक तथा पाताल में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। हे नारद! यहां ऐसे ही आठ महातीर्थ भी हैं। वे प्रत्येक एक-एक करोड़ तीर्थ के समान पुण्यमय हैं। यह महात्माओं का वचन है। भले ही कोई अश्रद्धा से भी इनका नाम ले, वह भी सर्वपाप विनिर्मुक्त होगा। जहां साक्षात् नृसिंहदेव विराजित हैं, उस तीर्थ के सेवन का फल कौन कह सकेगा? नृसिंह से श्रेष्ठ देवता कहीं नहीं हैं। वैसे ही नृसिंह तीर्थ के समान तीर्थ कहीं नहीं है।।११-१९।।

।।एकोनपञ्चाशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

पैशाचं तीर्थमाख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। पिशाचत्वात्पुरा विप्रो मुक्तिमाप महामते॥१॥
सुयवस्याऽऽत्मजो लोकेऽजीगर्तिरिति विश्रुतः। कुटुम्बभारदुःखार्तो दुर्भिक्षेण तु पीडितः॥२॥
मध्यमं तु शुनःशेपं पुत्रं ब्रह्मविदां वरम्। विक्रीतवान्क्षत्रियाय वधाय बहुलैर्धनैः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महामति नारद! गंगा के उत्तरी तट पर पैशाचिक नामक एक तीर्थ है, जहां प्राचीन काल में एक ब्राह्मण पिशाचत्व से मुक्त हो गये थे। यहां पर सुयव (पाठान्तर से सुयज्ञ) नामक ब्राह्मण का अजीगर्त्त नामक पुत्र था। वह दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर भोजनादि पाने में अक्षम हो गया। तब ब्रह्मज्ञों में प्रधान अपने मध्यम पुत्र शुनःशेप को उसने एक क्षत्रिय को प्रचुर धन के बदले बलि देने हेतु विक्रय कर दिया।।१-३।।

किं नामाऽऽपद्गतः पापं नाऽऽचरत्यपि पण्डितः।
शमितृत्वे धनं चापि जगृहे बहुलं मुनिः॥४॥

विदारणार्थं च धनं जगृहे ब्राह्मणाधमः। ततोऽप्रतिसमाधेयमहारोगनिपीडितः॥५॥
स मृतः कालपर्याये नरकेष्वथ पातितः। भोगादृते न क्षयोऽस्ति प्राक्तनानामिहांहसाम्॥६॥
किङ्करैर्यमवाक्येन बहुयोन्यन्तरं गतः। ततः पिशाचो ह्यभवद्दारुणो दारुणाकृतिः॥७॥

शुष्ककाष्ठेष्वथारण्ये निर्जले निर्जने तथा।
ग्रीष्मे ग्रीष्मदवव्याप्ते क्षिप्यते यमकिङ्करैः॥८॥
कन्यापुत्रमहीवाजिगवां विक्रयकारिणः। नरकान्न निवर्तन्ते यावदाभूतसम्प्लवम्॥९॥
स्वकृताघविपाकेन दारुणैर्यमकिङ्करैः। सङ्घाते पच्यमानोऽसौ रुरोदोच्चैः कृतं स्मरन्॥१०॥

यह कहा गया है कि आपत्ति से ग्रस्त होकर अन्य की तो बात ही क्या, पण्डित लोग भी कौन सा पातक नहीं कर बैठते? तदनन्तर वह ब्राह्मण आयु पूर्ण हो जाने पर मरणोपरान्त नरकगामी हो गया। प्राक्तन कर्मों का भोग के बिना क्षय नहीं होता। यम की आज्ञा से यमदूत लोग द्वारा वह अनेक नरकों में पतित किया गया तथा अन्त में वह दारुण आकृति वाला पिशाच हो गया। यमदूतों ने उसे ग्रीष्मकाल में दावानल युक्त शुष्क काठ से पूर्ण तथा जनशून्य जलहीन वन में फेंक दिया। जो मनुष्य कन्या, पुत्र, भूमि, अश्व तथा गौ को बेचता है, वह तब तक नरकों से छुटकारा नहीं पाता, जब तक लोकों का अस्तित्व है। वह अजीगर्त्त अपने किये कर्मविपाक के कारण दारुण यमदूतों द्वारा उस अति दुःखद वन में फेंक दिये जाने के कारण अपने पूर्वकृत कर्म का स्मरण करता हुआ उच्च स्वर से रुदन करने लगा।।४-१०।।

पथि गच्छन्कदाचित्स जीगर्तेर्मध्यमः सुतः।
शुश्राव रुदतो वाणीं पिशाचस्य मुहुर्मुहुः॥११॥
पुत्रक्रेतुर्ब्रह्महन्तुर्जीगर्तेस्तु पितुस्तदा। पापिनः पुत्रविक्रेतुर्ब्रह्महन्तुः पितुश्च ताम्॥१२॥
शुनःशेपस्तदोवाच को भवानतिदुःखितः। जीगर्तिरब्रवीद्दुःखाच्छुनःशेपपिता ह्यहम्॥१३॥
पापीयसीं क्रियां कृत्वा योनिं प्राप्तोऽस्मि दारुणाम्।
नरकेष्वथ पक्वश्च पुनः प्राप्तोऽन्तरालकम्।
ये ये दुष्कृतकर्माणस्तेषां तेषामियं गतिः॥१४॥

अजीगर्त्त के उस मध्यम पुत्र ने एक बार मार्ग पर चलते-चलते पुत्रविक्रेता, ब्रह्मघाती, पिशाचरूपी पिता की बारम्बार गूंज रही विलाप वाणी को उस वन में सुना। शुनःशेप वह सुनकर दुःखित चित्त से उस पिशाच से पूछने लगा "तुम कौन हो"? तब अजीगर्त्त ने दुःखी चित्त से उत्तर दिया "मैं शुनःशेप का पिता हूं। मैंने जो पापकर्म किया था, उसके फलस्वरूप इस दारुण योनि में पड़ा हूं। मैंने नरकों में भी नाना यातना भोग किया तथा अब इस दशा को प्राप्त हूं। जो दुष्कृति हैं, उनकी ऐसी ही गति होती है"।।११-१४।।

जीगर्तिपुत्रस्तमुवाच दुःखात्सोऽहं सुतस्ते मम दोषेण तात।
विक्रीत्वा मां नरकानेवमाप्तस्ततः करिष्ये स्वर्गतं त्वामिदानीम्॥१५॥
एवं प्रतिज्ञाय स गाधिपुत्रपुत्रत्वमाप्तोऽथ मुनिप्रवीरः।
गङ्गामभिध्याय पितुश्च लोकाननुत्तमानीहमानो जगाम॥१६॥
अशेषदुःखानलधूपितानां, निमज्जतां मोहमहासमुद्रे।
शरीरिणां नान्यदहो त्रिलोक्यामालम्बनं विष्णुपदीं विहाय॥१७॥

शुनःशेप ने तब दुःख में भरे चित्त से कहा—"हे तात! मैं ही आपका पुत्र हूं। मेरे दोष के कारण

आपने मेरा विक्रय किया तथा नरकगामी हो गये। अब मैं ही आपको स्वर्गगामी करूंगा।" शुनःशेप यह प्रण करके पिता की उत्तमलोक प्राप्ति की कामना को लेकर गौतमी गंगा की ओर चल पड़े। (शुनःशेप की जीवन रक्षा करके विश्वामित्र ऋषि ने उसे अपना दत्तक पुत्र बना लिया था)। उनका विचार था कि अशेष दुःखाग्नि से सन्तप्त, मोहसागर में निमग्न देहधारी लोगों के लिये त्रैलोक्य में विष्णु के चरण से निर्गत गौतमीगंगा के अतिरिक्त कोई सहारा नहीं है।।१५-१७।।

एवं विनिश्चित्य मुनिर्महात्मासमुद्दिधीर्षुः पितरं स दुर्गतेः।
शुचिस्ततो गौतमीमाशु गत्वा, तत्र स्नात्वा संस्मरञ्छम्भुविष्णू॥१८॥
ददौ जलं प्रेतरूपाय पित्रे, पिशाचरूपाय सुदुःखिताय।
तद्दानमात्रेण तदैव पूतोऽजीगर्तिरावाप वपुः सुपुण्यम्॥१९॥
विमानयुक्तः सुरसङ्घजुष्टं, विष्णोः पदं प्राप सुतप्रभावात्।
गङ्गाप्रभावाच्च हरेश्च शम्भोर्विधातुरर्कायुततुल्यतेजाः॥२०॥

एवंविध निश्चय करके पिता को उनकी दुर्गति से त्राण दिलाने के उद्देश्य से वे पवित्र देह-मन के साथ शीघ्रता पूर्वक गौतमी नदी तट पर पहुंचे। उन्होंने गौतमी में स्नान करके शंभु तथा विष्णु का स्मरण करने के पश्चात् पिशाचदेहधारी दुःखी मृत पिता का तर्पण किया। यह तर्पण करते ही अजीगर्त्त पवित्र हो गया तथा उसे पुण्यमय शरीर की प्राप्ति हो गयी। उस समय अजीगर्त्त ने पुत्र, गंगा, हरि, हर, ब्रह्मा के प्रभाव से सूर्यतुल्य तेजवान् देहलाभ किया तथा विमान पर बैठकर देवगण के साथ गमन करते हुये विष्णु का परमपद प्राप्त किया।।१८-२०।।

ततः प्रभृत्येतदतिप्रसिद्धं, पैशाचनाशं च महागदं च।
महान्ति पापानि च नाशमाशु, प्रयान्ति यस्य स्मरणेन पुंसाम्॥२१॥
तीर्थस्य चेदं गदितं तवाद्य, माहात्म्यमेतत्त्रिशतानि यत्र।
तीर्थान्यथान्यानि भवन्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायीनि किमन्यदत्र॥२२॥
सर्वसिद्धिदमाख्यातमित्याद्यत्र शतत्रयम्। तीर्थानां मुनिजुष्टानां स्मरणादप्यभीष्टदम्॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पैशाचादिशतत्रयतीर्थवर्णनं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५०।।
गौतमीमाहात्म्ये एकाशीतितमोऽध्यायः।।८१।।

उसी समय से यह स्थान पैशाचतीर्थ तथा महागदतीर्थ नाम से प्रख्यात हो गया था। यह पैशाचत्व तथा रोगनाशक तीर्थ है। इसके स्मरणमात्र से मनुष्यों की महा-महा पापराशि का नाश हो जाता है। मैंने उस तीर्थ की यह महिमा तुमसे कह दिया। यहां और भी तीन सौ तीर्थ विराजमान हैं। वे सभी भोग तथा मोक्षप्रदाता हैं। सर्वसिद्धि आदि नामों से प्रसिद्ध ये तीन सौ तीर्थ मुनिगण से सेवित तथा उनको प्रिय हैं। ये स्मरण मात्र से अभीष्ट प्रदान कर देते हैं।।२१-२३।।

।।पञ्चाशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

निम्नभेदतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

निम्नभेदमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्। गङ्गाया उत्तरे पारे तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥१॥
यस्य संस्मरणेनापि सर्वपापक्षयो भवेत्। वेदद्वीपश्च तत्रैव दर्शनाद्वेदविद्भवेत्॥२॥
उर्वशीं चकमे राजा ऐलः परमधार्मिकः। को न मोहमुपायाति विलोक्य मदिरेक्षणाम्॥३॥
सा प्रायाद्यत्र राजाऽसौ घृतं स्तोकं समश्नुते।
आनग्नदर्शनात्कृत्वा तस्याः कालावधिं नृपः॥४॥
तां स्वीचकार ललनां यूनां रम्यां नवां नवाम्।
सुप्तायां शयने तस्यां समुत्तस्थौ पुरूरवाः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—गौतमी गंगा के उत्तरी तट पर सर्वपापनाशक त्रैलोक्य विश्रुत निम्नभेद नामक एक तीर्थ है। उसके स्मरण मात्र से सर्वपातक क्षय हो जाता है। वहां वेदद्वीप नामक तीर्थ है। उसके दर्शन से व्यक्ति वेदज्ञ हो जाता है। पूर्वकाल में परम धर्मात्मा ऐलराजा ने उर्वशी अप्सरा की कामना किया था। मदमत्त नेत्रों वाली नारी को देख कर कौन ऐसा है, जो मोहग्रस्त नहीं हो जाता। उसे पाने हेतु राजा जहां अल्पमात्र घृत पान करता अवस्थान कर रहा था, वहां उर्वशी आ गयी। उसने राजा से यह प्रतिज्ञा करा लिया कि जब तक वह राजा को नग्न नहीं देख पायेगी, तभी तक उसके यहां रहेगी। राजा इससे सहमत हो गया। युवकों के लिये रमणीया तथा नित्य नवीन लगने वाली उस ललना को राजा ने ग्रहण कर लिया। एक बार जब वह उर्वशी लेटी थी, तभी राजा पुरूरवा नग्नावस्था में उठ खड़ा हो गया।।१-५।।

विलोक्य तं विवसनं तदैवासौ विनिर्गता।
विद्युच्चञ्चलचित्तानां क्व स्थैर्यं ननु योषिताम्॥६॥
ईक्षाञ्चक्रे स शर्वर्यां विवस्त्रा विस्मितो महान्। एतस्मिन्नन्तरे राजा युद्धायागाद्रिपून्प्रति॥७॥
ताञ्जित्वा पुनरप्यागाद्देवलोकं सुपूजितम्। स चाऽऽगत्य महाराजो वसिष्ठाच्च पुरोधसः॥८॥
उर्वश्या गमनं श्रुत्वा ततो दुःखसमन्वितः।
न जुहोति न चाश्नाति न शृणोति न पश्यति॥९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मृतावस्थं नृपोत्तमम्। बोधयामास वाक्यैश्च हेतुभूतैः पुरोहितः॥१०॥

राजा को इस प्रकार उर्वशी ने जब नग्न देखा, तभी तत्काल वहां से चली गयी। विद्युत् के समान चंचलचित्ता वाली स्त्रियों में स्थिरता कहां होती है? तब उस निशीथ काल में राजा चकित चित्त सा इधर-उधर देखने-खोजने लगा। तभी राजा को शत्रुदल से युद्धार्थ जाना पड़ा। वहां से वापस आने पर उस राजा से उसके पुरोहित वसिष्ठ मुनि ने उर्वशी के चले जाने के प्रसंग का वर्णन किया। यह सुनकर राजा इतना दुःखी हो गया

कि वह हवन, भोजन, श्रवण, अवलोकन—सब कुछ से विरत सा हो गया। तब उसकी यह स्थिति देख कर तथा उसे मृतावस्था की ओर जाते देख कर पुरोहित मुनि वसिष्ठ उसे युक्तिसंगत बातों से प्रबोधित करते हुये सान्त्वना प्रदान करने लगे।।६-१०।।

वसिष्ठ उवाच

सा मृताऽद्य महाराज मा व्यथस्व महामते।
एवं स्थितं तु मा त्वां वै अशिवाः स्पृश्युराशुगाः॥११॥
न वै स्त्रैणानि जानीषे हृदयानि महामते।
शालावृकाणां यादृंशि तस्मात्त्वं भूप मा शुचः॥१२॥
को नाम लोके राजेन्द्र कामिनीभिर्न वञ्चितः। वञ्चकत्वं नृशंसत्वं चञ्चलत्वं कुशीलता॥१३॥
इति स्वाभाविकं यासां ताः कथं सुखहेतवः। कालेन को न निहतः कोऽर्थी गौरवमागतः॥१४॥
श्रिया न भ्रामितः को वा योषिद्भिः को न खण्डितः।
स्वप्नमायोपमा राजन्मदविप्लुतचेतसः॥१५॥
सुखाय योषितः कस्य ज्ञात्वैतद्विज्वरो भव। विहाय शङ्करं विष्णुं गौतमीं वा महामते।
दुःखिनां शरणं नान्यद्विद्यते भुवनत्रये॥१६॥

ऋषि वसिष्ठदेव कहते हैं—हे महामति राजन्! वह उर्वशी आज मर गई। आप व्यथित न हों। आपको अशुभ तथा क्षिप्रगामी अमंगल का स्पर्श भी न हो। हे महामति राजन्! आपको नारी हृदय का ज्ञान नहीं है। उनका चित्त शृगाली जैसा होता है। अतः आप शोक न करें। हे राजेन्द्र! इस जगत् में कौन व्यक्ति कामिनियों द्वारा ठगा नहीं गया? वंचकत्व (ठगना), नृशंसता तथा कुशीलत्व ही स्त्रियों का स्वभाव है। वे किस प्रकार से सुखहेतु हो सकेंगी? काल द्वारा कौन मृत नहीं किया जाता? कौन याचक गौरव पा सका है? लक्ष्मी किसे भ्रमित नहीं करती (धनमद से कौन भ्रमित नहीं होता?) स्त्रियों ने किसे निराश नहीं किया? हे राजन्! मद से विलुप्त चित्त वाले किस व्यक्ति को ये मायामय स्वप्न के समान स्त्रियां सुख दे पाई हैं? अतः यह जानकर आप मोहत्याग करिये। हे महामति! शंकर, विष्णु अथवा गौतमी के अतिरिक्त तीनों लोकों में दुःखियों के लिये कोई शरण नहीं है।।११-१६।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो राजा दुःखं संहत्य यत्नतः। गौतम्या मध्यसंस्थोऽसावैलः परमधार्मिकः॥१७॥
तत्र चाऽऽराधयामास शिवं देवं जनार्दनम्।
ब्रह्माणं भास्करं गङ्गां देवानन्यांश्च यत्नतः॥१८॥
यो विपन्नो न तीर्थानि देवताश्च न सेवते। स कालवशगो जन्तुः कां दशामुपयास्यति॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—गुरु वसिष्ठ का यह वचन सुनकर परम धार्मिक राजा ऐल (पुरूरवा जो इला पुत्र थे) अपने दुःख को त्याग कर गौतमी तट पर गया। वह वहां जाकर शिव, देव जनार्दन, ब्रह्मा, सूर्य, गंगा तथा

और अनेक देवता की आराधना करने लगा। जो लोग विपन्न होकर उस स्थिति में तीर्थ तथा देवता की सेवा नहीं करते, वे कालवशीभूत प्राणी किस बुरी दशा को प्राप्त नहीं होते?।।१७-१९।।

तदीश्वरैकशरणो गौतमीसेवनोत्सुकः। परां श्रद्धामुपगतः संसारास्थापराङ्मुखः॥२०॥
ईजे यज्ञांश्च बहुलानृत्विग्भिर्बहुदक्षिणान्। वेदद्वीपोऽभवत्तेन यज्ञद्वीपः स उच्यते॥२१॥
पौर्णमास्यां तु शर्वर्यां तत्राऽऽयाति सदोर्वशी।
तस्य दीपस्य यः कुर्यात्प्रदक्षिणमथो नरः॥२२॥
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी सागराम्बरा। वेदानां स्मरणं तत्र यज्ञानां स्मरणं तथा॥२३॥
सुकृती तत्र यः कुर्याद्वेदयज्ञफलं लभेत्। ऐलतीर्थं तु तज्ज्ञेयं तदेव च पुरूरवम्॥२४॥
वासिष्ठं चापि तत्तु स्यान्निम्नभेदं तदुच्यते।
ऐले राज्ञि न किञ्चित्स्यान्निम्नं सर्वेषु कर्मसु॥२५॥
यदेतन्निम्नमुर्वश्यां सर्वभावेन वर्तनम्। तच्चापि भेदितं निम्नं वसिष्ठेन च गङ्गया॥२६॥
निम्नभेदमभूत्तेन दृष्टादृष्टेष्टसिद्धिदम्। तत्र सप्त शतान्याहुस्तीर्थानि गुणवन्ति च॥२७॥

अब राजा ने ईश्वर का शरणागत होकर गौतमी नदी के सेवनार्थ उत्सुक चित्त से संसार मार्ग का विसर्जन करके परम श्रद्धा के साथ दक्षिणान्वित अनेक यज्ञ किये। तभी इस स्थान का नाम वेदद्वीप पड़ा। इसे यज्ञद्वीप भी कहते हैं। यहां उर्वशी सतत् पौर्णमासी तिथि पर आती हैं। जो मनुष्य इस द्वीप की प्रदक्षिणा करते हैं, उसने तो सागर रूपी वस्त्र से सुशोभिता पृथिवी प्रदक्षिणा कर लिया। यहां पर जो कोई भी वेद तथा यज्ञों का स्मरण करता है, वह सुकृति व्यक्ति वेदाध्ययन एवं यज्ञ सम्पादन फललाभ करता है। यही ऐल तीर्थ है। इस तीर्थ का पुरूरवा, वशिष्ठ तथा निम्नभेद आदि नाम भी है। इसका कारण यह है कि ऐल राजा का शासन काल ऐसा था कि उसकी कोई भी निम्न भावना किसी कार्य में नहीं थी। केवल उर्वशी के प्रति आसक्त हो जाना ही उसका निम्न कार्य था। उसका यह निम्नभाव भी महर्षि वसिष्ठ ने गौतमी गंगा की कृपा से दूर तथा भेदित करा दिया। अतः यह तीर्थ निम्नभेद कहा गया। यह तीर्थ दृष्ट-अदृष्ट तथा वांछित सिद्धिदायक है। वहां सात सौ अन्य तीर्थ भी हैं, जो अतीव गुणयुक्त हैं।।२०-२७।।

तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्।
स्नानं कृत्वा निम्नभेदे यः पश्यति सुरानिमान्॥२८॥
इह चामुत्र वा निम्नं न किञ्चित्तस्य विद्यते।
सर्वोन्नतिमवाप्यासौ मोदते दिवि शक्रवत्॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये निम्नभेदादिसप्तशततीर्थवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५१।।
गौतमीमाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

इन सभी तीर्थों में स्नान तथा दान समस्त यज्ञवत् फलप्रद है। जो लोग निम्नभेद में स्नानोपरान्त इन

देवगण का वहां दर्शन करते हैं, इहकाल तथा परकाल में कभी भी उनको निम्नता प्राप्त नहीं होती। वह संसार में सर्व प्रकार की उन्नति पाकर स्वर्ग में इन्द्र की तरह शोभित होता है।।२८-२९।।

।।एकपञ्चाशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आनन्दतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

नन्दीतटमिति ख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद॥१॥
अत्रिपुत्रो महातेजाश्चन्द्रमा इति विश्रुतः। सर्वान्वेदांश्च विधिवद्धनुर्वेदं यथाविधि॥२॥
अधीत्य जीवात्सर्वाश्च विद्याश्चान्या महामते। गुरुपूजां करोमीति जीवमाह स चन्द्रमाः।
बृहस्पतिस्तदा प्राह चन्द्रं शिष्यं मुदान्वितः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—नन्दीतट तीर्थ नाम से प्रसिद्ध जो तीर्थ है, वह वेदज्ञों को ज्ञात है। हे नारद! उसका प्रभाव सुनो। अत्रि के पुत्र महातेजस्वी चन्द्रमा विख्यात देवता हैं। उन्होंने गुरु बृहस्पति से समस्त वेद, धनुर्वेद तथा अन्य विद्याओं का सविधि अध्ययन किया। हे महामति! तदनन्तर वे चन्द्रमा बृहस्पति से कहने लगे कि मैं गुरु पूजा करना चाहता हूं। यह सुनकर बृहस्पति प्रसन्न हो गये। उन्होंने शिष्य चन्द्रमा से कहा—।।१-३।।

बृहस्पतिरुवाच

मम प्रिया तु जानीते तारा रतिसमप्रभा॥४॥

बृहस्पति कहते हैं—इस विषय को मेरी पत्नी जो रति के समान प्रभा वाली हैं, वे जानती हैं। उनसे प्रश्न करो।।४।।

ब्रह्मोवाच

प्रष्टुं तां च तदा प्रायादन्तर्वेश्म स चन्द्रमाः। तारां तारामुखीं दृष्ट्वा जगृहे तां करेण सः॥५॥
स्ववेश्म प्रति तां लोभाद्बलादाकर्षयत्तदा। तावद्धैर्यनिधिर्ज्ञानी मतिमान्विजितेन्द्रियः॥६॥
यावन्न कामिनीनेत्रवागुराभिर्निबध्यते। विशेषतो रहःसंस्थां कामिनीमायतेक्षणाम्॥७॥
विलोक्य न मनो याति कस्य कामेषु वश्यताम्। अत एवान्यपुरुषदर्शनं न कदाचन॥८॥
कुलवध्वा रहः कार्यं भीतया शीलविप्लुतेः। विज्ञाय तत्परिजनात्सहसोत्थाय निर्गतः॥९॥
दृष्ट्वा तद्दुष्कृतं कर्म बृहस्पतिरुदारधीः।
शशाप कोपाच्चाऽऽक्षिप्य वाग्भिर्विप्रियकारिभिः॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—ये चन्द्रमा तत्पश्चात् जिज्ञासार्थ अन्तःपुर में गये। वहां उन्होंने तारामुखी तारा को देखा। उन्होंने कामना के वशीभूत होकर उनका हाथ पकड़ा तथा खींचते हुये बल पूर्वक अपने भवन की ओर ले जाने लगे। मनुष्य तभी तक धैर्यवान्, ज्ञानी, मतिमान् तथा इन्द्रियविजयी रहता है, जब तक वह कामिनी के नयनरूपी पाश से बद्ध नहीं हो जाता। विशेष करके एकान्त स्थान में स्थिता मृगनयनी को देख कर किसका मन काम के वशीभूत नहीं हो जाता? तभी कुलवधू को चाहिये कि वह शीलच्युति के भय से एकान्त में कदापि अन्य पुरुष की ओर दृष्टिपात भी न करे। जो भी हो, जब उदार बुद्धि बृहस्पति ने परिजनों द्वारा यह संवाद पाया, तब वे सहसा बाहर आये और उन्होंने चन्द्रमा का यह दुष्कृत्य देख कर कोपवशात् कटु-कठोर शब्दों से चन्द्र का तिरस्कार करते उनको शाप प्रदान किया। उन्होंने चन्द्रमा को अनेक प्रकार के वाक्यों से तिरस्कृत भी किया था।।५-१०।।

पराभिभूतामालोक्य कान्तां कः सोढुमीश्वरः।
युयुधे तेन जीवोऽपि देवश्चन्द्रमसा रुषा॥११॥
न शापैर्हन्यते चन्द्रो नाऽऽयुधैः सुरमन्त्रितैः। बृहस्पतिप्रणीतैश्च न मन्त्रैर्हन्यते शशी॥१२॥
तदा चन्द्रस्तु तां तारां नीत्वा संस्थाप्य मन्दिरे।
बुभुजे बहुवर्षाणि रोहिणीं चाकुतोभयः॥१३॥

वास्तव में कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नी को अन्य से अभिभूत, अधिकृत देख कर नहीं सहन कर पायेगा। अन्ततः बृहस्पति क्रोधयुक्त होकर चन्द्रमा से युद्धरत हो गये। तथापि चन्द्रमा पर शाप से, देवाभिमन्त्रित अस्त्र से अथवा बृहस्पति के द्वारा कोपान्वित होकर किये मन्त्रों का कोई भी प्रभाव होता परिलक्षित नहीं हो सका। ऐसी स्थिति में चन्द्रमा तारा को लेकर अपने गृह चले गये। चन्द्रमा ने तारा को अपने गृह में रख कर अपनी पत्नी रोहिणी एवं तारा का निर्भयता से दीर्घकालीन उपभोग किया।।११-१३।।

न जीयेत तदा देवैर्न कोपैः शापमन्त्रकैः। न राजभिर्न ऋषिभिर्न साम्ना भेददण्डनैः॥१४॥
यदा भार्यां न लेभेऽसौ गुरुः सर्वप्रयत्नतः। सर्वोपायक्षये जीवस्तदा नीतिमथास्मरत्॥१५॥
अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः। स्वार्थमुद्धरते प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता॥१६॥
साध्यं केनाप्युपायेन जानद्भिः पुरुषैः फलम्।
वृथाभिमानिनः शीघ्रं विपद्यन्ते विमोहिताः॥१७॥
एवं निश्चित्य मेधावी शुक्रं गत्वा न्यवेदयत्।
तमागतं कविर्ज्ञात्वा सम्मानेनाभ्यनन्दयत्॥१८॥
उपविष्टं सुविश्रान्तं पूजितं च यथाविधि। पर्यपृच्छद्दैत्यगुरुस्तदागमनकारणम्॥१९॥

अन्ततः जब चन्द्रमा देवगण के अस्त्रों, क्रोध पूर्वक दिये शाप, मन्त्र, राजागण, ऋषिगण के शासन वाक्यों, साम-दाम-दण्ड-भेद से पराजित नहीं हो सके तथा सभी उपायों के व्यर्थ हो जाने के कारण बृहस्पति असफल मनोरथ हो गये और अपनी पत्नी को नहीं पा सके, तब उन्होंने सभी उपायों को व्यर्थ होते देखकर नीति का सहारा ग्रहण किया। उन्होंने विचार किया कि अपमान को सामने रख कर तथा मान को कुछ समय

पीछे रख कर अपना कार्य सिद्ध करना ही प्राज्ञ व्यक्ति का उद्देश्य होना चाहिये। स्वार्थ नष्ट करना मूर्खता है। व्यर्थ अभिमान करने वाले अपनी मूर्खता के कारण विपन्न हो जाते हैं। ज्ञानी व्यक्ति फलप्राप्ति वाला कार्य करे। चाहे जो उपाय करना पड़े। धीमान् बृहस्पति यही निर्णय लेकर शुक्राचार्य के यहां गये। शुक्राचार्य ने उनको आया देख कर उनका यथोचित सम्मान पूर्वक अभिनन्दन किया। तदनन्तर शुक्राचार्य ने बृहस्पतिदेव से उनके आगमन के प्रयोजन को पूछा।।१४-१९।।

गृहागतस्य विमुखाः शत्रवोऽप्युत्तमा न हि।
तस्मै स विस्तरेणाऽऽह भार्याहरणमादितः॥२०॥
बृहस्पतेस्तदा वाक्यं श्रुत्वा कोपान्वितः कविः।
अपराधं तु चन्द्रस्य मेने शिष्यस्य नारद।
अतिक्रममिमं श्रुत्वा कोपात्कविरथाब्रवीत्॥२१॥

घर आये शत्रु को भी बुद्धिमान् व्यक्ति विमुख नहीं करते। बृहस्पति ने तब शुक्राचार्य से अपनी पत्नी के हरण का वृत्तान्त प्रारम्भ से अन्त तक कहा। बृहस्पति का कथन सुनकर कवि (शुक्राचार्य) क्रोधित हो गये। शिष्य चन्द्र ने ऐसा अपराध किया है, यह उन्होंने मान लिया। हे नारद! इस प्रकार चन्द्र को अपनी मर्यादा लांघते देख कर तथा ऐसा वृत्तान्त सुनकर कुपित कवि ने कहा—।।२०-२१।।

शुक्र उवाच

तदा भोक्ष्ये तदा पास्ये तदा स्वप्स्ये तदा वदे।
यदाऽऽनये प्रियं भ्रातस्तव भार्यां परार्दिताम्॥२२॥
तामानीय भुवं पूज्य चन्द्रं शप्त्वा गुरुद्रुहम्। पश्चाद्भोक्ष्ये महाबाहो शृणु वाचं ग्रहेश्वर॥२३॥

शुक्राचार्य कहते हैं—"हे भ्राता! जब मैं तुम्हारी अन्य के द्वारा भोगी जा रही भार्या को ला सकूंगा, तभी मैं भोजन, पान, शयन, वार्त्ता आदि कार्य करूंगा। हे महाबाहु! ग्रहेश्वर! मेरी बात सुनिये। तभी मैं शंकर का पूजन तथा गुरुद्रोही चन्द्र को शाप देकर ही भोजन करूंगा"।।२२-२३।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा स जीवेन दैत्याचार्यो जगाम ह। शिवमाराध्य यत्नेन परं सामर्थ्यमाप्तवान्॥२४॥
वरानवाप्य विविधाञ्शङ्कराद् भावपूजितात्।
शिवप्रसादात्किं नाम देहिनामिह दुर्लभम्॥२५॥
जगाम शुक्रो जीवेन तारया यत्र चन्द्रमाः। वर्तते तं शशापोच्चैः शृणु त्वं चन्द्र मे वचः॥२६॥
यस्मात्पापतरं कर्म त्वया पाप मदात्कृतम्।
कुष्ठी भूयास्ततश्चन्द्रं शशापैवं रुषा कविः॥२७॥
कविशापप्रदग्धोऽभूत्तदैव मृगलाञ्छनः। प्रापुः क्षयं न के नाम गुरुस्वामिसखिद्रुहः॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—वे दैत्यगुरु यह कहकर देवगुरु बृहस्पति के साथ चल पड़े तथा उन्होंने यत्न पूर्वक

प्रभु महेश्वर शिव की पूजा-अर्चना से परम सामर्थ्यलाभ किया। भक्तपूजित शंकर से अनेक वर पाकर शुक्र तब बृहस्पति के साथ वहां गये, जहां चन्द्रमा तारा के साथ विराजित थे। शिव का अनुग्रह होने पर इस लोक के शरीरधारियों के लिये क्या दुर्लभ है? वहां पहुंचकर शुक्राचार्य ने चन्द्रमा को चिल्लाते हुये शाप प्रदान किया कि "हे चन्द्र! श्रवण करो। हे पापी! तुमने मदोन्मत्त होकर जो यह पापमय कार्य किया है, परिणामस्वरूप तुम कुष्ठरोगी हो जाओ।" कवि ने क्रोधाभिभूत होकर यह शाप दिया था। मृगलोचन चन्द्र कवि के शाप द्वारा तत्काल दग्ध प्रायः हो गये। ऐसा संसार में कौन है जो मित्र, स्वामी तथा गुरुद्रोह करके नष्ट नहीं होता?।।२४-२८।।

तत्याज तां स चन्द्रोऽपि तां तारां जगृहे कविः।
शुक्रोऽपि देवानाहूय ऋषीन्पितृगणान्स्तथा॥२९॥
नदीर्नदांश्च विविधानोषधींश्च पतिव्रताः। ततः सम्प्रष्टुमारेभे तारावृत्तविनिष्क्रयम्॥३०॥

शापग्रस्त होते ही चन्द्रमा ने तारा को त्याग दिया। शुक्राचार्य ने तारा को ग्रहण करके देवता-ऋषि-पितरों को, विविध औषधि, नदी-नद तथा पतिव्रता नारीगण को बुलाया तथा तारा का वृत्तान्त कह कर सभी से तारा के शोधनार्थ उपाय को पूछा।।२९-३०।।

ततः श्रुतिः सुरानाह गौतम्यां भक्तितस्त्वियम्।
स्नानं करोतु जीवेन तारा पूजा भविष्यति॥३१॥
रहस्यमेतत्परमं न कथ्यं यस्य कस्यचित्। सर्वास्वपि दशास्वेह शरणं गौतमी नृणाम्॥३२॥

तब श्रुतियों ने देवगण से कहा—ये भक्ति के साथ गौतमी में स्नान करें। बृहस्पति के साथ भक्तिभाव से स्नान करने पर देवी तारा पावन हो जायेंगी। यह रहस्य विषय है। इसे किसी से भी प्रकट करना समीचीन नहीं है। मनुष्यों को सर्वावस्था में इस लोक में गौतमी की शरण ग्रहण करना ही चाहिये।।३१-३२।।

तथाऽकरोच्चैव तारा भर्त्रा स्नानं यथाविधि। पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र जयशब्दो व्यवर्तत॥३३॥
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः। राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः॥३४॥
पुनर्दत्त्वा ब्रह्मजायां कृतां देवैरकल्मषाम्। सर्वं क्षेममभूत्तत्र तस्मात्तीर्थं महामुने॥३५॥
तदभूत्सकलाघौघध्वंसनं सर्वकामदम्। आनन्दं क्षेममभवत्सुराणामसुरारिणाम्॥३६॥
बृहस्पतेश्च शुक्रस्य तारायाश्च विशेषतः। परमानन्दमापन्नो गुरुर्गङ्गामभाषत॥३७॥

तदनुरूप तारा ने वहां पति सहित स्नान किया। जब उन्होंने सविधि स्नान कर लिया, तब वहां पुष्पवृष्टि होने लगी। वहां जय शब्द श्रुतिगोचर होने लगा। तदनन्तर देवगण द्वारा तारा को शुद्धता सम्बन्धित आशीर्वचन प्रदान किया गया। तब देवताओं ने, मनुष्यों ने, राजा ने उन ब्रह्मभार्या को सत्य (पवित्र) मान लिया। एवंविध देवगण ने उन ब्राह्मणपत्नी तारा को निष्पाप निष्कल्मष करते हुये बृहस्पति को प्रदान कर दिया। वहां सभी कार्य कल्याण तथा क्षेमयुक्त हो गया। हे महामुनि नारद! इसीलिये यह तीर्थ सर्वपापनाशक तथा सर्वकामप्रद कहलाया। यहां देवताओं, बृहस्पति तथा शुक्र को एवं तारा को क्षेम तथा आनन्दलाभ हुआ। उस समय गुरु ने परम आनन्दित होकर गंगा से कहा—।।३३-३७।।

गुरुरुवाच

त्वं गौतमि सदा पूज्या सर्वेषामपि मुक्तिदा।
विशेषतस्तु सिंहस्थे मयि त्रैलोक्यपावनी॥३८॥
भविष्यसि सरिच्छ्रेष्ठे सर्वतीर्थैः समन्विता।
यानि कानि च तीर्थानि स्वर्गमृत्युरसातले।
त्वां स्नातुं तानि यास्यन्ति मयि सिंहस्थितेऽम्बिके॥३९॥

बृहस्पति कहते हैं—हे गौतमी! तुम मुक्तिप्रदा होने के कारण सर्वपूज्य हो। विशेषतया मैं (गुरु) जब सिंह राशि में रहूं, तब तुम समस्त तीर्थमयी तथा त्रिभुवन पावनी हो जाओगी। हे अम्बिके! स्वर्ग, मर्त्य, रसातल में जितने तीर्थ हैं, उस समय जब मैं सिंह राशिस्थ रहूंगा, तब वे सभी तुममें स्नानार्थ आगमन करेंगे।।३८-३९।।

ब्रह्मोवाच

धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यश्रीविवर्धनम्। सौभाग्यैश्वर्यजननं तीर्थमानन्दनामकम्॥४०॥
तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थान्याह स गौतमः। स्मरणात्पठनाद्वाऽपि इष्टैः संयुज्यते सदा॥४१॥

शिवस्यात्र निविष्टस्य नन्दी गङ्गातटेऽनिशम्।
साक्षात्च्चरत्यसौ धर्मस्तस्मान्नन्दीतटं स्मृतम्।
आनन्दमपि तत्तीर्थं सर्वानन्दविवर्धनात्॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आनन्दतीर्थादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णनं नाम
द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५२।।

गौतमीमाहात्म्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः।।८३।।

ब्रह्मा कहते हैं—उक्त आनन्द नामक तीर्थ धनप्रद, यशप्रद, आयुप्रद, आरोग्यप्रद, श्रीवर्द्धक, सौभाग्यप्रद तथा ऐश्वर्यप्रद हैं। गौतम मुनि ने कहा था कि यहां पांच हजार तीर्थ हैं। मनुष्य इस आख्यान के पाठ अथवा स्मरण से ही अपने वांछित पदार्थ की प्राप्ति कर लेते हैं। यहां गंगातटस्थ स्थल पर ध्यानमग्न शिव के नन्दी साक्षात् विचरण करते रहते हैं। तभी इसे नन्दीतट भी कहते हैं। यह सर्वानन्द विवर्द्धनकारी होने के कारण आनन्द नाम से भी प्रसिद्ध है।।४०-४२।।

।।द्विपञ्चाशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

भावतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

भावतीर्थमिति प्रोक्तं यत्र साक्षाद्भवः स्थितः।
अशेषजगदन्तस्थो भूतात्मा सच्चिदाकृतिः॥१॥
तत्रेमां शृणु वक्ष्यामि कथां पुण्यतमां शुभाम्। सूर्यवंशकरः श्रीमान्क्षत्रियाणां धुरन्धरः॥२॥
प्राचीनबर्हिराख्यातः सर्वधर्मेषु पारगः।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च वर्षाणां राज्य आस्थितः॥३॥
तस्येदृशं व्रतं चाऽऽसीद्यदहं योवनच्युतः। भवेयं प्रियया वाऽपि पुत्रैर्वा प्रियवस्तुभिः॥४॥
वियुज्येयं ततो राज्यं त्यक्ष्येऽहं नात्र संशयः।
विवेकिनां कुलीनानामिदमेवोचितं नृणाम्॥५॥
स्थीयते विजने क्वापि विरक्तैर्विभवक्षये।
तस्मिन्प्रशासति महीं न वियोगः प्रियैः क्वचित्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—अशेष जगत् जिनके अन्दर विराजित रहता है, जो भूतात्मा सत्-चित् आकृति भगवान् भव हैं, वे जहां विराजित रहते हैं, वही भावतीर्थ कहा गया है। इससे सम्बन्धित यह पुण्यमय उपाख्यान सुनो। हे नारद! सर्वधर्म पारंगत प्राचीनबर्हि नामक एक राजा पूर्वकाल में थे। उन्होंने साढ़े तीन करोड़ वर्ष तक राज्य शासन किया था। उनका व्रत था कि "जैसे ही मैं यौवन रहित हो जाऊंगा, किंवा जब मेरी पत्नी, पुत्र अथवा कोई प्रिय वस्तु मुझसे बिछुड़ जायेगी, तब मैं निःसन्देह राज्य त्याग कर दूंगा।" विवेकी कुलीन व्यक्ति के लिये यही उचित है कि जब वैभव का क्षय हो जाये, तब वह किसी विजन स्थान में जाकर रहे। इन राजा के राजत्व काल में कभी किसी का वियोग किसी को भी नहीं होता था।।१-६।।

नाऽऽधिव्याधी न दुर्भिक्षं न बन्धुकलहो नृणाम्।
तस्मिञ्शासति राज्यं तु न च कश्चिद्वियुज्यते॥७॥
ततः पुत्रार्थमकरोद्यज्ञं राजा महामतिः। ततः प्रसन्नो भगवान्वरं प्रादाद्यथेप्सितम्॥८॥
गौतमीतीरसंस्थाय राज्ञे देवो महेश्वरः। पुत्रं देहीति राजा वै भवं प्राह स भार्यया॥९॥
भवः प्राह नृपं प्रीत्या पश्य नेत्रं तृतीयकम्।
ततः पश्यति राजेन्द्रे भवस्याक्षि तु मानद॥१०॥
चक्षुर्दीप्त्याऽभवत्पुत्रो महिमा नाम विश्रुतः।
येनाकारि स्तुतिः पुण्या महिम्न (?) इति विश्रुता॥११॥

इनके राज्य में आधि-व्याधि, दुर्भिक्ष, बन्धुजन में कलह नहीं होता था। कोई व्यक्ति प्रिय वियोग से पीड़ित नहीं होता था। तदनन्तर इन राजा ने पुत्र हेतु एक यज्ञ किया। इससे प्रभु ने प्रसन्न होकर वर प्रदान करना चाहा। तब गौतमी तीर पर स्थित राजा ने पुत्र हेतु वर की प्रार्थना प्रभु से किया। यह सुनकर देव महेश्वर भव शंकर ने प्रीति पूर्वक राजा से कहा कि "तुम मेरे तृतीय नेत्र में देखो।" हे मानद नारद! राजा ने जैसे ही भगवान् के तृतीय नेत्र में देखा, तभी नेत्र की दीप्ति से पुत्रोत्पत्ति हो गयी। यह पुत्र 'महिमा' कहलाया। यही पुत्र महिम्नः नामक स्तव का रचयिता है। इसने इसी स्तव से भगवान् की स्तुति किया था।।७-११।।

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने त्रिपुरान्तके। यं नित्यमनुवर्तन्ते हरिब्रह्मादयः सुराः॥१२॥
प्राप्तपुत्रश्च नृपतिस्तीर्थश्रेष्ठ्यमयाचत। महापापमहारोगमहाव्यसनिनां नृणाम्॥१३॥
नानाविपद्गणार्तानां सर्वाभिमतलब्धये। प्रादाज्ज्यैष्ठ्यं भवश्चापि भावतीर्थं तदुच्यते॥१४॥
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्। भवप्रसादादभवत्सुतः प्राचीनबर्हिषः॥१५॥
महिमा गौतमीतीरे भावतीर्थं तदुच्यते। तत्र सप्ततितीर्थानि पुण्यान्यखिलदानि च॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भावतीर्थादिसप्ततितीर्थवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः॥८४॥

हरि, ब्रह्मा प्रभृति देवता नित्य जिनकी आज्ञा का अनुवर्त्तन करते हैं, उन त्रिपुरान्तक प्रभु के प्रसन्न होने पर क्या दुर्लभ है? राजा ने पुत्र प्राप्त होने पर भगवान् से इस तीर्थ की श्रेष्ठता स्थापित करने हेतु प्रार्थना किया था। भगवान् भव ने महापापी, महारोगी, महाव्यसनी, नाना विपत्ति से ग्रस्त मनुष्यों की अभीष्ट सिद्धि के लिये इस तीर्थ को श्रेष्ठत्व प्रदान किया। तभी से इस तीर्थ को भावतीर्थ कहते हैं। वहां पर स्नान-दान से समस्त फल मिलता है। शिव की कृपा से गौतमी तट पर राजा प्राचीनबर्हि को पुत्रलाभ हुआ था। उसका नाम महिमा था। तभी इसे भावतीर्थ कहा गया। यहां सत्तर तीर्थ भी हैं। वे पुण्यमय हैं तथा सर्वफलप्रद हैं।।१२-१६।।

।।त्रिपञ्चाशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

सहस्रकुण्डमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः। यस्य स्मरणमात्रेण सुखी सम्पद्यते नरः॥१॥
पुरा दाशरथी रामः सेतुं बद्ध्वा महार्णवे। लङ्कां दग्ध्वा रिपून्हत्वा रावणादीन्रणे शरैः॥२॥

वैदेहीं च समासाद्य रामो वचनमब्रवीत्।
पश्यत्सु लोकपालेषु तस्याऽऽचार्ये पुरः स्थिते॥३॥
अग्नौ शुद्धिगतां सीतां रामो लक्ष्मणसन्निधौ। एहि वैदेहि शुद्धाऽसि अङ्कमारोढुमर्हसि॥४॥
नेत्युवाच तदा श्रीमानङ्गदो हनुमांस्तथा। अयोध्यायां तु वैदेहि सार्धं यामः सुहृज्जनैः॥५॥
तत्र शुद्धिमवाप्याथ पुनर्भ्रातृषु मातृषु। लौकिकेष्वपि पश्यत्सु ततः शुद्धा नृपात्मजा॥६॥
अयोध्यायां सुपुण्येऽह्नि अङ्कमारोढुमर्हसि। अस्याश्चरित्रविषये सन्देहः कस्य जायते॥७॥
लोकापवादस्तदपि निरस्यः स्वजनेषु हि। तयोर्वाक्यमनादृत्य लक्ष्मणः सविभीषणः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सुखी हो जाता है, उस विख्यात सहस्रकुण्ड के सम्बन्ध में वेदज्ञ लोग अवगत हैं। पूर्वकाल में दशरथपुत्र राम ने महासागर में सेतु बांध कर लंकादाह करने के पश्चात् रण में रावणादि शत्रुगण का तीक्ष्ण बाणों के आघात से वध किया और वैदेही सीता को लेकर लोकपालों के सामने तथा आचार्य एवं लक्ष्मण के समक्ष अग्नि प्रवेश से विशुद्धा सीता से कहा—"हे वैदेही! चलो! तुम शुद्धा हो। अब तुम मेरे अंक में बैठ सकती हो।" यह बात सुनकर वहां स्थित अंगद तथा हनुमान ने विरोध करते हुये कहा—"ना वैदेही! हम सभी लोग सुहृदों के साथ अयोध्या चलें। वहां भाई, माता तथा अन्य लोगों के समक्ष पुनः इस अग्निपरीक्षा को देख लेंगे, तब राजकन्या सीता शुद्धिलाभ करेंगी। तदनन्तर पवित्र शुभ तिथि पर ये अयोध्या में आपके अंक में बैठ जायेंगी। इनका चरित्र निःसंदिग्ध भले ही है, तथापि सभी को लोकापवाद को दूर करना चाहिये।" लेकिन लक्ष्मण तथा विभीषण ने अंगद-हनुमान के इस वाक्य को अमान्य कर दिया॥१-८॥

रामश्च जाम्बवांश्चैव तामाहूयन्नृपात्मजाम्।
स्वस्तीत्युक्ता देवताभी राज्ञोऽङ्कं चाऽऽरुरोह सा॥९॥
मुदितास्ते ययुः शीघ्रं पुष्पकेण विराजता।
अयोध्यां नगरीं प्राप्य तथा राज्यं स्वकं तु यत्॥१०॥
मुदितास्तेऽभवन्सर्वे सदा रामानुवर्तिनः। ततः कतिपयाहेषु अनार्येभ्यो विरूपिकाम्॥११॥
वाचं श्रुत्वा स तत्याज गुर्विणीं तामयोनिजाम्।
मिथ्यापवादमपि हि न सहन्ते कुलोन्नताः॥१२॥

राम एवं जाम्ववान ने भी इस अंगद-हनुमान कथित वाक्यों को नहीं माना। उन राजकन्या सीता को बुलाया। तब देवगण के 'स्वस्ति' का उच्चारण करने पर वे राजा रामचन्द्र की गोद में बैठ गयीं। उस समय सब लोग मुदित होकर शोभायमान पुष्पक विमान पर बैठ कर शीघ्रता पूर्वक वहां से प्रस्थान कर गये। अयोध्या आकर श्रीराम ने अपना राज्यलाभ कर लिया। इससे राम की अनुवर्त्ती प्रजा प्रसन्न हो गयी। इसके कुछ दिनों के पश्चात् राम ने अनार्यों की कुत्सित बातों को सुना जो सीता के सम्बन्ध में थीं। वह सुनकर अयोनिजा सीता को श्रीराम ने गर्भावस्था रहने पर भी त्याग दिया। उच्च कुलोत्पन्न व्यक्ति मिथ्या अपवाद सहन नहीं कर पाते॥९-१२॥

वाल्मीकेर्मुनिमुख्यस्य आश्रमस्य समीपतः। तत्याज लक्ष्मणः सीतामदुष्टां रुदतीं रुदन्॥१३॥
नोल्लङ्घ्याऽऽज्ञा गुरूणामित्यसौ तदकरोद्धिया।
ततः कतिपयाहेषु व्यतीतेषु नृपात्मजः॥१४॥
रामः सौमित्रिणा सार्धं हयमेधाय दीक्षितः।
तत्रैवाऽऽजग्मतुरुभौ रामपुत्रौ यशस्विनौ॥१५॥
लवः कुशश्च विख्यातौ नारदाविव गायकौ। रामायणं समग्रं तद्गन्धर्वाविव सुस्वरौ॥१६॥
रामाय चरितं सर्वं गायमानौ समीयतुः। यज्ञवाटं राजसुतौ हेतुभिर्लक्षितौ तदा॥१७॥
रामपुत्रावुभौ शूरौ वैदेह्यास्तनयाविति। तावानीय ततः पुत्रावभिषिच्य यथाक्रमम्॥१८॥
अङ्कारूढौ ततः कृत्वा सस्वजे तौ पुनः पुनः।
संसारदुःखखिन्नानामगतीनां शरीरिणाम्॥१९॥
पुत्रालिङ्गनमेवात्र परं विश्रान्तिकारणम्। मुहुरालिङ्ग्य तौ पुत्रौ मुहुः स्वजति चुम्बति॥२०॥
किमप्यन्तर्ध्यायति च निःश्वसत्यपि वै मुहुः। एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राक्षसा लङ्कवासिनः॥२१॥
सुग्रीवो हनुमांश्चैव अङ्गदो जाम्बवांस्तथा। अन्ये च वानराः सर्वे विभीषणपुरः सराः॥२२॥

राम के आदेशानुसार लक्ष्मण ने मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि के आश्रम के समीप उन अदुष्टा (जो दोषी नहीं थीं) पवित्र सीता को जो रो रही थीं, छोड़ दिया। लक्ष्मण ने उनको इसलिये छोड़ दिया, क्योंकि गुरुजन की आज्ञा का (बड़े की आज्ञा का) उल्लंघन नहीं करना चाहिये। कुछ काल व्यतीत हो जाने पर नृपात्मज राम ने सौमित्रि लक्ष्मण के साथ अश्वमेध यज्ञदीक्षा ग्रहण किया। इस यज्ञभूमि में लव-कुश नाम से प्रसिद्ध, नारद के समान गायक, यशस्वी राम के उन दोनों पुत्रों ने आगमन किया। गन्धर्वों के समान सुस्वर वाले तथा शूर रामपुत्रद्वय ने समग्र रामचरित्रात्मक रामायण का वहां गायन करते-करते यज्ञस्थल में प्रवेश किया। नाना लक्षणों से उनको वैदेही के गर्भ से उत्पन्न रामपुत्र के रूप में पहचान कर राम उन दोनों को लाये तथा अभिषेक करने के अनन्तर उनको गोद में बैठा कर पुनः-पुनः आलिंगन करने लगे। यह यथार्थ है कि संसार के दुःखों से खिन्न, गतिहीन, निरुपाय लोगों के लिये इस जगत् में पुत्रों का आलिंगन ही परम विश्रान्ति का कारण है। रामचन्द्र बारम्बार उन पुत्रद्वय का आलिंगन तथा चुम्बन कर रहे थे। वे मन ही मन कुछ विचार करते हुये दीर्घ निःश्वास छोड़ते जा रहे थे। इसी बीच लंकावासी राक्षस, सुग्रीव, हनुमान, अंगद, जाम्बवान् तथा अन्य वानर विभीषण के साथ वहां आ गये।।१३-२२।।

ते चाऽऽगत्य नृपं प्राप्ताः सिंहासनमुपस्थितम्। सीतामदृष्ट्वा हनुमानङ्गदः कनकाङ्गदः॥२३॥
क्व गताऽयोनिजा माता एको रामोऽत्र दृश्यते। रामेण सा परित्यक्ता इत्यूचुर्द्वारपालकाः॥२४॥
पश्यत्सु लोकपालेषु आर्ये तत्र प्रवादिनि।
अग्नौ शुद्धिगतां (ता) सीतां (ता) किन्तु राजा निरङ्कुशः॥२५॥
उत्पन्नैर्लौकिकैर्वाक्यै रामस्त्यजति तां प्रियाम्। मरिष्याव इति ह्युक्त्वा गौतमीं पुनरीयतुः॥२६॥

रामस्तौ पृष्ठतोऽभ्येत्य (?) अयोध्यावासिभिः सह।
आगत्य गौतमीं तत्राकुर्वंस्ते परमं तपः॥२७॥
स्मारं स्मारं निश्वसन्तस्तां सीतां लोकमातरम्। संसारास्थाविरहिता गौतमीसेवनोत्सुकाः॥२८॥

इन लोगों ने वहां सिंहासनासीन राजा रामचन्द्र को देखा, परन्तु सीता को उन लोगों ने वहां नहीं देखा। तब स्वर्ण का अंगद पहने हनुमान तथा अंगद ने यह पूछा कि "वे अयोनिजा माता हैं कहां? यहां तो केवल राम दिखलाई दे रहे हैं। तब द्वारपाल ने कहा कि राम ने उनका परित्याग कर दिया है। आर्य लक्ष्मण के प्रतिवाद करने पर भी लोकपालों के समक्ष राम ने उनको त्याग दिया।" यह सुनकर अंगद तथा हनुमान ने कहा—"निरंकुश राजा राम ने अग्नि में शुद्ध की गयी सीता को लौकिक अपवाद मात्र से त्याग दिया। अतः हम दोनों भी आज मर जायेंगे।" तदनन्तर इन दोनों महात्माओं ने गौतमी तट गमन किया। तब राम भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े। यह देख कर सभी अयोध्यावासी भी राम का अनुगमन करने जाने लगे। वे सभी गौतमी नदी के पास आकर लोकमाता सीता का वहां बारम्बार स्मरण करते तथा दीर्घ निःश्वास त्याग करते-करते गौतमी सेवनार्थ उत्सुक होकर वहीं तप करने लगे।।२३-२८।।

लोकत्रयपतिः साक्षाद्रामोऽनुजसमन्वितः। प्राप्तः स्नात्वा च गौतम्यां शिवाराधनतत्परः॥२९॥
परितापं जहौ सर्वं सहस्रपरिवारितः। यत्र चाऽऽसीत्स वृत्तान्तः सहस्रकुण्डमुच्यते॥३०॥
दशापराणि तीर्थानि तत्र सर्वार्थदानि च। तत्र स्नानं च दानं च सहस्रफलदायकम्॥३१॥
यत्र श्रीगौतमीतीरे वसिष्ठादिमुनीश्वरैः। सर्वापत्तारकं होममकारयदघान्तकम्॥३२॥
सहस्रसङ्ख्यायुक्तेषु कुण्डेषु वसुधारया। सर्वानपेक्षितान्कामानवापासौ महातपाः॥३३॥
गौतम्याः सरिदम्बायाः प्रसादाद्राक्षसान्तकः। सहस्रकुण्डाभिधं तदभूत्तीर्थं महाफलम्॥३४॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सहस्रकुण्डादिदशतीर्थवर्णनं नाम
चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

तीनों लोकों के स्वामी राम भी अनुज लक्ष्मण के साथ वहां आये। वे अपने सहस्रों परिजनों के साथ लोकमाता गौतमी के तट पर आकर स्नानोरान्त शिवार्चनरत हो गये। उन्होंने सभी प्रकार के परिताप का त्याग कर दिया था। जहां यह घटना घटित हो गयी थी, वह स्थल सहस्रकुण्ड कहलाया। यहां और भी दस तीर्थ हैं। वे सर्वार्थदायक हैं। वहां स्नानदान का फल अन्य स्थान से सहस्र गुना अधिक मिलता है। वहां गौतमी तट पर वसिष्ठ आदि मुनिगण ने राम को पापनाशार्थ सर्वापत्तितारक होम कराया था। वहां महातपा राक्षसान्तक राम ने सहस्राहुति वसुधारा के साथ प्रदान करके नदीमाता गौतमी की कृपा से सभी अभीष्ट को प्राप्त किया। तभी यह महाफलप्रद सहस्रकुण्डतीर्थ प्रसिद्ध है।।२९-३४।।

।।चतुष्पञ्चाशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कपिलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

कपिलातीर्थमाख्यातं तदेवाऽऽङ्गिरसं स्मृतम्। तदेवाऽऽदित्यमाख्यातं सैंहिकेयं तदुच्यते॥१॥
गौतम्या दक्षिणे पारे आदित्यान्मुनिसत्तम। अयाजयन्नङ्गिरसो दक्षिणां ते भुवं ददुः॥२॥
अङ्गिरोभ्यस्तदाऽऽदित्यास्तपसेऽङ्गिरसो ययुः।
सा भूमिः सैंहिकी भूत्वा जनान्सर्वानभक्षयत्॥३॥
तत्रासुस्ते जनाः सर्वे अङ्गिरोभ्यो न्यवेदयन्। विभीता ज्ञानतो ज्ञात्वा भुवं तां सैंहिकीमिति॥४॥
आदित्याननुगत्वाऽथ वाचमङ्गिरसोऽब्रुवन्। भुवं गृह्णन्तु या दत्ता नेत्यादित्यास्तदाऽब्रुवन्॥५॥
निवृत्तां दक्षिणां नैव प्रतिगृह्णन्ति सूरयः। स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम्॥६॥
षष्टिर्वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः। भूमेः स्वपरदत्ताया हरणान्नाधिकं क्वचित्॥७॥
पापमस्ति महारौद्रं न स्वीकुर्मः पुनस्तु ताम्। एवं यदा स्वदत्ताया हरणे किं तदा भवेत्॥८॥
तथाऽपि क्रयरूपेण गृह्णीमो दक्षिणां भुवम्।
तथेत्युक्ते तु ते देवाः कपिलां शुभलक्षणाम्॥९॥
गङ्गाया दक्षिणे पारे भुवः स्थाने तु तां ददुः।
भुक्तिमुक्तिप्रदः साक्षाद्विष्णुस्तिष्ठति मूर्तिमान्॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—कपिला नामक जो प्रसिद्ध तीर्थ है, वही आंगीरस, आदित्य तथा सैंहिकेय नाम से प्रसिद्ध है। हे मुनिसत्तम! गौतमी के दक्षिण तट पर आदित्यों ने यज्ञ सम्पन्न कराया था। आदित्यों ने इन ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा प्रदान किया था। जब अंगीरागण तपस्या के लिये चले गये, तब वह भूमि सिंहिनी होकर वहां की जनता का भक्षण करने लगी। तब वहां के लोग अत्यन्त भयभीत होकर आंगीरसगण के पास गये तथा उनसे यह सब संवाद कहा। तब आंगीरसों ने अपने ज्ञानबल से इस संवाद की सत्यता को और भूमि द्वारा सिंहिका रूप धारण करना जान लिया। तब उन्होंने भी भयभीत होकर आदित्यगण से कहा कि "आपने जो भूमि प्रदान किया था, उसे पुनः ग्रहण करें।" तब आदित्यों ने कहा—"नहीं! ऐसा नहीं होगा। सूरीगण प्रदत्त दक्षिणा वापस नहीं लेते। स्वयं प्रदत्त दक्षिणा हो, किंवा अन्य द्वारा प्रदत्त दक्षिणा हो, जो व्यक्ति धरती का हरण करता है, वह साठ हजार वर्ष पर्यन्त विष्ठा का कृमि हो जाता है। अपने अथवा अन्य के द्वारा प्रदत्त भूमि का हरण करने वाला जो पाप है, उससे बड़ा पाप अन्य कोई नहीं है। अतः हम उस प्रदत्त भूमि को पुनः ग्रहण नहीं कर सकते। जब पराये व्यक्ति द्वारा दान दी गयी भूमि का हरण पातक है, तब स्वदत्ता भूमि के हरण से न जाने कितना पाप होगा। तथापि हम मूल्य देकर दक्षिणारूपेण प्रदत्त इस भूमि का क्रय कर सकते हैं।" आंगीरसगण ने इस बात से सम्मत होकर कहा—"ऐसा ही हो।" तदनन्तर आदित्यगण गंगा के दक्षिण तट पर गये तथा एक शुभलक्षणा

कपिला गौ ब्राह्मणों को भूमि के बदले प्रदान कर दिया। उस स्थान पर भुक्ति तथा मुक्ति देने वाले विष्णु नारायण साक्षात् मूर्तिमान होकर विराजमान रहते हैं।।१-१०।।

कपिलासङ्गमं तच्च सर्वाघौघविनाशनम्। तत्राभवद्दानतोयदापगा कपिलाभिधा॥११॥

सरस्यवत्या अपि भुवो दानाद्गोदानमुत्तमम्।
लोकरक्षां चकारासौ कृत्वा विनिमयं मुनिः॥१२॥

यत्र तीर्थे च तद्वृत्तं गोतीर्थं तदुदाहृतम्। पुण्यदं तत्र तीर्थानां शतमुक्तं मनीषिभिः॥१३॥

तत्र स्नानेन दानेन भूमिदानफलं लभेत्। सङ्गता गङ्गया तच्च कपिलासङ्गमं विदुः॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासङ्गमादिशततीर्थवर्णनं नाम पञ्चापञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५५।।

गौतमीमाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः।।८६।।

तभी से यह स्थान कपिलासंगमतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह सर्वपापनाशक है। यहीं पर आदित्यगण के दान के समय के अभ्युक्षण जल द्वारा एक कपिला नामक नदी आविर्भूत हो गयी। शस्ययुक्त भूमि की तुलना में गौदान परम पुण्यप्रद है। अंगीरा मुनि ने इस प्रकार विनिमय करके लोक रक्षा किया। जहां यह घटना घटित हुई थी, वही गोतीर्थ कहलाया। यहां पुण्यप्रद अन्य सौ तीर्थ हैं। ऐसा मनीषीगण ने कहा है। इन तीर्थों में स्नान-दान करने का फल भूमिदान जैसा ही होता है। उक्त कपिला नदी का संगम गंगागौतमी से जहां हो गया है, वही स्थान कपिलासंगम है। यह विद्वानों को ज्ञात है।।११-१४।।

।।पञ्चपञ्चाशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शंखह्रदतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

शङ्खह्रदं नाम तीर्थं यत्र शङ्खगदाधरः। तत्र स्नात्वा च तं दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात्॥१॥

तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ ब्रह्मणः सामगायिनः॥२॥

ब्रह्माण्डागारसम्भूता राक्षसा बहुरूपिणः।
ब्रह्माणं खादितुं प्राप्ता बलोन्मत्ता धृतायुधाः॥३॥

तदाऽहमब्रवं विष्णुं रक्षणाय जगद्गुरुम्। स विष्णुस्तानि रक्षांसि हन्तुं चक्रेण चोद्यतः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु जहां विद्यमान हैं, वह शंखह्रद नाम वाला तीर्थ है। वहां स्नानान्त में इन भगवान् का दर्शन करने पर व्यक्ति संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस सम्बन्ध में यहां का भुक्ति एवं मुक्तिप्रद वृत्तान्त कहता हूं। पूर्वकाल में कृतयुग के प्रारम्भ में सामगान परायण ब्रह्मा के ब्रह्माण्ड गृह में (जगत् में) अनेक बहुरूपधारी राक्षस उत्पन्न हो गये। ये अस्त्र-आयुधधारी बल से उन्मत्त राक्षस ब्रह्मा (मुझे) को खाने दौड़ पड़े। तब मैंने जगद्गुरु कृष्ण से अपनी रक्षा हेतु प्रार्थना किया। उस समय विष्णु इन राक्षसों के वधार्थ चक्र उठाने हेतु उद्यत हो गये।।१-४।।

छित्त्वा चक्रेण रक्षांसि शङ्खमापूरयत्तदा। निष्कण्टकं तलं कृत्वा स्वर्गं निर्वैरमेव च॥५॥
ततो हर्षप्रकर्षेण शङ्खमापूरयद्धरिः। ततो रक्षांसि सर्वाणि ह्यनीनशुरशेषतः॥६॥

विष्णु ने चक्र से राक्षसों को काट दिया तथा शंखवादन किया। हरि ने क्रमशः पृथिवी को शत्रु से निष्कण्टक कर दिया तथा स्वर्ग को वैर रहित करके अत्यन्त हर्ष पूर्वक शंख बजाया। इस शब्द से समस्त राक्षस नष्ट हो गये।।५-६।।

यत्रैतद्वृत्तमखिलं विष्णुशङ्खप्रभावतः। शङ्खतीर्थं तु तत्प्रोक्तं सर्वक्षेमकरं नृणाम्॥७॥
सर्वाभीष्टप्रदं पुण्यं स्मरणान्मङ्गलप्रदम्। आयुरारोग्यजननं लक्ष्मीपुत्रप्रवर्धनम्॥८॥
स्मरणात्पठनाद्वाऽपि सर्वकामानवाप्नुयात्। तीर्थानामयुतं तत्र सर्वपापनुदं मुने॥९॥
तीर्थान्ययुतसंख्यानि सर्वपापहराणि च। येषां प्रभावं जानाति वक्तुं देवो महेश्वरः॥१०॥
पापक्षयप्रतिनिधिर्नैतेभ्योऽस्त्यपरः क्वचित्॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शङ्खतीर्थाद्ययुततीर्थवर्णनं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५६।।

गौतमीमाहात्म्ये सप्ताशीतितमोऽध्यायः।।८७।।

जहां यह प्रसंग घटित हुआ था, वह मनुष्यों के लिये सभी प्रकार का मंगल एवं कल्याण करने वाला शंखतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसके स्मरण मात्र से ही सभी वांछित मिलते हैं। यह पुण्यजनक, मंगलसाधक, आयुप्रद, आरोग्य सम्पादक तथा लक्ष्मीवर्द्धक तथा पुत्रवर्द्धक है। इस वृत्तान्त के स्मरण तथा पठन से मनुष्य को समस्त कामनायें प्राप्त हो जाती हैं। यहां और भी दस सहस्र तीर्थ हैं। वह सर्वपातक नाशक है। उनके प्रभाव को केवल देवदेव महादेव ही जानते हैं। पापक्षयकर ऐसा तीर्थ समग्र भूमण्डल पर अन्य नहीं है।।७-११।।

।।षट्पञ्चाशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

किष्किन्धातीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

किष्किन्धातीर्थमाख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम्। सर्वपापप्रपशमनं यत्र सन्निहितो भवः॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि यत्नेन शृणु नारद। पुरा दाशरथी रामो रावणं लोकरावणम्॥२॥
किष्किन्धावासिभिः सार्धं जघान रणमूर्धनि। सपुत्रं सबलं हत्वा सीतामादाय शत्रुहा॥३॥
भ्रात्रा सौमित्रिणा सार्धं वानरैश्च महाबलैः। विभीषणेन बलिना देवैः प्रत्यागतो नृपः॥४॥
कृतस्वस्त्ययनः श्रीमान्पुष्पकरेण विराजितः। यदासीद्धनराजस्य कामगेनाऽऽशुगामिना॥५॥
अयोध्यामगमन्सर्वे गच्छन्गङ्गामपश्यत। रामो विरामः शत्रूणां शरण्यः शरणार्थिनाम्॥६॥
गौतमीं तु जगत्पुण्यां सर्वकामप्रदायिनीम्। मनोनयनसन्तापनिवारणपरायणाम्॥७॥

तां दृष्ट्वा नृपतिः श्रीमान्गङ्गातीरमथाऽऽविशत्।
तां दृष्ट्वा प्राह नृपतिर्हर्षगद्गदया गिरा।
हरीन्सर्वानथाऽऽमन्त्र्य हनुमत्प्रमुखान्मुने॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—जहां देवदेव भव, शंकर विराजित रहते हैं, वह मनुष्यों के सभी पापों का प्रशमन करने वाला, सर्वकामना प्रदायक किष्किन्धा नामक जो विख्यात तीर्थ है, मैं उसका स्वरूप कहता हूं। हे नारद! उसे सुनो। पूर्वकाल में शत्रुहन्ता राजा दाशरथि श्रीमान् राम ने किष्किन्धानिवासी लोगों (वानरों) को साथ लेकर लोकों को रुलाने वाले रावण का वध करके सीता का उद्धार किया था। तत्पश्चात् भ्राता सौमित्रि लक्ष्मण, महाबली वानरगण, बली विभीषण एवं देवगण के साथ स्वस्त्ययन प्रभृति मंगलकृत्य सम्पन्न करके वे कुबेर के इच्छामात्र से चलने वाले, तीव्रगामी पुष्पक विमान पर बैठ कर अयोध्या वापस लौटने लगे। मार्ग में शरणगतों को शरण देने वाले, शत्रुवर्ग को रोकने वाले राम ने मन तथा नेत्र का सन्ताप निवृत्त करने वाली, जगत्पुण्या गौतमी गंगा को देख कर गद्‌गद् वाक्य से हनुमान प्रभृति वानरों को बुलाया तथा कहने लगे।।१-८।।

राम उवाच

अस्याः प्रभावाद्धरयो याऽसौ मम पिता प्रभुः।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो यातस्त्रिविष्टपम्॥९॥
इयं जनित्री सकलस्य जन्तोर्भुक्तिप्रदा मुक्तिमथापि दद्यात्।
पापानि हन्यादपि दारुणानि, काऽन्याऽनयाऽस्त्यत्र नदी समाना॥१०॥
हतानि शश्वद्दुरितानि चैव, अस्याः प्रभावादरयः सखायः।
विभीषणो मैत्रमुपैति नित्यं, सीता च लब्धा हनुमांश्च बन्धुः॥११॥

लङ्का च भग्ना सगणं हि रक्षो, हतं हि यस्याः परिसेवनेन।
यां गौतमो देववरं प्रपूज्य, शिवं शरण्यं सजटामवाप॥१२॥
सेयं जनित्री सकलेप्सितानाममङ्गलानामपि सन्निहन्त्री।
जगत्पवित्रीकरणैकदक्षा, दृष्टाऽद्य साक्षात्सरितां सवित्री॥१३॥
कायेन वाचा मनसा सदैनां, व्रजामि गङ्गां शरणं शरण्याम्॥१४॥

राम कहते हैं—हे वानरगण! मेरे पिता सर्वपापविनिर्मुक्त होकर स्वर्ग चले गये। यह इन हर का प्रभाव है। सभी प्राणीगण की जननीरूपा मुक्तिदायिनी तथा भोगप्रदा यह नदी दारुण पापों का नाश करने वाली है। इसके समान और कौन नदी है? इसके ही प्रभाव से शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। इसके द्वारा अशेष दुरित दूर हो जाते हैं। विभीषण भी मेरे मित्र हो गये। सीता प्राप्त हो गयीं तथा हनुमान जैसे बन्धु मिल गये। इनके प्रभाव से शत्रु हत हो गये। तुम सब सखा हो गये। इनकी सेवा का फल है कि लंका भग्न हो गयी तथा राक्षस रावण का बन्धु-बान्धवों के साथ वध हो गया। उन गौतम ऋषि ने देववर शरण्य शंकर की पूजा करके उनकी जटा सहित इस गौतमी नदी को प्राप्त किया था। यह नदी समस्त ईप्सित-इच्छित को प्रदान करने वाली, अमंगल का हनन करने वाली, जगत् को पवित्र करने में अकेली दक्ष, समस्त सरिताओं को जन्म प्रदान करने वाली आज साक्षात् रूप से परिलक्षित हो गयी। मैं मन, वाणी तथा शरीर से इन गौतमी गंगा की सर्वदा हेतु शरण लेता हूं।।९-१४।।

ब्रह्मोवाच

एतत्समाकर्ण्य वचो नृपस्य, तत्राऽऽप्लवन्हरयः सर्व एव।
पूजां चक्रुर्विधिवत्ते पृथक्च, पुष्पैरनेकैः सर्वलोकोपहारैः॥१५॥
सम्पूज्य शर्वं नृपतिर्यथावत्स्तुत्वा वाक्यैः सर्वभावोपयुक्तैः।
ते वानरा मुदिताः सर्व एव, नृत्यं च गीतं च तथैव चक्रुः॥१६॥
सखोषितस्तां रजनीं महात्मा, प्रियानुयुक्तः संवृतः प्रेमवद्भिः।
दुःखं जहौ सर्वममित्रसम्भवं, किं नाऽऽप्यते गौतमीसेवनेन॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा रामचन्द्र का यह कथन सुनकर वे वानरगण वहां स्नान करने लगे। उन्होंने पृथक्-पृथक् विविध पुष्प तथा प्रचुर उपहार से पूजा सविधि किया। तदनन्तर वे वानरगण प्रसन्नचित्त से नृत्य-गायन करने लगे। महात्मा राजा राम ने भी वहां विविध उपचारों से सविधि भक्तिभाव से भगवान् शर्व की पूजा करने के अनन्तर विविध वाक्य से उनका स्तव करके अपनी प्रिया सीता के साथ तथा अपने प्रिय बन्धुजन के साथ वह रात्रि सुख पूर्वक व्यतीत कर दिया। इस प्रकार वे समस्त शत्रुजनित उन दुःखों को भूल गये, जो पूर्वकाल में उनको उठाना पड़ा था। गौतमी नदी की सेवा द्वारा क्या प्राप्त नहीं होता?।।१५-१७।।

सविस्मयः पश्यति भृत्यवर्गं, गोदावरीं स्तौति च सम्प्रहृष्टः।
सम्मानयन्भृत्यगणं समग्रमवाप रामः कमपि प्रमोदम्।
पुनः प्रभाते विमले तु सूर्ये, विभीषणो दाशरथिं बभाषे॥१८॥

वे विस्मयापन्न राम कभी विशेष रूप से भृत्यवर्ग की ओर देखते, कभी प्रसन्न चित्त होकर गोदावरी

का स्तव करते, कभी वे समस्त भृत्यों का सम्मान करने लगते। इस प्रकार के भाव द्वारा वहां एक अनिर्वचनीय प्रमोद होने लगा। तदनन्तर प्रभात के समय विमल सूर्योदय होने पर विभीषण ने दाशरथि श्रीराम से कहा—।।१८।।

विभीषण उवाच

नाद्यापि तृप्तास्तु भवाम तीर्थे, कञ्चिच्च कालं निवसाम चात्र।
वत्स्या (सा) म चात्रैव पराश्चतस्त्रो, रात्रीरथो याम वृतास्त्वयोध्याम्॥१९॥

विभीषण कहते हैं—हम सबको अभी तक इस तीर्थ सेवन से तृप्ति नहीं मिली है। अतः हमारी और भी कुछ काल तक यहां निवास की इच्छा है। हम यहां आगामी चार रात तक निवास करने के पश्चात् सबके साथ अयोध्या चलेंगे।।१९।।

ब्रह्मोवाच

तस्याथ वाक्यं हरयोऽनुमेनिरे, तथैव रात्रीरपराश्चतस्त्रः।
सम्पूज्य देवं सकलेश्वरं तं, भ्रातृप्रियं तीर्थमथो जगाम॥२०॥
सिद्धेश्वरं नाम जगत्प्रसिद्धं, यस्य प्रभावात्प्रबलो दशास्यः।
एवं तु पञ्चाहमथोषिरे ते, स्वं स्वं प्रतिष्ठापितलिङ्गमर्च्य॥२१॥
शुश्रूषणं तत्र करोति वायोः, सुतोऽनुगामी हनुमान्नृपस्य।
गच्छन्नृपेन्द्रो हनुमन्तमाह, लिङ्गानि सर्वाणि विसर्जयस्व॥२२॥
मत्स्थापितान्युत्तममन्त्रविद्भिस्तथेतरैः शङ्करकिङ्करैश्च।
नोद्वास्य पूजां परशङ्करेण, बाह्यं समायोज्यमहो भवस्य (?)॥२३॥
तिष्ठन्ति सुस्थास्तदनादरेण, ते खड्गपत्रादिषु सम्भवन्ति।
येऽश्रद्दधानाः शिवलिङ्गपूजां, विधाय कृत्यं न समाचरन्ति॥२४॥
यथोचितं ते यमकिङ्करैर्हि, पच्यन्त एवाखिलदुर्गतीषु।
रामाज्ञया वासुसुतो जगाम, दोर्भ्यां न चोत्पाटयितुं शशाक॥२५॥
ततः स्वपुच्छेन ग्रहीतुकामः, संवेष्ट्य लिङ्गं तु विसृष्टकामः।
नैवाशकत्तन्मदद्भुतं स्यात्कपीश्वराणां नृपतेस्तथैव॥२६॥
कश्चालयेल्लब्धमहानुभावं, महेशलिङ्गं पुरुषो मनस्वी।
तन्निश्चलं प्रेक्ष्य महानुभावो, नृपप्रवीरः सहसा जगाम॥२७॥
विप्रानथाऽऽमन्त्र्य विधाय पूजां, प्रदक्षिणीकृत्य च रामचन्द्रः।
शुद्धातिशुद्धेन हृदाऽखिलैस्तैर्लिङ्गानि सर्वाणि ननाम रामः॥२८॥
किष्किन्धवासिप्रवरैरशेषैः संसेवितं तीर्थमतो बभूव।
अत्राऽऽप्लवादेव महान्ति पापान्यपि क्षयं यान्ति न संशयोऽत्र॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—सभी वानरों ने तब विभीषण के कथन का अनुमोदन करके वहां आगामी चार रात्रि निवास किया। तत्पश्चात् सभी लोगों ने सबके अधिनायक भातृप्रिय देव रामचन्द्र की पूजा किया। तत्पश्चात् सभी ने एक साथ उस सिद्धेश्वरतीर्थ में गमन किया, जिनकी कृपा से रावण इतना बली हो गया था। इस तरह से सभी लोग वहां कुल पांच दिनों तक ठहरे और वहां अपने-अपने द्वारा स्थापित शिवलिंग की पूजा में रत रहे। वहां पर वायुपुत्र हनुमान राजा राम के सेवक बनकर उनकी सेवा करते रहते थे। जब वहां से सब लोग प्रस्थान करने लगे, तब राजाओं के इन्द्र राम ने हनुमान् से कहा कि "तुम मेरे द्वारा स्थापित सभी शिवलिंगों का विसर्जन करो। जो कोई मनुष्य उत्तम मन्त्रज्ञ हो अथवा अन्य शंकर भक्त हो, यदि वह भगवान् भव की पूजा करके उनका विसर्जन नहीं करता, तब वह शंकर का अनादर करने के कारण यमकिंकरों के द्वारा यथोचित् रूप से नरक में दुर्गति के साथ दण्डित होगा। जो अश्रद्धालु लोग शिवलिंग स्थापना के उपरान्त सविधि तत्संबंधित कार्य अनुष्ठान नहीं करते उनको यमदूतगण नाना यातना नरक में देते हैं।" राम की इस प्रकार आज्ञा पाकर वायुपुत्र उसके पालनार्थ अग्रसर हो गये। उन्होंने पहले हाथों से लिंग (विसर्जनार्थ) उखाड़ने का प्रयत्न किया, लेकिन वे अपने इस कार्य में असफल ही रहे। तब वे अपनी पूंछ उस लिंग पर लपेट कर उस लिंग को खींचते हुये विसर्जन के लिये उखाड़ना चाहा, तथापि कृतकार्य नहीं हो सके। यह घटना देख कर कपीश्वर सुग्रीव तथा राजा राम भी महान् आश्चर्य में पड़ गये। वे सोचने लगे कि ऐसा कौन महानुभाव है, जो इस महेश्वर लिंग को यहां से हटाने में समर्थ हो? जब राम ने उस लिंग को निश्चल देखा तब वे उसके पास पहुंचे तथा वहां ब्राह्मणों को आमन्त्रित करके उस लिंग की सविधि पूजा तथा प्रदक्षिणा भी किया। शुद्धातिशुद्ध हृदय से राम ने वहां के समस्त किष्किन्धा निवासी वानरगण द्वारा सुपूजित लिंगों तथा उस लिंग को प्रणाम किया। तभी से वह स्थान तीर्थ हो गया। यहां के जल में स्नान करने से महान् पातक नष्ट हो जाते हैं। यह निःसंदिग्ध है।।२०-२९।।

पुनश्च गङ्गां प्रणनाम भक्त्या, प्रसीद मातर्मम गौतमीति।
जल्पन्मुहुर्विस्मितचित्तवृत्तिर्विलोकयन्प्रणमन्गौतमीं ताम्॥३०॥
ततः प्रभृत्येतदतीव पुण्यं, किष्किन्धतीर्थं विबुधा वदन्ति।
पठेत्स्मरेद्वाऽपि शृणोति भक्त्या, पापापहं किं पुनः स्नानदानैः॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये किष्किन्धातीर्थवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५७।।

गौतमीमाहात्म्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः।।८८।।

तदनन्तर विस्मित चित्त से रामचन्द्र ने पुनः गंगा-गौतमी को प्रणाम करके कहा—"हे माता गौतमी! प्रसन्न हो जायें।" उन्होंने बारम्बार यही कहते हुये गौतमी का दर्शन तथा प्रणाम करते-करते अयोध्या प्रस्थान किया। तभी से यह अत्यन्त पुण्यप्रद किष्किन्धातीर्थ कहलाया। यहां स्नान-दान की बात को कैसे कहूं? भक्ति पूर्वक जो इस वृत्तान्त का ही पाठ करता है, स्मरण किंवा श्रवण करता है, उसके भी पाप नष्ट हो जाते हैं।।३०-३१।।

।।सप्तपञ्चाशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यासतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

व्यासतीर्थमिति ख्यातं प्राचेतसमतः परम्। नातः परतरं किञ्चित्पावनं सर्वसिद्धिदम्॥१॥
दश मे मानसाः पुत्राः स्त्रष्टारो जगतामपि। अन्तं जिज्ञासवस्ते वै पृथिव्या जग्मुरोजसा॥२॥

पुनः सृष्टा पुनस्तेऽपि यातास्तान्समवेक्षितुम्।
नैव तेऽपि समायाता ये गतास्ते गता गताः॥३॥
तदोत्पन्ना महाप्राज्ञा दिव्या आङ्गिरसो (सा) मुने।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः॥४॥

तेऽनुज्ञाता अङ्गिरसा गुरुं नत्वा तपोधनाः। तपसे निश्चिताः सर्वे नैव पृष्ट्वा तु मातरम्॥५॥

सर्वेभ्यो ह्यधिका माता गुरुभ्यो गौरवेण हि।
तदा नारद कोपेन सा शशाप तदाऽऽत्मजान्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर व्यासतीर्थ है, जिसे प्राचेतसतीर्थ भी कहा गया है। इससे बढ़कर पवित्र तथा सर्वसिद्धिप्रद तीर्थ अन्य नहीं है। मेरे दस मानस पुत्र उत्पन्न हुये थे। वे जगत् की सृष्टि करने के लिये पृथिवी का अन्त जानने हेतु उत्साह पूर्वक चल पड़े। तव मैंने अन्य दस पुत्रों को उत्पन्न किया था। वे भी पूर्वगत भ्राताओं की खोज में चले गये। वे भी (आज तक) वापस नहीं आये। जो पहले चले गये थे, वे तो (गत) चले गये, ऐसा मानना चाहिये। तत्पश्चात् आंगीरस नाम के पुत्र उत्पन्न हो गये। हे मुनिवर! हे दिव्यकृति, महाप्राज्ञ, वेद-वेदाङ्ग पारंगत एवं सर्वशास्त्र विशारद थे। इन तपोधनगण ने तपस्याचरण करने का निश्चय किया तथा पिता की आज्ञा लेकर (मेरी आज्ञा लेकर) तथा मुझे प्रणाम करने के उपरान्त माता से विना पूछे प्रस्थान कर गये। इससे माता कुपित हो गयीं। उन्होंने इन आत्मजों को शाप दे दिया। हे नारद! माता का गौरव सभी गुरुगण की अपेक्षा अधिक है।।१-६।।

मातोवाच

मामनादृत्य ये पुत्राः प्रवृत्ताश्चरितुं तपः। सर्वैरपि प्रकारैस्तन्न तेषां सिद्धिमेष्यति॥७॥

माता ने कहा—जो पुत्र मेरा अनादर करके तपःश्चरण में प्रवृत्त हो गये, इस तप के प्रभाव से भी उनको कोई सिद्धिलाभ नहीं होगा।।७।।

ब्रह्मोवाच

नानादेशांश्च चिन्वानास्तपः सिद्धिं न यान्ति च।
विघ्नमन्वेति तान्सर्वानितश्चेतश्च धावतः॥८॥

क्वापि तद्राक्षसैर्विघ्नं क्वापि तन्मानुषैरभूत्। प्रमदाभिः क्वचिच्चापि क्वापि तद्देहदोषतः॥९॥
एवं तु भ्रममाणास्ते ययुः सर्वे तपोनिधिम्। अगस्त्यं तपतां श्रेष्ठं कुम्भयोनिं जगद्गुरुम्॥१०॥
नमस्कृत्वा ह्याङ्गिरसा ह्यग्निवंशसमुद्भवाः। दक्षिणाशापतिं शान्तं विनीताः प्रष्टुमुद्यताः॥११॥

ब्रह्मा कहते हैं—वे आंगीरसगण नाना देशों में विचरते रहकर भी सिद्धिलाभ नहीं कर सके। वे जहां जाते, वहीं उनको विघ्न हो जाता था। कहीं राक्षस जनित, कहीं मनुष्य जनित, कहीं देहदोषजनित विघ्न हो जाते। वे इस प्रकार भटकते-भटकते जगद्गुरु तपस्वी कुम्भज तपोनिधि अगत्स्य ऋषि के समीप पहुंचे। इन अग्निवंशज आंगीरसगण ने विनीत होकर दक्षिण दिक्पति अगत्स्य को नमस्कार करके उनसे प्रश्न किया।।८-११।।

आङ्गिरसा ऊचुः

भगवन्केन दोषेण तपोऽस्माकं न सिध्यति।
नानाविधैरप्युपायैः कुर्वतां च पुनः पुनः॥१२॥
किं कुर्मः कः प्रकारोऽत्र तपस्येव भवाम किम्।
उपायं ब्रूहि विप्रेन्द्र ज्येष्ठोऽसि तपसा ध्रुवम्॥१३॥
ज्ञाताऽसि ज्ञानिनां ब्रह्मन्वक्ताऽसि वदतां वरः।
शान्तोऽसि यमिनां नित्यं दयावान्प्रियकृत्तथा॥१४॥
अक्रोधनश्च न द्वेष्टा तस्माद्ब्रूहि विवक्षितम्। साहङ्कारा दयाहीना गुरुसेवाविवर्जिताः।
असत्यवादिनः क्रूरा न ते तत्त्वं विजानते॥१५॥

आंगीरसगण कहते हैं—हे भगवान्! हम नाना उपाय से तपःश्चरण में प्रवृत्त होते हैं। तथापि किस दोष के कारण हमें तपःसिद्धि नहीं मिलती? हे ब्रह्मन्! आप लोगों में प्रमुख ज्ञाता हैं तथा वक्ताओं में प्रधान वक्ता हैं, आप संयमीगण में सर्वाधिक शान्त, सदा सदय तथा प्रिय करने वाले, क्रोध रहित होने के कारण क्षमा करने वाले एवं द्वेष रहित उदारवृत्ति हैं। अतः हमारी इस जिज्ञासा का उत्तर प्रदान करें कि हम कैसी तपस्या करें। अहंकारी, दयाहीन, गुरुसेवारहित, असत्यवक्ता एवं क्रूरतापूर्ण लोग तो तत्व नहीं जानते।।१२-१५।।

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यः प्राह तान्सर्वान्क्षणं ध्यात्वा शनैः शनैः॥१६॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर महर्षि अगत्स्य ने कुछ क्षण ध्यान करके उन लोगों से क्रमशः कहा—।।१६।।

अगस्त्य उवाच

शान्तात्मानो भवन्तो वै स्त्रष्टारो ब्रह्मणा कृताः।
न पर्याप्तं तपश्चाभूत्स्मरध्वं स्मयकारणम्॥१७॥

ब्रह्मणा निर्मिताः पूर्वं ये गताः सुखमेधते। ये गताः पुनरन्वेष्टुं ते च त्वाङ्गिरसोऽभवन्॥१८॥
ते यूयं च पुनः काले याता याताः शनैः शनैः।
प्रजापतेरप्यधिका भवितारो न संशयः॥१९॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—आप लोग शान्तात्मा हैं। आप लोगों को ब्रह्मा ने सृष्टिकार्य हेतु सृष्ट किया है, लेकिन आप लोगों का तप पर्याप्त नहीं है। इसी से आप लोगों के मन में ऐसा विस्मय हो रहा है। वास्तव में इसका कारण श्रवण करिये। ब्रह्मा ने सर्वप्रथम जिन सन्तानों को सृष्टि करने भेजा था, वे सभी सुख पूर्वक हैं। उनको खोजने जो गये थे, वे सब भी सुख से हैं। आप लोग वे ही हैं तथा आंगीरस होकर आपने जन्म लिया है। कालान्तर में आप लोग जो क्रमशः बढ़ते हुये प्रजापति से भी अधिक हो जायेंगे। इसमें संशय नहीं है।।१७-१९।।

इतो यान्तु तपस्तप्तुं गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्।
नोपायोऽन्योऽस्ति संसारे विना गङ्गां शिवप्रियाम्॥२०॥
तत्राऽऽश्रमे पुण्यदेशे ज्ञानदं पूजयिष्यथ।
सा च्छेदयिष्यत्यखिलं संशयं वो महामतिः।
न सिद्धिः क्वापि केषाञ्चिद्विना सद्गुरुणा यतः॥२१॥

यहां से आप लोग त्रैलोक्य पावनी गौतमी गंगा जाईये। शिवप्रिया उस नदी के अतिरिक्त संसार में अन्य कोई उपाय नहीं है। वहां पुण्य प्रदेश में आश्रम बनाकर ज्ञानप्रद महेश्वर की पूजा करिये। वे आप लोगों के सभी संशय को निर्मूल कर देंगे। सद्गुरु के बिना किसी को भी किसी प्रकार से सिद्धिलाभ नहीं होगा।।२०-२१।।

ब्रह्मोवाच

न तमूचुर्मुनिवरं ज्ञानदः कोऽभिधीयते।
ब्रह्मा विष्णुर्महेशो वा आदित्यो वाऽपि चन्द्रमाः॥२२॥
अग्निश्च वरुणः कः स्याज्ज्ञानदो मुनिसत्तम। अगस्त्यः पुनरप्याह ज्ञानदः श्रूयतामयम्॥२३॥
या आपः सोऽग्निरित्युक्तो योऽग्निः सूर्यः स उच्यते।
यश्च सूर्यः स वै विष्णुर्यश्च विष्णुः स भास्करः॥२४॥
यश्च ब्रह्मा स वै रुद्रो यो रुद्रः सर्वमेव तत्।
यस्य सर्वं तु तज्ज्ञानं ज्ञानदः सोऽत्र कीर्त्यते॥२५॥
देशिकप्रेरकव्याख्याकृदुपाध्यायदेहदाः। गुरवः सन्ति बहवस्तेषां ज्ञानप्रदो महान्॥२६॥
तदेव ज्ञानमत्रोक्तं येन भेदो विहन्यते। एक एवाद्वयः शम्भुरिन्द्रमित्राग्निनामभिः।
वदन्ति बहुधा विप्रा भ्रान्तोपकृतिहेतवे॥२७॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर उन आंगीरसों ने मुनिप्रवर अगस्त्य से कहा—"हे मुनिवर! ज्ञानप्रद किसे

कहा जाता है? ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदित्य, चन्द्र, अग्नि, वरुण में से कौन ज्ञानप्रद है?" यह प्रश्न किये जाने पर अगत्स्य ने पुनः कहा—"कौन ज्ञानद है, यह सुनिये। जो आप् (जल) है, वही अग्नि है। जो अग्नि है, वही सूर्य है। सूर्य ही विष्णु हैं। विष्णु ही सूर्य, भास्कर हैं। जो ब्रह्मा हैं, वे ही रुद्र हैं। जो रुद्र हैं, वे ही समस्त हैं। समस्त जगत् उनका ही रूप है। ज्ञान उनका ही है। साथ ही वे ही ज्ञानप्रद भी हैं। वे ही देशिक, प्रेरक, व्याख्याकृत्, उपाध्याय, देहद (पिता) हैं और भी अनेक गुरु हैं। उनमें से जो ज्ञान देते हैं, वे ही महान् हैं। यहां उसको ही ज्ञान कहा गया है, जिससे भेदबुद्धि नष्ट हो जाती है, लेकिन भ्रान्त लोगों के उपकार हेतु उनको ही ब्राह्मण लोग इन्द्र, मित्र, अग्नि इत्यादि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है।।२२-२७।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं गाथा गायन्त एव ते।
जग्मुः पञ्चोत्तरां गङ्गां पञ्च जग्मुश्च दक्षिणाम्॥२८॥
अगस्त्येनोदितान्देवान्पूजयन्तो यथाविधि। आसनेषु विशेषेण ह्यासीनास्तत्त्वचिन्तकाः॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—वे आंगीरसगण अगत्स्य ऋषि का यह कथन सुनकर इस कथन का ही गायन गाथारूप से करते-करते पांच लोग गंगा के उत्तर तट पर तथा पांच लोग गंगा के दक्षिण तट की ओर गये। विशेष विधि से आसन पर बैठ कर उन्होंने अगत्स्योक्त देवताओं की यथाविधि पूजा किया तथा तत्वचिन्तन करने लगे।।२८-२९।।

तेषां सर्वे सुरगणाः प्रीतिमन्तोऽभवन्मुने। स्त्रष्टृत्वं तु युगादौ यत्कल्पितं विश्वयोनिना॥३०॥
अधर्माणां निवृत्त्यर्थं वेदानां स्थापनाय च। लोकानामुपकारार्थं धर्मकामार्थसिद्धये॥३१॥
पुराणस्मृतिवेदार्थधर्मशास्त्रार्थनिश्चये। स्त्रष्टृत्वं जगतामिष्टं तादृग्रूपा भविष्यथ॥३२॥
प्रजापतित्वं तेषां वै भविष्यति शनैः क्रमात्।
यदा ह्यधर्मो भविता वेदानां च पराभवः॥३३॥
वेदानां व्यसनं तेभ्यो भाविव्यासास्ततस्तु ते।
यदा यदा तु धर्मस्य ग्लानिर्वेदस्य दृश्यते॥३४॥
तदा तदा तु ते व्यासा भविष्यन्त्युपकारिणः।
तेषां यत्तपसः स्थानं गङ्गायास्तीरमुत्तमम्॥३५॥

हे मुनिवर! समस्त देवता उनके प्रति प्रीतिमय हो गये तथा उन्होंने वर प्रदान किया कि "यज्ञादिकाल में विश्वयोनि प्रभु ने सृष्टिकार्य की जो कल्पना किया था, उसके अन्तर्गत् आप सबको सृष्ट किया था। तथापि आप लोगों ने सृष्टि कार्य किया ही नहीं। विधाता ने अधर्म निवृत्ति, वेद स्थापना, लोकोपकार, धर्म-काम-अर्थ सिद्धि, पुराण, स्मृति, वेदान्त, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा जगत् के लिये हितप्रद इन सभी सिद्धान्तों के विषय में स्त्रष्टत्व का विचार किया था। आप लोगों को विधाता विश्वयोनि प्रभु की कल्पनानुसार ही कार्य करना होगा। तब आप लोग क्रमशः प्रजापतित्व प्राप्त कर लेंगे तथा जब-जब अधर्म बढ़ने के कारण वेदों का पराभव तथा अधर्म की प्रधानता हो, तब-तब आप लोगों का स्वभाव वेदाध्ययन तथा वेद के शिक्षण का होगा। तब-तब

आप लोग भावी व्यास होंगे। जब-जब धर्म एवं वेद की ग्लानि परिलक्षित होगी, तब-तब आप लोग जगत् पर उपकार करने वाले व्यास हो जायेंगे। गंगातट (गौतमी गंगा तट पर) जहां (व्यासों का) उनकी उत्तम तपःस्थली है।।३०-३५।।

तत्र तत्र शिवो विष्णुरहमादित्य एव च। अग्निरापः सर्वमिति तत्र सन्निहितं सदा॥३६॥
नैतेभ्यः पावनं किञ्चिन्नैतेभ्यस्त्वधिकं क्वचित्।
तत्तदाकारतां प्राप्तं परं ब्रह्मैव केवलम्॥३७॥
सर्वात्मकः शिवो व्यापी सर्वभावस्वरूपधृक्। विशेषतस्तत्र तीर्थे सर्वप्राण्यनुकम्पया॥३८॥
सर्वैर्देवैरनुवृतस्तदनुग्रहकारकः। धर्मव्यासास्तु ते ज्ञेया वेदव्यासास्तथैव च॥३९॥
तेषां तीर्थं तेन नाम्ना व्यपदिष्टं जगत्त्रये। पापपङ्कक्षालनाम्भो मोहध्वान्तमदापहम्।
सर्वसिद्धिप्रदं पुंसां व्यासतीर्थमुत्तमम्॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये व्यासतीर्थवर्णनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५८।।

गौतमीमाहात्म्ये एकोननवतितमोऽध्यायः।।८९।।

वहां-वहां पर शिव, विष्णु, मैं, सुर्य, अग्नि, जल सभी सदा विराजित रहते हैं। इन स्थानों की अपेक्षा पावन स्थान कोई नहीं है। सर्वात्मक-सर्वव्यापी, वे सभी सर्वस्वरूपधारी मंगलमय परब्रह्म ही हैं। विशेष करके भक्तों की भावना के अनुरूप आकार धारण करके प्रभु महेश्वर ही प्राणियों के हितार्थ तथा अनुग्रहार्थ वहां सदा स्थित रहते हैं। ये आंगीरसगण ही धर्म व्यास तथा वेदव्यास हैं। उनके नामों के अनुसार ही ये तीर्थ त्रैलोक्य में प्रसिद्ध हैं। यह अति उत्तम व्यास तीर्थ मनुष्यों के पाप रूपी कीचड़ को धो देता है। वह ऐसा विशेष पवित्र करने वाला जल है, जो मोहनाशक, मत्तता नाशक तथा सर्वसिद्धिदायक है।।३६-४०।।

।।अष्टपञ्चाशदधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वञ्जरासंगमतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

वञ्जरासङ्गमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। ऋषिभिः सेवितं नित्यं सिद्धै राजर्षिभिस्तथा॥१॥
दासत्वमगमत्पूर्वं नागानां गरुडः खगः। मातृदास्यात्तदा दुःखपरिसन्तप्तमानसः।
कदाचिच्चिन्तयामास रहः स्थित्वा विनिश्वसन्॥२॥

ब्रह्मा कहते हैं—ऋद्धि-सिद्धि तथा राजर्षिगण द्वारा नित्य सेवित वंजरासंगम नामक एक त्रैलोक्यप्रसिद्ध तीर्थ है। पूर्वकाल में पक्षीराज गरुड़ नाग लोगों के दासत्व में पड़ी अपनी माता के दास्य कार्य को देख कर सन्तप्त हो गये। वे एक बार निर्जन में दीर्घ श्वास छोड़ते हुये विचार करने लगे।।१-२।।

गरुड उवाच

त एव धन्या लोकेऽस्मिन्कृतपुण्यास्त एव हि।
नान्यसेवा कृता यैस्तु न येषां व्यसनागमः॥३॥
सुखं तिष्ठन्ति गायन्ति स्वपन्ति च हसन्ति च।
स्वदेहप्रभवो धन्या धिग्धिगन्यवशे स्थितान्॥४॥

गरुड़ कहते हैं—इस लोक में वे ही लोग धन्य हैं, वे ही पुण्यात्मा तथा पुण्यकर्मा हैं, जिनको अन्य की सेवा नहीं करना होता तथा जिनको दासजनित आपत्ति ने ग्रस्त नहीं किया है। वे अपने शरीर के राजा स्वयं हैं। वे धन्य लोग ही सुख पूर्वक रहते हैं, गाते हैं, चैन की निद्रा तथा हास्य का आनन्द लेते हैं। जो लोग अन्य के वशीभूत हैं, उनको धिक्कार है, धिक्कार है।।३-४।।

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तासमाविष्टो जननीमेत्य दुःखितः। पर्यपृच्छदमेयात्मा वैनतेयोऽथ मातरम्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—अमेयात्मा वैनतेय गरुड़ इस प्रकार चिन्तित होकर दुःखी मन से जननी के पास जाकर कहने लगे।।५।।

गरुड उवाच

कस्यापराधान्मातस्त्वं पितुर्वा मम वाऽन्यतः।
दासीत्वमाप्ता वद तत्कारणं मम पृच्छतः॥६॥

गरुड़ कहते हैं—हे माता! मेरे पिता अथवा अन्य किसके अपराध से आपने दासीत्व लाभ किया? मैं यह पूछ रहा हूं, आप वह कहिये।।६।।

ब्रह्मोवाच

साऽब्रवीत्पुत्रमात्मीयमरुणस्यानुजं प्रियम्॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर विनता ने अरुण के छोटे भ्राता अपने पुत्र गरुड़ से कहा—।।७।।

विनतोवाच

नैव कस्यापराधोऽस्ति स्वापराधो मयोदितः।
यस्या वाक्यं विपर्येति सा दासी स्यान्मयोदितम्॥८॥
कद्रूश्चापि तथैवाहं सा मया संयुता ययौ। कद्रवा ममाभवद्वादश्छद्मनाऽहं तया जिता॥९॥
विधिर्हि बलवांस्तात कां कां चेष्टां न चेष्टते।
एवं दासीत्वमगमं कद्र्वाः कश्यपनन्दनः।
यदा दासी तु जाताऽहं दासोऽभूस्त्वं द्विजन्मज॥१०॥

विनता कहती हैं—यह किसी का भी अपराध नहीं है। यह मेरा स्वकृत अपराध है। कद्रु के साथ मेरा एक विवाद हुआ था। उससे मैंने कहा था कि "जिसका वाक्य मिथ्या होगा, वह दासी हो जायेगी। तदनन्तर वह मेरे साथ तथ्य निर्णयार्थ गयी, लेकिन उसने छलना द्वारा मुझे पराजित कर दिया। बलवान् भवितव्यता क्या-क्या नहीं करती। हे ब्राह्मणनन्दन कश्यपपुत्र! मैंने इस प्रकार से दासीत्व प्राप्त किया। मेरे दासी होने के कारण तुम भी दास हो गये।।८-१०।।

ब्रह्मोवाच

तूष्णीं तदा बभूवासौ गरुडोऽतीव दुःखितः। न किञ्चिदूचे जननीं चिन्तयन्भवितव्यताम्॥११॥
कद्रूः कदाचित्सा प्राह पुत्राणां हितमिच्छती। आत्मनो भूतिमिच्छन्ती विनतां खगमातरम्॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर गरुड़ अतीव दुःख में भर कर मौन हो गये। उन्होंने भवितव्यता मानकर जननी से कुछ भी नहीं कहा। पुत्रहितार्थिनी कद्रु ने अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के उद्देश्य से पक्षियों की जननी विनता से कहा—।।११-१२।।

कद्रूरुवाच

पुत्रः सूर्यं नमस्कर्तुं तव यात्यनिवारितः।
अहो लोकत्रयेऽप्यस्मिन्धन्याऽसि बत दास्यपि॥१३॥

कद्रू कहती है—अहो! तुम्हारा पुत्र बिना किसी रुकावट के सूर्य को नमस्कार करने जाता है, अतः तुम दासी होकर भी त्रैलोक्य में धन्य हो।।१३।।

ब्रह्मोवाच

स्वदुःखं गूहमाना सा कद्रूं प्राह सुविस्मिता॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—विनता ने अपना दुःख गुप्त रखते विस्मिता होकर कद्रू से कहा—।।१४।।

विनतोवाच

तव पुत्रास्तु किमिति रविं द्रष्टुं न यान्ति च॥१५॥

विनता कहती है—क्यों, तुम्हारे पुत्रगण सूर्य के दर्शनार्थ नहीं जाते?।।१५।।

कद्रूरुवाच

पुत्रान्मदीयान्सुभगे नय नागालयं प्रति। समुद्रस्य समीपे तु तदाऽस्ते शीतलं सरः॥१६॥

कद्रु कहती है—हे सुभगे! मेरे पुत्रों को नागालय लेकर चलो। वहां समुद्र के निकट स्थित एक शीतल जल वाला सरोवर है।।१६।।

ब्रह्मोवाच

सुपर्णस्त्वहन्नागान्कद्रूं च विनता तथा। ततः प्रोवाच मुदिता वैनतेयस्य मातरम्॥१७॥
सुराणां नेतु निलयं गरुडो मत्सुतानिति। पुनः प्राह सर्पमाता गरुडं विनयान्वितम्॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—सुपर्ण (गरुड़) ने नागों को पीठ पर बैठाया तथा विनता ने अपनी पीठ पर कद्रू को बैठाया। उस समय कद्रू ने मुदित होकर विनीत वैनतेय की माता से कहा (विनता से कहा) "गरुड़ मेरे पुत्रों को देवलोक ले चलें।" पुनः सर्पमाता कद्रू ने विनीत गरुड़ से कहा—।।१७-१८।।

सर्पमातोवाच

पुत्रा मे द्रष्टुमिच्छन्ति हंसं त्रिजगतां गुरुम्। नमस्कृत्वा ततः सूर्यमेष्यन्ति निलयं मम।
हण्डे त्वं नय पुत्रान्मे सूर्यमण्डलमन्वहम्॥१९॥

सर्पमाता (कद्रू) कहती हैं—हे गरुड़! मेरे पुत्रगण त्रैलोक्य के गुरु सूर्य का दर्शन करना चाहते हैं। वे सूर्य को प्रणामोपरान्त अपने गृह वापस आयेंगे। तुम नित्यप्रति मेरे पुत्रों को सूर्यमण्डल ले जाना।।१९।।

ब्रह्मोवाच

सा वेपमाना विनता दीना कद्रूमभाषत॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब विनता रुदन करती तथा दीनता पूर्वक कद्रू से कहने लगी—।।२०।।

विनतोवाच

नाहं क्षमा सर्पमातः पुत्रो मे नेष्यते सुतान्। दृष्ट्वा दिनकरं देवं पुनरेव प्रयान्तु ते॥२१॥

विनता कहती है—हे सर्पमाता! मैं उसके लिये सक्षम नहीं हूं। मेरा पुत्र तुम्हारे पुत्रों को ले जाकर तथा सूर्य का दर्शन करायेगा। तदनन्तर वापस आयेगा।।२१।।

ब्रह्मोवाच

विनता स्वसुतं प्राह विहगानामधीश्वरम्। नमस्कर्तुमथेच्छन्ति नागाः स्वामित्वमागताः॥२२॥
भास्वन्तमित्युवाचेयं मां सर्पजननी हठात्। तथेत्युत्त्वा स गरुडो मामारोहन्तु पन्नगाः॥२३॥
तदाऽऽरूढं सर्पसैन्यं गरुडं विहगाधिपम्। शनैः शनैरुपगमद्यत्र देवो दिवाकरः।
ते दह्यमानास्तीक्ष्णेन भानुतापेन विव्यथुः॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब विनता ने पक्षीराज गरुड़ से कहा—"हे पुत्र! हम पर स्वामित्व प्राप्त नागगण सूर्यदर्शन तथा उनको प्रणाम करने की इच्छा रखते हैं। इन सर्पमाता ने यह बात बलात् कहा है कि वे सब तुम्हारा स्वामी नागगण सूर्यदर्शनार्थ जाने की इच्छा रखते हैं।" तब गरुड़ ने कहा—"तब ऐसा ही हो। नागगण मेरी पीठ पर बैठें।" तब वे सर्पगण पक्षीराज के ऊपर बैठ गये। गरुड़ उनको क्रमशः वहां ले जाने लगे, जहां दिवाकर स्थित हैं। वे सभी नागगण सूर्यताप से दग्ध होने लगे तथा उन्होंने गरुड़ से कहा—।।२२-२४।।

सर्पा ऊचुः

निवर्तस्व महाप्राज्ञ पतङ्गाय नमो नमः। अलं सूर्यस्य सदनं दग्धाः सूर्यस्य तेजसा।
यामस्त्वया वा गरुड विहाय त्वामथापि वा॥२५॥

सर्पगण कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! वापस चलो। हम यहीं से भगवान् सूर्य को प्रणाम करते हैं। हमें सूर्य

के निकट जाने का कोई प्रयोजन नहीं है। हम तुम्हारे साथ वापस जायेंगे, किंवा तुम्हारे बिना ही लौट जायेंगे।।२५।।

ब्रह्मोवाच

एवं नागैरुच्यमान आदित्यं दर्शयामि वः।
इत्युक्त्वा गगनं शीघ्रं जगामाऽऽदित्यसम्मुखः॥२६॥
दग्धभोगा निपेतुस्ते द्वीपं तं वीरणं प्रति। बहवः शतसाहस्त्राः पीडिता दग्धविग्रहाः॥२७॥
पुत्राणामार्तसन्नादं पतितानां महीतले (?)।
आश्वासितुं समायाता तान्सा कद्रूः सुविह्वला॥२८॥
उवाच विनतां कद्रूस्तव पुत्रोऽतिदुष्कृतम्। कृतवानतिदुर्मेधा येषां शान्तिर्न विद्यते॥२९॥
नान्यथा कर्तुमायाति स्वामिवाक्यं फणीश्वरः।
स काश्यपो बृहत्तेजा यद्यत्र स्यादनामयम्॥३०॥
भवेच्चैवं कथं शान्तिः पुत्राणां मम भामिनि।
कद्रवास्तद्वचनं श्रुत्वा विनता ह्यतिभीतवत्॥३१॥
पुत्रमाह महात्मानं गरुडं विहगाधिपम्॥३२॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब गरुड़ ने नागों का कथन सुना तब उन्होंने कहा—"तुम लोगों को सूर्य का दर्शन करा दूंगा।" यह कहते वे त्वरित वेग से सूर्य के सम्मुख जाने लगे। इस सूर्य ताप से अनेक नाग फण दग्ध होने से धरणीतल पर गिर पड़े। उनमें से हजारों सर्प पीड़ित तथा झुलसे हुये वीरण द्वीप पर गिर पड़े। महीतल पर गिरे उन पुत्र नागों का आर्त्त स्वर सुनकर विह्वल चित्त कद्रू उनको आश्वस्त करने वहां पहुंच गयीं। तब उसने विनता से कहा—"तुम्हारा पुत्र अत्यन्त दुष्ट बुद्धि वाला है। उसने महान् दुष्कर्म किया है। इस दुष्क्रिया की कोई शान्ति नहीं है। स्वामी के कथन के विपरीत करना उचित नहीं है। वह शेषनाथ काश्यप महातेजस्वी यदि यहां आगमन करता, तब वह सभी को रोग रहित कर देता। हे भामिनि! मेरे पुत्रों की शान्ति कैसे होगी?" कद्रू का वचन सुनकर विनता अत्यन्त भयभीत हो गयीं। वे अपने पुत्र महात्मा पक्षीराज गरुड़ से कहने लगीं।।२६-३२।।

नेदं युक्ततरं पुत्र भूषणं विनयेन हि। वर्तितुं युक्तमित्युक्तं वैपरीत्यं न युज्यते॥३३॥
नामित्रेष्वपि कर्तव्यं सद्भिर्जिह्मं कदाचन।
श्रोत्रिये चान्त्यजे वाऽपि समं चन्द्रः प्रकाशते॥३४॥
कुर्वन्त्यनिष्टं कपटैस्त एव मम पुत्रक। प्रसह्य कर्तुं ये साक्षादशक्ताः पुरुषाधमाः॥३५॥

विनता ने कहा—तुम्हारा कार्य युक्तिसंगत नहीं है। विनय युक्त व्यवहार करना ही उचित है। यही शास्त्रवाक्य है। इससे विपरीत करना उचित नहीं है। सज्जन लोग शत्रु से भी कपटपूर्ण व्यवहार न करें। श्रोत्रिय, अन्त्यज दोनों को ही चन्द्रमा समान रूप से प्रकाशित करते हैं। हे पुत्र! जो पुरुषाधम लोग बल पूर्वक सामने से अपकार नहीं कर पाते, वे ही कपटता का व्यवहार करते हैं।।३३-३५।।

ब्रह्मोवाच

विनता च ततः प्राह कद्रुं तां सर्पमातरम्॥३६॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहने के पश्चात् विनता सर्पमाता कद्रू से कहने लगीं।।३६।।

विनतोवाच

किं कृत्वा शान्तिरभ्येति पुत्राणां ते करोमि तत्।
जरया तु गृहीतास्ते वद शान्तिं करोमि तत्॥३७॥

विनता कहती हैं—किस कार्य को करने से तुम्हारे पुत्रों को शान्ति मिल सकेगी? अभी वे व्याधि से पीड़ित हैं। मैं कैसे शान्ति करूं, वह कहिये।।३७।।

ब्रह्मोवाच

कद्रूरप्याह विनतां रसातलगतं पयः। तेनाभिषेचितानां मे पुत्राणां शान्तिरेष्यति॥३८॥
कद्रवास्तद्वचनं श्रुत्वा रसातलगतं पयः। क्षणेनैव समानीय नागांस्तानभ्यषेचयत्।
ततः प्रोवाच गरुडो मघवानं शतक्रतुम्॥३९॥

ब्रह्मा कहते हैं—कद्रू ने तब विनता से कहा—"रसातल में जो जल है, उससे सिंचित होने पर मेरे पुत्रों को शान्तिलाभ होगा।" गरुड़ ने कद्रू का यह वचन सुनकर क्षणमात्र में रसातल से वह जल लाकर सर्पों को अभिसिंचित किया। तब उन्होंने शतक्रतु मघवान् इन्द्र से कहा—।।३८-३९।।

गरुड उवाच

मेघाश्चाप्यत्र वर्षन्तु त्रैलोक्यस्योपकारिणः॥४०॥

गरुड़ ने कहा—यहां त्रैलोक्य का उपकार करने वाले मेघगण वर्षा करें।।४०।।

ब्रह्मोवाच

तथा ववर्ष पर्जन्यो नागानामभवच्छिवम्। रसातलभवं गाङ्गं नागसञ्जीवनं पयः॥४१॥
जराशोकविनाशार्थमानीतं गरुडेन यत्। यत्राभिषेचिता नागास्तन्नागालयमुच्यते॥४२॥
गरुडेन यतो वारि आनीतं तद्रसातलात्। तद्गाङ्गं वारि सर्वेषां सर्वपापप्रणाशनम्॥४३॥
जराया वारणं यस्मान्नागानामभवच्छिवम्। रसातलभवं गाङ्गं नागसञ्जीवनं यतः॥४४॥
जराशोकविनाशार्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे। साक्षादमृतसंवाहा वञ्जरा साऽभवन्नदी॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब पर्जन्य ने वहां वर्षा कर दिया, जिससे नागों को शान्ति मिली। गरुड़ नागगण के पुनर्जीवनार्थ जरा एवं शोक विनाशक रसातलोत्पन्न जिस जल को वहां लाये थे, वह गंगोदक सबके सभी पातकों का नाशक है। रसातल के जिस गंगोदक से गरुड़ ने नागों का मंगल साधन किया था तथा नागगण जिसके प्रभाव से संजीवित हो गये थे, जरानाशक जिस गंगाजल को जरा शोकनाशार्थ गरुड़ द्वारा लाया गया था, वह गौतमी गंगा के दक्षिण तट पर बहने वाली अमृतवाहिनी वञ्जरा नदी कहलाया।।४१-४५।।

जरादारिद्र्यसन्तापहारिणी क्लेशवारिणी। रसातलभवा गङ्गा मर्त्यलोकभवा तु या॥४६॥
तयोश्च सङ्गमो यः स्यात्किं पुनस्तत्र वर्ण्यते। यस्यानुस्मरणादेव नाशं यान्त्यघसञ्चयाः॥४७॥
तत्र च स्नानदानानां फलं को वक्तुमीश्वरः। सपादं तत्र तीर्थानां लक्षमाहुर्मनीषिणः॥४८॥
सर्वसम्पत्तिदातॄणां सर्वपापौघहारिणाम्। वञ्जरासङ्गमसमं तीर्थं क्वापि न विद्यते।
यदनुस्मरणेनापि विपद्यन्ते विपत्तयः॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वञ्जरासङ्गमादिसपादलक्षतीर्थवर्णनं नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१५९॥

गौतमीमाहात्म्ये नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

यह नदी जरा, दरिद्रता, सन्तापहारिणी एवं क्लेशनाशिनी है। इस रसातलोत्पन्न गंगा तथा मर्त्यलोकोद्भवा गंगा, इन दोनों का जो यहां संगम है, उसकी महिमा कौन कह सकेगा? इसके स्मरण मात्र से पापसंचय नष्ट हो जाता है। वहां के स्नानदान के अमित फल को नहीं कहा जा सकता। वहां पर सात लाख तीर्थों की स्थिति का वर्णन मनीषी लोग बतलाते हैं। ये सभी सर्वसम्पदा प्रदायक तथा सभी पापसमूहों के नाशक हैं। जिसके स्मरण मात्र से विपत्तियां नष्ट हो जाती हैं, वंजरासंगम तीर्थ ऐसा स्थान कहीं नहीं है।।४६-४९।।

।।एकोनषष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

देवागमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

देवागमं नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शिवम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां पितॄणां तृप्तिकारकम्॥१॥
तत्र वृत्तं समाख्यास्ये तव यत्नेन नारद। देवानामसुराणां च स्पर्धाऽभूद्धनहेतवे॥२॥
स्वर्गः सुराणामभवदसुराणामिलाऽभवत्। कर्मभूमिमवष्टभ्य असुराः सर्वतोऽभवन्॥३॥
देवानां यज्ञभागांश्च दातॄन्घ्नन्त्यसुरास्ततः। ततः सुरगणाः सर्वे यज्ञभागैर्विना कृताः॥४॥
व्यथिता मामुपाजग्मुः किं कृत्यमिति चाब्रुवन्।
मया चोक्ताः सुरगणा युद्धे जित्वाऽसुरान्बलात्॥५॥
भुवं प्राप्स्यथ कर्माणि हवींषि च यशांसि च।
तथेत्युक्त्वा गता देवा भूमिं ते समरार्थिनः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—दैवागमतीर्थ मनुष्यों के लिये सभी कामनाओं को प्रदान करने वाला, शुभ साधक, मुक्तिप्रद तथा पितृगण के लिये तृप्तिदायक है। हे नारद! इस विषय में तुमसे वह वृत्तान्त कहता हूं। सावधान होकर श्रवण करो। पूर्वकाल में देवता तथा असुरों के मध्य धन सम्बन्धित विवाद हो गया। उसमें देवगण को स्वर्ग तथा असुरों को पृथिवी पर अधिकार मिला। असुरगण ने इस कर्मभूमि पर सर्वत्र अधिकार स्थापित कर लिया। तत्पश्चात् वे यज्ञभाग प्रदाता जनगण को मारने लगे। उन लोगों ने इस कर्मभूमि पर स्वाधिकार स्थापित कर दिया, अतएव देवता यज्ञभाग विहीन होकर व्यथित हो गये। उन्होंने मेरे पास आकर पूछा कि अब हम क्या करें? तब मैंने उनको आदेश दिया कि "हे देवताओं! तुम लोग भी युद्ध में असुरों को जीत कर अपना अधिकार स्थापित करो। इसी से कर्म, हविः तथा यशोलाभ होगा।" देवताओं ने कहा कि "हम यही करेंगे" तथा वे युद्धार्थ पृथिवी पर चले गये।।१-६।।

दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसा बलदर्पिताः।
एकीभूत्वा ययुस्तेऽपि जयिनो युद्धकाङ्क्षिणः।।७।।
अहिर्वृत्रो बलिस्त्वाष्ट्रिर्नमुचिः शम्बरो मयः।
एते चान्ये च बहवो योद्धारो बलदर्पिताः।।८।।
अग्निरिन्द्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा पूषा तथाऽश्विनौ। मरुतो लोकपालाश्च नानायुद्धविशारदाः।।९।।
ते दानवाः सर्व एव याम्यां वै दिशि सङ्गरे।
अकुर्वन्त महायत्नं दक्षिणार्णवसंस्थिताः।।१०।।
त्रिकूटः पर्वतश्रेष्ठो राक्षसानां पुराऽभवत्। तद्वनेन ययुः सर्वे तैः सार्धं दक्षिणार्णवम्।।११।।
सर्वेषां मेलनं यत्र पर्वतो मलयस्तु सः। मलयस्यापि देशोऽसौ देवारीणामभूत्तदा।।१२।।
देवानां गौतमीतीरे तत्र सन्निहितः शिवः। इति तेषां समायोगो देवानामभवत्किल।।१३।।

इधर दैत्य-दानव तथा बल के घमण्ड से भरे राक्षस लोग जयलाभार्थ युद्ध करने चल पड़े। उनमें अहि, वृत्र, बलि, त्वाष्ट्रि, नमुचि, शम्बर एवं मय तथा अनेक बली योद्धा भी थे। देवपक्ष से इन्द्र, वरुण, त्वष्टा, पूषा, अश्विनीकुमारद्वय, मरुतगण तथा अन्य लोकपाल लोग एवं नानायुद्धविशारद और भी अनेक योद्धा थे। दानवदल ने दक्षिण दिशा स्थित दक्षिणसागर पर युद्धार्थ महान् उद्योग किया। पूर्वकाल से ही महान् श्रेष्ठ पर्वत त्रिकूट राक्षसों के अधिकार में आया। दानवदल ने भी इस त्रिकूट के वनों में जाकर मलयपर्वत पर अधिकार कर लिया। वहां गौतमी तट पर शिव विराजमान थे, वहां देवता उचित अवसर मान कर एकत्रित हो गये।।७-१३।।

देवाः स्वरथमारूढास्तत्र तत्र समागमन्।
गौतम्याः सरिदम्बायाः पुलिने विमलाशयाः।।१४।।
प्रसन्नाऽभीष्टदा या स्यात् पितॄणामखिलस्य तु।
ततो देवगणाः सर्वे स्तुत्वा देवं महेश्वरम्।
अभयं चिन्तयामासुस्ते सर्वेऽथ परस्परम्।।१५।।

जो प्रसन्न होने पर सर्वाभीष्टप्रदा तथा पितृगण को तृप्त करती रहती हैं, विमल चित्त वाले देवता उस नदी माता गौतमी के तट पर अपने-अपने रथ पर आरूढ़ होकर पहुंचे। इसके पश्चात् समस्त देवताओं ने एकत्र होकर अभय कामना के साथ विष्णु तथा महेश्वर का स्तव किया।।१४-१५।।

देवा ऊचुः

अत्राप्युपायः कोऽस्माकं निर्जितानां परैर्हठात्।
एकमेवात्र नः श्रेयो विजयो वाऽथवा मृतिः।
सपत्नैरभिभूतानां जीवितं धिङ्मनस्विनाम्॥१६॥

देवता कहते हैं—शत्रु द्वारा अचानक परास्त किये गये हम लोगों के लिये अब क्या उपाय है? इस अवस्था में पड़े हम लोगों के लिये विजय अथवा मरण में से क्या करना उचित है? जो शत्रु से पराजित मनस्वी व्यक्ति है, उसके जीवित रहने को धिक्कार!।।१६।।

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे पुत्र वागुवाचाशरीरिणी॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र नारद! तभी एक आकाशवाणी सुनी गयी।।१७।।

आकाशवागुवाच

क्लेशेनालं सुरगणा गौतमीमाशु गच्छत। भक्त्या हरिहरौ तत्र समराधयतेश्वरौ॥१८॥
गोदावर्यास्तयोश्चैव प्रसादात्किन्तु दुष्करम्॥१९॥

आकाशवाणी ने कहा—हे देवताओं! दुःख मत करो। तुम सब शीघ्र गौतमी तट पर जाओ। वहां भक्ति के साथ हरि तथा हर की आराधना करो। इस गोदावरी नदी तथा उन दोनों प्रभु की कृपा होने पर क्या दुर्लभ रह जायेगा?।।१८-१९।।

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नाभ्यां हरीशाभ्यां देवा जयमभीप्सितम्।
अवाप्य सर्वतो जग्मुः पालयन्तो दिवौकसः॥२०॥
यत्र देवागमो जातस्तत्तीर्थं तेन विश्रुतम्। देवागमं प्रशंसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥२१॥
तत्राशीतिसहस्राणि शिवलिङ्गानि नारद। देवागमः पर्वतोऽसौ प्रिय इत्यपि कथ्यते।
ततः प्रभृति तत्तीर्थं देवप्रियमतो विदुः॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवागमतीर्थवर्णनं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६०।।

गौतमीमाहात्म्ये एकनवतितमोऽध्यायः।।९१।।

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् उन हरि एवं ईश्वर शिव की कृपा से उस युद्ध में देवताओं से वांछित

जयलाभ किया तथा स्वस्थान जाकर भुवनों का पालन करने लगे। जहां देवता एकत्र हुये थे, जहां उनका समागम हुआ था, वह स्थान देवागम नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। तत्ववेत्ता मुनिगण उस तीर्थ की प्रशंसा करते हैं। हे नारद! वहां अस्सी हजार शिवलिंग विराजमान हैं। वह पर्वत 'प्रिय' नाम से भी पुकारा जाता है। अतः वह तीर्थ देवप्रिय कहा गया।।२०-२२।।

।।षष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कुशातर्पणतीर्थ प्रसंग वर्णन

ब्रह्मोवाच

कुशतर्पणमाख्यातं प्रणीतासङ्गमं तथा। तीर्थं सर्वेषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥१॥

तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापहरं शुभम्।
विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे सह्यो नाम महागिरिः॥२॥

यदङ्घ्रिभ्योऽभवन्नद्यो गोदाभीमरथीमुखाः। यत्राभवत्तद्विरजमेकवीरा च यत्र सा॥३॥

न तस्य महिमा कैश्चिदपि शक्योऽनुवर्णितुम्।
तस्मिन्गिरौ पुण्यदेशे शृणु नारद यत्नतः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! कुशतर्पण तथा प्रणीतातीर्थ सर्वलोक प्रसिद्ध है। यह भोग-मोक्ष देने वाला है। इसके शुभ तथा पापहारी स्वरूप को कहता हूं। श्रवण करो। विन्ध्यपर्वत के दक्षिण पार्श्व में सह्य पर्वत है। उसकी तलहटी से गोदा तथा भीमरथी प्रभृति प्रधान नदियां उत्पन्न होती हैं। वहीं पर लोकप्रसिद्ध विरज एवं एकवीरा नदी भी है, जिन सबकी महिमा का वर्णन कोई नहीं कर सकता। उस पर्वत के पुण्यदेश की घटना को यत्नतः श्रवण करो।।१-४।।

गुह्याद्गुह्यतरं वक्ष्ये साक्षाद्वेदोदितं शुभम्। यन्न जानन्ति मुनयो देवाश्च पितरोऽसुराः॥५॥

तदहं प्रीतये वक्ष्ये श्रवणात्सर्वकामदम्। परः स पुरुषो ज्ञेयो ह्यव्यक्तोऽक्षर एव तु॥६॥

अपरश्च क्षरस्तस्मात्प्रकृत्यन्वित एव च। निराकारात्सावयवः पुरुषः समजायत॥७॥

तस्मादापः समुद्भूता अद्भ्यश्च पुरुषस्तथा। ताभ्यामब्जं समुद्भूतं तत्राहमभवं मुने॥८॥

पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिस्तथैव च। एते मत्तः पूर्वतरा एकदैवाभवन्मुने॥९॥

एतानेव प्रपश्यामि नान्यत्स्थावरजङ्गमम्।
नैव वेदास्तदा चाऽऽसन्नाहं द्रष्टाऽस्मि किञ्चन॥१०॥

यस्मादहं समुद्भूतो न पश्येयं तमप्यथ। तूष्णीं स्थिते मयि तदा अश्रौषं वाचमुत्तमाम्॥११॥

इसी पर्वत के पुण्य प्रदेश से ये दोनों तीर्थ उत्पन्न हैं। मैं गुह्य से भी गुह्य इस वेदोक्त शुभ वृत्तान्त का वर्णन कर रहा हूं। जो वृत्तान्त मुनि, देवता, पितर, असुर आदि भी कोई नहीं जानते, जो सुनने में ही सर्व कामना प्रदायक है, मैं उस वृत्तान्त को तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण कह रहा हूं। ये अव्यक्त पुरुष पर एवं अक्षर भी हैं। जो अपर है, वह क्षय होने वाला प्रकृति से युक्त है। अक्षर से ही प्रकृति समन्वित अपर-क्षर पुरुष जन्मा। निराकार पुरुष से ही (अव्यक्त से ही) साकार पुरुष का जन्म हुआ है। उनसे जल, जल से नारायण का उद्भव हुआ। साकार नारायण से एक कमल जन्मा। हे मुनि नारद! मेरा जन्म उसी पद्म से हो गया। पृथिवी, वायु, आकाश, जल एवं ज्योति (तेज) मेरी अपेक्षा पूर्वतर हैं। मैं उत्पन्न होने पर इनको ही देखता था। तब स्थावर-जंगम था ही नहीं। वेद तक नहीं था। इनके अतिरिक्त मैं जिससे उत्पन्न हुआ था, उसे भी नहीं देख पा रहा था। अतः मैं मौन होकर बैठा रह गया। तभी मैंने उत्तम वाणी को सुना।।५-११।।

आकाशवागुवाच

ब्रह्मन्कुरु जगत्सृष्टिं स्थावरस्य चरस्य च॥१२॥

आकाशवाणी कहती है—हे ब्रह्मन्! तुम स्थावर तथा जंगम सृष्टि करो।।१२।।

ब्रह्मोवाच

ततोऽहमब्रवं वाचं परुषां तत्र नारद।
कथं स्रक्ष्ये क्व वा स्रक्ष्ये केन स्रक्ष्य इदं जगत्॥१३॥
सैव वागब्रवीद्देवी प्रकृतिर्याऽभिधीयते। विष्णुना प्रेरिता माता जगदीशा जगन्मयी॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! तब मैंने परुष (कठोर) स्वर में कहा—"कहां सृष्टि करूं, कैसे सृष्टि करूं? किसके द्वारा सृष्टि करूं?" तब विष्णु प्रेरित जगन्मयी माता देववाणी ने जो प्रकृति हैं, उन्होंने पुनः कहा—।।१३-१४।।

आकाशवागुवाच

यज्ञं कुरु ततः शक्तिस्ते भवित्री न संशयः।
यज्ञो वै विष्णुरित्येषा श्रुतिर्ब्रह्मन्सनातनी॥१५॥
किं यज्वनामसाध्यं स्यादिह लोके परत्र च॥१६॥

आकाशवाणी ने कहा—तुम यज्ञ करो। उसी से तुमको शक्ति लाभ होगा। इसमें सन्देह नहीं है। यज्ञकारी के लिये इस लोक में अथवा परलोक में क्या असाध्य है?।।१५-१६।।

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रवं देवीं क्व वा केनेति तद्वद। यज्ञः कार्यो महाभागे ततः सोवाच मां प्रति॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैंने उनसे पुनः पूछा कि "मैं कहां तथा किसके द्वारा यज्ञ करूं?" जो जगन्मयी तथा जगत् की माता हैं, उन ओंकार आकृति वाली आकाशवाणी ने तब कहा—।।१७।।

आकाशवागुवाच

ओङ्कारभूता या देवी मातृकल्पा जगन्मयी। कर्मभूमौ यजस्वेह यज्ञेशं यज्ञपुरुषम्॥१८॥
स एव साधनं ते स्यात्तेन तं यज सुव्रत।
यज्ञः स्वाहा स्वधा मन्त्रा ब्राह्मणा हविरादिकम्॥१९॥
हरिरेवाखिलं तेन सर्वं विष्णुरवाप्यते॥२०॥

आकाशवाणी कहती हैं—जो ओंकारभूता मातृकल्पा जगन्मयी देवी हैं, उनके द्वारा कर्मभूमि में यज्ञों के स्वामी यज्ञपुरुष का यजन करो। इनसे ही तुमको साधन-सहायता मिलेगी। हे सुव्रत! उनके द्वारा ही उनका यजन करो। स्वाहा, स्वधा, मन्त्र, ब्राह्मण एवं हविः प्रभृति—सब कुछ यज्ञ ही है। यह सब कुछ श्रीहरि ही हैं। अतः हरि से सब कुछ मिल जाता है।।१८-२०।।

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रवं देवीं कर्मभूः क्व विधीयते। तदा नारद नैवाऽऽसीद्भागीरथ्यथ नर्मदा॥२१॥
यमुना नैव तापी सा सरस्वत्यथ गौतमी। समुद्रो वा नदः कश्चिन्न सरः सरितोऽमलाः।
सा शक्तिः पुनरप्येवं मामुवाच पुनः पुनः॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब मैंने पुनः उन देवी से कहा कि "कर्मभूमि कहां है?" हे नारद! तब भागीरथी, नर्मदा, यमुना, तापी, सरस्वती, गौतमी, समुद्र, नद, सरितायें, सरोवर प्रभृति विमल जलाशय ही नहीं था। तब उस शक्ति ने पुनः-पुनः मुझसे कहा—।।२१-२२।।

दैवी वागुवाच

सुमेरोर्दक्षिणे पार्श्वे तथा हिमवतो गिरेः।
दक्षिणे चापि विन्ध्यस्य सह्याच्चैवाथ दक्षिणे।
सर्वस्य सर्वकाले तु कर्मभूमिः शुभोदया॥२३॥

दैवी आकाशवाणी कहती हैं—सुमेरु के दक्षिण पार्श्व में, हिमालय में, सह्य पर्वत के दक्षिण में सभी सर्वकालीन शुभ का उदय करने वाली कर्मभूमि विद्यमान हैं।।२३।।

ब्रह्मोवाच

तत्तु वाक्यमथो श्रुत्वा त्यक्त्वा मेरुं महागिरिम्।
तं प्रदेशमथाऽऽगत्य स्थातव्यं क्वेत्यचिन्तयम्।
ततो मामब्रवीत्सैव विष्णोर्वाण्यशरीरिणी॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—आकाशवाणी का कथन सुनकर मैंने महागिरि मेरु का त्याग करके उस प्रदेश में आगमन किया। मैं वहां विचार करने लगा कि मैं कहां रहूं? तभी विष्णु प्रेरित दैववाणी ने पुनः कहा—।।२४।।

आकाशवागुवाच

इतो गच्छ इतस्तिष्ठ तथोपविश चात्र हि।
सङ्कल्पं कुरु यज्ञस्य स ते यज्ञः समाप्यते॥२५॥
कृते चैवाथ सङ्कल्पे यज्ञार्थे सुरसत्तम। यद्वदन्त्यखिला वेदा विधै तत्तत्समाचर॥२६॥

आकाशवाणी कहती हैं—हे ब्रह्मन्! इधर जाओ, उधर जाओ, इधर बैठ जाओ (अर्थात् स्थान का संकेत दिया)। यज्ञार्थ संकल्प करो। तुम्हारा यज्ञ अवश्यमेव सम्पन्न होगा। यज्ञ हेतु संकल्प लेने पर तुम वैसा ही करना, जैसा अखिल वेदों का मत है। उसी विधि से यज्ञ सम्पन्न करो।।२५-२६।।

ब्रह्मोवाच

इतिहासपुराणानि यदन्यच्छब्दगोचरम्। स्वतो मुखे मम प्रायादभूच्च स्मृतिगोचरम्॥२७॥
वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसौ तत्क्षणेन च। ततः पुरुषसूक्तं तदस्मरं लोकविश्रुतम्॥२८॥
यज्ञोपकरणं सर्वं तदुक्तं च त्वकल्पयम्। तदुक्तेन प्रकारेण यज्ञपात्राण्यकल्पयम्॥२९॥
अहं स्थित्वा यत्र देशे शुचिर्भूत्वा यतात्मवान्।
दीक्षितो विप्रदेशोऽसौ मन्नाम्ना तु प्रकीर्तितः॥३०॥
मद्देवयजनं पुण्यं नाम्ना ब्रह्मगिरिः स्मृतः। चतुरशीतिपर्यन्तं योजनानि महामुने॥३१॥
मद्देवयजनं पुण्यं पूर्वतो ब्रह्मणो गिरेः।
तत्र मध्ये वेदिका स्याद्गार्हपत्योऽस्य (?) दक्षिणे॥३२॥
तत्र चाऽऽहवनीयस्य एवमग्नींस्त्वकल्पयम् (?)।
विना पत्न्या न सिध्येत यज्ञः श्रुतिनिदर्शनात्॥३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर इतिहास-पुराणादि शब्द जो कुछ भी थे, वे स्वतः मेरी स्मृति में अवतीर्ण हो गये। वे मेरे मुख से स्फुरित होने लगे। तभी समस्त वेदार्थ मेरे ज्ञान का विषय हो गये (ज्ञात हो गये)। तब वह लोकविख्यात पुरुषसूक्त भी मुझे स्मरण हो गया। तदनन्तर मैंने तदनुरूप यज्ञ सामग्रियों की कल्पना किया तथा तदनुसार यज्ञपात्र भी कल्पित किये। मैं वहां पवित्र होकर संयमित चित्त से दीक्षित हो गया। वह विप्रबहुल प्रदेश जहां मैं आसनासीन एवं यज्ञदीक्षित हो सका था, वह विप्रदेश मेरे नाम से प्रसिद्ध हो गया। वह पुण्यमय देवयजन स्थल ब्रह्मगिरि कहलाया। हे महामुनि! वह स्थान ब्रह्मगिरि ८४ योजन पर्यन्त विस्तृत था। वह स्थल ब्रह्मगिरि के पूर्व की ओर था। उसके मध्यस्थल में वेदिका थी। जिसके दक्षिण में गार्हपत्य अग्नि एवं आहवनीय अग्नि स्थापित की गयी। श्रुति का आदेश है कि पत्नी बिना यज्ञ सिद्ध, सम्पन्न नहीं माना जाता।।२७-३३।।

शरीरमात्मनोऽहं वै द्वेधा चाकरवं मुने। पूर्वार्धेन ततः पत्नी ममाभूद्यज्ञसिद्धये॥३४॥
उत्तरेण त्वहं तद्वदर्धो जाया इति श्रुतेः। कालं वसन्तमुत्कृष्टमाज्यरूपेण नारद॥३५॥
अकल्पयं तथा चेध्मं ग्रीष्मं चापि शरद्धविः।
ऋतं च प्रावृषं पुत्र तदा बर्हिरकल्पयम्॥३६॥

छन्दांसि सप्त वै तत्र तदा परिधयोऽभवन्।
कलाकाष्ठानिमेषा हि समित्पात्रकुशाः स्मृताः॥३७॥

हे मुनिवर! इसलिये मैंने यज्ञसिद्धि के लिये "अर्द्धभाग ही पत्नी होती है" इस श्रुतिवचन के अनुसार अपने देह को भागद्वय में बांट दिया। उसके उत्तरार्द्ध से मैं स्वयं था। उसके पूर्वार्द्ध द्वारा मैंने पत्नी का निर्माण किया। हे नारद! मैंने उत्कृष्ट ऋतु वसन्त की कल्पना घृत रूप में, ग्रीष्म की कल्पना काष्ठ रूप में, शरद ऋतु की कल्पना हविरूप में, प्रावृट् (वर्षा) ऋतु की कल्पना अग्निरूप में किया था। उस समय सातों छन्द मेरे यज्ञ की परिधि हो गये। कला, काष्ठा, निमेष ही क्रमशः समिध्, पात्र तथा कुशा कल्पित हुये।।३४-३७।।

योऽनादिश्च त्वनन्तश्च स्वयं कालोऽभवत्तदा।
यूपरूपेण देवर्षे योक्त्रं च पशुबन्धनम्॥३८॥
तत्त्वादित्रिगुणाः पाशा नैव तत्राभवत्पशुः। ततोऽहमब्रवं वाचं वैष्णवीमशरीरिणम्॥३९॥
विनैव पशुना नायं यज्ञः परिसमाप्यते। ततो मामवदद्देवी सैव नित्याऽशरीरिणी॥४०॥

हे देवर्षि! जो अनादि तथा अनन्त है, वही काल ही यूप रूप से यज्ञपशु बन्धनार्थ काष्ठ हो गया। वहां सत्व-रजः-तमः आदि पाश अर्थात् पशु बांधने की रस्सी (रज्जु) हो गये। तथापि उस समय (सृष्टि न होने के कारण) पशु ही नहीं था। तब मैंने उस अशरीरी वाणी से (आकाशवाणी) कहा—"हे देवी! बिना पशु यज्ञ कैसे सम्पन्न होगा? तब उन नित्य अशरीरी रहने वाली देवी ने मुझसे कहा—।।३८-४०।।

आकाशवागुवाच

पौरुषेणाथ सूक्तेन स्तुहि तं पुरुषं परम्॥४१॥

अशरीरी वाणी कहती है—उन परमपुरुष की स्तुति तुम पुरुषसूक्त से करो।।४१।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स्तूयमाने देवदेवे जनार्दने। मम चोत्पादके भक्त्या सूक्तेन पुरुषस्य हि॥४२॥
सा च मामब्रवीद्देवी ब्रह्मन्मां त्वं पशुं कुरु। तदा विज्ञाय पुरुषं जनकं मम चाव्ययम्॥४३॥
कालयूपस्य पार्श्वे तं गुणपाशैर्निवेशितम्। बर्हिस्थितमहं प्रौक्षं पुरुषं जातमग्रतः॥४४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र तस्मात्सर्वमभूदिदम्। ब्राह्मणास्तु मुखात्तस्याभवन्बाह्वोश्च क्षत्रियाः॥४५॥
मुखादिन्द्रस्तथाऽग्निश्च श्वसनः प्राणतोऽभवत्।
दिशः श्रोत्रात्तथा शीर्ष्णः सर्वः स्वर्गोऽभवत्तदा॥४६॥
मनसश्चन्द्रमा जातः सूर्योऽभूच्चक्षुषस्तथा।
अन्तरिक्षं तथा नाभेरूरुभ्यां विश एव च॥४७॥
पद्भ्यां शूद्रश्च संजातस्तथा भूमिरजायत।
ऋषयो रोमकूपेभ्य ओषध्यः केशतोऽभवन्॥४८॥

ग्राम्यारण्याश्च पशवो नखेभ्यः सर्वतोऽभवन्। कृमिकीटपतङ्गादि पायूपस्थादजायत॥४९॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैंने कहा—"वही करता हूं।" तदनन्तर मैं स्वयं को उत्पन्न करने वाले देवदेव जनार्दन का भक्तिभाव के साथ स्तव करने लगा। तब उन देवी ने कहा—"हे ब्रह्मन्! तुम मुझे पशुरूपेण ग्रहण करो।" तब मैंने स्वयं को उत्पन्न करने वाले नित्य पुरुष को जान लिया जो अव्यय थे। उनको रस्सी के पाश से उस कालयूप के पार्श्व में बद्ध कर दिया। तदनन्तर सबसे पूर्व में बर्हि पर आसीन (कुशा पर आसीन) उन पुरुष को देख कर उनका प्रोक्षण अभिषेक सम्पन्न किया। तभी उन पुरुष से समस्त प्रपंच उत्पन्न हो गया। उनके मुखमण्डल से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय जन्मे उनके मुख से इन्द्र एवं अग्नि, प्राण से वायु, कर्ण से सभी दिशायें, मस्तक से स्वर्ग, मन से चन्द्र, चक्षुद्वय से सूर्य, नाभि से अन्तरिक्ष, उरुद्वय से वैश्य, चरणद्वय से शूद्र तथा भूमि, रोमकूपों से ऋषि, केशों से समस्त औषधियां, नखों से ग्रामीण एवं वनैले पशु, पायु एवं उपस्थ से कृमि-कीट-पतंगादि उत्पन्न हो गये।।४२-४९।।

स्थावरं जङ्गमं किञ्चिद्दृश्यादृश्यं च किञ्चन। तस्मात्सर्वभूद्देवा मत्तश्चाप्यभवन्पुनः।
एतस्मिन्नन्तरे सैव विष्णोर्वागब्रवीच्च माम्॥५०॥

स्थावर-जंगमादि जो कुछ दृश्यादृश्य पदार्थ हैं, सब कुछ की उत्पत्ति उनसे ही कही गयी है। तत्पश्चात् मुझसे देवगण जन्मे। तदनन्तर उन विष्णुशक्ति अशरीरी वाणी ने पुनः मुझसे कहा—।।५०।।

आकाशवागुवाच

सर्वं सम्पूर्णमभवत्सृष्टिर्जाता तथेप्सिता।
इदानीं जुहुधि ह्यग्नौ पात्राणि च समानि च॥५१॥
विसर्जय तथा यूपं प्रणीतां च कुशांस्तथा। ऋत्विग्रूपं यज्ञरूपमुद्देश्यं ध्येयमेव च॥५२॥
स्रुवं च पुरुषं पाशान्सर्वं ब्रह्मन्विसर्जय॥५३॥

अशरीरी (आकाशवाणी) कहती है—हे ब्रह्मन्! तुम्हारा समस्त कार्य पूर्ण हो गया। यथेच्छ सृष्टि भी हो गयी। अब इन यज्ञीय पात्रों तथा उपकरणों की अग्नि में आहुति दे दो। इस यूप, प्रणीता, कुश आदि का विसर्जन करो। ऋत्विक् रूप, यज्ञरूप, उद्देश्य, ध्येय, स्रुवा, पुरुष, पाशादि का विसर्जन ब्रह्म में कर दो।।५१-५३।।

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्समकालं तु क्रमशो यज्ञयोनिषु। गार्हपत्ये दक्षिणाग्नौ तथा चैव महामुने॥५४॥
पूर्वस्मिन्नपि चैवाग्नौ क्रमशो जुह्वतस्तदा। तत्र तत्र जगद्योनिमनुसन्धाय पुरुषम्॥५५॥
मन्त्रपूतं शुचिः सम्यग्यज्ञदेवो जगन्मयः।
लोकनाथो विश्वकर्त्ता कुण्डानां तत्र सन्निधौ॥५६॥
शुक्लरूपधरो विष्णुर्भवेदाहवनीयके। श्यामो विष्णुर्दक्षिणाग्नेः पीतो गृहपतेः कवेः॥५७॥
सर्वकालं तेषु विष्णुरतो देशेषु संस्थितः। न तेन रहितं किञ्चिद्विष्णुना विश्वयोनिना॥५८॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह उच्चरित होते ही मैंने यज्ञकुण्ड, गार्हपत्य, दक्षिणादि, पूर्वाग्नि में पवित्र भाव से उन-उन यज्ञीय द्रव्यों को जगद्योनि पुरुष के ध्यान के साथ मन्त्रपूत किया तथा होम करने लगा। तब लोकनाथ विश्वरचयिता, जगन्मय यज्ञदेव विष्णु उस कुण्ड में आविर्भूत हो गये। ये विष्णु आहवनीय अग्नि में शुक्लरूपी, दक्षिणाग्नि में श्याम वर्ण, गार्हपत्याग्नि में पीतवर्ण मूर्त्ति वाले परिलक्षित होने लगे। उसी समय से इन स्थानों में विष्णु सर्वकाल में विराजमान रहते हैं। फलस्वरूप विश्वयोनि विष्णु रहित कुछ भी नहीं है।।५४-५८।।

प्रणीतायाः प्रणयनं मन्त्रैश्चाकरवं ततः। प्रणीतोदकमप्येतत्प्रणीतेति नदी शुभा॥५९॥
व्यसर्जयं प्रणीतां तां मार्जयित्वा कुशैरथ। मार्जने क्रियमाणे तु प्रणीतोदकबिन्दवः॥६०॥
पतितास्तत्र तीर्थानि जातानि गुणवन्ति च। सञ्जाता मुनिशार्दूल स्नानात्क्रतुफलप्रदा॥६१॥
याऽलङ्कृता सर्वकालं देवदेवेन शार्ङ्गिणा।
सोपानपङ्क्तिः सर्वेषां वैकुण्ठारोहणाय सा॥६२॥
सम्मार्जिताः कुशा यत्र पतिता भूतले शुभे। कुशतर्पणमाख्यातं बहुपुण्यफलप्रदम्॥६३॥

तदनन्तर मैंने मन्त्र से प्रणीता का निर्माण किया। उस प्रणीता के जल से यज्ञफलप्रदा प्रणीता नदी उत्पन्न हो गयी, जो अतीव शुभा भी है (यह नदी सदैव देवदेव शार्ङ्गधनुर्धर विष्णु से अलंकृता तथा सभी के लिये वैकुण्ठ तक पहुंचाने हेतु विशेष सोपानरूपा भी है)। मैंने कुशों द्वारा प्रणीता का मार्जन एवं विसर्जन सम्पन्न किया। मार्जन काल में उस प्रणीता से यत्र-तत्र जहां कहीं जलविन्दु टपके, वहीं-वहीं स्थल गुणमय तीर्थरूप हो गये। जहां मार्जन वाले कुशसमूह गिरे थे, वह स्थान कुशतर्पण कहा गया। यह अनेक पुण्यफल प्रदाता स्थल है।।५९-६३।।

कुशैश्च तर्पिताः सर्वे कुशतपर्णमुच्यते। पश्चाच्च सङ्गता तत्र गौतमी कारणान्तरात्॥६४॥
प्रणीतायां महाबुद्धे प्रणीतासङ्गमोऽभवत्। कुशतर्पणदेशे तु तत्तीर्थं कुशतर्पणम्॥६५॥
तत्रैव कल्पितो यूपो मया विन्ध्यस्य चोत्तरे।
विसृष्टो लोकपूज्योऽसौ विष्णोरासीत्समाश्रयः॥६६॥
अक्षयश्चाभवच्छ्रीमानक्षयोऽसौ वटोऽभवत्।
नित्यश्च कालरूपोऽसौ स्मरणात्क्रतुपुण्यदः॥६७॥
मद्देवयजनं चेदं दण्डकारण्यमुच्यते। सम्पूर्णे तु क्रतौ विष्णुर्मया भक्त्या प्रसादितः॥६८॥

यहां कुशों से तर्पण किया गया था, अतः यह कुशतर्पण कहलाया। यह अनेक पुण्यफलप्रद है। कालान्तर में किसी कारण से यहां प्रणीता नदी गौतमी के साथ मिल गयी। तभी इसे प्रणीतासंगम कहते हैं। कुशतर्पणस्थल ही कुशतर्पणतीर्थ हो गया। यहीं विन्ध्य पर्वत के उत्तर की ओर मैंने यज्ञयूप को विसर्जित किया था। वह स्थान लोकपूज्य है तथा विष्णु से युक्त है। यही कालरूप यूप अक्षय है। वह श्रीमान् अक्षय वटवृक्ष रूप में परिणत हो गया। यह अक्षय वटवृक्ष है। यह नित्य कालरूप तथा स्मरणमात्र से यज्ञफलप्रद है। यहां मृत होने वाले यज्ञजनित पुण्य प्राप्त करते हैं। मेरा यही देवयजन स्थान अब दण्डकवन कहा जाता है। उस यज्ञ के सम्पन्न हो जाने पर भक्ति से मैंने विष्णु को प्रसन्न किया था।।६४-६८।।

यो विराडुच्यते वेदे यस्मान्मूर्तमजायत।
यस्माच्च मम चोत्पत्तिर्यस्येदं विकृतं जगत्॥६९॥
तमहं देवदेवशमभिवन्द्य व्यसर्जयम्। योजनानि चतुर्विंशन्मद्देवयजनं शुभम्॥७०॥

जिनको वेद ने विराट कहा है, जिससे यह मूर्त पदार्थमय विश्व उत्पन्न है, जिनसे मेरी भी उत्पत्ति कही गयी है, जिनका विकार यह जगत् है, मैंने उन देवदेवेश की वन्दना करके यह विसर्जन किया। मेरा यह शुभ देवयजन प्रदेश चौबीस योजन परिमाण का है।।६९-७०।।

तस्मादद्यापि कुण्डानि सन्ति च त्रीणि नारद।
यज्ञेश्वरस्वरूपाणि विष्णोर्वै चक्रपाणिनः॥७१॥
ततः प्रभृति चाऽऽख्यातं मद्देवयजनं च तत्।
तत्रस्थः कृमिकीटादिः सोऽप्यन्ते मुक्तिभाजनम्॥७२॥
धर्मबीजं मुक्तिबीजं दण्डकारण्यमुच्यते। विशेषाद्गौतमीश्लिष्टो देशः पुण्यतमोऽभवत्॥७३॥
प्रणीतासङ्गमे चापि कुशतर्पण एव वा। स्नानदानादि यः कुर्यात्स गच्छेत्परमं पदम्॥७४॥
स्मरणं पठनं वाऽपि श्रवणं चापि भक्तितः। सर्वकामप्रदं पुंसां भुक्तिमुक्तिप्रदं विदुः॥७५॥

हे नारद! वहां चक्रपाणि विष्णु के कुण्डत्रय विद्यमान हैं। ये यज्ञेश्वररूपी हैं। तभी से मेरा देवयजन स्थल प्रसिद्ध हो गया। वहां के कृमि-कीटादि भी अन्त में मुक्त हो जाते हैं। दण्डकवन को धर्म तथा मुक्ति का बीज कहा जाता है। विशेषतः जो अंश गौतमी से सटा है, वह तो पुण्यतम प्रदेश है। जो लोग प्रणीता संगम किंवा कुशतर्पण में स्नान-दानादि करते हैं, उनको परमपदलाभ होता है। भक्ति के साथ जो इस उपाख्यान का पठन, श्रवण किंवा स्मरण करता है, वह उसके लिये सर्वकामदायक एवं भोग तथा मोक्षप्रद है। यह तथ्य सुधीजन जानते हैं।।७१-७५।।

उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थान्याहुर्मनीषिणः। षडशीतिसहस्राणि तेषु पुण्यं पुरोदितम्॥७६॥
वाराणस्या अपि मुने कुशतर्पणमुत्तमम्। नानेन सदृशं तीर्थं विद्यते सचराचरे॥७७॥
ब्रह्महत्यादिपापानां स्मरणादपि नाशनम्। तीर्थमेतन्मुने प्रोक्तं स्वर्गद्वारं महीतले॥७८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये प्रणीतासङ्गमकुशतर्पणादिषडशीतिसहस्रतीर्थवर्णनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६१।।

गौतमीमाहात्म्ये द्विनवतितमोऽध्यायः।।९२।।

यहां नदी के (संगम के) उभय तटों पर ८६००० तीर्थ कहे गये हैं। इनका पुण्यफल मैंने पहले कह दिया था। हे मुनि नारद! यह कुशतर्पण तो वाराणसी से भी उत्कृष्ट है। एवंविध तीर्थ सचराचर में कोई नहीं है। इसके स्मरण से ही ब्रह्महत्यादि पातकों का नाश हो जाता है। यह तो मानों पृथ्वी पर स्वर्ग द्वार ही है।।७६-७८।।

।।एकषष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्युतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

मन्युतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्। सर्वकामप्रदं नृणां स्मरणादघनाशनम्॥१॥
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने।
देवानां दानवानां च सङ्गरोऽभून्मिथः पुरा॥२॥
तत्राजयन्नैव सुरा दानवा जयिनोऽभवन्। पराङ्मुखाः सुरगणाः सङ्गराद्गतचेतसः॥३॥
मामभ्येत्य समूचुस्ते देहि नोऽभयकारणम्। तानहं प्रत्यवोचं वै गङ्गां गच्छत सर्वशः॥४॥
तत्र वै गौतमीतीरे स्तुत्वा देवं महेश्वरम्। अनपायनिरायाससहजानन्दसुन्दरम्॥५॥
लप्स्यते सर्वविबुधा जयहेतुर्महेश्वरात्। तथेत्युक्त्वा सुरगणाः स्तुवन्ति स्म महेश्वरम्॥६॥
तपोऽतप्यन्त केचिद्वै ननृतुश्च तथाऽपरे। अस्नापयंश्च केचिच्चापूजयंश्च तथाऽपरे॥७॥

मन्युतीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ मनुष्यों के सभी पापों का नाशक, सर्वकामप्रद तथा स्मरण मात्र से कलुषहारी है। हे मुनिवर! उसका प्रभाव कहता हूं। एकाग्रता के साथ श्रवण करो। पूर्वकाल में देवता तथा दानवगण में एक युद्ध हुआ था। इस युद्ध में देवगण पराजित हो गये थे। असुरों ने जयलाभ किया था। देवता लोग समर में पराजित होने पर खिन्न मन से मेरे पास आकर कहने लगे कि "हमें अभय का कारण (उपाय) प्रदान करिये।" तब मैंने उन लोगों से कहा—"हे देवताओं! तुम सभी गौतमी गंगा जाओ। वहां जाकर अनपाय, निरायास, सहजानन्द-सुन्दर महेश्वर का स्तव करके उनसे जय का उपाय पा सकोगे।" यह सुनकर देवताओं ने "ऐसा ही करेंगे" कहा तथा उक्त स्थान पर जाकर महेश्वर का स्तव करने लगे। उनमें से कतिपय लोग तपःश्चरण करने लगे। कोई प्रभु शिव के उद्देश्य से नृत्यरत हो गये। कोई महादेव को स्नान कराने लगे। कोई उनकी पूजा-अर्चना में प्रवृत्त हो गये।।१-७।।

ततः प्रसन्नो भगवाञ्शूलपाणिर्महेश्वरः। देवानथाब्रवीत्तुष्टो व्रियतां यदभीप्सितम्॥८॥
देवा ऊचुः सुरपतिं विजयाय ददस्व नः। पुरुषं परमश्लाघ्यं रणेषु पुरतः स्थितम्॥९॥
यद्बाहुबलमाश्रित्य भवामः सुखिनो वयम्। तथेत्युवाच भगवान्देवान्प्रति महेश्वरः॥१०॥
आत्मनस्तेजसा कश्चिन्निर्मितः परमेष्ठिना। मन्युनामानमत्युग्रं देवसैन्यपुरोगमम्॥११॥

इस आराधना द्वारा शूलपाणि भगवान् महेश्वर ने प्रसन्न होकर देवगण से कहा—"अब वांछित वर मांगो।" उस समय देवताओं ने देवपति शंभु से कहा—"हे देवदेव! हमें युद्धार्थ विजयलाभ हेतु ऐसा विक्रमी पुरुष प्रदान करें, जो रण में सदैव अग्रणी रहे तथा जिसके भुजबल से हम सुखी (विजयी) हो जायें।" तब भगवान् महेश्वर ने कहा—"यही होगा।" तदनन्तर परमेष्ठी प्रभु शिव ने अपने तेज द्वारा मन्यु नामक अति उग्र पुरुष को बनाकर उसे देवसेना का अग्रणी बनाया।।८-११।।

तं नत्वा त्रिदशाः सर्वे शिवं नत्वा स्वमालयम्।
मन्युना सह चाभ्येत्य पुनर्युद्धाय तस्थिरे॥१२॥
युद्धे स्थित्वा तु दनुजर्दैतेयैश्च महाबलैः।
विबुधा जातसन्नद्धा मन्युमूचुः पुरः स्थिताः॥१३॥

उस समय देवगण ने उस मन्यु तथा शंकर को प्रणामोपरान्त मन्यु को साथ लिया तथा पुनः युद्धार्थ सन्नद्ध हो गये। देवगण ने महाबली दैत्य-दानवों के साथ युद्ध घोषणा करने के उपरान्त रणभूमि में मन्यु को अग्रगामी करके उनसे कहा—।।१२-१३।।

देवा ऊचुः

सामर्थ्यं तव पश्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे परैः।
तस्माद्दर्शय चाऽऽत्मानं मन्योऽस्माकं युयुत्सताम्॥१४॥

देवगण कहते हैं—हे मन्यु! सर्वप्रथम हम तुम्हारा सामर्थ्य देखने के इच्छुक हैं। हे मन्यु! हम सब युयुत्सु (युद्ध के लिये उत्सुक) लोगों को अपना सामर्थ्य प्रदर्शित करो।।१४।।

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा मन्युराह स्मयन्निव॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवगण का कथन सुनकर मन्यु हंसते हुये कहने लगा—।।१५।।

मन्युरुवाच

जनिता मम देवेशः सर्वज्ञः सर्वदृक्प्रभुः।
यः सर्वं वेत्ति सर्वेषां धामनाम मनःस्थितम्॥१६॥
नैव कश्चिच्च तं वेत्ति यः सर्वं वेत्ति सर्वदा। अमूर्त्तं मूर्तमप्येतद्वेत्ति कर्त्ता जगन्मयः॥१७॥
परोऽसौ भगवान्साक्षात्तथा दिव्यन्तरिक्षगः।
कस्तस्य रूपं यो वेद कस्य कर्त्ता जगन्मयः॥१८॥
एवं विद्यादहं जातो मां कथं वेत्तुमर्हथ। अथवा द्रष्टुकामा वै भवन्तो माऽनुपश्यत॥१९॥

मन्यु कहता है—देवेश, सर्वज्ञ, जिनको सबके मनोगत भावों का ज्ञान है, जिनकी दृष्टि सभी ओर है, जो सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं, वे प्रभु मेरे जन्मदाता हैं। वे सब कुछ जानते हैं, लेकिन उनको कोई नहीं जानता। वे जगन्मय मूर्त्त-अमूर्त्त सब कुछ के ज्ञाता हैं। जो स्वर्ग तथा अन्तरिक्षव्यापी, जगत् के स्रष्टा हैं, उनको कौन जान सकता है? ऐसे भगवान् साक्षात् परमेश्वर के तेज से मेरा जन्म हुआ है। आप लोग मुझे कैसे जान सकते हैं? अथवा यदि यही इच्छा है, तब मुझे देखिये।।१६-१९।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा दर्शयामास मन्यु रूपं स्वकं महत्। तार्तीयचक्षुषोद्भूतं भवस्य परमेष्ठिनः॥२०॥

तेजसा सम्भृतं रूपं यतः सर्वं तदुच्यते। पौरुषं पुरुषेष्वेव अहङ्कारश्च जन्तुषु॥२१॥
क्रोधः सर्वस्य यो भीम उपसंहारकृद्भवेत्। तं शङ्करप्रतिनिधिं ज्वलन्त निजतेजसा॥२२॥
सर्वायुधधरं दृष्ट्वा प्रणेमुः सर्वदेवताः। वित्रेसुर्दैत्यमनुजाः कृताञ्जलिपुटाः सुराः॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहने के अनन्तर मन्यु ने देवगण को अपना महत् रूप प्रदर्शित किया। वह रूप पुरुषों में पौरुषरूपेण, प्राणियों में अहंकार रूपेण, सर्व जीवगण में क्रोधरूपेण व्याप्त है। वह भीमरूपेण जगत् संहारक है। वह शंकर के तेज से उत्पन्न, स्वतेज से जाज्वल्यमान, सर्वायुधधारी, शंकर प्रतिनिधि था। उसे देख कर देवगण ने उसे प्रणाम किया! उसे देख कर दैत्यदानव त्रस्त हो गये। देवताओं ने तब हाथ जोड़ कर कहा—।।२०-२३।।

भूत्वा मन्युमथोचुस्ते त्वं सेनानीः प्रभो भव।
त्वया दत्तमिदं राज्यं मन्यो भोक्ष्यामहे वयम्॥२४॥
तस्मात्सर्वेषु कार्येषु जेता त्वं जयवर्धनः।
त्वमिन्द्रस्त्वं च वरुणो लोकपालास्त्वमेव च॥२५॥
अस्मासु सर्वदेवेषु प्रविश त्वं जयाय वै।
मन्युः प्रोवाच तान्सर्वान्विना मत्तो न किञ्चन॥२६॥
सर्वेष्वन्तः प्रविष्टोऽहं न मां जानाति कश्चन।
स एव भगवान्मन्युस्ततो जातः पृथक्पृथक्॥२७॥
स एव रुद्ररूपी स्याद्रुद्रो मन्युः शिवोऽभवत्।
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं व्याप्तं हि मन्युना॥२८॥
तमवाप्य सुराः सर्वे जयमापुश्च सङ्गरे। जयो मन्युश्च शौर्यं च ईशतेजः समुद्भवम्॥२९॥
मन्युना जयमाप्याथ कृत्वा दैत्यैश्च सङ्गमम्। यथागतं ययुः सर्वे मन्युना परिरक्षिताः॥३०॥

देवताओं ने कहा—"हे प्रभु! आप हमारे सेनानायक बनिये। आप द्वारा प्रदत्त राज्य का हम भोग करेंगे। हे जयवर्द्धन! आप सभी कार्यों में हमारे नेता बनिये। हम लोगों के जयार्थ आप सभी देवगण के देह में प्रविष्ट हो जायें। आप ही इन्द्र, वरुण, लोकपाल आदि हो जाईये।" तब मन्यु ने उन सब से कहा—"मेरे बिना कुछ भी नहीं है। मैं ही सभी प्राणियों के अन्तः में प्रविष्ट रहता हूं। किन्तु कोई मुझे नहीं जानता।" ब्रह्मा कहते हैं—तब वही प्रभु मन्यु पृथक्-पृथक् आकार में आकारित हो गया। वही मन्यु ही रुद्ररूपी है। वही शिव है। स्थावर-जंगमादि में सर्वत्र मन्यु ही व्याप्त है। देवताओं ने उसी मन्यु को पाकर युद्ध में जय पाया। जय, मन्यु तथा शौर्य—ये ईश्वर शिव के तेज से उत्पन्न हैं। देवगण इन मन्यु से ही रक्षित हुये थे। उन्होंने दैत्यों के साथ युद्ध में जयलाभ किया। तब सभी लोग इन मन्यु के साथ अपने-अपने स्थान को चले गये।।२४-३०।।

यत्र वै गौतमीतीरे शिवमाराध्य ते सुराः। मन्युमापुर्जयं चैव मन्युतीर्थं तदुच्यते॥३१॥
उत्पत्तिं च तथा मन्योर्यो नरः प्रयतः स्मरेत्।
विजयो जायते तस्य न कैश्चित्परिभूयते॥३२॥

न मन्युतीर्थसदृशं पावनं हि महामुने। यत्र साक्षान्मन्युरूपी सर्वदा शङ्करः स्थितः।
तत्र स्नानं च दानं च स्मरणं सर्वकामदम्॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मन्युतीर्थवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः॥९३॥

देवता लोगों ने गौतमी के तट पर जहां शिवाराधन करके मन्यु को प्राप्त किया था तथा जहां विजय प्राप्त किया था, वह मन्युतीर्थ कहलाया। इन मन्यु की उत्पत्ति तथा विजय वर्णन को जो लोग एकाग्र भाव से स्मरण करते हैं, वे विजय पाते हैं। वह किसी से भी पराजित नहीं होते। हे महामुनि! मन्युतीर्थ ऐसा पावन तीर्थ अन्य नहीं है। मन्युरूपी शंकर सर्वदा जहां विराजमान रहते हैं, वहां उस तीर्थ के स्मरण, स्नान-दानादि से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।।३१-३३।।

।।द्विषष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सारस्वततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

सारस्वतं नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शुभम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
सर्वरोगप्रशमनं सर्वसिद्धिप्रदायकम्। तत्रेमं शृणु वृत्तान्तं विस्तरेणाथ नारद॥२॥
पुष्पोत्कटात्पूर्वभागे पर्वतो लोकविश्रुतः। शुभ्रो नाम गिरिश्रेष्ठो गौतम्या दक्षिणे तटे॥३॥
शाकल्य इति विख्यातो मुनिः परमनैष्ठिकः।
तस्मिञ्शुभ्रे पुण्यगिरौ तपस्तेपे ह्यनुत्तमम्॥४॥
तपस्यन्तं द्विजश्रेष्ठं गौतमीतीरमाश्रितम्। सर्वे भूतगणा नित्यं प्रणमन्ति स्तुवन्ति तम्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—सारस्वत नामक शुभ तीर्थ मनुष्यों के लिये सर्व कामनाप्रद, भुक्ति तथा मुक्ति देने वाला, सभी पापों का नाश करने वाला, सभी रोगों का प्रशमन करने वाला और सभी सिद्धियां देने वाला है। हे नारद! यह प्रसंग विस्तृत रूप से श्रवण करो। पुष्पोत्कट के पूर्वदिक् की ओर शुभ्र नाम वाला लोकप्रसिद्ध पर्वत है। यह पर्वतश्रेष्ठ गौतमी के दक्षिण तट पर विराजमान है। शाकल्य नामक प्रसिद्ध परम निष्ठा वाले एक मुनि इस पुण्यमय शुभ्र पर्वत पर अत्युत्तम तप कर रहे थे। ऋषि, गन्धर्व, देवता सेवित यह पर्वत गौतमी के

तट पर है। अग्नि सेवक (होमादि तत्पर), वेदाध्ययन परायण, तपःश्चरणरत, इन ब्राह्मणश्रेष्ठ को वहां सभी प्राणी नित्य प्रणाम करते थे। उनका वे लोग स्तव भी करते थे।।१-५।।

अग्निशुश्रूषणपरं वेदाध्ययनतत्परम्। ऋषिगन्धर्वसुमनः सेविते तत्र पर्वते॥६॥
तस्मिन्गिरौ महापुण्ये देवद्विजभयङ्करः। यज्ञद्वेषी ब्रह्महन्ता परशुर्नाम राक्षसः॥७॥
कामरूपी विचरति नानारूपधरो वने। क्षणं च ब्रह्मरूपेण कदाचिद्व्याघ्ररूपधृक्॥८॥
कदाचिद्देवरूपेण कदाचित्पशुरूपधृक्। कदाचित्प्रमदारूपः कदाचिन्मृगरूपतः॥९॥
कदाचिद्बालरूपेण एवं चरति पापकृत्।
यत्राऽऽस्ते ब्राह्मणो विद्वाञ्शाकल्यो मुनिसत्तमः॥१०॥
तमायाति महापापी परशू राक्षसाधमः। शुचिष्मन्तं द्विजश्रेष्ठं परशुर्नित्यमेव च॥११॥
नेतुं हन्तु प्रवृत्तोऽपि न शशाक स पापकृत्।
स कदाचिद्द्विजश्रेष्ठो देवानभ्यर्च्य यत्नतः॥१२॥
भोक्तुकामः किलाऽऽयातस्तत्रायात्परशुर्मुने।
ब्रह्मरूपधरो भूत्वा शिथिलः पलितोऽबली।
कन्यामादाय काञ्चिच्च शाकल्यं वाक्यमब्रवीत्॥१३॥

इस महापुण्यमय पर्वत के वनों में देवद्विज हेतु भयंकर, यज्ञ का द्वेषी, ब्रह्मघाती, परशु नामक इच्छानुरूप वेष धारण करने वाला राक्षस घूमता था। वह पापी राक्षस कभी तो ब्राह्मण वेश में, कभी व्याघ्ररूपी होकर, कभी देवता रूप में, कभी पशु रूप में, कभी स्त्री रूप में, कभी मृग रूप में, तो कभी बालक रूप में— ऐसे अनेक रूप में विचरणरत रहता था। वह महापापी राक्षसाधम परशु वहां भी आता था, जहां मुनिप्रवर शाकल्य रहते थे। वह पापी परशु अग्निसेवारत इन ब्राह्मणप्रवर का हरण करके ले जाने की चेष्टा करके भी उनके हरण में समर्थ नहीं होता था। एक बार वे ब्राह्मण यत्नतः देवताओं की पूजा अर्चना के उपरान्त भोजन करने चले आ रहे थे। उस समय यही परशु शिथिल, वृद्ध, दुर्बल ब्राह्मणरूपी होकर एक कन्या के साथ वहां आया और शाकल्य से उसने कहा—।।६-१३।।

परशुरुवाच

भोजनस्यार्थिनं विद्धि मां च कन्यामिमां द्विज।
आतिथ्यकाले सम्प्राप्तं कृतकृत्योऽसि मानद॥१४॥
त एव धन्या लोकेऽस्मिन्येषामतिथयो गृहात्।
पूर्णाभिलाषा निर्यान्ति जीवन्तोऽपि मृताः परे॥१५॥
भोजने तूपविष्टे तु आत्मार्थं कल्पितं तु यत्।
अतिथिभ्यस्तु यो दद्याद्दत्ता तेन वसुन्धरा॥१६॥

परशु दैत्य कहता है— हे ब्राह्मणप्रवर! मैं तथा यह कन्या भोजन प्रार्थी है, जो आतिथ्य काल में आये

हैं। हे मानद! आप इससे कृतार्थ हो गये। इस लोक में वे ही धन्य हैं, जिनके गृह से अतिथि पूर्ण मनोरथ होकर लौटते हैं। अन्य लोग तो जीते हुये भी मृतवत् हैं। भोजन करने बैठा जो व्यक्ति अपने लिये रखे खाद्य को अतिथिगण को प्रदान करता है, उसने तो मानों पृथिवी दान कर दिया।।१४-१६।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु शाकल्यो ददामीत्येवमब्रवीत्। आसने चोपवेश्याथाज्ञानात्तं परशुं द्विजम्॥१७॥
यथान्यायं पूजयित्वा शाकल्यो भोजनं ददौ। आपोशनं करे कृत्वा परशुर्वाक्यमब्रवीत्॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—परशु का यह कथन सुनकर शाकल्य ने कहा—"मैं अन्न प्रदान करूंगा।" उसने द्विज वेषधारी परशु को आसनासीन कराया। शाकल्य ने परशु राक्षस है, यह नहीं जाना था। अतः उसने परशु की सविधि पूजा करके भोजन प्रदान किया। परशु ने चुल्लू में जल लेकर कहा—।।१७-१८।।

परशुरुवाच

दूरादभ्यागतं श्रान्तमनुगच्छन्ति देवताः। तस्मिंस्तृप्ते तु तृप्ताः स्युरतृप्ते तु विपर्ययः॥१९॥
अतिथिश्चापवादी च द्वावेतौ विश्वबान्धवौ। अपवादी हरेत्पापमतिथिः स्वर्गसङ्क्रमः॥२०॥

अभ्यागतं पथि श्रान्तं सावज्ञं योऽभिवीक्षते।
तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशः श्रियः॥२१॥
तस्मादभ्यागतः श्रान्तो याचेऽहं त्वां द्विजोत्तम।
दास्यसे यदि मे कामं तद्भोक्ष्येऽहं न चान्यथा॥२२॥

परशु कहता है—दूर से आये, श्रान्त अतिथि का अनुगमन करते देवता आते हैं। अतिथि के तृप्त होने पर देवता की तृप्ति होती है। अतिथि के अतृप्त होने पर वे देवता अतृप्त रह जाते हैं। तब वे उलटा ही करने लगते हैं। अतिथि एवं निन्दक दोनों ही जगत् में बन्धुरूप हैं। निन्दा करने वाला जिसकी निन्दा करता है, उसके पापों का हरण कर लेता है। अतिथि भी पापहरण करके व्यक्ति को स्वर्ग प्रदान कराता है। जो अभ्यागत तथा पथ में थके मांदे व्यक्ति की अवज्ञा करता है, उसका धर्म, यश तथा उसकी श्री का नाश होना निश्चित है। हे द्विजोत्तम! इसी कारण मैं श्रान्त अभ्यागत तुमसे याचना करता हूं कि मुझे वांछित प्रदान करो। यदि मेरा वांछित प्रदान करोगे, तभी यहां भोजन करूंगा, अन्यथा भोजन ग्रहण नहीं करूंगा।।१९-२२।।

ब्रह्मोवाच

दत्तमित्येव शाकल्यो भुङ्क्ष्वेत्येवाऽऽह राक्षसम्।
ततः प्रोवाच परशुरहं राक्षससत्तमः॥२३॥
नाहं द्विजस्तव रिपुर्न वृद्धः पलितः कृशः।
बहूनि मे व्यतीतानि वर्षाणि त्वां प्रपश्यतः॥२४॥
शुष्यन्ति मम गात्राणि ग्रीष्मे स्वल्पोदकं यथा।
तस्मान्नेष्ये सानुगं त्वां भक्षयिष्ये द्विजोत्तम॥२५॥

शाकल्य कहते हैं—"मेरे पास इतना ही अन्न था, जो आपको प्रदान कर दिया।" यह सुनकर परशु ने कहा—"मैं ब्राह्मण नहीं हूं। मैं राक्षसप्रवर तथा तुम्हारा शत्रु हूं। मैं वृद्ध, कृश अथवा झुर्रीदार देह वाला नहीं हूं। तुमको देखते हुये मेरे कई वर्ष व्यतीत हो गये। जैसे ग्रीष्मकाल में अंग कुछ सूख सा जाता है, वैसे ही मेरे अंग सूख से गये हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे शिष्यों के साथ तुमको ले जाकर भक्षण करूंगा।।२३-२५।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा परशुवाक्यं तच्छाकल्यो वाक्यमब्रवीत्॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—परशु का यह वचन सुनकर शाकल्य कहने लगा—।।२६।।

शाकल्य उवाच

ये महाकुलसम्भूता विज्ञातसकलागमाः। तत्प्रतिश्रुतमभ्येति न जात्वत्र विपर्ययम्॥२७॥

यथोचितं कुरु सखे तथाऽपि शृणु मे वचः।
निहन्तुमप्युद्यतेषु वक्तव्यं हितमुत्तमैः॥२८॥
ब्राह्मणोऽहं वज्रतनुः सर्वतो रक्षको हरिः।
पादौ रक्षतु मे विष्णुः शिरो देवो जनार्दनः॥२९॥

बाहू रक्षतु वाराहः पृष्ठं रक्षतु कूर्मराट्। हृदयं रक्षतात्कृष्णो ह्यङ्गुली रक्षतान्मृगः॥३०॥

मुखं रक्षतु वागीशो नेत्रे रक्षतु पक्षिगः। श्रोत्रं रक्षतु वित्तेशः सर्वतो रक्षताद्भवः।
नानापत्त्वेकशरणं देवो नारायणः स्वयम्॥३१॥

शाकल्य कहता है—जो उत्तम कुलोत्पन्न तथा सभी आगम वेत्ता हैं, वे जो भी वचन देते हैं, वही करते हैं। कभी भी उसके विपरीत नहीं करते। तुमको जो अच्छा लगे, वही करो। तथापि मेरी एक बात सुनो। जो हत्या करने के लिये उद्यत हो, उससे भी हितप्रद वाक्य कहना चाहिये। मैं वज्रदेह ब्राह्मण हूं। हरि सर्वदा मेरे रक्षक हैं। वे सब ओर मेरी रक्षा करें। विष्णु मेरे दोनों पैरों की रक्षा करें। देवदेव जनार्दन मेरे मस्तक की रक्षा करें, वराह मेरे भुजद्वय की रक्षा करें। कृष्ण मेरे हृदय की, मृगराज नृसिंह मेरी अंगुलियों की, वागीश मेरे मुख की, पक्षिराज मेरे नेत्रद्वय की, वित्तेश मेरे कानों की, भव मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करें। देवाधिदेव नारायण सभी आपत्तियों में मुझे शरण प्रदान करें।।२७-३१।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु शाकल्यो नय वा भक्ष वा सुखम्।
मां राक्षसेन्द्र परशो त्वमिदानीमतन्द्रितः॥३२॥

राक्षसस्तस्य वचनाद्भक्षणाय समुद्यतः। नास्त्येव हृदये नूनं पापिनां करुणाकणः॥३३॥

दंष्ट्राकरालवदनो गत्वा तस्यान्तिकं तदा। ब्राह्मणं तं निरीक्ष्यैवं परशुर्वाक्यमब्रवीत्॥३४॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहने के पश्चात् शाकल्य ने राक्षस से कहा—"हे राक्षसराज परशु! अब तुम आलस्य रहित होकर मुझे ले जाओ तथा सुख पूर्वक भक्षण करो।" राक्षस यह सुनकर शाकल्य को खाने हेतु

उद्यत हो गया। पापीगण के हृदय में दया का कणमात्र भी नहीं रहता! उस भयानक दाढ़ वाले करालमुख ने जब निकट जाकर ब्राह्मण शाकल्य को देखा, तब वह कहने लगा—।।३२-३४।।

परशुरुवाच

शङ्खचक्रगदापाणिं त्वां पश्येऽहं द्विजोत्तम। सहस्रपादशिरसं सहस्राक्षकरं विभुम्॥३५॥
सर्वभूतैकनिलयं छन्दोरूपं जगन्मयम्। त्वामद्य विप्र पश्यामि नास्ति ते पूर्वकं वपुः॥३६॥
तस्मात्प्रसादये विप्र त्वमेव शरणं भव। ज्ञानं देहि महाबुद्धे तीर्थं ब्रह्मघनिष्कृतिम्॥३७॥
महतां दर्शनं ब्रह्मञ्जायते नहि निष्फलम्। द्वेषादज्ञानतो वाऽपि प्रसङ्गाद्वा प्रमादतः॥३८॥
अयसः स्पर्शसंस्पर्शो रुक्मत्वायैव जायते॥३९॥

परशु कहता है—हे द्विजोत्तम! मैं आपको शंख-चक्र-गदाधारी देख रहा हूं। हे द्विज! अब मैं आपको सहस्र चरणों वाला, सहस्र शिर, सहस्र नेत्र, सहस्र बाहु, सर्वभूत आवास (सब प्राणियों का एकमात्र निवास), छन्दोरूप, जगन्मय देख रहा हूं। हे विप्र! मैं अब आपको पूर्वरूप देहधारी नहीं देख रहा हूं। हे विप्र! अब मैं आपकी स्तुति कर रहा हूं। आप मुझे शरण दीजिये। हे महाबुद्धि! आप ज्ञान दीजिये। मुझे ऐसा तीर्थ बतायें, जहां जाने से मेरे पापों का नाश हो। हे ब्रह्मन्! द्वेष, अज्ञान, प्रसंगवशात भी, जैसे तैसे ही सही, पारस का स्पर्श लौह को स्वर्ण कर देता है। उसी प्रकार महानात्माओं का दर्शन कदापि निष्फल नहीं जाता।।३५-३९।।

ब्रह्मोवाच

एतद्वाक्यं समाकर्ण्य राक्षसेन समीरितम्। शाकल्यः कृपया प्राह वरदा सा सरस्वती॥४०॥
तवाचिराद्दैत्यपते ततः स्तुहि जनार्दनम्। मनोरथफलप्राप्तौ नान्यन्नारायणस्तुतेः॥४१॥
किञ्चिदप्यस्ति लोकेऽस्मिन्कारणं शृणु राक्षस।
प्रसन्ना तव सा देवी मद्वाक्याच्च भविष्यति॥४२॥

ब्रह्मा कहते हैं—राक्षस के कहे वाक्यों का श्रवण करके शाकल्य कृपा परवश होकर कहने लगे कि "हे दैत्यराज! यह सरस्वती तुम्हारे प्रति शीघ्र वरप्रद होंगी। वहां स्नानोपरान्त जनार्दन का स्तव करो। हे राक्षस! इस लोक में नारायण की स्तुति से बढ़ कर मनोरथ फललाभार्थ अन्य कोई भी उत्तम उपाय नहीं है। विशेषतया मेरे कहने के कारण देवी सरस्वती तुम्हारे प्रति शीघ्र प्रसन्न होंगी।।४०-४२।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स परशुर्गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्।
स्नात्वा शुचिर्यतमना गङ्गामभिमुखः स्थितः॥४३॥
तत्रापश्यद्दिव्यरूपां दिव्यगन्धानुलेपनाम्। सरस्वतीं जगद्धात्रीं शाकल्यवचने स्थिताम्॥४४॥
जगज्जाड्यहरां विश्वजननीं भुवनेश्वरीम्। तामुवाच विनीतात्मा परशुर्गतकल्मषः॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब परशु ने कहा—"ऐसा ही करूंगा।" यह कह कर उसने त्रैलोक्यपावनी गौतमी गंगा में स्नान करके शुद्ध होकर एकाग्र मन से वहां बैठने के अनन्तर देखा कि दिव्य गन्धों का

आलेपन किये दिव्यरूपा जगद्धात्री सरस्वती वहां विराजिता हैं, जैसा शाकल्य ने कहा था। तब उस निष्पाप परशु ने विनीत होकर उन जगत् के जाड्य (जड़ता) का नाश करने वाली भुवनेश्वरी विश्वजननी सरस्वती से कहा—।।४३-४५।।

परशुरुवाच

गुरुः शाकल्य इत्याह श्रीकान्तं स्तुहि विध्वजम्।
तव प्रसादात्सा शक्तिर्यथा मे स्यात्तथा कुरु॥४६॥

दैत्य परशु कहता है—गुरु शाकल्य ने मुझसे रमाकान्त गरुड़ध्वज नारायण का स्तव करने के लिये आदेश दिया था। आपकी कृपा से जिस प्रकार मुझे स्तव हेतु शक्ति प्राप्त हो, ऐसा करिये।।४६।।

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्त्विति च सा प्राह परशुं श्रीसरस्वती।
सरस्वत्याः प्रसादेन परशुस्तं जनार्दनम्॥४७॥
तुष्टाव विविधैर्वाक्यैस्ततस्तुष्टोभवद्धरिः। वरं प्रादाद्राक्षसाय कृपासिन्धुर्जनार्दनः॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब श्रीसरस्वती ने परशु से कहा—ऐसा ही हो'' सरस्वती की कृपा से परशु ने अनेक वाक्यों से जनार्दन का स्तव किया। इससे श्रीहरि ने उसके प्रति प्रसन्न होकर राक्षस को वरदान दिया। श्रीहरि कृपासागर जो हैं।।४७-४८।।

जनार्दन उवाच

यद्यन्मनोगतं रक्षस्तत्तत्सर्वं भविष्यति॥४९॥

श्रीहरि कहते हैं—हे राक्षस! तुम्हारी सभी कामनायें पूर्ण होंगी।।४९।।

ब्रह्मोवाच

शाकल्यस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः। सरस्वत्याः प्रसादेन नरसिंहप्रसादतः॥५०॥
पापिष्ठोऽपि तदा रक्षः परशुर्दिवमेयिवान्।
सर्वतीर्थङ्घ्रिपद्मस्य प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वनः॥५१॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं सारस्वतमिति श्रुतम्। तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोके महीयते॥५२॥
वाग्जवैष्णवशाकल्यपरशुप्रभवाणि हि। बहून्यभूवंस्तीर्थानि तस्मिन्वै श्वेतपर्वते॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये श्वेतपर्वतस्थशाकल्यादितीर्थवर्णनं
नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह परशु पापी राक्षस था। तथापि वह शाकल्य, गौतमी सरस्वती एवं नृसिंह देव के

प्रभाव से तथा कृपा से एवं उन शार्ङ्गपाणि की कृपा से स्वर्ग गया, जिनके चरणद्वय में समस्त तीर्थ विराजमान हैं। तभी से यह तीर्थ सारस्वततीर्थ कहलाया। यहां स्नान-दान द्वारा विष्णुलोक प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति वहां सम्मानित होता है। यहीं श्वेत पर्वत पर सारस्वत, वैष्णव, शाकल्य, परशु आदि अनेक श्रेष्ठ तीर्थ विद्यमान हैं।।५०-५३।।

।।त्रिषष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

चिच्चिकतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

चिच्चिका (क) तीर्थमित्युक्तं सर्वरोगविनाशनम्।
सर्वचिन्ताप्रहरणं सर्वशान्तिकरं नृणाम्॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शुभ्रे तस्मिन्नगोत्तमे। गङ्गाया उत्तरे पारे यत्र देवो गदाधरः॥२॥
चिच्चिकः पक्षिराट् तत्र भेरुण्डो योऽभिधीयते।
सदा वसति तत्रैव मांसाशी श्वेतपर्वते॥३॥
नानापुष्पफलाकीर्णैः सर्वर्तुकुसुमैर्नगैः। सेविते द्विजमुख्यैश्च गौतम्या चोपशोभिते॥४॥
सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरामरसङ्कुले। तत्समीपे नगः कश्चिद्द्विपदां च चतुष्पदाम्॥५॥
रोगार्तिक्षुत्तृषाचिन्तामरणानां न भाजनम्। एवं गुणान्विते शैले नानामुनिगणावृते॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—चिच्चिकातीर्थ सर्व रोग निवारण के लिये प्रसिद्ध है। यह मनुष्यों की सभी चिन्ताओं का हरण करता है तथा सब प्रकार की शान्ति प्रदान करता है। मैं अब उसका स्वरूप वर्णन करता हूं। श्वेत पर्वतराज गंगा के उत्तर तट पर विराजमान हैं। यहां देव गदाधर विराजित रहते हैं। यहीं चिंचिक पक्षिराज निवास करता था। वह सदा श्वेत पर्वत निवासी तथा मांसाहार करने वाला था। उसे भेरुण्ड भी कहते थे। वह पर्वत अनेक प्रकार के पुष्प-फलों से भरा-पूरा, सभी ऋतुओं के पुष्प से सज्जित था। वह वृक्षों, ब्राह्मणों तथा गौतमी नदी से भी शोभायमान था। वह सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर तथा देवताओं से भरा था। पास में ही एक वृक्ष था। वहां जाने पर द्विपद (मनुष्यादि) तथा चतुष्पद (पशुगण) को रोग, दुःख, क्षुधा-पिपासा, चिन्ता अथवा मृत्युभय स्पर्श भी नहीं कर सकता था। ऐसा गुणयुक्त वह पर्वत नाना मुनियों से परिवृत था।।१-६।।

पूर्वदेशाधिपः कश्चित्पवमान इति श्रुतः। क्षत्रधर्मरतः श्रीमान्देवब्राह्मणपालकः॥७॥
बलेन महता युक्तः सपुरोधा वनं ययौ। रेमे स्त्रीभिर्मनोज्ञाभिर्नृत्यवादित्रजैः सुखैः॥८॥

कोई पूर्वदेश का स्वामी पवमान राजा क्षात्रधर्मनिरत, श्रीमान् ब्राह्मण-देवता पालक था। वह एक बार महती सेना तथा पुरोहित के साथ वन में गया। राजा वहां मनोहारी रमणियों के साथ नृत्य-वाद्यादि प्रभृति सुखों का अनुभव करता घूमने लगा।।७-८।।

स च एवं धनुष्पाणिर्मृगयाशीलिभिर्वृतः। एवं भ्रमन्कदाचित्स श्रान्तो द्रुममुपागतः॥९॥
गौतमीतीरसम्भूतं नानापक्षिगणैर्वृतम्। आश्रमाणां गृहपतिं धर्मज्ञमिव सेवितम्॥१०॥
तामाश्रित्य नगश्रेष्ठं पवमानो नृपोत्तमः। स विश्रान्तो जनवृत ईक्षां चक्रे नगोत्तमम्॥११॥
तत्रापश्यद्द्विजं स्थूलं द्विमुखं शोभनाकृतिम्।
चिन्ताविष्टं तथा श्रान्तं तमपृच्छन्नृपोत्तमः॥१२॥

इस प्रकार राजा मृगया में रत परिजनों के साथ होकर तथा धनुर्बाण लेकर भ्रमण करते-करते एक बार थक कर गौतमी तीर पर स्थित आश्रमसमूह के गृहपति के समान प्रतीयमान, नाना पक्षियों से समावृत तथा धर्मज्ञ के समान सेवित एक वृक्ष के पास पहुंचा। उस वृक्ष की छाया में आकर वह नृपप्रवर पवमान अपने अनुचरों के साथ विश्रान्त हो गया तथा उसने उस पर्वत की ओर दृष्टिपात किया। तब राजा ने उस पर्वत पर विश्रान्त, स्थूलाकृति तथा मनोहराकृति द्विमुखी पक्षी को देखा। वह श्रान्त एवं चिन्तातुर था। उन राजा ने तब उस पक्षी से प्रश्न किया।।९-१२।।

राजोवाच

को भवान्द्विमुखः पक्षी चिन्तावानिव लक्ष्यसे।
नैवात्र कश्चिद्दुःखार्तः कस्मात्त्वं दुःखमागतः॥१३॥

राजा कहते हैं—तुम कौन हो? तुम तो चिन्तित परिलक्षित हो रहे हो। यहां तो कोई दुःखी नहीं दिखलाई देता। तुम क्यों दुःखी हो?।।१३।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच नृपतिं पवमानं शनैः शनैः।
समाश्वस्तमनाः पक्षी चिच्चिको निःश्वसन्मुहु॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर चिच्चिक पक्षी बारम्बार निःश्वास त्याग करते हुये तथा कुछ संयत होकर राजा पवमान को उत्तर देने लगा।।१४।।

चिच्चिक उवाच

मत्तो भयं न चान्येषां मम वाऽन्योपपादितम्।
नानापुष्पफलाकीर्णं मुनिभिः परिसेवितम्॥१५॥
पश्येयं शून्यमेवाद्रिं ततः शोचामि मामहम्।
न लभामि सुखं किञ्चिन्न तृप्यामि कदाचन।
निद्रां प्राप्नोमि न क्वापि न विश्रान्तिं न निर्वृतिम्॥१६॥

चिच्चिक पक्षी कहता है—मुझसे किसी को भय नहीं है, तथापि मुझे भी किसी का भय नहीं लगता। तथापि नाना पुष्पों-फलों से भरा मानवजन सेवित यह पर्वत मुझे शून्य सा प्रतीत होता है। अतः मैं स्वयं अपने लिये शोक करता रहता हूं। कभी भी तनिक भी तृप्ति नहीं होती। तनिक भी सुख नहीं मिलता। निद्रा-विश्राम तथा शान्ति भी नहीं मिल पाती!।।१५-१६।।

ब्रह्मोवाच

द्विमुखस्य द्विजस्योक्तं श्रुत्वा राजाऽतिविस्मितः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस द्विमुखी पक्षी का कथन सुनकर राजा चकित हो गया।।१७।।

राजोवाच

को भवान्किं कृतं पापं कस्माच्छून्यश्च पर्वतः।
एकेनाऽऽस्येन तृप्यन्ति प्राणिनोऽत्र नगोत्तमे॥१८॥
किमुताऽऽस्यद्वयेन त्वं न तृप्तिमुपयास्यसि।
किंवा ते दुष्कृतं प्राप्तमिह जन्मन्यथो पुरा॥१९॥
तत्सर्वं शंस मे सत्यं त्रास्ये त्वां महतो भयात्॥२०॥

राजा कहता है—आप कौन हैं? आपने कौन सा पातक किया था? पर्वत शून्यवत् क्यों लगता है? यहां पर प्राणीगण तो एक मुख से ही तृप्त हो जाते हैं, आप दो मुख होते हुये भी तृप्त क्यों नहीं हैं? क्या आपने इस जन्म में अथवा पूर्वजन्म में कोई दुष्कर्म किया है? यह सब मुझसे सत्य कहिये। मैं आपको इस महाभय से त्राण दिला दूंगा!।।१८-२०।।

ब्रह्मोवाच

राजानं तं द्विजः प्राह निःश्वसन्नथ चिच्चिकः॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर उस चिच्चिक पक्षी ने दीर्घ निःश्वास के साथ कहा—।।२१।।

चिच्चिक उवाच

वक्ष्येऽहं त्वां पूर्ववृत्तं पवमान शृणुष्व तत्। अहं द्विजातिप्रवरो वेदवेदाङ्गपारगः॥२२॥
कुलीनो विदितप्राज्ञः कार्यहन्ता कलिप्रियः।
वदे पुरस्तथा पृष्ठे अन्यदन्यच्च जन्तुषु॥२३॥
परवृद्ध्या सदा दुःखी मायया विश्ववञ्चकः।
कृतघ्नः सत्यरहितः परनिन्दाविचक्षणः॥२४॥
मित्रस्वामिगुरुद्रोही दम्भाचारोऽतिनिर्घृणः।
मनसा कर्मणा वाचा तापयामि जनान्बहून्॥२५॥
अयमेव विनोदो मे सदा यत्परहिंसनम्। युग्मभेदं गणोच्छेदं मर्यादाभेदनं सदा॥२६॥

करोमि निर्विचारोऽहं विद्वत्सेवापराङ्मुखः।
न मया सदृशः कश्चित्पातकी भुवनत्रये॥२७॥
तेनाहं द्विमुखो जातस्तापनाद्दुःखभाग्यहम्।
तस्माद्दुःखेन सन्तप्तः शून्योऽयं पर्वतो मम॥२८॥

चिच्चिक कहता है—हे पवमान! मैं आपसे पूर्व वृत्तान्त कहता हूं। श्रवण करें। मैं पूर्व में श्रेष्ठ ब्राह्मण था। वेद-वेदान्त तत्वज्ञ, कुलीन तथा पण्डित के रूप में विख्यात था। तथापि मैं लोगों के कार्य को नष्ट करने वाला, विवादप्रिय तथा परस्त्री के लिये सदा तत्पर, पीठ पीछे अलग बात करने वाला, लेकिन मुंह पर प्रिय बोलने वाला, एक की बात दूसरे पर प्रकट करने वाला, कपट पूर्वक लोगों को ठगने वाला, कृतघ्न, सत्यरहित, मित्र-स्वामी एवं गुरु से द्रोह करने वाला, दम्भाचार परायण, अत्यन्त घृणित कार्य करने वाला, मन-वाणी-कर्म से लोगों को कष्ट देने वाला था। मेरा यह विनोद कार्य था, अन्य को कष्ट देना। मैं विद्वानों से विमुख रहने वाला, लोगों में फूट-वैर उत्पन्न कराने वाला, समाज में पारस्परिक भेद का कार्य करने वाला, मर्यादा त्याग देने वाला था। संक्षेप में मेरे समान पापी तीनों लोकों में उस समय नहीं था। इसी कारण मैं द्विमुखी पक्षी हूं। अन्य को पीड़ा देने के कारण (इस जन्म में) सदा दुःखी रहता हूं। तभी मुझे यह पर्वत शून्य लगता है।।२२-२८।।

अन्यच्च शृणु भूपाल वाक्यं धर्मार्थसंहितम्। ब्रह्महत्यासमं पापं तद्विना तदवाप्यते॥२९॥
क्षत्रियः सङ्गरं गत्वा अथवाऽन्यत्र सङ्गरात्।
पलायन्तं नयस्तशस्त्रं विश्वस्तं च पराङ्मुखम्॥३०॥
अविजातं चोपविष्टं बिभेमीति च वादिनम्।
तं यदि क्षत्रियो हन्यात्स तु स्याद्ब्रह्मघातकः॥३१॥
अधीतं विस्मरति यस्त्वं करोति तथोत्तमम्। अनादरं च गुरुषु तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥३२॥
प्रत्यक्षे च प्रियं वक्ति परोक्षे परुषाणि च।
अन्यद्धृदि वचस्यन्यत्करोत्यन्यत्सदैव यः॥३३॥
गुरूणां शपथं कर्त्ता द्वेष्टा ब्राह्मणनिन्दकः।
मिथ्या विनीतः पापात्मा स तु स्याद्ब्रह्मघातकः॥३४॥

हे राजन्! अब धर्म-अर्थ समन्वित अन्य वाक्य सुनें। ब्रह्महत्या के अतिरिक्त भी अनेक ऐसे पाप हैं, जिनसे भी ब्रह्महत्या इतना पातक लगता है। यदि क्षत्रिय व्यक्ति युद्ध में किंवा अन्यत्र भागते हुये, शस्त्र त्यागे हुये, विश्वस्त, युद्ध से विमुख, अपरिचित, आसनासीन, 'मैं भयभीत हूं' कहने वाले की हत्या करता है, तब वह भी ब्रह्महत्यारा ही है। जो पठित शास्त्र को भूल जाये, श्रेष्ठ तथा उत्कृष्ट व्यक्ति को "तुम" कहे, गुरुजन का आदर न करे, वह भी ब्रह्मघाती है। हृदय में कुछ है, वाणी में कुछ है, कार्य में कुछ है तथा जो सामने प्रिय बोले, पीठ पीछे अप्रिय (निन्दापूर्ण) बोले, जो गुरुजन का नाम लेकर कसम खाये, जो द्वेष करने वाला, ब्राह्मण की निन्दा करने वाला, नकली विजयी बने तथा पापी हो, वह सब ब्रह्मघाती हैं।।२९-३४।।

देवं देवमथाध्यात्मं धर्मब्राह्मणसङ्गतिम्। एतान्निन्दति यो द्वेषात्स तु स्याद्ब्रह्मघातकः॥३५॥
एवं भूतोऽप्यहं राजन्दम्भार्थं लज्जया तथा। सद्वृत्त इव वर्तेऽहं तस्माद्राजन्द्विजोऽभवम्॥३६॥
एवं भूतोऽपि सत्कर्म किञ्चित्कर्ताऽस्मि कुत्रचित्।
तेनाहं कर्मणा राजन्स्वतः स्मर्ता पुरा कृतम्॥३७॥

जो मनुष्य देवता, वेद, अध्यात्म, धर्म, ब्राह्मणों के साथ की निन्दा द्वेषवशात् करे, वह भी ब्रह्मघाती है। मैं तो ऐसा ही था, परन्तु दिखावे के लिये तथा लोकलाज के कारण ऊपर से सदाचारी बनने का दम्भ करता था। इन पापों के कारण मुझे पक्षी योनि मिली है। तथापि उस समय मैंने यदा-कदा कुछ सत्कर्म भी किये थे, हे राजन्! उस पुण्यफल के कारण मुझे पूर्वजन्म की स्मृति अक्षुण्ण बनी है।।३५-३७।।

ब्रह्मोवाच

तच्चिच्चिकवचःश्रुत्वा पवमानः सुविस्मितः।
कर्मणा केन ते मुक्तिरित्याह नृपतिर्द्विजम्॥३८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपतिं प्राह पक्षिराट्॥३९॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा पवमान चिच्चिक पक्षी का कथन सुनकर विस्मयान्वित हो गये। उन्होंने पक्षी से पूछा कि किस कर्म द्वारा वह मुक्त हो सकेगा? तब वह पक्षीराज कहने लगा—।।३८-३९।।

चिच्चिक उवाच

अस्मिन्नेव नगश्रेष्ठे गौतम्या उत्तरे तटे। गदाधरं नाम तीर्थं तत्र मां नय सुव्रत॥४०॥
तद्धि तीर्थं पुण्यतमं सर्वपापप्रणाशनम्। सर्वकामप्रदं चेति महद्भिर्मुनिभिः श्रुतम्॥४१॥
न गौतम्यास्तथा विष्णोरपरं क्लेशनाशनम्।
सर्वभावेन तत्तीर्थं पश्येयमिति मे मतिः॥४२॥
मत्कृतेन प्रयत्नेन नैतच्छक्यं कदाचन। कथमाकाङ्क्षितप्राप्तिर्भवेद्दुष्कृतकर्मणाम्॥४३॥
सप्रयत्नोऽप्यहं वीर न पश्ये तत्सुदुष्करम्।
तस्मात्तव प्रसादाच्च पश्येयं हि गदाधरम्॥४४॥
अविज्ञापितदुःखज्ञं करुणावरुणालयम्। यस्मिन्दृष्टे भवक्लेशा न दृश्यन्ते पुनर्नरैः॥४५॥
दृष्ट्वैव तं दिवं यास्ये प्रसादात्तव सुव्रत॥४६॥

चिच्चिक कहता है—हे सुव्रत! गौतमी के उत्तर तट स्थित इस पर्वत पर गदाधरतीर्थ है। मुझे वहां पर ले चलिये। वह पुण्यतम तीर्थ सर्वपापनाशक तथा सर्वकामप्रद है। महामुनिगण का यह कथन है कि गौतमी तथा विष्णु से बढ़ कर क्लेशहारी कोई नहीं है। मैं सर्वतोभावेन उस तीर्थ का दर्शन करूंगा। यही मेरी इच्छा है। तथापि मेरे द्वारा कृत यह प्रयास कभी सफल नहीं होगा, क्योंकि दुष्कर्म करने वालों को आकांक्षित की प्राप्ति कैसे हो सकेगी? मैं इस सम्बन्ध में प्रयत्नशील होने पर भी इस कार्य को दुष्कर मानता हूं। अतः आपकी कृपा से गदाधर का दर्शन मिलने की आशा है। हे सुव्रत! जिनका दर्शन करने पर मनुष्यों को

संसारक्लेश अब नहीं सहना पड़ेगा, उन करुणावरुणालय गदाधर देव का दर्शन आपकी कृपा से पाकर स्वर्ग जा सकूंगा।।४०-४६।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः स नृपतिश्चिच्चिकेन द्विजन्मना।
दर्शयामास तं देवं तां च गङ्गां द्विजन्मने॥४७॥
ततः स चिच्चिकः स्नात्वा (प्राह) गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—चिच्चिक का यह वाक्य सुनकर राजा पवमान ने उस पक्षी को गदाधर देव तथा गौतमी गंगा का दर्शन कराया। वह चिच्चिक पक्षी वहां स्नान करके त्रैलोक्य पावनी गंगा से कहने लगा—।।४७-४८।।

चिच्चिक उवाच

गङ्गे गौतमि यावत्त्वां त्रिजगत्पावनीं नरः।
न पश्यत्युच्यते तावदिहामुत्रापि पातकी॥४९॥
तस्मात्सर्वागसमपि मामुद्धर सरिद्वरे। संसारे देहिनामन्या न गतिः काऽपि कुत्रचित्।
त्वां विना विष्णुचरणसरोरुहसमुद्भवे॥५०॥

चिच्चिक कहता है—हे गंगे गौतमी! मनुष्य जब तक प्रियजगतपावनी आपका दर्शन नहीं करता, तब तक उसे लोकों तथा परलोक में पातकी कहा जाता है। हे सरितश्रेष्ठा! मैं सभी अपराधों का अपराधी हूं। मेरा उद्धार करिये। हे विष्णु चरण कमल से प्रकट होने वाली! संसार में आपके अतिरिक्त देहधारियों की अन्य कोई गति ही नहीं है।।४९-५०।।

इति श्रद्धाविशुद्धात्मा गङ्गैकशरणो द्विजः।
स्नानं चक्रे स्मरन्नन्तर्गङ्गे त्रायस्व मामिति॥५१॥

यह कहकर श्रद्धा से विशुद्ध आत्मा वाले पक्षी ने कहा—"हे गंगे! रक्षा करिये" तथा गंगा-गौतमी में स्नान किया।।५१।।

ब्रह्मोवाच

गदाधरं ततो नत्वा पश्यत्सु नगवासिषु। पवमानाभ्यनुज्ञातस्तदैव दिवमाक्रमत्॥५२॥
पवमानः स्वनगरं प्रययौ सानुगस्ततः। ततः प्रभृति तत्तीर्थं पावमानं सचिच्चिकम्॥५३॥
गदाधरं कोटितीर्थमिति वेदविदो विदुः। कोटिकोटिगुणं कर्म कृतं तत्र भवेन्नृणाम्॥५४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पावमानचिच्चिकगदाधरकोटितीर्थवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६४।।

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः।।९५।।

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् उस पक्षी ने गदाधर का दर्शन किया तथा राजा पवमान से आज्ञा लेकर समस्त नगरवासीगण के देखते-देखते द्युलोक प्रस्थान किया। तदनन्तर राजा पवमान अपने अनुचर वर्ग के साथ अपने नगर वापस आ गया। तभी से यह तीर्थ पावमान, चिच्चिक, गंगाधर, कोटितीर्थ आदि नाम से प्रसिद्ध हो गया। मनुष्यों द्वारा यहां जो कोई कर्म किया जाता है, वह कोटि-कोटि गुणित फलप्रद हो जाता है।।५१-५४।।

।।चतुःषष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भद्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

भद्रतीर्थमिति प्रोक्तं सर्वानिष्टनिवारणम्। सर्वपापप्रशमनं महाशान्तिप्रदायकम्॥१॥
आदित्यस्य प्रिया भार्या उषा त्वाष्ट्री पतिव्रता।
छायाऽपि भार्या सवितुस्तस्याः पुत्रः शनैश्चरः॥२॥
तस्य स्वसा विष्टिरिति भीषणा पापरूपिणी।
तां कन्यां सविता कस्मै ददामीति मतिं दधे॥३॥
यस्मै यस्मै दातुकामः सूर्यो लोकगुरुः प्रभुः।
तच्छ्रुत्वा भीषणा चेति किं कुर्मो भार्ययाऽनया॥४॥
एवं तु वर्तमाने सा पितरं प्राह दुःखिता॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—भद्रतीर्थ नामक जो प्रसिद्ध तीर्थ है, वह समस्त अनिष्ट विनाशक तथा महाशक्तिदायक है। आदित्य की दो पत्नियां थीं। प्रथम भार्या थीं त्वष्टा की पुत्री पतिव्रता ऊषा। द्वितीया पत्नी थीं छाया। ऊषा अपने पति की प्रिया थीं। छाया के पुत्र थे शनैश्चर। शनैश्चर की बहन थी भीषणा। भीषणा थीं पापरूपा विष्टि। सूर्यदेव यह चिन्ता करने लगे कि विष्टि को किसे प्रदान करूं। लोकगुरु प्रभु सूर्य ने जिसे भी यह कन्या देने हेतु इच्छा किया, वही व्यक्ति उसे भीषणा जानकर "इसका क्या करूंगा?" यह कहकर उनकी बात से मना कर दिया। अतः यह जानकर विष्टि ने एक दिन पिता सूर्य से कहा—।।१-५।।

विष्टिरुवाच

बालामेव पिता यस्तु दद्यात्कन्यां सुरूपिणे। स कृतार्थो भवेल्लोके न चेद्दुष्कृतवान्पिता॥६॥
चतुर्थाद्वत्सरादूर्ध्वं यावन्न दशमात्ययः। तावद्विवाहः कन्यायाः पित्रा कार्यः प्रयत्नतः॥७॥
श्रीमते विदुषे यूने कुलीनाय यशस्विने। उदाराय सनाथाय कन्या देया वराय वै॥८॥
एतच्चेदन्यथा कुर्यात्पिता स निरयी सदा। धर्मस्य साधनं कन्या विदुषामपि भास्कर॥९॥

नरकस्येव मूर्खाणां कामोपहतचेतसाम्। एकतः पृथिवी कृत्स्ना सशैलवनकानना॥१०॥
स्वलङ्कृतोपाधिहीना सुकन्या चैकतः स्मृता।
विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गां तिलानपि॥११॥

विष्टि कहती है—जो पिता बाल्यावस्था में ही सुरूप पात्र को कन्या प्रदान करता है, वही इस लोक में कृतार्थ है। अन्यथा पिता दुष्कृति कहा जाता है। चतुर्थ वर्ष से लेकर जब तक दशम वर्ष की आयु (कन्या की) व्यतीत नहीं हो जाती, तब तक इस काल के बीच में ही कन्या का विवाह कर देना पिता का कर्त्तव्य है। श्रीमान्, विद्वान्, युवा, कुलीन, यशस्वी, उदार, अभिभावकवान, पात्र को ही कन्या प्रदान करना पिता का कर्त्तव्य है। जो एतद्विपरीत कार्य करता है, वह सर्वदा नरकगामी हो जाता है। हे भास्कर! विद्वान् मनुष्य हेतु कन्या धर्म का साधन है, लेकिन काम से दग्ध लोगों के लिये, इन मूर्खों के लिये, वह नरक की हेतुरूपा है। एक ओर शैल-वन-कानन समन्विता पृथिवी है तो दूसरी ओर उत्तम अलंकृता रोगहीना सुकन्या है। ये दोनों बराबर, एक तुल्य कथित हैं। जो मनुष्य कन्या, अश्व, गौ तथा तिल का विक्रय करता है।।६-११।।

न तस्य रौरवादिभ्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत्।
विवाहातिक्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन॥१२॥
तस्मिन्कृते यत्पितुः स्यात्पापं तत्केन कथ्यते।
यावल्लज्जां न जानाति यावत्क्रीडति पांशुभिः॥१३॥
तावत्कन्या प्रदातव्या नो चेत्पित्रोरधोगतिः।
पितुः स्वरूपं पुत्रः स्याद्यः पिता पुत्र एव सः॥१४॥
आत्मनः सुखितां लोके को न कुर्यात्करोति च।
यत्कन्यायां पिता कुर्याद्दानं पूजनमीक्षणम्॥१५॥

वह कभी भी रौरव नरक से छुटकारा नहीं पाता। कन्या के विवाह की उम्र का कदापि अतिक्रमण न करे। ऐसा करने से जो पाप होगा, उसे कौन कह सकेगा? जब तक कन्या को लज्जा का अनुभव नहीं होता, जब तक वह धूल में खेलती रहती है, उसी बीच कन्या प्रदान करे। अन्यथा पिता-माता की अधोगति होती है। पिता का स्वरूप पुत्र ही है। जो पिता है, वही पुत्र है। इस संसार में कौन अपना सुखी जीवन नहीं चाहता अथवा नहीं करता? पिता कन्या के लिये जो दान, पूजा, नाना स्थान दर्शन (वर खोजना) करता है, वही वास्तव में सत्कार्य कहा गया है।।१२-१५।।

यत्कृतं तत्कृतं विद्यात्तासु दत्तं तदक्षयम्। यद्दत्तं तासु कन्यासु तदानन्त्याय कल्पते॥१६॥
पुत्रेषु चैव पौत्रेषु को न कुर्यात्सुखं रवे।
करोतिः य कन्यकानां स सम्पद्भाजनं भवेत्॥१७॥

कन्या हेतु जो प्रदान किया जाता है, वही अक्षय दान है। जो कन्या हेतु प्रदत्त होता है, वह अनन्त फलप्रद है। हे सूर्य! पुत्र-पौत्रादि के सुखार्थ कौन प्रयत्नरत नहीं होता। तथापि जो कन्या के सुख हेतु प्रयत्नशील है, वही सम्पत्तियुक्त होता है।।१६-१७।।

ब्रह्मोवाच

एवं तां वादिनीं कन्यां विष्टिं प्रोवाच भास्करः॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब कन्या ने ऐसा कहा तथा कन्या विष्टि से भास्कर कहने लगे।।१८।।

सूर्य उवाच

किं करोमि न गृह्णाति त्वां कश्चिद् भीषणाकृतिम्।
कुलं रूपं वयो वित्तं विद्यां वृत्तं सुशीलताम्॥१९॥
मिथः पश्यन्ति सम्बन्धे विवाहे स्त्रीषु पुंसु च।
अस्मासु सर्वमप्यस्ति विना तव गुणैः शुभे।
किं करोमि क्व दास्यामि वृथा मां धिक्करोषि किम्॥२०॥

सूर्यदेव कहते हैं—क्या करूं? तुम भीषणाकृति हो, तुमको कोई लेना नहीं चाहता? विवाह सम्बन्धकाल में सभी लोग परस्परतः कन्या तथा वर दोनों का कुल, शील, आयु, धन, विद्या तथा व्यवहार को देखते हैं। हे शुभे! हममें सब कुछ है, तथापि तुममें गुण है ही नहीं। इस अवस्था में मैं क्या करूं, तुमको किसे प्रदान करूं? तुम मुझे क्यों धिक्कार रही हो?।।१९-२०।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा पुनस्तां च विष्टिं प्रोवाच भास्करः॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहने के उपरान्त भास्करदेव ने पुनः विष्टि से कहा—।।२१।।

सूर्य उवाच

यस्मै कस्मै च दातव्या त्वं वै यद्यनुमन्यसे।
दीयसेऽद्य मया विष्टे अनुजानीहि मां ततः॥२२॥

सूर्य कहते हैं—हे विष्टि! तुम जिसके लिये अपनी अनुमति प्रदान करोगी, मैं उसे ही तुमको दे दूंगा।।२२।।

ब्रह्मोवाच

पितरं प्राह सा विष्टिर्भर्ता पुत्रा धनं सुखम्। आयू रूपं च सम्प्रीतिर्जायते प्राक्तनानुगम्॥२३॥
यत्पुरा विहितं कर्म प्राणिना साध्वसाधु वा। फलं तदनुरोधेन प्राप्यतेऽपि भवान्तरे॥२४॥
स्वदोष एव तत्पित्रा परिहर्तव्य आदरात्। तादृगेव फलं तु स्याद्यादृगाचरितं पुरा॥२५॥
तस्मात्तद्दानसम्बन्धं स्ववंशानुगतं पिता। करोति शेषं दैवेन यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर विष्टि ने कहा—"पति, पुत्र, धन, सुख, आयु, रूप सम्प्रति आदि प्राक्तन कर्म के अनुरूप होते हैं। प्राणीगण पूर्वजन्मादि में अच्छे, बुरे जो कर्म किये रहते हैं, वे आगामी जन्म में तदनुरूप फल पाते हैं। अतः पिता को चाहिये कि वह सम्यक् रूप से अपने दोषों को दूर करे। उसे तो वही

फल मिलेगा, जैसा उसने पूर्वजन्म में किया था। अतः पिता अपने वंश के अनुरूप कन्यादान का सम्बन्ध करे। बाकी जो दैव ने निश्चित किया है, वह तो होना ही है।।२३-२६।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा दुहितुर्वाक्यं त्वष्टुः पुत्राय भीषणाम्। विश्वरूपाय तां प्रादाद्विष्टिं लोकभयङ्करीम्॥२७॥
विश्वरूपोऽपि तद्वच्च भीषणो भीषणाकृतिः। एवं मिथः सञ्चरतोः शीलरूपसमानयोः॥२८॥
प्रीतिः कदाचिद्वैषम्यं दम्पत्योरभवन्मिथः। गण्डो नामाभवत्पुत्रो ह्यतिगण्डस्तथैव च॥२९॥
रक्ताक्षः क्रोधनश्चैव व्ययो दुर्मुख एव च। तेभ्यः कनीयानभवद्धर्षणो नाम पुण्यभाक्॥३०॥
सुतः सुशीलः सुभगः शान्तः शुद्धमतिः शुचिः। स कदाचिद्यमगृहं द्रष्टुं मातुलमभ्यगात्॥३१॥
स ददर्श बहूञ्जन्तून्स्वर्गस्थानिव दुःखिनः। स मातुलं तु पप्रच्छ नत्वा धर्मं सनातनम्॥३२॥

ब्रह्मा कहते हैं—सूर्य ने कन्या का यह कथन सुनकर त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को यह लोकभयकारी कन्या विष्टि प्रदान कर दिया। ये विश्वरूप भी उसी की तरह भीषण थे एवं वैसी ही भयानक आकृति वाले थे। समान शील एवं रूप वाले होने के कारण उनका दाम्पत्य जीवन तो कुछ समय परस्पतः ठीक चला, लेकिन कुछ काल के उपरान्त दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध में विषमता आ गयी। इस दम्पति के गण्ड, अतिगण्ड, रक्ताक्ष, क्रोधन, व्यय, दुर्मुख तथा हर्षण नामक पुत्र जन्मे। इनमें से कनिष्ठ पुत्र हर्षण पुण्यात्मा, सुशील, सुभग, शान्त, पवित्र तथा शुद्धमति था। वह एक बार मामा यमराज से मिलने यमलोक पहुंचा। वहां उसने अनेक लोगों को स्वर्गसुखोपभोग करते तथा अनेक को अत्यन्त दुःखभोगी देखा। तब उसने यमराज को प्रणामोपरान्त उनसे प्रश्न किया।।२७-३२।।

हर्षण उवाच

क इमे सुखिनस्तात पच्यन्ते नरके च के॥३३॥

हर्षण कहता है—हे तात! ये सुखी प्राणी कौन हैं? जो दुःखी नरक यन्त्रणा भागी हैं, वे प्राणी कौन हैं?।।३३।।

ब्रह्मोवाच

एवं पृष्टो धर्मराजः सर्वं प्राह यथार्थवत्। तत्कर्मणां गतिं सर्वामशेषेण न्यवेदयत्॥३४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हर्षण का प्रश्न सुनकर धर्मराज ने उन सबकी कर्मगति का वर्णन यथायथ रूप से किया।।३४।।

यम उवाच

विहितस्य न कुर्वन्ति ये कदाचिदतिक्रमम्।
न ते पश्यन्ति निरयं कदाचिदपि मानवाः॥३५॥
न मानयन्ति ये शास्त्रं नाऽऽचारं न बहुश्रुतान्।
विहितातिक्रमं कुर्युर्ये ते नरकगामिनः॥३६॥

यमराज कहते हैं—जो विहित कर्म का कभी त्याग नहीं करते, वे कदापि नरकदर्शन नहीं करते। जो शास्त्रों को नहीं मानते, आचार पालन नहीं करते, किंवा विद्वानों का सम्मान नहीं करते, विहित कर्मों का व्यतिक्रम, उल्लंघन करते हैं, वे नरक गमन करते हैं।।३५-३६।।

ब्रह्मोवाच

स तु श्रुत्वा धर्मवाक्यं हर्षणः पुनरब्रवीत्॥३७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हर्षण ने धर्म का कथन सुनकर पुनः उनसे कहा—।।३७।।

हर्षण उवाच

पिता त्वाष्ट्रो भीषणाश्च माता विष्टिश्च भीषणा। भ्रातरश्च महात्मनो येन ते शान्तबुद्धयः॥३८॥

सुरूपाश्च भविष्यन्ति निर्दोषा मङ्गलप्रदाः। तन्मे कर्म वदस्वाद्य तत्कर्ताऽस्मि सुरोत्तम॥३९॥

अन्यथा तान्न गच्छेयमित्युक्तः प्राह धर्मराट्।
हर्षणं शुद्धबुद्धिं तं हर्षणोऽसि न संशयः॥४०॥
बहवः स्युः सुताः केचिन्नैव ते कुलतन्तवः।
एक एव सुतः कश्चिद्येन तद्ध्रियते कुलम्॥४१॥
कुलस्याऽऽधारभूतो यो यः पित्रोः प्रियकारकः।
यः पूर्वजानुद्धरति स पुत्रस्त्वितरो गदः॥४२॥
यस्मात्त्वयाऽनुरूपं मे प्रोक्तं मातामह-प्रियम्।
तस्मात्त्वं गौतमीं गच्छ स्नात्वा नियतमानसः॥४३॥
स्तुहि विष्णुं जगद्योनिं शान्तं प्रीतेन चेतसा।
स तु प्रीतो यदि भवेत्सर्वमिष्टं प्रदास्यति॥४४॥

हर्षण कहता है—"मेरे पिता त्वाष्ट्र विश्वरूप भीषण हैं। मेरी माता विष्टि भी भीषणा है। मेरे भ्राता भी वैसे ही हैं। जिस उपाय से ये महात्मा, शान्तबुद्धि, सुरूप, निर्दोष, मंगलप्रद हो सकें, वह कर्म कहने की कृपा करिये। हे सुरोत्तम! मैं उसी उपाय को करूंगा। अन्यथा मैं अब उन लोगों के पास लौट कर नहीं जाऊंगा।" यह सुनकर धर्मराज ने कहा—"तुम यथा नाम तथा गुण हर्षण ही हो (अर्थात् हर्ष देने वाले ही हो)। अनेक पुत्र उत्पन्न होने पर यदि वे कुल का उत्कर्ष कार्य नहीं करते, तब वे पुत्र ही नहीं है। जो माता-पिता का प्रिय करने वाला, कुल का आधार पूर्वजों का उद्धारक होता है, वही यथार्थ पुत्र है। अन्य तो कुल के लिये रोग के समान हैं। तुमने जो कुछ मुझसे पूछा है, उसके कारण तुम अपने मातामह को प्रिय हो गये। अब तुम्हारे द्वारा प्रिय लगने वाला प्रश्न पूछा गया है। उस सम्बन्ध में तुम गंगा-गौतमी तट पर जाओ। वहां स्नानोपरान्त संयत चित्त से स्नान द्वारा पवित्र होकर विष्णु स्तव करो। वे यदि प्रसन्न हो जायेंगे, तब तुमको समस्त वांछित प्रदान कर देंगे।।३८-४४।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा धर्मवाक्यं हर्षणो गौतमीं ययौ। शुचिस्तुष्टाव देवेशं हरिं प्रीतोऽभवद्धरिः॥४५॥

हर्षणाय ततः प्रादात्कुलभद्रं ततस्तु सः। सर्वाभद्रप्रशमनपूर्वकं भद्रमस्तु ते॥४६॥
तद्भद्रा प्रोच्यते विष्टिः पिता भद्रस्तथा सुताः। ततः प्रभृति तत्तीर्थं भद्रतीर्थं तदुच्यते॥४७॥
सर्वमङ्गलदं पुंसां तत्र भद्रपतिर्हरिः। तत्तीर्थसेविनां पुंसां सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
मङ्गलैकनिधिः साक्षाद्देवदेवो जनार्दनः॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भद्रतीर्थवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६५॥

गौतमीमाहात्म्ये षण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

ब्रह्मा कहते हैं—धर्मराज का उपदेश सुनकर हर्षण गौतमी तट पर गया। स्नान से पवित्र होकर उसने देवदेव हरि का स्तव वहां किया। उस स्तव से हरि सन्तुष्ट हो गये। भगवान् ने कुल के मंगलार्थ वरदान हर्षण को प्रदान किया। भगवान् ने कहा—"तुम्हारे कुल का अमंगल नाश हो। सब कुछ भद्र (कल्याणमय) हो जाये। तभी से हर्षण की माता विष्टि भद्रा कहलाई। पिता शुभ एवं भ्रातागण भी शुभ हो गये। तभी से यह तीर्थ भद्रतीर्थ कहा गया। यहां पर साक्षात् मंगलनिधि, साक्षात् देवाधिदेव जनार्दन का निवास है, जो मनुष्यों को समस्त कल्याण प्रदाता हैं। इस तीर्थ का सेवन मनुष्यों के लिये सर्वसिद्धिदायक है।।४५-४८।।

।।पञ्चषष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पतत्रितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

पतत्रितीर्थमाख्यातं रोगघ्नं पापनाशनम्। तस्य श्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः॥१॥
बभूवतुः कश्यपस्य सुतावरुणवीश्वरौ। सम्पातिश्च जटायुश्च सम्भवेतां तदन्वये॥२॥
तार्क्ष्यप्रजापतेः पुत्रावरुणो गरुडस्तथा। तदन्वये च सम्भूतः सम्पातिः पतगोत्तमः॥३॥
जटायुरिति विख्यातो ह्यपरः सोदरोऽनुजः।
अन्योन्यस्पर्धया युक्तावुन्मत्तौ स्वबलेन तौ॥४॥
सञ्जग्मतुर्दिनकरं नमस्कर्तुं विहायसि। यावत्सूर्यस्य सामीप्यं प्राप्तौ तौ विहगोत्तमौ॥५॥
दग्धपक्षावुभौ श्रान्तौ पतितौ गिरिमूर्धनि। बान्धवौ पतितौ दृष्ट्वा निश्चेष्टौ गजचेतसौ॥६॥
तावद्दुःखाभिभूतोऽसावरुणः प्राह भास्करम्।

तौ दृष्ट्वा त्वरुणः सूर्य प्राहेदं पतितौ भुवि।
आश्वासयैतौ तिग्मांशो यावन्नैतौ मरिष्यतः॥७॥

पतत्रितीर्थ नामक प्रसिद्ध तीर्थ रोग एवं पातक नाशक है। मनुष्य उसका वर्णन सुनने मात्र से कृतार्थ हो जाते हैं। तार्क्ष्य प्रजापति कश्यप के अरुण तथा गरुड़ नामक पुत्रद्वय जन्मे थे। सम्पाति एवं जटायु का भी जन्म इसी वंश में हुआ था। पक्षिराज गरुड़ के पुत्ररूप में सम्पाति एवं जटायु नामक विहगोत्तम (उत्तम पक्षी) का जन्म हुआ। इनमें से सम्पाति ज्येष्ठ थे तथा जटायु कनिष्ठ थे। ये दोनों अपने-अपने बल से उन्मत्त होकर परस्परतः होड़ लगाकर एक बार सूर्य को नमस्कार करने हेतु आकाश में उड़े। जब ये दोनों उत्तम पक्षी सूर्य के समीप पहुंचे, तब दोनों ही थकने तथा पंख दग्ध हो जाने के कारण एक पर्वत पर गिर गये। उस समय अरुण ने इन दोनों बन्धुओं (परिवार वालों) को निश्चेष्ट तथा चेतनाहीन पड़े देखा, तब वे दुःख से अभिभूत होकर सूर्यदेव से प्रार्थना करने लगे "हे तिग्मांशु भास्कर! इनकी रक्षा करिये। ये मृत न हों!"।।१-७।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा दिनकरो जीवयामास तौ खगौ। गरुडोऽपि तयोः श्रुत्वा अवस्थां सह विष्णुना॥८॥
आगत्याऽऽश्वासयामास सुखं चक्रे च नारद। सर्व एव तदा जग्मुर्गङ्गां तापापनुत्तये॥९॥
जटायुश्चारुणश्चैव सम्पातिर्गरुडस्तथा। सूर्यो विष्णुस्तत्प्रययौ तत्तीर्थं बहुपुण्यदम्॥१०॥
पतत्रितीर्थमाख्यातं विषघ्नं सर्वकामदम्। स्वयं सूर्यस्तथा विष्णुः सुपर्णेनारुणेन च॥११॥
आसते गौतमीतीरे तथैव वृषभध्वजः। त्रयाणामपि देवानां स्थितेस्तत्तीर्थमुत्तमम्॥१२॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा नमस्कुर्यात्सुरानिमान्।
आधिव्याधिविनिर्मुक्तः स परं सौख्यमाप्नुयात्॥१३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पतत्रितीर्थवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६६।।
गौतमीमाहात्म्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः।।९७।।

ब्रह्मा कहते हैं—सूर्यदेव ने कहा—"ऐसा ही हो" तथा उन्होंने दोनों पक्षियों को जीवित कर दिया। हे नारद! तब गरुड़ ने भी उनकी यह स्थिति सुनकर भगवान् विष्णु सहित वहां आगमन किया और जटायु एवं सम्पाति को आश्वासन देकर सुखी किया। उस समय जटायु, सम्पाति, गरुड़, अरुण, सूर्य तथा विष्णु ताप शान्ति हेतु गौतमीगंगा पहुंचे। तभी अतीव पुण्यप्रद, विषनाशक, सर्वकामना परिपूरक, यह तीर्थराज पतत्रितीर्थ के नाम से विख्यात हो गया। गौतमीतटस्थ इस तीर्थ में सूर्य, विष्णु, अरुण तथा गरुड़ स्वयं विराजित रहते हैं। वहां वृषभध्वज शंभु भी स्थित हैं। इन तीन देवगण (सूर्य, विष्णु, शिव) की स्थिति के कारण यह उत्तम तीर्थ हो गया। यहां स्नानोपरान्त जो व्यक्ति इन देवताओं को प्रणाम करेगा, उसे आधि-व्याधि से मुक्ति तथा महासुखलाभ होगा।।८-१३।।

।।षट्षष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विप्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

विप्रतीर्थमिति ख्यातं तथा नारायणं विदुः।
तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु विस्मयकारकम्॥१॥
अन्तर्वेद्यां द्विजः कश्चिद्ब्राह्मणो वेदपारगः। तस्य पुत्रा महाप्राज्ञा गुणरूपदयान्विताः॥२॥
तेषां कनीयान्यो भ्राता शान्तो गुणगणैर्वृतः।
आसन्दिव इति ख्यातः सर्वज्ञानो महामतिः॥३॥
विवाहाय पिता तस्मा आसन्दिवाय यत्नवान्।
एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ सुप्तं तं द्विजपुत्रकम्॥४॥
अविष्णुस्मरणं सौम्यशिरस्कमसमाहितम्। आसन्दिवं क्रूररूपा राक्षसी कामरूपिणी॥५॥
तमादायागमच्छीघ्रं गौतम्या दक्षिणे तटे। श्रीगिरेरुत्तरे पारे बहुब्राह्मणसेवितम्॥६॥
नगरं धर्मनिलयं लक्ष्म्या निलयमेव च। तत्र राजा बृहत्कीर्तिः सर्वक्षत्रगुणान्वितः॥७॥
तस्यामितक्षेमसुभिक्षयुक्तं, निशावसाने द्विजपुत्रयुक्ता।
सा राक्षसी तत्पुरमाससाद, मनोज्ञरूपाणि बिभर्ति नित्यम्॥८॥
सा कामरूपेण चरत्यशेषां, महीमिमां तेन समं द्विजेन।
गोदावरीदक्षिणतीरभागे, वृद्धाकृतिस्तं द्विजमाह भीमा॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—विप्रतीर्थ तथा नारायणतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ का अब वर्णन करता हूं। उसे सुनो। हे नारद! अन्तर्वेदी में कोई वेदज्ञ (अन्तर्वेदी = गंगा तथा यमुना के मध्य का प्रदेश) ब्राह्मण रहते थे, जिनके पुत्रगण रूप, गुण, दया तथा महाबुद्धि युक्त थे। इन पुत्रों में से आसन्दिव कनिष्ठ था, जो शान्त, गुणों से मण्डित, सर्व ज्ञानसम्पन्न तथा महामति था। पिता ने उसके विवाह हेतु अनेक प्रयत्न किया था। तभी वह द्विजपुत्र आसन्दिव एक दिन बिना विष्णु का स्मरण किये उत्तर की ओर शिर करके असमाहित रूप में निद्रित हो गया। इस कारण वहां एक अतीव क्रूर राक्षसी आई, जो इच्छानुरूप रूप धारण करती थी। उसने आसन्दिव को उठाया तथा वहां से चली गयी! वह राक्षसी ब्राह्मण को गोदावरी के दक्षिण तट पर ले आई थी। गौतमी के दक्षिण तट पर श्री पर्वत के उत्तर की ओर प्रत्यन्त पर्वत पर धर्म का निवास है तथा लक्ष्मी की आवास भूमि है। वहां अनेक ब्राह्मणों से सेवित एक नगर था। वहां पर समस्त क्षात्रगुणयुक्त बृहत्कीर्त्ति नामक राजा था। रात्रि के अन्तकाल में उस कल्याणदायक सर्व धन-धान्य से भरपूर नगर में वह राक्षसी जो नाना सुन्दर रूप धारण करने की शक्ति से सम्पन्न थी ब्राह्मण पुत्र के साथ आ गयी। वहां वह राक्षसी नित्य मनोहर रूप धारण करके यथेच्छ रूप से उन ब्राह्मणुत्र के साथ सम्पूर्ण पृथिवी का पर्यटन करते गोदावरी के दक्षिण तट पर आकर वृद्धारूपा होकर ब्राह्मण से कहने लगी—॥१-९॥

राक्षस्युवाच

एषा तु गङ्गा द्विजमुख्य सन्ध्या, उपास्यतां विप्रवरैः समेत्य।
यथोचितं विप्रवरास्तु काले, नोपासते यत्नत एव सन्ध्याम्॥१०॥
नीचास्त एवाभिहिताः सुरेशैरन्त्यावसायिप्रवरास्त एते।
अहं जनित्री तव चेति वाच्यं, नो चेदिदानीं त्वमुपैषि नाशम्॥११॥
मद्वाक्यकर्त्ताऽसि यदि द्विजेन्द्र, सुखं करिष्ये तव यत्प्रियं च।
पुनश्च देशं निलयं गुरूंश्च, सम्प्रापयिष्ये ननु सत्यमेतत्॥१२॥

राक्षसी कहती है—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! यह गौतमी गंगा है। तुम यहां विप्रों के साथ सन्ध्योपासना करो। उत्तम ब्राह्मण यथाकाल संध्योपासना सम्पन्न करते हैं। न करने वाले अधम हैं। उनको देवता लोग चाण्डालवत् मानते हैं। मैं तुम्हारी माता हूं। यह बात सबसे कहो, अन्यथा तुमको तत्क्षण मृत्यु मिलेगी। हे विप्रेन्द्र! यदि तुम मेरा आदेश मानोगे, तब मैं तुमको सुख एवं इच्छापूर्त्ति प्रदान करूंगी। तब तुम पुनः स्वदेश, अपने गृह, गुरुजन को प्राप्त करोगे। यह सत्य वचन है।।१०-१२।।

ब्रह्मोवाच

स प्राह का त्वं द्विजपुङ्गवोऽपि, सोवाच तं राक्षसी कामरूपा।
विश्वासयन्ती शपथैरनेकैस्तं भ्रान्तचित्तं मुनिराजपुत्रम्॥१३॥
कङ्कालिनी नाम जगत्प्रसिद्धा, विप्रोऽसि तामाह निवेदितं यत्।
तदेव कर्त्ताऽस्मि न संशयोऽत्र, यत्तत्प्रियं वच्मि करोमि चैव॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब द्विजश्रेष्ठ ने राक्षसी से पूछा—"तुम कौन हो?" तब राक्षसी ने अनेक शपथ लेकर ब्राह्मण में अपने प्रति विश्वास स्थापित करके उन भ्रान्तचित्त मुनिपुत्र से कहा कि "मैं कंकालिनी नाम से संसार प्रसिद्ध हूं।" तब ब्राह्मण ने उससे कहा—"तुम जो कहोगी, यथावत् वही करूंगा। सन्देह मत करो"।।१३-१४।।

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा राक्षसी कामरूपिणी। वृद्धा तथाऽपि चार्वङ्गी दिव्यालङ्कारभूषणा॥१५॥
द्विजमादाय सर्वत्र मत्सुतोऽयं गुणाकरः। एवं वदन्ती सर्वत्र याति वक्ति करोति च॥१६॥
तं विप्रं रूपसौभाग्यवयोविद्याविभूषितम्। तां च वृद्धां गुणोपेतामस्य मातेति मेनिरे॥१७॥

तत्र द्विजवरः कश्चित्स्वां कन्यां भूषणान्विताम्।
राक्षसीं तां पुरस्कृत्य प्रादात्तस्मै द्विजातये॥१८॥
सा कन्या तं पतिं प्राप्य कृतार्थाऽस्मीत्यचिन्तयत्।
स द्विजोऽपि गुणैर्युक्तां पत्नीं दृष्ट्वा सुदुःखितः॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—वह कामरूपिणी राक्षसी ब्राह्मण का कथन सुनकर वृद्धा होने पर भी सुन्दर अंगों वाली एवं दिव्यालंकार भूषित होकर उस विप्र के साथ सबसे यह परिचय देती विचरणरत हो गई "यह मेरा गुणी पुत्र है।" वह सर्वत्र आते-जाते यही कहती तथा तदनुरूप आचरण करती। लोग इस ब्राह्मण को सौभाग्य, युवक आयु वाला, विद्यावान् देखते तथा उस गुणयुक्त राक्षसी को मनोहर रूप वाली देख कर कहते कि यह इसकी माता है। इस स्थिति में किसी श्रेष्ठ द्विज ने अपनी भूषण से अलंकृत कन्या को उस ब्राह्मण को राक्षसी के समक्ष प्रदान कर दिया। उस कन्या ने भी ब्राह्मण को पतिरूपेण पाकर स्वयं को कृतार्थ माना तथापि ब्राह्मण उस गुणवती पत्नी को देख कर दुःखी मन से विचार करने लगा।।१५-१९।।

द्विज उवाच

मामियं भक्षयेदेव राक्षसी पापरूपिणी।
किं करोमि क्व गच्छामि कस्यैतत्कथयामि वा॥२०॥
महत्सङ्कटमापन्नं रक्षयिष्यति कोऽत्र माम्। भार्या ममेयं कल्याणी गुणरूपवयोयुता।
एनामप्यशुभाऽकस्माद्भक्षयिष्यति राक्षसी॥२१॥

द्विज कहता है—क्या करूं? कहां जाऊं? यह पापिनी राक्षसी निश्चित रूप से मेरा भक्षण करेगी। मेरे सामने महान् संकट आ गया। कौन मेरी रक्षा करेगा? मेरी यह कल्याणी भार्या गुण-रूप-युवावयस वाली है। वह अशुभा राक्षसी इसे भी हठात् खा जायेगी।।२०-२१।।

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भार्या सा गुणशालिनी।
वृद्धाऽप्यतिदुराधर्षा सा गता कुत्रचित्तदा॥२२॥
प्रश्रयावनता भूत्वा बाला चापि पतिव्रता।
भर्तारं दुःखितं ज्ञात्वा पतिं प्राह रहः शनैः॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—इसी समय वह भयंकर वृद्धा कहीं चली गयी। उस समय गुणवती विप्रपत्नी ने पतिदेव को दुःखी देखकर धीरे-धीरे पति से विनय पूर्वक कहा—।।२२-२३।।

भार्योवाच

कस्मात्ते दुःखमापन्नं स्वामिंस्तत्त्वं वदस्य मे॥२४॥

विप्रभार्या कहती है—हे स्वामी! आप दुःखी क्यों हैं? मुझसे कहिये।।२४।।

ब्रह्मोवाच

शनैः प्रोवाच तां भार्यां यथावत्पूर्वविस्तरम्।
किमकथ्यं प्रिये मित्रे कुलीनायां च योषिति॥२५॥
भर्तृवाक्यं निशम्येदं प्रोवाच वदतां वरा॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब ब्राह्मण ने धीरे-धीरे अपनी भार्या से समस्त पूर्व वृत्तान्त विस्तार पूर्वक कह दिया। प्रिय मित्र तथा कुलीना पत्नी से क्या छिपाना? उस उत्तम बोलने वाली पत्नी ने पति का कथन सुनकर कहा—।।२५-२६।।

भार्योवाच

अनात्मनः सर्वतोऽपि भयमस्ति गृहेष्वपि। कुतो भयं ह्यात्मवतां किं पुनर्गौतमीतटे॥२७॥

वसतां विष्णुभक्तानां विरक्तानां विवेकिनाम्।

अत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा स्तुहि देवमनायम्॥२८॥

पत्नी कहती है—धैर्यहीन हेतु तो सर्वत्र भय है। गृह में भी भय है, तथापि धैर्यवान् को कहां भय? विशेषतः गौतमीतट निवासी विष्णुभक्त विरक्त विवेकी लोग की तो बात ही क्या। अब यहां स्नान से पवित्र होकर अनामय देवता विष्णु का स्तव करिये।।२७-२८।।

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य गङ्गायां स्नात्वा विगतकल्मषः। तुष्टाव गौतमीतीरे द्विजो नारायणं तथा॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कथन सुनकर उस ब्राह्मण ने गौतमीगंगा में स्नान से पापमुक्त होकर उसी गौतमी तट पर नारायण का स्तव किया।।२९।।

द्विज उवाच

त्वमन्तरात्मा जगतोऽस्य नाथ, त्वमेव कर्ताऽस्य मुकुन्द हर्ता।

त्वं पालकः पालयसे न दीनमनाथबन्धो नरसिंह कस्मात्॥३०॥

ब्राह्मण कहता है—हे नाथ! आप जगत् की अन्तरात्मा हैं। हे मुकुन्द! आप ही संहारक तथा सृष्टि करने वाले भी हैं। आप ही पालक भी हैं। हे अनाथबन्धु नृसिंह! आप इस दीन का पालन क्यों नहीं कर रहे हैं? आप तो संसार के शोक का निवारण करते हैं।।३०।।

श्रुत्वैतत्प्रार्थनं तस्य जगच्छोकनिवारणः।

नारायणोऽपि तां पापां निजघान स राक्षसीम्॥३१॥

सुदर्शनेन चक्रेण सहस्त्रारेण भास्वता। तस्मै प्रादाद्वरानिष्टान्प्रापयच्च गुरुं प्रभुः॥३२॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं विप्रं नारायणं विदुः।

स्नानदानेन पूजाद्यैर्यत्र सिध्यति वाञ्छितम्॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विप्रनारायणतीर्थवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टनवतितमोऽध्यायः॥९८॥

उन द्विजनन्दन की यह प्रार्थना सुनकर द्युतिमान् सहस्त्रार चक्र से नारायण प्रभु ने उस राक्षसी का वध

कर दिया। तदनन्तर उस ब्राह्मण को वर प्रदान करके उसे पिता के यहां भेज दिया। तभी से यह तीर्थ विप्रतीर्थ तथा नारायणतीर्थ कहा गया। यहां स्नान-दान-पूजनादि से इच्छित सिद्धि मिल जाती है। सुधीगण को यह ज्ञात है।।३१-३२।।

।।सप्तषष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भानुतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यातं त्वाष्ट्रं माहेश्वरं तथा। ऐन्द्रं याम्यं तथाऽऽग्नेयं सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
अभिष्टुत इति ख्यातो राजाऽऽसीत्प्रियदर्शनः। हयमेधेन पुण्येन यष्टुमारब्धवान्सुरान्॥२॥
तत्रर्त्विजः षोडश स्युर्वसिष्ठात्रिपुरोगमाः। क्षत्रिये यजमाने तु यज्ञभूमिः कथं भवेत्॥३॥
ब्राह्मणे दीक्षिते राजा भुवं दास्यति यज्ञियाम्।
भूपतौ दीक्षिते दाता को भवेत्को नु याचते॥४॥
याच्ञेयमखिलाशर्मजननी पापरूपिणी। केनाप्यतो न कार्यैव क्षत्रियेण विशेषतः॥५॥
एवं मीमांसमानेषु ब्राह्मणेषु परस्परम्। तत्र प्राह महाप्राज्ञो वसिष्ठो धर्मवित्तमः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—सर्वपापनाशक भानुतीर्थ ही त्वाष्ट्र, माहेश्वर, ऐन्द्र, याम्य, आग्नेय नामों से विख्यात है। यह सर्वपापनाशक तीर्थ है। अभिष्टुत् नामक एक प्रियदर्शन राजा थे। उन्होंने पुण्यमय अश्वमेध यज्ञ से देवगण का यजन प्रारम्भ किया। इस यज्ञ में वसिष्ठ, अत्रि आदि प्रमुख १६ ऋत्विक् थे। क्षत्रिय यजमान होने पर यज्ञभूमि कैसी हो, इस पर वहां ब्राह्मण विचार करने लगे। ब्राह्मण जब यज्ञ करता है, तब तो क्षत्रिय यज्ञार्थ भूमि देते हैं, परन्तु राजा जब (क्षत्रिय जब) दीक्षित हैं, तब दाता कौन होगा तथा याचक कौन होगा? याचना करना तो अधर्म की जननी तथा पापरूपा माना गया है और क्षत्रिय के लिये याचना सर्वदा अकार्य है। वे सभी ब्राह्मण इस विन्दु पर मीमांसारत हो गये। तब उनमें से धर्मविद् वसिष्ठ ने कहा—।।१-६।।

वसिष्ठ उवाच

राज्ञि दीक्षायमाणे तु सूर्यो याच्यो भुवं प्रति। देहि मे देव सवितर्यजनं देवतोचितम्॥७॥
दैवं क्षत्रमसि ब्रह्मन्भूतनाथ नमोऽस्तु ते। याचितः सविता राज्ञा देवानां यजनं शुभम्॥८॥
ददात्येव ततो राजन्प्रार्थयेशं दिवाकरम्॥९॥

ऋषि वसिष्ठदेव कहते हैं—जब राजा दीक्षित हो, तब भूमि के लिये वह सूर्य से प्रार्थना करे। "हे देव

सविता! मुझे देवयजनार्थ उचित भूमि दीजिये। आप क्षत्रियों के देवता हैं। हे ब्रह्मन्! भूतनाथ! आपको प्रणाम!'' एवंविध याचना द्वारा सूर्य अवश्य देवयजनार्थ शुभ भूमि प्रदान करेंगे। हे राजन्! अतः आप देवाधिदेव प्रभु ईश्वर से प्रार्थना करें।।७-९।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वाऽभिष्टुतोऽपि देवदेवं दिवाकरम्।
श्रद्धया प्रार्थयामास हरीशाजात्मकं रविम्॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—वसिष्ठ ऋषि का यह उपदेश सुनकर राजा ने ''वैसा ही करूंगा'' कहा और हरि-हर-ब्रह्मात्मक देवाधिदेव दिवाकर सूर्य की श्रद्धा पूर्वक प्रार्थना करने लगे।।१०।।

राजावोच

देवानां यजनं देहि सवितस्ते नमोऽस्तु ते॥११॥

राजा कहता है—हे सविता! आप देवयजन स्थान प्रदान करिये। आपको प्रणाम!।।११।।

ब्रह्मोवाच

क्षत्रं दैवं यतः सूर्यो दत्ता भूर्भूपतेस्ततः। सविता देवदेवेशो ददामीत्यभ्यभाषत॥१२॥
एवं करोति यो यज्ञं तस्य रिष्टिर्न काचन। तथा वाजिमखे सत्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः॥१३॥
प्रारब्धेऽभिष्टुता राज्ञा यत्रागाद्भूपतिं रविः। देवानां यजनं दातुं भानुतीर्थं तदुच्यते॥१४॥
तं देवक्रतुमुत्कृष्टं हयमेधं सुरैर्युतम्। दैत्याश्च दनुजाश्चैव तथाऽन्ये यज्ञघातकाः॥१५॥
ब्रह्मवेषधराः सर्वे गायन्तः सामगा इव। तेऽपि तत्र महाप्राज्ञाः प्राविशन्ननिवारिताः॥१६॥

चमसानि च पात्राणि सोमं चषालमेव च।
सोमपानं हविस्त्यागमृत्विजो भूपतिं तथा॥१७॥
निन्दन्ति निक्षिपन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये तथाऽसुराः।
तेषां चेष्टां न जानन्ति विश्वरूपं विना मुने॥१८॥

विश्वरूपोऽपि पितरं प्राह दैत्या इमे इति। तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा त्वष्टा प्राह सुरानिदम्॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—सविता देवदेवेश ने सन्तुष्ट होकर कहा—''मैं दूंगा'' सूर्य क्षत्रियों के देवता हैं। (अर्थान्तर हो सकता है कि सूर्य दैव तथा क्षत्र-उभयात्मक हैं)। उन्होंने राजा को भूमिदान किया। जो इस प्रकार से यज्ञ करते हैं, उनको कोई अरिष्ट नहीं होता। उन वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा प्रारम्भ अश्वमेध यज्ञ में राजा से सन्तुष्ट होकर जहां रवि देवयजन भूमि प्रदान करने आये थे, वही स्थान भानुतीर्थ कहा गया। दैत्य-दानव तथा अन्य विघ्नकारक प्राणी उस देवयुक्त उत्तम अश्वमेध संज्ञक देवयज्ञ में विघ्नार्थ ब्राह्मण वेशधारी होकर सामगायन करते वहां पहुंचे। किसी ने भी उनको वहां आने से निवारित नहीं किया था। वे वहां के चमस, पात्र, सोम, चषाल (जिसमें यज्ञपशु को बांधते हैं), सोमपान, आहुति प्रदान, ऋत्विकों तथा राजा की निन्दा करने लगे। कोई-कोई वहां की सामग्री बिखेरने लगे। हे मुनिवर नारद! वहां विश्वरूप के अतिरिक्त कोई भी उनकी इस राक्षसी चेष्टा

को नहीं जान सका। तब उन्होंने पिता त्वष्टा से कहा—"ये दैत्य हैं।" पुत्र का कथन सुनकर त्वष्टा ने उन दैत्यों हेतु देवगण से कहा—।।१२-१९।।

त्वष्टोवाच

गृहीत्वा वारिदर्भांश्च प्रोक्षयध्वं समन्ततः। ये निन्दन्ति मखं पुण्यं चमसं सोममेव च॥२०॥

मया त्वपहताः सर्व इत्युक्त्वा परिषिञ्चत॥२१॥

त्वष्टा कहते हैं—तुम सब लोग कुश जल सर्वत्र छिड़को तथा यह मन्त्र कह कर सर्वत्र जलसिंचन करो कि जो पवित्र यज्ञ, चमस एवं सोमनिन्दक यहां हैं, वे सभी (मेरे द्वारा छिड़के इस जल से) नष्ट हो जायें।।२०-२१।।

ब्रह्मोवाच

तथा चक्रुः सुरगणास्त्वष्टा चापि तथाऽकरोत्।
भस्मीभूतास्ततः सर्वे कान्दिशीकास्ततोऽभवन्॥२२॥
हता मया महापापा इत्युक्त्वा वार्यवाक्षिपत्।
ततः क्षीणायुषो दैत्याः प्रातिष्ठन्कुपितास्ततः॥२३॥

यत्रैतत्प्राक्षिपद्वारि त्वष्टा लोकप्रजापतिः। त्वाष्ट्रं तीर्थं तदाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥२४॥

त्वष्टुर्वाक्याच्च्युतान्दैत्यान्निजघान यमस्तदा। कालदण्डेन चक्रेण कालपाशेन मन्युना॥२५॥

यत्र ते निहता दैत्यास्तत्तीर्थं याम्यमुच्यते।
यत्राभवत्क्रतुः पूर्णो हुत्वाऽग्नौचामृतं बहु॥२६॥

धाराभिः शरमानाभिरखण्डाभिर्महाध्वरे। यत्राभवद्धव्यवाहस्तृप्तस्तस्य ह्यभिष्टुतः॥२७॥

अग्नितीर्थं तदाख्यातमश्वमेधफलप्रदम्। इन्द्रो मरुद्भिर्नृपतिं प्राहेदं वचनं शुभम्॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवताओं ने वैसा ही किया। तब त्वष्टा ने भी कहा—"मेरे द्वारा ये महापापी मृत हो जायें" तथा इस मन्त्र के साथ जल छिड़का। इससे सभी दैत्यादि तथा अन्य यज्ञविध्वंसकगण भस्मीभूत हो गये। उनको भागने की जगह भी नहीं मिली। कतिपय क्षीणायु होकर कुपित चित्त से भाग गये। जहां लोकप्रजापति त्वष्टा ने जल छिड़का था, वह सर्वपाप प्रणाशक त्वाष्ट्र तीर्थ के नाम से विख्यात हो गया। जो दैत्य त्वष्टा का वाक्य सुनकर भाग गये थे उनको यमराज ने अपने कालदण्ड, चक्र, कालपाश तथा मृत्यु के द्वारा निहत कर दिया। जहां वे दैत्य निहत हुये थे, वह स्थल याम्यतीर्थ कहा गया। जहां पर यज्ञ में हविष्य प्रदान करके यज्ञानुष्ठान सम्पन्न किया गया था, जहां यज्ञ में अग्निदेव बाण के इतनी मोटी अखण्ड धारा से राजा अभिष्टुत् द्वारा तृप्त किये गये थे, जहां यह महायज्ञ पूर्ण हुआ था, वह स्थल अग्नितीर्थ कहा गया। यह तीर्थ अश्वमेध यज्ञफल दायक है। तब इन्द्रदेव ने वायु को दूत बनाकर राजा के पास शुभ संवाद कहलवाया।।२२-२८।।

त्वं सम्राड्भविता राजन्नुभयोरपि लोकयोः।
सखा मम प्रियो नित्यं भविता नात्र संशयः॥२९॥

स कृतार्थो मर्त्यलोक इन्द्रतीर्थे च तर्पणम्।
कुर्यात्पितृणां प्रीत्यर्थं यमतीर्थे विशेषतः॥३०॥

वह संवाद है कि हे राजन्! तुम उभय लोग के सम्राट तथा मेरे प्रियपात्र होगे। यह निःसंदिग्ध बात है। इस इन्द्रतीर्थ में, विशेषतः यमतीर्थ में पितृगण की प्रसन्नार्थ तर्पण करने वाला व्यक्ति मर्त्यलोक में कृतार्थ हो जायेगा।।२९-३०।।

माहेश्वरं तु तत्तीर्थं पूजितोऽभिष्टुतः शिवः। भक्तियुक्तेन विप्रैश्च सर्वकर्मविशारदैः॥३१॥
वैदिकैर्लौकिकैश्चैव मन्त्रैः पूज्यं महेश्वरम्। नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यैरमृतैः पञ्चसम्भवैः॥३२॥
उपचारैश्च बहुभिर्दण्डपातप्रदक्षिणैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पुष्पैर्गन्धैः सुगन्धिभिः॥३३॥
पूजयामास देवेशं विष्णुं शम्भुं धियैकया। ततः प्रसन्नौ देवेशौ वरान्ददतुरोजसा॥३४॥
अभिष्टुते नरेन्द्राय भुक्तिमुक्ती उभे अपि। माहात्म्यमस्य तीर्थस्य तथा ददतुरुत्तमम्॥३५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं शैवं वैष्णवमुच्यते। तत्र स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं विदुः॥३६॥
इमानि सर्वतीर्थानि स्मरेदपि पठेत वा। विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शिवविष्णुपुरं व्रजेत्॥३७॥
भानुतीर्थे विशेषेण स्नानं सर्वार्थसिद्धिदम्। तत्र तीर्थे महापुण्यं तीर्थानां शतमत्र हि॥३८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भान्वादिशततीर्थवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६८।।

गौतमीमाहात्म्ये नवनवतितमोऽध्यायः।।९९।।

इस तीर्थ का नाम माहेश्वरतीर्थ इसलिये है कि राजा अभिष्टुत् ने वहां शिव पूजन किया था। यहां राजा ने शिव तथा विष्णु में अभेदत्व मानते हुये भक्तिभाव से भावित चित्त द्वारा तथा सर्वकर्म अभिज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा वैदिक-लौकिक मन्त्रों से, गंध-पुष्पादि-धूप-दीप-नैवेद्य-पंचामृत-दण्डवत् प्रणाम, प्रदक्षिणा, नृत्य, गीत, वाद्य तथा अन्यान्य विविध उपचारों से पूजा योग्य महेश्वरार्चन किया था। तभी यहां विष्णु एवं महेश्वर देवद्वय ने प्रसन्नता पूर्वक स्तव करने वाले उन राजा को भोग-मोक्ष तथा अन्य अनेक वर प्रदान किया। साथ ही देवद्वय ने इस तीर्थ को उत्तम माहात्म्य भी दे दिया। तभी से यह तीर्थ शैव तथा वैष्णवतीर्थ कहलाता है। यहां स्नान-दान सर्वकामप्रद है। यह सुधीगण जानते हैं। इन तीर्थों का विवरण जो मनुष्य पढ़ते किंवा श्रवण करते हैं, वे सर्वपाप रहित होकर सर्वान्त में विष्णुलोक जाते हैं। विशेषतया भानुतीर्थ में स्नान सर्वसिद्धिदायक है। यहां एक सौ महापुण्यमय तीर्थ भी हैं।।३१-३८।।

।।अष्टषष्ट्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भिल्लतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

भिल्लतीर्थमिति ख्यातं रोगघ्नं पापनाशनम्। महादेवपदाम्भोजयुगभक्तिप्रदायकम्॥१॥
तत्राप्येवंविधां पुण्यां कथां शृणु महामते। गङ्गाया दक्षिणे तीरे श्रीगिरेरुत्तरे तटे॥२॥

आदिकेश इति ख्यात ऋषिभिः परिपूजितः।
महादेवो लिङ्गरूपी सदाऽऽस्ते सर्वकामदः॥३॥
सिन्धुद्वीप इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिकः।
तस्य भ्राता वेद इति स चापि परमो ऋषिः॥४॥

तमादिकेशं वै देवं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम्। नित्यं पूजयते भक्त्या प्राप्ते मध्यन्दिने रवौ॥५॥

भिक्षाटनाय वेदोऽपि याति ग्रामं विचक्षणः।
याते तस्मिन्द्विजवरे व्याधः परमधार्मिकः॥६॥
तस्मिन्गिरिवरे पुण्ये मृगयां याति नित्यशः।
अटित्वा विविधान्देशान्मृगान्हत्वा यथासुखम्॥७॥
मुखे गृहीत्वा पानीयमभिषेकाय शूलिनः।
न्यस्य मांसं धनुष्कोट्यां श्रान्तो व्याधः शिवं प्रभुम्॥८॥
आदिकेशं समागत्य न्यस्य मांसं ततो बहिः।
गङ्गां गत्वा मुखे वारि गृहीत्वाऽऽगत्य तं शिवम्॥९॥

यस्य कस्यापि पत्राणि करेणाऽऽदाय भक्तितः। अपरेण च मांसानि नैवेद्यार्थं च तन्मनाः॥१०॥
आदिकेशं समागत्य वेदेनार्चितमोजसा। पादेनाऽऽहत्य तां पूजां मुखानीतेन वारिणा॥११॥

स्नापयित्वा शिवं देवमर्चयित्वा तु पत्रकैः।
कल्पयित्वा तु (समर्पयति) तन्मांसं शिवो मे प्रीयतामिति॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—भिल्लतीर्थ एक प्रसिद्ध रोगघ्न, पापघ्न तथा महादेव के चरणकमलद्वय की भक्ति देने वाला है। हे महामति! इस तीर्थ का प्रसंग श्रवण करो। गौतमीगंगा के दक्षिण तट पर श्रीगिरि के उत्तर की ओर ऋषियों द्वारा पूजित सर्वकामदायक आदिकेश नाम से प्रसिद्ध लिंगरूपी महादेव सदा विराजित रहते हैं। विख्यात परम धार्मिक सिन्धुद्वीप मुनि के भाई थे वेद। ये परम विचक्षण ऋषि वेद नित्य भक्तिभाव से इन त्रिपुरारि त्रिलोचन आदिकेशदेव की पूजा करने के उपरान्त मध्याह्नकाल में भिक्षाटनार्थ ग्राम में जाते थे। इन ब्राह्मण के पूजा करने के पश्चात् चले जाने पर वहां एक परम धार्मिक व्याध शिकार खेलने के लिये घूमता हुआ यथासुख

विविधमृगों का वध करके मृग मांस को धनुष के सिरे पर लटका कर थका-मांदा वहां आता, जहां शिव आदिकेश विराजमान हैं, उसके बाहर मांस रख कर गंगा जाकर मुख में जल भर कर लाता तथा एक हाथ में किसी वृक्ष का एक पत्ता तथा दूसरे हाथ में नैवेद्यार्थ कुछ मांस लेकर भगवत् चित्तता पूर्वक भक्ति के साथ आदिकेश के पास पहुंचता। तब वह (क्योंकि उसके दोनों हाथ खाली नहीं रहते थे) वेद ऋषि द्वारा किये गये पूजा के पुष्प आदि जो लिंग पर चढ़े रहते पुष्पादि को पैरों से हटाता। तदनन्तर अपने मुख में भरे जल द्वारा शिव को स्नान कराने के पश्चात् हाथ में लिये हुये पत्तों से अर्चना करते हुये कहता "शिव मुझ पर प्रसन्न हों।" मन ही मन यह प्रार्थना करने के अनन्तर वह मांस नैवेद्य अर्पित करता।।१-१२।।

नैव किञ्चित्स जानाति शिवभक्तिं विना शुभाम्।
ततो याति स्वकं स्थानं मांसेन तु यथागतम्॥१३॥
करोत्येतादृगागत्याऽऽगत्य प्रत्यहमेव सः। तथाऽपीशस्तुतोषास्य विचित्रा हीश्वरस्थितिः॥१४॥
यावन्नायात्यसौ भिल्लः शिवस्तावन्न सौख्यभाक्।
भक्तानुकम्पितां शम्भोर्मानातीतां तु वेत्ति कः॥१५॥
सम्पूजयत्यादिकेशमुमया प्रत्यहं शिवम्। एवं बहुतिथे काले याते वेदश्चुकोप ह॥१६॥
पूजां मन्त्रवतीं चित्रां शिवभक्तिसमन्विताम्।
को नु विध्वंसते पापो मत्तः स वधमाप्नुयात्॥१७॥
गुरुदेवद्विजस्वामिद्रोही वध्यो मुनेरपि। सर्वस्यापि वधार्होऽसौ शिवस्य द्रोहकृन्नरः॥१८॥
एवं निश्चित्य मेधावी वेदः सिन्धोस्तथाऽनुजः।
कस्येयं पापचेष्टा स्यात्पापिष्ठस्य दुरात्मनः॥१९॥
पुष्पैर्वन्यभवैर्दिव्यैः कन्दैर्मूलफलैः शुभैः।
कृतां पूजां स विध्वस्य ह्यन्यां पूजां करोति यः॥२०॥
मांसेन तरुपत्रैश्च स च वध्यो भवेन्मम। एवं सञ्चिन्त्य मेधावी गोपयित्वा तनुं तदा॥२१॥

वह शुभ शिवभक्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं जानता था। इस पूजन के अनन्तर वह मांस लेकर जैसे आया था, वैसे ही मांस के साथ गृह चला जाता। वह नित्य आकर ऐसे ही पूजा सम्पन्न करता रहता था, इससे ईश्वर उस पर प्रसन्न हो गये। ईश्वर का तो क्रियाकलाप ही विचित्र है। वास्तव में जब तक यह भील पूजा नहीं करता था, तब तक शिव सुखी भी नहीं होते थे। शंभुदेव की अपरिमित भक्त्यानुकम्पा कौन जान सकता है? ऐसे दीर्घकाल तक होता पाकर वेद ऋषि एक दिन क्रोधित हो गये। वे कहने लगे कि "कौन पातकी मेरी मन्त्रयुक्त विचित्र भक्तिसमन्विता पूजा को नष्ट कर देता है? वह मेरे द्वारा वध योग्य ही है। गुरु-वेद-द्विज तथा स्वामीद्रोही व्यक्ति भले मुनि हो, तथापि वध योग्य होता है। जो मनुष्य शिवद्रोही हो, वह भी वधयोग्य है।" सिन्धु ऋषि के अनुज वेद ने तब यह विचार किया कि यह किसी दुरात्मा पापी का कृत्य है। वह वन के दिव्य पुष्प, शुभ कन्द मूल-फल द्वारा की गयी मेरी पूजा को नष्ट करके मांस एवं वृक्ष के पत्तों से अन्य रूप से पूजा करता है। वह मेरे द्वारा वध योग्य है। यह विचार करके वे मेधावी वहां छिप गये।।१३-२१।।

तं पश्येयमहं पापं पूजाकर्तारमीश्वरे। एकस्मिन्नन्तरे प्रायाद्व्याधो देवं यथा पुरा॥२२॥
नित्यवत्पूजयन्तं तमादिकेशस्तदाऽब्रवीत्॥२३॥

"मैं उस पापी को ईश्वर की पूजा करते देखूंगा।" तदनन्तर पूर्ववत् वह व्याध वहां आ गया। जब वह नित्य की तरह पूजा-अर्चना कर रहा था, तभी भगवान् आदिकेश ने कहा—।।२२-२३।।

आदिकेश उवाच

भो भो व्याध महाबुद्धे श्रान्तोऽसीति पुनः पुनः।
चिराय कथमायातस्त्वां विना तात दुःखिताः।
न विन्दामि सुखं किञ्चित्समाश्वसिहि पुत्रक॥२४॥

भगवान् आदिकेश कहते हैं—"हे महाबुद्धिशाली व्याध! तुम तो थक गये।" यही बात बारम्बार कहते हुये भगवान् ने पुनः व्याध से कहा—"हे तात! तुम विलम्ब से क्यों आये? जब तक तुम नहीं आते, मैं दुःखी रहता हूं। मुझे तनिक भी सुख नहीं मिलता। हे पुत्र! तुम मुझे आश्वस्त करो।।२४।।

ब्रह्मोवाच

तमेवं वादिनं देवं वेदः श्रुत्वा विलोक्य तु।
चुकोप विस्मयाविष्टो न च किञ्चिदुवाच ह॥२५॥
व्याधश्च नित्यवत्पूजां कृत्वा स्वभवनं ययौ।
वेदश्च कुपितो भूत्वा आगत्येशमुवाच ह॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—वेद ऋषि यह सब सुनकर तथा अपने नेत्रों से सब कुछ प्रत्यक्ष देख कर वेद आश्चर्यान्वित तथा क्रोधित हो गये। तथापि तब उन्होंने कुछ नहीं कहा। वह व्याध नित्य पूजनोपरान्त स्वगृह चला गया। उसके जाने के अनन्तर वेद ऋषि ने क्रोधित चित्त से शंकर के पास आकर कहा—।।२५-२६।।

वेद उवाच

अयं व्याधः पापरतः क्रियाज्ञानविवर्जितः। प्राणिहिंसारतः क्रूरो निर्दयः सर्वजन्तुषु॥२७॥
हीनजातिरकिञ्चिज्ज्ञो गुरुक्रमविवर्जितः। सदाऽनुचितकारी चानिर्जिताखिलगोगणः॥२८॥
तस्याऽऽत्मानं दर्शितवान्न मां किञ्चन वक्ष्यसि।
पूजां मन्त्रविधानेन करोमीश यतव्रतः॥२९॥
त्वदेकशरणो नित्यं भार्यापुत्रविवर्जितः। व्याधो मांसेन दुष्टेन पूजां तव करोत्यसौ॥३०॥
तस्य प्रसन्नो भगवान्न ममेति महाद्भुतम्।
शास्तिमस्य करिष्यामि भिल्लस्य ह्यपकारिणः॥३१॥
मृदोः कोऽपि भवेत्प्रीतः कोऽपि तद्वद्दुरात्मनः। तस्मादहं मूर्ध्नि शिलः पातयेयमसंशयम्॥३२॥

वेद ऋषि कहते हैं—यह व्याध पापरत, क्रिया-ज्ञान रहित, प्राणीहिंसक, हीन जाति, क्रूर, सर्वभूत के

प्रति निर्दयी, सभी ज्ञान से रहित, गुरुक्रम हीन, सद्यः अनुचित करने वाला नितान्त अजितेन्द्रिय है। इसे आपने अपना दर्शन दे दिया, तथापि कभी भी मुझसे एक शब्द भी आपने नहीं कहा। हे ईश्वर! मैं पत्नी-पुत्रहीन हूं। नित्य आपकी शरण में ही रहता हूं। व्रतपरायण होकर मन्त्रों से आपकी पूजा करता हूं। उधर यह व्याध दूषित मांसों द्वारा आपकी पूजा सम्पन्न करता है। हे भगवान्! आप उसके प्रति तो प्रसन्न हो गये, तथापि मुझ पर प्रसन्न नहीं हैं। यह अतीव अद्भुत बात है! तथापि इस भील के प्रति जो आपने अनुग्रह किया है, उसके लिये मैं आपको दण्ड प्रदान करूंगा। कोई मृदु व्यक्ति को प्रिय होता है, कोई दुरात्मा का प्रिय होता है। अतः आपके मस्तक पर मैं अवश्य शिला पटकूंगा!।।२७-३२।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति वै वेदे विहस्येशोऽब्रवीदिदम्॥३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—ईश्वर ने वेद ऋषि का कथन सुनकर हंसते हुये कहा—।।३३।।

आदिकेश उवाच

श्वः प्रतीक्षस्व पश्चान्मे शिला पातय मूर्धनि॥३४॥

ईश्वर कहते हैं—कल तक रुक जाओ तदनन्तर कल मेरे शिर पर शिला पटक देना।।३४।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स वेदोऽपि शिलां सन्त्यज्य बाहुना।
उपसंहृत्य तं कोपं श्वः करोमीत्युवाच ह॥३५॥
ततः प्रातः समागत्य कृत्वा स्नानादिकर्म च।
वेदोऽपि नित्यवत्पूजां कुर्वन्पश्यति मस्तके॥३६॥
लिङ्गस्य सव्रणां भीमां धारां च रुधिरप्लुताम्।
वेदः स विस्मितो भूत्वा किमिदं लिङ्गमूर्धनि॥३७॥
महोत्पातो भवेत्कस्य सूचयेदित्यचिन्तयत्। मृद्भिश्च गोमयेनापि कुशैस्तं गाङ्गवारिभिः॥३८॥
प्रक्षालयित्वा तां पूजां कृतवान्नित्यवत्तदा। एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्व्याधो विगतकल्मषः॥३९॥
मूर्धानं व्रणसंयुक्तं सरक्तं लिङ्गमस्तके। शङ्करस्याऽऽदिकेशस्य ददृशेऽन्तर्गतस्तदा॥४०॥
दृष्ट्वैव किमिदं चित्रमित्युक्त्वा निशितैः शरैः।
आत्मानं भेदयामास शतधा च सहस्रधा॥४१॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर वेद ऋषि ने वह शिलाखण्ड फेंक कर कहा—"यही हो", और अपना क्रोध त्याग कर यह कहते चले गये कि "यह कार्य कल करूंगा।" अगले दिन प्रातः वेद ऋषि ने पूर्ववत् स्नानादि किया तथा शिव के पास आकर पूजा करना चाहा तभी देखते हैं कि लिंग के मस्तक पर एक घाव है, जहां से रुधिर धारा निकल रही है! यह देख कर वेद ऋषि विस्मित हो गये। लिंग के मस्तक पर यह क्या? प्रतीत होता है कि कोई महान् उत्पात आसन्न है। तब उन्होंने मृत्तिका, गोमय, कुश, गोमतीगंगा जल से उस लिंग

को पवित्र किया तथा नित्य की तरह पूजन किया। तभी वहां वह निष्पाप व्याध आ गया। लिंग के शीर्ष पर वह व्रण एवं रक्त बहते देखते ही कहने लगा "यह क्या हो गया?" तभी उसने अपने तीक्ष्ण बाणों से स्वयं के देह को सहस्रों स्थान पर विद्ध कर लिया।।३५-४१।।

स्वामिनो वैकृतं दृष्ट्वा कः क्षमेतोत्तमाशयः।
मुहुर्निनिन्द चाऽऽत्मानं मयि जीवत्यभूदिदम्॥४२॥
कष्टमापतितं कीदृगहो दुर्विधिवैशसात्।
तत्कर्म तस्य सम्वीक्ष्य महादेवोऽतिविस्मितः।
ततः प्रोवाच भगवान्वेदं वेदविदां वरम्॥४३॥

"स्वामी का अनिष्ट देख कर कोई भी उत्तम चित्तयुक्त व्यक्ति वह सहन कर सकेगा? अब मैं जीवित रहकर क्या करूंगा? मेरे जीवित रहते यह अनर्थ हो गया। मेरे दुर्भाग्य तथा विधाता की प्रतिकूलता से ऐसी घटना हो गयी।" यह कहता वह व्याध पुनः-पुनः अपनी ही निन्दा करने लगा। उस व्याध का यह कृत्य देखकर भगवान् महादेव ने श्रेष्ठ वेदज्ञ वेद ऋषि से कहा—।।४२-४३।।

आदिकेश उवाच

पश्य व्याधं महाबुद्धे भक्तं भावेन संयुतम्।
त्वं तु मृद्भिः कुशैर्वार्भिर्मूर्धानं स्पृष्टवानसि॥४४॥
अनेन सहसा ब्रह्मन्ममाऽऽत्माऽपि निवेदितः।
भक्तिः प्रेमाथवा शक्तिर्विचारो यत्र विद्यते।
तस्मादस्मै वरान्दास्ये पश्चात्तुभ्यं द्विजोत्तम॥४५॥

प्रभु आदिकेश कहते हैं—हे महाबुद्धि ऋषि वेद! भावयुक्त इस भक्त को देखो। तुमने तो मात्र मिट्टी, जल आदि से शिर को धोया था, तथापि हे ब्रह्मन्! इस व्यक्ति ने तो स्वयं को अर्पित कर दिया। इस विषय में भक्ति, प्रेम अथवा शक्ति का ही तारतम्य विवेच्य है। हे द्विजोत्तम! इसी कारण पहले मैं इसे वर प्रदान करके तब तुमको वर दूंगा।।४४-४५।।

ब्रह्मोवाच

वरेण च्छन्दयामास व्याधं देवो महेश्वरः।
व्याधः प्रोवाच देवेशं निर्माल्यं तव यद्भवेत्॥४६॥
तदस्माकं भवेन्नाथ मन्नाम्ना तीर्थमुच्यताम्।
सर्वक्रतुफलं तीर्थं स्मरणादेव जायताम्॥४७॥

ब्रह्मा कहते हैं—पहले महेश्वर ने व्याध से कहा—"वर मांगो" व्याध ने प्रभु से कहा—"हे नाथ! आपका जो निर्माल्य है, वही मुझे मिले। यह स्थान मेरे नाम से उत्तम तीर्थ हो जाये। यह स्मरण मात्र से सर्वयज्ञफलप्रद हो जाये"।।४६-४७।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युवाच देवेशस्ततस्तत्तीर्थमुत्तमम्। भिल्लतीर्थं समस्ताघसङ्घविच्छेदकारणम्॥४८॥
श्रीमहादेवचरणमहाभक्तिविधायकम्। अभवत्स्नानदानाद्यैर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
वेदस्यापि वरान्प्रादाच्छिवो नानाविधान्बहून्॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भिल्लतीर्थमहिमवर्णनं नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६९॥

गौतमीमाहात्म्ये शततमोऽध्यायः॥१००॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवेश महेश्वर ने तब व्याध से कहा—"यही हो।" तब से यह उत्तम तीर्थ भिल्लतीर्थ कहा गया। यह सर्वपातकनाशक, शिव चरणाश्रित, भक्तिप्रद तीर्थ है। यहां स्नान-दानादि का फल भोग तथा मोक्ष रूप में मिलता है। तदनन्तर भगवान् ने ऋषि वेद को भी अनेक वर दिये।।४८-४९।।

।।एकोनसप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

चक्षुतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

चक्षुस्तीर्थमिति ख्यातं रूपसौभाग्यदायकम्। यत्र योगेश्वरो देवो गौतम्या दक्षिणे तटे॥१॥
पुरं भौवनमाख्यातं गिरिमूर्ध्न्यभिधीयते। यत्रासौ भौवनो राजा क्षत्रधर्मपरायणः॥२॥
तस्मिन्पुरवरे कश्चिद्ब्राह्मणो वृद्धकौशिकः। तत्पुत्रो गौतम इति ख्यातो वेदविदुत्तमः॥३॥
तस्य मातुर्मनोदोषाद्विपरीतोऽभवद्द्विजः। सखा तस्य वणिक्कश्चिन्मणिकुण्डल उच्यते॥४॥
तेन सख्यं द्विजस्याऽऽसीद्विषमं द्विजवैश्ययोः। श्रीमद्दरिद्रयोर्नित्यं परस्परहितैषिणोः॥५॥
कदाचिद्गौतमो वैश्यं वित्तेशं मणिकुण्डलम्। प्राहेदं वचनं प्रीत्या रहः स्थित्वा पुनः पुनः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—गौतमी नदी के दक्षिण तट पर जहां योगेश्वर देव विराजमान हैं, वह रूप सौभाग्यदायक चक्षुतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। वहां पर पर्वत के ऊपर भौवन नामक जो पुरी है, वहां क्षेत्रधर्मपरायण भौवन राजा हैं। इस उत्तम पुरी में वृद्धकौशिक नामक किसी ब्राह्मण का निवास था। उनका पुत्र उत्तम वेदज्ञ तथा गौतम नाम से प्रसिद्ध था। अपनी माता के दोष के कारण गौतम अपने पिता से विपरीत भाव वाला हो गया। उसका मणिकुण्डल नामक वणिक् सखा था। ब्राह्मण तथा वैश्य की यह मित्रता, अर्थात् दरिद्र एवं श्रीमन्त की

पारस्परिक मित्रता विषम होने पर भी वणिक् तथा ब्राह्मण में सख्य था। एक समय गौतम जब एकान्त में था, उस समय प्रीति के कारण धनपति वैश्य मणिकुण्डल से गौतम ने बारम्बार कहा—।।१-६।।

गौतम उवाच

गच्छामो धनमादातुं पर्वतानुदधीनपि। यौवनं तद्वृथा ज्ञेयं विना सौख्यानुकूल्यतः।
धनं विना तत्कथं धिङ्निर्धनं नरम्।।७।।

गौतम कहता है—चलो! हम धन उपार्जनार्थ पर्वत तथा समुद्र आदि की तरफ चलें। सुखभोग किये बिना तो यह यौवन वृथा है। धन बिना सुख नहीं मिलता। धनहीन को सुख मिल सकना संभव नहीं है। निर्धन व्यक्ति को धिक्कार है।।७।।

ब्रह्मोवाच

कुण्डलो द्विजमाहेदं मत्पित्रोपार्जितं धनम्। बह्वस्ति किं धनेनाद्य करिष्ये द्विजसत्तम।
द्विजः पुनरुवाचेदं मणिकुण्डलमोजसा।।८।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब मणिकुण्डल ने ब्राह्मण से कहा—"हे द्विजसत्तमों! मेरे पास पिता द्वारा उपार्जित प्रचुर धन है। हे द्विजसत्तम! अब और धन का मुझे क्या काम?" यह सुनकर ब्राह्मण गौतम पुनः मणिकुण्डल से कहने लगा—।।८।।

गौतम उवाच

धर्मार्थज्ञानकामानां को नु तृप्तः प्रशस्यते। उत्कर्षप्राप्तिरेवैषां सखे श्लाघ्या शरीरिणाम्।।९।।
स्वेनैव व्यवसायेन धन्या जीवन्ति जन्तवः। परदत्तार्थसन्तुष्टाः कष्टजीविन एव ते।।१०।।
स पुत्रः शस्यते लोके पितृभिश्चाभिनन्द्यते।
यः पैत्र्यमभिलिप्सेत न वाचाऽपि तु कुण्डल।।११।।
स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽर्थानर्जयते सुतः।
स कृतार्थो भवेल्लोके पैत्र्यं वित्तं न तु स्पृशेत्।।१२।।

गौतम कहता है—धर्म, अर्थ, ज्ञान, काम से कौन संतुष्ट हो सकेगा? प्राणीगण के लिये उत्कर्ष करते रहना ही उचित कहा जाता है। जो पराये धन से सन्तुष्ट है, उसे कष्टजीवी कहते हैं। हे कुण्डल! लोकों में वही पुत्र प्रशंसा पाता है तथा पितरों द्वारा अभिवन्दित होता है, जो पैत्रिक धन की अभिलाषा वाणी से भी नहीं करता। जो पुत्र अपने बाहुबल का आश्रय लेकर धन कमाता है, लोक में वही कृतार्थ माना जाता है।।९-१२।।

स्वयमार्ज्य सुतो वित्तं पित्रे दास्यति बन्धवे।
तं तु पुत्रं विजानीयादितरो योनिकीटकः।।१३।।

जो पुत्र स्वयं धन कमाकर पिता तथा बन्धुगण को प्रदान करता है, उसे ही पुत्र मानना चाहिये। बाकी पुत्र सभी योनि के कीट मात्र हैं।।१३।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्यं ब्राह्मणस्याभिलाषिणः।
तथेति मत्वा तद्वाक्यं रत्नान्यादाय सत्वरः॥१४॥
आत्मकीयानि वित्तानि गौतमाय न्यवेदयत्।
धनेनैतेन देशांश्च परिभ्रम्य यथासुखम्॥१५॥
धनान्यादाय वित्तानि पुनरेष्यामहे गृहम्। सत्यमेव वणिग्वक्ति स तु विप्रः प्रतारकः॥१६॥
पापात्मा पापचित्तं च न बुबोध वणिग्द्विजम्।
तौ परस्परमामन्त्र्य मातापित्रोरजानतोः॥१७॥
देशाद्देशान्तरं यातौ धनार्थं तौ वणिग्द्विजौ।
वणिग्घस्तस्थितं वित्तं ब्राह्मणो हर्तुमिच्छति॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—मणिकुण्डल ने इस धनाभिलाषी ब्राह्मण के उपदेश वाक्य को सुनकर उसे ही सत्य माना तथा वह शीघ्रता के साथ अपनी धन-रत्न-सम्पत्ति लाकर गौतम से कहने लगा कि "इस धन द्वारा नाना देशों में परिभ्रमण करके धन-सम्पत्ति उपार्जन के पश्चात् पुनः हम अपने गृह में लौट आयेंगे।" यह कहने के उपरान्त उस वणिक् समस्त सम्पत्ति ब्राह्मण को सौंप दिया। वणिक् ने सब सत्य कहा था, लेकिन ब्राह्मण पापात्मा तथा ठग था। वणिक् ने ब्राह्मण को समझ नहीं सका, जो पापमय चित्त वाला था। अब उस वणिक् तथा ब्राह्मण ने एवंविध गुप्त मन्त्रणा किया तथा माता-पिता से छिप कर देशान्तर में धन उपार्जनार्थ वहां से चल पड़े। ब्राह्मण वणिक् से प्राप्त धन अपहरण का उपाय सोच रहा था।।१४-१८।।

ब्राह्मण उवाच

येन केनाप्युपायेन तद्धनं हि समाहरे। अहो पृथिव्यां रम्याणि नगराणि सहस्रशः॥१९॥
इष्टप्रदात्र्यः कामस्य देवता इव योषितः। मनोहरास्तत्र तत्र सन्ति किं क्रियते मया॥२०॥
धनमाहृत्य यत्नेन योषिद्भ्यो यदि दीयते।
भुज्यन्ते तास्ततो नित्यं सफलं जीवितं हि तत्॥२१॥
नृत्यगीतरतो नित्यं पण्यस्त्रीभिरलङ्कृतः।
भोक्ष्ये कथं तु तद्वित्तं वैश्यान्मद्धस्तमागतम्॥२२॥

ब्राह्मण गौतम विचार करने लगा—चाहे जैसे हो, इस धन का हरण करना ही होगा। पृथिवी पर सभी जगहों पर हजारों-हजार रम्य रत्न हैं। न जाने कितने गुणमय नगर हैं, उनमें काम का इष्ट प्रदान करने वाली देवी जैसी मनोहर न जाने कितनी स्त्रियां भी रहती हैं, अब मुझे क्या करना उचित है? यत्नतः धन हरण करके यदि मैं वह स्त्रियों को प्रदान करके नित्य उनका उपभोग करूं, तभी तो जीवन सफल होगा। वैश्य से यह धन हस्तगत करने के पश्चात् मैं नित्य नृत्य-गीतरत वेश्याओं से मिलकर तथा उनके साथ अलंकृत होकर कैसे इस धन का भोग करूंगा? कैसे इस धन को मैं प्राप्त करूं?।।१९-२२।।

ब्रह्मोवाच

एवं चिन्तयमानोऽसौ गौतमः प्रहसन्निव। मणिकुण्डलमाहेदमधर्मादेव जन्तवः॥२३॥
वृद्धिं सुखमभीष्टानि प्राप्नुवन्ति न संशयः।
धर्मिष्ठाः प्राणिनो लोके दृश्यन्ते दुःखभागिनः॥२४॥
तस्माद्धर्मेण किं तेन दुःखैकफलहेतुना॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह विचार करने के अनन्तर गौतम ब्राह्मण ने हंसते हुये मणिकुण्डल से कहा—प्राणी जीवन में अधर्म द्वारा बुद्धि, अभीष्ट विषय के सुखलाभ करता है। इसमें संशय नहीं है। धार्मिक लोग दुःखभागी रहते हैं। अतः ऐसे दुःख के कारण रूप धर्म से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा?।।२३-२५।।

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच ततो वैश्यः सुखं धर्मे प्रतिष्ठितम्।
पापे दुःखं भयं शोको दारिद्र्यं क्लेश एव च।
यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनश्यति॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब वैश्य ने उत्तर दिया "नहीं! धर्म में ही सुख प्रतिष्ठित रहता है। पाप में तो दुःख, भय, शोक, दरिद्र तथा क्लेश होना अनिवार्य है। जहां धर्म है, वहीं मुक्ति है। सद्धर्म का जो आश्रय लेता है, वह विनष्ट नहीं होता।।२६।।

ब्रह्मोवाच

एवं विवदतोस्तत्र सम्परायस्तयोरभूत्। यस्य पक्षो भवेज्ज्यायान्स परार्थमवाप्नुयात्॥२७॥
पृच्छावः कस्य प्राबल्यं धर्मिणो वाऽप्यधर्मिणः।
वेदात्तु लौकिकं ज्येष्ठं लोके धर्मात्सुखं भवेत्॥२८॥
एवं विवदमानौ तावूचतुः सकलाञ्जनान्। धर्मस्य वाऽप्यधर्मस्य प्राबल्यमनयोर्भुवि॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार से तर्क करते-करते उन लोगों ने आपस में यह शर्त्त रखा कि जिसका पक्ष श्रेष्ठ होगा, वह दूसरे का धन ग्रहण कर लेगा, लेकिन धर्मी तथा अधर्मी में से कौन प्रबल है, यह किससे पूछें? ब्राह्मण गौतम ने कहा कि वैदिक की तुलना में लौकिक श्रेष्ठ है अथवा लोकों में धर्म से सुख होता है (अर्थात् वैदिक कर्म श्रेष्ठ है अथवा लौकिक अथवा लोक में धर्म से सुख मिलता है, इसका निराकरण करना है)। एवंविध विवाद उत्पन्न होने पर इन दोनों ने वहां के निवासियों से पूछा कि क्या धरती पर धर्म प्रबल है अथवा अधर्म?।।२७-२९।।

तद्वदन्तु यथावृत्तमेवमूचतुरोजसा। एवं तत्रोचिरे केचिद्ये धर्मेणानुवर्तिनः॥३०॥
तैर्दुःखमनुभूयते पापिष्ठाः सुखिनो जनाः। सम्पराये धनं सर्वं जितं विप्रे न्यवेदयत्॥३१॥
मणिमान्धर्मविच्छ्रेष्ठः पुनर्धर्मं प्रशंसति। मणिमन्तं द्विजः प्राह किं धर्ममनुशंससि।

प्रश्न का उत्तर देते हुये उन निवासियों ने कहा कि "जो धर्म पथ पर चलते हैं, वे ही दुःख उठाते हैं,

लेकिन लोक में पापी लोग सुखी रहते हैं।'' इस प्रकार से धर्मात्माओं में अग्रणी मणिकुण्डल शर्त में पराजित हो गया तथा उसने अपना समस्त धन ब्राहाण गौतम को प्रदान कर दिया। तब भी मणिकुण्डल ने धर्म की ही प्रशंसा किया था। यह सुनकर ब्राह्मण गौतम ने कहा—''तुम धर्म की प्रशंसा क्यों कर रहे हो''?।।३०-३१।।

ब्रह्मोवाच

तथेति चेत्याह वैश्यो ब्राह्मणः पुनरब्रवीत्॥३२॥

ब्रह्मा कहते हैं—मणिकुण्डल ने कहा—''मैं प्रशंसा करूंगा।'' तब गौतम ब्राह्मण ने पुनः कहा—।।३२।।

ब्राह्मण उवाच

जितं मया धनं वैश्य निर्लज्जः किंनु भाषसे। मयैव विजितो धर्मो यथेष्टचरणात्मना॥३३॥

ब्राह्मण कहता है—हे वैश्य! मैंने तुम्हारा समस्त धन जीत लिया, तथापि अव भी निर्लज्जता पूर्वक क्या कह रहे हो? मैंने मनमाना आचरण करते हुये धन जीत लिया।।३३।।

ब्रह्मोवाच

तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा वैश्यः सस्मित ऊचिवान्॥३४॥

ब्रह्मा कहते हैं—ब्राह्मण की यह कथा सुनकर वैश्य मणिकुण्डल ने आश्चर्ययुक्त होकर कहा—।।३४।।

वैश्य उवाच

पुलाका इव धान्येषु पुत्तिका इव पक्षिषु। तथैव तान्सखे मन्ये येषां धर्मो न विद्यते॥३५॥
चतुर्णां पुरुषार्थानां धर्मः प्रथम उच्यते। पश्चादर्थश्च कामश्च स धर्मो मयि तिष्ठति।
कथं ब्रूषे द्विजश्रेष्ठ मया विजितमित्यदः॥३६॥

मणिकुण्डल वैश्य कहता है—मैं धर्महीन लोगों को वैसा व्यर्थ मानता हूं, जैसे धान में भूसा तथा पक्षियों में (उड़ने वालों में) तुच्छ मक्खी। हे सखे! जिनमें धर्म नहीं है, उनको मैं ऐसा ही मानता हूं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ में धर्म पहले कहा जाता है तब अर्थ तथा काम आदि का स्थान है। ऐसा धर्म मुझमें अवस्थित है। हे द्विज! यह तुम कैसे कह सकते हो कि तुमने धर्म पर विजय पा लिया है!।।३५-३६।।

ब्रह्मोवाच

द्विजो वैश्यं पुनः प्राह हस्ताभ्यां जायतां पणः।
तथेति मन्यते वैश्यस्तौ गत्वा पुनरूचतुः॥३७॥
पूर्ववल्लौकिकान्गत्वा जितमित्यब्रवीद्द्विजः।
करौ छित्त्वा ततः प्राह कथं धर्मं तु मन्यसे।
आक्षिप्तो ब्राह्मणेनैवं वैश्यो वचनमब्रवीत्॥३८॥

ब्रह्मा कहते हैं—ब्राह्मण गौतम ने पुनः वैश्य से कहा—"पुनः हाथ की बाजी लगाओ।" वैश्य कहता है—"ठीक है।" अब उन दोनों ने वहां के निवासी व्यक्तियों से पूछा। लोगों ने पूर्ववत् उत्तर दिया। ब्राह्मण कहने लगा कि "मैं पुनः जीत गया।" हारने पर वैश्य ने दोनों हाथ कटवा लिये। यह देख कर ब्राह्मण ने कहा—"अब भी तुम धर्म को श्रेष्ठ मानते हो?" ब्राह्मण का आक्षेप सुनकर वैश्य ने कहा—।।३७-३८।।

वैश्य उवाच

धर्ममेव परं मन्ये प्राणैः कण्ठगतैरपि। माता पिता सुहृद्बन्धुर्धर्म एव शरीरिणाम्।।३९।।

वैश्य कहता है—भले ही प्राण कण्ठगत हो जाये, तब भी मैं धर्म को प्रधान ही कहूंगा। धर्म ही देहधारी लोगों का माता, पिता, सुहृद एवं बन्धु है।।३९।।

ब्रह्मोवाच

एवं विवदमानौ तावर्थवान्ब्राह्मणोऽभवत्।
विमुक्तो वैश्यकस्तत्र बाहुभ्यां च धनेन च।।४०।।
एवं भ्रमन्तौ सम्प्राप्तौ गङ्गां योगेश्वरं हरिम्।
यदृच्छया मुनिश्रेष्ठः मिथस्तावूचतुः पुनः।।४१।।
वैश्यो गङ्गां तु योगेशं धर्ममेव प्रशंसति। अतिकोपाद्द्विजो वैश्यमाक्षिपन्पुनरब्रवीत्।।४२।।

ब्रह्मा कहते हैं—पूर्वोक्त विवादों में निर्णयरूपी फल द्वारा ब्राह्मण धनी हो गया तथा वैश्य धन एवं बाहुद्वय से हीन हो गया। परन्तु वह भ्रमण करते-करते स्वेच्छा से गौतमी गंगा तट पर योगेश्वर श्रीहरि के यहां ब्राह्मण के साथ पहुंचा। हे मुनिप्रवर! वहां पर भी उन दोनों में वही विवाद छिड़ गया। तब वैश्य ने गौतमी गंगा, योगेश्वर हरि तथा धर्म की प्रशंसा प्रारम्भ कर दिया। इससे ब्राह्मण अत्यन्त कुपित होकर कहने लगा—।।४०-४२।।

ब्राह्मण उवाच

गतं धनं करौ छिन्नाववशिष्टोऽसुभिर्भवान्।
त्वमन्यथा यदि ब्रूष आहरिष्येऽसिना शिरः।।४३।।

ब्राह्मण गौतम कहता है—तुम्हारा धन, दोनों हाथ तक चला गया। अब केवल तुम्हारे प्राण बचे हैं। यदि अभी भी यही कहोगे तब तलवार की धार से तुम्हारा शिर शरीर से अलग कर दूंगा!।।४३।।

ब्रह्मोवाच

विहस्य पुनराहेदं वैश्यो गौतममञ्जसा।।४४।।

वैश्य उवाच

धर्ममेव परं मन्ये यथेच्छसि तथा कुरु। ब्राह्मणांश्च गुरून्देवान्वेदान्धर्मं जनार्दनम्।।४५।।
यस्तु निन्दयते पापो नासौ स्पृश्योऽथ पापकृत्।
उपेक्षणीयो दुर्वृत्तः पापात्मा धर्मदूषकः।।४६।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब वैश्य ने हंसते हुये गौतम से निःशंक रूप से कहा—"मैं धर्म को ही श्रेष्ठ मानता हूं। तुम जो चाहो, वह करो। जो पातकी व्यक्ति ब्राह्मण, गुरु, देवता, वेद, धर्म, जनार्दन इन सभी की निन्दा करता है, वह तो छूने योग्य भी नहीं है। पापी, दुर्वृत्त, धर्मदूषक व्यक्ति उपेक्षा के योग्य होता है।।४४-४६।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्राह स कोपेन धर्मं यद्यनुशंससि। आवयोः प्राणयोरत्र पणः स्यादिति वै मुने॥४७॥
एकमुक्ते गौतमेन तथेत्याह वणिक्तदा। पुनरप्यूचतुरुभौ लोकाँल्लोकास्तथोचिरे॥४८॥
योगेश्वरस्य पुरतो गौतम्या दक्षिणे तटे।
तं निपात्य विशं विप्रश्चक्षुरुत्पाट्य चाब्रवीत्॥४९॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब वह गौतम द्विज क्रोध पूर्वक कहने लगा कि "यदि तुम धर्म को श्रेष्ठ मानते हो, तब अब हम दोनों के प्राणों की शर्त्त लगे।" वणिक् इस शर्त्त पर राजी हो गया अब पुनः पूर्ववत् लोगों से इस सम्बन्ध में पूछा गया, लेकिन सबने पूर्ववत् ही उत्तर दिया। तदनन्तर गौतम ने वैश्य को योगेश्वर के समक्ष गौतमी तट पर पटक दिया तथा उसके दोनों नेत्र उखाड़ कर कहा—।।४७-४९।।

विप्र उवाच

गतोऽसीमां दशां वैश्य नित्यं धर्मप्रशंसया। गतं धनं गतं चक्षुश्छेदितौ करपल्लवौ।
पृष्टोऽसि मित्र गच्छामि मैवं ब्रूयाः कथान्तरे॥५०॥

ब्राह्मण गौतम कहता है—हे वैश्य! सतत् धर्म की प्रशंसा के फलस्वरूप तुमको ऐसी दशा मिली है। तुम्हारा धन गया, हाथ कट गये, अब नेत्र भी चले गये। अब मैं चला। तुम अब कभी भी ऐसा मत करना।।५०।।

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्प्रयाते वैश्योऽसौ चिन्तयामास चेतसि। हा कष्टं मे किमभवद्धर्मैकमनसो हरे॥५१॥
स कुण्डलो वणिक्श्रेष्ठो निर्धनो गतबाहुकः। गतनेत्रः शुचं प्राप्तो धर्ममेवानुसंस्मरन्॥५२॥
एवं बहुविधां चिन्तां कुर्वन्नास्ते महीतले। निश्चेष्टोऽथ निरुत्साहः पतितः शोकसागरे॥५३॥

ब्रह्मा कहते हैं—ब्राह्मण गौतम के चले जाने पर वह वैश्य चिन्ता करने लगा "हे हरि! धर्म में ही मन लगाये रहने पर भी यह कैसा कष्ट है।" वह वणिक्श्रेष्ठ मणिकुण्डल निर्धन, बाहु रहित तथा नेत्रहीन होकर भी धर्म का ही अनुसरण करके पृथिवी पर गिर कर इस प्रकार अनेक चिन्ता करने लगा। तब वह निश्चेष्ट, निरुत्साह तथा शोकसागर में निमज्जित था। इस स्थिति में भूपतित हुआ था।।५१-५३।।

दिनावसाने शर्वर्यामुदिते चन्द्रमण्डले। एकादश्यां शुक्लपक्षे तत्राऽऽयाति विभीषणः॥५४॥
स तु योगेश्वरं देवं पूजयित्वा यथाविधि। स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां सपुत्रो राक्षसैर्वृतः॥५५॥
विभीषणस्य हि सुतो विभीषण इवापरः। वैभीषणिरिति ख्यातस्तमपश्यदुवाच ह॥५६॥
वैश्यस्य वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं स धर्मवित्। पित्रे निवेदयामास लङ्केशाय महात्मने।
स तु लङ्केश्वरः प्राह पुत्रं प्रीत्या गुणाकरम्॥५७॥

क्रमशः दिन ढल गया। रात्रि आसन्न होने के कारण चन्द्रमा उदित हो गये। शुक्लपक्ष की एकादशी का वह दिन था। तब वहां राक्षसराज विभीषण आ गये। वे शुक्लपक्षीय एकादशी के दिन वहां आया करते थे। उन्होंने अपने पुत्र तथा राक्षसों के साथ गौतमीगंगा में स्नानोपरान्त योगेश्वर हरि की सविधि पूजा किया। वहां विभीषणनन्दन वैभीषणी ने जो कि विभीषण का ही प्रतिरूप होने के कारण द्वितीय विभीषण लगता था, उसने उस वैश्य को वहां पड़े देखा। वैभीषणी ने वहां आकर वैश्य का वृत्तान्त पूछा। उस धर्मवेत्ता विभीषणनन्दन ने वैश्य का समस्त समाचार जानकर वह अपने पिता से कह दिया। वह सुनकर लंकापति प्रेम के साथ अपने गुणी पुत्र से कहने लगे।।५४-५७।।

विभीषण उवाच

श्रीमान्नामो मम गुरुस्तस्य मान्यः सखा मम।
हनुमानिति विख्यातस्तेनाऽऽनीतो गिरिर्महान्॥५८॥
पुरा कार्यान्तरे प्राप्ते सर्वौषध्याश्रयोऽचलः।
जाते कार्ये तमादाय हिमवन्तमथागमत्॥५९॥
विशल्यकरणी चेति मृतसञ्जीवनीति च।
तदाऽऽनीय महाबुद्धी रामायाक्लिष्टकर्मणे॥६०॥
निवेदयित्वा तत्साध्यं तस्मिन्वृत्ते समागतः। पुनर्गिरिं समादाय आगच्छद्देवपर्वतम्॥६१॥
तामानीयास्य हृदये निवेशय हरिं स्मरन्। ततः प्राप्स्यत्ययं सर्वमपेक्षितमुदारधीः॥६२॥
गच्छतस्तस्य वेगेन विशल्यकरणी पुनः। अपतद्गौतमीतीरे यत्र योगेश्वरो हरिः॥६३॥

विभीषण कहते हैं—श्रीमान् रामचन्द्र मेरे गुरु हैं। उनके मन्त्री हनुमान मेरे सखा हैं। उन्होंने पूर्वकाल में किसी कार्य के कारण यहां एक महागिरि को लाकर जब कार्य सम्पन्न हो गया, तब उसे पुनः हिमालय पर स्थापित कर दिया। वह पर्वत सभी औषधियों का आश्रयरूप था। उसमें विशल्यकरणी तथा संजीवनी नामक महान् औषधियां भी थीं। महाबुद्धिमान् हनुमान ने वे औषधियां भगवान् श्रीराम को अर्पित किया। श्रीराम अक्लिष्ट कर्मा थे। उन औषधियों से जब कार्य सम्पन्न हो गया, तब हनुमान उस पर्वत को लेकर देवपर्वत हिमालय चले गये। उनके वापस जाते समय उनके वायुवेगी होने के कारण गौतमी तट पर जहां योगेश्वर हरि विराजित हैं, वहां विशल्यकरणी गिर गई। उस औषधि को लाकर श्रीहरि का स्मरण करके इस वैश्य के हृदय पर स्पर्श करा दो। इससे यह उदारबुद्धि वैश्य अपना वांछित प्राप्त कर लेगा।।५८-६३।।

वैभीषणिरुवाच

तामोषधीं मम पितर्दर्शयाऽऽशु विलम्ब मा।
परार्तिशमनादन्यच्छ्रेयो न भुवनत्रये॥६४॥

वैभीषणी कहता है—हे पिताश्री! आप कृपया वह औषधि मुझे प्राप्त करायें। अन्य को पीड़ा रहित करना अत्यन्त कल्याणमय कृत्य है। त्रैलोक्य में ऐसा कल्याणमय कार्य अन्य है ही नहीं।।६४।।

ब्रह्मोवाच

विभीषणस्तथेत्युक्त्वा तां पुत्रस्याप्यदर्शयत्।
इषे त्वेत्यस्य वृक्षस्य शाखां चिच्छेद तत्सुतः।
वैश्यस्य चापि वै प्रीत्या सन्तः परहिते रताः॥६५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब विभीषण ने अपने पुत्र को वह औषधि जहां थी, वह दिखला दिया। उस पुत्र ने वैश्य के प्रति प्रीति के कारण "इषेत्वा" इत्यादि मन्त्र पढ़ कर उसकी एक शाखा उस वृक्ष से तोड़ लिया। सन्तजन सदैव परहित में निरत जो रहते हैं।।६५।।

विभीषण उवाच

यत्रापतन्नगे चास्मिन्स वृक्षस्तु प्रतापवान्। तस्य शाखां समादाय हृदयेऽस्य निवेशय।
तत्स्पृष्टमात्र एवासौ स्वकं रूपमवाप्नुयात्॥६६॥

विभीषण कहते हैं—उस पर्वत पर जो वृक्ष गिरा है, उसकी शाखा इसके हृदय पर स्पर्श कराओ। उसके स्पर्श मात्र से यह व्यक्ति अपने वांछित रूप को प्राप्त कर लेगा।।६६।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं वैभीषणिरुदारधीः। तथा चकार वै सम्यक्काष्ठखण्डं न्यवेशयत्॥६७॥
हृदये स तु वैश्योऽपि सचक्षुः सकरोऽभवत्।
मणिमन्त्रौषधीनां हि वीर्यं कोऽपि न बुध्यते॥६८॥
तदेव काष्ठमादाय धर्ममेवानुसंस्मरन्। स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां तथा योगेश्वरं हरिम्॥६९॥
नमस्कृत्वा पुनरगात्काष्ठखण्डेन वैश्यकः। परिभ्रमन्नृपपुरं महापुरमिति श्रुतम्॥७०॥
महाराज इति ख्यातस्तत्र राजा महाबलः।
तस्य नास्ति सुतः कश्चित्पुत्रिका नष्टलोचना॥७१॥
सैव तस्य सुता पुत्रस्तस्यापि व्रतमीदृशम्।
देवो वा दानवो वाऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियो भवेत्॥७२॥
वैश्यो वा शूद्रयोनिर्वा सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
तस्मै देया इयं पुत्री यो नेत्रे आहरिष्यति॥७३॥
राज्येन सह देयेयमिति राजा ह्यघोषयत्। अहर्निशमसौ वैश्यः श्रुत्वा घोषमथाब्रवीत्॥७४॥

ब्रह्मा कहते हैं—पिता का वचन सुनकर उस उदार हृदय वैभीषणी ने उस शाखा के एक टुकड़े का वैश्य के हृदय से स्पर्श कराया। उसका स्पर्श होते ही वह वैश्य हाथ तथा नेत्र से पुनः युक्त हो गया। मणि, मन्त्र तथा औषधियों के उत्तम प्रभाव को कौन पूर्णतः जान सकता है? तत्पश्चात् वह वैश्य उस काष्ठखण्ड को ग्रहण करके तथा श्रीहरि का स्मरण करते-करते गौतमी गंगा में स्नानोपरान्त योगेश्वर हरि को प्रणाम करने के

पश्चात् पुनः वहां से चल पड़ा। वह घूमते-घूमते महापुर नामक प्रसिद्ध राजधानी में पहुंचा। उस नगरी का राजा महाबली महाराज नाम वाला था। उसकी एक कन्या नेत्रविहीन मात्र थी। वह पुत्रहीन था। राजा ने यह प्रतिज्ञा घोषित किया था कि जो कोई देवता, दानव, ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र चाहे किसी जाति वाला व्यक्ति भले ही वह गुणी किंवा गुणहीन क्यों न हो, जो इस कन्या को नेत्र प्रदान करेगा, उसे मैं यह राज्य तथा कन्या प्रदान करूंगा। राजा की घोषणा से अवगत होकर वैश्य ने राजा के कर्मचारी से कहा—।।६७-७४।।

वैश्य उवाच

अहं नेत्रे आहरिष्ये राजपुत्र्या असंशयम्॥७५॥

वैश्य कहता है—मैं राजकुमारी को नयन प्रदान करूंगा।।७५।।

ब्रह्मोवाच

तं वैश्यं तरसाऽऽदाय महाराज्ञे न्यवेदयत्। तत्काष्ठस्पर्शमात्रेण सनेत्राऽभून्नृपात्मजा॥७६॥
ततः सविस्मयो राजा को भवानिति चाब्रवीत्। वैश्यो राज्ञे यथावृत्तं न्यवेदयदशेषतः॥७७॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजकर्मचारी ने यह सुनकर वैश्य को साथ लिया तथा शीघ्रता पूर्वक राजा के पास जाकर यह संवाद प्रदान किया। तदनन्तर उस काष्ठ का स्पर्श कराते ही राजकुमारी को नेत्र प्राप्त हो गये। उस राजा ने तब विस्मय से पूछा "आप कौन हैं" तब वैश्य ने राजा से समस्त आपबीती का वर्णन कर दिया।।७६-७७।।

वैश्य उवाच

ब्राह्मणानां प्रसादेन धर्मस्य तपसस्तथा। दानप्रभावाद्यज्ञैश्च विविधैर्भूरिदक्षिणैः।
दिव्यौषधिप्रभावेण मम सामर्थ्यमीदृशम्॥७८॥

वैश्य कहता है—ब्राह्मणों की कृपा, धर्म, तप तथा दान के प्रभाव से, प्रचुर दक्षिणान्वित यज्ञानुष्ठान से तथा दिव्य औषधि की महिमा द्वारा मुझे यह सामर्थ्य मिला।।७८।।

ब्रह्मोवाच

एतद्वैश्यवचः श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महीपतिः॥७९॥

ब्रह्मा कहते हैं—वैश्य के इस कथन को सुनकर राजा विस्मित हो गया।।७९।।

राजोवाच

अहो महानुभावोऽयं प्रायो वृन्दारको भवेत्।
अन्यथैतादृगन्यस्य सामर्थ्यं दृश्यते कथम्।
तस्मादस्मै तु तां कन्यां प्रदास्ये राजपूर्विकाम्॥८०॥

राजा कहता है—अहा! यह महानुभाव व्यक्ति देवता होगा। अन्यथा ऐसा सामर्थ्य अन्यत्र परिलक्षित ही नहीं होता। अतः मैं इसे राज्य तथा कन्या प्रदान करूंगा।।८०।।

ब्रह्मोवाच

इति सङ्कल्पस्य मनसि कन्यां राज्यं च दत्तवान्।
विहारार्थं गतः स्वैरं परं खेदमुपागतः॥८१॥
न मित्रेण विना राज्यं न मित्रेण विना सुखम्।
तमेव सततं विप्रं चिन्तयन्वैश्यनन्दनः॥८२॥
एतदेव सुजातानां लक्षणं भुवि देहिनाम्। कृपार्द्रं यन्मनो नित्यं तेषामप्यहितेषु हि॥८३॥
महानृपो वनं प्रायात्स राजा मणिकुण्डलः।
तस्मिञ्शासति राज्यं तु कदाचिद्गौतमं द्विजम्॥८४॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा ने मन में ऐसा निश्चय करके उस वैश्य को कन्या के साथ राज्य भी दे दिया। तत्पश्चात् जब वैश्य विहार करने बाहर निकला, तब वह मित्र गौतम का अभाव होने के कारण परम खिन्न हो उठा। मित्र के बिना उसे राज्य तथा सुखैश्वर्य नहीं सुहाया। वह वैश्यपुत्र नित्य उस ब्राह्मण गौतम के लिये चिन्तित रहा करता था। सद्वंशोत्पन्न शरीरधारी का भूतल पर यही लक्षण है कि वे अहित करने वाले के प्रति भी कृपालु रहते हैं। कुछ दिनों बाद महाबली महाराज वन में तप करने चले गये, अतः मणिकुण्डल ही राजा नियुक्त किया गया। राज्यशासनरत मणिकुण्डल ने एक बार उस गौतम ब्राह्मण को देखा।।८१-८४।।

हृतस्वं द्यूतकैः पापैरपश्यन्मणिकुण्डलः। तमादाय द्विजं मित्रं पूजयामास धर्मवित्॥८५॥
धर्माणां तु प्रभावं तं तस्मै सर्वं न्यवेदयत्। स्नापयामास गङ्गायां तं सर्वाघनिवृत्तये॥८६॥
तेन विप्रेण सर्वैस्तैः स्वकीयैर्गोत्रजैर्वृतः। वैश्यैः स्वदेशसम्भूतैर्ब्राह्मणस्य तु बान्धवैः॥८७॥
वृद्धकौशिकमुख्यैश्च तस्मिन्योगेश्वरान्तिके। यज्ञानिष्ट्वा सुरान्पूज्य ततः स्वर्गमपेयिवान्॥८८॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं मृतसंजीवनं विदुः। चक्षुस्तीर्थं सयोगेशं स्मरणादपि पुण्यदम्।
मनः प्रसादजननं सर्वदुर्भावनाशनम्॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्षुस्तीर्थादिवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७०।।
गौतमीमाहात्म्ये एकाधिकशततमोऽध्यायः।।१०१।।

उस गौतम का धन पातकी द्यूतक्रीड़ा करने वालों ने हर लिया था। उस धर्मवित् वैश्य ने अपने ब्राह्मण मित्र को बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया तथा उससे धर्म का प्रभाव भी बतलाया। उस वैश्य राजा ने ब्राह्मण गौतम के सभी पापों के नाशार्थ गौतमी गंगा में स्नानार्थ भेजा। अन्त में मणिकुण्डल राजा ने गौतम ब्राह्मण, अपने वंशज, अपने देश में जन्मे वैश्य बन्धुगण, गौतम ब्राह्मण के बन्धुगण तथा उत्तम याज्ञिकों के साथ यज्ञानुष्ठान एवं योगेश्वर देव के पूजनफल द्वारा स्वर्गलाभ किया। तभी से लोग उस तीर्थ को मृतसंजीवनी भी कहते हैं। वहां के योगेश्वर तथा इस चक्षुतीर्थ के पुण्य स्मरण मात्र से मानसिक प्रसन्नता होती है तथा सभी दुर्भावना का नाश हो जाता है।।८५-८९।।

।।सप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

उर्वशीतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

उर्वशीतीर्थमाख्यातमश्वमेधफलप्रदम्। स्नानदानमहादेववासुदेवार्चनादिभिः॥१॥
महेश्वरो यत्र देवो यत्र शार्ङ्गधरो हरिः। प्रमतिर्नाम राजाऽऽसीत्सार्वभौमः प्रतापवान्॥२॥
रिपूञ्जित्वा जगामाऽऽशु इन्द्रलोकं सुरैर्वृतम्। तत्रापश्यत्सुरपतिं मरुद्भिः सह नारद॥३॥
जहासेन्द्रं पाशहस्तं प्रमतिः क्षत्रियर्षभः। तं हसन्तमथाऽऽलक्ष्य हरिः प्रमतिमब्रवीत्॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—जहां देव महेश्वर तथा शार्ङ्गधनुषधारी हरि विराजित हैं, उस उर्वशी तीर्थ में स्नान, दान महादेव तथा वासुदेवार्चन प्रभृति के द्वारा अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है। पूर्वकाल में प्रमति नामक सार्वभौम प्रतापी राजा थे। उन्होंने किसी समय शत्रुजय के उपरान्त देवताओं के साथ देवलोक गमन किया। हे नारद! राजा ने वहां देखा कि वहां इन्द्र हाथों में पासा लिये हुये देवगण से घिरे विराजमान हैं। यह देखकर क्षत्रियप्रवर प्रमति हंसने लगे। तब हंसते हुये प्रमति को देख कर इन्द्रदेव ने उनसे कहा—।।१-४।।

इन्द्र उवाच

देवालये महाबुद्धे मरुद्भिः क्रीडितैरलम्।
दिशो जित्वा दिवं प्राप्तः कुरु क्रीडां मया सह॥५॥

इन्द्र कहते हैं—हे महाबुद्धिमान्! इस स्वर्ग में देवताओं के साथ क्रीड़ा की आवश्यकता नहीं है। तुम दिग्विजय करके यहां आये हो। मेरे साथ क्रीड़ा करो।।५।।

ब्रह्मोवाच

सकषायं हरिवचो निशम्य प्रमतिर्नृपः। तथेत्युवाच देवेन्द्रं निष्कृतिं कां तु मन्यसे।
तच्छ्रुत्वा प्रमतेर्वाक्यं सुरराण्नृपमब्रवीत्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र का यह उपहासपूर्ण वचन सुनकर राजा ने कहा—"ठीक है! तथापि इसमें आप बाजी क्या लगा रहे हैं?" यह सुनकर देवराज इन्द्र राजा से कहने लगे।।६।।

इन्द्र उवाच

उर्वश्येव पणोऽस्माकं प्राप्या या निखिलैर्मखैः॥७॥

देवराज कहते हैं—उर्वशी की ही मेरी ओर से बाजी लगायी जायेगी। इसे तो अखिल यज्ञों से ही पाया जा सकता है।।७।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेन्द्रवचनं प्रमतिः प्राह गर्वितः। उर्वशीं निष्कृतिं मन्ये त्वं राजन्किं नु मन्यसे॥८॥

यद्ब्रवीषि सुरेशान तन्मन्येऽहं शतक्रतो। प्राहेन्द्रं प्रमतिस्तद्वन्निष्कृत्यै दक्षिणं करम्।
सवर्म सशरं धर्म्यं देहि (मन्ये) दीव्यामहे वयम्॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र का कथन सुनकर राजा प्रमति ने गर्व पूर्वक कहा—"ठीक है! उर्वशी तो उचित बाजी है।" अब इन्द्रदेव ने कहा—"राजन्! आपकी ओर से क्या बाजी लगाई जा रही है?" राजा ने कहा—"हे सुरेश! शतक्रतु! जो आप चाहें, मेरी वही बाजी रहेगी।" इन्द्र ने कहा—"तब आप अपना कवच, बाण, धनुष दाहिने हाथ पर बाजी के रूप में रखिये"।।८-९।।

ब्रह्मोवाच

तावेवं संविदं कृत्वा देवनायोपतस्थतुः। प्रमतिर्जितवांस्तत्र उर्वशीं दैवतस्त्रियम्॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—वे दोनों एवंविध बाजी निश्चित करके द्यूतक्रीड़ारत हो गये। इस क्रीड़ा में प्रमति देवाङ्गना उर्वशी को जीत कर गर्व पूर्वक इन्द्र से कहने लगे।।१०।।

प्रमतिरुवाच

निष्कृत्यै पुनरन्यन्मे पश्चाद्दीव्ये त्वया विभो॥११॥

प्रमति कहता है—हे प्रभो! अब आप बाजी लगायें।।११।।

इन्द्र उवाच

देवयोग्यमथो वज्रं जैत्रं सरथमुत्तमम्। दीव्येऽहं तेन नृपते करेणाप्यविचारयन्॥१२॥

इन्द्रदेव कहते हैं—हे श्रेष्ठ नृपति! देवगण के ही व्यवहारार्थ जो वज्र तथा मेरा जैत्र रथ है, उसकी बाजी लगाता हूं। मैं आपके हाथों (आपकी ओर से) कोई बाजी नहीं रखवाना चाहता। इस प्रकार हम द्यूत क्रीड़ा करेंगे।।१२।।

ब्रह्मोवाच

स गृहीत्वा तदा पाशानन्यांश्च मणिभूषितान्।
जितमित्यब्रवीच्छक्रं प्रमतिः प्रहसंस्तदा॥१३॥
एतस्मिन्नन्तरे प्रायादक्षज्ञस्तत्र नारद। विश्वावसुरिति ख्यातो गन्धर्वाणां महेश्वरः॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! तदनन्तर राजा प्रमति ने हंसते हुये मणियों से भूषित पासा लेकर फेंका तथा प्रसन्नता से हंसते हुये कहा—"मैं जीत गया।" इसी बीच वहां पर द्यूत क्रीड़ा में अत्यन्त पारंगत विश्वावसु गन्धर्वराज आ गया।।१३-१४।।

विश्वावसुरुवाच

गन्धर्वविद्यया राजंस्तया दीव्यामहे त्वया। तथेत्युक्त्वा स नृपतिर्जितमित्यब्रवीत्तदा॥१५॥
तां जित्वा नृपतिर्मौर्ख्याद्देवेन्द्रं प्राह कश्मलम्॥१६॥

विश्वावसु गन्धर्व कहता है—"हे राजन्! मैं आपसे द्यूतक्रीड़ा करना चाहता हूं। मैं अपनी गन्धर्वविद्या

की बाजी लगाता हूं।'' राजा ने इस शर्त्त को मानकर पासा फेंका तथा बाजी जीत कर इन्द्र से कहा—''मैं जीत गया।'' तब प्रमति ने इन्द्र तथा गन्धर्व पर विजय पाकर अपनी मूर्खता के कारण यह वाक्य इन्द्र को कष्ट पहुंचाते हुये कहा—।।१५-१६।।

प्रमतिरुवाच

रणे वा देवने वाऽपि न त्वं जेता कथञ्चन। महेन्द्र सततं तस्मादस्मदाराधको भव।
वद केन प्रकारेण जाता देवेन्द्रता तव॥१७॥

राजा प्रमति कहता है—हे इन्द्र! आप मुझसे रण में तथा द्यूत में, कहीं भी विजयी नहीं हो सके। हे महेन्द्र! आप सदैव मेरी आराधना करिये। यह कहिये कि आप ऐसी स्थिति में इन्द्र कैसे हो गये?।।१७।।

ब्रह्मोवाच

तथा प्राहोर्वशीं गर्वाद्गच्छ कर्मकरी भव। उर्वशी प्राह देवेषु यथा वर्ते तथा त्वयि।
वर्तेयं सर्वभावेन न मां धिक्कर्तुमर्हसि॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा प्रमति ने उर्वशी से भी गर्वपूर्ण वाक्य में कहा—''तुम मेरे यहां काम करने वाली (नौकरानी) हो जाओ।'' तब उर्वशी ने कहा—''मैं जैसे देवताओं से व्यवहार करती हूं, वैसा ही आपके साथ करूंगी (निन्दित कार्य नहीं करूंगी)। मुझे धिक्कारिये नहीं!।।१८।।

ब्रह्मोवाच

ततस्तां प्रमतिः प्राह त्वादृश्यः सन्ति चारिकाः।
त्वं किं विलज्जसे भद्रे गच्छ कर्मकरी भव॥१९॥
एतच्छ्रुत्वा नृपेणोक्तं गन्धर्वाधिपतिस्तदा।
चित्रसेन इति ख्यातः (प्राह) सुतो विश्वावसोर्बली॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर प्रमति राजा ने कहा—''हे भद्रे! तुम्हारे समान न जाने मेरी कितनी परिचारिकायें हैं। हे भद्रे! काम करने में तुम लज्जा क्यों कर रही हो। मेरी कर्मकरी (नौकरानी) का कार्य जाकर करो।'' राजा का यह सब कथन सुनकर गन्धर्व विश्वावसु के भाई गन्धर्वाधिपति बली प्रसिद्ध चित्रसेन ने कहा—।।१९-२०।।

चित्रसेन उवाच

दीव्येऽहं वै त्वया राजन्सर्वेणानेन भूपते। राज्येन जीवितेनापि मदीयेन तवापि च॥२१॥

चित्रसेन गन्धर्व कहता है—हे राजन्! मैं तुम्हारे साथ द्यूतक्रीड़ा करूंगा। हे भूपति! हम दोनों राज्य एवं जीवन की शर्त्त रख कर खेलें।।२१।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा पुनरुभौ चित्रसेननृपोत्तमौ। दीव्येतामभिसरंब्धौ चित्रसेनोऽजयत्तदा॥२२॥

गान्धर्वैस्तं महापाशैर्बबन्ध नृपतिं तदा। चित्रसेनोऽजयत्सर्वमुर्वशीमुख्यतः पणैः॥२३॥
राज्यं कोशं बलं चैव यदन्यद्वसु किञ्चन। चित्रसेनस्य तज्जातं यदासीत्प्रमतेर्धनम्॥२४॥
तत्र पुत्रो बाल एव पुरोधस मुवाच ह। विश्वामित्रं महाप्राज्ञं मधुच्छन्द समोजसा॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस राजा प्रमति ने चित्रसेन का वाक्य सुन कर कहा—"यही हो।" तत्पश्चात् चित्रसेन तथा प्रमति क्रुद्ध भाव से द्यूतक्रीड़ा करने लगे। इसमें चित्रसेन ने विजय पा लिया। उसने गन्धर्वपाश द्वारा राजा को आबद्ध करके इस बाजी में उर्वशी आदि राजा द्वारा पहले जीती गई सभी वस्तु, अस्त्रादि तथा उर्वशी को भी जीत लिया। चित्रसेन गन्धर्व ने राजा का सर्वस्व राज्य, कोष, सैन्य, धन सब कुछ अधिकृत कर लिया। यह देख कर प्रमति पुत्र सुमति बालक ने अपने पुरोहित महाप्राज्ञ विश्वामित्रनन्दन मधुच्छन्दा से व्यग्रता पूर्वक पूछा।।२४-२५।।

प्रमतिपुत्र उवाच

किं मे पित्रा कृतं पापं क्व वा बद्धो महामतिः।
कथमेष्यति स्वं स्थानं कथं पाशैर्विमोक्ष्यते॥२६॥

प्रमति का पुत्र कहता है—मेरे पिता ने कौन सा पातक किया था? वे कहां आबद्ध हैं? वे महामति उस पाश के बन्धन से कैसे मुक्त हो सकते हैं? किस प्रकार वे अपने स्थान (राज्य में) पर आ सकेंगे?।।२६।।

ब्रह्मोवाच

सुमतेर्वचनं श्रुत्वा ध्यात्वा स मुनिसत्तमः। मधुच्छन्दा जगादेदं प्रमतेर्वर्तनं तदा॥२७॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजकुमार सुमति का कथन सुनकर मुनिसत्तम मधुच्छन्दा ने ध्यान किया तथा वे इस प्रकार से सुमति के प्रश्न का उत्तर देने लगे।।२७।।

मधुच्छन्दा उवाच

देवलोके तव पिता बद्ध आस्ते महामते। कैतवैर्बहुदोषैश्च भ्रष्टराज्यो बभूव ह॥२८॥
यो याति कैतवसभां स चापि क्लेशभाग्भवेत्।
द्यूतमद्यामिषादीनि व्यसनानि नृपात्मज॥२९॥
पापिनामेव जायन्ते सदा पापात्मकानि हि। एकैकमप्यनर्थाय पापाय नरकाय च॥३०॥
यानासनाभिलापाद्यैः कृतैः कैतववर्तिभिः।
कुलीनाः कलुषीभूताः किं पुनः कितवो जनः॥३१॥
कितवस्य तु या जाया तप्यते नित्यमेव सा।
स चापि कितवः पापो योषितं वीक्ष्य तप्यते॥३२॥

महर्षि मधुच्छन्दा कहते हैं—हे महामति! तुम्हारे पिता द्यूतक्रीड़ा के कारण जो अनेक दोषयुक्त कर्म है, राज्य से भ्रष्ट होकर देवलोक में बांधे गये हैं। द्यूत की सभा में भी जो जाता है, वह भी दुःखभागी हो जाता है। हे राजपुत्र! द्यूत, मद्य, मांसादि को व्यसन कहा जाता है। पापीगण ही ऐसे पापात्मक व्यसन में भाग लेते

हैं। यह प्रत्येक पातक तथा नरक का हेतु है। जुआरी के साथ एक यान में यात्रा करने अथवा एक आसन पर बैठने अथवा वार्त्ता करने से कुलीन लोग भी कलुषित हो जाते हैं। अतः द्यूत की बात और अधिक क्या कहूं? जुआरी की पत्नी नित्य परितप्त, दुःखी बनी रहती है। वह द्यूतक्रीड़ा करने वाला भी पत्नी की ऐसी दशा देख कर परितप्त होता रहता है।।२८-३२।।

तां दृष्ट्वा विगतानन्दो नित्यं वदति पापकृत्।
अहो संसारचक्रेऽस्मिन्मया तुल्यो न पातकी॥३३॥
न किञ्चिदपि यस्याऽऽस्ते लोके विषयजं सुखम्।
लोकद्वयेऽपि न सुखी कितवः कोऽपि दृश्यते॥३४॥
विभाति च तथा नित्यं लज्जया दग्धमानसः।
गतधर्मो निरानन्दो ग्रस्तगर्वस्तथाऽटति॥३५॥
अकैतवी च या वृत्तिः सा प्रशस्ता द्विजन्मनाम्।
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यमपि कुर्यान्न कैतवम्॥३६॥
यस्तु कैतववृत्त्या हि धनमाहर्तुमिच्छति। धर्मार्थकामाभिजनैः सा विमुच्येत पौरुषात्॥३७॥
वेदेऽपि दूषितं कर्म तव पित्रा तदाऽऽदृतम्।
तस्मात्किं कुर्महे वत्स यदुक्तं ते विधीयते॥३८॥
विधातृविहितं मार्गं को नु वाऽत्येति पण्डितः॥३९॥

वह जुआरी अपनी स्त्री की यह अवस्था देख कर पश्चात्ताप करता आनन्दशून्य होकर कहता है "हाय! इस संसारचक्र में मेरे समान पातकी कोई नहीं है। जो जुआरी है, उसे इस संसार में कोई भी विषयजनित सुख नहीं मिलता। इहलोक तथा परलोक में कहीं भी जुआरी व्यक्ति को सुखी नहीं देखा गया है। वह नित्य लज्जा से मनस्ताप करता लक्षित होता है। वह धर्महीन, आनन्दहीन, नष्ट सम्मान होकर इतःस्ततः भटकता रहता है। ब्राह्मण के लिये द्यूत रहित वृत्ति ही उत्तम कही गयी है। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य सभी ब्राह्मण कर ले, परन्तु द्यूतक्रीड़ा न करे। जो द्यूत से धनोपार्जन की इच्छा रखता है, उसका धर्म, अर्थ, काम तथा पौरुष भी नष्ट हो जाता है। तुम्हारे पिता ने वह कर्म किया है, जिसे वेद ने भी दूषित कहा है। हे वत्स! ऐसी स्थिति में हम क्या करें। जो कहो, वही हम करें। प्रभु विधाता के मार्ग का कौन विद्वान् अतिक्रमण कर सकेगा?।।३३-३९।।

ब्रह्मोवाच

एतत्पुरोधसो वाक्यं श्रुत्वा सुमतिरब्रवीत्॥४०॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार से पुरोहित का कथन सुनकर सुमति ने कहा—।।४०।।

सुमतिरुवाच

किं कृत्वा प्रमतिस्तातः पुना राज्यमवाप्नुयात्॥४१॥

सुमति कहता है—मैं क्या करूं, जिससे प्रमति पुनः राज्यलाभ कर सकेंगे?।।४१।।

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा मधुच्छन्दाः सुमतिं चेदमब्रवीत्॥४२॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब ऋषि मधुच्छन्दा ने पुनः ध्यान करने के अनन्तर सुमति से कहा—।।४२।।

मधुच्छन्दा उवाच

गौतमीं याहि वत्स त्वं तत्र पूजय शङ्करम्।
अदितिं वरुणं विष्णुं ततः पाशाद्विमोक्ष्यते॥४३॥

ऋषि मधुच्छन्दा कहते हैं—हे वत्स! तुम गौतमी तट पर जाकर वहां शंकरार्चन करो। वहां अदिति, वरुण, विष्णु की भी पूजा करो। इससे प्रमति पाशमुक्त हो जायेंगे।।४३।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामाऽऽशु गङ्गां नत्वा जनार्दनम्। पूजयामास शम्भुं च तपस्तेपे यतव्रतः॥४४॥
सहस्रमेकं वर्षाणां बद्धं पितरमात्मनः। मोचयामास देवेभ्यः पुना राज्यमवाप सः॥४५॥
शिवे (हरी) शाभ्यां मुक्तपाशो राज्यं प्राप सुतात्स्वकात्।
अवाप्य विद्यां गान्धर्वीं प्रियश्चाऽऽसीच्छतक्रतोः॥४६॥
शाम्भवं वैष्णवं चैव उर्वशीतीर्थमेव च। ततः प्रभृति तत्तीर्थं कैतवं चेति विश्रुतम्॥४७॥
शिवविष्णुसरिन्मातुः प्रसादादाप्यते न किम्।
तत्र स्नानं च दानं च बहुपुण्यफलप्रदम्।
पापपाशविमोक्षं तु सर्वदुर्गतिनाशनम्॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उर्वश्यादितीर्थवर्णनं नामैकसप्त्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७१।।

गौतमीमाहात्म्ये द्व्यधिकशततमोऽध्यायः।।१०२।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब सुमति ने कहा—"ऐसा ही करूंगा।" तदनन्तर वह शीघ्र गौतमी गंगा तट पर गया तथा वहां स्नानोपरान्त प्रभु जनार्दन आदि का पूजन तथा नमस्कार करने के उपरान्त व्रताचरण करता तप करने लगा। उसने एक हजार वर्ष पर्यन्त तपःश्चरण करके देवताओं से वरलाभ किया तथा अपने पाशबद्ध पिता को बन्धनमुक्त करने में समर्थ हो गया। प्रमति ने पुनः राज्यलाभ किया। उन्होंने पुत्र के प्रयत्न से तथा हरि एवं शिव की कृपा से पाप रहित होकर राज्यलाभ एवं गान्धर्वी विद्या प्राप्त किया। इस प्रकार वे इन्द्र के प्रिय हो गये। उसी समय से यह तीर्थ शांभव, वैष्णव, उर्वशीतीर्थ तथा केशवतीर्थ नाम से प्रख्यात हो गया। शिव, विष्णु तथा नदियों की माता गौतमी गंगा की कृपा से क्या नहीं मिल सकता। यहां पर स्नान-दान बहुपुण्यकारक तथा पापपाश विमोचक एवं सर्वसिद्धिप्रद है।।४४-४८।।

।।एकसप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सामुद्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

सामुद्रं तीर्थमाख्यातं सर्वतीर्थफलप्रदम्। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः॥१॥
विसृष्टा गौतमेनासौ गङ्गा पापप्रणाशनी। लोकानामुपकारार्थं प्रायात्पूर्वार्णवं प्रति॥२॥
आगच्छन्ती देवनदी कमण्डलुधृता मया। शिरसा च धृता देवी शम्भुना परमात्मना॥३॥
विष्णुपादात्प्रसूतां तां ब्राह्मणेन महात्मना। आनीतां मर्त्यभवनं स्मरणादघनाशनीम्॥४॥
गुरोर्गुरुतमां सिन्धुर्दृष्ट्वा कृत्यमचिन्तयत्। या वन्द्या जगतामीशा ब्रह्मेशाद्यैर्नमस्कृता॥५॥
तामहं प्रतिगच्छेयं नो चेत्स्याद्धर्मदूषणम्। आगच्छन्तं महात्मानं यो मोहान्नोपतिष्ठते॥६॥
न तस्य कोऽपि त्राताऽस्ति पापिनो लोकयोर्द्वयोः।
एवं विमृश्य रत्नेशो मूर्तिमान्विनयान्वितः।
कृताञ्जलिपुटो गङ्गामाहेदं सरितान्पतिः॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! सामुद्र नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। वह सर्वतीर्थफलदायक है। उसका स्वरूप कहता हूं। तन्मय होकर श्रवण करो। जब गौतम ने धरती पर गंगा का अवतरण कराया तब अखिल पापनाशिनी गंगा लोगों के उपकार के लिये पूर्व समुद्र की ओर प्रधावित हो गईं। देवी देवनदी आगमन काल में मेरे कमण्डलु में तथा शंभु के शिर में स्थित हो गई थीं। विष्णु के चरणकमलों से निर्गत यह देवनदी महात्मा ब्राह्मण गौतम द्वारा मर्त्यलोक में लाई गई। यह स्मरण मात्र से पातकनाशिनी तथा गुरु की भी गुरु है। इन गंगा को देख कर सागर अपने कर्त्तव्य का विचार करने लगे कि जो समस्त जगत् की वन्दनीया ईश्वरी हैं, ब्रह्मा-शिवादि देवताओं से भी प्रणम्य हैं, मैं उनसे संगम करूंगा। इससे धर्मदूषण नहीं होगा; क्योंकि जो महात्मा के आने पर उनकी अभ्यर्थना मोह के कारण नहीं करता, उस पातकी का इहलोक तथा परलोक नष्ट हो जाता है। उसका रक्षक कहीं कोई नहीं रह जाता! यह विचार करके रत्नेश सागर विनयमूर्त्ति होकर हाथ जोड़कर गंगा से कहने लगे।।१-७।।

सिन्धुरुवाच

रसातलगतं वारि पृथिव्यां यन्नभस्तले। तन्मामेवात्र विशतु नाहं वक्ष्यामि किञ्चन॥८॥
मयि रत्नानि पीयूषं पर्वता राक्षसासुराः। एतानप्यखिलानन्यान्भीमान्सन्धारयाम्यहम्॥९॥
ममान्तः कमलायुक्तो विष्णुः स्वपिति नित्यदा।
ममाशक्यं न किमपि विद्यते सचराचरे॥१०॥
महत्यभ्यागते कुर्यात्प्रत्युत्थानं न यो मदात्।
स धर्मादिपरिभ्रष्टो निरयं तु समाप्नुयात्॥११॥

न तान्मे बिभ्रतः खेदो विनाऽगस्त्यपराभवात्।
किन्तु त्वं गौरवेणैषामतिरिक्ता ततस्त्वहम्॥१२॥

सिन्धु कहते हैं—जिनका जल रसातल, पृथिवी में स्थित है, जिनका जल आकाश से उत्पन्न है, वे सतत् मुझमें प्रवेश करें। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं रत्न, अमृत, देवता, असुरों के साथ पर्वत—यह सब मैं धारण कर लेता हूं। मुझमें कमला विराजमान हैं। विष्णु नित्य मुझमें शयन करते हैं। चराचर में मेरे लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। जो लोग महाजन अतिथि देखकर मद के कारण उसका स्वागत उठ कर नहीं करते, वे धर्म आदि से भ्रष्ट होकर नरक जाते हैं। मैंने पूर्वोक्त वस्तु धारण किया है तथापि अगत्स्य ऋषि से मैं पराजित हो गया। इसके अतिरिक्त मुझे कोई अन्य खेद नहीं है। तथापि आपका गौरव तो इन सबसे अतिरिक्त (अधिक) है।।८-१२।।

ब्रवीमि देवी गङ्गे मां त्वं साम्यात्सङ्गता भव।
नैकरूपामहं शक्तः सङ्गन्तुं बहुधा यदि॥१३॥
सङ्गमेष्यसि देवि त्वं सङ्गच्छेऽहं न चान्यथा। गङ्गे समेष्यसि यदि बहुधा तद्विचारये॥१४॥

हे देवी गंगे! आप साम्यता पूर्वक मुझमें मिल जायें। यदि आप अनेकरूपा होकर संगम करें, तभी मैं आपके साथ संगम कर सकूंगा। इससे अन्यथा होने पर संगम नहीं कर सकूंगा। आप विचार करिये तथा बहुरूपा होकर संगम करिये।।१३-१४।।

ब्रह्मोवाच

तमेवंवादिनं सिन्धुमपामीशं तदाऽब्रवीत्। गङ्गा सा गौतमी देवी कुरु चैतद्वचो मम॥१५॥
सप्तर्षीणां च या भार्या अरुन्धतिपुरोगमाः।
भर्तृभिः सहिताः सर्वा आनय त्वं तदा त्वहम्॥१६॥
अल्पभूता भविष्यामि ततः स्यां तव सङ्गता।
तथेत्युत्त्वा सप्तर्षीणां भार्याभिर्ऋ (श्चऋ) षिभिर्वृतः (ताः)॥१७॥
आनयामास तां (ता) देवी सप्तधा सा व्यभज्यत।
सा चेयं गौतमी गङ्गा सप्तधा सागरं गता॥१८॥
सप्तर्षीणां तु नाम्ना तु सप्त गङ्गास्ततोऽभवन्।
तत्र स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा॥१९॥
स्मरणं चापि यद्भक्त्या सर्वकामप्रदं भवेत्। नास्मादन्यत्परं तीर्थं समुद्राद्भुवनत्रये।
पापहानौ भुक्तिमुक्तिप्राप्तौ च मनसो मुदे॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तधागोदावरीसमुद्रागमनवर्णनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७२।।

गौतमीमाहात्म्ये त्रिःशततमोऽध्यायः।।१०३।।

ब्रह्मा कहते हैं—जब जलपति समुद्र यह कह रहे थे, तभी भगवती गौतमीगंगा ने कहा—"तब आप यह करें कि अरुन्धती आदि सप्तर्षि पत्नियों को यहां उनके पतिगण के साथ ले आयें। उस समय मैं सीमितरूपा होकर आपके साथ संगम (मिलन) करूंगी।" तब सागर ने 'तथास्तु' कहा और सभी सातों सप्तर्षिदम्पति को वहां पर ले आये। उस समय गंगा भी सप्त भाग में विभक्त होकर सप्तधारावती होकर समुद्र में मिल गयीं। ये सप्तर्षियों के नाम वाली सप्तगंगायें हैं। वहां स्नान-दान-श्रवण तथा पाठ से अथवा स्मरण मात्र से ही जो कुछ वहां कर्म किया जाये, वह सर्वकाम फलदायक हो जाता है। इस समुद्र की अपेक्षा पापनाशक, भुक्ति-मुक्ति प्रदाता त्रैलोक्य में कोई तीर्थ नहीं है।।१५-२०।।

।।द्विसप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

ऋषिसत्रमिति ख्यातमृषयः सप्त नारद। निषेदुस्तपसे यत्र यत्र भीमेश्वरः शिवः।।१।।
तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये देवर्षिपितृबृंहितम्। शृणु यत्नेन वक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम्।।२।।
सप्तधा व्यभजन्गङ्गामृषयः सप्त नारद। वासिष्ठी दाक्षिणेयी स्याद्वैश्वामित्री तदुत्तरा।।३।।
वामदेव्यपरा ज्ञेया गौतमी मध्यतः शुभा। भारद्वाजी स्मृता चान्या आत्रेयी चेत्यथापरा।।४।।
जामदग्नी तथा चान्या व्यपदिष्ट तु सप्तधा। तैः सर्वैर्ऋषिभिस्तत्र यष्टुमिष्टै महात्मभिः।।५।।
निष्पादितं महासत्रमृषिभिः पारदर्शिभिः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां प्रबलो रिपुः।।६।।
विश्वरूप इति ख्यातो मुनीनां सत्रमभ्यगात्। ब्रह्मचर्येण तपसा तानाराध्य यथाविधि।
विनयेनाथ पप्रच्छ ऋषीन्सर्वाननुक्रमात्।।७।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! पूर्वकाल में जहां पर सप्तर्षियों ने तप किया था, वहां भीमेश्वर तीर्थ विराजित है। यह तीर्थ ऋषिसत्र नाम से भी प्रसिद्ध है। यह सर्वकामप्रद, शुभ, देव-ऋषि-पितृबृंहित है। इसका वृत्तान्त कहता हूं। यत्नतः सुनो। सप्तर्षिगण के नाम के अनुसार गंगा की सप्तधारा का नाम है। हे नारद! जैसे दक्षिण धारा वासिष्ठी, उत्तर में वैश्वामित्री। वामदेव तृतीय धारा है। मध्य धारा पवित्र गौतमी है, जो शुभप्रदा है। अन्य धारायें हैं भारद्वाजी, आत्रेयी, जामदग्नी। एवंविध यह गंगा सप्तधारावती है। सभी महात्मा ऋषिगण ने यज्ञ की इच्छा किया। इन महात्मा भविष्यद्रष्टा ऋषिगण ने यज्ञ का महासत्र प्रारम्भ कर दिया। इसी अवसर पर वहां

विश्वरूप नामक प्रसिद्ध देवशत्रु मुनियों के सत्र में आ गया! उस विश्वरूप ने वहां ब्रह्मचर्य पालन एवं तप से सविधि मुनिगण की क्रम पूर्वक आराधना किया था। तदनन्तर उसने विनय पूर्वक उनसे प्रश्न किया।।१-७।।

विश्वरूप उवाच

ध्रुवं सर्वे यथाकामं मम स्वास्थ्येन हेतुना। यथा स्याद्बलवान्पुत्रो देवानामपि दुर्धरः।
यज्ञैर्वा तपसा वाऽपि मुनयो वक्तुमर्हथ॥८॥

विश्वरूप कहता है—हे मुनिगण! तप अथवा यज्ञ द्वारा जिस किसी प्रकार से मेरी सुख-शान्ति के हेतुभूत, बली, देवदुर्जय पुत्र प्राप्त हो, आप सब लोग आपस में निश्चित करके वह उपाय कहिये।।८।।

ब्रह्मोवाच

तत्र प्राह महाबुद्धिर्विश्वामित्रो महामनाः॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—उन ऋषिगण में से महामना महाबुद्धि विश्वामित्र ने कहा—।।९।।

विश्वामित्र उवाच

कर्मणा तात लभ्यन्ते फलानि विविधानि च।
त्रयाणां कारणानां च कर्म प्रथमकारणम्॥१०॥
ततश्च कारणं कर्ता ततश्चान्यत्प्रकीर्तितम्। उपादानं तथा बीजं न च कर्म विदुर्बुधाः॥११॥
कर्मणां कारणत्वं च कारणे पुष्कले सति।
भावाभावौ फले दृष्टौ तस्मात्कर्माश्रितं फलम्॥१२॥
कर्मापि द्विविधं ज्ञेयं क्रियमाणं तथा कृतम्।
कर्त्तव्यं क्रियमाणस्य साधनं यद्यदुच्यते॥१३॥
तद्भावाः कर्मसिद्धौ च उभयत्रापि कारणम्।
यद्यद्भावयते जन्तुः कर्म कुर्वन्विचक्षणः॥१४॥
तद्भावनानुरूपेण फलनिष्पत्तिरुच्यते। करोति कर्म विधिवद्विना भावनया यदि॥१५॥
अन्यथा स्यात्फलं सर्वं तस्य भावानुरूपतः।
तस्मात्तपो व्रतं दानं जपयज्ञादिकाः क्रिया॥१६॥
कर्मणस्त्वनुरूपेण फलं दास्यन्ति भावतः।
तस्माद्भावानुरूपेण कर्म वै दास्यते फलम्॥१७॥

ऋषि विश्वामित्र कहते हैं—हे तात्! कर्म से ही विविध फल की प्राप्ति होती है। तीन प्रकार के कारणों में से कर्म को ही प्रधान माना गया है। द्वितीय कारण है कर्त्ता, जो कर्म करता है। तदनन्तर अन्य कारण कहे जाते हैं। जब कारण की अधिकता होती है, तब कर्मों में कारणत्व कहा जाता है। विद्वत् वर्ग वाले यह नहीं मानते कि उपादान तथा बीज रहने पर ही कर्म होगा। कर्म हेतु एक कारण होना चाहिये और कारणत्व की

प्रबलता भी प्रयोज्य है। कर्मफल दो कहे गये हैं। यथा—क्रियमाण एवं कृत। कर्त्तव्य ही क्रियमाण का साधनभूत होता है। कर्त्तव्य की भावना रहने पर ही कर्म तथा उसकी सिद्धि होती है। विचक्षण प्राणी कर्मकाल में जो भावना करता है, उस भावना के अनुरूप ही उसे फललाभ होता है। यदि भावना बिना सविधि भी कर्म किया जाता है, तथापि वह भावना के प्रतिकूल फललाभ करता है। तभी तप, दान, व्रत, जप, यज्ञ आदि सभी क्रियायें कर्मानुष्ठान कालीन भावानुरूप ही फलदान करते हैं। अतः भावनानुरूप कर्मफललाभ होता है।।१०-१७।।

भावस्तु त्रिविधो ज्ञेयः सात्त्विको राजसस्तथा।
तामसस्तु तथा ज्ञेयः फलं कर्मानुसारतः॥१८॥
भावनानुगुणं चेति विचित्रा कर्मणां स्थितिः।
तस्मादिच्छानुसारेण भावं कुर्याद्विचक्षणः॥१९॥
पश्चात्कर्मापि कर्तव्यं फलदाताऽपि तद्विधम्।
फलं ददाति फलिनां फलं यदि प्रवर्तते॥२०॥
कर्मकारो न तत्रास्ति कुर्यात्कर्म स्वभावतः। तदेव चोपदानादि सत्त्वादिगुणभेदतः॥२१॥
भावत्प्रारभते तद्वद्भावैः फलमवाप्यते। धर्मार्थकाममोक्षाणां कर्म चैव हि कारणम्॥२२॥
भावस्थितं भवेत्कर्म मुक्तिदं बन्धकारणम्। स्वभावानुगुणं कर्म स्वस्यैवेह परत्र च॥२३॥
फलानि विविधान्याशु करोति समतानुगम्।
एक एव पदार्थोऽसौ भावैर्भेदः प्रदृश्यते॥२४॥
क्रियते भुज्यते वाऽपि तस्माद्भावो विशिष्यते।
यथाभावं कर्म कुरु यथेप्सितमवाप्स्यसि॥२५॥

भाव तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—सात्विक, राजस, तामस। इनका फल भी कर्मानुरूप ही होता है। कर्म की गति विचित्र है। अतएव विचक्षण व्यक्ति पहले स्वेच्छानुसार भाव करे। तदनन्तर कर्मानुष्ठान करना चाहिये। फलप्रदाता (ईश्वर आदि अथवा स्वामी) गण कर्मकर्त्ता को भावनानुरूप फल प्रदान करते हैं। सत्य तो यह है कि कर्म करने वाला स्वभावानुरूप कर्म निष्पन्न करता है। फलवान् लोगों की फलेच्छा ही फलप्रदान करती है। वह कर्म उपादान प्रभृति कारण द्वारा तथा सत्वादि गुणभेद से भाव से प्रारम्भ होता है। तदनुरूप भाव से फललाभ होता है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, इनका कारण कर्म ही है। जो कर्म भावना से युक्त है, वह मोक्षप्रद है। अन्य भावनायुक्त कर्म बन्धन का कारण भी है। अपनी भावना के अनुरूप कृत कर्म इहलोक में तथा परलोक में शीघ्र ही नाना फलप्रद हो जाता है। भाव भेद से एक ही पदार्थ भिन्न रूप प्रतीत होने लगता है। मूलतः एक ही पदार्थ ''बनाया गया'' तथा ''खाया गया'' इस भेद से विभिन्न लगता है। अतः भाव ही विशिष्ट है। जैसा भाव, वैसा ही कर्म करने पर इच्छित फल भी मिल सकेगा।।१८-२५।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ऋषेर्वाक्यं विश्वामित्रस्य धीमतः। तपस्तप्त्वा बहुकालं तामसं भावमाश्रितः॥२६॥

विश्वरूपः कर्म भीमं चकार सुरभीषणम्।
पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु वार्यमाणोऽपि नित्यशः॥२७॥
आत्मकोपानुसारेण भीमं कर्म तथाऽकरोत्!। भीषणे कुण्डखाते तु भीषणे जातवेदसि॥२८॥
भीषणं रौद्रपुरुषं ध्यात्वाऽऽत्मानं गुहाशयम्। एवं तपन्तमालक्ष्य वागुवाचाशरीरिणी॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—धीमान् विश्वामित्र का यह वचन सुनकर विश्वरूप ने तामस भाव का आश्रय लिया तथा दीर्घकाल तप द्वारा देवगण के लिये भीषण लगने वाले कर्म को किया। वे ऋषिगण के ही समक्ष यह कर्म कर रहे थे। ऋषिगण नित्य उनको इस कर्म से विरत होने के लिये कहते, तथापि विश्वरूप अपने क्रोध के कारण उस भयंकर कृत्य को रोकते नहीं थे। वे भीषण कुण्ड में भीषण अग्नि को आहुति देते तथा हृदय गुहा में आत्मा का ध्यान भीषण रौद्रपुरुष रूप में करते थे। इस प्रकार तप करते देख कर अशरीरी वाणी (आकाशवाणी) ने कहा—।।२६-२९।।

जटाजूटं विनाऽऽत्मानं न च वृत्रो व्यजीयत।
वृथाऽऽत्मानं विश्वरूपो जुहुयाज्जातवेदसि (?)॥३०॥
स एवेन्द्रः स वरुणः स च स्यात्सर्वमेव च।
त्यक्त्वाऽऽत्मानं जटामात्रं हुतवान्वृजिनोद्भवः॥३१॥
वृत्र इत्युच्यते वेदे स चापि वृजिनोऽभवत्।
भीमस्य महिमानं को जानाति जगदीशितुः॥३२॥
सृजत्यशेषमपि यो न च सङ्गेन लिप्यते। विररामेति सङ्कीर्त्य सा वाण्येनं मुनीश्वराः॥३३॥
भीमेश्वरं नमस्कृत्य जग्मुः स्वं स्वमथाऽऽश्रमम्।
विश्वरूपो महाभीमो भीमकर्ता तथाकृतिः॥३४॥
भीमभावो भीमतनुं ध्यात्वाऽऽत्मानं जुहाव ह।
तस्माद् भीमेश्वरो देवः पुराणे परिपठ्यते।
तत्र स्नानं च दानं च मुक्तिदं नात्र संशयः॥३५॥

आकाशवाणी ने कहा—"हे विश्वरूप! तुम वृथा ही अग्नि में आत्मा का होम कर रहे हो। वह आत्मा ही इन्द्र, वरुण तथा सब कुछ है। जटाजूट के बिना आत्मा को वृत्र ने नहीं जीता था। वृजिन के पुत्र ने आत्मा को छोड़ कर जटामात्र की आहुति दिया था। वेद में जो वृत्र कहा गया है, वह वृजिन ही है। संसार के जगत् के ईश भीम की महिमा कौन नहीं जानता। वे अशेष विश्वका सृजन करके भी उसमें आसक्त नहीं होते।" वह आकाशवाणी यह कहकर मौन हो गयी। तब भयंकर भावयुक्त विश्वरूप ने उन भीमरूप की भयंकर आकृति का ध्यान करके आत्माहुति दिया। अतः इसीलिये भीमेश्वरदेव पुराणों में वर्णित तथा पठित हैं। वहां पर स्नान, दान वाला निःसन्देह मुक्त हो जाता है। यह निःसन्दिग्ध है।।३०-३५।।

इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या, विबुधपतिं शिवमत्र भीमरूपम्।
जगति विदितमशेषापहारिस्मृतिपदशरणेन मुक्तिदश्च (?)॥३६॥

गोदावरी तावदशेषपापसमूहहन्त्री परमार्थदात्री।
सदैव सर्वत्र विशेषतस्तु, यत्राम्बुराशिं समनुप्रविष्टा॥३७॥
स्नात्वा तु तस्मिन्सुकृती शरीरी, गोदावरीवारिधिसङ्गमे यः।
उद्धृत्य तीव्रान्निरयादशेषात्स पूर्वजान्याति पुरं पुरारेः॥३८॥
वेदान्तवेद्यं यदुपासितव्यं, तद्ब्रह्म साक्षात्खलु भीमनाथः।
दृष्टे हि तस्मिन्न पुनर्विशन्ति, शरीरिणः संसृतिमुग्रदुःखाम्॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥

जिनका नाम पाप हरण करने वाला है, देवेश्वर जगत्विदित भीमरूप शिव का यह वृत्तान्त जो भक्तिभाव के साथ उनका आश्रय लेकर पाठ तथा श्रवण करते हैं, उनको भोग तथा मोक्ष लाभ होता है।।३६।।

गोदावरी सर्वत्र अशेष पापों का हरण करने वाली तथा मुक्तिप्रदा है। विशेषतया संसार में वे जलराशि में प्रविष्ट हैं। जो सुकृती देहधारी गोदावरी-समुद्र संगम में स्नान करता है, वह पूर्वजों का भयंकर नरकों से उद्धार कर देता है। जो वेदान्त द्वारा जानने योग्य तथा उपासना योग्य प्रभु हैं, वे भीमानाथ ही साक्षात् भगवान् हैं। उनका दर्शन करने वाले देहधारी उग्रदुःख से भरे संसार मार्ग में पुनः नहीं आते।।३७-३९।।

।।त्रिसप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गंगासागर-संगम वर्णन

ब्रह्मोवाच

सा सङ्गता पूर्वमपाम्पतिं तं, गङ्गा सुराणामपि वन्दनीया।
देवैश्च सर्वैरनुगम्यमाना, संस्तूयमाना मुनिभिर्मरुद्भिः॥१॥
वसिष्ठजाबालिसयाज्ञवल्क्यक्रत्वङ्गिरोदक्षमरीचिवैष्णवाः।
शातातपः शौनकदेवरातभृग्वग्निवेश्यात्रिमरीचिमुख्याः॥२॥
सुधूतपापा मनुगौतमादयः, सकौशिकास्तुम्बरुपर्वताद्याः।
अगस्त्यमार्कण्डसपिप्पलाद्याः, सगालवा योगपरायणाश्च॥३॥

सवामदेवाङ्गिरसोऽथ भार्गवाः, स्मृतिप्रवीणाः श्रुतिभिर्मनोज्ञाः।
सर्वे पुराणार्थविदो बहुज्ञास्ते गौतमीं देवनदीं तु गत्वा॥४॥
स्तोष्यन्ति मन्त्रैः श्रुतिभिः प्रभूतैर्हृद्यैश्च तुष्टैर्मुदितैर्मनोभिः।
तां सङ्गतां वीक्ष्य शिवो हरिश्च, आत्मानमादर्शयतां मुनिभ्यः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—सुरगण से वन्दनीया गौतमीगंगा सदा देवताओं तथा मुनिगण से स्तुत हैं। देवगण सदा उसका अनुगमन करते हैं। वह समुद्र में जाकर मिलित हो जाती हैं। वसिष्ठ, जाबालि, याज्ञवल्क्य, क्रतु, अंगीरा, दक्ष, मरीचि, विष्णुऋषि शातातप, शौनक, देवरात, भृगु, अग्निवेश्य, अत्रि, मरीचि, पाप रहित मनु, गौतम, विश्वामित्र, तुम्बुरु, पर्वतादि मुनिगण, अगत्स्य, मार्कण्ड, पिप्पलाद, गालवादि योगपरायण ऋषि, वामदेव, आंगीरस तथा भार्गवादि स्मृति मर्मज्ञ, वेद-पुराण तत्ववेत्ता, बहुज्ञ मुनिगण उस देवनदी गौतमी में जाकर तुष्टचित्त प्रमोदित मन से श्रुति तथा प्रभूत मन्त्रों से उसका स्तव करने लगे। उस गंगा को संगता देखकर हरि तथा हर ने वहां मुनिगण को अपनी-अपनी मूर्त्ति का प्रदर्शन किया।।१-५।।

तथाऽमराऽस्तौ पितृभिश्च दृष्टौ, स्तुवन्ति देवौ सकलार्तिहारिणौ॥६॥
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतो लोकपालकाः। कृताञ्जलिपुटाः सर्वे स्तुवन्ति हरिशङ्करौ॥७॥
सङ्गमेषु प्रसिद्धेषु नित्यं सप्तसु नारद। समुद्रस्य च गङ्गाया नित्यं देवौ प्रतिष्ठितौ॥८॥
गौतमेश्वर आख्यातो यत्र देवो महेश्वरः। नित्यं सन्निहितस्तत्र माधवो रमया सह॥९॥

अमरगण यह देख कर पितृगण के साथ एकत्र होकर सबकी आर्त्ति हरण करने वाले देवदेव का स्तव कर रहे थे। आदित्य, वसु, मरुत् तथा लोकपाल आदि सभी लोगों ने वहां हाथ जोड़कर हरि तथा शंकर का स्तव किया। हे नारद! समुद्र तथा गंगा का वह प्रसिद्ध सप्त संगमस्थल है। वहीं पर ये दोनों देवता विष्णु तथा हर प्रतिष्ठित हैं। वहां देवाधिदेव शिव गौतमेश्वर के नाम से कहे जाते हैं। वहां माधव भी नित्य भगवती रमा के साथ नित्य सन्निहित रहते हैं।।६-९।।

ब्रह्मेश्वर इति ख्यातो मयैव स्थापितः शिवः।
लोकानामुपकारार्थमात्मनः कारणान्तरे॥१०॥
चक्रपाणिरिति ख्यातः स्तुतो देवैर्मया सह।
तत्र सन्निहितो विष्णुर्देवैः सह मरुद्गणैः॥११॥
ऐन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तदेव हयमूर्धकम्। हयमूर्धा तत्र विष्णुस्तन्मूर्धनि सुरा अपि।
सोमतीर्थमिति ख्यातं यत्र सोमेश्वरः शिवः॥१२॥

वहीं पर ब्रह्मेश्वर नामक प्रसिद्ध मेरे द्वारा स्थापित शिव भी हैं। लोगों के उपकारार्थ तथा अपने किसी विशेष कारण से मैंने उनकी स्थापना किया था। इसके अतिरिक्त वहां चक्रधारी विष्णु भी देवताओं के साथ सन्निहित रहते हैं। मैंने समस्त देवताओं के साथ होकर उनका स्तव गान किया था। वहीं पर ऐन्द्रतीर्थ भी है। यह तीर्थ हयमूर्द्धक भी कहा जाता है। यही हयमूर्द्धा विष्णु तथा देवताओं का निवास है। यहां सोमतीर्थ भी प्रसिद्ध है, वहां सोमेश्वर शिव का निवास है।।१०-१२।।

इन्द्रस्य सोमश्रवसो देवैश्च ऋषिभिस्तथा।
प्रार्थितः सोम एवाऽऽदाविन्द्रायेन्दो परिस्रव॥१३॥
सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभिरक्ष न इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥१४॥
यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभिरक्ष नः।
अराती वा मा नस्तारीन्मो च नः किञ्चनामदिन्द्रायेन्दो परिस्रव॥१५॥
ऋषे मन्त्रकृता स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव॥१६॥

सोमश्रवा नामक इन्द्र के यज्ञ में देवगण तथा ऋषिगण ने सोम से प्रार्थना किया था—"हे सोम! इन्द्र हेतु आप सोमस्रव करें। हे सोम! सात दिशा, द्वादश सूर्य, सप्त होता, ऋत्विक्, देवता तथा आदित्यों, अदितिनन्दन सात देवगण, इनके साथ होकर आप हमारी रक्षा करिये। इन्द्र हेतु क्षरण करिये। हे राजन्, सोम! आपके लिये जो हविः पकाई गयी है, हे सोम! उसके द्वारा हमारी रक्षा करिये। शत्रु हमारा कुछ बिगाड़ न सकें, हमारा समस्त ऐश्वर्य अपरिमित हो जाये। हे सोम! आप इन्द्र हेतु स्रवित हो जायें। हे ऋषि! कश्यप! समस्त मन्त्रकर्त्तागण को वाक् स्तोम द्वारा वर्द्धित करिये। हम लोग इन सबके द्वारा उन सोमराजा को प्रणाम करते हैं, जो समस्त वीरुधों के (वृक्षों के) पति हैं। आप इन्द्र के लिये क्षरण करिये। सोमराजा को प्रणाम!।।१३-१६।।

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियोवसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव॥१७॥

हम लोग शिल्पी, चिकित्सक, चक्की (शिलाफलक) सिल आदि पर पीसने वाली रमणी के समान हैं। हम अनेक लोग उस औषधि का व्यवहार करते हैं। हम इस समय नाना वृद्धि से सम्पन्न होकर भी उसी प्रकार धन की इच्छा से विचरण कर रहे हैं। जैसे गौयें गोष्ठ में घास देख कर अवस्थान करती हैं। हे चन्द्र! आप इन्द्र हेतु क्षरण कीजिये।।१७।।

एवमुक्त्वा च ऋषिभिः सोमं प्राप्य च वज्रिणे।
तेभ्यो दत्त्वा ततो यज्ञः पूर्णो जातः शतक्रतोः॥१८॥
तत्सोमतीर्थमाख्यातमाग्नेयं पुरतस्तु तत्। अग्निरिष्ट्वा महायज्ञैर्मामाराध्य मनीषितम्॥१९॥
सम्प्राप्तवान्मत्प्रसादादहं तत्रैव नित्यशः। स्थितो लोकोपकारार्थं तत्र विष्णुः शिवस्तथा॥२०॥
तस्मादाग्नेयमाख्यातमादित्यं तदनन्तरम्। यत्राऽऽदित्यो वेदमयो नित्यमेति उपासितुम्॥२१॥

ऋषिगण ने एवंविध स्तव करके इन्द्र के यज्ञ के समय सोम प्राप्त कर लिया। तदनन्तर इन्द्र ने यज्ञ सम्पन्न किया। अतः यही स्थल सोमतीर्थ कहा गया। उसके आगे जाकर आग्नेयतीर्थ है। यहां अग्नि ने महायज्ञ से विष्णु की आराधना किया तथा मेरी कृपा से उन्होंने उनको प्राप्त किया। वहां लोकों पर उपकारार्थ मैं, विष्णु तथा शिव नित्य स्थित रहते हैं। तभी उसे आग्नेयतीर्थ कहा जाता है। इसके पश्चात् है आदित्यतीर्थ। वहां वेदमय आदित्य नित्य उपासनार्थ आगमन करते हैं।।१८-२१।।

रूपान्तरेण मध्याह्ने द्रष्टुं मां शङ्करं हरिम्।
नमस्कार्यस्तत्र सदा मध्याह्ने सकलो जनः॥२२॥
रूपेण केन सविता समायातीत्यनिश्चयात्।
तस्मादादित्यमाख्यातं बार्हस्पत्यमनन्तरम्॥२३॥

वे मध्याह्न में रूपान्तर करके आते हैं। वहां मध्याह्न में वे आकर मेरा, शंकर का तथा श्रीहरि का दर्शन करते हैं। मध्याह्न में सविता किस रूप में आयेंगे, यह निश्चित नहीं रहता। अतएव वहां मध्याह्न में सभी को नमस्कार करे (समस्त प्राणीगण को नमस्कार करे) तभी वह आदित्यतीर्थ कहा जाता है। इसके आगे बार्हस्पत्यतीर्थ अवस्थित है।।२२-२३।।

बृहस्पतिः सुरैः पूजां तस्मात्तीर्थादवाप ह।
ईजे च यज्ञान्विविधान्बार्हस्पत्यं ततो विदुः॥२४॥
तत्तीर्थस्मरणादेव ग्रहशान्तिर्भविष्यति। तस्मादप्यपरं तीर्थमिन्द्रगोपे नगोत्तमे॥२५॥

यहां बृहस्पति देवगण द्वारा पूजित किये गये थे। तभी से यह स्थल बृहस्पतितीर्थ कहा गया। यहां बृहस्पति ने अनेक यज्ञ भी सम्पन्न किये थे। इस तीर्थ के स्मरण मात्र से ग्रहशान्ति हो जाती है। इसके आगे इन्द्रगोप नाम वाले उत्तम पर्वत पर एक अन्य तीर्थ है।।२४-२५।।

प्रतिष्ठितं महालिङ्गं कस्मिंश्चित्कारणान्तरे। हिमालयेन तत्तीर्थमद्रितीर्थं तदुच्यते॥२६॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम्।
एव सा गौतमी गङ्गा ब्रह्माद्रेश्च विनिःसृता॥२७॥
यावत्सागरगा देवी तत्र तीर्थानि कानिचित्।
संक्षेपेण मयोक्तानि रहस्यानि शुभानि च॥२८॥

किसी कारण से हिमाचल ने यहां पर एक महान् शिवलिंग स्थापित किया था। यह इन्द्रतीर्थ भी कहलाता है। वहां स्नान-दान शुभ तथा सर्वकामप्रदायक है। इस प्रकार गौतमीगंगा ब्रह्मपर्वत से विनिर्गत होकर जब समुद्र से संगम करती है, तब ब्रह्मपर्वत से लगाकर उनके समुद्र संगम पर्यन्त जितने भी तीर्थ हैं, उनका वर्णन मैंने कर दिया।।२६-२८।।

वेदे पुराणे ऋषिभिः प्रसिद्धा, या गौतमी लोकनमस्कृता च।
वक्तुं कथं तामतिसुप्रभावामशेषतो नारद कस्य शक्तिः॥२९॥
तस्माच्च दिङ्मात्रमतिप्रयासात्संसूचितं लोकहिताय तस्याः॥३०॥
कस्तस्याः प्रतितीर्थं तु प्रभावं वक्तुमीश्वरः।
अपि लक्ष्मीपतिर्विष्णुरलं सोमेश्वरः शिवः॥३१॥
क्वचित्कस्मिंश्च तीर्थानि कालयोगे भवन्ति हि।
गुणवन्ति महाप्राज्ञ गौतमी तु सदा नृणाम्॥३२॥

सर्वत्र सर्वदा पुण्या कोन्वया गुणकीर्तनम्।
वक्तुं शक्तस्ततस्तस्यै नम इत्येव युज्यते॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गासागरसङ्गमवर्णनं नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥१०५॥

जो गौतमीगंगा वेद तथा पुराणों में ऋषिगण द्वारा प्रशंसित हैं तथा लोकनमस्कृता हो गयी हैं, हे नारद! उस अति उत्तम प्रभाव वाली गौतमी गंगा की सर्वतोभावेन महिमा वर्णन कौन कर सकता है? भक्ति के कारण मैं उसका तनिक ही वर्णन कर सका हूं। इससे अपराध नहीं होता। अतः लोकहितार्थ इस अतिप्रिया गौतमी का एक अंशमात्र मैंने यहां प्रकट किया है। वहां के प्रत्येक तीर्थ के दर्शन में तथा वर्णन में कौन सक्षम है? लक्ष्मीपति विष्णु अथवा सोमेश्वर शिव भी क्या इसमें सक्षम होंगे? हे महाप्राज्ञ! तीर्थगण तो कभी किसी स्थान में तथा विशेष अवसर पर ही गुणयुक्त होते हैं। परन्तु गोदावरी (गौतमीगंगा) तो सर्वत्र सदा मनुष्यों हेतु गुणयुक्त है। यह सदा पुण्यप्रदा है। अतः इनके गुण का वर्णन कौन कर सकता है? अतः इनको प्रणाम करना ही श्रेयस्कर है।।२९-३३।।

।।चतुःसप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थों का चतुर्विध्यादि (चार प्रकार का) निरूपण

नारद उवाच

त्रिदैवत्यां सुरेशान गङ्गां ब्रूषे सुरेश्वरः। ब्राह्मणेनाऽऽहृतां पुण्यां जगतः पावनीं शुभाम्॥१॥
आदिमध्यावसाने च उभयोस्तीरयोरपि। या व्याप्ता विष्णुनेशेन त्वया च सुरसत्तम।
पुनः संक्षेपतो ब्रूहि न मे तृप्तिः प्रजायते॥२॥

नारद कहते हैं—हे सुरसत्तम! ब्राह्मण गौतम द्वारा लाई गयी शुभा पुण्या जगत्पावनी गंगा के विषय में तो आपने कहा, तथापि इसके दोनों तट के आदि-मध्य-अन्त में जो विष्णु, आप तथा सुरप्रवर ईशान शिव सभी स्थानों में व्याप्त रहते हैं, वह सब पुनः संक्षेप में कहिये। हमारी तृप्ति नहीं हो रही है।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

कमण्डलुस्थिता पूर्वं ततो विष्णुपदानुगा। महेश्वर जटाजूटे स्थिता सैव नमस्कृता॥३॥
ब्रह्मतेजः प्रभावेण शिवमाराध्य यत्नतः। ततः प्राप्ता गिरिं पुण्यं ततः पूर्वार्णवं प्रति॥४॥

आगत्य सङ्गता देवी सर्वतीर्थमयी नृणाम्।
ईप्सितानां तथा दात्री प्रभावोऽस्या विशिष्यते॥५॥
एतस्या नाधिकं मन्ये किञ्चित्तीर्थं जगत्त्रये।
अस्याश्चैव प्रभावेण भाव्यं यच्च मनःस्थितम्॥६॥
अद्याप्यस्या हि माहात्म्यं वक्तुं कैश्चिन्न शक्यते।
भक्तितो वक्ष्यते नित्यं या ब्रह्म परमार्थतः॥७॥
तस्याः परतरं तीर्थं न स्यादिति मतिर्मम। अन्यतीर्थेन साधर्म्यं न युज्येत कथञ्चन॥८॥
श्रुत्वा मद्वाक्यपीयूषैर्गङ्गाया गुणकीर्तनम्। सर्वेषां न मतिः कस्मात्तत्रैवोपरतिं गता।
इति भाति विचित्रं मे मुने खलु जगत्त्रये॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—गंगादेवी प्रथमतः मेरा कमण्डलु में थीं। तदनन्तर विष्णु के चरणों की अनुगामिनी होकर तदनन्तर महेश्वर के जटाजूट में रहने लगीं। तदनन्तर शिव आराधना करके ब्रह्मतेज के प्रभाव से इन लोकनमस्कृता देवी ने ब्रह्मगिरि पर आगमन किया। तदनन्तर वहां से बहती वे पूर्व समुद्र की ओर जाकर उसमें मिल गयीं। वे सर्वतीर्थमयी तथा मनुष्यों की इच्छा पूर्ण करने वाली हैं एवं विशिष्ट प्रभाव वाली हैं। इसकी अपेक्षा अधिक फलप्रद तीर्थ तीनों लोकों में है भी ऐसा प्रतीत नहीं होता। इसके प्रभाव से मन में जो कुछ कामना की जाती है, वह सफल हो जाती है। इसके माहात्म्य को कोई भी कह सकने की शक्ति से युक्त नहीं है। वास्तव में ये ब्रह्म ही हैं। ये भक्ति के साथ वन्दित होती हैं। इसकी अपेक्षा परतर तीर्थ है ही नहीं। यह मेरा विचार है। इसकी बराबरी अन्य से करना किसी भी प्रकार से उचित नहीं है। हे मुनि! तीनों लोक में मेरे वाक्यामृत द्वारा गंगा की गुणकीर्त्ति सुन कर लोगों की मति शान्त क्यों नहीं होती? मुझे यह विचित्र लगता है।।३-९।।

नारद उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं वेत्ता चोपदेशकः।
छन्दांसि सरहस्यानि पुराणस्मृतयोऽपि च॥१०॥
धर्मशास्त्राणि यच्चान्यत्तव वाक्ये प्रतिष्ठितम्।
तीर्थानामथ दानानां यज्ञानां तपसां तथा॥११॥
देवतामन्त्रसेवानामधिकं किं वद प्रभो।
यद्ब्रूषे भगवन्भक्त्या तथा भाव्यं न चान्यथा॥१२॥
एतं मे संशयं ब्रह्मन्वाक्यात्त्वं छेत्तुमर्हसि। इष्टं मनोगतं श्रुत्वा तस्माद्विस्मयमागतः॥१३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—आप धर्मकामार्थ मोक्ष के वेत्ता हैं। आप सर्वश्रेष्ठ उपदेशक हैं। सरहस्य छन्दः, पुराण, स्मृति, धर्मशास्त्र इत्यादि आपकी वाणी में प्रतिष्ठित है। हे प्रभो! तीर्थ, दान, यज्ञ, तप तथा देवता मन्त्रसाधन इत्यादि कार्य में कौन कार्य सर्वापेक्षा प्रधान है? हे भगवान्! आपने जैसा कहा है, वह सब फल उसी प्रकार से होगा। यह निश्चित है। हे ब्रह्मन्! मेरा यह संशय छिन्न करिये। आपका मनोगत इष्ट गौतमी माहात्म्य सुनकर मैं तो विस्मित हो गया।।१०-१३।।

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं धर्ममुत्तमम्। चतुर्विधानि तीर्थानि तावन्त्येव युगानि च॥१४॥

गुणास्त्रयश्च पुरुषास्त्रयो देवाः सनातनाः।
वेदाश्च स्मृतिभिर्युक्ताश्चत्वारस्ते प्रकीर्तिताः॥१५॥
पुरुषार्थाश्च चत्वारो वाणी चापि चतुर्विधा।
गुणा ह्यपि तु चत्वारः समत्वेनेति नारद॥१६॥

सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्मः सनातनः। साध्यसाधनभावेन स एव बहुधा मतः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अब मैं उत्तम धर्म रहस्य कहता हूं। तीर्थ चतुर्विध तथा युग भी चतुर्विध है। तीन ही गुण हैं। सनातन देवपुरुष (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) तीन हैं। स्मृति से युक्त वेद चार होते हैं। पुरुषार्थ तथा वाणी भी चार-चार हैं। (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—पुरुषार्थ हैं, परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी—ये चार वाणी हैं)। हे नारद! धर्म सर्वत्र सामान्य भाव से वर्त्तमान है, क्योंकि धर्म सनातन है। वही धर्म ही साध्य-साधन भेद से अनेक हैं।।१४-१७।।

तस्याऽऽश्रयश्च द्विविधो देशः कालश्च सर्वदा।
कालाश्रयश्च यो धर्मो हीयते वर्धते सदा॥१८॥

युगान्मनुरूपेण पादः पादोऽस्य हीयते। धर्मस्येति महाप्राज्ञ देशापेक्षा तथोभयम्॥१९॥

कालेन चाऽऽश्रितो धर्मो देशे नित्यं प्रतिष्ठितः।
युगेषु क्षीयमाणेषु न देशेषु स हीयते॥२०॥

उभयत्र विहीने च धर्मस्य स्यादभावता। तस्माद्देशाश्रियो धर्मश्चतुष्यात्सुप्रतिष्ठितः॥२१॥

इसका आश्रय भी द्विविध है। यथा—देश तथा काल। जो धर्म कालाश्रय है, वह सदा हीन तथा वर्द्धित होता है। (कम-अधिक होता है)। धर्म तो युगधर्मानुसार क्रमशः एक-एक पाद कम होता जाता है (जैसे सत्ययुग में चतुष्पाद, त्रेता में त्रिपाद, द्वापर में द्विपाद तथा कलि में एक पाद मात्र)। हे महाप्राज्ञ! यह धर्म देश के अनुसार भी ऐसा होता है, अर्थात् देश पर आश्रित धर्म भी बढ़ता तथा घटता रहता है। धर्म काल का आश्रय लेकर नित्य देश में प्रतिष्ठित रहता है। युगों के क्षीण होने पर भी देश में वह क्षीण नहीं होता। जब काल तथा देश दोनों का क्षय हो जाता है, तब धर्म का भी अभाव हो जाता है। अतः देशाश्रित धर्म चतुष्पाद प्रतिष्ठित रहता है।।१८-२१।।

स चापि धर्मो देशेषु तीर्थरूपेण तिष्ठति। कृते देशं च कालं च धर्मोऽवष्टभ्य तिष्ठति॥२२॥
त्रेतायां पादहीनेन स तु पादः प्रदेशतः। द्वापरे चार्धतः काले धर्मो देशे समास्थितः॥२३॥
कलौ पादेन चैकेन धर्मश्चलति सङ्कटम्। एवंविधं तु या धर्म वेत्ति तस्य न हीयते॥२४॥
युगानामनुभावेन जातिभेदाश्च संस्थिताः। गुणेभ्यो गुणकर्तृभ्यो विचित्रा धर्मसंस्थितिः॥२५॥
गुणानामनुभावेन उद्भवाभिभवौ तथा। तीर्थानामपि वर्णानां वेदानां स्वर्गमोक्षयोः॥२६॥

तादृग्रूपप्रवृत्त्या तु तदेव च विशिष्यते।
कालोऽभिव्यञ्जकः प्रोक्तो देशोऽभिव्यङ्ग्य उच्यते॥२७॥
यदा यदा अभिव्यक्तिं कालो धत्ते तदा तदा।
तदेव व्यञ्जनं ब्रह्मंस्तस्मान्नास्त्यत्र संशयः॥२८॥

देशों में वह धर्म तीर्थ रूप से अवस्थित रहता है। सत्ययुग में धर्म, देश तथा कालाश्रित रहता है। त्रेता में वह देशविशेष में एक पाद हीन हो जाता है। द्वापर काल में वह आधे देश में दो पाद हीन हो जाता है। कलि में वह एक पाद मात्र बाकी रहता अतीव कष्ट से विचरता रहता है। जो धर्म को इस प्रकार से जानते हैं, उनका धर्म कभी हीन नहीं होता। चारों युग के प्रभाव के कारण गुणों तथा गुणों के आधार प्राणीगण के द्वारा जातिभेद भी स्थापित हो जाता है। धर्म की स्थिति विचित्र होती है। तीर्थ, वर्ण, वेद, स्वर्ग तथा मोक्ष का उद्भव तथा अभिभव गुणों के ही अनुसार घटित होता है। जगत् में गुणों की प्रवृत्ति के तारतम्य से स्थान-स्थान पर ऐसी विशिष्टता दृष्ट होती है। काल ही उसका अभिव्यञ्जक (प्रकाशक) है, देश उसका अभिव्यङ्ग्य (प्रकाश्य) है। जब काल अभिव्यक्ति (प्रकाश) को धारण करता है, तब उसी काल से देशविशेष में पदार्थ का प्रकाशन, प्रकटीकरण होता है। इसमें सन्देह नहीं है।।२२-२८।।

युगानुरूपा मूर्तिः स्याद्देवानां वैदिकी तथा।
कर्मणामपि तीर्थानां जातीनामाश्रमस्य तु॥२९॥
त्रिदैवत्यं सत्ययुगे तीर्थं लोकेषु पूज्यते। द्विदैवत्यं युगेऽन्यस्मिन्द्वापरे चैकदैविकम्॥३०॥
कलौ न किञ्चिद्विज्ञेयमथान्यदपि तच्छृणु। दैवं कृतयुगे तीर्थं त्रेतायामासुरं विदुः॥३१॥
आर्षं च द्वापरे प्रोक्तं कलौ मानुषमुच्यते। अथान्यदपि वक्ष्यामि शृणु नारद कारणम्॥३२॥
गौतम्यां यत्त्वया पृष्टं तत्ते वक्ष्यामि विस्तरात्।
यदा चेयं हरशिरः प्राप्ता गङ्गा महामुने॥३३॥

देव, कर्म, तीर्थ, जाति तथा आश्रम की तथा देवगण की भी वैदिकी विभिन्न मूर्त्ति युगानुरूप ही प्रकट होती है। सत्ययुग में लोक में त्रिदेव के आश्रय में तीर्थ पूजित होते हैं (अर्थात् वे ब्रह्मा-विष्णु-महेश समन्वित होते हैं)। त्रेता में द्विदेवमय तीर्थ पूजित होते हैं। द्वापर में तीर्थ एकदेवमय पूजित होते हैं। कलि में किसी तीर्थ में किसी देवता का अनुभव नहीं हो पाता। कृतयुग में दैवतीर्थ, त्रेता में आसुरतीर्थ, द्वापर में आर्ष तीर्थ तथा कलि में मानुषतीर्थ होते हैं। हे नारद! अब अन्य कारण भी कहता हूं। गौतमी के विषय में तुमने जो पूछा था, वही तुमसे विस्तृतरूपेण क्रमानुसार कहता हूं। श्रवण करो। हे महामुनि! जब से गंगा शिव के शिर पर पहुंचीं।।२९-३३।।

तदा प्रभृति सा गङ्गा शम्भोः प्रियतराऽभवत्।
तद्देवस्य मतं ज्ञात्वा गजवक्त्रमुवाच सा॥३४॥
उमा लोकत्रयेशाना माता च जगतो हिता। शान्ता श्रुतिरिति ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥३५॥

तभी से वे शंभु की प्रियतरा हो गयीं। शिव का एवंविध मनोभाव जानकर गजमुख (गणेश) से भुक्ति-

मुक्तिप्रदा, शान्ता, श्रुतिरूपेण प्रसिद्धा, जगत् का हित करने वाली, लोकत्रय की ईश्वरी, माता उमा ने यह यब कहा—।।३४-३५।।

ब्रह्मोवाच

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा गजवक्त्रेऽभ्यभाषत॥३६॥

ब्रह्मा कहते हैं—माता का वचन सुनकर गजमुख कहने लगे।।३६।।

गजवक्त्र उवाच

किं कृत्यं शाधि मां मातस्तत्कर्ताऽऽहमसंशयम्॥३७॥

गजमुख कहते हैं—हे माता! मेरा क्या कर्त्तव्य है? कहिये। मैं वह अवश्य करूंगा।।३७।।

ब्रह्मोवाच

उमा सुतमुवाचेदं महेश्वरजटास्थिता। त्वयाऽवतार्यतां गङ्गा सत्यमीशप्रिया सती॥३८॥
पुनश्चेशस्तत्र चित्रमध्यास्ते सर्वदा सुत। शिवो यत्र सुरास्तत्र तत्र वेदाः सनातनाः॥३९॥
तत्रैव ऋषयः सर्वे मनुष्याः पितरस्तथा। तस्मान्निवर्तयेशानं देवदेवं महेश्वरम्॥४०॥
तस्या निवर्तिते देवे गङ्गायाः सर्व एव हि।
निवृत्तास्ते भविष्यन्ति शृणु चेदं वचो मम।
निवर्तय ततस्तस्याः सर्वभावेन शङ्करम्॥४१॥

ब्रह्मा कहते हैं—गणेश के प्रश्न के उत्तर में देवी ने कहा—"गंगा वस्तुतः ईश्वर को अति प्रिया हो गयी है तथा उनकी जटा में निवास कर रही है। तुम उसे नीचे ले आओ। हे पुत्र! ईश्वर ने इन गंगा में ही अपना चित्त लगा लिया है। जहां शिव हैं, वहीं देवता, सनातन वेद, समस्त ऋषि, पितर तथा मनुष्य अवस्थान करते हैं। अतः तुम देवाधिदेव महेश्वर को गंगा से पृथक् करो। गंगा के अलग हो जाने पर वे सभी पृथक् हो जायेंगे। अतः सभी उपाय से शंकर को इन गंगा से पृथक् करो। मेरा यह कथन स्मरण रखो।।३८-४१।।

ब्रह्मोवाच

मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुनराह गणेश्वरः॥४२॥

ब्रह्मा कहते हैं—माता का आदेश सुनकर पुनः गणेश ने कहा—।।४२।।

गणेश्वर उवाच

नैव शक्यः शिवो देवो मया तस्या निवर्तितुम्।
अनिवृत्ते शिवे तस्या देवा अपि निवर्तितुम्॥४३॥
न शक्या जगतां मातरथान्यच्चापि कारणम्।
गङ्गाऽवतारिता पूर्वं गौतमेन महात्मना॥४४॥
ऋषिणा लोकपूज्येन त्रैलोक्यहितकारिणा। सामोपायेन तद्वाक्यात्पूज्येन ब्रह्मतेजसा॥४५॥

आराधयित्वा देवेशं तपोभिः स्तुतिभिर्भवम्। तुष्टेन शङ्करेणेदमुक्तोऽसौ गौतमस्तदा॥४६॥

गणेश्वर कहते हैं—देव शिव को गंगा से पृथक् करना मेरे वश में नहीं है। यदि शिव पृथक् नहीं होते, तब देवताओं को वहां से पृथक् करने की क्षमता मुझमें नहीं है। हे जगन्माता! और भी कारण सुनिये। पूर्वकाल में लोकपूज्य त्रैलोक्य हितकारी महात्मा गौतम ऋषि ने ब्रह्मतेज के प्रभाव से गंगा का अवतरण सम्पन्न किया था। लोकपूजित तथा त्रैलोक्य के हिताभिलाषी उन ऋषि ने तपःश्चरण, एवं सामगान युक्त रचनावलियों से नाना स्तुति तथा तप किया, जिससे देवाधिदेव शंभु ने तुष्ट होकर गौतम ऋषि से कहा—।।४३-४६।।

शङ्कर उवाच

वरान्वरय पुण्यांश्च प्रियांश्च मनसेप्सितान्। यद्यदिच्छसि तत्सर्वं दाता तेऽद्य महामते॥४७॥

भगवान् शंकर कहते हैं—हे महामति! तुम पुण्यमय मनोवांछित वर मांगो। तुम जो भी इच्छा करोगे, वह प्रदान करूंगा।।४७।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः शिवेनासौ गौतमो मयि शृण्वति। इदमेव तदोवाच सजटां देहि शङ्कर।
गङ्गां मे याचते पुण्यां किमन्येन वरेण मे॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब शिव ने ऋषि गौतम से यह कहा, तब मैं वह सुन रहा था। उस समय गौतम ने कहा—"मैं आपकी जटा सहित गंगा को मांगता हूं। हे शंकर! मुझे अन्य वर की क्या आवश्यकता"?।।४८।।

ब्रह्मोवाच

पुनः प्रोवाच तं शम्भुः सर्वलोकोपकारकः॥४९॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर समस्त लोकों का उपकार करने वाले शंभु ने पुनः कहा—।।४९।।

शम्भुरुवाच

उक्त न चाऽऽत्मनः किञ्चित्तस्माद्याचस्व दुष्करम्॥५०॥

भगवान् शंभु कहते हैं—तुमने तो स्वयं हेतु कुछ भी नहीं मांगा। अतः अपने लिये भी कुछ दुष्कर वर मांगो।।५०।।

ब्रह्मोवाच

गौतमोऽदीनसत्त्वस्तं भवमाह कृताञ्जलिः॥५१॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब दीनता रहित ऋषि गौतम ने हाथ जोड़कर भगवान् भव से कहा—।।५१।।

गौतम उवाच

एतदेव च सर्वेषां दुष्करं तव दर्शनम्। मया तदद्य सम्प्राप्तं कृपया तव शङ्कर॥५२॥
स्मरणादेव ते पद्भ्यां कृतकृत्या मनीषिणः।
भवन्ति किं पुनः साक्षात्त्वयि दृष्टे महेश्वरे॥५३॥

ऋषि गौतम कहते हैं—हे शंकर! मैंने आपकी कृपा से आपका दर्शन पा लिया, यही अत्यन्त कठिन प्राप्ति हो गयी। आपके चरणद्वय के स्मरण मात्र से मनीषी कृतार्थ हो जाते हैं। तब आपका साक्षात् दर्शन का जो फल है, उसके पश्चात् और क्या कहूं?।।५२-५३।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ते गौतमेन भवो हर्षसमन्वितः। त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया।।५४।।

नचाऽऽत्मनो महाबुद्धे याचेत्याह शिवो द्विजम्।

एवं प्रोक्तः पुनर्विप्रो ध्यात्वा प्राह शिवं तथा।।५५।।

विनीतवददीनात्मा शिवभक्तिसमन्वितः। सर्वलोकोपकाराय पुनर्याचितवानिदम्।

शृण्वत्सु लोकपालेषु जगादेदं स गौतमः।।५६।।

ब्रह्मा कहते हैं—गौतम के यह कहने पर भगवान् भव प्रसन्न होकर कहने लगे कि "तुमने तीनों लोकों के उपकारार्थ ही गंगा की याचना किया, तथापि तुम अपने लिये भी कुछ वर मांगो।" शिव के यह कहने पर दीनता रहित आत्मा वाले शिवशक्ति समन्वित इन विप्र ने पुनः विचार किया तथा समस्त लोकों के उपकार के लिये लोकपालों के सामने यह याचना किया।।५४-५६।।

गौतम उवाच

यावत्सागरगा देवी निसृष्टा ब्रह्मणो गिरेः।

सर्वत्र सर्वदा तस्यां स्थातव्यं वृषभध्वजः।।५७।।

फलेप्सूनां फलं दाता त्वमेव जगतः प्रभो।

तीर्थान्यन्यानि देवेश क्वापि क्वापि शुभानि च।।५८।।

यत्र ते सन्निधिर्नित्यं तदेव शुभदं विदुः। यत्र गङ्गा त्वया दत्ता जटामुकुटसंस्थिता।

सर्वत्र तव सान्निध्यात्सर्वतीर्थानि शङ्कर।।५९।।

ऋषि गौतम कहते हैं—हे वृषध्वज! ब्रह्मगिरि जहां से गौतमी गंगा का अवतरण हुआ है, वहां से लगाकर इनके सागरसंगम पर्यन्त आप इस नदी में सदा स्थित रहिये। हे प्रभो! आप फल की कामना करने वालों के लिये फलदाता हैं। हे देवेश! अन्य पवित्र तीर्थों की स्थिति जहां कहीं भी है, उन तीर्थों में से जहां आप विराजमान हैं, वही शुभ तीर्थ माने जाते हैं। हे शंकर! आपने जहां पर मुझे जटामुकुट संस्थित गंगा को दिया था, वहां आपका सान्निध्य होने के कारण सभी तीर्थ उस स्थान पर विराजित रहें।।५७-५९।।

ब्रह्मोवाच

तद्गौतमवचः श्रुत्वा पुनर्हर्षाच्छिवोऽब्रवीत्।।६०।।

ब्रह्मा कहते हैं—गौतम की बात सुनकर भगवान् शिव ने पुनः हर्ष पूर्वक कहा—।।६०।।

शम्भुरुवाच

यत्र क्वापि यत्किञ्चिद्यो वा भवति भक्तितः (?)।

यात्रां स्नानमथो दानं पितृणां वाऽपि तर्पणम्।।६१।।

श्रवणं पठनं वाऽपि स्मरणं वाऽपि गौतम।
यः करोति नरो भक्त्या गोदावर्या यतव्रतः॥६२॥
सप्तद्वीपवती पृथ्वी सशैलवनकानना। सरत्ना सौषधी रम्या सार्णवा धर्मभूषिता॥६३॥
दत्त्वा भवति यो धर्मः स भवेद्गौतमीस्मृते।
एवं विधा इला विप्र गोदानाद्याऽभिधीयते॥६४॥
चन्द्रसूर्यग्रहे काले मत्सान्निध्ये यतव्रतः।
भूभृते विष्णवे भक्त्या सर्वकालं कृता सुधीः॥६५॥

प्रभु शंकर कहते हैं—हे गौतम! जो व्यक्ति गोदावरी (गौतमी) में जहां चाहे भक्ति के साथ स्नान, दान, यात्रा, तर्पण, माहात्म्य श्रवण, माहात्म्य पाठ, माहात्म्य स्मरणादि जो भी कर्म व्रती होकर करेगा, उसे वह पुण्य होगा, जो वन, कानन, सागर से युक्त सरत्ना, औषधियुता, धर्मभूषिता, सप्तद्वीपवती, रम्य पृथिवी दान द्वारा प्राप्त होता है। हे विप्र! इस ब्रह्मगिरि में मेरे निकट इस प्रकार पृथिवी को (पृथिवी का उपरोक्त प्रतिरूप बनाकर) भक्ति के साथ जो लोग चन्द्र-सूर्य ग्रहण काल में व्रती होकर विष्णु को प्रदान करते हैं, उसका जो फल है, सुधी लोग मात्र गौतमी स्मरण से वह प्राप्त कर लेते हैं।।६१-६५।।

गाः सुन्दराः सवत्साश्च सङ्गमे लोकविश्रुते।
यो ददाति द्विजश्रेष्ठ तत्र यत्पुण्यमाप्नुयात्॥६६॥
तस्माद्वरं पुण्यमेति स्नानदानादिना नरः।
गौतम्यां विश्ववन्द्यायां महानद्यां तु भक्तितः॥६७॥
तस्माद्गोदावरी गङ्गा त्वया नीता भविष्यति। सर्वपापक्षयकरी सर्वाभीष्टप्रदायिनी॥६८॥

हे द्विजप्रवर नारद! लोकविश्रुत गौतमी-सागर संगम तीर्थ में सुन्दर तथा सवत्सा गौदान द्वारा जो पुण्यलाभ होता है, विश्ववन्द्या महानदी गौतमी में भक्तिभाव के साथ स्नान-दान द्वारा मनुष्य उससे भी अधिक परम पुण्य लाभ करता है। अतः तुम्हारे द्वारा पृथिवी पर लाई गयी गोदावरी (गौतमी) गंगा सर्वपापक्षयकरी तथा सर्व अभीष्टप्रदा होगी।।६६-६८।।

गणेश्वर उवाच

एतच्छ्रुतं मया मातर्वदतो गौतमं शिवात्।
एतस्मात्कारणाच्छम्भुर्गङ्गायां नियतः स्थितः॥६९॥
को निवर्तयितुं शक्तस्तमम्ब करुणोदधिम्। अथापि मातरेतत्स्यान्मानुषा विघ्नपाशकैः॥७०॥
विनिबद्धा न गच्छन्ति गोदामप्यन्तिकस्थिताम्।
न नमन्ति शिवं देवं न स्मरन्ति स्तुवन्ति न॥७१॥
तथा मातः करिष्यामि तव सन्तोषहेतवे।
सन्निरोद्धुमथो क्लेशस्तव वाक्यं क्षमस्व मे॥७२॥

गणेश्वर देव कहते हैं—हे माता! शिव ने जब गौतमी से यह कहा, तब मैंने उनके पास रहने के कारण सुन लिया था। तभी शंभु नित्य गंगा-गौतमी में निवास करते हैं। हे अम्बे! इन करुणासागर शिव को कौन गंगा से पृथक् कर सकेगा? हे मां! तथापि आपके सन्तोष के लिये मैं उनको गंगा से पृथक् करने हेतु ऐसा करूंगा कि मनुष्य मेरे विघ्नपाश में बंध कर निकटवर्त्ती होने पर भी गोदावरी नहीं जायेंगे तथा शिव को प्रणाम नहीं करेंगे। स्मरण तथा स्तव तक नहीं करेंगे। यद्यपि इससे प्रजावर्ग को अन्ततः क्लेश होगा, तथापि आपकी आज्ञा को सुनकर मैं ऐसे कार्य में लग रहा हूं। मुझे इस सम्बन्ध में क्षमा करिये।।६९-७२।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति विघ्नेशो मानुषान्प्रति किञ्चन। विघ्नमाचरते यस्तु तमुपास्य प्रवर्तते॥७३॥

अथो विघ्नमनादृत्य गौतमीं याति भक्तितः।
स कृतार्थो भवेल्लोके न कृत्यमवशिष्यते॥७४॥

विघ्नान्यनेकानि भवन्ति गेहान्निर्गन्तुकामस्य नराधमस्य।
निधाय तन्मूर्ध्नि पदं प्रयाति, गङ्गां न किं तेन फलं प्रलब्धम्॥७५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तभी से विघ्नेश मनुष्यों के प्रति कुछ-न-कुछ विघ्न करते रहते हैं। वे जिनकी उपासना करके कार्य में लगते हैं अथवा विघ्नों की उपेक्षा करके गौतमी नदी की शरण में जाते हैं, वे ही लोकसमाज एवं जनगण को कृतकृत्य करते हैं। उनका कोई कृत्य अपूर्ण नहीं रहता। नराधम जहां घर से निकलते हैं, वे नाना विघ्नों से घिर जाते हैं, तथापि जो इन विघ्नों के मस्तक पर पैर रखकर गंगा में जाते हैं, उनको ऐसा कौन फल है, जो प्राप्त नहीं होगा।।७३-७५।।

अस्याः प्रभावं को ब्रूयादपि साक्षात्सदाशिवः।
संक्षेपेण मया प्रोक्तमितिहासपदानुगम्॥७६॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं यच्चराचरे। तदत्र विद्यते सर्वमितिहासे सविस्तरे॥७७॥

वेदोदितं श्रुतिसकलरहस्यमुक्तं, सत्कारणं समभिधानमिदं सदैव।
सम्यक्च दृष्टं जगतां हिताय, प्रोक्तं पुराणं बहुधर्मयुक्तम्॥७८॥

गौतमी गंगा के प्रभाव का वर्णन कौन कर सकता है? साक्षात् सदाशिव भी यह नहीं कह सकते। मैंने संक्षेप में इसे इतिहास वर्णन प्रसंग में कह दिया। चराचर में धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि जो भी साधन हैं, इस विस्तृत इतिहास में वे सभी विद्यमान हैं। यह वेदोक्त है तथा श्रुति में रहस्यभूत है। यह उपाख्यान में सम्पूर्ण रहस्य सार, सत्करणरूप, सदुक्ति स्वरूप एवं सम्यक् दर्शनान्वित है।।७६-७८।।

अस्य श्लोक पदं वाऽपि भक्तितः शृणुयात्पठेत्।
गङ्गा गङ्गेति वा वाक्यं स तु पुण्यमवाप्नुयात्॥७९॥

कलिकलङ्कविनाशनदक्षमिदं, सकलसिद्धिकरं शुभदं शिवम्।
जगति पूज्यमभीष्टफलप्रदं, गाङ्गमेतदुदीरितमुत्तमम्॥८०॥

साधु गौतम भद्रं ते कोऽन्योऽस्ति सदृशस्त्वया।
य एनां गौतमीं गङ्गां दण्डकारण्यमाप्नुयात्॥८१॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥८२॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये।
तानि स्नातुं समायान्ति गङ्गायां सिंहगे गुरौ॥८३॥

जो इस पुराण का एक भी श्लोक किंवा एक भी पद भक्ति के साथ श्रवण करता है अथवा गंगा-गंगा नामोच्चारण करता है, वह पुण्यभागी होगा। गंगा से सम्बन्धित यह उपाख्यान कलिकलंक नाश में तत्पर, समस्त सिद्धिप्रद, शुभप्रद, कल्याणमय, जगत् पूज्य तथा वांछित फलदायक है। हे साधु गौतम! तुम्हारा मंगल हो। तुम्हारे समान और कौन है? तुम गंगा को दण्डकारण्य तक ले आये! जो व्यक्ति सौ योजन दूर से ही "गंगा-गंगा" का उच्चारण करता है, वह सर्वपाप रहित हो जाता है। उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। लोकत्रय में साढ़े तीन करोड़ जो तीर्थ हैं, वे सभी सिंहस्थ गुरु के समय (जब सिंह राशि पर गुरु हो) स्नानार्थ गौतमी गंगा तट पर आते हैं।।७९-८३।।

षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनम्। सकृद्गोदावरीस्नानं सिंहयुक्ते बृहस्पतौ॥८४॥
इयं तु गौतमी पुत्र यत्र क्वाचि ममाऽऽज्ञया।
सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति॥८५॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत्॥८६॥
यस्यैतत्तिष्ठति गृहे पुराणं ब्रह्मणोदितम्। न भयं विद्यते तस्य कलिकालस्य नारद॥८७॥
यस्य कस्यापि नाऽऽख्येयं पुराणमिदमुत्तमम्।
श्रद्दधानाय शान्ताय वैष्णवाय महात्मने॥८८॥
इदं कीर्त्यं भुक्तिमुक्तिदायकं पापनाशकम्। एतच्छ्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः॥८९॥
लिखित्वा पुस्तकमिदं ब्राह्मणाय प्रयच्छति।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनर्गर्भं न संविशेत्॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसंवादे गङ्गामाहात्म्यश्रवणादि फलवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७५॥

गौतमीमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥

समाप्तं गौतमीमाहात्म्यम्।

भागीरथी में ६० हजार वर्ष तक स्नान करना तथा दूसरी ओर मात्र एक बार गोदावरी में स्नान का समान फल होता है। हे पुत्र! यह गौतमी गंगा मेरी आज्ञा से अपने प्रत्येक स्थान पर स्नान मात्र से सभी को

मुक्ति प्रदान करती है। सौ वाजपेय तथा सहस्र अश्वमेध का जो फल है, वह गौतमी माहात्म्य के श्रवण मात्र से मिल जाता है। हे नारद! ब्रह्मा के समान पुण्यमय यह पुराण जिसके गृह में रहेगा, उसे कदापि कलिकाल जनित भय त्रस्त नहीं करेगा। इस उत्तम पुराण का वर्णन हरेक के समक्ष करना उचित नहीं है। इसे शान्त, श्रद्धावान्, वैष्णव महात्मा से ही कहे। इस भुक्ति तथा मुक्तिप्रदा पुराण के श्रवण से ही व्यक्ति कृतार्थ हो जाता है। जो व्यक्ति इसे लिख कर वह पुस्तक ब्राह्मण को देता है, वह सर्वपातक रहित होकर मुक्त हो जाता है। उसे पुनः गर्भवास नहीं करना पड़ेगा।।८४-९०।।

।।पञ्चसप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनन्त वासुदेव माहात्म्य का वर्णन

मुनय ऊचुः

न हि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां भगवत्कथाम्। पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः।।१।।
अनन्तवासुदेवस्य न सम्यग्वर्णितं त्वया। श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण वदस्व नः।।२।।

मुनिगण कहते हैं—आपसे कथा सुन-सुन कर हमें तृप्ति ही नहीं मिल रही है। पुनः परम गुह्य विवरण अशेष रूप से कहिये। आपने अनन्त वासुदेव की महिमा का सम्यक् वर्णन नहीं किया। हम उसे सुनने की इच्छा कर रहे हैं। कृपया वह विस्तार से कहिये।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः सारात्सारतरं परम्। अनन्तवासुदेवस्य माहात्म्यं भुवि दुर्लभम्।।३।।
आदिकल्पे पुरा विप्रास्त्वहमव्यक्तजन्मवान्। विश्वकर्माणमाहूय वचनं प्रोक्तवानिदम्।।४।।
वरिष्ठं देवशिल्पीन्द्रं विश्वकर्माग्रकर्मिणम्। प्रतिमां वासुदेवस्य कुरु शैलमयीं भुवि।।५।।
यां प्रेक्ष्य विधिवद्भक्ताः सेन्द्रा वै मानुषादयः।
येन दानवरक्षोभ्यो विज्ञाय सुमहद्भयम्।।६।।
त्रिदिवं समनुप्राप्य सुमेरुशिखरं चिरम्। वासुदेवं समाराध्य निरातङ्का वसन्ति ते।।७।।

ब्रह्मा कहते हैं—मुनिप्रवरगण! भूतल पर दुर्लभ अनन्त वासुदेव का साररूप परम माहात्म्य कह रहा हूं। हे विप्रगण! आदिकल्प में मैंने अव्यक्तजन्मा होकर श्रेष्ठ देवशिल्पी विश्वकर्मा को बुला कर कहा—"हे सुकर्मकृत देवशिल्पी! हे विश्वकर्मा! सविधि जिसे देखकर इन्द्रादि देवगण से लेकर सामान्य मनुष्य पर्यन्त अनुरक्त हो जायें, पृथिवी पर ऐसी वासुदेव की शैलमयी (पत्थर की) प्रतिमा निर्मित करो, जिसे देखकर दानव-

राक्षस से महाभय पाकर स्वर्ग आकर सुमेरु शिखर पर निवास कर रहें देवता-मनुष्यादि भी चिरकाल तक आराधना करते हुये सुख से निवास करें।।३-७।।

मम तद्वचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा तु तत्क्षणात्। चकार प्रतिमां शुद्धां शङ्खचक्रगदाधराम्।।८।।
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम्। श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तामत्युग्रां प्रतिमोत्तमाम्।।९।।
वनमालावृतोरस्कां मुकुटाङ्गदधारिणीम्। पीतवस्त्रां सुपीनांसां कुण्डलाभ्यामलङ्कृताम्।।१०।।
एवं सा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम्।
प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयाऽसौ निर्मिता पुरा।।११।।
तस्मिन्काले तदा शक्रो देवराट्खेचरैः सह। जगाम ब्रह्मसदनमारुह्य गजमुत्तमम्।।१२।।

विश्वकर्मा ने मेरा आदेश सुनकर तत्क्षण तदनुरूप प्रतिमा का निर्माण कर दिया। वह प्रतिमा शुद्धा, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारिणी, सर्व सुलक्षण सम्पन्ना, पुण्डरीकायत नेत्रों वाली (कमल पत्र जैसे विशाल नेत्रों वाली), श्रीवत्सचिह्नांकित, वनमाला से ढंके वक्षःस्थल वाली, मुकुट तथा बाजूबन्द धारण किये हुये, पीत वस्त्र से आच्छादित, स्थूल स्कन्धों वाली तथा कुण्डल युगल से अलंकृत कानों वाली थी। ऐसी प्रतिमा को उपस्थित देख कर मैंने स्वयं गुप्त मन्त्रों से उसकी प्राण-प्रतिष्ठा प्रारम्भ कर दिया। तभी देवगण के साथ इन्द्रदेव उत्तम गज पर आरूढ़ होकर ब्रह्मलोक आये।।८-१२।।

प्रसाद प्रतिमां शक्रः स्नानदानैः पुनः पुनः।
प्रतिमां तां समाराध्य (दाय) स्वपुरं पुनरागमत्।।१३।।
तां समाराध्य सुचिरं यतवाक्कायमानसः। वृत्राद्यानसुरान्क्रूरान्नमुचिप्रमुखान्स च।।१४।।
निहत्य दानवान्भीमान्भुक्तवान्भुवनत्रयम्। द्वितीये च युगे प्राप्ते त्रेतायां राक्षसाधिपः।।१५।।
बभूव सुमहावीर्यो दशग्रीवः प्रतापवान्। दश वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रियः।।१६।।
चचार व्रतमत्युग्रं तपः परमदुश्चरम्। तपसा तेन तुष्टोऽहं वरं तस्मै प्रदत्तवान्।।१७।।

इन्द्र ने बारम्बार स्नान-दानादि से प्रतिमा की आराधना किया तथा अपने नगर वापस चले गये (पाठान्तर में है कि इन्द्र यह प्रतिमा लेकर इन्द्रलोक चले गये)। इन्द्र दीर्घकाल तक मन-वाणी-शरीर से उस प्रतिमा की आराधना के फलस्वरूप वृत्र आदि क्रूर असुरों तथा नमुचि आदि भीषण दानवों का वध करके भुवनत्रय की रक्षा करने में समर्थ हो गये थे। तब उन्होंने त्रैलोक्य राज्य का उपभोग किया। द्वितीय त्रेतायुग आने पर राक्षसपति, महाबली, प्रतापी दशग्रीव उत्पन्न हुआ। उसने निराहार तथा जितेन्द्रिय रहते हुये दस हजार वर्ष पर्यन्त परम दुष्कर अतीव उग्र तप किया। उसके तप के प्रभाव से प्रसन्न होकर मैंने प्रकट होकर वर प्रदान किया।।१३-१७।।

अवध्यः सर्वदेवानां स दैत्योरगयक्षसाम्। शापप्रहरणैरुग्रैरवध्यो यमकिङ्करैः।।१८।।
वरं प्राप्य तदा रक्षो यक्षान्सर्वगणानिमान्।
धनाध्यक्षं विनिर्जित्य शक्रं जेतुं समुद्यतः।।१९।।

सङ्ग्रामं सुमहाघोरं कृत्वा देवैः स राक्षसः। देवराजं विनिर्जित्य तदा इन्द्रजितेति वै॥२०॥
राक्षसस्तत्सुतो नाम मेघनादः प्रलब्धवान्। अमरावतीं ततः प्राप्य देवराजगृहे शुभे॥२१॥
ददर्शाञ्जनसङ्काशां रावणस्तु बलान्वितः। प्रतिमां वासुदेवस्य सर्वलक्षणसंयुताम्॥२२॥
श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तां पद्मपत्रायतेक्षणाम्। वनमालावृतोरस्कां मुकुटाङ्गदभूषिताम्॥२३॥
शङ्खचक्रगदाहस्तां पीतवस्त्रां चतुर्भुजाम्। सर्वाभरणसंयुक्तां सर्वकामफलप्रदाम्॥२४॥
विहाय रत्नसङ्घांश्च प्रतिमां शुभलक्षणाम्। पुष्पकेण विमानेन लङ्कां प्रस्थापयद्द्रुतम्॥२५॥

मैंने उसे वर दिया था कि तुम देवता, राक्षस, दैत्य, सर्पों से तथा यमकिंकर के शाप एवं आघातादि से अवध्य रहोगे। उस वर से बली होकर वह राक्षस यक्षों तथा कुबेर पर विजय पाकर इन्द्र को पराजित करने हेतु उद्यत हो गया। उस राक्षसराज का मेघनाद नामक पुत्र था। उसने देवगण से महाघोर युद्ध किया तथा देवराज को परास्त करके इन्द्रजित् नाम प्राप्त किया। रावण ने तब अमरावती पर अधिकार कर लिया। उसने सदल-बल देवराज के भवन में प्रवेश करके वासुदेव की उस मूर्त्ति को देखा। वह मूर्त्ति अंजनवत् सर्वलक्षणान्वित, श्रीवत्सांकित, कमलपत्र जैसे विशाल नेत्रों वाली, वनमाला से ढंके वक्षों वाली, चतुर्भुज थी। उसके हाथों में शंख, चक्र, गदा शोभायमान थे। उसका परिधान था पीत वस्त्र। वह मुकुट, बाजूबन्द प्रभृति सर्वाभरण भूषित थी। वह सभी कामनाओं का फल प्रदान करने वाली मूर्त्ति थी। रावण ने वह प्रतिमा अपने अधिकार में ले लिया। वहां के रत्नों के ढेर का स्पर्श किये बिना वह इस प्रतिमा को पुष्पक विमान पर रख कर लंकापुरी शीघ्र चला गया।।१८-२५।।

पुराध्यक्षः स्थितः श्रीमान्धर्मात्मा स विभीषणः। रावणस्यानुजो मन्त्री नारायणपरायणः॥२६॥
दृष्ट्वा तां प्रतिमां दिव्यां देवेन्द्रभवनच्युताम्। रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा विस्मयं समपद्यत॥२७॥
प्रणम्य शिरसा देवं प्रहृष्टेनान्तरात्मना। अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः॥२८॥
इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः। ज्येष्ठं भ्रातरमासाद्य कृताञ्जलिरभाषत॥२९॥
राजन्प्रतिमया त्वं मे प्रसादं कर्तुमर्हसि। यामाराध्य जगन्नाथ निस्तरेयं भवार्णवम्॥३०॥

श्रीमान् धर्मात्मा, वासुदेव भक्त, नगराध्यक्ष, रावण का मन्त्री विभीषण रावण का कनिष्ठ भ्राता था। वह इन्द्रपुरी से लाई इस प्रतिमा को देख कर रोमांचित एवं विस्मित हो गया। उसने इन देवता को मस्तक झुका कर प्रणामोपरान्त कहा—"आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा तप सफल हो गया।" तदनन्तर वह धार्मिक अपने बड़े भाई के पास जाकर हाथ जोड़ कर कहने लगा "हे राजन्! आप कृपया यह मूर्त्ति मुझे प्रदान करने की कृपा करिये। हे जगत्स्वामी! इनकी आराधना द्वारा मैं संसार रूपी इस घोर सागर को पार कर लूंगा"।।२६-३०।।

भ्रातुर्वचनमाकर्ण्य रावणस्तं तदाऽब्रवीत्। गृहाण प्रतिमां वीर त्वनया किं करोम्यहम्॥३१॥
स्वयम्भुवं समाराध्य त्रैलोक्यं विजये त्वहम्। नानाश्चर्यमयं देवं सर्वभूतभवोद्भवम्॥३२॥

विभीषणो महाबुद्धिस्तदा तां (रासाद्य) प्रतिमां शुभाम्।
शतमष्टोत्तरं चाब्दं समाराध्य जनार्दनम्॥३३॥

अजरामरणं प्राप्तमणिमादिगुणैर्युतम्। राज्यं लङ्काधिपत्यं च भोगान्भुङ्क्ते यथेप्सितान्॥३४॥

भाई का कथन सुनकर रावण ने कहा—"हे वीर! यह प्रतिमा तुम ले जाओ। इसका मैं क्या करूंगा? नाना आश्चर्य युक्त सर्वभूतसमूह की सृष्टि करने वाले पितामह ब्रह्मा की आराधना से त्रैलोक्य विजय कर लिया।" महाबुद्धिशाली विभीषण ने उस शुभ प्रतिमा को ग्रहण कर लिया। उसने १०८ वर्ष पर्यन्त उन जनार्दन की आराधना किया। उनकी कृपा से विभीषण अजर, अमर, अणिमादि सिद्धिशाली तथा लंकाधिपति हो गया। उसने सभी अभिलषित भोगों का भी यथेच्छ उपभोग किया।।३१-३४।।

मुनय ऊचुः

अहो नो विस्मयो जातः श्रुत्वेदं परमामृतम्।
अनन्तवासुदेवस्य सम्भवं भुवि दुर्लभम्॥३५॥
श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण यथातथम्। तस्य देवस्य माहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः॥३६॥

मुनिगण कहते हैं—अहो! भूतल पर दुर्लभ अनन्त वासुदेव का समस्त विवरण परमामृत रूपी है। इसे सुनकर हमें विस्मय हो रहा है। आप उसे पूर्णतः कहें।।३५-३६।।

ब्रह्मोवाच

तदा स राक्षसः क्रूरो देवगन्धर्वकिन्नरान्।
लोकपालान्समनुजान्मुनिसिद्धांश्च पापकृत्॥३७॥
विजित्य समरे सर्वनाजहार तदङ्गनाः।
संस्थाप्य नगरीं लङ्कां पुनः सीतार्थ (तां च) मोहितः॥३८॥
शङ्कितो मृगरूपेण सौवर्णेन च रावणः। ततः क्रुद्धेन रामेण रणे सौमित्रिणा सह॥३९॥
रावणस्य वधार्थाय हत्व वालिं मनोजवम्। अभिषिक्तश्च सुग्रीवो युवराजोऽङ्गदस्तथा॥४०॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस क्रूर राक्षस रावण ने तब देवता, गन्धर्व, किन्नर, लोकपाल, मनुष्य, मुनि, सिद्ध सभी को युद्ध में जीत कर उनको जीत कर देवस्त्रियों का हरण कर लिया। तब सीता पर मोहित होकर सोने का मृग बन गया। तत्पश्चात् राम ने लक्ष्मण के साथ मिलकर रावण वधार्थ मन के समान वेगवान बालि का वध किया तथा राजा के पद पर सुग्रीव को अभिषिक्त करने के अनन्तर युवराज पद पर अंगद को अभिषिक्त किया।।३८-४०।।

हनुमान्नलनीलश्च जाम्बवान्पनसस्तथा। गवयश्च गवाक्षश्च पाठीनः परमौजसः॥४१॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्वानरैः समहाबलैः। समावृतो महाघोरै रामो राजीवलोचनः॥४२॥
गिरीणां सर्वसङ्घातैःसेतुं बद्ध्वा महोदधौ। बलेन महता रामः समुत्तीर्य महोदधिम्॥४३॥
सङ्ग्राममतुलं चक्रे रक्षोगणसमन्वितः। यमहस्तं प्रहस्तं च निकुम्भं कुम्भमेव च॥४४॥
नरान्तकं महावीर्यं तथा चैव यमान्तकम्।
मालाढ्यं मालिकाढ्यं च हत्वा रामस्तु वीर्यवान्॥४५॥

पुनरिन्द्रजितं हत्वा कुम्भकर्णं सरावणम्।
वैदेहीं चाग्निनाऽऽशोध्य दत्त्वा राज्यं विभीषणे॥४६॥

हनुमान, नल, नील, जाम्बवान्, पनस, गवय, गवाक्ष, पाठीन प्रभृति परम ओजस्वी वानर तथा अनेक महाबली, महाघोर वानरों से घिर कर राजीवलोचन राम ने पर्वतों के ढेर से समुद्र पर पुल बनाया। अपनी महान् सेना के साथ राम ने उस महान् समुद्र को पार किया। तत्पश्चात् राम ने राक्षसों के सैन्य से अत्यन्त अतुलित संग्राम किया था। उन्होंने यमहस्त, प्रहस्त, निकुंभ, कुंभ, महाबली नरान्तक, यमान्तक, मालाढ्य, मालिकाढ्य का वध कर दिया। महावीर राम ने इन्द्रजीत तथा कुंभकर्ण का वध रावण के साथ ही कर दिया था। तत्पश्चात् राम ने वैदेही का अग्नि में शोधन करके लंका का राज्य विभीषण को प्रदान कर दिया।।४१-४६।।

वासुदेवं समादाय यानं पुष्पकमारुहत्। लीलया समनुप्रापदयोध्यां पूर्वपालिताम्॥४७॥
कनिष्ठं भरतं स्नेहाच्छत्रुघ्नं भक्तवत्सलः। अभिषिच्य तदा रामः सर्वराज्येऽधिराजवत्॥४८॥
पुरातनीं स्वमूर्तिं च समाराध्य ततो हरिः। दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च॥४९॥
भुक्त्वा सागरपर्यन्तां मेदिनीं स तु राघवः। राज्यमासाद्य सुगतिं वैष्णवं पदमाविशत्॥५०॥
तां चापि प्रतिमां रामः समुद्रेशाय दत्तवान्। धन्यो रक्षयितासि त्वं तोयरत्नसमन्वितः॥५१॥

श्रीराम तत्पश्चात् वह वासुदेव मूर्ति लेकर सीता के साथ पुष्पक यान पर आरूढ़ होकर पूर्वपालित अयोध्या आये। वहां राघव राम ने प्रेम के वशीभूत होकर कनिष्ठ भ्राता भरत तथा शत्रुघ्न को सर्वराज्य के अधिकारी की तरह अभिषिक्त किया और अपनी उस पुरातनी (विश्वकर्मा निर्मित तथा इन्द्र द्वारा पूजित) वासुदेव प्रतिमा की आराधना करते हुये ११००० वर्ष पर्यन्त समुद्रान्त धरती का उपभोग किया। राज्यकाल समाप्त करते समय राम ने वह प्रतिमा समुद्र के अधिष्ठित देवता को यह कहकर प्रदान किया "आप जल-रत्न से सम्पन्न तथा धन्य हैं। इस प्रतिमा की रक्षा करिये।" तत्पश्चात् राम ने विष्णुलोक प्रयाण किया।।४७-५१।।

द्वापरं युगमासाद्य यदा देवो जगत्पतिः। धरण्याश्चानुरोधेन भावशैथिल्यकारणात्॥५२॥
अवतीर्णः स भगवान्वसुदेवकुले प्रभुः। कंसादीनां वधार्थाय सङ्कर्षणसहायवान्॥५३॥
तदा तां प्रतिमां विप्राः सर्ववाञ्छाफलप्रदाम्। सर्वलोकहितार्थाय कस्यसचित्कारणान्तरे॥५४॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे। उज्जहार स्वयं तोयात्समुद्रः सरितां पतिः॥५५॥
तदा प्रभृति तत्रैव क्षेत्रे मुक्तिप्रदे द्विजाः। आस्ते स देवो देवानां सर्वकामफलप्रदः॥५६॥

ये संश्रयन्ति चानन्तं भक्त्या सर्वेश्वरं प्रभुम्।
वाङ्मनः कर्मभिर्नित्यं ते यान्ति परमं पदम्॥५७॥

जब द्वापर में धर्मभाव में शिथिलता आ गयी, तब धरित्री की प्रार्थना पर जगत्पति देव प्रभु भगवान् ने कंस आदि दुष्ट राजाओं के वधार्थ संकर्षण (बलराम) के साथ वसुदेव कुल में अवतार लिया। हे विप्रगण! उस समय सरित्पति समुद्र ने किसी कारण से तथा सर्वलोक हित कामना से उस पवित्र दुर्लभ पुरुषोत्तम क्षेत्र में सर्वकामना फलप्रदा उस प्रतिमा को जल से स्वयं बाहर कर दिया। हे द्विजगण! तब से समस्त देवगणों को भी कामनाफल प्रदान करने वाले वे देवता उस मुक्तिप्रद क्षेत्र में ही विराजमान हैं। जो भक्तिभाव से वाक्-मन-कर्म द्वारा उन सर्वेश्वर प्रभु अनन्त देव का नित्य आश्रय ग्रहण करते हैं, उनको परमपद लाभ होता है।।५२-५७।।

दृष्ट्वाऽनन्तं सकृद्भक्त्या सम्पूज्य प्रणिपत्य च।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं दशगुणं लभेत्॥५८॥
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा। विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना॥५९॥
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य दिव्यस्त्रीगणसेवितः। उपगीयमानो गन्धर्वैर्नरो विष्णुपुरं व्रजेत्॥६०॥

भक्तियुक्त चित्त से उन अनन्त देव का एक बार भी दर्शन करके जो कोई उनकी पूजा तथा उनको प्रणाम करता है, वह मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेध से दस गुना फल प्राप्त कर लेता है। वह अपनी २१ पीढ़ी का उद्धारक होकर सभी कामनापूर्त्ति से समृद्ध, अत्यन्त उज्ज्वल, सूर्यवर्ण, कामवेगी (इच्छानुसार वेग से चलने वाले), छोटी-छोटी घंटियों से युक्त विमान पर बैठ कर दिव्य स्त्रीगण से सेवित होकर तथा गन्धर्वों से स्तुत होता विष्णुलोक जाता है।।५८-६०।।

तत्र भुक्त्वा वरान्भोगाञ्जरामरणवर्जितः। दिव्यरूपधरः श्रीमान्यावदाभूतसम्प्लवम्॥६१॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातश्चतुर्वेदी द्विजोत्तमः। वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥६२॥
एवं मया त्वनन्तोऽसौ कीर्तितो मुनिसत्तमाः।
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तस्य वर्षशतैरपि॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादेऽनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपणं नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७६॥

वहां वह व्यक्ति जरामरण वर्जित दिव्य रूपधारी तथा श्रीमान् होकर कल्पान्त पर्यन्त उत्तम भोगास्वादन करके स्थित रहता है। तत्पश्चात् पुण्यक्षय हो जाने पर इहलोक में चतुर्वेदज्ञ श्रेष्ठ ब्राह्मण होता है। तत्पश्चात् वैष्णवयोग प्राप्त होकर मुक्त हो जाता है। हे मुनिवरगण! एवंविध मैंने यह अनन्तदेव माहात्म्य कह दिया। सौ वर्षों तक कहने पर भी इसके गुणों को कौन पूर्णतः कह सकता है?।।६१-६३।।

।।षट्सप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

पुरुषोत्तम क्षेत्र माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

एवं वोऽनन्तमाहात्म्यं क्षेत्रं च पुरुषोत्तमम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां मया प्रोक्तं सुदुर्लभम्॥१॥
यत्राऽऽस्ते पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः। पीताम्बरधरः कृष्णः कंसकेशिनिषूदनः॥२॥

ये तत्र कृष्णं पश्यन्ति सुरासुरनमस्कृतम्। सङ्कर्षणं सुभद्रां च धन्यास्ते नात्र संशयः॥३॥

त्रैलोक्याधिपतिं देवं सर्वकामफलप्रदम्।
ये ध्यायन्ति सदा कृष्णं मुक्तास्ते नात्र संशयः॥४॥
कृष्णे रताः कृष्णमनुंस्मरन्ति, रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये।
ते भिन्नदेहाः प्रविशन्ति कृष्णं हविर्यथा मन्त्रहुतं हुताशनम्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—मानव को भोग-मोक्ष प्रदाता, सुदुर्लभ अनन्त माहात्म्यपूर्ण पुरुषोत्तम क्षेत्र का वर्णन मैंने कर दिया। जहां पुण्डरीकाक्ष शंख-चक्र-गदाधारी, पीताम्बर से शोभित कंस संहर्त्ता कृष्ण विराजमान हैं, उस क्षेत्र में जो सुरासुर नमस्कृत कृष्ण, सुभद्रा अथवा संकर्षण का दर्शन करता है, वही धन्य है। इसमें सन्देह नहीं है। जो कृष्ण में मन से रत है, कृष्ण का ही अनुस्मरण करता है, रात में उठ कर कृष्ण की ही भावना करता है, वह देहान्त होने पर उसी प्रकार कृष्ण में प्रवेश प्राप्त करता है, जैसे अग्नि में मन्त्रपूत हवि लीन हो जाती है।।१-५।।

तस्मात्सदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णः कमललोचनः।
तस्मिन्क्षेत्रे प्रयत्नेन द्रष्टव्यो मोक्षकाङ्क्षिभिः॥६॥

शयनोत्थापने कृष्णं ये पश्यन्ति मनीषिणः। हलायुधं सुभद्रां च हरः स्थानं व्रजन्ति ते॥७॥

सर्वकालेऽपि ये भक्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम्।
रौहिणेयं सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते॥८॥
आस्ते यश्चतुरो मासान्वार्षिकान्पुरुषोत्तमे।
पृथिव्यास्तीर्थयात्रायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम्॥९॥
ये सर्वकालं तत्रैव निवसन्ति मनीषिणः।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा लभन्ते तपसः फलम्॥१०॥

हे मुनिप्रवरगण! मोक्ष चाहने वाले लोगों को इस क्षेत्र में कमलनयन कृष्ण का दर्शन करना चाहिये। जो लोग देवशयनी एकादशी तथा देवोत्थान एकादशी के दिन कृष्ण, बलराम-हलायुध तथा देवी सुभद्रा का दर्शन करते हैं, उनको हरि का लोक मिलता है। जो पर्वकाल में भक्तिभाव के साथ पुरुषोत्तम कृष्ण, रौहिणेय बलभद्र तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं, वे विष्णुलोक जाते हैं। जो मनुष्य वर्षाकालीन चातुर्मास में इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करता है, उसे पृथिवी के समस्त तीर्थों के सेवन से भी अधिक फललाभ होता है। जो इन्द्रियजित् तथा क्रोध को जीत कर सर्वकाल यहां इस क्षेत्र में निवास करते हैं, उनको तत्काल तपस्या का फल मिलता है।।६-१०।।

तपस्तप्त्वाऽन्यतीर्थेषु वर्षाणामयुतं नरः। यदाप्नोति तदाप्नोति मासेन पुरुषोत्तमे॥११॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यानेन यत्फलम्। तत्फलं सततं तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिणः॥१२॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं स्नानदानेन कीर्तितम्। तत्फलं सततं तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिणः॥१३॥

सम्यक्तीर्थेन यत्प्रोक्तं व्रतेन नियमेन च। तत्फलं लभते तत्र प्रत्यहं प्रयतः शुचिः॥१४॥
यस्तु नानाविधैर्यज्ञैर्यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते तत्र प्रत्यहं संयतेन्द्रियः॥१५॥

अन्य सभी तीर्थों में दस सहस्त्र वर्ष तप करने का जो फल है, पुरुषोत्तम क्षेत्र में वह एक मास में ही मिल जाता है। तपस्या, संगत्याग तथा ब्रह्मचर्य पालन का जो फल है, मनीषीगण यहां सदा वही फललाभ करते रहते हैं। मनीषी लोग को सर्व तीर्थों में स्नानदान का जो फल मिलना कहा गया है, वही फल वे पुरुषोत्तम क्षेत्र में पा जाते हैं। सम्यक् रूप से किया गया व्रत, नियम तथा तीर्थाटन का जो फल है, प्रयत एवं पवित्र व्यक्ति यहां वही फल पा जाता है। मनुष्य नाना प्रकार के यज्ञों को करने से जो फल प्राप्त करता है, यहां संयतेन्द्रिय होकर रहने मात्र से वही फल नित्यप्रति मिलता रहता है!।।११-१५।।

देहं त्यजन्ति पुरुषास्तत्र ये पुरुषोत्तमे। कल्पवृक्षं समासाद्य मुक्तास्ते नात्र संशयः॥१६॥
वटसागरयोर्मध्ये ये त्यजन्ति कलेवरम्। ते दुर्लभं परं मोक्षं प्राप्नुवन्ति न संशयः॥१७॥

अनिछन्नपि यस्तत्र प्राणांस्त्यजति मानवः।
सोऽपि दुःखविनिर्मुक्तो मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम्॥१८॥

कृमिकीटपतङ्गाद्यास्तिर्यग्योनिगताश्च ये। तत्र देहं परित्यज्य ते यान्ति परमां गतिम्॥१९॥

भ्रान्तिं लोकस्य पश्यध्वमन्यतीर्थं प्रति द्विजाः।
पुरुषाख्येन यत्प्राप्तमन्यतीर्थफलादिकम्॥२०॥

सकृत्पश्यति यो मर्त्यः श्रद्धया पुरुषोत्तमम्। पुरुषाणां सहस्त्रेषु स भवेदुत्तमः पुमान्॥२१॥
प्रकृतेः स परो यस्मात्पुरुषादपि चोत्तमः। तस्माद्वेदे पुराणे च लोकेऽस्मिन्पुरुषोत्तमः॥२२॥

उस पुरुषोत्तम क्षेत्र में कल्पवृक्ष के निकट जो लोग देहत्याग करते हैं, वे दुर्लभ परममोक्ष लाभ करते हैं। इसमें संशय नहीं है। जो मानव अनिच्छा के कारण भी वहां प्राण त्याग करता है, वह दुःख रहित होकर दुर्लभ मुक्ति लाभ करता है। जो जीव-कृमि-कीट-पतंगादि योनि में जन्मे हैं, वे भी यहां प्राण त्याग होने पर परागति लाभ करते हैं। हे ब्राह्मणवृन्द! लोकों में व्याप्त भ्रान्ति देखिये। अकेले पुरुषोत्तम क्षेत्र में सर्वतीर्थफल लाभ होता है, तब भी लोग अन्यत्र भागदौड़ करते रहते हैं। जो व्यक्ति सश्रद्ध भाव से एक बार भी पुरुषोत्तम का दर्शन करता है, हजारों व्यक्तियों के बीच वही उत्तम व्यक्ति माना जाता है। वे प्रभु प्रकृति के परवर्ती (पूर्वज) अथच पुरुष की अपेक्षा उत्तम हैं (पुरुष तत्व से उत्तम हैं) तभी वेद में तथा पुराण में वे पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हैं।।१६-२२।।

योऽसौ पुराणे वेदान्ते परमात्मेत्युदाहृतः। आस्ते विश्वोपकाराय तेनासौ पुरुषोत्तमः॥२३॥

पथि श्मशाने गृहमण्डपे वा, रथ्याप्रदेशेष्वपि यत्र कुत्र।
इच्छन्ननिच्छन्नपि तत्र देहं, सन्त्यज्य मोक्षं लभते मनुष्यः॥२४॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः।
देहत्यागो नरैः कार्यः सम्यङ्मोक्षाभिकाङ्क्षिभिः॥२५॥

पुरुषाख्यस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति।
त्यक्त्वा यत्र नरो देहं मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम्॥२६॥
गुणानामेकदेशोऽयं मया क्षेत्रस्य कीर्तितः।
कः समस्तान्गुणान्वक्तुं शक्तो वर्षशतैरपि॥२७॥

वेदान्त तथा पुराण में जो परमात्मा कहे गये हैं, वे ही विश्व के उपकार साधनार्थ पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हैं। उस पुरुषोत्तम क्षेत्र में इच्छा पूर्वक अथवा अनिच्छापूर्वक, श्मशान में, गृहमण्डप में किंवा सड़क पर, चौराहे पर, चाहे जहां देहत्याग करे, वह मनुष्य शीघ्रता पूर्वक मोक्षलाभ करता है। हे द्विजसत्तमगण! इसलिये सम्यक् मोक्षकामी मनुष्य के लिये सर्वप्रयत्न पूर्वक वहीं देहत्याग का कर्तव्य है। हे द्विजोत्तमवृन्द! इसीलिये जहां मनुष्य मात्र देहत्याग द्वारा दुर्लभ मुक्तिलाभ करता है, उस पुरुषोत्तम क्षेत्र के माहात्म्य के समान माहात्म्य अन्य कहीं भी नहीं है। होगा भी नहीं। यहां के इस क्षेत्र के गुणों का मात्र एक अंश ही मेरे द्वारा कहा गया है। इसके समस्त गुणों का वर्णन करने की शक्ति किसमें है? सौ वर्ष में भी इसका गुण वर्णन संभव नहीं है।।२३-२७।।

यदि यूयं मुनिश्रेष्ठा मोक्षमिच्छथ शाश्वतम्।
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निवसध्वमतन्द्रिताः॥२८॥

हे मुनिवृन्द! यदि आप लोग शाश्वत मोक्षकामी हैं, तब आप लोग इस क्षेत्र में आलस्य रहित होकर रहिये।।२८।।

व्यास उवाच

ते तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
निवासं चक्रिरे तत्र अवापुः गरमं पदम्॥२९॥
तस्माद्यूयं प्रयत्नेन निवसध्वं द्विजोत्तमाः। पुरुषाख्ये वरे क्षेत्रे यदि मुक्तिमभीप्सथ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ब्रह्मऋषिसंवादे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम
सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७७।।

ब्रह्मा कहते हैं—उन मुनियों ने अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा का यह सब वाक्य सुनकर परमपद प्राप्त किया था। अतः हे श्रेष्ठ ब्राह्मणवृन्द! यदि आप सब भी मुक्ति चाहते हैं, तब इस श्रेष्ठ पुरुषोत्तम क्षेत्र के निवासी हो जाईये।।२९-३०।।

।।सप्तसप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कण्डु का चरित्र वर्णन

व्यास उवाच

तस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः सर्वसत्त्वसुखावहे। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदे पुरुषोत्तमे॥१॥
कण्डुर्नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः। सत्यवादी शुचिर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः॥२॥
जितेन्द्रिया जितक्रोधो वेदवेदाङ्गपारगः। आवाप परमां सिद्धिमाराध्य पुरुषोत्तमम्॥३॥
अन्येऽपि तत्र संसिद्धा मुनयः संशितव्रताः।
सर्वभूतहिता दान्ता जितक्रोधा विमत्सराः॥४॥

व्यास कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! सभी जीवगण के लिये सुखप्रद, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष फलदायक यह पुरुषोत्तम क्षेत्र है। इसमें पूर्वकाल में कण्डु ऋषि रहते थे, जो महातेजा, सत्यवक्ता, परमधार्मिक पवित्र, दान्त, प्राणीगण के हित में रत, जितेन्द्रिय, जितक्रोध तथा वेदवेदांग पारंगत थे। इन ऋषि ने पुरुषोत्तम की आराधना द्वारा परमा सिद्धिलाभ किया था। इसके अतिरिक्त सर्वभूत हितकारी, दान्त, इन्द्रियजित्, मत्सर रहित व्रती कई मुनिगण ने वहां सिद्धिलाभ किया था।।१-४।।

मुनय ऊचुः

कोऽसौ कण्डुः कथं तत्र जगाम परमां गतिम्।
श्रोतुकमच्छामहे तस्य चरितं ब्रूहि सत्तम॥५॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिप्रवर! वे कण्डु ऋषि कौन थे? उनको किस प्रकार परमगति लाभ हुआ? हम उनके चरित्र को सुनना चाहते हैं। हे सत्तम! वह कहिये।।५।।

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कथां तस्य मनोहराम्।
प्रवक्ष्यामि समासेन मुनेस्तस्य विचेष्टितम्॥६॥
पवित्रे गौतमीतीरे विजने सुमनोहरे। कन्दमूलफलैः पूर्णे समित्पुष्पकुशान्वितैः॥७॥
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते। नानापक्षिरुते रम्ये नानामृगगणान्विते॥८॥
तत्राऽऽश्रमपदं कण्डोर्बभूव मुनिसत्तमाः। सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं कदलीखण्डमण्डितम्॥९॥
तपस्तेपे मुनिस्तत्र सुमहत्परमाद्भुतम्। व्रतोपवासैर्नियमैः स्नानमौनसुसंयमैः॥१०॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिशार्दूलगण! उनकी मनोहर कथा का श्रवण करिये। संक्षेप में कण्डु मुनि का चरित्र कहता हूं। पवित्र गौमती तीर पर कन्दमूल फलपूर्ण, समित् पुष्प तथा कुशायुक्त, नाना वृक्षों से समाकीर्ण, नाना पुष्पों से शोभित, नाना पक्षियों के विचरण के कारण रम्य, नाना मृगों से भरे, मनोहर एक

विजन प्रदेश में कण्डु मुनि का आश्रम प्रतिष्ठापित था। हे मुनिप्रवरगण! वह सभी ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फल-पुष्पों से तथा कदली वृक्ष समूह से मण्डित था। कण्डु ऋषि ने इसी आश्रम में व्रत, आवास, नियम, स्नान, मौन, संयम आदि का पालन करते परम अद्‌भुद् महान् तप आरम्भ किया।।६-१०।।

ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षासु स्थण्डिलेशयः। आर्द्रवासास्तु हेमन्ते स तेपे सुमहत्तपः॥११॥

दृष्ट्वा तु तपसो वीर्यं मुनेस्तस्य सुविस्मिताः। बभूवुर्देवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा॥१२॥

भूमिं तथाऽन्तरिक्षं च दिवं च मुनिसत्तमाः।
कण्डुः सन्तापयामास त्रैलोक्यं तपसो बलात्॥१३॥

वे ऋषि ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि के बीच बैठ कर तप करते, वर्षाकाल में बिना आच्छादन भूमि पर शयन करते, हेमन्त काल में गीले वस्त्र पहने महान् तप कर रहे थे। उन मुनि के कठोर तप को देख कर देवता, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधरादि—सभी विस्मित थे। हे मुनिसत्तमवृन्द! कण्डु मुनि की तपस्या के प्रभाव से भूलोक, द्युलोक तथा अन्तरिक्ष लोक सन्तप्त हो उठा।।११-१३।।

अहोऽस्य परमं धैर्यमहोऽस्य परमं तपः। इत्यब्रुवंस्तदा दृष्ट्वा देवास्तं तपसि स्थितम्॥१४॥

मन्त्रयामासुरव्यग्राः शक्रेण सहितास्तदा। भयात्तस्य समुद्विग्नास्तपोविघ्नमभीप्सवः॥१५॥

ज्ञात्वा तेषामभिप्रायं शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः। प्रम्लोचाख्यां वरारोहां रूपयौवनगर्विताम्॥१६॥

सुमध्यां चारुजङ्घां तां पीनश्रोणिपयोधराम्। सर्वलक्षणसम्पन्नां प्रोवाच फलसूदनः॥१७॥

देवगण ने इन तपःश्चरण तत्पर मुनि को देख कर कहा—"अहो! इनमें कितना श्रेष्ठ धैर्य है! कैसी परम तपस्या है।" वे देवता परस्पर ऐसी बातें करते रहते। अन्त में देवगण इन मुनि के तप से भयभीत होकर तपभंग करने की कामना से इन्द्र के साथ मन्त्रणा करने लगे। त्रिभुवनेश्वर इन्द्र ने देवताओं का अभिप्राय जानकर उन मुनि के तपःफल का नाश करने के लिये प्रम्लोचा नामक वरारोहा, रूप-यौवन गर्विता, सुमध्यमा, चारु जंघा वाली, स्थूल नितम्ब तथा स्तनों वाली, सर्वलक्षणान्विता, प्रम्लोचा अप्सरा से कहा—।।१४-१७।।

शक्र उवाच

प्रम्लोचे गच्छ शीघ्रं त्वं यदाऽसौ तप्यते मुनिः।
विघ्नार्थं तस्य तपसः क्षोभयस्वां (स्वाऽऽ) शु सुप्रभे॥१८॥

देवराज इन्द्र कहते हैं—हे सुप्रभे प्रम्लोचा! शीघ्र जाओ। इन तपःश्चरशील मुनि की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करो।।१८।।

प्रम्लोचोवाच

तव वाक्यं सुरश्रेष्ठ करोमि सततं विभो। किन्तु शङ्का ममैवात्र जीवितस्य च संशयः॥१९॥

बिभेमि तं मुनिवरं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितम्। अत्युग्रं दीप्ततपसं ज्वलनार्कसमप्रभम्॥२०॥

ज्ञात्वा मां स मुनिः क्रोधाद्विघ्नार्थं समुपागताम्।
कण्डुः परमतेजस्वी शापं दास्यति दुःसहम्॥२१॥

उर्वशी मेनका रम्भा घृताची पुञ्जिकस्थला।
विश्वाची सहजन्या च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा॥२२॥
अलम्बुषा मिश्रकेशी शशिलेखा च वामना। अन्याश्चाप्सरसः सन्ति रूपयौवनगर्विताः॥२३॥
सुमध्याश्चारुवदनाः पीनोन्नतपयोधराः। कामप्रधानकुशलास्तास्तत्र सन्नियोजय॥२४॥

प्रम्लोचा कहती है—हे प्रभो! मैं सदा आपके आदेश का पालन करती रहती हूं। तथापि इस कार्य में तो मुझे अपने जीवन नाश की आशंका हो रही है। ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित, दीप्त तेजसम्पन्न, ज्वलित सूर्यवत् कान्ति वाले, इन अत्युग्र मुनि से मुझे भय लग रहा है। ये परम तेजवान् कण्डुमुनि मुझे विघ्न करने आई जान कर भयानक शाप प्रदान करेंगे। स्वर्गलोक में उर्वशी, मेनका, रंभा, घृताची, पुंजिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, पूर्वचित्ति, तिलोत्तमा, अलम्बुषा, मिश्रकेशी, शशिलेखा, वामना आदि अन्य अप्सरायें भी हैं, जो रूप-यौवन गर्विता, सुमध्यमा, चारुवदना, उन्नत तथा स्थूल स्तनों वाली, कामप्रधान कर्म में कुशला हैं। इस कार्य में इनमें से किसी को लगाइये।।१९-२४।।

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह शचीपतिः।
तिष्ठन्तु नाम चान्यास्तास्त्वं चात्र कुशला शुभे॥२५॥
कामं वसन्तं वायुं च सहायार्थे ददामि ते।
तैः सार्धं गच्छ सुश्रोणि यत्राऽऽस्ते स महामुनिः॥२६॥
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा तदा सा चारुलोचना।
जगामाऽऽकाशमार्गेण तैः सार्धं चाऽऽश्रमं मुने॥२७॥
गत्वा सा तत्र रुचिरं ददर्श वनमुत्तमम्। मुनिं च दीप्ततपसमाश्रमस्थमकल्मषम्॥२८॥
अपश्यत्सा वनं रम्यं तैः सार्धं नन्दनोपमम्। सर्वर्तुवरपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम्॥२९॥
पुण्यं पद्मबलोपेतं सपल्लवमहाबलम्। श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्शब्दान्खगमुखेरितान्॥३०॥
सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमज्ज्वलान्। अपश्यत्पादपांश्चैव विहङ्गैरनुनादितान्॥३१॥
आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेरान्सतिन्दुकान्।
अथ बिल्वांस्तथाजीवान्दाडिमान्बीजपूरकान्॥३२॥

ब्रह्मा कहते हैं—शचीपति इन्द्र ने प्रम्लोचा का कथन सुनकर पुनः कहा कि "अन्य जो अप्सरायें हैं, वे रहें। हे कामिनी! शुभे! तुम इस कर्म में कुशल हो। इस कार्य में तुम्हारी सहायता के लिये काम, वसन्त तथा वायु को भी साथ भेजूंगा। हे सुश्रोणी! तुम उनके साथ वहीं जाओ, जहां मुनि हैं।" इन्द्र का यह कथन सुनकर वह चारुनेत्रा वसन्त आदि के साथ आकाशमार्ग से वहां पहुंची। उसने वहां जाकर उस उत्तम वन तथा आश्रमस्थ दीप्त तेज वाले अकल्मष मुनि को देखा। अप्सरा ने वहां वसन्तादि के साथ नन्दनकानन के समान उस वन को देखा। वहां सभी ॠतुओं के पुष्प खिले थे। वहां के वृक्ष पुष्पों से भरे, शाखामृगों से आकुल थे (शाखामृग =

वानर)। वे पुण्यप्रद थे। वहां पर कमलों तथा पल्लवों की भरमार थी। वहां के पक्षी कानों को सुख देने वाले अति मधुर शब्द से कूजन-कलरव कर रहे थे। उस दीर्घ नेत्रों वाली प्रम्लोचा ने वहां देखा कि अनेक आम्र, आम्रातक, भव्य, नारिकेल, तिन्दुक, बेल, जीव, अनार, बीजपूर के वृक्ष भरे थे।।२५-३२।।

पनसांल्लकुचान्नीपाञ्शिरीषान्सुमनोहरान्। पारावतांस्तथा कोलानरिमेदाम्लवेतसान्॥३३॥
भल्लातकानामलकाञ्शतपर्णांश्च किंशुकान्।
इङ्गुदान्करवीरांश्च हरीतकीविभीतकान्॥३४॥
एतानन्यांश्च सा वृक्षान्ददर्श पृथुलोचना। तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ॥३५॥
पारिजातान्कोविदारान्मन्दारेन्दीवरांस्तथा। पाटलाः पुष्पिता रम्या देवदारुद्रुमास्तथा॥३६॥
शालांस्तालांस्तमालांश्च निचुलाँल्लोमकांस्तथा।
अन्यांश्च पादपश्रेष्ठानपश्यत्फलपुष्पितान्॥३७॥

वहां कटहल, लकुच, कदम्ब, सुमनोहर शिरीष, पारावत, कोल, अरिमेद, अम्लवेतस, भल्लातक, आमलक, शतपर्ण, किंशुक, इंगुदी, कनेर, हर्रे, विभीतक के तथा अनेक प्रकार के वृक्ष विद्यमान थे। उस पृथुलोचना ने (विशाल नेत्रों वाली ने) वहां पर अन्य वृक्षों को देखा। यथा—अशोक, पुन्नाग, केतकी, मौलश्री, पारिजात, कचनार, मन्दार, नीलकमल, पाटला, देवदारु, शाल, ताल, तमाल, निचुल (बेंत), लोमक तथा अन्य फल-पुष्प समन्वित वृक्षों को भी देखा, जो श्रेष्ठ पादप थे।।३३-३७।।

चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः। कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः॥३८॥
प्रियपुत्रैश्चाकैश्च तथाऽन्यैर्विविधैः खगैः। श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम्॥३९॥
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च।
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः॥४०॥
कह्लारैः कमलैश्चैव आचितानि समन्ततः। कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः॥४१॥
कारण्डवैर्बकैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च। एतैश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः॥४२॥
क्रमेणैव तथा सा तु वनं बभ्राम तैः सह। एवं दृष्ट्वा वनं रम्यं तैः सार्धं परमाद्भुतम्॥४३॥
विस्मयोत्फुल्लनयना सा बभूव वराङ्गना।
प्रोवाच वायुं कामं च वसन्तं च द्विजोत्तमाः॥४४॥

प्रम्लोचा ने वहां कोकिल, चकोर, शतपत्र, भृंगराज, शुक, कलविंक, हारीत, जीवजीवक, प्रियपुत्रा, चातक तथा और भी अन्य प्रकार के पक्षी वृक्ष पर बैठ कर सुनने में अच्छे लगने वाले मधुर स्वर में कूजन कर रहे थे। कितने प्रसन्न जल (स्वच्छ जल) सम्पन्न, मनोहर सरोवर थे। उनमें कुमुद, कल्हार, कमल, श्वेत कमल, नीलोत्पल आदि शुभ जलपुष्प खिले थे तथा वहां उनमें जलमुर्ग, करण्डव, बक, हंस, कच्छप, मद्गु तथा अन्य जलजन्तु भरे पड़े थे। प्रम्लोचा अप्सरा ने उस वन में पूर्वोक्त वसन्त प्रभृति के साथ भ्रमण करते हुये इस प्रकार के रम्य परम अद्भुद् वन को देख कर विस्मय से विस्फारित नेत्रों की स्थिति में वायु, कामदेव तथा वसन्त से कहा—।।३८-४४।।

प्रम्लोचोवाच

कुरुध्वं मम साहाय्यं यूयं सर्वे पृथक्पृथक्॥४५॥

प्रम्लोचा कहती है—तुम सब लोग अलग-अलग मेरी सहायता करो।।४५।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा सा तु तथेत्युक्ता सुरैर्द्विजाः।
प्रत्युवाचाद्य यास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनिः॥४६॥
अद्य तं देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम्। स्मरशस्त्रगलद्रश्मिं करिष्यामि कुसारथिम्॥४७॥
ब्रह्मा जनार्दनो वाऽपि यदि वा नीललोहितः।
तथाऽऽप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम्॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! तब सभी ने कहा—"हम वही करेंगे।" प्रम्लोचा कहने लगी—"जहां मुनि हैं, मैं वहां जा रही हूं। जो देह रूपी रथ के नियन्ता तथा इन्द्रियों को यथायोग्य विजित करने वाले हैं, उन मुनि को आज मैं कुसारथी बना दूंगी। यदि आज ब्रह्मा, जनार्दन तथा नीललोहित शिव ही क्यों न आ जायें, मैं उनको भी कामबाण से आहत कर दूंगी। मैं आज इन मुनि के मन को कामबाण से अवश्य विद्ध कर दूंगी"।।४६-४८।।

इत्युक्त्वा प्रययौ साऽथ यत्रासौ तिष्ठते मुनिः। मुनेस्तपःप्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम्॥४९॥
सा पुंस्कोकिलमाधुर्ये नदीतीरे व्यवस्थिता।
स्तोकमात्रं स्थिता तस्मादगायत वराऽप्सराः॥५०॥

यह कहने के उपरान्त वह अप्सरा वहां गयी, जहां मुनि विराजित थे। मुनि के तपःप्रभाव से वहां हिंसक मांसाहारी पशु भी शान्त रहते थे। तदनन्तर वह अप्सरा नरकोकिल के कलरव से मधुर नदी तट पर जाकर रुक गयी। कुछ समय के अनन्तर उसने वहां (मुनि के आश्रम के पास) गायन प्रारम्भ कर दिया।।४९-५०।।

ततो वसन्तः सहसा बलं समकरोत्तदा। कोकिलारावमधुरमकालिकमनोहरम्॥५१॥
ववौ गन्धवहश्चैव मलयाद्रिनिकेतनः। पुष्पानुच्चावचान्मेध्यान्पातयंश्च शनैः शनैः॥५२॥
पुष्पबाणधरश्चैव गत्वा तस्य समीपतः। मुनेश्च क्षोभयामास कामस्तस्यापि मानसम्॥५३॥
ततो गीतध्वनिं श्रुत्वा मुनिर्विस्मितमानसः।
जगाम यत्र सा सुभ्रूः कामबाणप्रपीडितः॥५४॥
दृष्ट्वा तामाह सन्दृष्टो विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
भ्रष्टोत्तरीयो विकलः पुलकाञ्चितविग्रहः॥५५॥

उसी समय सहसा वहां वसन्त ने भी आकर अपना प्रभाव फैलाया। उसने अकाल में ही कोकिल के आलाप को मधुर एवं मनोहर कर दिया। वहां पर मलयाचल वाली गन्धयुक्त वायु बहने लगी। वह वायु वहां मन्द-मन्द बहते हुये नाना जाति के उत्तम पुष्पों को भूमि पर गिराने लगी। पुष्पधन्वा कामदेव भी मुनि के निकट

जाकर उन मुनि के मन को क्षुब्ध करता जा रहा था। उस समय वहां गीत ध्वनि श्रवण करके वे मुनि विस्मित हो उठे। वे कामपीड़ित होकर वहां गये, जहां वह मनोहर भौंओं वाली अप्सरा गायन कर रही थी। उसे देख कर मुनि के नयनसरोज मानों विस्मय से खिल उठे। वे पुलकित तथा रोमांचित हो रहे थे। विकलता के कारण उनका उत्तरीय नीचे गिर पड़ा!।।५१-५५।।

ऋषिरुवाच

काऽसि कस्यासि सुश्रोणि सुभगे चारुहासिनि।
मनो हरसि मे सुभ्रू ब्रूहि सत्यं सुमध्यमे॥५६॥

ऋषि कहते हैं—हे सुश्रोणी! तुम कौन हो? हे सुभगे! तुम मनोहर हास्य करने वाली किसकी हो? हे सुभ्रु! तुमने मेरा मन हर लिया है। हे सुमध्यमे! सत्य कहना।।५६।।

प्रम्लोचोवाच

तव कर्मकरा चाहं पुष्पार्थमहमागता। आदेशं देहि मे क्षिप्रं किं करोमि तवाऽऽज्ञया॥५७॥

प्रम्लोचा कहती है—हे मुनिवर! मैं तो आपकी किंकरी हूं। मैं पुष्प बीनने आई थी। आप अविलम्ब आदेश दीजिये। मैं आपकी आज्ञा के अनुसार सब कुछ करूंगी।।५७।।

व्यास उवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्यास्त्यक्त्वा धैर्यं विमोहितः।
आदाय हस्ते तां बालां प्रविवेश स्वमाश्रमम्॥५८॥
ततः कामश्च वायुश्च वसन्तश्च द्विजोत्तमाः। जग्मुर्यथागतं सर्वे कृतकृत्यास्त्रिविष्टपम्॥५९॥
शशंसुश्च हरिं गत्वा तस्यास्तस्य च चेष्टितम्।
श्रुत्वा शक्रस्तदा देवाः प्रीताः सुमनसोऽभवन्॥६०॥

व्यासदेव कहते हैं—मुनि कण्डु ने प्रम्लोचा का यह कथन सुनकर धैर्य त्याग दिया तथा विमोहित चित्त से उस रमणी का हाथ पकड़ कर अपने आश्रम में ले आये। हे द्विजोत्तमवृन्द! तदनन्तर काम, वायु, वसन्त कृतार्थ होकर देवलोक चले गये। उन्होंने स्वर्ग जाकर मुनि तथा प्रम्लोचा का कृत्य उनसे कहा। वह सुनकर इन्द्र तथा अन्य सभी देवता भी प्रसन्न हो गये थे।।५८-६०।।

स च कण्डुस्तया सार्धं प्रविशन्नेव चाऽऽश्रमम्।
आत्मनः परमं रूपं चकार मदनाकृति॥६१॥
रूपयौवनसम्पन्नमतीव सुमनोहरम्। दिव्यालङ्कारसंयुक्तं षोडशवत्सराकृति॥६२॥
दिव्यवस्त्रधरं कान्तं दिव्यस्रग्गन्धभूषितम्। सर्वोपभोगसम्पन्नं सहसा तपसो बलात्॥६३॥

उधर महर्षि कण्डु ने अप्सरा के साथ आश्रम में प्रवेश करते ही अपना परम रूप मदन जैसा बना लिया। वे ऋषि अब रूप, यौवन युक्त तथा अत्यन्त मनोहर लग रहे थे। वे सोलह वर्ष की आयु वाले तथा दिव्य अलंकार से युक्त थे। उन्होंने दिव्य वस्त्रों को पहन रखा था। वे कमनीय दिव्य वस्त्र, दिव्य माला तथा उत्तम गन्ध से शोभित थे। वे अपने तप बल से सहसा सर्वभोगयुक्त हो गये।।६१-६३।।

दृष्ट्वा सा तस्य तद्वीर्यं परं विस्मयमागता।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा मुदिताऽभवत्॥६४॥
स्नानं सन्ध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम्।
व्रतोपवासनियमं ध्यानं च मुनिसत्तमाः॥६५॥

त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया सार्धमहर्निशम्। मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःक्षयम्॥६६॥
सन्ध्यारात्रिदिवापक्षमासर्त्वयनहायनम्। न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः॥६७॥

सा च तं कामजैर्भावैर्विदग्धा रहसि द्विजाः।
वरयामास सुश्रोणिः प्रलापकुशला तदा॥६८॥
एवं कण्डुस्तया सार्धं वर्षाणामधिकं शतम्।
अतिष्ठन्मन्दरद्रोण्यां ग्राम्यधर्मरतो मुनिः॥६९॥

अप्सरा प्रम्लोचा मुनि का यह तपबल, वीर्यबल देख कर परम विस्मित हो गयी। वह प्रसन्नता से कह रही थी कि "अहो! इनके तप का कैसा महान् प्रभाव है?" इस प्रकार वह प्रसन्न मन से वहां रहने लगी। कण्डु मुनि अब कामदेव से आकर्षित किये गये हृदय वाले हो गये। उन्होंने स्नान, सन्ध्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजा, व्रत, उपवास, नियम तथा ध्यानादि त्याग दिया। वे दिन-रात उस अप्सरा के साथ रमण करते रहते थे। मुनि यह नहीं जान सके कि उनकी तपस्या का क्षय हो रहा है। उन विषयासक्त मुनि को अब सन्ध्या, रात्रि, दिवा, पक्ष, मास, ॠतु, अयन, हायन इत्यादि का भान ही नहीं होता था। वाक्विन्यास में कुशल विदग्धा, सुश्रोणी प्रम्लोचा ने भी उन मुनि का वरण कर लिया था। ये कण्डु मुनि ने इसी प्रकार से मन्दर पर्वत पर इस प्रम्लोचा के साथ कामक्रीड़ा में निरत रहकर सौ वर्ष से अधिक समय व्यतीत कर दिया। मुनि कण्डु मन्दराचल के जलाशय में इस प्रकार ग्राम्यधर्म में निरत रहते पड़े थे।।६४-६९।।

सा तं प्राह महाभागं गन्तुमिच्छाम्यहं दिवम्। प्रसादसुमुखो ब्रह्मन्ननुज्ञातुं त्वमर्हसि॥७०॥
तयैवमुक्तः स मुनिस्तस्यामासक्तमानसः। दिनानि कतिचिद्भद्रे स्थीयतामित्यभाषत॥७१॥

तत्पश्चात् एक दिन प्रम्लोचा ने कहा—"हे महाभाग, ब्रह्मन्! मैं स्वर्ग गमन करना चाहती हूं। आप प्रसन्नता के साथ जाने हेतु आज्ञा प्रदान करिये।" उसके यह कहने पर उसमें आसक्त मन वाले मुनि ने कहा—"हे भद्रे! कुछ दिन ठहर जाओ"।।७०-७१।।

एवमुक्ता ततस्तेन साग्रं वर्षशतं पुनः। बुभुजे विषयांस्तन्वी तेन सार्धं महात्मना॥७२॥
अनुज्ञां देहि भगवन्व्रजामि त्रिदशालयम्। उक्तस्तयेति स पुनः स्थीयतामित्यभाषत॥७३॥
पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना। याम्यहं त्रिदिवं ब्रह्मन्प्रणयस्मितशोभनाम्॥७४॥

उक्तस्तयैव स मुनिः पुनराहाऽऽयतेक्षणाम्।
इहाऽऽस्यतां मया सुभ्रु चिरं कालं गमिष्यसि॥७५॥

यह कहने पर प्रम्लोचा ने अगले और सौ वर्ष पर्यन्त उन महात्मा के साथ विषयोपभोग किया।

तदनन्तर उसने पुनः ऋषि कण्डु से कहा कि "आप आज्ञा प्रदान करें, मैं स्वर्ग जाऊंगी।" लेकिन उसमें आसक्त मुनि ने कहा—"कुछ दिन और रुक जाओ।" पुनः सौ वर्ष व्यतीत होने पर अप्सरा ने प्रेम पूर्वक मन्द हास्य के साथ कहा—"हे ब्रह्मन्! मैं स्वर्ग जाऊंगी।" तब मुनि ने उस विशाल नेत्रों वाली अप्सरा से कहा—"हे सुभ्रु! अभी मेरे साथ कुछ और दीर्घकाल तक यहां रहो। तब जाना"।।७२-७५।।

तच्छापभीता सुश्रोणी सह तेनर्षिणा पुनः। शतद्वयं किञ्चिदूनं वर्षाणां समतिष्ठत॥७६॥

गमनाय महाभागो देवराजनिवेशनम्।
प्रोक्तः प्रोक्तस्तया तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत॥७७॥
तस्य शापभयाद्धीरुर्दाक्षिण्येन च दक्षिणा।
प्रोक्ता प्रणयभङ्गार्तिवेदिनी न जहौ मुनिम्॥७८॥

तया च रमतस्तस्य परमर्षेरहर्निशम्। नवं नवमभूत्प्रेम मन्मथासक्तचेतसः॥७९॥

वह सुश्रोणी अप्सरा मुनि के शाप से भयभीत होकर पुनः दो सौ वर्ष से कुछ कम काल तक उन ऋषि के पास रुक गयी। वह प्रणयभंग के कारण होने वाली पीड़ा को जानने के कारण मुनि के पास से नहीं गई। उस अप्सरा के साथ रमणरत कामासक्त ऋषि के चित्त में अहर्निश नव-नव प्रेम का संचार होने लगा था।।७६-७९।।

एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोटजान्मुनिः।
निष्क्रामन्तं च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा॥८०॥
इत्युक्तः स तया प्राह परिवृत्तमहः शुभे।
सन्ध्योपास्तिं करिष्यामि क्रियालोपोऽन्यथा भवेत्॥८१॥

तदनन्तर एक दिन वे मुनि त्वरित रूप से अपनी कुटिया से बाहर जाने लगे। यह देख कर शुभा प्रम्लोचा ने पूछा "आप कहां जा रहे हैं?" प्रम्लोचा के द्वारा यह प्रश्न किये जाने पर मुनि ने कहा—"दिन व्यतीत होने को है, मैं सन्ध्योपासना करूंगा, अन्यथा क्रियालोप हो जायेगा"।।८०-८१।।

ततः प्रहस्य मुदिता सा तं प्राह महामुनिम्। किमद्य सर्वधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव।
गतमेतन्न कुरुते विस्मयं कस्य कथ्यते॥८२॥

तब अप्सरा ने हंसते हुये उन महामुनि से कहा—"हे सर्वधर्मज्ञ! क्या यह दिनान्त आज हो रहा है? इतना समय व्यतीत हो गया, क्या आपको स्मरण नहीं है? आप अब तक क्या कर रहे थे"?।।८२।।

मुनिरुवाच

प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिदं शुभम्।
मया दृष्टाऽसि सुश्रोणि प्रविष्टा च ममाऽऽश्रमम्॥८३॥
इयं च वर्तते सन्ध्या परिणाममहो गतम्।
अवहासः किमर्थोऽयं सद्भावः कथ्यतां मम॥८४॥

मुनि कहते हैं—हे भद्रे! तुम आज ही प्रातःकाल इस शुभ नदी तट पर आई थी। वहां मैंने तुमको देखा। हे सुश्रोणी! तदनन्तर तुम मेरे आश्रम में आई। अब सन्ध्या हो रही है। दिन अस्त हो रहा है। अतः तुम मेरा उपहास क्यों कर रही हो? क्या वास्तविक बात है, वह कहो।।८३-८४।।

प्रम्लोचोवाच

प्रत्यूषस्यागता ब्रह्मन्सत्यमेतन्न मे मृषा।
किं त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यब्दशतानि ते॥८५॥
ततः ससाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छाऽऽयतेक्षणाम्।
कथ्यतां भीरु कः कालस्त्वया मे रमतः सदा॥८६॥

प्रम्लोचा कहती है—"हे ब्रह्मन्! मैं प्रातः आई थी, यह कथन सत्य है। मिथ्या नहीं है। तथापि वह प्रातःकाल तो सैकड़ों वर्ष पूर्व व्यतीत हो चुका।" यह सुनकर मुनि भयभीत हो गये। उन्होंने दीर्घ नेत्रों वाली प्रम्लोचा से प्रश्न किया "हे भीरु! तुम्हारे साथ रमणरत रहते मुझे कितना समय व्यतीत हो गया"?।।८५-८६।।

प्रम्लोचोवाच

सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि च। मासाश्च षट्तथैवान्यत्समतीतं दिनत्रयम्॥८७॥

प्रम्लोचा कहती है—नौ सौ वर्ष, छः मास, तीन दिवस व्यतीत हो गये।।८७।।

ऋषिरुवाच

सत्यं भीरु वदस्येतत्परिहासोऽथवा शुभे। दिनमेकमहं मन्ये त्वया सार्धमिहोषितम्॥८८॥

मुनि कण्डु कहते हैं—हे भीरु! क्या यह सत्य कह रही हो? अथवा हे शुभे! तुम मुझसे परिहास कर रही हो? मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मैंने तुम्हारे साथ एक दिन मात्र बिताया है।।८८।।

प्रम्लोचोवाच

वदिष्याम्यनृतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके। विशेषादद्य भवता पृष्टा मार्गानुगामिना॥८९॥

प्रम्लोचा कहती है—हे ब्रह्मन्! आपसे मिथ्या कैसे कह सकती हूं? आपने जब सत्पथगामी होने के लिये पूछा है, तब मिथ्या कैसे कहूंगी?।।८९।।

व्यास उवाच

निशम्य तद्वचस्तस्याः स मुनिर्द्विजसत्तमाः।
धिग्धिङ्मामित्यनाचारं विनिन्द्याऽऽत्मानमात्मना॥९०॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिसत्तमवृन्द! प्रम्लोचा का कथन सुनकर मुनि कण्डु स्वयं को आचारहीन मानकर स्वयं अपने को धिक्कारने लगे।।९०।।

मुनिरुवाच

तपांसि मम नष्टानि हतं ब्रह्मविदां धनम्।
हृतो विवेकः केनापि योषिन्मोहाय निर्मिता॥९१॥

ऊर्मिषट्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे। गतिरेषा कृता येन धिक्तं काममहाग्रहम्॥९२॥
व्रतानि सर्ववेदाश्च कारणान्यखिलानि च। नरकग्राममार्गेण कामेनाद्य हतानि मे॥९३॥
विनिन्द्येत्थं स धर्मज्ञः स्वयमात्मानमात्मना। तामप्सरसमासीनामिदं वचनमब्रवीत्॥९४॥

मुनि कण्डु कहते हैं—मेरा तप नष्ट हो गया। ब्रह्मवेत्ता का धन तप नष्ट हो गया। ये स्त्रियां व्यक्ति को मोह में पतित करने हेतु ही सृष्ट हैं। मैं तो आत्मजय करके उर्मिषट्क (षड्रिपु काम-क्रोधादि) के अतीत ब्रह्म को जानने हेतु यत्नरत था। जिसने मेरी ऐसी गति किया है, उस कामग्रह को धिक्कार! नरकमार्ग में ले जाने वाले काम ने मेरे वेदव्रत तथा अन्यान्य सभी धर्म कारणों का नाश कर दिया। इस प्रकार अपनी निन्दा करने वाले मुनि ने पास में बैठी अप्सरा से कहा—।।९१-९४।।

ऋषिरुवाच

गच्छ पापे यथाकामं यत्कार्यं तत्त्वया कृतम्।
देवराजस्य यत्क्षोभं कुर्वन्त्या भावचेष्टितैः॥९५॥
न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतीव्रेण वह्निना। सतां साप्तपदं मैत्र्यमुषितोऽहं त्वया सह॥९६॥
अथवा तव दोषः कः किंवा कुर्यामहं तव। ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः॥९७॥
यथा शक्रप्रियार्थिन्या कृतो मत्तपसो व्ययः। त्वया दृष्टिमहामोहमनुनाऽहं जुगुप्सितः॥९८॥

ऋषि कण्डु कहते हैं—हे पापिनी! तुम जहां इच्छा हो, जाओ। तुमने अपने हाव-भाव से मुझे क्षुब्ध करके देवराज इन्द्र का कार्य सम्पन्न कर दिया। सज्जनों के साथ तो सात पग चलने में ही मित्रता हो जाती है। तुम्हारे साथ तो मैंने दीर्घकाल व्यतीत किया है। अतः अपनी क्रोधाग्नि में तुमको भस्म नहीं करूंगा। इसमें तुम्हारा क्या दोष? मैं तुम्हारा क्या करूं? दोष मेरा है कि मैं इन्द्रियों पर विजय नहीं पा सका। तुमने तो इन्द्र का प्रिय करने हेतु अपनी दृष्टिरूपी महामन्त्र से मेरी तपस्या को क्षीण कराया तथा मुझे निन्दा का पात्र बना दिया।।९५-९८।।

व्यास उवाच

यावदित्थं स विप्रर्षिस्तां ब्रवीति सुमध्यमाम्।
तावत्स्खलत्स्वेदजला सा बभूवातिवेपथुः॥९९॥
प्रवेपमानां स च तां स्विन्नगात्रलतां सतीम्।
गच्छ गच्छेति सक्रोधमुवाच मुनिसत्तमः॥१००॥
सा तु निर्भर्त्सिता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात्।
आकाशगामिनी स्वेदं ममार्ज तरुपल्लवैः॥१०१॥
वृक्षाद्वृक्षं ययौ बाला उदग्रारुणपल्लवैः।
निर्ममार्ज च गात्राणि गलत्स्वेदजलानि वै॥१०२॥
ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः। निर्जगाम सरोमाञ्चस्वेदरूपी तदङ्गतः॥१०३॥

तं वृक्षा जगृहुर्गर्भमेकं चक्रे च मारुतः।
सोमेनाऽऽप्यायितो गोभिः स तदा ववृधे शनैः॥१०४॥

व्यासदेव कहते हैं—जब ब्राह्मण कण्डु अप्सरा से यह सब वाक्य कह रहे थे, वह पसीने से भीग गई तथा बुरी तरह कांपने लगी। उसकी यह अवस्था देख कर उन मुनिसत्तम ने क्रोध पूर्वक तिरस्कार करते हुये कहा—"यहां से चली जाओ।" इस प्रकार तिरस्कृत होकर प्रम्लोचा उस आश्रम से बाहर निकली। वह आकाश मार्ग से जब जाने के लिये ऊपर उठ रही थी, तब वृक्ष के पत्तों से उसका पसीना मार्जित होने लगा। वह एक वृक्ष से अन्य वृक्ष पर जाती, वृक्ष के पल्लवों से अपने शरीर पर उभर आया स्वेद जल पोंछती जा रही थी। ऋषि ने उसके उदर में जो गर्भाधान किया था, वह उसके रोमांचित शरीर से टपके स्वेदजल के माध्यम से बहिर्गत् हो गया। वृक्षों ने उस गर्भ को ग्रहण कर लिया। गर्भकणों को वायु ने एकत्रित करके एक स्थान पर कर दिया था। सोमदेव ने अपनी सुधा किरणों से उस गर्भ को आप्यायित भी कर दिया। अतः वह शनैः-शनैः बढ़ने लगा।।९९-१०४।।

मारिषा नाम कन्याऽभूद्वृक्षाणां चारुलोचना।
प्राचेतसानां सा भार्या दक्षस्य जननी द्विजाः॥१०५॥
स चापि भगवान्कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः।
पुरुषोत्तमाख्यं भो विप्रा विष्णोरायतनं ययौ॥१०६॥
ददर्श परमं क्षेत्रं मुक्तिदं भुवि दुर्लभम्। दक्षिणस्योदधेस्तीरे सर्वकामफलप्रदम्॥१०७॥
सुरम्यं वालुकाकीर्णं केतकीवनशोभितम्।
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिरुतं शिवम्॥१०८॥
सर्वत्र सुखसञ्चारं सर्वर्तुकुसुमान्वितम्। सर्वसौख्यप्रदं नृणां धन्यं सर्वगुणाकरम्॥१०९॥
भृग्वाद्यैः सेवितं पूर्वं मुनिसिद्धवरैस्तथा। गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैस्तथाऽन्यैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः॥११०॥
ददर्श च हरिं तत्र देवैः सर्वैरलङ्कृतम्। ब्राह्मणाद्यैस्तथा वर्णैराश्रमस्थैर्निषेवितम्॥१११॥

क्रमशः वह गर्भ वृक्षों की चारुलोचना कन्या के रूप में हो गया, जिसका नाम था 'मारिषा'। हे ब्राह्मणगण! वह प्राचेतसों की पत्नी तथा दक्षजननी हो गई। हे ब्राह्मणवृन्द! भगवान् मुनिप्रवर कण्डु भी तपः के क्षीण होने पर प्रसिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्रस्थ विष्णु मन्दिर में आये। वे देखते हैं कि यह अति मंगलमय क्षेत्र दक्षिण सागर तट पर विराजमान है। सुरम्य बालुका से परिपूर्ण, केतकी वृक्षों के वन से सुशोभित, नाना वृक्ष लताओं से भरपूर, अनेक पक्षियों के स्वर से मुखरित, सर्वत्र सुख पूर्वक विचरने योग्य, सर्व ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले पुष्पसमूहों से समन्वित, सर्वसुखप्रद, सर्वगुणप्रद, भृगु आदि ऋषियों, प्रधान सिद्धों-गन्धर्वों-किन्नरों-यक्षों तथा अन्य मोक्षाभिलाषीगण द्वारा सेवित क्षेत्र था। यहां कल्याणप्रद क्षेत्र में कण्डु मुनि ने देवदेव श्रीहरि को देवगणों द्वारा अलंकृत, ब्राह्मणों एवं आश्रमस्थ ब्राह्मणों द्वारा आराधित होते देखा।।१०५-१११।।

दृष्ट्वैव स तदा क्षेत्रं देवं च पुरुषोत्तमम्।
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने स मुनिसत्तमः॥११२॥

तत्रैकाग्रमना भूत्वा चकाराऽऽराधनं हरेः। ब्रह्मपारमयं कुर्वञ्जपमेकाग्रमानसः।
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वाऽसौ मुनिसत्तमः॥११३॥

वे ऋषि कण्डु देवदेव पुरुषोत्तम को तथा इस पावन क्षेत्र को देखकर कृतार्थ हो गये। वे वहां एकाग्रता के साथ हरि की आराधना में रत हो गये। मुनिसत्तम कण्डु ने ऊर्ध्वबाहु होकर महायोग का आश्रय लिया तथा ब्रह्मपार मन्त्र जप करते हुये तपःश्चरण करने लगे।।११२-११३।।

मुनय ऊचुः

ब्रह्मपारं मुने श्रोतुमिच्छामः परमं शुभम्।
जपता कण्डुना देवो येनाऽराध्यत केशवः॥११४॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिवर! हम सब परम शुभ ब्रह्मपार मन्त्र श्रवणार्थ इच्छुक हैं। जिस मन्त्र का जप करते-करते कण्डु ऋषि ने केशव की आराधना किया था।।११४।।

व्यास उवाच

पारं परं विष्णुरपारपारः, परः परेभ्यः परमात्मरूपः।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः, परः पराणामपि पारपारः॥११५॥
स कारणं कारणसंश्रितोऽपि, तस्यापि हेतु परहेतुहेतुः।
कार्योऽपि चैष सह कर्मकर्तृ....रूपैरनेकैरवतीह सर्वम्॥११६॥
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो, ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ।
ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गः॥११७॥
ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथाऽसौ पुरुषोत्तमः। तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम॥११८॥

व्यासदेव कहते हैं—प्रभु विष्णु परपार, अपारपार, पर, सबके परवर्त्ती, परमात्मरूप, पर-पारभूत, पर से भी परे तथा पारपार के भी पार-ब्रह्मपार हैं। वे कारणाश्रित होकर भी कारण के भी कारण हैं। वे तो परकारण के भी कारणरूप हैं। वे ही कार्य-कर्म-कर्त्ता आदि विविधरूपेण जगत्पालनरत रहते हैं। वे ब्रह्मा आदि के भी प्रभु हैं। वे ही सर्वभूतात्मक ब्रह्म हैं। वे बृहदाकृति, प्रभु, प्रजाओं के पति, अविनश्वर, नित्य, जन्मरहित, विष्णु हैं। वे क्षय रहित हैं। वे अच्युत हैं। वे पुरुषोत्तम ब्रह्म नित्य ब्रह्माक्षर रूप (प्रणव), अज, अव्यय, नित्य, व्यापक तथा क्षय आदि दोषों से रहित हैं। जब वे प्रभु इस प्रकार हैं (तब उनकी कृपा से), मेरे सभी रागादि दोषों की शान्ति हो जाये।।११५-११८।।

व्यास उवाच

श्रुत्वा तस्य मुनेर्जाप्यं ब्रह्मपारं द्विजोत्तमाः।
भक्तिं च परमां ज्ञात्वा सुदृढां पुरुषोत्तमः॥११९॥
प्रीत्या स परया देवस्तदाऽसौ भक्तवत्सलः।
गत्वा तस्य समीपं तु प्रोवाच मधुसूदनः॥१२०॥

मेघगम्भीरया वाचा दिशः सन्नादयन्निव। आरुह्य गरुडं विप्रा विनताकुलनन्दनम्॥१२१॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजोत्तमवृन्द! देवदेव पुरुषोत्तम ने मुनि कण्डु द्वारा जपे जा रहे ब्रह्मपार स्तुति रूपी मन्त्र को सुनकर तथा उनकी दृढ़ परमाभक्ति देखकर परम प्रीति पूर्वक वे भक्तवत्सल प्रभु मधुसूदन विनताकुलनन्दन गरुड़ पर बैठ कर उन मुनि के पास आये। हे विप्रगण! वे अपनी गंभीर वाणी से सभी दिशाओं को प्रतिध्वनित करते कहने लगे।।११९-१२१।।

श्रीभगवानुवाच

मुने ब्रूहि परं कार्यं यत्ते मनसि वर्तते।
वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रत॥१२२॥

श्री भगवान् कहते हैं—"हे सुव्रत मुनिवर! तुम्हारा क्या कार्य करूं? उसे कहो। मैं वरप्रद होकर तुम्हारे निकट आया हूं। वर मांगो"।।१२२।।

श्रुत्वैवं वचनं तस्य देवदेवस्य चक्रिणः। चक्षुरुन्मील्य सहसा ददर्श पुरतो हरिम्॥१२३॥
अतसीपुष्पसङ्काशं पद्मपत्रायतेक्षणम्। शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदधारिणम्॥१२४॥
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं पीतवस्त्रधरं शुभम्। श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्॥१२५॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम्। दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यमाल्यविभूषितम्॥१२६॥
ततः स विस्मयाविष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः। दण्डवत्प्रणिपत्योर्व्यां प्रणाममकरोत्तदा॥१२७॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलास्तं स्तोतुमुपचक्रमे॥१२८॥

देवदेव चक्रधारी का यह वचन सुनकर उन मुनि ने सहसा अपने नेत्रों को खोल कर अपने सामने श्रीहरि का दर्शन किया। वे अतसी (तीसी) के पुष्प के वर्ण वाले, कमलपत्रवत् दीर्घ नेत्रों से युक्त, शंख-चक्र-गदाधारी, मुकुट तथा बाजूबन्द धारण किये हुये, चतुर्भुज, उर्जित शरीर, पीताम्बरधारी, शुभदर्शन, श्रीवत्स चिह्नांकित, वनमाला विभूषित, सर्वलक्षणान्वित, सर्व रत्न सज्जित, दिव्य गन्धानुलेपन से लिप्त अंगों वाले, दिव्य माला से सुशोभित प्रभु मुनि को नयनगोचर हो गये। उन मुनि ने उन प्रभु को दण्डवत् प्रणाम करके कहा—"आज मेरा जन्म तथा तप सफल हो गया।" तदनन्तर मुनिप्रवर कण्डु श्रीहरि की स्तुति करने लगे।।१२३-१२८।।

कण्डुरुवाच

नारायण हरे कृष्ण श्रीवत्साङ्क जगत्पते।
जगद्बीज जगद्धाम जगत्साक्षिन्नमोऽस्तु ते॥१२९॥
अव्यक्त जिष्णो प्रभव प्रधानपुरुषोत्तम।
पुण्डरीकाक्ष गोविन्द लोकनाथ नमोऽस्तु ते॥१३०॥
हिरण्यगर्भ श्रीनाथ पद्मनाथ सनातन। भूगर्भ ध्रुव ईशान हृषीकेश नमोऽस्तु ते॥१३१॥

अनाद्यन्तामृताजेय जय त्वं जयतां वर।
अजिताखण्ड श्रीकृष्ण श्रीनिवास नमोऽस्तु ते॥१३२॥

मुनि कण्डु कहते हैं—हे नारायण, श्रीहरि, श्रीवत्स चिह्नांकित, जगत्पति, जगद्बीज, जगत्धाम, जगत्साक्षी, अव्यक्त, जयशी, आदिकारण, प्रधान, पुरुषोत्तम, कमलनेत्र, गोविन्द, लोकपति, हिरण्यगर्भ, लक्ष्मीनाथ, पद्मनाथ, सनातन, भूगर्भ, ध्रुव, ईशान, हृषिकेश, अनादि, अनन्त, अमर, अजेय, जयीगण में प्रधान आपकी जय हो! आपको प्रणाम! हे अजित, अखण्ड, श्रीकृष्ण, श्रीनिवास! आपको प्रणाम!।।१२९-१३२।।

पर्जन्यधर्मकर्ता च दुष्पार दुरधिष्ठित। दुःखार्तिनाशन हरे जलशायिन्नमोऽस्तु ते॥१३३॥
भूतपाव्यक्त भूतेश भूततत्त्वैरनाकुल। भूताधिवास भूतात्मन्भूतगर्भ नमोऽस्तु ते॥१३४॥
यज्ञयज्वन्यज्ञधर यज्ञधाताऽभयप्रद। यज्ञगर्भ हिरण्याङ्ग पृश्निगर्भ नमोऽस्तु ते॥१३५॥
क्षेत्रज्ञ क्षेत्रभृत्क्षेत्री क्षेत्रहा क्षेत्रकृद्वशी। क्षेत्रात्मन्क्षेत्ररहित क्षेत्रस्त्रष्ट्रे नमोऽस्तु ते॥१३६॥
गुणालय गुणावास गुणाश्रय गुणावह। गुणभोक्तृ गुणाराम गुणत्यागिन्नमोऽस्तु ते॥१३७॥

आप पर्जन्य धर्मकर्त्ता, दुष्पार, दुराश्रय, दुःख-आर्तिहर्त्ता, हरि, जलशायी, भूतरक्षक, अव्यक्त, भूतेश, पंच महाभूत तत्वों से अव्यग्र-अनाकुल, यज्ञधाता, अभयदाता, यज्ञगर्भ, हिरण्याङ्ग, पृश्निगर्भ, क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रभर्त्ता, क्षेत्री, क्षेत्रत्यागी, क्षेत्रकर्त्ता, वशी, क्षेत्रात्मा, क्षेत्ररहित, क्षेत्रस्रष्टा, गुणालय, गुणावास, गुणाश्रय, गुणावह, गुणभोक्ता, गुणाराम, गुणत्यागी आपको नमस्कार!।।१३३-१३७।।

त्वं विष्णुस्त्वं हरिश्चक्री त्वं जिष्णुस्त्वं जनार्दनः।
त्वं भूतस्त्वं वषट्कारस्त्वं भव्यस्त्वं भवत्प्रभुः॥१३८॥
त्वं भूतकृत्त्वमव्यक्तस्त्वं भवो भूतभृद्भवान्। त्वं भूतभावनो देवस्त्वामाहुरजमीश्वरम्॥१३९॥
त्वमनन्तः कृतज्ञस्त्वं प्रकृतिस्त्वं वृषाकपिः। त्वं रुद्रस्त्वं दुराधर्षस्त्वममोघस्त्वमीश्वरः॥१४०॥
त्वं विश्वकर्मा जिष्णुस्त्वं त्वं शम्भुस्त्वं वृषाकृतिः।
त्वं शङ्करस्त्वमुशना त्वं सत्यं त्वं तपो जनः॥१४१॥
त्वं विश्वजेता त्वं शर्म त्वं शरण्यस्त्वमक्षरम्।
त्वं शम्भुस्त्वं स्वयम्भूश्च त्वं ज्येष्ठस्त्वं परायणः॥१४२॥
त्वमादित्यस्त्वमोङ्कारस्त्वं प्राणस्त्वं तमिस्त्रहा।
त्वं पर्जन्यस्त्वं प्रथितस्त्वं वेधास्त्वं सुरेश्वरः॥१४३॥
त्वमृग्यजुः साम चैव त्वमात्मा सम्मतो भवान्।
त्वमग्निस्त्वं च पवनस्त्वमापो वसुधा भवान्॥१४४॥
त्वं स्त्रष्टा त्वं तथा भोक्ता होता त्वं च हविर्यज्ञः।
त्वं प्रभुस्त्वं विभुः श्रेष्ठस्त्वं लोकपतिरच्युतः॥१४५॥
त्वं सर्वदर्शनः श्रीमांस्त्वं सर्वदमनोऽरिहा। त्वमहस्त्वं तथारात्रिस्त्वामाहुर्वत्सरं बुधाः॥१४६॥

आप विष्णु, हरि, चक्रधर, जयशील, जनार्दन, भूत, वषट्कार, भव्य, प्रभु, भूतकर्ता, अव्यक्त, भव, भूतभर्ता, भूतों के कारण, अजन्मा, ईश्वर, अनन्त, कृतज्ञ, प्रकृति, वृषाकपि, रुद्र, अयुग्र, अमोघ, विश्वकर्मा, शंकर, शुक्र, सत्य, तप, जन, विश्वजेता, कल्याण, शरण्य, अक्षर, स्वयंभु, ज्येष्ठ, परायण, आदित्य, ओंकार, प्राण, सूर्य, मेघ, प्रथित, वेधा, सुरेश्वर, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, आत्मा, सम्मत, अग्नि, वायु, जल, पृथिवी, स्रष्टा, भोक्ता, होता, हविः, यज्ञ, प्रभु, विभु, श्रेष्ठ, लोकपति, अच्युत, सर्वदर्शन, श्रीमान्, सर्वदमन, शत्रुनाशन, दिन तथा रात हैं। विद्वान् लोग आपको ही वर्ष कहते हैं।।१३८-१४६।।

त्वं कालस्त्वं कला काष्ठा त्वं मुहूर्तः क्षणा लवाः।
त्वं बालस्त्वं तथा वृद्धस्त्वं पुमान्स्त्री नपुंसकः।।१४७।।
त्वं विश्योनिस्त्वं चक्षुस्त्वं वेदाङ्गं त्वमव्ययः।
त्वं वेदवेदस्त्वं धाता विधाता त्वं समाहितः।।१४८।।
त्वं जलनिधिरामूलं त्वं धाता त्वं पुनर्वसुः।
त्वं वैद्यस्त्वं धृतात्मा च त्वमतीन्द्रियगोचरः।।१४९।।
त्वमग्रणीर्ग्रामणीस्त्वं त्वं सुपर्णस्त्वमादिमान्।
त्वं सङ्ग्रहस्त्वं सुमहत्त्वं धृतात्मा त्वमच्युतः।।१५०।।
त्वं गुरुस्त्वं यमस्त्वं च नियमस्त्वं पांशुस्त्वं चतुर्भुजः।
त्वेमवान्नान्तरात्मा त्वं परमात्मा त्वमुच्यते।।१५१।।
त्वं गुरु गुरुतमत्वं वामस्त्वं प्रदक्षिणः।
त्वं पिप्पलस्त्वमगमस्त्वं व्यक्तस्त्वं प्रजापतिः।।१५२।।

हे प्रभो! आप काल, कला, सन्ध्या, काष्ठा, मुहूर्त्त, क्षण, लव, बालक, वृद्ध, पुरुष, स्त्री, नपुंसक, विश्वयोनि, नेत्र, स्थाणु, शुचिश्रवा, शाश्वत, अजित, इन्द्र, उत्तम, विश्व को सुख देने वाले, अव्यय, वेदांग, वेदों के वेद, धाता, विधाता, समाहित, समुद्र, पुनर्वसु नक्षत्र, वैद्य, धृतात्मा, इन्द्रियातीत, अग्रनेता, ग्रामणी, सुपर्ण, आदिमान्, संग्रह, अतिमहान्, यम, अच्युत, गुरु, यम, नियम, पांशु, चतुर्भुज, अन्न, अन्तरात्मा, परमात्मा, गुरुतम, वाम, प्रदक्षिणा, पिप्पल, अगम, व्यक्त, प्रजापति हैं।।१४७-१५२।।

हिरण्यनाभस्त्वं देवस्त्वं शशी त्वं प्रजापतिः।
अनिर्देश्यवपुस्त्वं वै त्वं यमस्त्वं सुरारिहा।।१५३।।
त्वं च सङ्कर्षणो देवस्त्वं कर्ता त्वं सनातनः।
त्वं वासुदेवोऽमेयात्मा त्वमेव गुणवर्जितः।।१५४।।
त्वं ज्येष्ठस्त्वं वरिष्ठस्त्वं त्वं सहिष्णुश्च माधवः।
सहस्त्रशीर्षा त्वं देवस्त्वमव्यक्तः सहस्त्रदृक्।।१५५।।
सहस्त्रपादस्त्वं देवस्त्वं विराट्त्वं सुरप्रभुः। त्वमेव तिष्ठसे भूयो देवदेव दशाङ्गुलः।।१५६।।

यद्भूतं तत्त्वमेवोक्तः पुरुषः शक्र उत्तमः। यद्भाव्यं तत्त्वमीशानस्त्वमृतस्त्वं तथाऽमृतः॥१५७॥

त्वत्तो रोहत्ययं लोको महीयांस्त्वमनुत्तमः।
त्वं ज्यायान्पुरुषस्त्वं च त्वं देव दशधा स्थितः॥१५८॥

विश्वभूतश्चतुर्भागो नवभागोऽमृतो दिवि। नवभागोऽन्तरिक्षस्थः पौरुषेयः सनातनः॥१५९॥

भागद्वयं च भूसंस्थं चतुर्भागोऽप्यभूदिह। त्वत्तो यज्ञाः सम्भवन्ति जगतो वृष्टिकारणम्॥१६०॥

त्वत्तो विराट्समुत्पन्नो जगतो हृदि यः पुमान्।
सोऽतिरिच्यत भूतेभ्यस्तेजसा यशसा श्रिया॥१६१॥

त्वत्तः सुराणामाहारः पृषदाज्यमजायत। ग्राम्यारण्याश्चौषधयस्त्वत्तः पशुमृगादयः॥१६२॥

आप हिरण्यनाभ, देव, चन्द्र, अनिर्दिष्ट देहधारी, राक्षसनाशक, बलराम, भर्त्ता, सनातन, वासुदेव, अमितात्मा, गुणरहित, ज्येष्ठ, वरिष्ठ, सहिष्णु, माधव, सहस्रशिर, सहस्र नेत्र, सहस्रपाद, विराट तथा देवप्रभु हैं। आप हे देवदेव! दशांगुल माप वाले देव भी हैं। सभी लोक आपसे उत्पन्न हैं। आप अतीव महत् तथा सर्वोत्कृष्ट हैं। हे देव! आप ज्येष्ठ पुरुष दशधा स्थित हैं। आप चार भाग से विश्व में, नौ भाग से स्वर्ग में, नौ भाग से आकाश में, पृथिवी पर दो तथा चार भाग में अवस्थान करते हैं। आप ही पुरुष सनातन हैं। वृष्टि कारणभूत यज्ञ भी आपसे उत्पन्न हैं। आपसे ही विराट् उत्पन्न है, वह जगत् में हृदयस्थ रहता है। वह तेज, यश, शोभा में सर्वभूत समूह से श्रेष्ठ है। आप द्वारा ही देवगण का आहार दधि तथा घृत उत्पन्न है। ग्राम्यौषधि आरण्यक औषधि, मृगाति पशु, सभी आपसे ही उत्पन्न हैं।।१५३-१६२।।

ध्येयध्यानपरस्त्वं च कृतवानसि चौषधीः।
त्वं देवदेव सप्तास्य कालाख्यो दीप्तविग्रहः॥१६३॥

जङ्गमाजङ्गमं सर्वं जगदेतच्चराचरम्। त्वत्तः सर्वमिदं जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्॥१६४॥

अनिरुद्धस्त्वं माधवस्त्वं प्रद्युम्नः सुरारिहा। देव सर्वसुरश्रेष्ठ सर्वलोकपरायण॥१६५॥

त्राहि मामरविन्दाक्ष नारायण नमोऽस्तु ते। नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम॥१६६॥

नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते कमलालय। गुणालय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु गुणाकर॥१६७॥

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम।
जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सनातन॥१६८॥

नमस्ते योगिनां गम्य योगावास नमोऽस्तु ते।
गोपते श्रीपते विष्णो नमस्तेऽस्तु मरुत्पते॥१६९॥

जगत्पते जगत्सूते नमस्ते ज्ञानिनां पते। दिवस्पते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु महीपते॥१७०॥

नमस्ते मधुहन्त्रे च नमस्ते पुष्करेक्षण।
कैटभघ्न नमस्तेऽस्तु सुब्रह्मण्य नमोऽस्तु ते॥१७१॥

नमोऽस्तु ते महामीन श्रुतिपृष्ठधराच्युत। समुद्रसलिलक्षोभ पद्मजाह्लादकारिणे॥१७२॥

अश्वशीर्ष महाघोण महापुरुषविग्रह। मधुकैटभहन्त्रे च नमस्ते तुरगानन॥१७३॥
महाकमठभोगाय पृथिव्युद्धरणाय च। विधृताद्रिस्वरूपाय महाकूर्माय ते नमः॥१७४॥

आप ध्येय, ध्यान परायण, औषधि निर्माता, सप्तमुख, दीप्यमान देह वाले कालपुरुष हैं। यह स्थावर-जंगमरूप सचराचर आपसे ही उत्पन्न है। यह आपमें ही स्थित है। आप अनिरुद्ध, माधव, प्रद्युम्न, राक्षस नष्ट करने वाले, सर्वदेवश्रेष्ठ, समस्त लोकपरायण हैं। मेरी रक्षा करिये। कमलाक्ष, नारायण, भगवान्, विष्णु, पुरुषोत्तम, सर्वलोकेश्वर, कमलालय, गुणालय, गुणाकर, वासुदेव, सुरोत्तम, जनार्दन, सनातन, योगिगण प्राप्य, योगावास, इन्द्रियपति, लक्ष्मीपति, विष्णु, मरुत्पति, जगत्पति, जगत् उत्पादक, ज्ञानीगण के प्रभु, स्वर्गस्वामी, पृथिवीपति, मधु दैत्य हन्ता, कमललोचन, कैटभहन्ता, सुब्रह्मण्य, महामत्स्य, वेदों को पीठ पर धारण करने वाले, समुद्र जल क्षोभक, ब्रह्मा को प्रसादित करने वाले, अश्वशिर, महानासा युक्त, महापुरुष शरीरधारी, मधु-कैटभ हन्ता, अश्व के समान मुख वाले, महाकच्छप रूप धारी, पृथिवी का उद्धार करने वाले, पर्वताकार, महाकूर्म, आपको प्रणाम!।।१६३-१७४।।

नमो महावराहाय पृथिव्युद्धारकारिणे। नमश्चाऽऽदिवराहाय विश्वरूपाय वेधसे॥१७५॥

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय मुख्याय च वराय च।
परमाणुस्वरूपाय योगिगम्याय ते नमः॥१७६॥

तस्मै नमः कारणकारणाय, योगीन्द्रवृत्तनिलयाय सुदुर्विदाय।
क्षीरार्णवाश्रितमहाहिसुतल्पगाय, तुभ्यं नमःकनकरत्नसुकुण्डलाय॥१७७॥

हे महावराह रूपधारी! आप पृथिवी के उद्धारक हैं। हे आदिवराह, विश्वरूप, ब्रह्मन्, अनन्त, सूक्ष्म, मुख्य, श्रेष्ठ, परमाणुरूप, योगीगम्य, कारण के भी कारण, योगीन्द्रों की वृत्ति के आलय, दुर्विद्, क्षीरसमुद्र में महासर्प शैय्या पर शयनरत, स्वर्ण एवं रत्नकुण्डलधारी, आपको नमस्कार!।।१७५-१७७।।

व्यास उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रीतः प्रोवाच माधवः।
क्षिप्रं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ मत्तो यदभिवाञ्छसि॥१७८॥

व्यासदेव कहते हैं—एवंविध स्तव द्वारा माधव सन्तुष्ट होकर कहने लगे "हे मुनिप्रवर! जो इच्छा हो वह शीघ्र कहो!।।१७८।।

कण्डुरुवाच

संसारेऽस्मिञ्जगन्नाथ दुस्तरे लोमहर्षणे। अनित्ये दुःखबहुले कदलीदलसन्निभे॥१७९॥
निराश्रये निरालम्बे जलबुद्बुदचञ्चले। सर्वोपद्रवसंयुक्ते दुस्तरे चातिभैरवे॥१८०॥
भ्रमामि सुचिरं कालं मायया मोहितस्तव। न चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानसः॥१८१॥
त्वामहं चाद्य देवेश संसारभयपीडितः। गतोऽस्मि शरणं कृष्ण मामुद्धर भवार्णवात्॥१८२॥
गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्ते सनातनम्। प्रसादात्तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥१८३॥

ऋषि कण्डु कहते हैं—हे जगन्नाथ! दुस्तर, लोमहर्षण, अनित्य, दुःख से भरे, कदली दल के समान, सभी प्रकार के उपद्रवों वाले, दुःखों में विचरणशील, निराश्रय, निरालम्ब, जल के बुलबुलों जैसा चंचल, अतीव भयानक इस संसार में आपकी माया से मोहित होकर दीर्घकाल से मैं भ्रमणरत हूं। दीर्घकाल तक विषयासक्त मन वाला होकर भी मैं विषयों की इच्छा का अन्त नहीं पा सका। अतः संसारभय से पीड़ित होकर अब आपका शरणागत हो गया। हे देवेश! कृष्ण! मेरा इस भवार्णव से उद्धार करिये। हे देवेश! मैं आपकी कृपा से यहां से आपके उस सनातन पद को प्राप्त करना चाहता हूं, जहां जाने पर पुनर्जन्म दुर्लभ हो जाता है।।१७९-१८३।।

श्रीभगवानुवाच

भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ मामाराधय नित्यशः।
मत्प्रसादाद् ध्रुवं मोक्षं प्राप्स्यसि त्वं समीहितम्॥१८४॥
मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातिजाः।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम॥१८५॥
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक्श्रद्धासमन्वितः।
प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा॥१८६॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे मुनिप्रवर! तुम मेरे भक्त हो। नित्य मेरी आराधना करो। अतः मेरी कृपा से तुमको अभिलषित मोक्ष लाभ होगा। क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अन्त्यजाति भी मेरे भक्त होकर परम सिद्धि प्राप्त करते हैं। हे द्विजोत्तम! तब तुम्हारी तो बात ही क्या! सम्यक् श्रद्धायुक्त चाण्डाल भी यदि मेरा भक्त हो, तब उसे अभिमत सिद्धिलाभ होकर रहेगा। अन्य की तो बात ही क्या!।।१८४-१८६।।

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु तं विप्राः स देवो भक्तवत्सलः। दुर्विज्ञेयगतिर्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत॥१८७॥
गते तस्मिन्मुनिश्रेष्ठाः कण्डुः संहृष्टमानसः।
सर्वान्कामान्परित्यज्य स्वस्थचित्तोऽभवत्पुनः॥१८८॥
सर्वेन्द्रियाणि संयम्य निर्ममो निरहङ्कृतिः।
एकाग्रमानसः सम्यग्ध्यात्वा तं पुरुषोत्तमम्॥१८९॥
निर्लेपं निर्गुणं शान्तं सत्तामात्रव्यवस्थितम्।
अवाप परमं मोक्षं सुराणामपि दुर्लभम्॥१९०॥
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि कथां कण्डोर्महात्मनः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं स गच्छति॥१९१॥

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! दुर्विज्ञेय गति भक्तवत्सल देव विष्णु उनसे (कण्डु मुनि से) यह कह कर वहीं अन्तर्हित् हो गये। हे मुनिप्रवरगण! प्रभु विष्णु के चले जाने पर कण्डु मुनि प्रसन्न हो गये। उन्होंने

समस्त कामना त्याग दिया तथा स्वस्थ चित्त हो गये थे। वे ममता रहित, अहंकार रहित होकर अपनी सभी इन्द्रियों को संयमित करके एकाग्रमन से सम्यक् रूपेण निर्लेप, निर्गुण, शान्त, सत्तामात्र रूप से अवस्थित उन पुरुषोत्तम का ध्यान करके देवगण के लिये भी जो दुर्लभ हैं, ऐसे मोक्ष को प्राप्त करके कृतार्थ हो गये। महात्मा कण्डु मुनि का यह वृत्तान्त जो पढ़ता अथवा सुनता है, वह सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर स्वर्गलोक गमन करता है।।१८७-१९१।।

एवं मया मुनिश्रेष्ठाः कर्मभूमिरुदाहृता। मोक्षक्षेत्रं च परमं देवं च पुरुषोत्तमम्।।१९२।।

ये पश्यन्ति विभुं स्तुवन्ति वरदं ध्यायन्ति मुक्तिप्रदं....।
भक्त्या श्रीपुरुषोत्तमाख्यमजरं संसारदुःखापहम्।।१९३।।
ते भुक्त्वा मनुजेन्द्रभोगममलाः स्वर्गे च दिव्यं सुखं।
पश्चाद्यान्ति समस्तदोषरहिताः। स्थानं हरेरव्ययम्।।१९४।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे कण्डोरुपाख्याननिरूपणं नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७८।।

हे मुनिवरगण! मैंने इस प्रकार कर्मस्थल, मोक्षक्षेत्ररूप, पुरुषोत्तम देव का वर्णन किया है। जो भक्तिभाव से इन सर्वव्याप्त, वरप्रद, मोक्षप्रद, विभु, अजर, संसारदुःखहारी, देवदेव पुरुषोत्तम का ध्यान, स्तुति तथा दर्शन करते हैं, वे श्रेष्ठ मानव अमल तथा सर्वदोष विनिर्मुक्त हो जाते हैं। वे स्वर्ग में दिव्य भोगों का उपभोग करने के अनन्तर अव्यय हरि का स्थान लाभ करते हैं।।१९२-१९४।।

।।अष्टसप्तत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

मुनिगण द्वारा वादरायण से श्रीकृष्णावतार विषयक प्रश्न करना

लोमहर्षण उवाच

व्यासस्य वचनं श्रुत्वा मुनयः संयतेन्द्रियाः।
प्रीता बभूवुः संहृष्टा विस्मितातश्च पुनः पुनः।।१।।

लोमहर्षण कहते हैं—व्यास का कथन सुनकर संयत इन्द्रियों वाले सभी मुनिगण अत्यन्त हर्षयुक्त तथा आश्चर्यान्वित हो गये।।१।।

मुनय ऊचुः

अहो भारतवर्षस्य त्वया सङ्कीर्तिता गुणाः। तद्वच्छ्रीपुरुषाख्यस्य क्षेत्रस्य पुरुषोत्तम॥२॥

विस्मयो हि न चैकस्य श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम्।
पुरुषाख्यस्य क्षेत्रस्य प्रीतिश्च वदतां वर॥३॥
चिरात्प्रभृति चास्माकं संशयो हृदि वर्तते।
त्वदृते संशयस्यास्य छेत्ता नान्योऽस्ति भूतले॥४॥

उत्पत्तिं बलदेवस्य कृष्णस्य च महीतले। भद्रायाश्चैव कार्त्स्न्येन पृच्छामस्त्वां महामुने॥५॥
किमर्थं तौ समुत्पन्नौ कृष्णसङ्कर्षणावुभौ। वसुदेवसुतौ वीरौ स्थितौ नन्दगृहे मुने॥६॥

मुनिगण कहते हैं—अहो! आपने भारतवर्ष का गुण कहा है। हे पुरुषोत्तम! इस पुरुषोत्तम क्षेत्र की महिमा का भी आपने वर्णन कर दिया। हे वाग्मीवर! (वक्ताओं में प्रधान) एकमात्र पुरुषोत्तम क्षेत्र का उत्तम माहात्म्य सुनकर हमारे विस्मय का तथा प्रीति का अन्त नहीं हो पा रहा है। हमारे हृदय में दीर्घकाल से एक संशय विद्यमान है। आपके बिना इस संशय को भंग करने वाला भूतल पर कोई भी नहीं है। हे महामुनि! बलदेव, कृष्ण तथा सुभद्रा का पृथिवी पर उत्पत्ति विवरण सुनने हेतु आपसे जिज्ञासा हम कर रहे हैं। हे मुनिवर! वे कृष्ण तथा संकर्षण किस निमित्त भूतल पर वसुदेव पुत्र के रूप में जन्मे थे? वे क्यों नन्दगृह आये?॥२-६॥

निःसारे मृत्युलोकेऽस्मिन् दुःखप्रायेऽतिचञ्चले। जलबुद्बुदसङ्काशे भैरवे लोमहर्षणे॥७॥
विण्मूत्रपिच्छलं कष्टं सङ्कटं दुःखदायकम्। कथं घोरतरं तेषां गर्भवासमरोचत॥८॥
यानि कर्माणि चक्रुस्ते समुत्पन्ना महीतले। विस्तरेण मुने तानि ब्रूहि नो वदतां वर॥९॥
समग्रं चरितं तेषामद्भुतं चातिमानुषम्। कथं स भगवान्देवः सुरेशः सुरसत्तमः॥१०॥

निःसार, दुःखप्राय, जल के बुलबुले के समान, अति चंचल, भयानक, लोमहर्षण उस मृत्युलोक में गर्भवास विष्ठा-मूत्रभय, संकटापन्न, दुःखप्रद तथा महाभयंकर स्थिति मानी जाती है। ऐसा गर्भवास करके जन्म लेना कृष्ण को किस प्रकार उचित लगा? हे वाग्मीप्रवर, मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने मृत्युलोक में उत्पन्न होकर जो कर्म किया था, आप वह विस्तार पूर्वक हमसे अवश्य कहिये। उनका समग्र चरित अद्भुत तथा मानुष साध्यातीत है॥७-१०॥

वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागतः। अमरैश्चाऽऽवृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलङ्कृतम्॥११॥

देवलोकं किमुत्सृज्य मर्त्यलोक इहाऽऽगतः।
देवमानुषयोर्नेता द्योर्भुवः प्रभवोऽव्ययः॥१२॥

किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषेषु न्ययोजयत्। यश्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम्॥१३॥
स मानुष्ये कथं बुद्धिं चक्रे चक्रगदाधरः। गोपायनं यः कुरुते जगतः सार्वभौतिकम्॥१४॥
स कथं गां गतो विष्णुर्गोपत्वमकरोत्प्रभुः। महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च॥१५॥

उन धीमान् सुवेश, सुरप्रवर ने वसुदेव के कुल में वासुदेवत्व कैसे लाभ किया? देवताओं से घिरे, पुण्यमय, पुण्यकर्मा लोगों से अलंकृत देवलोक का त्याग करके इस मर्त्यलोक में वे क्यों आये? देवता तथा मनुष्यों के नेता, स्वर्ग, मर्त्य को उत्पन्न करने वाले, अविनाशी प्रभु ने अपने दिव्य आत्मा को किस कारण से मानव देह में स्थापित किया? जो प्रभु मनुष्य मात्र के जीवन चक्र को संचालित करते हैं, उन चक्र-गदाधारी भगवान् ने मनुष्य योनि में जन्म लेने की इच्छा क्यों किया? सर्व जगत् पालक भगवान् पृथिवी पर जन्म लेकर गोपाल किस प्रकार बन गये? जो भूतात्मा प्रभु पंच महाभूत को धारण करने वाले हैं।।११-१५।।

श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः।
येन लोकान्क्रमैर्जित्वां त्रिभिर्वै त्रिदशेप्सया॥१६॥
स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गाश्चवाभवस्त्रयः।
योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः॥१७॥

उन भगवान् को भूमि पर चक्रमणरत सामान्य नारी ने किस प्रकार गर्भ में धारण किया? देवगण की प्रार्थना के अनुसार जिन्होंने तीन डग में ही त्रैलोक्य को नाप लिया तथा जगत् में त्रिवर्ग मार्ग की स्थापना किया (जिन्होंने त्रिवर्ग मार्ग स्थापित किया अर्थात् धर्म-अर्थ-काम को स्थापित किया—इन तीन से ही जगत् व्याप्त है)। अन्त में वे भगवान् ही जगत् का पान करके जलमय देहधारी हो जाते हैं।।१६-१७।।

लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन चाऽऽत्मना।
यः पुराणः पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः॥१८॥
विषाणाग्रेण वसुधामुज्जहारारिसूदनः। यः पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययम्॥१९॥
ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः। येन सैंहवपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत्पुनः॥२०॥
पूर्वदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः।
यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः॥२१॥
पातालस्थोऽर्णवरसं पपौ तोयमयं हरिः। सहस्रचरणं ब्रह्म सहस्रांशुसहस्रदम्॥२२॥
सहस्रशिरसं देवं यमाहुर्वै युगे युगे। नाभ्यां पद्मं समुद्भूतं यस्य पैतामहं गृहम्॥२३॥
एकार्णवे नागलोके सद्धिरण्मयपङ्कजम्। येन ते निहता दैत्याः सङ्ग्रामे तारकामये॥२४॥
येन देवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः। गुहासंस्थेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः॥२५॥
उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधौ। यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत्॥२६॥
सुरारणी गर्भमत्त दिव्यं तपः प्रकर्षाददितिः पुराणम्।
शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं, गर्भावधानेन कृतं चकार॥२७॥
पदानि यो योगमयानि कृत्वा, चकार दैत्यान्सलिलेशयस्थान्।
कृत्वा स देवांस्त्रिदशेश्वरांस्तु, चक्रे सुरेशं पुरुहूतमेव॥२८॥

वे जगत् को तब एकार्णव में परिणत कर देते हैं। जिन पुराणात्मा, पुराणपुरुष, अरिसूदन (शत्रुनाशक)

ने वराहरूपी होकर अपने दन्ताग्र से धरती का उद्धार किया था, जिन देवप्रवर ने देवराज इन्द्र के लिये उनके अनुरोध पर त्रैलोक्य जय करके उनको प्रदान कर दिया था, जिन्होंने सिंहदेहधारी होकर आधा मनुष्य एवं आधा सिंहरूपी देह से पूर्वदैत्य महावीर्य हिरण्यकशिपु का वध कर दिया था, जिन्होंने—जिन विष्णु हरि ने संवर्त्तकाग्नि का रूप धारण करके पाताल तल में रहते हुये जलमय अर्णवरस का पान किया था (समुद्र के रस का पान किया था), वे सहस्रचरण, सहस्रकिरण, सहस्रों के दातारूप, सहस्र शिर वाले देव युग-युग में आविर्भूत होते हैं। एकार्णवशायी उन देव के नाभिकमल से पितामह के निवासस्थल रूप उत्तम सुन्दर स्वर्णमय कमल उद्भूत हो गया था। उन प्रभु ने तारकामय युद्ध में दैत्यों का वध किया था। सर्व आयुधधारी दिव्य देह धारण करके गुहा में रहते हुये जिन्होंने कालनेमि दैत्य का वध किया था, जो क्षीरसागर के उत्तर भाग में स्थित अमृतसमुद्र में महत् तिमिररूप योगावलम्बन स्थिति में (योगनिद्रारूपी तिमिर में), शयन करते हैं, उन प्रभु ने ही देवताओं को उत्पन्न करने वाली अरणिरूपी अदिति (यहां अरणि से तात्पर्य है अग्नि उत्पन्न करने वाली। इसी प्रकार अदिति देवताओं को उत्पन्न करने वाली है तभी उनकी तुलना अरणि से की गई)। के गर्भस्थ इन्द्र को असुरों से बचाया। उन प्रभु ने ही अपने योगमय चरणों की सहायता से दैत्यों को जलशायी बनाया (पराजित किया) तथा देवगण को उनका स्वर्ग पुनः प्रदान करके इन्द्र को स्वर्गाधिपति पद पर स्थापित किया।।१८-२८।।

गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा। अग्निमावहनीयं च वेदं दीक्षां समिद्ध्रुवम्॥२९॥

प्रोक्षणीयं स्रुवं चैव आवभृथ्यं तथैव च। अवाक्पाणिस्तु यश्चक्रे हव्यभागभुजस्तथा॥३०॥

हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे कव्यादांश्च पितृनथ। भोगार्थे यज्ञविधिनाऽयोजयद्यज्ञकर्मणि॥३१॥

पात्राणि दक्षिणां दीक्षां चरूंश्चोलूखलानि च। यूपं समित्स्रुवं सोमं पवित्रान्परिधीनपि॥३२॥

यज्ञियानि च द्रव्याणि चमसांश्च तथाऽपरान्।
सदस्यान्यजमानांश्च मेधादींश्च क्रतूत्तमान्॥३३॥

विबभाज पुरा यस्तु पारमेष्ठयेन कर्मणा। युगानुरूपं यः कृत्वा लोकाननुपराक्रमात्॥३४॥

उन प्रभु ने वाक् तथा पाणि के बिना ही सविधि गार्हपत्य, आहवनीय, अन्वाहार्यादि कर्म, वेद, दीक्षा, समिध्, प्रोक्षणीय, स्रुव, अविभृथ्य इत्यादि यज्ञोपचार से सब कुछ उत्पादित किया और देवताओं को हव्यभोजी तथा पितरों को कव्यभोजी किया, जिन्होंने भोगसाधनार्थ सभी को यज्ञकर्म में नियोजित करके यज्ञीयपात्र, दक्षिणा, दीक्षा, चरु, उदूखल, यूप, समिध्, स्रुव, सोम, पवित्र, परिधि, चैमसादि अन्यान्य यज्ञीय द्रव्य, यज्ञ के सदस्य, यजमान, मेध प्रभृति उत्तम यज्ञ नियम रूप पारमेष्ठ्य कर्म द्वारा पूर्वकाल में सभी लोकों हेतु अपनी शक्ति से यह यज्ञविभाग किया था। (पारमेष्ठ्य कर्म अर्थात् ब्रह्मा आदि के यज्ञ में क्या कर्म होंगे, यह विभाग किया था)। उन प्रभु ने युगों के अनुरूप ही लोक निर्माण किया।।२९-३४।।

क्षणा निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च।
मुहूर्तास्तिथयो मासा दिनं संवत्सरस्तथा॥३५॥

ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं त्रिषु। आयुःक्षेत्राण्युपचयो लक्षणं रूपसौष्ठवम्॥३६॥

त्रयो लोकास्त्रयो देवास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः।
त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि त्रयो वर्णास्त्रयोगुणाः॥३७॥
सृष्टा लोकाः पुरा सर्वे येनानन्तेन कर्मणा। सर्वभूतगतः स्रष्टा सर्वभूतगुणात्मकः॥३८॥
नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च यः। गतागताभ्यां योगेन य एव विधिरीश्वरः॥३९॥
या गतिर्धर्मयुक्तानामगतिः पापकर्मणाम्। चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता॥४०॥
चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसंश्रयः।
दिगन्तरं नमो भूमिर्वायुर्वाऽपि विभावसुः॥४१॥
चन्द्रसूर्यमयं ज्योतिर्युगेशः क्षणदाचरः। यः परं श्रूयते ज्योतिर्यः परं श्रूयते तपः॥४२॥
यं परं प्राहुरपरं यः परः परमात्मवान्।
आदित्यानां तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभुः॥४३॥
युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः।
सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम्॥४४॥
वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभवात्मनाम्। सोमभूतश्च सौम्यानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम्॥४५॥
यः शक्राणामीशभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम्। विनयो नयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि॥४६॥

उन्होंने क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, भूत, भविष्य, वर्त्तमानात्मक कालत्रय, मुहूर्त्त, तिथि, मास, दिन, संवत्सर, ऋतु, काल के अनुगत विविध योग तथा तीन प्रकार के प्रमाण, आयु, क्षेत्र, वृद्धि (उपचय), चिह्न, रूप, सौन्दर्य, स्वर्ग-मर्त्य-पाताल लोक, ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप त्रिदेव, तीनों विद्या, तीन अग्नि, त्रिकाल, कर्मत्रय, वर्णत्रय, त्रिगुण इन सबके साथ ही समस्त त्रैलोक्य पूर्वकाल में निर्मित किया। ये अनन्त सर्वभूतगत, सर्वव्याप्त, सबके स्रष्टा तथा कर्मानुसार सृजन करने वाले हैं। ये प्राणीगण के इन्द्रियसमूह का सृजन करके उनके योग द्वारा नित्य रमण करते हैं। ये धार्मिकों की सुगति तथा अधार्मिकों के लिये अगति रूप हैं। ये सबके परिचालक, विधाता, ईश्वर हैं। ये चारों वर्ण के स्रष्टा तथा रक्षक हैं। ये चारों प्रकार विद्या के वेत्ता तथा चारों आश्रम के आश्रयरूप प्रभु हैं। ये दिक्, आकाश, भूमि, वायु, अग्नि तथा चन्द्र-सूर्य की ज्योति हैं। ये युगेश तथा नक्षत्र हैं। ये ही परम ज्योति तथा परम तप कहे गये हैं। ऐसे ही ज्योति तथा तपरूप सुने जाते हैं। जो परमात्मवान् हैं, जिनको पर-अपर कहा गया है, जो देवताओं के भी देवता हैं, जो दैत्यान्तक प्रभु हैं, जो युगान्त काल में सबका अन्त करने वाले हैं, (अर्थात् काल के भी काल रूप हैं), जो लोकमर्यादा के सेतुरूप हैं, पवित्रों में भी पवित्रतम हैं, वेदवेत्ताओं के वेद्य, प्रभाववानों के प्रभु, सौम्यों हेतु सोमस्वरूप, अग्नितेजःवानों हेतु अग्निरूप, जो इन्द्रगण के भी ईश्वर, तपस्वियों के तपः, नीतिमानों के विनय, तेजस्वी लोगों के तेज (विनयी लोगों के विनय) हैं।।३५-४६।।

विग्रहो विग्रहार्हाणां गतिर्गतिमतामपि। आकाशप्रभवो वायुर्वायोः प्राणाद्धुताशनः॥४७॥
दिवो हुताशनः प्राणः प्राणोऽग्निर्मधुसूदनः। रसाच्छोणित सम्भूतिः शोणितान्मांसमुच्यते॥४८॥

मांसात्तु मेदसो जन्मे मेदसोऽस्थि निरुच्यते।
अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रसम्भवः॥४९॥
शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा। तत्रापां प्रथमो भागः स सौम्यो राशिरुच्यते॥५०॥
गर्भोष्मसम्भवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते। शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्तवं पावकात्मकम्॥५१॥
भावा रसानुगाश्चैषां बीजे च शशिपावकौ।
कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम्॥५२॥

वे विग्रहधारी (शरीरधारी) के शरीर, गतिमान लोगों-प्राणियों की गति हैं। आकाश से वायु, वायु से प्राण, प्राण से अग्नि उत्पन्न है तथा प्राणाग्नि ही मधुसूदन हैं। रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस में मेद, मेद से अस्थि का जन्म है। अस्थि से मज्जा, मज्जा से वीर्य तथा वीर्य से गर्भ रसनिर्माण कर्म से संभव हो जाता है। उसमें रस के प्रथम भाग से सौम्यराशि तथा गर्भाग्नि से द्वितीय राशि कही गयी है। शुक्र है सोमात्मक तथा आर्जव (रजः) अग्निमय है। इन सबके भाव रसानुरूप होते हैं। इसके प्रधान कारण हैं चन्द्र तथा अग्नि। कफवर्ग से शुक्र तथा पित्तवर्ग से शोणित होता है।।४७-५२।।

कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम्।
देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम्॥५३॥
नाभिकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः। मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते॥५४॥
पित्तमग्निः स्मृतं त्वेवमग्निसोमात्मकं जगत्। एवं प्रवर्तिते गर्भे वर्धितेऽर्बुदसन्निभे॥५५॥
वायुः प्रवेशं संचक्रे सङ्गतः परमात्मनः। स पञ्चधा शरीरस्थो भिद्यते वर्तते पुनः॥५६॥
प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च। प्राणोऽस्य परमात्मानं वर्धयन्परिवर्तते॥५७॥
अपानः पश्चिमं कायमुदानोऽर्ध्वं शरीरिणः।
व्यानस्तु व्याप्यते येन समानः सन्निवर्तते॥५८॥

शुक्र (वीर्य) कफवर्ग तथा पित्त रक्तवर्ग होता है। कफ का स्थान है हृदय। पित्त नाभि में स्थित है। देह में जो मन है, वह प्रजापति है तथा कफ ही सोम है। देहमध्य में हृदय रहता है। उसी में मन है। नाभि कोष्ठ में ही अग्नि की स्थिति है। पित्त ही अग्नि है। यह जगत् अग्नि-सोमात्मक है। इस प्रकार से प्रवृत्त अर्बुद (मांसपिण्ड) के समान गर्भ बढ़ता है। उसमें परमात्मा युक्त वायु का प्रवेश होता है। यह वायु शरीर में प्रवेशोपरान्त प्राण-अपान-समान-उदान-व्यान, इन पंचभाग में विभक्त हो जाता है। प्राणवायु परमात्मा को वर्द्धित करता संचरित होता है। अपान शरीर के निम्नांश में तथा उदान मध्य अंश में अवस्थान करता है। व्यान सर्व शरीर में व्याप्त रहता है। जिसके द्वारा समता होती है, वही समान वायु है।।५३-५८।।

भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायेतेन्द्रियगोचरा। पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्॥५९॥
तस्येन्द्रियनिविष्टानि स्वं स्वं भागं प्रचक्रिरे।
पार्थिवं देहमाहुस्तु प्राणात्मानं च मारुतम्॥६०॥

छिद्राण्याकाशयोनीनि जलात्स्रावः प्रवर्तते।
ज्योतिश्चक्षूंषि तेजश्च आत्मा तेषां मनः स्मृतम्॥६१॥
ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्तिताः। इत्येतान्पुरुषः सर्वान्सृजँल्लोकान्सनातनः॥६२॥
नैधनेऽस्मिन्कथं लोके नरत्वं विष्णुरागतः।
एष नः संशयो ब्रह्मन्नेष नो विस्मयो महान्॥६३॥
कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम्। आश्चर्यं परमं विष्णुर्देवैर्दैत्यैश्च कथ्यते॥६४॥
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं कथयस्व महामुने। प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजसः॥६५॥

तदनन्तर शरीर में इन्द्रिय का विषयीभूत पंचभूत का आविर्भाव होता है। वह इन्द्रियगोचर होता है। पृथिवी, वायु, आकाश, जल एवं ज्योतिः ये पंचभूत हैं। ये अपने-अपने भागों में (उनकी रचना करके) अपने कार्य करते हैं। पृथिवी के अंश से देह, वायु के अंश से प्राण, आकाश के अंश से देह के सभी छिद्र तथा जल के अंश से स्राव होता है (शोणित, स्वेद, मूत्रादि)। तेजांश से देहकान्ति तथा नेत्र का जन्म होता है। इन पांचों महाभूतों का परिचालक है मन। मन के प्रभाव से ही विषयों के प्रति प्रवृत्ति का जन्म होता है। सनातन् विष्णु इन सबकी सृष्टि करते हैं। उन्होंने ही इतने लोकों का, जगत् का सृजन किया है। तब वे मर्त्यलोक में मनुष्य कैसे हो गये? यही हमें महान् संशय है। देवता तथा दैत्यगण इन विष्णु को परमाश्चर्य मानते हैं। हे महामुनि! विष्णु की इस आश्चर्य उत्पत्ति का वर्णन करिये। ये प्रभु विष्णु प्रख्यात बलवीर्य वाले अमित तेजस्वी हैं।।५९-६५।।

कर्मणाऽऽश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम्।
कथं स देवो देवानामार्तिहा पुरुषोत्तमः॥६६॥
सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः। सर्गस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः॥६७॥
अक्षयः शाश्वतोऽनन्तः क्षयवृद्धिविवर्जितः।
निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरञ्जनः॥६८॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः। अविकारी विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः॥६९॥
अचलो निर्मलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः।
विशुद्धं श्रूयते यस्य हरित्वं च कृते युगे॥७०॥
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च। ईश्वरस्य हि तस्येमां गहनां कर्मणो गतिम्॥७१॥
समतीतां भविष्यं च श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते।
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान्प्रभुः॥७२॥
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च।
एष नारायणो भूत्वा हरीरासीत्सनातनः॥७३॥
ब्रह्मा शक्रश्च रुद्रश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः। प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः॥७४॥

सोऽसृजत्पूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन्। एवं स भगवान्विष्णुः सर्वलोकमहेश्वरः।
किमर्थं मर्त्यलोकेऽस्मिन्यातो यदुकुले हरिः॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे ऋषिप्रश्ननिरूपणं नामोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७९॥

ये आश्चर्यमय, महातेजस्वी कर्मकर्त्ता हैं। इन देवार्त्तिहारी पुरुषोत्तम का तत्व कहिये। देवों की आर्त्ति का हरण करने वाले, सर्वव्यापी, जगन्नाथ, सर्वलोक महेश्वर, सृष्टि-स्थिति-लयकारी, सभी लोक समूह को सुख देने वाले, अक्षय, शाश्वत, अनन्त, क्षय-वृद्धि रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्षम, निर्विकार, निरंजन, सर्व उपाधि रहित, सत्तामात्र से अवस्थान करने वाले, अविकारी, नित्य, विभु, परमात्मा, सनातन, अचल, निर्मल, व्यापक, नित्यतृप्त, निराश्रय, सत्ययुग में विशुद्ध हवि वाले, देवगण में वैकुण्ठत्व युक्त, मनुष्य में कृष्णत्व वाले उन देव ईश्वर का भूतकालीन एवं भविष्यत्कालीन गहन कर्म क्रियाकलाप सुनना चाहते हैं, जो अत्यन्त कठिनाई से ही जाना जाता है। वे प्रभु अव्यक्त, व्यक्तलिंगस्थ, (व्यक्त चिह्नों वाले), प्रभु, भगवान्, नारायण, अनन्तात्मा, आदि कारण, अव्यय हैं। वे देव सनातन नारायण ही हरि, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, धर्म, शुक्र, बृहस्पति हो जाते हैं। ये प्रभु ही पूर्व में प्रधानात्मा ब्रह्मा का सृजन करते हैं। ब्रह्मा सबके पूर्वपुरुष हैं। वे ही प्रजापतिगण की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार सर्वलोक महेश्वर भगवान् हरि विष्णु ने किसलिये यदुकुल में जन्म लिया?॥६६-७५॥

॥एकोनाशीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण चरित्र वर्णन

व्यास उवाच

नमस्कृत्वा सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे। पुरुषाय पुराणाय शाश्वतायाव्ययाय च॥१॥
चतुर्व्यूहात्मने तस्मै निर्गुणाय गुणाय च। वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामिताय च॥२॥
यज्ञाङ्गायाखिलाङ्गाय देवाद्यैरीप्सिताय च। यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम्॥३॥
येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन सचराचरम्। आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम्॥४॥
वदन्ति यत्सृष्टमिति तथैवाप्युपसंहृतम्। ब्रह्मणे चाऽऽदिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—पुराणपुरुष शाश्वत, अव्यक्त, चतुर्व्यूहात्मा, निर्गुण, गुणरूपी वरिष्ठ, गरिष्ठ, वरेण्य, अमित, यज्ञाङ्ग, अखिल भुवनाङ्ग, देवादि द्वारा अभीप्सित, सुरेश्वर, प्रभविष्णु-विष्णु को प्रणाम करता

हूं! उनकी अपेक्षा कोई छोटा नहीं है, न कोई महान् है। जो अजन्मा हरि आविर्भाव-तिरोभाव रहित हैं तथा दृष्ट, अदृष्ट धर्म वाले इस सचराचर में व्याप्त हैं, यह जगत् जिनसे सृष्ट है तथा जिनके द्वारा संहार किया जाता है, उन ब्रह्मरूपी आदिदेव को समाधि द्वारा नमस्कार है!।।१-५।।

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय जिष्णवे विष्णवे नमः॥६॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च। वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥७॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः। अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥८॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः। मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥९॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्। प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥१०॥
ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलं परमार्थतः। तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम्॥११॥

जो अविकारी, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सदा एक रूप, जिष्णु, विष्णु हैं, उनको नमस्कार! हे हिरण्यगर्भ, हर, शंकर, वासुदेव, मोक्षकारण, उत्पत्ति, स्थिति, संहारकारी को नमस्कार! एक अनेक रूप, स्थूल तथा सूक्ष्मात्मा, अव्यक्त तथा व्यक्तरूप, मुक्ति हेतु विष्णु को नमस्कार! विश्वाधार, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम, सर्वभूतस्थ, अच्युत, पुरुषोत्तम को प्रणाम! परमार्थतः अत्यन्त निर्मल ज्ञानस्वरूप होकर भी भ्रान्त दृष्टि से पदार्थ रूपेण प्रतिभासमान विष्णु को प्रणाम!।।६-११।।

विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितिसर्गे तथा प्रभुम्। अनादिं जगतामीशमजमक्षयमव्ययम्॥१२॥
कथयामि यथा पूर्वं यक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः। पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः॥१३॥
ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यः पुनाति जगत्त्रयम्। प्रणिपत्य तथेशानमेकार्णवविनिर्गतम्॥१४॥

यस्यासुरगणा यज्ञान्विलुम्पन्ति न याजिनाम्।
प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥१५॥

विष्णु ही संसार ग्रसनकारी (ग्रसिष्णु), सृष्टि, स्थिति के कारण हैं। इन अनादि, जगदीश, अजन्मा, अक्षय प्रभु को नमस्कार! जो मुख द्वारा ऋक्, यजुः, सामादि का उच्चारण करते हैं, इस प्रकार त्रैलोक्य को पावन कर देते हैं, जिनका यजन न करने पर यज्ञकाल में असुरगण यज्ञध्वन्स करते हैं, जिन्होंने सृष्टि हेतु धर्मादि को प्रकाशित किया था, उन एकार्णव से निसृत ईशान को प्रणाम करके दक्षादि ऋषियों द्वारा पूछे जाने पूर्वकाल में भगवान् पद्मयोनि ब्रह्मा ने जो कहा था, अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के समस्त मत का मैं वर्णन करता हूं।।१२-१५।।

येन सृष्टिं समुद्दिश्य धर्माद्याः प्रकटीकृताः।
आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥१६॥
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।
स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः॥१७॥
चतुर्धा संस्थितो ब्रह्मा सगुणो निर्गुणस्तथा।
एका मूर्तिरनुद्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः॥१८॥

ज्वालामालावनद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा।
दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया स गुणातिगा॥१९॥
वासुदेवाभिधानाऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते। रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः कल्पनामयाः॥२०॥
आस्ते च सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी।
द्वितीया पृथिवीं मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः॥२१॥

तत्वदर्शी मुनिगण ने जल को 'नार' कहा था। यह जल पूर्वकाल में प्रभु का अयन (उपलब्धिस्थल) था। तभी उनका नाम नारायण पड़ा। ये विभु नारायण भगवान् ही सब कुछ को व्याप्त करके सर्वत्र स्थित, सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म ही चार भाग वाले होकर व्याप्त रहते हैं। उनकी एक **पहली मूर्त्ति वासुदेव मूर्त्ति** अनुदेश्या, ज्वालामालाशालिनी है, ऐसा ज्ञानीगण वर्णन करते हैं। यह परा मूर्त्ति ही योगीगण का परम लक्ष्य है। यह दूरस्था होकर भी समीप तथा त्रिगुणातीता है। यह गुणातीता है। ये वासुदेव हैं। यह मूर्त्ति ममता रहित होने पर ही दृष्टिगोचर होती है। यही वासुदेव संज्ञा युक्त है। यह रूपातीता है। इनका भाव, रूप-वर्ण आदि सब कल्पनामय नहीं है।।१६-२१।।

तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपागता। तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालनतत्परा॥२२॥
सत्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी।
चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा॥२३॥

वह मूर्त्ति सदा शुद्धा तथा एकरूपा प्रतिष्ठित रहती है। **शेष नामक द्वितीय मूर्त्ति** अधोभागस्थ होकर मस्तक पर पृथिवी धारण करती है। यह तामसी मूर्त्ति वक्र रहती है। **तृतीया मूर्त्ति सत्त्वगुण बहुला** है। यह प्रजापालन करने वाली है। यह धर्मस्थापिका भी है। **चतुर्थ मूर्त्ति** जल में सर्पशय्या पर सोई रहती है। यह रजोगुण बहुला है। यह सदा सृष्टिकारिणी है।।२१-२३।।

रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि। या तृतीया हरेर्मूर्तिः प्रजापालनतत्परा॥२४॥
सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि।
प्रोद्धतानसुरान्हन्ति धर्मव्युच्छित्तिकारिणः॥२५॥
पाति देवान्सगन्धर्वान्धर्मरक्षापरायणान्। यदा यदा च धर्मस्य ग्लानिः समुपजायते॥२६॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजत्यसौ।
भूत्वा पुरा वराहेण तुण्डेनापो निरस्य च॥२७॥
एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलिनीव वसुन्धरा। कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हतः॥२८॥
विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः।
वामनं रूपमास्थाय बलिं संयम्य मायया॥२९॥
त्रैलोक्यं क्रान्तवानेव विनिर्जित्वा दितेःसुतान्।
भृगोर्वंशे समुत्पन्नो जामदग्न्यः प्रतापवान्॥३०॥

जघान क्षत्रियान्रामः पितुर्वधमनुस्मरन्। तथाऽत्रितनयो भूत्वा दत्तात्रेयः प्रतापवान्॥३१॥
योगमष्टाङ्गमाचख्यावलर्काय महात्मने। रामो दाशरथिर्भूत्वा स तु देवः प्रतापवान्॥३२॥
जघान रावणं संख्ये त्रैलोक्यस्य भयङ्करम्।
यदा चैकार्णवे सुप्तो देवदेवो जगत्पतिः॥३३॥
सहस्त्रयुगपर्यन्तं नागपर्यङ्कगो विभुः।
योगनिद्रां समास्थाय स्वे महिम्नि व्यवस्थितः॥३४॥
त्रैलोक्यमुदरे कृत्वा जगत्स्थावरजङ्गमम्।
जनलोकगतैः सिद्धैः स्तूयमानो महर्षिभिः॥३५॥
तस्य नाभौ समुत्पन्नं पद्मं दिक्पत्रमण्डितम्। मरुत्किञ्जल्कसंयुक्तं गृहं पैतामहं वरम्॥३६॥
यत्र ब्रह्मा समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः। तदा कर्णमलोद्भूतौ दानवौ मधुकैटभौ॥३७॥

हरि की प्रजापालनतत्परा जो तीसरी मूर्त्ति है, यह भूतल पर सतत् धर्मस्थापना करती है। यह अधर्मनाशक उद्धत असुरों का हनन करती है। धर्मरक्षापरायण देवता एवं गन्धर्वों का प्रतिपालन करती है। जब-जब धर्म की ग्लानि होने लगती है, अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब यह मूर्त्ति अपना रूप परिवर्त्तन करके अपने अन्य रूप का सृजन करती है। पूर्वकाल में इस मूर्त्ति ने वराहरूपी होकर अपने थूथन के प्रहार से पृथिवी से जल को ढकेल कर एक दाढ़ पर धरती को कमल जैसे उखाड़ लिया था। तदनन्तर नृसिंह रूपी होकर हिरण्यकशिपु को निहत किया तथा विप्रचित्ति प्रभृति प्रमुख और भी अनेक दानवों का वध कर दिया। इन्होंने वामनरूपी होकर माया से बलि को बांध कर दितिपुत्रों (दानवों-दैत्यों) को परास्त करके तीन डग से तीनों लोक को नाप लिया था। इसी मूर्त्ति से आविर्भूत प्रतापी जामदग्न्य परशुराम ने पिता के वध का स्मरण करके क्षत्रियों का संहार करा था। इस मूर्त्ति ने ही अत्रिपुत्र होकर दत्तात्रेय रूप से महात्मा राजा अलर्क को अष्टांग योग का उपदेश दिया। इसी मूर्त्ति ने प्रतापी दाशरथी राम रूप से अवतार लेकर त्रैलोक्य भयंकर रावण का रण में संहार कर दिया। इन जगत्पति देवाधिदेव विभु ने जब स्थावर-जंगम त्रैलोक्य को अपने जठर में करके जनलोक वासी सिद्ध-महर्षिगण से स्तुत होकर अपनी महिमा में अवस्थित होकर एकार्णव में नागशैय्या पर एक हजार युगों तक शयन किया था, तब उनकी नाभि से एक पद्म उद्भूत हो गया। यह दिशारूपी पत्र से मण्डित तथा वायुरूपी केशर (पराग) से युक्त था। इसी से देवदेव चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुये। यही पितामह का उत्तम गृह था। उस समय उन भगवान् के कर्णमल से मधुकैटभ दानव उत्पन्न हो गये।।२४-३७।।

महाबलौ महावीर्यौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ। जघान तौ दुराधर्षौ उत्थाय शयनोदधेः॥३८॥
एवमादींस्तथैवान्यानसङ्ख्यातुमिहोत्सहे। अवतारो ह्यजस्येह माथुरः साम्प्रतस्त्वयम्॥३९॥
इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतारं करोति च।
प्रद्युम्नेति समाख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता॥४०॥
देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थिता।
गृह्णाति तत्स्वभावश्च वासुदेवेच्छया सदा॥४१॥

ददात्यभिमतान्कामान्पूजिता सा द्विजोत्तमाः।
एवं मया समाख्यातः कृतकृत्योऽपि यः प्रभुः।
मानुषत्वं गतो विष्णुः शृणुध्वं चोत्तरं पुनः॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे चतुर्व्यूहवर्णनं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८०॥

वे महाबली, महावीर्य दानव ब्रह्मा के वधार्थ उद्यत थे। तब नारायण ने शयन से जागकर उनका वध कर दिया। इन अजन्मा श्रीहरि के अन्य अवतारों की संख्या गणना मैं नहीं कर सकता, न बतला सकता हूं। सम्प्रति आपके द्वारा पूछे गये अवतार का नाम माथुर (मथुरा निवासी) है। प्रद्युम्न नामक प्रसिद्ध इस सात्विकी मूर्त्ति ने इस रूप में अनेक अवतार लिये हैं। ये रक्षाकार्य करते हैं। वासुदेव की इच्छा के अनुरूप ये देव मनुष्यत्व, तिर्यकत्व, देवत्व—चाहे जिस योनि में अवतीर्ण हों, यह (सात्त्विकी मूर्त्ति) देव सदा वही स्वभाव ग्रहण कर लेते हैं। हे द्विजवर वृन्द! ये पूजित होकर वांछित फल प्रदायक हैं। ये प्रभु विष्णु कृतार्थ होकर किस प्रकार मनुष्य योनि में अवतीर्ण हुये थे, वह सब मैंने कह दिया। अब आगे का प्रसंग सुनिये।।३८-४२।।

।।अशीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवतार के प्रयोजन का वर्णन

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः। अवतारं हरेश्चात्र भारावतरणेच्छया॥१॥
यदा यदा त्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजाः। धर्मश्च ह्रासमभ्येति तदा देवो जनार्दनः॥२॥
अवतारं करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम्। साधूनां रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च॥३॥
दुष्टानां निग्रहार्थाय अन्येषां च सुरद्विषाम्। प्रजानां रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे॥४॥
पुरा किल मही विप्रा भूरिभारावपीडिता। जगाम धरणी मेरौ समाजे त्रिदिवौकसाम्॥५॥
सब्रह्मकान्सुरान्सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी। कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी॥६॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिशार्दूलगण! श्रवण करें। अब श्रीहरि की भूभार हरणार्थ अवतार कथा को कहता हूं। हे ब्राह्मणवृन्द! जब-जब अधर्म बढ़ता है तथा धर्म की हानि होती है, तब-तब देव जनार्दन साधुओं के रक्षणार्थ तथा धर्म स्थापना के लिये अपने देह को दो भाग में करके अवतरित होते हैं। दुष्टों तथा अन्य

देवद्वेषी लोगों के निग्रह तथा प्रजाओं की रक्षा के लिये युग-युग में वे अवतार लेते हैं। हे ब्राह्मणों! पूर्वकाल में प्रजाधारिणी पृथिवी भयानक भार से पीड़िता होकर मेरुपर्वत पर देवगण के समाज में आई। दुःख से पीड़िता करुणभाषिणी मेदिनी ने ब्रह्मादि देवताओं को प्रणाम करके उनसे अपने कष्ट का वृत्तान्त कहा—।।१-६।।

धरण्युवाच

अग्निः सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्योऽपरो गुरुः।
ममाप्यखिललोकानां वन्द्यो नारायणो गुरुः॥७॥

तत्साम्प्रतमिमे दैत्याः कालनेमिपुरोगमाः। मर्त्यलोकं समागम्य बाधन्तेऽहर्निशं प्रजाः॥८॥

कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना। उग्रसेनसुतः कंसः सम्भूतः सुमहासुरः॥९॥

अरिष्टो धेनुकः केशी प्रलम्बो नरकस्तथा।
सुन्दोऽसुरस्तथाऽत्युग्रो बाणश्चापि बलेः सुतः॥१०॥
तथाऽन्ये च महावीर्या नृपाणां भवनेषु ये।
समुत्पन्ना दुरात्मानस्तान्न सङ्ख्यातुमुत्सहे॥११॥

धरती कहती है—अग्नि स्वर्ण के, सूर्य गौओं के गुरु हैं। अखिल लोक के द्वारा वन्दनीय नारायण मेरे गुरु हैं। अतः मेरी यह प्रार्थना है कि सम्प्रति कालनेमि आदि दैत्यगण मर्त्यलोक में आकर अहर्निश प्रजाजन को पीड़ित कर रहे हैं। पूर्वकाल में जो कालनेमि दानव प्रभविष्णु-विष्णु द्वारा मारा गया था, वही महासुर उग्रसेन का पुत्र कंस रूप में जन्मा है। उसके अतिरिक्त अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द असुर, बलिपुत्र अत्युग्र बाणासुर, और भी अन्य नाना दैत्यों के गृह में न जाने कितने महाबली दुरात्मा दैत्यों का जन्म हो गया है। उनकी गणना मैं नहीं कर पा रही हूं।।७-११।।

अक्षौहिण्यो हि बहुला दिव्यमूर्तिधृताः सुराः।
महाबलानां दृप्तानां दैत्येन्द्राणां ममोपरि॥१२॥

तद्भूरिभारपीडार्ता न शक्नोम्यमरेश्वराः। बिभर्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि वः॥१३॥

क्रियतां तन्महाभागा मम भारावतारणम्। यथा रसातलं नाहं गच्छेयमतिविह्वला॥१४॥

हे देवगण! मदमत्त दैत्येन्द्रगण की दिव्य मूर्त्तिमयी अनेक अक्षौहिणी सैन्य मेरे ऊपर स्थित है। हे अमरेश्वरगण! उस भयानक भार से आर्त्त होकर मैं तो अब स्वयं को संभाल नहीं सकती। तभी आपसे कहना पड़ रहा है। मैं विह्वल होकर रसातल न चली जाऊं। हे महाभाग देववृन्द! इसके अतिरिक्त आप लोग मेरे ऊपर का यह भार कम करिये।।१२-१४।।

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषैस्त्रिदशैस्ततः। भुवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह च चोदितः॥१५॥

व्यासदेव कहते हैं—धरणी का कथन सुनकर यह समस्या देवगण ने ब्रह्मा से कहा। तब ब्रह्मा भूमि के भार हरणार्थ कहने लगे।।१५।।

ब्रह्मोवाच

यदाह वसुधा सर्वं सत्यमेतद्दिवौकसः। अहं भवो भवन्तश्च सर्वं नारायणात्मकम्॥१६॥
विभूतयस्तु यास्तस्य तासामेव परस्परम्। आधिक्यं न्यूनता बाध्यबाधकत्वेन वर्तते॥१७॥

तदागच्छत गच्छामः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम्।
तत्राऽऽराध्य हरिं तस्मै सर्वं विज्ञापयाम वै॥१८॥
सर्वदेव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः।
स्वल्पांशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम्॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवताओं! धरती ने जो कुछ कहा है, वह सब सत्यरूप है। मैं, शिव तथा तुम लोग, सभी नारायणात्मक हैं। उन नारायण की जो विविध विभूति है, वे ही परस्परतः न्यूनाधिक रूप से बाध्य-बाधक भाव से विद्यमान रहती हैं। अतः हम सब क्षीरसागर के उत्तर तट पर चलें। वहां हरि की आराधना द्वारा उनसे समस्त प्रसंग कहें। वे अखिलात्मा, जगन्मय जगत् के लिये सदा स्वल्प अंश में अवतार लेते हैं तथा धर्मस्थापना करते हैं।।१६-१९।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र सह देवैः पितामहः। समाहितमना भूत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम्॥२०॥

व्यासदेव कहते हैं—पितामह ने यह कहकर देवगण के साथ वहां गमन किया तथा सभी समाहित होकर भगवान् गरुड़ध्वज का स्तव करने लगे।।२०।।

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रमूर्ते, सहस्रबाहो बहुवक्त्रपाद।
नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिविनाशसंस्थानपराप्रमेय॥२१॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च बृहत्प्रमाणं गरीयसामप्यतिगौरवात्मन् ।
प्रधानबुद्धीन्द्रियवाक्प्रधानमूलापरात्मन्भगवन्प्रसीद ॥२२॥
एषा मही देव महीप्रसूतैर्महासुरैः पीडितशैलबन्धा।
परायणं त्वां जगतामुपैति, भारावतारार्थमपारपारम्॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे सहस्रमूर्त्ति, सहस्रबाहु, अनेक मुख चरणधारी, आपको नमस्कार! आप जगत् के विनाश तथा स्थिति हेतु तत्पर रहते हैं। हे अप्रमेय! आपको बारम्बार प्रणाम करता हूं! हे प्रभो! आप सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा बृहत् से बृहत् हैं। आप महान् से भी महान् हैं। आप बुद्धि, इन्द्रिय, प्रकृति, वाणी रूप हैं। आप मूलभूत, अपरात्मन हैं। आप प्रसन्न हो जायें। हे देव! यह धरती अपने ऊपर उत्पन्न महा असुरों के भार से पीड़ित होकर रक्षार्थ आई हैं। आप जगत् रक्षक हैं। आपसे कौन पार पा सकता है?।।२१-२३।।

एते वयं वृत्ररिपुस्तथाऽयं, नासत्यदस्रौ वरुणस्तथैषः।
इमे च रुद्रा वसवः ससूर्याः, समीरणाग्निप्रमुखास्तथाऽन्ये॥२४॥

सुराः समस्ताः सुरनाथ कार्यमेभिर्मया यच्च तदीश सर्वम्।
आज्ञापयाऽऽज्ञां प्रतिपालयन्तस्तवैव तिष्ठाम सदाऽस्तदोषाः॥२५॥

ये वृत्रशत्रु इन्द्र, नासत्य-दस्र (अश्विनीकुमारद्वय), वरुण, रुद्रगण, वसुगण, सूर्य, वायु, अग्नि तथा समस्त देवता आपके समक्ष उपस्थित हैं। आप आज्ञा करिये। हे देवताओं के नाथ! मेरा तथा इनका जो कर्तव्य हो, वह कहिये। हे ईश्वर! आपके आदेश पालनार्थ हम सब सदा पवित्रता पूर्वक अवस्थित रहते हैं। हम सर्वदोष रहित होकर आज्ञा हेतु खड़े हैं।।२४-२५।।

व्यास उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वरः। उज्जहाराऽऽत्मनः केशौ सितकृष्णौ द्विजोत्तमाः॥२६॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले। अवतीर्य भुवो भारक्लेशहानिं करिष्यतः॥२७॥
सुराश्च सकलाः स्वांशैरवतीर्य महीतले। कुर्वन्तु युद्धमुन्मत्तैः पूर्वोत्पन्नैर्महासुरैः॥२८॥
ततः क्षयमशेषास्ते दैतेया धरणीतले। प्रयास्यन्ति न सन्देहो नानायुधविचूर्णिताः॥२९॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा।
तस्या गर्भोऽष्टमोऽयं तु मत्केशो भविता सुराः॥३०॥
अवतीर्य च तत्रायं कंसं घातयिता भुवि। कालनेमिसमुद्भूतमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः॥३१॥

व्यासदेव कहते हैं—पितामह प्रभृति द्वारा यह स्तुति किये जाने पर भगवान् परमेश्वर ने अपना एक श्वेत तथा एक कृष्णवर्ण केश उखाड़ कर देवताओं को देते हुये कहा—"मेरे ये दोनों केश पृथिवी पर अवतीर्ण होकर भूमिभार का हरण कर देंगे। देवता भी अपने-अपने अंश से धरती पर अवतार लेकर पूर्व में उत्पन्न हो गये उन्मत्त महान् असुरगण से युद्ध करें। वे सभी असुर अनेक आयुधों के प्रहार से अशेष दैत्यों का अन्त हो जायेगा। इसमें सन्देह नहीं है। हे देवताओं! वसुदेव की देवकी नामक जो देवताओं के समान पत्नी के अष्टम गर्भ के रूप में मेरे केश अवतरित होकर कालनेमि कंस का वध करेंगे।" यह कहने के उपरान्त हरि अन्तर्ध्यान हो गये।।२६-३१।।

अदृश्याय ततस्तेऽपि प्रणिपत्य महात्मने। मेरुपृष्ठं सुरा जग्मुरवतेरुश्च भूतले॥३२॥
कंसाय चाष्टमो गर्भो देवक्या धरणीतले।
भविष्यतीत्यसचचक्षे भगवान्नारदो मुनिः॥३३॥
कंसोऽपि तदुपश्रुत्य नारदात्कुपितस्ततः। देवकीं वसुदेवं च गृहे गुप्तावधारयत्॥३४॥
जातं जातं च कंसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा। तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमर्पितवान्द्विजाः॥३५॥
हिरण्यकशिपोः पुत्राः षड्गर्भा इति विश्रुताः।
विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भे न्ययोजयत्॥३६॥
योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहितं यया। अविद्यया जगत्सर्वं तामाह भगवान्हरिः॥३७॥

देवताओं ने तब उन अदृश्य महात्मा के उद्देश्य से प्रणाम किया तथा वे सभी सुमेरु पर्वत आने के

पश्चात् भूतल पर अवतार लेने लगे। धरणीधर विष्णु ने अपने अंश से देवकी के अष्टम गर्भ के रूप में जन्म लिया। भगवान् नारद मुनि ने कंस को यह संवाद दे दिया। कंस ने भी नारद से यह संवाद पाकर क्रोध किया तथा देवकी एवं वसुदेव को अपने भवन में बन्दी बना लिया। हे ब्राह्मणवृन्द! वसुदेव अपनी प्रतिज्ञा के अनुरूप जब-जब पुत्र उत्पन्न होते जाते, वैसे-वैसे उनको कंस को अर्पित करते जाते। हिरण्यकशिपु के षड्गर्भ नाम वाले छः पुत्र थे। विष्णु की प्रेरणा से योगनिद्रा ने उनको एक के बाद एक के क्रम से देवकी के गर्भ में स्थापित किया था। अविद्या रूपा वैष्णवी शक्ति से यह समग्र जगत् मोहित होता है। वे ही महामाया योगनिद्रा देवी हैं। उनसे भगवान् विष्णु ने कहा—।।३२-३७।।

विष्णुरुवाच

गच्छ निद्रे ममाऽऽदेशात्पातालतलसंश्रयान्। एकैकश्येन षड्गर्भान्देवकीजठरे नय।।३८।।

हतेषु तेषु कंसेन शेषाख्योंऽशस्ततोऽनघः।
अंशांशेनोदरे तस्याः सप्तमः सम्भविष्यति।।३९।।
गोकुले वसुदेवस्य भार्या वै रोहिणी स्थिता।
तस्याः प्रसूतिसमये गर्भो नेयस्त्वयोदरम्।।४०।।
सप्तमो भोजराजस्य भयाद्रोधोपरोधतः।
देवक्याः पतितो गर्भ इति लोको वदिष्यति।।४१।।

गर्भसङ्कर्षणात्सोऽथ लोके सङ्कर्षणेति वै। संज्ञामवाप्स्यते वीरः श्वेताद्रिशिखरोपमः।।४२।।

विष्णु कहते हैं—हे निद्रे! तुम मेरे आदेशानुसार जाकर पातालाश्रित उन छहों गर्भ को एक के बाद एक के क्रम से देवकी के गर्भ में स्थापित कर दो। जब कंस क्रमशः उनका वध कर देगा, तब मेरे ही शेष नामक अंश अंशांश क्रम से सप्तम गर्भ के रूप में संभूत होगा। वसुदेव की जो रोहिणी नामक पत्नी गोकुल में है, उसके प्रसव काल में यह उसके गर्भ में स्थापित करना। लोग यह कहेंगे कि देवकी का सातवां गर्भ भोजराज के भय से तथा कारागार के क्लेश के कारण च्युत हो गया। वह गर्भ श्वेत पर्वत शिखर युक्त वीर तथा गर्भसंकर्षण (गर्भ परिवर्तन) के कारण संकर्षण कहा जायेगा।।३८-४२।।

ततोऽहं संभविष्यामि देवकीजठरे शुभे। गर्भे त्वया यशोदया गन्तव्यमविलम्बितम्।।४३।।

प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निशि।
उत्पत्स्यामि नवम्यां च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि।।४४।।

यशोदाशयने मां तु देवक्यास्त्वामनिन्दिते। मच्छक्तिप्रेरितमतिर्वसुदेवो नयिष्यति।।४५।।

कंसश्च त्वामुपादाय देवि शैलशिलातले। प्रक्षेप्स्यत्यन्तरिक्षे च त्वं स्थानं समवाप्स्यसि।।४६।।

ततस्त्वां शतधा शक्रः प्रणम्य मम गौरवात्।
प्रणिपातानतशिरा भगिनीत्वे ग्रहीष्यति।।४७।।

ततः शुम्भनिशुम्भादीन्हत्वा दैत्यान्सहस्रशः। स्थानैरनेकैः पृथिवीमशेषां मण्डयिष्यसि।।४८।।

त्वं भूतिः सन्नतिः कीर्तिः कान्तिर्वै पृथिवी धृतिः।
लज्जापुष्टिरुषा या च काचिदन्या त्वमेव सा॥४९॥

तत्पश्चात् मेरा जन्म देवकी के शुभ उदर से होगा। तुम भी अब विलम्ब न करके यशोदागर्भ में चली जाओ। वर्षाकालीन श्रावण मास में कृष्णाष्टमी के दिन (कृष्णपक्षीय अष्टमी के दिन) महानिशा में मेरा जन्म होगा। तुम नवमी के दिन उत्पन्न होना। वसुदेव मेरी शक्ति से प्रेरित होकर मुझे यशोदा की शय्या पर स्थापित करके तुमको देवकी की शय्या पर लायेंगे। हे देवी! कंस तुमको ले जाकर पत्थर शिला पर पटकेगा। तब तुम अन्तरिक्ष में चली जाना। तब इन्द्र तुमको मेरे गौरव के कारण सैकड़ों प्रणाम करेंगे। वे तुमको प्रणत शिर होकर 'भगिनी' कहकर ग्रहण करेंगे। तब तुम नाना स्थान में शुंभ-निशुंभादि हजारों-हजार दैत्यों का वध करके पृथिवी को अलंकृत करोगी। तुम ही भूति, सन्नति, कीर्त्ति, कान्ति, पृथिवी, धृति, लज्जा, पुष्टि, ऊषा इत्यादि और भी जो कुछ है, वह सब तुम ही हो।।४३-४९।।

ये त्वामार्येति दुर्गेति वेदगर्भेऽम्बिकेति च।
भद्रेति भद्रकालीति क्षेम्या क्षेमङ्करीति च॥५०॥
प्रातश्चैवापराह्ने च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः।
तेषां हि वाञ्छितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति॥५१॥
सुरामांसोपहारैस्तु भक्ष्यभोज्यैश्च पूजिता। नृणामशेषकामांस्त्वं प्रसन्नायां प्रदास्यसि॥५२॥
ते सर्वे सर्वदा भद्रा मत्प्रसादादसंशयम्। असन्दिग्धं भविष्यन्ति गच्छ देवि यथोदितम्॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हरेरंशावतारनिरूपणं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८१।।

जो तुम्हारी स्तुति आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेम्या, क्षेमकरी नामों से प्रातःकाल एवं मध्याह्न में भक्तिभाव से करेंगे, मेरी कृपा से उनको समस्त वांछित लाभ होगा। सुरा-मांस, भक्ष्य-भोज्यादि उपहार से पूजिता होकर तुम मनुष्यों की अशेष कामना पूर्ण करोगी। वे सभी लोग मेरी कृपा से कुशलता लाभ करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है। मैंने जो कुछ कहा है, वे सभी असंदिग्ध रूप से फलित होंगे। हे देवी! अब मैंने जहां कहा है, तुम चली जाओ।।५०-५३।।

।।एकाशीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णोत्पत्ति कथा निरूपण

व्यास उवाच

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन वै पुरा। षड्गर्भगर्भविन्यासं चक्रे चान्यस्य कर्षणम्॥१॥
सप्तमे रोहिणीं प्राप्ते गर्भे गर्भे ततो हरिः। लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश वै॥२॥
योगनिद्रा यशोदायास्तस्मिन्नेव ततो दिने। सम्भूता जठरे तद्वद्यथोक्तं परमेष्ठिना॥३॥
ततो ग्रहगणः सम्यक्प्रचचार दिवि द्विजाः। विष्णोरंशे महीं यात ऋतवोऽप्यभवञ्शुभाः॥४॥
नोत्सेहे देवकीं द्रष्टुं कश्चिदप्यतितेजसा। जाज्वल्यमानं तां दृष्ट्वा मनांसि क्षोभमाययुः॥५॥
अदृष्टां पुरुषैः स्त्रीभिर्देवकीं देवतागणाः। बिभ्राणां वपुषा विष्णुं तुष्टुवुस्तामहर्निशम्॥६॥

व्यासदेव कहते हैं—पूर्व में देवाधिदेव श्रीहरि ने जो कहा था, तदनुसार जगद्धात्री योगनिद्रा ने षड्गर्भ को क्रमशः देवकीगर्भ में विन्यस्त किया तथा देवकी के सप्तम गर्भ को (इसके पश्चात्) खींच कर रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया। तदनन्तर तीनों लोक के उपकारार्थ श्रीहरि स्वयं देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हो गये। योगनिद्रा ने भी परमेष्ठि भगवान् के आदेशानुसार उसी दिन यशोदा के गर्भ से जन्म लिया। हे ब्राह्मणों! पृथिवी पर विष्णु का अंश एवंविध जाने के कारण ग्रहगण भी सम्यक् रूपेण विचरण करने लगे। ऋतुओं ने शुभाकृति धारण किया। देवकी को अमित तेज से जाज्वल्यंमान देखकर सभी क्षुब्ध हो गये। कोई उनकी ओर आंख उठाकर देखने में सक्षम ही नहीं हो रहा था। वे देवकी तो एक प्रकार से इसी कारण स्त्री-पुरुष सबके लिये अदृश्य सी हो चलीं। उनके शरीर में विष्णु थे, अतः देवता सदैव उनकी स्तुति करते रहते थे।।१-६।।

देवा ऊचुः

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा विद्या सुधा त्वं ज्योतिरेव च।
त्वं सर्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले॥७॥
प्रसीद देवि सर्वस्य जगतस्त्वं शुभं कुरु। प्रीत्यर्थं धारयेशानं धृतं येनाखिलं जगत्॥८॥

देवता कहते हैं—आप स्वाहा, स्वधा, सुधा, विद्या, ज्योति हैं। आप समस्त लोकों की रक्षा के लिये पृथिवी पर अवतीर्णा हैं। हे देवी! प्रसन्न हो जाईये। जो अखिल जगत् को धारण करते हैं, आपने उन ईश्वर को संसार के कल्याणार्थ धारण किया। आप सबका सुख साधन करें।।७-८।।

व्यास उवाच

एवं संस्तूयमाना सा देवैर्देवमधारयत्। गर्भेण पुण्डरीकाक्षं जगतां त्राणकारणम्॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—देवताओं से इस प्रकार स्तुत होती वे देवकी जगत् रक्षक पुण्डरीकाक्ष देव को गर्भ में धारण करने लगीं।।९।।

ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभानुना। देवक्याः पूर्वसन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना॥१०॥
मध्यरात्रेऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने। मन्दं जगर्जुर्जुलदाः पुष्पवृष्टिमुचः सुराः॥११॥
फुल्लेन्दीवरपत्राभं चतुर्बाहुमुदीक्ष्य तम्। श्रीवत्सवक्षसं जातं तुष्टावाऽऽनकदुन्दुभिः॥१२॥
अभिष्टूय च तं वाग्भिः प्रसन्नाभिर्महामतिः।
विज्ञायापमास तदा कंसाद्भीतो द्विजोत्तमाः॥१३॥

इसके पश्चात् मध्यरात्रि में अखिल जगत् स्वरूप कमल को खिलाने हेतु महात्मा अच्युत रूपी सूर्य पूर्वसन्ध्याकाश रूपा देवकी के गर्भ से आविर्भूत हो गये। जनार्दन के जन्मकाल में देवता लोग पुष्पवर्षा तथा बादल मन्द-मन्द गर्जना करने लगे। वसुदेव ने नवजात बालक को खिले हुये कमलपत्र की आभा वाले, चतुर्भुज श्रीवत्सांकित वक्षयुक्त देवाधिदेव को देखा। वे उनकी स्तुति करने लगे। हे महामति ब्राह्मणवृन्द! उस समय वसुदेव ने जो कंस से भयभीत थे, उन महामति ने प्रसन्न होकर समस्त वृत्तान्त निवेदित करते हुये उत्तम वाणी से भगवान् का स्तव किया।।१०-१३।।

वसुदेव उवाच

ज्ञातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर। दिव्यं रूपमिदं देव प्रसादेनोपसंहर॥१४॥
अद्यैव देव कंसोऽयं कुरुते मम यातनाम्।
अवतीर्णमिति ज्ञात्वा त्वामस्मिन्मन्दिरे मम॥१५॥

वसुदेव कहते हैं—हे शंख-चक्र-गदाधारी देवदेवेश! मैं आपको जान गया। अब आप कृपा करके प्रसन्न होकर इस दिव्यरूप का उपसंहार करिये। हे देव! मेरे इस मन्दिर में आप अवतीर्ण हुये हैं। यह मैं जान गया। कंस अभी मेरी यातना का विधान करने लगेगा। यह जानते ही वह मुझे महान् पीड़ा प्रदान करेगा।।१४-१५।।

देवक्युवाच

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो, गर्भेऽपि लोकान्वपुषा बिभर्ति।
प्रसीदतामेष स देवदेवः, स्वमाययाऽऽविष्कृतबालरूपः॥१६॥
उपसंहर सर्वात्मन् रूपमेतच्चतुर्भुजम्। जानातु माऽवतारं ते कंसोऽयं दितिजान्तक॥१७॥

देवकी कहती हैं—जो अनन्त रूप, अखिल विश्वरूप तथा गर्भ में रहकर भी शरीर से सर्वलोक धारण करते हैं, जो अपनी माया से ही बालकरूप हो गये हैं, वे देवाधिदेव प्रसन्न हो जायें। हे सर्वात्मा! इस चतुर्भुज रूप का उपसंहार करिये। हे दितिपुत्रों के हन्ता! आपके इस अवतार को कंस न जाने।।१६-१७।।

श्रीभगवानुवाच

स्तुतोऽहं यत्त्वया पूर्वं पुत्रार्थिन्या तदद्य ते।
सफलं देवि सञ्जातं जातोऽहं यत्तवोदरात्॥१८॥

भगवान् कहते हैं—हे देवी! पूर्व में आपने पुत्रार्थिनी होकर मेरी स्तुति किया था। अब आपकी वह इच्छा सफल हो। आपके उदर से मैंने जन्म ले लिया।।१८।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवांस्तूष्णीं बभूव मुनिसत्तमाः।
वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ बहिः॥१९॥
मोहिताश्चाभवंस्तत्र रक्षिणो योगनिद्रया। मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यानकदुन्दुभौ॥२०॥
वर्षतां जलदानां च तत्तोयमुल्बणं निशि। सञ्छाद्य तं ययौ शेष फणैरानकदुन्दुभिम्॥२१॥
यमुनां चातिगम्भीरां नानावर्तशताकुलाम्। वसुदेवो वहन्विष्णुं जानुमात्रवहां ययौ॥२२॥
कंसस्य करमादाय तत्रैवाभ्यागतांस्तटे। नन्दादीन्गोपवृद्धांश्च यमुनायां ददर्श सः॥२३॥
तस्मिन्काले यशोदाऽपि मोहिता योगनिद्रया।
तामेव कन्यां मुनयः प्रासूत मोहिते जने॥२४॥
वसुदेवोऽपि विन्यस्य बालमादाय दारिकाम्। यशोदाशयने तूर्णमाजगामामितद्युतिः॥२५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! प्रभु हरि यह कहकर मौन हो गये तथा लौकिक बालकरूप हो गये। वसुदेव उसी रात्रि में ही उनको बाहर ले गये। आनकदुन्दुभि (वसुदेव का अन्य नाम) के प्रस्थान करते समय वहां के पहरेदार, रक्षक, मथुरावासी लोग सभी योगनिद्रा के प्रभाव से मोहित हो गये। उस समय मेघों ने तुमुल वर्षा किया। शेषनाग ने अपने सहस्र फणों से आनकदुन्दुभि को आच्छादित कर लिया तथा उनके पीछे अनुगमन करते चल रहे थे। यमुना नदी अत्यन्त गहरी तथा सैकड़ों भंवर से युक्त थीं, लेकिन जब वसुदेव विष्णु को ले जाने लगे, उस समय यमुना केवल उन वसुदेव के घुटने भर जलयुक्त हो गईं। इसलिये वसुदेव ने कष्ट रहित स्थिति में यमुना उत्तीर्ण कर लिया। वहां उन्होंने देखा कि उस पार नन्द आदि वृद्ध गोप लोग कंस के लिये राजकर लिये उपस्थित हैं (वे सभी योगमाया द्वारा मोहित अचेत जैसे थे)। हे मुनिवृन्द! उस समय योगमाया के प्रभाव से यशोदा भी मोहित थीं। सभी मोहित थे, तभी यशोदा ने कन्या प्रसव किया। अमितद्युति वासुदेव ने यशोदा की शय्या पर उस बालक (विष्णु) को रखा तथा कन्या को लेकर शीघ्र लौट आये।।१९-२५।।

ददर्श च विबुद्ध्वा सा यशोदा जातमात्मजम्।
नीलोत्पलदलश्यामं ततोऽत्यर्थं मुदं ययौ॥२६॥
आदाय वसुदेवोऽपि दारिकां निजमन्दिरम्। देवकीशयने न्यस्य यथापूर्वमतिष्ठत॥२७॥
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षिणः सहसोत्थिताः। कंसमावेदयामासुर्देवकीप्रसवं द्विजाः॥२८॥
कंसस्तूर्णमुपेत्यैनां ततो जग्राह बालिकाम्।
मुञ्च मुञ्चेति देवक्याऽऽसन्नकण्ठं निवारितः॥२९॥
चिक्षेप च शिलापृष्ठे सा क्षिप्ता वियति स्थितिम्।
अवाप रूपं च महत्सायुधाष्टमहाभुजम्।
प्रजहास तथैवोच्चैः कंसं च रुषिताऽब्रवीत्॥३०॥

योगनिद्रा जनित मोह से उत्थित होने पर नीलकमलवत् श्यामल सन्तान को देखकर यशोदा प्रमुदित हो उठीं। वसुदेव भी उस बालिका को लेकर लौटे तथा उन्होंने उसे देवकी की शय्या पर रख दिया। वे पूर्ववत् वहां स्थित हो गये। उसके पश्चात् बालिका के रुदन स्वर से बंदीरक्षीगण सहसा उठे और "देवकी ने सन्तान जन्म दिया है" यह संवाद कंस से जाकर कहा। कंस वहां शीघ्र आ गया। तब कंस ने हठात् बालिका को उठा लिया तथा देवकी द्वारा कन्या को छोड़ देने के लिये बारम्बार कहते रहने पर भी कंस ने बालिका को शिला पर पटक दिया। हाथ से शिला पर पटके जाने वाले क्षण के पहले ही वे कंस के हाथों से मुक्त होकर आकाश में जा पहुंचीं। उन्होंने युद्धों से युक्त अष्टभुज रूप धारण कर लिया। वे अट्टहास पूर्वक कंस से कहने लगीं।।२६-३०।।

योगमायोवाच

किं मयाऽऽक्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां हनिष्यति।

व्यास उवाच

सर्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्युः पुरा स ते।
तदेतत्सम्प्रधार्याऽऽशु क्रियतां हितमात्मनः।।३१।।

भगवती योगमाया कहती हैं—"हे कंस! मुझे पटकने से तुमने क्या पाया? जो तुम्हारा वध करेंगे, उन देव का जन्म हो गया है। उन देवगण के सर्वस्व प्रभु ने पूर्वकाल में (कालनेमि जन्म में) तुम्हारा वध किया था।।३१।।

इत्युक्त्वा प्रययौ देवी दिव्यस्त्रग्गन्धभूषणा।
पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धैर्विहायसा।।३२।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपणं नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८२।।

व्यासदेव कहते हैं—दिव्य माला तथा गन्ध में भूषिता वे देवी भोजराज कंस के सामने ही साक्षात् आकाशमार्ग से सिद्धों द्वारा स्तुत होती प्रस्थान कर गयीं।।३२।।

।।द्व्यशीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कंस विचार कथन

व्यास उवाच

कंसस्त्वथोद्विग्नमनाः प्राह सर्वान्महासुरान्। प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहूयासुरपुङ्गवान्॥१॥

व्यासदेव कहते हैं—इस घटना से कंस उद्विग्न हो उठा। वह प्रलम्ब, केशी आदि महान् असुरगण को बुला कर कहने लगा—॥१॥

कंस उवाच

हे प्रलम्ब महाबाहो केशिन्धेनुक पूतने। अरिष्टाद्यैस्तथा चान्यैः श्रूयतां वचनं मम॥२॥
मां हन्तुममरैर्यत्नः कृतः किल दुरात्मभिः। मद्वीर्यतापितान्वीरान्न त्वेतान्गणयाम्यहम्॥३॥
आश्चर्य कन्यया चोक्तं जायते दैत्यपुङ्गवाः। हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि॥४॥
तथाऽपि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिकं मया। अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम्॥५॥
उत्पन्नश्चापि मृत्युर्मे भूतभव्यभवत्प्रभुः। इत्येतद्बालिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा॥६॥
तस्माद्बालेषु परमो यत्नः कार्यो महीतले। यत्रोद्रिक्तं बलं बाले स हन्तव्यः प्रयत्नतः॥७॥

कंस कहता है—हे महाबाहु प्रलम्ब! हे केशी, धेनुक, पूतना! तुम लोग तथा अरिष्ठादि अन्य सभी मेरी बातों को सुनो। दुरात्मा देवगण ने मेरे वधार्थ यत्न किया है। हे वीरों! वे सभी मेरे बल-वीर्य से तप्त हैं। मैं उनकी गणना नहीं करता। उस कन्या ने जो कुछ कहा, वह तो आश्चर्य की बात है। हे दैत्यपुंगवगण! इससे तथा देवताओं के यत्न से मुझे हंसी हो रही है। जो कुछ हो, तथापि इन दुष्ट देवताओं का और अधिक अपकार करना मेरा कर्तव्य है। अतः तुम लोग उन दुरात्मागण के अनिष्ट का प्रयत्न करो। उस बालिका ने मुझसे कहा है कि भूत-भविष्य-वर्तमान के प्रभु विष्णु तुम्हारे वधार्थ उत्पन्न हो गये हैं। अतः पृथिवी के बालकों के प्रति विशेष लक्ष्य रखने का प्रयोजन है। जो बालक अधिक बली लगे, उसका प्रयत्नतः हनन करो।।२-७।।

व्यास उवाच

इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसः प्रविश्याऽऽत्मगृहं ततः। उवाच वसुदेवं च देवकीमविरोधतः॥८॥

व्यासदेव कहते हैं—कंस ने जब असुरों को यह आज्ञा प्रदान किया, तब इसके पश्चात् वह अन्तःपुर में जाकर वसुदेव-देवकी से कहने लगा। उसने यह वाक्य बिना विरोध प्रदर्शित किये हुये कहा—।।८।।

कंस उवाच

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवैते मयाऽधुना। कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः॥९॥
तदलं परितापेन नूनं यद्भाविनो हि ते।
अर्भका युवयोः को वा आयुषोऽन्ते न हन्यते॥१०॥

कंस कहता है—तुम्हारे गर्भ के इन बालकों की मैंने वृथा हत्या किया। मेरे नाश के लिये अन्य कोई बालक जन्मा है। अतएव तुम लोग परिताप मत करो। अतः भाग्य में जो था, वही होगा। आयु का अन्त हो जाने पर कौन मृत नहीं होता।।९-१०।।

व्यास उवाच

इत्याश्वास्य विमुच्यैव कंसस्तौ परितोष्य च। अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठाः प्रविवेश पुनः स्वकम्।।११।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णबालचरिते कंसविचारकथनं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८३।।

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणप्रवरवृन्द! कंस ने इस प्रकार उनको आश्वस्त करके उनको मुक्त कर दिया तथा पुनः अपने अन्तःपुर में आ गया।।११।।

।।त्र्यशीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण बाल चरित वर्णन

व्यास उवाच

विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकटं गतः। प्रहृष्टः दृष्टवान्नन्दं पुत्रो जातो ममेति वै।।१।।
वसुदेवोऽपि तं प्राह दिष्ट्या दिष्ट्येति सारदम्। वार्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना।।२।।
दत्तो हि वार्षिकः सर्वो भवद्भिर्नृपतेः करः। यदर्थमागतस्तस्मान्नात्र स्थेयं महात्मना।।३।।
यदर्थमागतः कार्यं तन्निष्पन्नं किमास्यते। भवद्भिर्गम्यतां नन्द तच्छीघ्रं निजगोकुलम्।।४।।
ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रसवो हि यः। स रक्षणीयो भवता यथाऽयं तनयो निजः।।५।।

व्यासदेव कहते हैं—वसुदेव विमुक्त होकर नन्द के निवास पर चले गये। उन्होंने प्रहृष्ट नन्द से आदर से कहा—"आपको वृद्ध आयु में यह पुत्र उत्पन्न हो गया। यह अतीव सन्तोषप्रद विषय है। जिस कार्य से आप मथुरा आये थे, कंसराजा का वार्षिक कर तो दे दिया। तब आपका यहां रुकना उचित नहीं है। जब यहां कार्य सम्पन्न हो गया, तब यहां रुकना व्यर्थ है। हे नन्द! आप शीघ्र अपने गोकुल चले जायें। मेरा भी जो बालक रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है (बलराम) वह गोकुल में ही है। आप उसकी रक्षा स्वपुत्रवत् करें।।१-५।।

व्यास उवाच

इत्युक्ताः प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमाः। शकटारोपितैर्भाण्डैः करं दत्त्वा महाबलाः।।६।।

वसतां गोकुले तेषां पूतना बालघातिनी। सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ च प्रददौ स्तनम्॥७॥
यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सम्प्रयच्छति। तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यते॥८॥
कृष्णस्तस्याः स्तनं गाढं कराभ्यामतिपीडितम्।
गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ क्रोधसमन्वितः॥९॥
सा विमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना। पपात पूतना भूमौ म्रियमाणाऽतिभीषणा॥१०॥
तन्नादश्रुतिसन्त्रासाद्विबुद्धास्ते व्रजौकसः। ददृशुः पूतनोत्सङ्गे कृष्णं तां च निपातिताम्॥११॥
आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदा च ततो द्विजाः। गोपुच्छभ्रामणाद्यैश्च बालदोषमपाकरोत्॥१२॥
गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके। कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वन्निदमुदैरयत्॥१३॥

व्यासदेव कहते हैं—वसुदेव द्वारा यह कहे जाने पर नन्दगोप प्रभृति महाबली गोपगण ने कर देकर दधि-दुग्धाधि के सभी बड़े पात्र शकट पर रख कर वहां से प्रस्थान कर दिया। वे गोकुल में निवास कर ही रहे थे, तभी एक रात बालघातिनी पूतना ने निद्रित कृष्ण के मुख में अपना स्तन दिया। यह पूतना रात्रि में जिस-जिस बालक के मुख में स्तन प्रदान करती थी, क्षणकाल में उस बालक की मृत्यु निश्चित हो जाती थी। कृष्ण ने क्रोध पूर्वक पूतना के स्तनद्वय को हथेलियों से दृढ़ रूप से दबाकर पूतना के प्राणों सहित उनका पान किया। इससे वह पूतना स्नायुबन्धन भग्न तथा मरणासन्न होकर महान् चीत्कार करते अतीव भीषणाकृति होकर भूपतित हो गयी। व्रजवासी लोगों ने यह चीत्कार सुना। उस चीत्कार से वे त्रस्त होकर जागे तथा वहां मृत धरती पर पड़ी पूतना को तथा उसके अंक में कृष्ण को उन्होंने देखा। हे ब्राह्मणों! इस दृश्य से अतीव त्रस्त हो गयी यशोदा ने कृष्ण को गोद में उठाकर गोपुच्छ फिराते हुये कृष्ण के बालदोष का निवारण किया तथा अन्य उपाय भी किये। उस समय नन्दगोप ने भी गोबर उठाकर कृष्ण के मस्तक पर रखा तथा रक्षामन्त्रों का उच्चारण किया।।६-१३।।

नन्दगोप उवाच

रक्षते त्वामशेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः। यस्य नाभिसमुद्भूतात्पङ्कजादभवज्जगत्॥१४॥
येन दंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनी जगत्। वराहरूपधृग्देवः स त्वां रक्षतु केशवः॥१५॥
गुह्यं स जठरं विष्णुर्जङ्घा पादौ जनार्दनः। वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणादभूत्॥१६॥
त्रिविक्रमक्रमाक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदायुधः। शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठं रक्षतु केशवः॥१७॥
मुखबाहू प्रबाहू च मनः सर्वेन्द्रियाणि च। रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्ययः॥१८॥
त्वां दिक्षु पातु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः। हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महीधरः॥१९॥

नन्दगोप कहते हैं—जिनके नाभि से उत्पन्न कमल से यह जगत् उत्पन्न है, वे समस्त प्राणियों के आदिकारण हरि तुम्हारी रक्षा करें। जिन्होंने अपनी दाढ़ के अग्रभाग से धरणी को पकड़ कर जगत् को धारण किया था, वे वाराहरूपी देव केशव तुम्हारी रक्षा करें। तुम्हारे जठर तथा गुह्य की रक्षा विष्णु करें। जंघा तथा पादद्वय की रक्षा जनार्दन करें। वे वामन तुम्हारी रक्षा करें, जो क्षणमात्र में तीन डग से त्रैलोक्य लांघकर शस्त्रायुधों से शोभायमान हो गये थे। गोविन्द शिर की, केशव कण्ठ की रक्षा करें। तुम्हारे मुख, प्रबाहु-बाहु,

मन, सर्वेन्द्रियों की रक्षा अव्याहत ऐश्वर्यशाली अव्यय नारायण करें। दिक् समूह में वैकुण्ठ, विदिक् समूह में मधुसूदन, आकाश में हृषीकेश तथा भूमितल पर महीधर रक्षा करें।।१४-१९।।

व्यास उवाच

एवं कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालकः। शायितः शकटस्याधो बालपर्यङ्किकातले॥२०॥

ते च गोपा महद्दृष्ट्वा पूतनायाः कलेवरम्।
मृतायाः परमं त्रासं विस्मयं च तदा ययुः॥२१॥

व्यासदेव कहते हैं—नन्दगोप द्वारा एवंविध रक्षामन्त्र पाठ से रक्षा की गई। नन्दगोप ने बालक कृष्ण को एक शकट के नीचे बालकों के पर्यंक पर लिटा दिया। पूतना के महत् कलेवर को देख कर वे गोप समूह वाले त्रस्त तथा विस्मयान्वित हो उठे।।२०-२१।।

कदाचिच्छकटस्याधः शयानो मधुसूदनः। चिक्षेप चरणावूर्ध्वं स्तनार्थी प्ररुरोद च॥२२॥
तस्य पादप्रहारेण शकटं परिवर्तितम्। विध्वस्तभाण्डकुम्भं तद्विपरीतं पपात वै॥२३॥
ततो हाहाकृतः सर्वो गोपगोपीजनो द्विजाः। आजगाम तदा ज्ञात्वा बालमुत्तानशायिनम्॥२४॥
गोपाः केनेति जगदुः शकटं परिवर्तितम्। तत्रैव बालकाः प्रोचुर्बालेनानेन पातितम्॥२५॥
रुदता दृष्टमस्माभिः पादविक्षेपताडितम्। शकटं परिवृत्तं वै नैतदन्यस्य चेष्टित्तम्॥२६॥

एक बार शकट के नीचे मधुसूदन लेटे थे। उन्होंने स्तनपानार्थ रोदन करते-करते ऊर्ध्वादिक् चरण फेंकना प्रारम्भ किया (जैसे बच्चे पैर चलाते हैं)। उनके चरणप्रहार से वह शकट उलट गया। उसके उलट जाने से कतिपय मृत्तिका-कलसी-पात्र टूट गये। हे ब्राह्मणगण! उस समय समस्त गोप-गोपी वहां हाहाकार करते आये। वे आकर देखते हैं कि बालक उत्तान होकर लेटा है। गोपगण बोलने लगे "किसने इस शकट को उलटा?" तब वहां उपस्थित बालकों ने कहा—"इसी बालक ने रोते-रोते उसे उलटा है। हमने यह स्वयं देखा है कि उसके पैर फेंकने से यह शकट गिरा। यह काम और किसी का नहीं है"।।२२-२६।।

ततः पुनरती वाऽऽसन्गोपा विस्मितचेतसः।
नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यन्तविस्मितः॥२७॥

यशोदा विमयारुढा भग्नभाण्डकपालकम्। शकटं चार्चयामास दधिपुष्पफलक्षतैः॥२८॥
गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदितः। प्रच्छन्न एव गोपानां संस्कारमकरोत्तयोः॥२९॥

यह सुनकर वे गोपगण अत्यन्त विस्मित हो उठे। नन्दगोप ने अतीव विस्मय में पड़कर बालक को गोद में उठाया। यशोदा भी विस्मयारूढ़ होकर उस शकट की तथा टूट गये भाण्डों तथा घटों के खप्पर की पूजा दधि, पुष्प, फल, अक्षत से करने लगीं। वसुदेव के द्वारा बुलाये गये गर्ग मुनि ने गोकुल जाकर गोपगण से बिना कहे दोनों बालकों का संस्कार किया।।२७-२९।।

ज्येष्ठं च राममित्याह कृष्णं चैव तथापरम्।
गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो नाम कुर्वन्मिहामतिः॥३०॥

अल्पेनैव हि कालेन विज्ञातौ तौ महाबलौ। घृष्टजानकरौ विप्रा बभूवतुरुभावपि॥३१॥

करीषभस्मदिग्धाङ्गौ भ्रममाणावितस्ततः।
न निवारयितुं शक्ता यशोदा तौ न रोहिणी॥३२॥

गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाटगतौ पुनः। तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ॥३३॥

यदा यशोदा तौ बालावेकस्थानचरावुभौ। शशाक नो वारयितुं क्रीडन्तावतिचञ्चलौ॥३४॥

दाम्ना बद्ध्वा तदा मध्ये निबबन्ध उलूखले। कृष्णमक्लिष्टकर्माणमाह चेदममर्षिता॥३५॥

मतिमान लोगों में प्रधान महाज्ञानी गर्ग मुनि ने उन लोगों का नामकरण करते समय ज्येष्ठ पुत्र का नाम राम (बलराम) तथा कनिष्ठ का नाम कृष्ण रखा। हे विप्रवृन्द! वे दोनों महाबली बालक अल्पकाल में ही घुटने के तथा हाथों के सहारे चलने लगे। वे कंडे (गोबर के उपले-गोहरी) की भस्म अंगों पर मल कर इतस्ततः विचरते रहते। यशोदा तथा रोहिणी में से कोई भी उनको रोकने में समर्थ नहीं थीं। वे कभी गौशाला में, तो कभी बछड़ों के स्थान पर चले जाते। वे बछड़ों की पूंछों को खींचते। जब यशोदा एक बार क्रीड़ारत, चंचल दोनों बालकों को रोकने में असमर्थ हो गयीं, तब उन्होंने अक्लिष्टकर्मा (सहज में कार्य सम्पन्न करने वाले) कृष्ण को ओखली में रस्सी से बांध दिया। वे क्रोध पूर्वक कहने लगीं।।३०-३५।।

यशोदावाच

यदि शक्तोऽसि गच्छ त्वमतिचञ्चलचेष्टित॥३६॥

यशोदा कहती है—हे अति चंचल! यदि शक्ति है तो छूट कर जाओ!।।३६।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा च निजं कर्म सा चकार कुटुम्बिनी।
व्यग्रायामथ तस्यां स कर्षमाण उलूखलम्॥३७॥

यमलार्जुनयोर्मध्ये जगाम कमलेक्षणः। कर्षता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यगेवमुलूखलम्॥३८॥

भग्नावुत्तुङ्गशाखाग्रौ तेन तौ यमलार्जुनौ। ततः कटकटाशब्दसमाकर्णनकातरः॥३९॥

आजगाम व्रजजनो ददृशे च महाद्रुमौ। भग्नस्कन्धौ निपतितौ भग्नशाखौ महीतले॥४०॥

ददर्श चाल्पदन्तास्यं स्मितहासं च बालकम्। तयोर्मध्यगतं बद्धं दाम्ना गाढं तथोदरे॥४१॥

व्यासदेव कहते हैं—वे कुटुम्बिनी यशोदा यह कहकर अपना कार्य करने लगीं। तदनन्तर ओखली खींचते-खींचते वे कमलनयन कृष्ण यमलार्जुन वृक्षों के बीच में आ गये। तथापि कृष्ण रस्सी खींचते जा रहे थे। वह ओखली टेढ़ी होकर यमलार्जुन से आबद्ध हो गयी। वे दोनों वृक्ष इस खिंचाव के कारण गिर पड़े। उस वृक्ष के गिरने की आवाज को सुनकर व्रजवासी लोग वहां कातर चित्त से आये तथा वे देखते हैं कि वह यमलार्जुन तना टूटने तथा शाखाओं के भग्न होने के कारण धरती पर गिरा है। उनके बीच उदर में रस्सी बंधे कृष्ण दृढ़ भाव से वहां खड़े मुस्करा रहे हैं। इससे उनके अल्प उगे दांत परिलक्षित हो रहे हैं। उनके उदर से रज्जु द्वारा दृढ़ता से ओखली आबद्ध है।।३७-४१।।

ततश्च दामोदरतां स ययौ दामबन्धनात्। गोपवृद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमः॥४२॥
मन्त्रयामासुरुद्विग्ना महोत्पातातिभीरवः। स्थानेनेह न नः कार्यं वज्रामोऽन्यन्महावनम्॥४३॥
उत्पाता बहवो ह्यत्र दृश्यन्ते नाशहेतवः। पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्ययः॥४४॥
विना वातादिदोषेण द्रुमयोः पतनं तथा।
वृन्दावनमितः स्थानात्तस्माद्गच्छाम मा चिरम्॥४५॥
यावद्भौममहोत्पातदोषो नाभिभवेद्व्रजम्। इति कृत्वा मतिं सर्वे गमने ते व्रजौकसः॥४६॥

वे उक्त दाम (रज्जु) से बांधे गये थे। इसी से उनका नाम दामोदर पड़ा। तदनन्तर महोत्पात घटित होने की आशंका से भयभीत नन्दगोप आदि वृद्धगण उद्विग्न चित्त से मिल कर मन्त्रणा करने लगे "यह स्थान रहने योग्य नहीं लग रहा है। हम अन्य महावन में चलें। यहां अनेक नाशकारी उत्पात परिलक्षित हो रहे हैं। पूतना विनाश, शकट उलटना, बिना वायु आदि के उत्पात के वृक्षों का गिरना, यह सब हो रहा है। इससे पहले कि भौम उत्पात प्रभृति दोष व्रज पर आक्रमण करें, हम यहां से वृन्दावन प्रस्थान करें। यह विचार करके सभी व्रजवासी वहां से गमनोद्यत हो गये।।४२-४६।।

ऊचुः स्वं स्वं कुलं शीघ्रं गम्यतां मा विलम्ब्यताम्।
ततः क्षणेन प्रययुः शकटैर्गोधनैस्तथा॥४७॥
यूथशो वत्सपालीश्च कालयन्तो व्रजौकसः। सर्वावयवनिर्धूतं क्षणमात्रेण तत्तदा॥४८॥
काककाकीसमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद् द्विजाः। वृन्दावनं भगवता कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥४९॥
शुभेन मनसा ध्यातं गवां वृद्धिमभीप्सता।
ततस्तत्रातिरूक्षेऽपि घर्मकाले द्विजोत्तमाः॥५०॥
प्रावृट्काल इवाभूच्च नवशष्पं समन्ततः।
स समावासितः सर्वो व्रजो वृन्दावने ततः॥५१॥
शकटीवाटपर्यन्तचन्द्रार्धाकारसंस्थितिः। वत्सबालौ च संवृत्तौ रामदामोदरौ ततः॥५२॥

उन व्रजवासियों ने अपने परिवार वर्ग से कहा कि चलो, अब विलम्ब मत करो। क्षणमात्र में (अल्प काल में) ही व्रजवासी लोग दल बांध कर शकट, गौयें, बछड़े आदि सब लेकर वहां से प्रस्थान कर गये। वत्सपाल आदि सब को एवं समस्त सामग्री लेकर व्रजवासी चल पड़े। क्षणभर में व्रज जनविहीन हो गया। अब वह व्रजभूमि काक-काकी से भर गई। उधर भगवान् महाकर्मकर्त्ता कृष्ण ने वृन्दावन की गौओं की वृद्धि हेतु शुभ कल्पना किया। हे द्विजप्रवरगण! तदनन्तर अत्यन्त रुक्ष उस ग्रीष्म ऋतु में भी वहां वर्षा ऋतु जैसी नये अंकुरों वाली घास-दूब उग आई। वे व्रजवासी वृन्दावन स्थल में आनन्द से रहने लगे। वे व्रजवासी शकट मार्ग पर्यन्त व्याप्त होकर अर्द्धचन्द्राकृति निवास करने लगे। वहां बलराम तथा दामोदर बछड़े चराते थे।।४७-५२।।

तत्र स्थितौ तौ गोष्ठे चेरतुर्बाललीलया। बर्हिपत्रकृतापीडौ वन्यपुष्पावतंसकौ॥५३॥

गोपवेणुकृतातोद्यपत्रवाद्यकृतस्वनौ। काकपक्षधरौ बालौ कुमारमिव पावकौ॥५४॥
हसन्तौ च रमन्तौ च चेरतुस्तनमहद्वनम्।
क्वचिद्धसन्तावन्योन्यं क्रीडमानौ तथा परैः॥५५॥

ये दोनों बालक गोष्ठ में अनेक बाललीला करते रहते थे। वे मयूर पुच्छ को शिर का आभूषण बनाते तथा जंगली पुष्पों से कानों का अलंकार (कुण्डल आदि) बनाकर धारण करते। उन्होंने गोपजाति में प्रचलित वेणु बजाने का अभ्यास किया था, साथ ही वे अनेक वाद्यों को बजाने के विशारद हो गये। वे काकपक्ष धारण करके प्रभाव में पावकवत् प्रकाशमान होकर कभी हास्य करते, कभी क्रीड़ा करते उस महावन में विचरणरत हो गये।।५३-५५।।

गोपपुत्रैः समं वत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः। कालेन गच्छता तौ तु सप्तवर्षौ बभूवतुः॥५६॥
सर्वस्य जगतः पालौ वत्सपालौ महाव्रजे। प्रावृट्कालस्ततोऽतीव मेघौघस्थगिताम्बरः॥५७॥
बभूव वारिधाराभिरैक्यं कुर्वन्दिशामिव। प्ररूढनवपुष्पाढ्या शक्रगोपवृता मही॥५८॥
यथा मारकते वाऽऽसीत्पद्मरागविभूषिता। ऊहुरुन्मार्गगामीनि निम्नगाम्भांसि सर्वतः॥५९॥
मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्त लक्ष्मीं नवामिव।
विकाले च यथाकामं व्रजमेत्य महाबलौ।
गोपैः समानैः सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव॥६०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते वृन्दावनप्रवेशवर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८४।।

कहीं वे दोनों बालक गोपपुत्रगण के साथ गोवत्स समूह को घास चराते विचरते रहते। इस प्रकार काल व्यतीत होने के कारण बलराम तथा दामोदर सात वर्ष के हो गये। जो प्रभु संसार के पालक हैं, वे इस महाव्रज में वत्सपालक बने थे! तत्पश्चात् वर्षा काल समागत होने पर आकाश में मेघ छा गये। जलधारा गिरने से समस्त दिशायें एक प्रतीत होने लगीं। समस्त धरती इन्द्रगोप कीट तथा पुष्पों से आच्छादित हो गई। प्रतीत होने लगा मानों धरती अब मरकतमणि तथा पद्मरागमणि से भूषित हो गई हो। नदी का जल तो इस प्रकार प्रवाहित था, मानों नव लक्ष्मी लाभ से दुर्विनीत लोगों का मन-कुमार्गगामी होकर बह रहा हो। इस समय महाबली राम तथा कृष्ण व्रजमण्डल में अपने समवयस्क गोपगण के साथ देवगण की तरह विहाररत थे।।५६-६०।।

।।चतुरशीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालीय दमन का वर्णन

व्यास उवाच

एकदा तु विना रामं कृष्णो वृन्दावनं ययौ। विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्पस्त्रगुज्ज्वलः॥१॥

स जगामाथ कालिन्दीं लोलकल्लोलशालिनीम्।
तीरसंलग्नफेनौघैर्हसन्तीमिव सर्वतः॥२॥

तस्यां चातिमहाभीमं विषाग्निकणदूषितम्। ह्रदं कालीयनागस्य ददर्शातिविभीषिणम्॥३॥

विषाग्निना विसरता दग्धतीरमहातरुम्। वाताहताम्बुविक्षेपस्पर्शदग्धविहङ्गमम्॥४॥

तमतीव महारौद्रं मृत्युवक्त्रमिवापरम्। विलोक्य चिन्तयामास भगवान्मधुसूदनः॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—एक बार कृष्ण बलराम को लिये बिना वृन्दावन गये। वहां वे पुष्पमाला धारण करके गोपगण सहित विचर रहे थे। तत्पश्चात् कृष्ण कल्लोलशालिनी यमुना तट पर गये। वह तट से लगे जलफेनों के कारण हंसती हुई प्रतीत होती थी। यमुना में ही कालिय नाग के अग्निकणवत् विष से दूषित एक महाभयानक ह्रद था। उसके चारों ओर तैरते विषकणों से तटस्थ तरुसमूह दग्ध हो गये थे। यमुना के ऊपर से उड़ कर जाने वाले पक्षियों पर वायु के आघात से उड़ा एक भी जलकण पड़ जाता, वह वहीं मृत हो जाता था। द्वितीय मृत्यु के समान इस अति महारौद्र ह्रद को देख कर प्रभु कृष्ण चिन्ता करने लगे।।१-५।।

अस्मिन्वसति दुष्टात्मा कालीयोऽसौ विषायुधः।
यो मया निर्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नष्टः पयोनिधौ॥६॥

तेनेयं दूषिता सर्वा यमुना सागरङ्गमा। न नरैर्गोधनैर्वाऽपि तृषार्तैरुपभुज्यते॥७॥

तदस्य नागराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया। नित्यत्रस्ताः सुखं येन चरेयुर्व्रजवासिनः॥८॥

एतदर्थं नृलोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः। यदेषामुत्पथस्थानां कार्या शास्तिर्दुरात्मनाम्॥९॥

तदेतन्नातिदूरस्थं कदम्बमुरुशाखिनम्। अधिरुह्ययोत्पतिष्यामि ह्रदेऽस्मिञ्जीवनाशिनः॥१०॥

कृष्ण ने विचार किया मैंने इस दुष्ट को पराजित करके पूर्वकाल में छोड़ दिया था। तब पहले यह समुद्र में भाग गया था। वह विषरूपी आयुध वाला दुरात्मा कालिय यहां ह्रद में निवास कर रहा है। यह सागरगामिनी यमुना इसके द्वारा दूषित हो रही है। मनुष्य, गौयें, प्यासे प्राणी इस जल का उपभोग नहीं कर पाते। नित्य भयभीत व्रजवासी लोग यहां सुख से विचर सकें, इसके लिये इस नागराज को दण्डित करना ही होगा। इसी कार्य हेतु मैंने मनुष्यलोक में अवतरण किया है। इन कुमार्गगामी दुरात्मा लोगों का मैं निग्रह करूंगा। इस कार्य हेतु मैं दीर्घ शाखा वाले, इस निकटवर्त्ती कदम्ब वृक्ष पर जाकर इस ह्रद में कूद जाऊंगा।।६-१०।।

व्यास उवाच

इत्थं विचिन्त्य बद्ध्वा च गाढं परिकरं ततः। निपपात ह्रदे तत्र सर्पराजस्य वेगतः॥११॥

तेनापि पतता तत्र क्षोभितः स महाह्रदः। अत्यर्थदूरजातांश्च तांश्चासिञ्चन्महीरुहान्॥१२॥
तेऽहिदुष्टविषज्वालातप्ताम्बुतपनोक्षिताः। जज्वलुः पादपाः सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तराः॥१३॥
आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागह्रदं भुजैः। तच्छब्दश्रवणाच्चाथ नागराजोऽभ्युपागमत्॥१४॥
आताम्रनयनः कोपाद्विषज्वालाकुलैः फणैः। वृतो महाविषैश्चान्यैररुणैरनिलाशनैः॥१५॥
नागपत्न्यश्च शतशो हारिहारोपशोभिताः। प्रकम्पिततनूत्क्षेपचलत्कुण्डलकान्तयः॥१६॥

ततः प्रवेष्टितः सर्पैः स कृष्णो भोगबन्धनैः।
ददंशुश्चापि ते कृष्णं विषज्वालाविलैर्मुखैः॥१७॥

तं तत्र पतितं दृष्ट्वा नागभोगनिपीडितम्। गोपा व्रजमुपागत्य चुक्रुशुः शोकलालसाः॥१८॥

व्यासदेव कहते हैं—भगवान् ने इस प्रकार विचार किया। उन्होंने दृढ़ता से अपनी कमर कसा तथा उस वृक्ष पर चढ़ कर वेग से उस सर्पराज वाले ह्रद में कूद पड़े। उनके कूदने पर वह महाह्रद ऐसे क्षुब्ध हो उठा, मानों अत्यन्त दूर से सभी वृक्ष ह्रद में फेंके गये हों। वे वृक्ष उस ह्रद में गिरते ही जल उठे। वह ज्वाला सर्व दिगन्तव्यापी हो उठी। कृष्ण ने तब अपनी भुजाओं द्वारा उस ह्रद को आघात द्वारा प्रक्षुब्ध किया। वह शब्द श्रुतिगोचर होते ही वह नागराज धावमान होकर वहां आया। उसके नेत्र क्रोध से रक्तवर्ण थे। उसके फण जो विषज्वाला से पूर्ण थे, उससे कालिय ने कृष्ण को ढंक सा लिया। अन्य रक्तवर्ण महाविषधर सर्पों ने भी कृष्ण को घेर लिया। वहां सैकड़ों की संख्या में नागपत्नियां भी थीं, जो मनोहर हारावलि से सज्जित थीं तथा जिनके शरीर कम्पन के उत्क्षेप से उनकी कुण्डलकान्ति चञ्चल छवि प्रस्तुत करती थी। वे फणिधर सर्प कृष्ण को घेर कर विषज्वाला व्याप्त दाढ़ से कृष्ण को डसने लगे। उन नागफणों से दंशित तथा ह्रद में गिरे कृष्ण को देखकर गोपगण शोकग्रस्त होकर उच्च स्वर से क्रन्दन करते वहां आकर कहने लगे।।११-१८।।

गोपा ऊचुः

एष कृष्णो गतो मोहमग्नो वै कालिये ह्रदे। भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम्॥१९॥

गोपगण कहते हैं—कृष्ण मोहवश कालियह्रद में कूदे हैं। सर्पराज उनका भक्षण कर लेगा। अतः सब लोग आओ, विलम्ब मत करो।।१९।।

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो गोपा वज्रपातोपमं वचः। गोप्यश्च त्वरिताजग्मुर्यशोदाप्रमुखा ह्रदम्॥२०॥

हा हा क्वासाविति जनो गोपीनामतिविह्वलः।
यशोदया समं भ्रान्तो द्रुतः प्रस्खलितो ययौ॥२१॥

नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः। त्वरितं यमुनां जग्मुः कृष्णदर्शनलालसाः॥२२॥
ददृशुश्चापि ते तत्र सर्पराजवशं गतम्। निष्प्रयत्नं कृतं कृष्णं सर्पभोगेन वेष्टितम्॥२३॥
नन्दगोपश्च निश्चेष्टः पश्यन्पुत्रमुखं भृशम्। यशोदा च महाभागा बभूव मुनिसत्तमाः॥२४॥
गोप्यस्त्वन्या रुदत्यश्च ददृशुः शोककातराः। प्रोचुश्च केशवं प्रीत्या भयकातरगद्गदम्॥२५॥

व्यासदेव कहते हैं—वज्रपात के समान यह वाक्य सुनकर गोपगण तथा यशोदा प्रभृति प्रमुख गोपीगण शीघ्रगामी गति से वहां ह्रद के निकट आये। "हाय, हाय! कृष्ण कहां है?" अति विह्वल गोपियां यह कहते हुये यशोदा सहित भ्रान्तचित्त होकर लड़खड़ाते हुये जाने लगीं। नन्दगोप, अद्भुत विक्रमी राम, अन्य गोपगण कृष्ण के दर्शन की लालसा से त्वरित रूप से यमुना पहुंचे। उन्होंने देखा—कृष्ण उस ह्रद में सर्पराज के वश में हैं। सर्प उनके शरीर पर लिपटे हैं। वे हिलडुल नहीं सकते। हे मुनिप्रवरवृन्द! तब नन्दगोप एवं महाभागा यशोदा पुत्र का मुख देख कर चेष्टा रहित हो गईं। अन्य गोपियां भी शोककातर होकर रोदन करते-करते कृष्ण को देखने लगीं। वे प्रेम के कारण भयकातर गद्‌गद् स्वर से केशव से कहने लगीं।।२०-२५।।

सर्वा यशोदया सार्धं विशामोऽत्र महाह्रदे। नागराजस्य नो गन्तुमस्माकं युज्यते व्रजे॥२६॥

दिवसः को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा।
विना दुग्धेन का गावो विना कृष्णेन को व्रजः।
विना कृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम्॥२७॥

गोपियां कहती हैं—यशोदा सहित हम सभी इस नागराज के ह्रद में प्रवेश करेंगी। हमारा अब व्रजमण्डल जाना उचित नहीं है। सूर्य बिना दिन कहां? चन्द्र बिना रात्रि कहां? दुग्ध बिना गाय व्यर्थ है। उसी प्रकार कृष्ण बिना व्रज क्या? कृष्ण के बिना हम गोकुल नहीं लौटेंगी!।।२६-२७।।

व्यास उवाच

इति गोपीवचः श्रुत्वा रौहिणेयो महाबलः। उवाच गोपान्विधुरान्विलोक्य स्तिमितेक्षणः॥२८॥
नन्दं च दीनमत्यर्थं न्यस्तदृष्टिं सुताननेे। मूर्च्छाकुलां यशोदां च कृष्णमाहात्म्यसंज्ञया॥२९॥

व्यासजी कहते हैं—गोपीगण का कथन सुनकर महाबली रोहिणी पुत्र बलराम ने स्थिर नेत्रों से शोकविह्वल गोपों को दीनभावापन्न होकर पुत्र कृष्ण की ओर नेत्र न्यस्त किये देखा। उन्होंने दीन नन्द को तथा व्याकुल तथा मूर्च्छित यशोदा को देखा। तब वे कृष्ण माहात्म्य का आभास यशोदा को सुनाकर कहने लगे।।२८-२९।।

बलराम उवाच

किमयं देवदेवेश भावोऽयं मानुषस्त्वया।
व्यज्यते स्वं तमात्मानं किमन्यं त्वं न वेत्सि यत्॥३०॥
त्वमस्य जगतो नाभिः सुराणामेव चाऽऽश्रयः।
कर्ताऽपहर्ता पाता च त्रैलोक्यं त्वं त्रयीमयः॥३१॥
अत्रावतीर्णयोः कृष्ण गोपा एव हि बान्धवाः।
गोप्यश्च सीदतः कस्मात्त्वं बन्धून्समुपेक्षसे॥३२॥

दर्शितो मानुषो भावो दर्शितं बालचेष्टितम्। तदयं दम्यतां कृष्ण दुरात्मा दशनायुधः॥३३॥

बलराम कहते हैं—हे देवदेव! तुमने यह क्या मानुष भाव व्यक्त किया है? क्या तुम अपनी आत्मा को

नहीं जानते? तुम ही जगत् की नाभि हो। मनुष्यों के आश्रय हो, तुम ही कर्त्ता, संहर्त्ता तथा पालक हो। तुम त्रैलोक्यमय तथा त्रयीमय हो। हे कृष्ण! यहां अवतीर्ण हम दोनों के ये गोप-गोपगण ही बन्धु हैं। तुम इन बन्धुगण की उपेक्षा क्यों कर रहे हो? मानुष भाव तो तुमने दिखलाया, बालचेष्टा भी दिखला दिया। हे कृष्ण! इस दुरात्मा दशनायुध (डसना ही जिसका आयुध है) का दमन करो।।३०-३३।।

व्यास उवाच

इति संस्मारितः कृष्णः स्मितभिन्नौष्ठसम्पुटः।
आस्फाल्य मोचयामास स्वं देहं भोगबन्धनात्॥३४॥
आनाम्य चापि हस्ताभ्यामुभाभ्यां मध्यमं फणम्। आरूय भुग्नशिरसः प्रननर्तोरुविक्रमः॥३५॥
व्रणाः फणेऽभवंस्तस्य कृष्णस्याङ्घ्रिविकुट्टनैः।
यत्रोन्नतिं च कुरुते ननामास्य ततः शिरः॥३६॥
मूर्च्छामुपाययौ भ्रान्त्या नागः कृष्णस्य कुट्टनैः।
दण्डपातनिपातेन ववाम रुधिरं बहुः॥३७॥
तं निर्भुग्नशिरोग्रीवमास्यप्रस्रुतशोणितम्। विलोक्य शरणं जग्मुस्तत्पत्न्यो मधुसूदनम्॥३८॥

व्यासदेव कहते हैं—बलराम द्वारा इस प्रकार से स्मरण दिलाये जाने पर कृष्ण ने किंचित् मुस्कान के साथ सर्प बन्धन से देह को मुक्त कर लिया। गुरुविक्रमी कृष्ण ने अपनी हथेली से कालिय के मध्यम फण को तनिक नत किया तथा उस अवनत फण पर वे चढ़ कर नृत्यरत हो गये। कृष्ण के पदाघात से उसके फण क्षत-विक्षत होने लगे। वह जिस-जिस फण को ऊपर उठाता, कृष्ण पदाघात से उसे नत करते जाते। यह नाग कृष्ण के पदाघात से भ्रान्त होकर दण्डाकृति में गिर पड़ा। वह रुधिर वमन करने लगा। तदनन्तर मूर्च्छित हो गया। उसकी ग्रीवा तथा शिर को भग्न देखकर तथा मुख से रक्त वमन करते देख कर नागपत्नियां मधुसूदन की शरण में आ गईं।।३४-३८।।

नागपत्न्य ऊचुः

ज्ञातोऽसि देवदेवेश सर्वेशस्त्वमनुत्तम। परं ज्योतिरचिन्त्यं यत्तदंशः परमेश्वरः॥३९॥
न समर्थाः सुर स्तोतुं यमनन्यभवं प्रभुम्। स्वरूपवर्णनं तस्य कथं योषित्करिष्यति॥४०॥
यस्याखिलमहीव्योमजलाग्निपवनात्मकम्। ब्रह्माण्डमल्पकांशांशः स्तोष्यामस्तं कथं वयम्॥४१॥
ततः कुरु जगत्स्वामिन् प्रसादमवसीदतः।
प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षा प्रदीयताम्॥४२॥

नागपत्नियां कहती हैं—हे देवदेवेश! आप अनुत्तम अचिन्त्य परम ज्योतिः के अंश हैं। आप सर्वेश्वर, परमेश्वर कहलाते हैं। स्वयं उत्पन्न जिन प्रभु का स्तव करने में देवता समर्थ नहीं हैं, स्त्रियां उनका स्वरूप दर्शन कैसे करें? पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं व्योमात्मक यह अखिल ब्रह्माण्ड जिनका अत्यल्प अंश है, हम उनका कैसे स्तव करें? हे स्वामी! इस अवसन्न नाग के प्रति प्रसन्न हो जायें। यह नाग प्राण परित्याग करने जा रहा है। हमारे पति को प्राणों की भिक्षा दीजिये।।३९-४२।।

व्यास उवाच

इत्युक्ते ताभिराश्वास्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नगः।
प्रसीद देवदेवेति प्राह वाक्यं शनैः शनैः॥४३॥

व्यासदेव कहते हैं—नागपत्नियों के यह कहने पर वह नाग कालिय धीरे-धीरे कहने लगा—"हे देवदेवेश! प्रसन्न हों"।।४३।।

कालीय उवाच

तवाष्टगुणमैश्वर्यं नाथ स्वाभाविकं परम्।
निरस्तातिशयं यस्य तस्य स्तोष्यामि किन्वहम्॥४४॥
त्वं परस्त्वं परस्याऽऽद्यः परं त्वं तत्परात्मकम्।
परस्मात्परमो यस्त्वं तस्य स्तोष्यामि किन्वहम्॥४५॥
यथाऽहं भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वरः। स्वभावेन च संयुक्तस्तथेदं चेष्टितं मया॥४६॥

कालिय कहता है—हे देवदेवेश! ये अष्ट ऐश्वर्य आपके स्वाभाविक गुण हैं। ऐसे आपकी क्या स्तुति करूं? आप पर हैं, पर से भी आदि हैं, आप ही परमात्मक परमपुरुष भी हैं। आप उससे भी परम हैं। मैं आपका स्तव कैसे कर सकता हूं? हे ईश्वर! मैं आपके द्वारा जिस जाति में, जिस रूप तथा स्वभाव के साथ सृष्ट किया गया हूं, मेरा आचरण भी वैसा ही है।।४४-४६।।

यद्यन्यथा प्रवर्तेय देवदेव ततो मयि। न्याय्यो दण्डनिपातस्ते तवैव वचनं यथा॥४७॥
तथाऽपि यं जगत्स्वामी दण्डं पातितवान्मयि।
स सोढोऽयं वरो दण्डस्त्वत्तो नान्योऽस्तु मे वरः॥४८॥
हतवीर्यो हतविषो दमितोऽहं त्वयाऽच्युत।
जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि किम्॥४९॥

हे देवाधिदेव! मैं यदि उससे अलग आचरण करूं, तब आप मुझे दण्ड दीजिये। तथापि आप जगत् के स्वामी हैं। आप मुझे जो भी दण्ड प्रदान करें, मैं उसे सहन करूंगा। यह दण्ड ही मेरा वर स्वरूप है। मुझे अन्य वर का कोई प्रयोजन नहीं है। हे अच्युत! आपके द्वारा मेरा दमन हुआ है। मैं बलहीन तथा विष रहित हो गया। अब मुझे जीवन दीजिये। आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूं?।।४७-४९।।

श्रीभगवानुवाच

नात्र स्थेयं त्वया सर्प कदाचिद्यमुनाजले। सभृत्यपरिवारस्त्वं समुद्रसलिलं व्रज॥५०॥
मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्धनि सागरे। गरुडः पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति॥५१॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे सर्प! तुम इस यमुना जल में कभी नहीं रहना। तुम भृत्य परिवार के साथ समुद्र जल में जाओ। हे सर्प! सागर में रहने पर भी मस्तकस्थ मेरा चरणचिह्न देखकर सर्पशत्रु गरुड़ तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करेगा।।५०-५१।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सर्पराजानं मुमोच भगवान्हरिः। प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसान्निधिम्॥५२॥
पश्यतां सर्वभूतानां सभृत्यापत्यबान्धवः। समस्तभार्यासहितः परित्यज्य स्वकं ह्रदम्॥५३॥
गते सर्पे परिष्वज्य मृतं पुनरिवाऽऽगतम्। गोपा मूर्धनि गोविन्दं सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः॥५४॥
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमन्ये विस्मितचेतसः। तुष्टुवुर्मुदिता गोपा दृष्ट्वा शिवजलां नदीम्॥५५॥
गीयमानोऽथ गोपीभिश्चरितैश्चारुचेष्टितैः। संस्तूयमानो गोपालैः कृष्णो व्रजमुपागमतः॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कालयीदमननिरूपणं नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८५॥

व्यासदेव कहते हैं—भगवान् हरि ने यह कहकर उस सर्पराज को छोड़ दिया। वह भी सभी प्राणियों के सामने भृत्य, पुत्र, पत्नी, बन्धु आदि सबके साथ उस ह्रद का त्याग करके कृष्ण को प्रणामोपरान्त जलनिधि में चला गया। सर्प को गया देखकर गोपगण पुनर्जीवित से हो गये तथा उन्होंने गोविन्द के मस्तक को अश्रुजल से अभिषिक्त कर दिया। अन्य गोपगण तब विस्मित होकर यमुना को अब विशुद्ध जलयुक्त देखकर मुदित हो गये। वे सभी कृष्णस्तव करने लगे। तत्पश्चात् गोपगण महापराक्रमशाली कृष्ण का स्तव करने लगे। गोपियां उनके सुन्दर चरित का गायन कर रही थीं। गोपगण उनका गुणगान कर रहे थे। कृष्ण अब इस प्रकार पुनः व्रज में आ गये।।५२-५६।।

।।पञ्चाशीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धेनुवध का आख्यान

व्यास उवाच

गाः पालयन्तौ च पुनः सहितौ रामकेशवौ। भ्रममाणौ वने तत्र रम्यं तालवनं गतौ॥१॥
तच्च तालवनं नित्यं धेनुको नाम दानवः।
नृगोमांसकृताहारः सदाऽध्यास्ते खराकृतिः॥२॥
तत्र तालवनं रम्यं फलसम्पत्समन्वितम्। दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपाः फलदानेऽब्रुवन्वचः॥३॥

व्यासदेव कहते हैं—बलराम तथा कृष्ण मिल कर पुनः गोचारणार्थ भ्रमण करते-करते एक बार रमणीय तालवन गये। उस तालवन में नरमांस तथा गोमांस भक्षी गदहे के आकार धेनुक दानव का था। फल सम्पत्ति समन्वित उस तालवन को देख कर गोपगण ने फलार्थ इच्छुक होकर कहा—।।१-३।।

गोपा ऊचुः

हे राम हे कृष्ण सदा धेनुकेनैव रक्ष्यते। भूप्रदेशो यतस्तस्मात्त्यक्तानीमानि सन्ति वै॥४॥
फलानि पश्य तालानां गन्धमोदयुतानि वै। वयमेतान्यभीप्सामः पात्यन्तां यदि रोचते॥५॥

गोप कहते हैं—हे राम, हे कृष्ण! इस भूभाग की रक्षा सदैव धेनुक करता है। यह जनसाधारण को भी ज्ञात है। लोग इन्हें नहीं तोड़ते। यहां तालवन के सभी फल सुगन्धित हैं। हमें वे फल चाहिये। यदि तुम्हारी रुचि हो तब इनको तोड़ो।।४-५।।

इति गोपकुमाराणां श्रुत्वा सङ्कर्षणो वचः। कृष्णश्च पातयामास भुवि तालफलानि वै॥६॥
तालानां पततां शब्दमाकर्ण्यासुरराट्ततः। आजगाम स दुष्टात्मा कोपाद्दैतेयगर्दभः॥७॥
पद्भ्यामुभाभ्यां स तदा पश्चिमाभ्यां च तं बली।
जघानोरसि ताभ्यां च स च तेनाप्यगृह्यत॥८॥
गृहीत्वा भ्रामणेनैव चाम्बरे गतजीवितम्। तस्मिन्नेव प्रचिक्षेप वेगेन तृणराजनि॥९॥
ततः फलान्यनेकानि तालाग्रान्निपतन्खरः। पृथिव्यां पातयामास महावातोऽम्बुदानिव॥१०॥
अन्यानप्यस्य वै ज्ञातीनागतान्दैत्यगर्दभान्। कृष्णश्चिक्षेप तालाग्रे बलभद्रश्च लीलया॥११॥
क्षणेनालङ्कृता पृथ्वी पक्वैस्तालफलैस्तदा। दैत्यगर्दभदेहैश्च मुनयः शुशुभेऽधिकम्॥१२॥
ततो गावो निराबाधास्तस्मिंस्तालवने द्विजाः। नवशष्पं सुखं चेरुर्यत्र भुक्तमभूत्पुरा॥१३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते धेनुकवधवर्णनं नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८६॥

गोप बालकों का वचन सुनकर बलराम तथा कृष्ण भूमि पर तालफलों को गिराने लगे। उन गिराये जा रहे फलों की आवाज सुनकर असुरराज गर्दभ दैत्य धेनुक वहां आ गया। उस बली दैत्य ने पीछे से आकर अपनी दोलत्ती से बलराम पर आघात किया, लेकिन बलराम ने उसको पैरों से पकड़ कर इतना घुमाया कि वह आकाश में ही प्राण रहित हो गया। जब वह गर्दभ का शव ताल के ऊपर से गिरा, तब उसके प्रहार से नाना फल भूपतित हो गये। यह उसी प्रकार हो गया, जैसे महावात बहने पर जल की लहरें उठती हैं। तदनन्तर दैत्य के जो अन्य बन्धु-बान्धव थे, उनको भी कृष्ण-बलराम ने ताल वृक्षों पर फेंक दिया। वह भूभाग क्षणमात्र में पके फलों से भर गया। वहां की भूमि मृत गर्दभरूपी दैत्यों के शव से भर गई। मानों अधिक शोभायमान हो गयी हो। हे द्विजगण! तभी से जहां गौयें दैत्य द्वारा खाई जाती थीं, वह तालवन ऐसा हो गया कि गौयें वहां निर्विघ्नरूपेण नयी घास खाकर विचरने लगीं।।६-१३।।

।।षड्शीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामकृष्ण कृत अनेक लीला वर्णन

व्यास उवाच

तस्मिन्रासभदैतेये सानुजे विनिपातिते। सर्वगोपालगोपीनां रम्यं तालवनं बभौ॥१॥
ततस्तौ जातहर्षौ तु वसुदेवतावुभौ। शुशुभाते महात्मानौ बालशृङ्गाविवर्षभौ॥२॥
चारयन्तौ च गा दूरे व्याहरन्तौ च नामभिः।
नियोगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूषितौ॥३॥

व्यासदेव कहते हैं—यह गर्दभ दैत्य जब अन्य असुरों सहित मृत हो गया, तब वही तालवन समस्त गोपों तथा गोपियों के साथ रमणीय शोभा युक्त हो गया। वीर महात्मा वसुदेव के पुत्रद्वय उक्त घटना से हर्षित होकर छोटे सींग वाले बछड़े की तरह शोभित होने लगे। वे राम तथा कृष्ण वनमाला धारी थे तथा कंधे पर गौओं को चराने हेतु हांकने वाली रस्सी रखते थे। वे उन गायों को नामों से पुकारते तथा दूर ले जाकर गोचारण करते थे।।१-३।।

सुवर्णाञ्जनचूर्णाभ्यां तदा तौ भूषिताम्बरौ। महेन्द्रायुधसङ्काशौ श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ॥४॥
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरितरेतरम्। समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भुवं गतौ॥५॥
मनुष्यधर्माभिरतौ मानयन्तौ मनुष्यताम्। तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम्॥६॥
ततस्त्वान्दोलिकाभिश्च नियुद्धैश्च महाबलौ। व्यायामं चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयैस्तथाऽश्मभिः॥७॥
तल्लिप्सुरसुरस्तत्र उभयो रममाणयोः। आजगाम प्रलम्बाख्यो गोपवेषतिरोहितः॥८॥
सोऽवगाहत निःशङ्कं तेषां मध्यममानुषः। मानुषं रूपमास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः॥९॥
तयोश्छिद्रान्तरप्रेप्सुरतिशीघ्रममन्यत। कृष्णं ततो रौहिणेयं हन्तुं चक्रे मनोरथम्॥१०॥

वे दोनों भ्राता स्वर्ण तथा अंजन चूर्ण से रंजित वस्त्रधारी (पीतवर्ण एवं नीलवर्ण वस्त्र) थे (स्वर्णवर्ण वस्त्र अर्थात् हरिद्रा से रंगे, नीलवर्ण अर्थात् अंजनचूर्ण से रंगे वस्त्र) कृष्ण इस प्रकार इन्द्रधनुष के तुल्य प्रतीत होते थे। बलराम श्वेत मेघ जैसे शोभायमान थे। ये दोनों लोकप्रसिद्ध क्रीड़ा किया करते थे। समस्त लोकनाथों के जो नाथ हैं, वे महाबली कृष्ण तथा बलराम भूतल पर आकर सामान्य मानवों के समान मनुष्यों की ही तरह वन में क्रीड़ारत रहा करते। ये झूला झूलना, बाहुयुद्ध, पत्थर फेंकना आदि खेलों में जो मनुष्य खेलते हैं, निरत रहते थे। एक दिन जब कृष्ण-बलराम खेल रहे थे, तब उनको पकड़ कर ले जाने तथा उनसे प्रतिशोध लेने के विचार से प्रलम्बासुर गोपबालक के वेश में वहां आया। वह यह छिद्र (अवसर) खोजने लगा, जिससे वह उन दोनों का वध कर सके और उसे ऐसा अवसर मिल भी गया।।४-१०।।

हरिणा क्रीडनं नाम बालक्रीडनकं ततः।
प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन्॥११॥

श्रीदाम्ना सह गोविन्दः प्रलम्बेन तथा बलः।
गोपालैरपरैश्चान्ये गोपालाः सह पुप्लुवुः॥१२॥
श्रीदामानं ततः कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः।
जितवान्कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्यैः पराजिताः॥१३॥
ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं भाण्डीरस्कन्धमेत्य वै।
पुनर्निवृत्तास्ते सर्वे ये ये तत्र पराजिताः॥१४॥
सङ्कर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः। न तस्थौ प्रजगामैव सचन्द्र इव वारिदः॥१५॥

उस समय श्रीहरि बालक्रीड़नक क्रीड़ा करने लगे। यह हरिणाक्रीड़न नामक खेल था। इसमें दो-दो बालक साथ दौड़ते थे। गोविन्द हरि श्रीदाम के साथ, बलभद्र गोपवेशधारी प्रलम्ब के साथ, अन्य गोप बालक अपने-अपने साथी के साथ जोड़ी बनाकर दौड़ने लगे। इस खेल में कृष्ण ने श्रीदाम पर तथा बलभद्र ने गोपवेशधारी प्रलम्ब पर विजय पा लिया। जो कृष्ण के पक्ष के बालक थे, उन्होंने विपक्ष के गोपबालकों को जीत लिया। अब नियम यह था कि जो पराजित है, वह विजयी को पीठ पर बैठाकर एक निश्चित वटवृक्ष तक ले जाये तथा पुनः वापस आये। इस अवसर पर प्रलम्बासुर पीठ पर बैठे बलराम को लेकर निश्चित मार्ग पर न दौड़कर अन्य ओर ऐसे दौड़ रहा था, जैसे चन्द्रमा के साथ मेघ (बादल) भागते हैं।।११-१५।।

अशक्तो वहने तस्य सरम्भाद्दानवोत्तमः। ववृक्षे सुमहाकायः प्रावृषीव बलाहकः॥१६॥
सङ्कर्षणस्तु तं दृष्ट्वा दग्धशैलोपमाकृतिम्। स्त्रग्दामलम्बाभरणं मुकुटाटोपमस्तकम्॥१७॥
रौद्रं शकटचक्राक्षं पादन्यासचलत्क्षितिम्। ह्रियमाणस्ततः कृष्णमिदं वचनमब्रवीत्॥१८॥

वह दानवश्रेष्ठ बलभद्र के भार के कारण उनको वहन करने में जब असमर्थ हो गया, तब उसने वर्षाकाल के बादल के समान अपने देह को माया द्वारा अत्यन्त विशाल बना लिया। दग्ध पर्वताकृति, पुष्पमाला तथा आभूषण मण्डित, मस्तक पर मुकुट से शोभायमान, छकड़े के पहिये के समान दो नेत्र वाले तथा अपने कदमों से भूमि को कंपित करने वाले इस दैत्य को देखकर तथा उसके द्वारा स्वयं को अपहृत होता जानकर बलराम ने कृष्ण को पुकारते हुये कहा—।।१६-१८।।

बलराम उवाच

कृष्ण कृष्ण ह्रिये त्वेष पर्वतोदग्रमूर्तिना। केनापि पश्य दैत्येन गोपालच्छद्मरूपिणा॥१९॥
यदत्र साम्प्रतं कार्यं मया मधुनिषूदन। तत्कथ्यतां प्रयात्येष दुरात्माऽतित्वरान्वितः॥२०॥

बलराम कहते हैं—हे कृष्ण, कृष्ण! इस गोपवेशधारी पर्वतवत् उन्नत देह को देखो। हे मधुसूदन! मैं इस दैत्य द्वारा अपहृत होकर ले जाया जा रहा हूं। तब मुझे क्या करना चाहिये? यह दुरात्मा त्वरित गति से भाग रहा है!।।१९-२०।।

व्यास उवाच

तमाह रामं गोविन्दः स्मितभिन्नौष्ठसम्पुटः। महात्मा रौहिणेयस्य बलवीर्यप्रमाणवित्॥२१॥

व्यासदेव कहते हैं—रौहिणेय बलभद्र के बलवीर्य को जानने वाले महात्मा गोविन्द ने उनसे मृदु मुस्कान के साथ कहा—।।२१।।

कृष्ण उवाच

किमयं मानुषो भावो व्यक्तमेवावलम्ब्यते।
सर्वात्मन्सर्वगुह्यानां गुह्याद्गुह्यात्मना त्वया॥२२॥
स्मराशेषजगदीश कारणं कारणाग्रज। आत्मानमेकं तद्वच्च जगत्येकार्णवे च यः॥२३॥
भवानहं च विश्वात्मन्नेकमेव हि कारणम्।
जगतोऽस्य जगत्यर्थे भेदेनाऽऽवां व्यवस्थितौ॥२४॥
तत्स्मर्यताममेयात्मंस्त्वयाऽऽत्मा जहि दानवम्।
मानुष्यमेवमालम्ब्य बन्धूनां क्रियतां हितम्॥२५॥

कृष्ण कहते हैं—हे सर्वात्मा! आप गुह्य से भी गुह्यतम व्यक्त रूप हैं। मनुष्यभाव क्यों अपना रहे हैं? हे अशेष जगत् के ईश्वर! कारणाग्रज! सर्वकारणरूपी अपने अनन्त रूप का स्मरण करिये। हे विश्वात्मा! पूर्वकाल में एकार्णव के समय उसके हम तथा आप एक ही कारण हैं (एक रूप हैं)। संसार के कार्य से हम भेदरूपेण दो रूप से अवस्थान करते हैं। हे अप्रमेय आत्मा! आप अपने रूप का स्मरण करके दानव वध करिये। तब मनुष्य भाव का आलम्बन लेकर बन्धुजन का हित करिये।।२२-२५।।

व्यास उवाच

इति संस्मारितो विप्राः कृष्णेन सुमहात्मना।
विहस्य पीडयामास प्रलम्बं बलवान्बलः॥२६॥
मुष्टिना चाहनद्मूर्ध्नि कोपसंरक्तलोचनः। तेन चास्य प्रहारेण बहिर्याते विलोचने॥२७॥
स निष्कासितमस्तिष्को मुखाच्छोणितमुद्वमन्।
निपपात महीपृष्ठे दैत्यवर्यो ममार च॥२८॥
प्रलम्बं निहतं दृष्ट्वा बलेनाद्भुतकर्मणा।
प्रहृष्टास्तुष्टुवुर्गोपाः साधु साध्विति चाब्रुवन्॥२९॥
संस्तूयमानो रामस्तु गोपैर्दैत्ये निपातिते। प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ॥३०॥

व्यासदेव कहते हैं—हे विप्रवृन्द! जब महात्मा कृष्ण ने इस प्रकार से संकर्षण बलराम को स्मरण दिलाया, तब महाबली बलराम के क्रोध के कारण नेत्र आरक्त हो गये। उन्होंने खेल-खेल में प्रलम्ब को पीड़ित करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने उसके मस्तक पर प्रहार किया। इस प्रकार से उसकी आंखें बाहर उबल पड़ीं। शिरभग्न होकर मुख से रक्त बहने लगा। वह दैत्यप्रवर पृथिवी पर गिर कर मृत हो गया। अद्भुत कर्म करने वाले बलभद्र द्वारा मारा गया देख कर हर्षित गोपगण उनको साधुवाद देने लगे। दैत्यवध के कारण गोपों द्वारा स्तुत होकर कृष्ण एवं बलराम पुनः गोकुल आ गये।।२६-३०।।

व्यास उवाच

तयोर्विहरतोरेवं रामकेशयोर्व्रजे। प्रावृड्व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत्॥३१॥
विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाभ्यागते व्रजम्। ददर्शेन्द्रोत्सवारम्भप्रवृत्तान्व्रजवासिनः॥३२॥
कृष्णस्तानुत्सुकान्दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान्।
कौतूहलादिदं वाक्यं प्राह वृद्धान्महामतिः॥३३॥

व्यासदेव कहते हैं—बलराम तथा केशव के इस प्रकार करते-करते वर्षाकाल बीत गया। विकसित कमलों वाला शरत्काल आ गया। विमल गगन नक्षत्रयुक्त लक्षित होने लगे। शरत्काल आने पर भगवान् केशव ने देखा कि व्रजवासी गोपगण इन्द्रोत्सवार्थ उद्योगरत हैं। महामति कृष्ण ने गोपगण के उत्सवलालसा से भरा देख कर कौतूहल के कारण वहां के वृद्धों से कहा—।।३१-३३।।

कृष्ण उवाच

कोऽयं शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगतः।
प्राह तं नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम्॥३४॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—यह इन्द्रोत्सव क्या होता है? उसके कारण आप लोग इतने हर्षित हैं। नन्दगोप ने इन प्रश्नकर्त्ता कृष्ण से अत्यन्त आदर पूर्वक कहा—।।३४।।

नन्द उवाच

मेघानां पयसामीशो देवराजः शतक्रतुः। येन सञ्चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बुमयं रसम्॥३५॥
तद्वृष्टिजनितं सस्यं वयमन्ये च देहिनः। वर्तयामोपभुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः॥३६॥
क्षीरवत्य इमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृताः।
तेन संवर्धितैः सस्यैः पुष्टास्तुष्टा भवन्ति वै॥३७॥
नासस्या नानृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जनः।
दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहकाः॥३८॥
भौममेतत्पयो गोभिर्धत्ते सूर्यस्य वारिदः। पर्जन्यः सर्वलोकस्य भवाय भुवि वर्षति॥३९॥
तस्मात्प्रावृषि राजानः शक्रं सर्वे मुदान्विताः। महे सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च देहिनः॥४०॥

नन्द कहते हैं—देवराज शतक्रतु इन्द्र मेघजल के राजा हैं। उनके आदेशानुसार मेघगण जलमय रसवर्षा करते हैं। इस वर्षा जनित शस्य के उत्पन्न होने पर हम तथा अन्य सब लोग उद्योग द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। हम देवता लोगों को इस प्रकार तृप्त करते हैं। उनके द्वारा वर्द्धित शस्य द्वारा गायें दुग्धवती, वत्सवती तथा पुष्ट-तुष्ट हो जाती हैं। जहां वृष्टियुक्त बादल दिखलाई देते हैं, वहां लोग ऋण नहीं लेते, वहां शस्य रहित भूमि अथवा भूखे लोग नहीं होते। यह पृथिवी का जल सूर्य किरणों द्वारा बादलों में खींच लिया जाता है, जिसे वे लोकहितार्थ धरती पर वर्षण कर देते हैं। तभी वर्षान्त में (वर्षा समाप्त होकर शरत्काल आने पर) हम सभी प्रसन्न चित्त होकर सुरेश्वर इन्द्र की अर्चना करते हैं।।३५-४०।।

व्यास उवाच

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्थं शक्रपूजने। कोपाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा॥४१॥

व्यासदेव कहते हैं—तब दामोदर ने वृद्ध नन्दगोप का यह वचन सुनकर इन्द्र पूजन के विषय में इन्द्र को कुपित करने हेतु यह वचन कहा—।।४१।।

कृष्ण उवाच

न वयं कृषिकर्तारो वाणिज्याजीविनो न च। गावोऽस्मद्दैवतं तात वयं वनचरा यतः॥४२॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथाऽपरा।
विद्याचतुष्टयं त्वेतद्वार्तामत्र शृणुष्व मे॥४३॥
कृषिर्वणिज्या तद्वच्च तृतीयं पशुपालनम्।
विद्या ह्येता (षा) महाभागा वार्ता वृत्तित्रयाश्रया॥४४॥
कर्षकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं तु पणजीविनाम्।
अस्माकं गाः परा वृत्तिर्वार्ता भेदैरियं त्रिभिः॥४५॥
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं महत्।
सैव पूज्याऽर्चनीया च सैव तस्योपकारिका॥४६॥
योऽन्यास्यः फलमश्नन्वै पूजयत्यपरां नरः।
इह च प्रेत्य चैवासौ तात नाऽऽप्नोति शोभनम्॥४७॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हम कृषक नहीं हैं, वाणिज्यजीवी नहीं हैं। गौ हमारी देवता हैं। इसी कारण हम वनचर हैं। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता तथा दण्डनीति ये चार विद्यायें हैं। इनमें से कृषक वृत्ति, व्यवसाय एवं पशुपालन, ये तीन वृत्तियां वार्त्ता के आश्रित रहती हैं। कर्षकों (किसानों) की वृत्ति कृषि है। व्यवसायी (पण्यजीवी) की वृत्ति है व्यापार तथा हमारी वृत्ति है गौ तथा पशुपालन। ये वार्त्ता के तीन भेद वर्णित हैं। जो व्यक्ति इनमें से जिस विद्या से युक्त है, उसके लिये वही देवता है। वह उसी की पूजा करे। यही उसके लिये उपकारक पूजा है। जो फलप्रद की पूजा छोड़कर अन्य की पूजा करता है, हे तात! इहकाल किंवा परकाल में भी उसका (लोक में-परलोक में) कल्याण नहीं हो सकता।।४२-४७।।

पूज्यन्तां प्रथिताः सीमाः सीमान्तं च पुनर्वनम्।
वनान्ता गिरयः सर्वे सा चास्माकं परा गतिः॥४८॥
गिरियज्ञस्त्वयं तस्माद्गोयज्ञश्च प्रवर्त्यताम्।
किमस्माकं महेन्द्रेण गावः शैलाश्च देवताः॥४९॥

मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीरयज्ञाश्च कर्षकाः। गिरिगोयज्ञशीलाश्च वयमद्रिवनाश्रयाः॥५०॥

तस्माद्गोवर्धनः शैलो भवद्भिर्विविधार्हणैः।
अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यं पशुं हत्वा विधानतः॥५१॥

सर्वघोषस्य सन्दोहा गृह्यन्तां मा विचार्यताम्।
भोज्यन्तां तेन वै विप्रास्तथाऽन्ये चापि वाञ्छकाः॥५२॥
तमर्चितं कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु।
शरत्पुष्पकृतपीडाः परिगच्छन्तु गोगणाः॥५३॥
एतन्मम मतं गोपाः सम्प्रीत्या क्रियते यदि।
ततः कृता भवेत्प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम॥५४॥

अतः इस विस्तृत सीमा, सीमान्त वन एवं वनान्तस्थ पर्वत, इन सबकी पूजा हम करें। यही हमारे लिये परम गति है। इस कारण गिरियज्ञ एवं गोयज्ञ का प्रवर्त्तन हो। महेन्द्र हमारे किस काम के हैं? गौ तथा शैल हमारे देवता हैं। विप्रयज्ञ मन्त्रयज्ञ परायण होते हैं। किसान को हलयज्ञ तथा हम वनेचरों को पर्वतयज्ञ एवं गोयज्ञ प्रयोज्य है। इसलिये आप लोग विविध पूजा उपकरणों द्वारा पवित्र बलि योग्य पशु की बलि देकर सविधि गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करिये। इसका उद्घोष सबसे करें। इसमें विचार करना उचित नहीं है। वहां ब्राह्मणों तथा जिनको भोजन चाहिये, उनको भोजन दीजिये। पर्वत पूजन, होम, ब्राह्मण भोजनोपरान्त गौओं को शरद कालोत्पन्न पुष्पों से सज्जित करिये। यह मेरा मत है कि प्रसन्न हृदय से यह कार्य करने पर गौ, पर्वत प्रसन्न होंगे। मुझे भी सन्तोष लाभ होगा।।४८-५४।।

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते व्रजौकसः।
प्रीत्युत्फुल्लमुखा विप्राः साधु साध्वित्यथाब्रुवन्॥५५॥
शोभनं ते मतं वत्स तदेतद्भवतोदितम्। तत्करिष्याम्यहं सर्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम्॥५६॥
तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञं व्रजौकसः। दधिपायसमांसाद्यैर्ददुः शैलबलिं ततः॥५७॥
द्विजांश्च भोजयामासुः शतशोऽथ सहस्रशः। गावः शैलं ततश्चक्रुरर्चितास्तं प्रदक्षिणम्॥५८॥
वृषभाश्चाभिनर्दन्तः सतोया जलदा इव। गिरिमूर्धनि गोविन्दः शैलोऽहमिति मूर्तिमान्॥५९॥
बुभुजेऽन्नं बहुविधं गोपवर्याहृतं द्विजाः। कृष्णस्तेनैव रूपेण गोपैः सह गिरेः शिरः॥६०॥
अधिरुह्यार्चयामास द्वितीयामात्मनस्तनुम्।
अन्तर्धानं कृते तस्मिन्गोपा लब्ध्वा ततो वरान्।
कृत्वा गिरिमहं गोष्ठं निजमभ्याययुः पुनः॥६१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते गोवर्धनगिरियज्ञप्रवर्तनं नाम सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८७।।

व्यासदेव कहते हैं—यह सुनकर व्रजवासीगण ने तदनुरूप गिरिपर्व प्रवर्त्तित किया। दधि, पायस, मांसादि से शैलबलि वहां दी गई। शत-सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। तदनन्तर समस्त गौयें तथा

मेघवत् गर्जन करने वाले वृषभों ने उस पर्वत की प्रदक्षिणा किया। हे द्विजप्रवरगण! पर्वत पर मूर्त्त होकर गोविन्द ने स्वयं को पर्वत बतलाते हुये गोपों द्वारा अर्पित विविध अन्न भोजन किया। कृष्ण ने वहां मूर्त्तिमान पर्वतराज होकर स्वयं गोपों के साथ अपनी ही उस मूर्त्ति की पूजा किया! जब पूजान्त में वह मूर्त्ति अन्तर्हित् हो गयी, तब गोपगण उत्तम वर प्राप्त करके तथा पर्वतोत्सव सम्पन्न करने के अनन्तर पुनः गोकुल वापस आये।।५५-६१।।

।।सप्तशीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोवर्द्धन आख्यान का वर्णन

व्यास उवाच

महे प्रतिहते शक्रो भृशं कोपसमन्वितः। संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत्॥१॥

व्यासदेव कहते हैं—जब वह इन्द्रोत्सव नष्ट हो गया, तब इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हो गये। उन्होंने संवर्त्तक नामक मेघों से कहा—।।१।।

इन्द्र उवाच

भो भो मेघा निशम्यैतद्वदतो वचनं मम। आज्ञानान्तरमेवाऽसु क्रियतामविचारितम्॥२॥

नन्दगोपः सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैः सहायवान्। कृष्णाश्रयबलाध्मातो महभङ्गमचीकरत्॥३॥

आजीवो यः परं तेषां गोपत्वस्य च कारणम्।
ता गावो वृष्टिपातेन पीड्यन्तां वचनान्मम॥४॥

अहमप्यद्रिशृङ्गाभं तुङ्गमारुह्य वारणम्। साहाय्यं वः करिष्यामि वायूनां सङ्गमेन च॥५॥

देवराज इन्द्र कहते हैं—हे मेघगण! मेरी आज्ञा सुनकर अविलम्ब चित्त से उस कार्य को करो। दुर्बुद्धि नन्दगोप ने अन्य गोपों की सहायता से तथा कृष्ण-बलराम के आश्रय से गर्वित होकर मेरे उत्सव को भंग कर दिया। उनकी जो प्रधान जीविका है तथा जो उनके गोपत्व का प्रधान कारण है, उन गौओं को वर्षा से पीड़ित करो। मैं भी पर्वतशृंग जैसे उत्तुंग हाथी पर बैठकर वसुगणों के साथ तुम्हारी सहायता करूंगा।।२-५।।

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्ताः सुरेन्द्रेण मुमचुस्ते बलाहकाः। वातवर्षं महाभीममभावाय गवां द्विजाः॥६॥

ततः क्षणेन धरणी ककुभोऽम्बरमेव च। एकं धारामहासारपूरणेनाभवद् द्विजाः॥७॥

गावस्तु तेन पतता वर्षवातेन वेगिना। धुताः प्राणाञ्जहुः सर्वास्तिर्यङ्मुखशिरोधराः॥८॥
क्रोडेन वत्सानाक्रम्य तस्थुरन्या द्विजोत्तमाः।
गावो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापराः॥९॥
वत्साश्च दीनवदनाः पवनाकम्पिकन्धराः।
त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दाः कृष्णमूचुरिवाऽऽर्तकाः॥१०॥
ततस्तद्गोकुलं सर्वं गोगोपीगोपसङ्कुलम्। अतीवाऽऽर्तं हरिर्दृष्ट्वा त्राणायाचिन्तयत्तदा॥११॥
एतत्कृतं महेन्द्रेण महभङ्गविरोधिना। तदेतदखिलं गोष्ठं त्रातव्यमधुना मया॥१२॥
इममद्रिमहं वीर्यादुत्पाट्योरुशिलातलम्। धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिवोपरि॥१३॥

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! मेघों ने देवराज से एवंविध आज्ञा पाकर तथा वायु की सहायता लेकर गौओं का अनिष्ट करने हेतु प्रबल वर्षा प्रारम्भ कर दिया। क्षणमात्र में ही पृथिवी, दिक् तथा आकाशमण्डल उस महाधारा वर्षा से आपूरित हो गया। सब एक जैसा प्रतीत होने लगा। उस वेगवान् वर्षापात् से पीड़ित गौयें कांपने लगीं। उन्होंने ग्रीवा तथा कंधों को वक्र करके प्राणत्याग प्रारम्भ कर दिया। हे ब्राह्मणप्रवरवृन्द! कोई-कोई गौ अपने क्रोड़ में अपने बछड़े को ढांक कर खड़ी थी। उस वर्षापात् से न जाने कितनी गौयें बछड़ों के बिना हो गयीं। जिनके कन्धे वायु से कम्पित हो रहे थे तथा दीन मुख बछड़े भी मन्द-मन्द चीत्कार कर रहे थे। मानों उनको यह बोध हो गया था कि हम कृष्ण को इस आर्त्त स्थिति में रक्षा करो! रक्षा करो! कहकर पुकारें। तदनन्तर हरि ने गोपगोपी संकुलित समग्र गोकुल को आर्त्त देख कर उसकी रक्षा हेतु विचार किया कि उत्सव भंग से क्रुद्ध होकर इन्द्र ने ही यह कृत्य किया है, अतः समस्त गोष्ठ की रक्षा करना मेरा ही कार्य है। मैं अपने बल तथा शक्ति द्वारा इस विशाल शिलामय पर्वत को उखाड़ कर विस्तृत छत्रवत् ऊपर धारण करूंगा।।६-१३।।

व्यास उवाच

इति कृत्वा मतिं कृष्णो गोवर्धनमहीधरम्। उत्पाट्यैककरेणैव धारयामास लीलया॥१४॥
गोपांश्चाऽऽह जगन्नाथः समुत्पाटितभूधरः। विशध्वमत्र सहिताः कृतं वर्षनिवारणम्॥१५॥
सुनिर्वातेषु देशेषु यथायोग्यमिहाऽस्यताम्।
प्रविश्य नात्र भेतव्यं गिरिपातस्य निर्भयैः॥१६॥
इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनैः सह। शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चाऽऽसारपीडिताः॥१७॥
कृष्णोऽपि तं दधारैवं शैलमत्यन्तनिश्चलम्। व्रजौकोवासिभिर्हर्षविस्मिताक्षैर्निरीक्षितः॥१८॥
गोपगोपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितेक्षणैः। संस्तूयमानचरितः कृष्णः शैलमधारयत्॥१९॥

व्यासदेव कहते हैं—कृष्ण ने यह निश्चय करके लीला से गोवर्द्धन पर्वत को एक हाथ से उखाड़कर उस हाथ पर उसे धारण कर लिया। जगन्नाथ ने उसे उत्पाटित करके गोपगण से कहा—"तुम निश्चिंत होकर इसमें चले आओ। वर्षा से रक्षा होगी। यहां वायु के झोंके नहीं है। निर्भय होकर आओ। पर्वत पतन की आशंका

मत करो।'' ऐसा कहे जाने पर वे वर्षा से त्रस्त गोप-गोपीगण शकट पर रखे द्रव्यों के साथ तथा गोधन के साथ उसमें प्रविष्ट हो गये। कृष्ण ने अत्यन्त निश्चिन्त होकर अचलरूपेण पर्वत धारण किया था। कृष्ण को व्रजवासी आनन्दोत्फुल्ल एवं विस्मृत दृष्टि से देखे जा रहे थे। गोप-गोपीगण विस्फारित नेत्रों से उनको देखते तथा भगवान् कृष्ण की प्रशंसा उनके चरित्रों का वर्णन किये जा रहे थे। उनके शैलधारणरूप कार्य की भी प्रशंसा उनके द्वारा की जा रही थी।।१४-१९।।

सप्तरात्रं महामेघा ववर्षुर्नन्दगोकुले। इन्द्रेण चोदिता मेघा गोपानां नाशकारिणा॥२०॥
ततो धृते महाशैले परित्राते च गोकुले। मिथ्याप्रतिज्ञो बलभिद्वारयामास तान्घनान्॥२१॥
व्यभ्रे नभसि देवेन्द्रे वितथे शक्रमन्त्रिते। निष्क्रम्य गोकुलं हृष्टः स्वस्थानं पुनरागमत्॥२२॥
मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहागिरिम्।
स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तैर्व्रजवासिभिः॥२३॥

गोपगण के नाशार्थ इन्द्र द्वारा प्रेरित महामेघ सात रात्रि पर्यन्त गोकुल में वर्षा किये जा रहे थे। तथापि इस प्रकार से महाशैल उठाये रहने से गोकुल रक्षित हो गया तथा इन्द्र की गोकुल नाश करने की प्रतिज्ञा व्यर्थ हो गयी। उन्होंने मेघों को वर्षण से रोक दिया। इन्द्र का अभिप्राय नष्ट हो जाने के कारण आकाश निर्मल हो गया। तब प्रसन्न होकर गोकुलवासी स्वस्थान लौट गये। तब श्रीकृष्ण ने भी गोवर्द्धन को यथास्थान स्थापित कर दिया। इसको देख कर सभी व्रजवासी विस्मय के साथ कृष्ण मुखावलोकन करने लगे।।२०-२३।।

व्यास उवाच

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले। रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः॥२४॥
सोऽधिरुह्य महानागमैरावतममित्रजित्। गोवर्धनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशाधिपः॥२५॥
चारयन्तं महावीर्यं गाश्च गोपवपुर्धरम्। कृत्स्नस्य जगतो गोपं वृतं गोपकुमारकैः॥२६॥
गरुडं च ददर्शोच्चैरन्तर्धानगतं द्विजाः। कृतच्छायं हरेर्मूर्ध्नि पक्षाभ्यां पक्षिपुङ्गवम्॥२७॥
अवरुह्य स नागेन्द्रादेकान्ते मधुसूदनम्। शक्रः सस्मितमाहेदं प्रीतिविस्फारितेक्षणः॥२८॥

व्यासदेव कहते हैं—गोवर्द्धन शैल धारण से तथा गोकुल की रक्षा हो जाने पर पाकशासन इन्द्र भी कृष्णदर्शन के अभिलाषी हो गये। वे देवराज महागज ऐरावतारूढ़ होकर गोवर्द्धन पर्वत के पास आये तथा देखते हैं कि समस्त जगत् के रक्षक महावीर कृष्ण गोपों से घिरे गोपवेश धारण किये हुये गोचारण कार्य कर रहे हैं। हे ब्राह्मणों! इन्द्र देखते हैं कि पक्षिप्रवर गरुड़ उच्च नभ में छिपे अन्तर्हित् रहते भगवान् के ऊपर अपने पंखों से छाया भी कर रहे हैं। उस समय एकान्त में हाथी से नीचे उतर कर इन्द्र प्रीति पूर्वक नेत्र विस्फारित करके कृष्ण को देखने लगे। इन्द्र ने मुस्कान के साथ कृष्ण से कहा—।।२४-२८।।

इन्द्र उवाच

कृष्ण कृष्ण शृणुष्वेदं यदर्थमहमागतः। त्वत्समीपं महाबाहो नैतच्चिन्त्यं त्वयाऽन्यथा॥२९॥
भारावतरणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतलम्। अवतीर्णोऽखिलाधारस्त्वमेव परमेश्वर॥३०॥

महभङ्गविरुद्धेन मया गोकुलनाशकाः। समादिष्टा महामेघास्तैश्चैतत्कदनं कृतम्॥३१॥
त्रातास्तापात्त्वया गावः समुत्पाट्य महागिरिम्।
तेनाहं तोषितो वीर कर्मणाऽत्यद्भुतेन ते॥३२॥
साधितं कृष्ण देवानामद्य मन्ये प्रयोजनम्। त्वयाऽयमद्रिप्रवरः करेणैकेन चोद्धृतः॥३३॥
गोभिश्च नोदितः कृष्ण त्वत्समीपमिहाऽऽगतः।
त्वया त्राताभिरत्यर्थं युष्मत्कारणकारणात्॥३४॥
स त्वां कृष्णाभिषेक्ष्यामि गवां वाक्यप्रचोदितः।
उपेन्द्रत्वे गवामिन्द्रो गोविन्दत्वं भविष्यसि॥३५॥

इन्द्र कहते हैं—"हे कृष्ण! मेरे आने का प्रयोजन आप श्रवण करिये। इसे आप अन्य अर्थ में न समझें। आपका अवतार पृथिवी का भार उतारने हेतु है। आप सर्वाधार परमेश्वर हैं। मेरा उत्सव भंग हो जाने के कारण मैंने ही गोकुलनाशार्थ महामेघों को आदेश दिया था। यह अपराध है। आपने महान् पर्वत गोवर्द्धन को उखाड़ कर गौओं की रक्षा कर लिया। हे वीर! आपके इस महाश्चर्यप्रद कार्य से मैं सन्तुष्ट हो गया। मेरा विचार है कि अब देवताओं का प्रयोजन सिद्ध हो गया। आपने एक हाथ से पर्वत को उखाड़ा था तथा धारण किया था। आपके द्वारा रक्षित गौओं की प्रेरणा से मैं यहां आया हूं। गौओं से प्रेरित होकर आज आपका अभिषेक उपेन्द्र पद पर करूंगा। आज से आप गोविन्द अर्थात् गौओं के स्वामी कहे जायेंगे"।।२९-३५।।

अथोपवाह्यादादाय घण्टामैरावताद्गजात्। अभिषेकं तया चक्रे पवित्रजलपूर्णया॥३६॥
क्रियमाणेऽभिषेके तु गावः कृष्णस्य तत्क्षणात्। प्रस्रवोद्भूतदुग्धार्द्रां सद्यश्चक्रुर्वसुन्धराम्॥३७॥
अभिषिच्य गवां वाक्याद्देवेन्द्रो वै जनार्दनम्।
प्रीत्या सप्रश्नयं कृष्णं पुनराह शचीपतिः॥३८॥

इन्द्र ने यह कहने के उपरान्त ऐरावत का घंटा तथा पवित्र जलपूर्ण पात्र लिया तथा उसके द्वारा कृष्ण का अभिषेक कर दिया। तब गौओं ने अपने दुग्ध से पृथिवी को सराबोर कर दिया। गौओं का कथन मानकर इन्द्र ने भगवान् जनार्दन का अभिषेक किया तथा उन्होंने पुनः प्रेम पूर्वक श्रीकृष्ण से कहा—।।३६-३८।।

इन्द्र उवाच

गवामेतत्कृतं वाक्यात्तथाऽन्यदपि मे शृणु। यद्ब्रवीमि महाभाग भारावतरणेच्छया॥३९॥
ममांशः पुरुषव्याघ्रः पृथिव्यां पृथिवीधर।
अवतीर्णोऽर्जुनो नाम स रक्ष्यो भवता सदा॥४०॥
भारावतरणे सख्यं स ते वीरः करिष्यति। स रक्षणीयो भवता यथाऽऽत्मा मधुसूदन॥४१॥

देवराज इन्द्र कहते हैं—गौओं के कथनानुरूप मैंने यह कार्य सम्पन्न कर दिया। अब मेरी अन्य बात श्रवण करिये। हे महाभाग! हे पृथिवीधर! अब मैं पृथिवीभार हरणार्थ कहता हूं। पृथिवी पर मेरा अंश पुरुषसिंह अर्जुन के रूप में अवतीर्ण है। आप सदा उसकी रक्षा करिये। वह वीर आपके पृथिवीभार हरणार्थ सहायक होगा। हे मधुसूदन! आप स्वात्मा द्वारा उसकी रक्षा करिये।।३९-४१।।

श्रीभगवानुवाच

जानामि भारते वंशे जातं पार्थं तवांशतः। तमहं पालयिष्यामि यावदस्मि महीतले॥४२॥

यावन्महीतले शक्र स्थास्यासम्यहमरिन्दम।
न तावदर्जुनं कश्चिद्देवेन्द्र युधि जेष्यति॥४३॥

कंसो नाम महाबाहुर्दैत्योरिष्टस्तथा परः। केशी कुवलयापीडो नरकाद्यास्तथाऽपरे॥४४॥
हतेषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः। तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारावतरणं कृतम्॥४५॥
स त्वं गच्छ न सन्तापं पुत्रार्थे कर्तुमर्हसि। नार्जुनस्य रिपुः कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति॥४६॥

अर्जुनार्थे त्वहं सर्वान्युधिष्ठिरपुरोगमान्।
निवृत्ते भारते युद्धे कुन्त्यै दास्यामि विक्षतान्॥४७॥

श्री भगवान् कहते हैं—मैं भारतवंश में आपके अंश से उत्पन्न पार्थ अर्जुन को जानता हूं। वह जब तक धरती पर रहेगा, तब तक मैं उसका पालन करूंगा। हे शत्रुहन्ता! देवेन्द्र शक्र! मैं जब तक धरती पर रहूंगा, तब तक अर्जुन को कोई युद्ध में जीत ही नहीं सकेगा। महाबाहु कंस नामक दैत्य, अरिष्ट, केशी, कुवलयापीड़ तथा नरकादि का वध हो जाने पर एक महायुद्ध होगा। हे सहस्राक्ष देवेन्द्र! उसी युद्ध से धरती का भारहरण होगा। यह आप जानें। अतः आप जायें। पुत्र हेतु कोई दुःख न करें। मेरे सामने कोई भी शत्रु अर्जुन के सामने नहीं टिकेगा। अर्जुन के कारण मैं महाभारत युद्ध की समाप्ति होने पर युधिष्ठिर सहित सभी भ्राताओं की अक्षत देह कुन्ती को समर्पित करूंगा।।४२-४७।।

व्यास उवाच

इत्युक्तः संपरिष्वज्य देवराजो जनार्दनम्। आरुह्यैरावतं नागं पुनरेव दिवं ययौ॥४८॥
कृष्णोऽपि सहितो गोभिर्गोपालैश्च पुनर्व्रजम्। आजगामाथ गोपीनां दृष्टपूतेन वर्त्मना॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते गोविन्दाभिषेकवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८८॥

व्यासदेव कहते हैं—देवराज ने यह कृष्ण द्वारा कहे जाने पर जनार्दन का आलिंगन किया तथा ऐरावत हाथी पर बैठ कर पुनः द्युलोक चले गये। कृष्ण भी गौओं तथा गोपालों के साथ गोपियों के द्वारा दृष्टि से पवित्र किये गये पथ से पुनः व्रजधाम चले गये।।४८-४९।।

।।अष्टाशीत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अरिष्टवध निरूपण

व्यास उवाच

गते शक्रे तु गोपालाः कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
ऊचुः प्रीत्या धृतं दृष्ट्वा तेन गोवर्धनाचलम्॥१॥

व्यासदेव कहते हैं—इन्द्र के स्वर्गलोक गमन के उपरान्त गोवर्द्धन गिरि धारण किये बिना कष्ट के कर्म करने वाले कृष्ण से प्रेम पूर्वक गोपालकों ने कहा—।।१।।

गोपा ऊचुः

वयमस्मान्महाभाग भवता महतो भयात्। गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा॥२॥
बालक्रीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम्। दिव्यं च कर्म भवतः किमेतत्तात कथ्यताम्॥३॥
कालियो दमितस्तोये प्रलम्बो विनिपातितः। धृतो गोवर्धनश्चायं शङ्कितानि मनांसि नः॥४॥
सत्यं सत्यं हरेः पादौ श्रयामोऽमितविक्रम।
यथा त्वद्वीर्यमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम्॥५॥

गोपालकगण कहते हैं—हे महाभाग! तुम्हारे गिरिधारण कर्म के कारण हम तथा गौयें त्राण पा गये। अन्यथा यह महाभय उपस्थित था। यह अतुलित बालक्रीड़ा, यह जुगुप्सित गोपालत्व तथा दिव्य ऐसे कर्म, इसका क्या रहस्य है, तुम हमें बतलाओ। हे तात! तुमने जल में उतरते ही कालिय दमन किया, तत्पश्चात् प्रलम्ब असुर का वध किया। तुमने गोवर्द्धन पर्वत को उठाया। यही सब हमारे मन को शंकित कर रहा है। हे अमित विक्रम! यह हमारा सत्य कथन है कि हमारे आश्रय हरि चरण ही हैं। तुम्हारी ऐसी शक्ति देखकर हम तुमको मनुष्य नहीं मान सकते।।२-५।।

देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा।
किं चास्माकं विचारेण बान्धवोऽस्ति नमोऽस्तु ते॥६॥
प्रीतिः सस्त्रीकुमारस्य व्रजस्य तव केशव। कर्म चेदमशक्यं यत्समस्तैस्त्रिदशैरपि॥७॥
बालत्वं चातिवीर्यं च जन्म चास्मास्वशोभनम्।
चिन्त्यमानममेयात्मञ्शङ्कां कृष्ण प्रयच्छति॥८॥

तुम देव हो, दानव, यक्ष, गन्धर्व क्या हो? यह हम विचार करते रहते हैं। तथापि तुम हमारे बन्धु हो, अतः तुमको नमस्कार! हे केशव! तुम व्रज की स्त्रियों तथा कुमारों को प्रिय हो। तुम्हारे द्वारा किये गये उन कार्यों को देवता भी नहीं कर सकते। तुम्हारे द्वारा ऐसे असंभव कर्म किया जाना एक ओर दूसरी ओर तुम्हारा बालत्व! ऊपर से हमारे जैसे अयोग्य कुल में तुम्हारा जन्म! हे अमेयात्मा कृष्ण! यह सब सोच कर हमारे मन में शंका आ गयी है!।।६-८।।

व्यास उवाच

क्षणं भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किञ्चित्प्रणयकोपवान्।
इत्येवमुक्तस्तैर्गोपैराह कृष्णो द्विजोत्तमाः॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजप्रवरगण! गोपों के यह कहने पर कृष्ण कतिपय क्षण मौन रहकर पुनः किंचित् प्रणय कोप के साथ कहने लगे।।९।।

श्रीकृष्ण उवाच

मत्सम्बन्धेन वो गोपा यदि लज्जा न जायते।
श्लाघ्यो वाऽहं ततः किं वो विचारेण प्रयोजनम्॥१०॥
यदि वोऽस्ति मयि प्रीतिः श्लाघ्योऽहं भवतां यदि।
तदर्हा बन्धुसदृशी बान्धवाः क्रियतां मयि॥११॥
नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः।
अहं वो बान्धवो जातो नातश्चिन्त्यमतोऽन्यथा॥१२॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे गोपगण! यदि मेरे साथ सम्बन्ध होने के कारण तुम लोगों को लज्जा न हो, तब तुम लोगों को मेरे बारे में इतना विचार करने की क्या आवश्यकता? मैं देवता, गन्धर्व, यक्ष, दानव नहीं हूं। मैं तो तुम्हारा बन्धु मात्र हूं। इसको अन्य रूप से मत सोचो!।।१०-१२।।

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं बद्धमौनास्ततो बलम्। ययुर्गोपा महाभागास्तस्मिन्प्रणयकोपिनि॥१३॥
कृष्णस्तु विमलव्योमशरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम्। तथा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम्॥१४॥
वनराजीं तथा कूजद्भृङ्गमालामनोरमाम्। विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति॥१५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे महाभागगण! हरि का यह कथन सुनकर सभी गोपालक मौन हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने कृष्ण को प्रणयकोप समन्वित जानकर उनके समीप आगमन किया। कृष्ण ने उस विमल आकाश, शरच्चन्द्र की चन्द्रिका, ऐसी उत्फुल्ल (खिली) कमलिनी, जिसकी गन्ध से दिग्दिगन्त आमोदित हो रहा था तथा भृंग के कूजन से मनोहरा वनराजि को देख कर गोपियों के साथ रति की इच्छा किया।।१३-१५।।

सह रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम्। जगौ कमलपादोऽसौ नाम तत्र कृतव्रतः॥१६॥
रम्यं गीतध्वनिं श्रुत्वा सन्त्यज्यावसथांस्तदा।
आजग्मुस्त्वरिता गोप्यो यत्राऽऽस्ते मधुसूदनः॥१७॥

संगीत में सुशिक्षित कमल जैसे तलवों वाले कृष्ण तथा राम ने एक साथ मिलकर वहां अतीव मधुर स्वर से स्त्रियों को प्रिय लगने वाला गायन प्रारम्भ कर दिया था। गोपियां उस रम्य गीतध्वनि को सुनकर अपना-अपना आवास त्याग कर त्वरित गति से वहां आईं जहां कृष्ण अवस्थित थे।।१६-१७।।

शनैः शनैःर्जगौ गोपी काचित्तस्य पदानुगा।
दत्तावधाना काचिच्च तमेव मनसाऽस्मरत्॥१८॥
काचित्कृष्णेति कृष्णेति चोक्त्वा लज्जामुपाययौ।
ययौ च काचित्प्रेमान्धा तत्पार्श्वमविलज्जिता॥१९॥
काचिदावसथस्यान्तः स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम्।
तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना॥२०॥

वहां कोई गोपी कृष्ण के स्वर से स्वर मिलाकर गायन करने लगी। कोई हा कृष्ण! हा कृष्ण! पुकारती प्रेमान्ध तथा लज्जिता हो गई। कोई प्रेमान्ध होकर उनके निकट आने लगी। कोई घर के बाहर निकलने पर वहां गुरुजनों को उपस्थित देख कर वहीं नेत्र बन्द किये तन्मयता के साथ गोविन्द का ध्यान करने लगी।।१८-२०।।

गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम्। मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः॥२१॥
गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टाभ्यायत्तमूर्तयः। अन्यदेशगते कृष्णे चेरुर्वृन्दावनान्तरम्॥२२॥
बभ्रमुस्तास्ततो गोप्यः कृष्णदर्शनलालसाः।
कृष्णस्य चरणं रात्रौ दृष्ट्वा वृन्दावने द्विजाः॥२३॥

उस समय रास प्रारम्भ करने की इच्छा से गोविन्द ने भी गोपीजन से घिरे हुये होकर इस शरद चन्द्रमयी रात्रि को ही उचित समझा। कृष्ण एक बार वहां से अन्य स्थान पर चले गये। उस समय कृष्ण की चेष्टा (लीला) से उनके ही वश में हो गई गोपियां दलबद्ध होकर वृन्दावन में तथा बाहर उनको खोजती विचरण करने लगीं। हे द्विजगण! तदनन्तर कृष्णदर्शन की लालसा से विचरती उन गोपियों ने उस रात्रि में कृष्ण का चिह्न देखा।।२१-२३।।

एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासु च।
गोप्यो व्यग्राः समं चेरू रम्यं वृन्दावनं वनम्॥२४॥
निवृत्तास्तास्ततो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने। यमुनातीरमागम्य जगुस्तच्चरितं द्विजाः॥२५॥

इस तरह कृष्ण की नाना प्रकार की चेष्टा देख कर गोपियां उस रम्य वृन्दावन में व्यग्रता के साथ विचरण करके अन्ततः कृष्णदर्शन के सम्बन्ध में निराश होकर यमुना तट पर पहुंचीं। हे द्विजगण! वहां वे कृष्ण के चरित्र का गायन करने लगीं।।२४-२५।।

ततो ददृशुरायान्तं विकाशि मुखपङ्कजम्।
गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तारं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्॥२६॥
काचिदालोक्य गोविन्दमायान्तमतिहर्षिता।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राहोत्फुल्लविलोचना॥२७॥
काचिद्भ्रूभङ्गुरं कृत्वा ललाटफलकं हरिम्।
विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्यां पपौ तन्मुखपङ्कजम्॥२८॥

तदनन्तर गोपीगण देखती हैं कि विकसित कमल के समान मुख वाले, अद्भुत कर्मा त्रैलोक्य रक्षक श्रीकृष्ण चले आ रहे हैं। गोविन्द को आते देखकर कोई गोपी अत्यधिक हर्ष के कारण विकसित हो गये नेत्रों के साथ कृष्ण-कृष्ण कहने लगी। कोई गोपी उन हरि के भ्रूभङ्गभङ्गुर ललाट फलक को देख कर अपने नेत्ररूपी भृंग से उनके मुखकमल का मानों पान करने लगीं!।।२६-२८।।

काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलितविलोचना।
तस्यैव रूपं ध्यायन्ती योगारूढेव सा बभौ॥२९॥

ततः काश्चित्प्रियालापैः काश्चिद्भ्रूभङ्गवीक्षितैः। निन्येऽनुनयमन्याश्च करस्पर्शेन माधवः॥३०॥
ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिः सह सादरम्। रराम रासगोष्ठीभिरुदारचरितो हरिः॥३१॥
रासमण्डलबद्धोऽपि कृष्णपार्श्वमनूद्गता। गोपीजनो न चैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना॥३२॥
हस्ते प्रगृह्य चैकैकां गोपिकां रासमण्डलम्। चकार च करस्पर्शनिमीलितदृशं हरिः॥३३॥
ततः प्रववृते रम्या चलद्वलयनिस्वनैः। अनुयातशरत्काव्यगेयगीतिरनुक्रमाम्॥३४॥

कृष्णः शरच्चन्द्रमसं कौमुदीकुमुदाकरम्।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः॥३५॥

परिवृत्ता श्रमेणैका चलद्वलयतापिनी। ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधुविघातिनः॥३६॥

कोई गोपी गोविन्द को देख अपने नेत्र बन्द करके उनका योगारूढ़ योगी की तरह ध्यान करने लगी। अब माधव किसी गोपी से प्रिय-वार्त्तालाप करने लगे। किसी को भ्रू-भंगी से देखने लगे तथा किसी का अपने हाथों से स्पर्श करने लगे। इस प्रकार माधव ने उन गोपियों को पुनः मान-मनौव्वल से मना लिया था। इसके अनन्तर उदारचेता हरि सादर इन प्रसन्न मन वाली गोपीवृन्द के साथ रासगोष्ठी में रमणपरायण हो गये। ये गोपियां रासमण्डल में मिलित होकर कृष्ण के पार्श्व में अवस्थित होने की इच्छा से किसी एक स्थान में स्थिर नहीं हो पा रही थीं। श्रीहरि एक-एक गोपी का हाथ से स्पर्श करते। इस करस्पर्श के सुख से आत्मविभोर अपने नेत्र बन्द करती हुई एक-एक गोपियों का हाथ पकड़ कर कृष्ण रासलीला करते। रासरता गोपियों के चंचल वलय-कंकण के शब्द अत्यन्त मनोहारी प्रतीत होते थे। वे गोपियां तब शरद ऋतुकालीन काव्य गीतों का गायन करने लगतीं। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण कौमुदी-कुमुदाकर शरद् चन्द्र का वर्णनात्मक गायन करते। कोई गोपी पुनः-पुनः कृष्णनाम कीर्त्तन करने लगती। कोई गोपी श्रम से थक कर चंचल वलय (कंकणों) से पीड़ा तथा श्रम का अनुभव करके अपनी बाहुलता मधुघाती (मधुराक्षस हन्ता) कृष्ण के कंधों पर रख देती!।।२९-३६।।

काचित्प्रविलसद्बाहु परिरभ्य चुचुम्ब तम्। गोपी गीतस्तुतिव्याजनिपुणा मधुसूदनम्॥३७॥

गीत स्तुति में निपुणा किसी गोपी ने गीत गायन आदि के बहाने से मधुसूदन को बाहुपाश में आबद्ध करके उनका चुम्बन कर लिया।।३७।।

गोपीकपोलसंश्लेषमभिपद्य हरेर्भुजौ। पुलकोद्गमशस्याय स्वेदाम्बुघनतां गतौ॥३८॥
रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतध्वनिः। साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुणं जगुः॥३९॥
गतेऽनुगमनं चक्रुर्वलने सम्मुखं ययुः। प्रतिलोमानुलोमेन भेजुर्गोपाङ्गना हरिम्॥४०॥

स तदा सह गोपीभी रराम मधुसूदनः। स वर्षकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाऽभवत्॥४१॥

ता वार्यमाणाः पितृभिः पतिभिर्भ्रातृभिस्तथा।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः॥४२॥

सोऽपि कैशोरकवया मानयन्मधुसूदनः। रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः॥४३॥

तद्भर्तृषु तथा तासु सर्वभूतेषु चेश्वरः। आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्याप्य सर्वमवस्थितः॥४४॥

यथा समस्तभूतेषु नभोऽग्निः पृथिवी जलम्।
वायुश्चाऽऽत्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वमवस्थितः॥४५॥

इस गोपी के कपोलों के स्पर्श से हरि के दोनों बाहु पुलकित हो उठे। उनसे स्वेद बिन्दु टपकने लगे। क्रमशः कृष्ण जब तार स्वर में रासगीत गायन करने लगते, तब गोपियां भी कृष्ण को वाहवाही देने लगतीं। तब कृष्ण और भी उच्च स्वर में गायनरत हो जाते। वे गोपियां कृष्ण के चलने पर उनका अनुगमन करतीं। कृष्ण जब कभी मुंह फेर लेते, तब वे भी घूम कर उनके मुख के सम्मुख आ जातीं। एवंविध वे गोपियां प्रतिलोम-अनुलोम रूप से कृष्ण से रासलीला में केलि करती जा रही थीं। वे प्रभु माधव गोपीगण के साथ रमणरत रहते थे। कृष्ण के अभाव का एक क्षण भी गोपियों को करोड़ों वर्ष जैसा अनुभूत होने लगता था। वे गोपियां रतिप्रिया थीं। उनके पिता, पति, भ्राता, आदि चाहे जितना रोकते, वे प्रति रात्रि कृष्ण के साथ विहाररत हो जातीं। अहित का क्षय करने वाले, अमेयात्मा, किशोर वय वाले केशव भी ससम्मान उन गोपियों के साथ रात्रिकालीन विहार करते थे। वे ईश्वर श्रीकृष्ण ही उनके पतियों में समस्त प्राणीगण में आत्मस्वरूप से अवस्थित थे। आकाश, अग्नि, जल, पृथिवी तथा वायु जिस प्रकार से सबमें व्याप्त हैं, उसी प्रकार कृष्ण भी इन सबमें व्याप्त रहते हैं।।३८-४५।।

व्यास उवाच

प्रदोषार्धे कदाचित्तु रासासक्ते जनार्दने। त्रासयन्समदो गोष्ठानरिष्टः समुपागतः॥४६॥

सतोयतोयदाकारस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः। खुराग्रपातैरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम्॥४७॥

लेलिहानः सनिष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः।
संरम्भाक्षिप्तलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः॥४८॥

उदग्रककुदाभोगः प्रमाणाद्दुरतिक्रमः। विण्मूत्रालिप्तपृष्ठाङ्गो गवामुद्वेगकारकः॥४९॥

प्रलम्बकण्ठोऽभिमुखस्तरुघाताङ्किताननः। पातयन्स गवां गर्भान्दैत्यो वृषभरूपधृक्॥५०॥

व्यासदेव कहते हैं—एक बार अर्द्धरात्रि में जनार्दन देव के रास में आसक्त रहते एक मदान्ध दैत्य अरिष्टासुर गोष्ठ में त्रास उत्पन्न करता वहां पहुंचा। (वह वृषभरूपी था) उसका आकार जलयुक्त मेघों जैसा था। उसके दोनों सींग नुकीले थे। नेत्र सूर्यवत् चमकने वाले थे। उसके खुरों के अग्रभाग के भूमि पर पटके जाने से धरणीतल विदीर्ण सा होता जा रहा था। वह अपनी जिह्वा से ओठों को चाट रहा था, जिससे चाटने का शब्द भी हो रहा था। वह क्रोध के कारण अपनी पूंछ बारम्बार फटकार रहा था। उसका स्कन्ध प्रदेश कपिलवर्ण कसा हुआ था। ककुद असामान्य आकार का था। उसकी पीठ उसके मल-मूत्र से लिप्त थी। वह असुर गौओं को

उद्वेगमय किये जा रहा था। उसका कण्ठ लम्बायमान था। मुख पर ऐसे चिह्न थे, जो वृक्षों पर उसके द्वारा आघात किये जाने के कारण उभर आये थे। वह वृषभरूपी दैत्य (अपने भय से) गौओं के गर्भ को स्खलित करा रहा था।।४८-५०।।

सूदयंस्तरसा सर्वान्वनान्यटति यः सदा। ततस्तमतिघोराक्षमवेक्ष्यातिभयातुराः।।५१।।
गोपा गोपस्त्रियश्चैव कृष्णकृष्णेति चुक्रुशुः। सिंहनादं ततश्चक्रे तलशब्दं च केशवः।।५२।।
तच्छब्दश्रवणाच्चासौ दामोदरमुखं ययौ। अग्रन्यस्तविषाणाग्रः कृष्णकुक्षिकृतेक्षणः।।५३।।
अभ्यधावत दुष्टात्मा दैत्यो वृषभरूपधृक्।
आयान्तं दैत्यवृषभं दृष्ट्वा कृष्णो महाबलम्।।५४।।
न चचाल ततः स्थानादवज्ञास्मितलीलया। आसन्नं चैव जग्राह ग्राहवन्मधुसूदनः।।५५।।
जघान जानुना कुक्षौ विषाणग्रहणाचलम्।
तस्य दर्पबलं हत्वा गृहीतस्य विषाणयोः।।५६।।
आपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम्। उत्पाट्य शृङ्गमेकं च तेनैवाताडयत्ततः।।५७।।
ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्वमन्। तुष्टुवुर्निहते तस्मिन्गोपा दैत्ये जनार्दनम्।
जम्भे हते सहस्राक्षं पुरा देवगणा यथा।।५८।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरितेऽरिष्टवध-निरूपणं नामोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८९।।

वह इतना वेगवान था कि उसके दौड़ने से वहां का वन नष्ट हो रहा था। उसके भयानक नेत्रों का अवलोकन करके गोप-गोपियां भयातुर होकर कृष्ण-कृष्ण पुकारने लगे। यह सुनकर केशव ने ताली का शब्द तथा सिंहनाद किया। वह शब्द सुनकर दैत्य दामोदर की ओर दौड़ पड़ा। वह वृषभरूपी दुरात्मा दैत्य अपने नुकीले सींगों को सामने करके उनके द्वारा कृष्ण की कोख को निशाना बनाते उनकी ओर दौड़ पड़ा। कृष्ण उस महाबली दैत्य को अपनी ओर आते देख कर उसकी अवहेलना करते हुये सिक्त मुस्कान के साथ अपने स्थान पर ही खड़े रह गये। समीप आने पर कृष्ण ने उसके सींगों को ऐसे पकड़ा जैसे ग्राह प्राणियों को पकड़ता है। उन्होंने अपने घुटने का प्रहार उसकी कुक्षि पर किया। तदनन्तर सींगों के पकड़े रहने से उसके बल दर्प को कृष्ण ने नष्ट कर दिया। उन्होंने उस दैत्य के कण्ठ को उसी तरह से मरोड़ा, जैसे लोग गीले कपड़े को निचोड़ देते हैं। कृष्ण उसके एक सींग को उखाड़ कर उसी से उस पर प्रहार करने लगे। वह दैत्य मुख से रक्त वमन करता मृत हो गया। जनार्दन द्वारा उस दैत्य को निहत कर दिये जाने से गोपगण सन्तुष्ट हो गये। तब दैत्यों ने कृष्ण की स्तुति उसी प्रकार से किया जैसे जंभासुर का वध किये जाने के कारण इन्द्र की स्तुति देवगण द्वारा की गयी थी।।५१-५८।।

।।एकोनवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

केशी वध का वर्णन

व्यास उवाच

ककुद्मिनी हतेऽरिष्टे धेनुके च निपातिते। प्रलम्बे निधनं नीते धृते गोवर्धनाचले॥१॥
दमिते कालिये नागे भग्ने तुङ्गद्रुमद्वये। हतायां पूतनायां च शकटे परिवर्तिते॥२॥
कंसाय नारदः प्राह यथावृत्तमनुक्रमात्। यशोदादेवकीगर्भपरिवर्ताद्यशेषतः॥३॥
श्रुत्वा तत्सकलं कंसो नारदाद्देवदर्शनात्। वसुदेवं प्रति तदा कोपं चक्रे स दुर्मतिः॥४॥
सोऽतिकोपादुपालभ्य सर्वयादवसंसदि। जगर्हे यादवांश्चापि कार्यं चैतदचिन्तयत्॥५॥
यावन्न बलमारूढौ बलकृष्णौ सुबालकौ। तावदेव मया वध्यावसाध्यौ रूढयौवनौ॥६॥

व्यासदेव कहते हैं—कृष्ण द्वारा ककुद्मान, अरिष्ट, धेनुक, प्रलम्ब का वध, गोवर्द्धन धारण, कालिय दमन, अत्यन्त ऊंचे यमलार्जुन वृक्षों का भग्न, पूतना वध तथा शकट उलटना, यह सब विवरण नारद ने कंस से कहा। उन्होंने देवकी के गर्भ परिवर्त्तनादि का भी संवाद कंस से यथायथ रूप से कह दिया। देवदर्शन नारद से यह सब सुनकर दुर्मति कंस वसुदेव से क्रुद्ध हो उठा। वह अत्यन्त कुपित हो गया और समस्त यादवों की सभा में वसुदेव की निन्दा करते हुये यादवों को भी अनेक प्रकार से गाली-गलौज देने लगा। अब उसने अपना यह कर्त्तव्य निर्धारित किया कि जब तक बलराम-कृष्ण बालक हैं तथा बलवान् नहीं हो जाते, तब तक उनकी बाल्यावस्था के रहते ही उनका वध आवश्यक है। उनके युवक हो जाने पर यह कार्य असाध्य हो जायेगा।।१-६।।

चाणूरोऽत्र महावीर्यो मुष्टिकश्च महाबलः। एताभ्यां मल्लयुद्धे तौ घातयिष्यामि दुर्मदौ॥७॥
धनुर्महमहायागव्याजेनाऽऽनीय तौ व्रजात्। तथा तथा करिष्यामि यास्यतः संक्षयं तथा॥८॥

यहां महापराक्रमी चाणूर तथा महाबली मुष्टिक है। इनके द्वारा मल्लयुद्ध में उन दोनों दुरात्मा बलराम-कृष्ण का वध करा दूंगा। धनुर्यज्ञ के महोत्सव के बहाने उनको व्रज से यहां बुला कर उनका वध कराने का उपक्रम करूंगा।।७-८।।

व्यास उवाच

इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कंसो रामजनार्दनौ। हन्तुं कृतमतिर्वीरक्रूरं वाक्यमब्रवीत्॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—उस दुष्टात्मा कंस ने राम-जनार्दन का हनन कराने हेतु यह विचार करने के उपरान्त वीर अक्रूर से कहा—।।९।।

कंस उवाच

भो भो दानपते वाक्यं क्रियतां प्रीतये मम।
इतः स्यन्दमारुह्य गम्यतां नन्दगोकुलम्॥१०॥

वसुदेवसुतौ तत्र विष्णोरंशसमुद्भवौ। नाशाय किल सम्भूतौ मम दुष्टौ प्रवर्धतः॥११॥
धनुर्महमहायागश्चतुर्दश्यां भविष्यति। आनेयौ भवता तौ तु मल्लयुद्धाय तत्र वै॥१२॥

चाणूरमुष्टिकौ मल्लौ नियुद्धकुशलौ मम।
ताभ्यां सहानयोर्युद्धं सर्वलोकोऽत्र पश्यतु॥१३॥

नागः कुवलयापीडो महामात्रप्रचोदितः। स तौ निहंस्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिशू॥१४॥
तौ हत्वा वसुदेवं च नन्दगोपं च दुर्मतिम्। हनिष्ये पितरं चैव उग्रसेनं च दुर्मतिम्॥१५॥

ततः समस्तगोपानां गोधनान्यखिलान्यहम्।
वित्तं चापहरिष्यामि दुष्टानां मद्वधैषिणाम्॥१६॥

कंस कहता है—हे दानियों के स्वामी! मेरी प्रसन्नतार्थ यह कार्य करिये। रथ पर बैठ कर नन्दगोकुल जाकर वहां जाईये, जहां मेरे नाशार्थ विष्णु के अंश से उत्पन्न वसुदेव के दोनों पुत्र हैं। वे दुष्ट क्रमशः बढ़ रहे हैं। आगामी चतुर्दशी के दिन धनुर्यज्ञ उत्सव होगा। मल्लयुद्धार्थ इस यज्ञ में आप उनको लाईये। मेरे चाणूर तथा मुष्टिक मल्लद्वय बाहुयुद्ध में कुशल हैं। उनके साथ इनका युद्ध सभी लोकवासी देखें। मेरा वह कुवलयापीड़ गज महावत से प्रेरित होकर वसुदेवपुत्र उन पापी दोनों बालकों को मारेगा। उनका वध करके तत्पश्चात् दुर्मति वसुदेव नन्दगोप की तथा अपने पिता दुष्ट उग्रसेन का भी वध करूंगा। तदनन्तर मेरे वध की इच्छा रखने वाले गोपों का समस्त गोधन एवं धन का अपहरण कर लूंगा।।१०-१६।।

त्वामृते यादवाश्चेमे दुष्टा दानपते मम। एतेषां च वधायाहं प्रयतिष्याम्यनुक्रमात्॥१७॥

ततो निष्कण्टकं सर्वं राज्यमेतदयादवम्।
प्रसाधिष्ये त्वया तस्मान्मत्प्रीत्या वीर गम्यताम्॥१८॥
यथा च माहिषं सर्पिर्दधि चाप्युपहार्यं वै।
गोपाः समानयन्त्याशु त्वया वाच्यास्तथा तथा॥१९॥

तत्पश्चात् आपके अतिरिक्त समस्त (गोकुलवासी) यादवों के वध का उपक्रम करूंगा। तब समग्र राज्य का शासन आपकी सहायता से निष्कण्टक होकर कर सकूंगा। हे वीर! मेरी प्रसन्नतार्थ आप जायें। वे गोप शीघ्र भेंट स्वरूप भैसों का घृत तथा दधि लेकर आयें, आप उनसे ऐसा कहिये।।१७-१९।।

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तस्तदाऽक्रूरो महाभागवतो द्विजाः। प्रीतिमानभवत्कृष्णं श्वो द्रक्ष्यामीति सत्वरः॥२०॥
तथेत्युक्त्वा तु राजानं रथमारुह्य सत्वरः। निश्चक्राम तदा पुर्या मथुराया मधुप्रियः॥२१॥
केशी चापि बलोदग्रः कंसदूतः प्रचोदितः। कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी वृन्दावनमुपागमत्॥२२॥
सखुरक्षतभूपृष्ठः सटाक्षेपधुताम्बुदः। पुनर्विक्रान्तचन्द्रार्कमार्गो गोपान्तमागमत्॥२३॥

तस्य ह्रेषितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः।
गोप्यश्च भयसंविग्ना गोविन्दं शरणं ययुः॥२४॥

त्राहि त्राहीति गोविन्दस्तेषां श्रुत्वा तु तद्वचः। सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान्॥२५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! मधुप्रिय महाभागवत अक्रूर ने यह आदेश पाकर यह विचार किया कि कल कृष्ण को देखूंगा। इससे वे प्रसन्न हो गये तथा राजा से कहा—"मैं यही करता हूं।" तब वे शीघ्रता से रथ पर बैठ कर मथुरा से बाहर आये। इधर कंस के दूत द्वारा बुलाया गया बल से उन्मत्त केशी दैत्य भी कृष्ण के वधार्थ वृन्दावन पहुंचा। वहां आते समय उसके खुरों के आघात से भूतल क्षत-विक्षत होता जा रहा था। उसके अयाल (गर्दन के बाल) के फहराने से बादल कंपित हो रहे थे। मानों वह सूर्य-चन्द्र के मार्ग को रोक रहा हो। इस स्थिति में वह अश्वरूपी होकर गोपों के निकट आया। उसके हिनहिनाने के शब्द से गोप-गोपीगण भयोद्विग्न हो गये। वे सभी तत्काल कृष्ण की शरण में पहुंच गये। वे रक्षा करो! रक्षा करो! कह कर पुकार रहे थे। उनका यह शब्द सुनकर मेघगंभीर वाणी में भगवान् मधुसूदन कहने लगे।।२०-२५।।

गोविन्द उवाच

अलं त्रासेन गोपालाः केशिनः किं भयातुरैः।
भवद्भिर्गोपजातीयैर्वीरवीर्यं विलोप्यते॥२६॥

किमनेनाल्पसारे वै ह्रेषितारोपकारिणा। दैतेयबलवाह्येन वल्गता दुष्टवाजिना॥२७॥

एह्येहि दुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्त्विव पिनाकधृक्। पातयिष्यामि दशानान्वदनादखिलांस्तव॥२८॥

गोविन्द कहते हैं—हे गोपालकवृन्द! त्रस्त होने का कोई प्रयोजन नहीं है। केशी के भय से भयभीत होकर तुम लोग गोपजातीय बल-पराक्रम को क्यों विलुप्त किये जा रहे हो? इस दुष्ट अश्वरूपधारी दैत्य की असार हिनहिनाहट का क्या भय? हे दुष्ट दैत्य! आओ! मैं कृष्ण हूं। जिस प्रकार से पिनाकधारी शिव ने पूषा के दांतों को भग्न किया था, उसी प्रकार मैं तुम्हारे मुख से सभी दांतों को उखाड़ लूंगा।।२६-२८।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा स तु गोविन्दः केशिनः सम्मुखं ययौ।
विवृतास्यश्च सोऽप्येनं दैतेयश्च उपाद्रवत्॥२९॥

बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनार्दनः। प्रवेशयामास तदा केशिनो दुष्टवाजिनः॥३०॥

केशिनो वदनं तेन विशता कृष्णबाहुना। शातिता दशनास्तस्य सिताभ्रावयवा इव॥३१॥

कृष्णस्य ववृधे बाहुः केशिदेहगतो द्विजाः। विनाशाय यथा व्याधिराप्तभूतैरुपेक्षितः॥३२॥

विपाटितौष्ठो बहुलं सफेनं रुधिरं वमन्। सृक्कणी विवृते चक्रे विश्लिष्टे मुक्तबन्धने॥३३॥

जगाम धरणीं पादैः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन्।
स्वेदार्द्रगात्रः श्रान्तश्च निर्यत्नः सोऽभवत्ततः॥३४॥

व्यासदेव कहते हैं—गोविन्द यह कहकर केशी के सामने आ गये। वह दैत्य भी अपना मुंह फाड़कर उनकी ओर दौड़ पड़ा। तब जनार्दन ने बाहु फैलाकर उस दुष्ट केशी के मुख में बाहु डाल दिया। केशी के मुख विवर में कृष्ण की बाहु प्रविष्ट होकर श्वेत मेघखण्ड के समान उसके दांत उखड़ कर गिरने लगे। केशी के शरीर

में प्रविष्ट बाहु उस तरह बढ़ने लगी, जैसे अपनी लापरवाही से व्याधि बढ़ती जाती है। तब दैत्य का ओठ भग्न हो गया। मुख से फेन तथा रुधिर प्रचुर मात्रा में बहने लगा। उसके गलफड़े फट गये। नसें टूट गईं। वह पीड़ा के कारण मल-मूत्र का त्याग करता धरती पर पैर पटकने लगा। उसके अंगों से स्वेद बिन्दु गिरने लगे। वह धरती पर श्रान्त होकर गिर पड़ा।।२९-३४।।

व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना।
निपपात द्विधाभूतो वैद्युतेन यथा द्रुमः॥३५॥
द्विपादपृष्ठ पुच्छार्धश्रवणैकाक्षनासिके। केशिनस्ते द्विधा भूते शकले च विरेजतुः॥३६॥
हत्वा तु केशिनं कृष्णो मुदितैर्गोपकैर्वृतः।
अनायस्ततनुः स्वस्थो हसंस्तत्रैव संस्थितः॥३७॥
ततो गोपश्च गोप्यश्च हते केशिनि विस्मिताः। तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम्॥३८॥
आययौ त्वरितो विप्रो नारदो जलदस्थितः। केशिनं निहतं दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानसः॥३९॥

कृष्ण की महाभुजा से उस राक्षस का मुंह फट गया। वह धरती पर उसी प्रकार पतित हो गया, जैसे वृक्ष की हालत विद्युत् गिरने से होती है। उसके चारों पैर, पीठ, पूंछ, कान, आंख, नासिका दो टुकड़े में बंट गये। कृष्ण उस केशी का वध करके बिना थके स्वस्थ देह से हंसते-हंसते गोपगण से परिवृत होकर वहीं खड़े थे। केशी को मृत देखकर गोप-गोपीगण विस्मित चित्त से अनुरागमयी वाणी द्वारा पुण्डरीकाक्ष हरि की स्तुति करने लगे। केशी को मृत देख कर आकाश में स्थित नारद वहां आये तथा कहने लगे।।३५-३९।।

नारद उवाच

साधु साधु जगन्नाथ लीलयैव यदच्युत।
निहतोऽयं त्वया केशी क्लेशदस्त्रिदिवौकसाम्॥४०॥
कुकर्माण्यवतारे तु कृतानि मधुसूदन। यानि वै विस्मितं चेतस्तोषमेतेन मे गतम्॥४१॥
तुरगस्यास्य शक्रोऽपि कृष्ण देवाश्च बिभ्यति। धुतकेसरजालस्य ह्रेषतोऽभ्रावलोकिनः॥४२॥
यस्मात्त्वयैष दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन।
तस्मात्केशवनाम्ना त्वं लोके गेयो भविष्यसि॥४३॥
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि कंसयुद्धेऽधुना पुनः।
परश्वोऽहं समेष्यामि त्वया केशिनिषूदन॥४४॥
उग्रसेनसुते कंसे सानुगे विनिपातिते। भारावतारकर्त्ता त्वं पृथिव्या धरणीधर॥४५॥
तत्रानेकप्रकारेण युद्धानि पृथिवीक्षिताम्। द्रष्टव्यानि मया युष्मत्प्रणीतानि जनार्दन॥४६॥
सोऽहं यास्यामि गोविन्द देवकार्यं महत्कृतम्।
त्वया सभाजितश्चाहं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्॥४७॥

नारद कहते हैं—हे अच्युत, जगन्नाथ! स्वर्ग निवासियों को क्लेश देने वाले केशी दैत्य को आपने

बिना श्रम निहत कर दिया। आपको साधुवाद देता हूं। हे मधुसूदन! इस अवतार में आपने जो सब उत्तम कार्य किया है, उससे विस्मयान्वित मेरे चित्त को सन्तोष हो रहा है। अपनी ग्रीवा के अयाल (बालों) को हिलाने वाले तथा हिनहिनाहट शब्द करने वाले मेघाकृति इस दैत्य अश्व से इन्द्रादि देवगण भयभीत रहते थे। हे जनार्दन! यह दुष्टात्मा केशी आप द्वारा निहत हुआ है, अतः आप लोकों में (अयाल = केश, अर्थात् जो बाल अश्व के गर्दन पर होता है) केशव कहे जायेंगे। हे केशिहन्ता! आपका मंगल हो! अभी तो मैं जा रहा हूं, तथापि परसों जब आपका कंस से युद्ध होगा, पुनः मैं आऊंगा। हे धरणीधर! तब पृथिवी के राजाओं से आप द्वारा रचे गये अनेक युद्धों को मैं देखूंगा। आप दैत्यों को नष्ट करके पृथिवी का भार कम करेंगे। हे गोविन्द! मैं जा रहा हूं। आपने देवताओं का महान् कार्य किया है। इससे मैं भी प्रसन्न हो गया। आपकी शान्ति हो। मैं जाता हूं।।४०-४७।।

व्यास उवाच

नारदे तु गते कृष्णः सह गोपैरविस्मितः। विवेश गोकुलं गोपीनेत्रपानैकभाजनम्॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णबालचरिते केशिवधनिरूपणं नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९०।।

नारद के चले जाने पर कृष्ण तथा गोपगण विस्मित हो गये। गोपीगण जिनके रूप का पान नेत्रों से करती हैं, उन कृष्ण ने गोकुल में प्रवेश किया।।४८।।

।।नवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अक्रूर के व्रज जाने का वर्णन

व्यास उवाच

अक्रूरोऽपि विनिष्क्रम्य स्यन्दनेनाऽऽशुगामिना। कृष्णसन्दर्शनासक्तः प्रययौ नन्दगोकुले॥१॥

चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया।
योऽहमंशावतीर्णस्य मुखं द्रक्ष्यामि चक्रिणः॥२॥
अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाता च मे निशा।
यदुन्निद्राब्जपत्राक्षं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम्॥३॥

पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं सङ्कल्पनामयम्। तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम्॥४॥

निर्जग्मुश्च यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च।
द्रक्ष्यामि यत्परं धाम देवानां भगवन्मुखम्॥५॥
यज्ञेषु यज्ञपुरुषः पुरुषैः पुरुषोत्तमः। इज्यते योऽखिलाधारस्तं द्रक्ष्यामि जगत्पतिम्॥६॥
इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम्। अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम्॥७॥
न ब्रह्मा नेन्द्ररुद्राश्विवस्वादित्यमरुद्गणाः। यस्य स्वरूपं जानन्ति स्पृशत्यद्य स मे हरिः॥८॥

व्यासदेव कहते हैं—अक्रूर द्रुतगामी रथ पर बैठकर मथुरा से निकले। वे कृष्ण दर्शनार्थ आसक्त चित्त से नन्द के गोकुल की ओर प्रस्थान कर गये। अक्रूर जाते-जाते चिन्तन करने लगे "मेरी तुलना में अन्य कोई धन्य नहीं है, क्योंकि आज मेरे जीवन का सुप्रभात होगा। मैं विष्णु के अंशावतार प्रभु कृष्ण का मुख देखूंगा, जो पद्मपत्र के समान नेत्रों वाले हैं। उनके स्मरण से तथा उन अनामय पुण्डरीकाक्ष विष्णु के दर्शन से लोगों के पाप का नाश होता है। जिनके मुख से सभी वेद-वेदाङ्ग निर्गत हो गये, जो देवगण के परमधाम हैं, उन भगवान् का मैं मुखदर्शन कर सकूंगा। जो पुरुषोत्तम पुरुषों द्वारा यज्ञपुरुष रूप से पूजित हो जाते हैं, उन अखिलाधार जगत्पति का मैं दर्शन पा सकूंगा। इन्द्र ने जिनके कहने से सैकड़ों यज्ञ करके अमर राज्यलाभ किया था, उन आदि अनन्त केशव का मैं दर्शन करूंगा। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य तथा मरुद्गण भी जिनके रूप को नहीं जानते, वे हरि आज मेरा स्पर्श करेंगे!।।१-८।।

सर्वात्मा सर्वगः सर्वः सर्वभूतेषु संस्थितः।
यो भवत्यव्ययो व्यापी स वीक्ष्यते मयाऽद्य ह॥९॥
मत्स्यकूर्मवराहाद्यैः सिंहरूपादिभिः स्थितम्। चकार योगतो योगं स मामालापयिष्यति॥१०॥
साम्प्रतं च जगत्स्वामी कार्यजाते व्रजे स्थितिम्। कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तः स्वेच्छादेहदृगव्ययः॥११॥
योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शिखरस्थितिसंस्थिताम्।
सोऽवतीर्णो जगत्यर्थे मामक्रूरेति वक्ष्यति॥१२॥
पितृबन्धुसुहृद्भ्रातृमातृबन्धुमयीमिमाम्। यन्मायां नालमुद्धर्तुं जगत्तस्मै नमो नमः॥१३॥

जो सर्वात्मा, सर्वगामी, सर्वरूपी, सर्वभूतसमूह में संस्थित, अव्यय तथा व्यापक हैं, वे मेरे द्वारा दृष्ट होंगे। जो मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंहादि रूप से अवस्थान करते हैं, वे मेरे साथ आलाप करेंगे। जगत्स्वामी सम्प्रति कार्य साधनार्थ व्रज में मनुष्यता पाकर (मनुष्यरूपी होकर) वहीं निवास कर रहे हैं। जो स्वेच्छा पूर्वक देहधारी तथा अव्यय हैं, जो अनन्तरूपेण पर्वतादि समन्वित पृथिवी को धारण करते हैं, वे जगत् के लिये अब अवतरित हैं। वे भगवान् मुझे अक्रूर कहकर पुकारेंगे। पिता, बन्धु, सुहृद, भ्राता, माता तथा बान्धवादि समन्वित यह जगत् जिनकी माया को पार करने में समर्थ नहीं है, उनको मेरा प्रणाम!।।९-१३।।

तरन्त्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते।
योगमायामिमां मर्त्यास्तस्मै विद्यात्मने नमः॥१४॥
यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च शाश्वतैः।
वेदान्तवेदिभिर्विष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम्॥१५॥

तथा यत्र जगद्धाम्नि धार्यते च प्रतिष्ठिताम्।
सदसत्त्वं स सत्त्वेन मय्यसौ यातु सौम्यताम्॥१६॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषप्रवरं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥१७॥

मर्त्यलोक वासी लोगों के हृदय में जिन प्रभु के स्थित हो जाने पर वे योगमायात्मिका विस्तृत अविद्या से छुटकारा पा जाते हैं, उन विद्यात्मा प्रभु को प्रणाम! जो यज्ञकारी लोगों के लिये यज्ञपुरुष, सात्विकों के लिये वासुदेव तथा वेदान्तवेदी लोगों के लिये विष्णु कहे जाते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूं! जिन जगद्धाम में सद्-असत् रूप समस्त भाव स्थित है, वे सत्वगुण द्वारा हमें सौम्यता प्रदान करें। जो स्मृत होने पर समस्त कल्याणप्रद हो जाते हैं, मैं उन पुरुषप्रवर हरि की नित्य शरण ग्रहण करता हूं।।१४-१७।।

व्यास उवाच

इत्थं स चिन्तयन्विष्णुं भक्तिनम्रात्ममानसः। अक्रूरो गोकुलं प्राप्तः किञ्चित्सूर्ये विराजति॥१८॥
स ददर्श तदा तत्र कृष्णामादोहने गवाम्। वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम्॥१९॥
प्रफुल्लपद्मपत्राक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्। प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोरस्थलमुन्नसम्॥२०॥
सविलासस्मिताधारं बिभ्राणं मुखपङ्कजम्। तुङ्गरक्तनखं पद्भ्यां धरण्यां सुप्रतिष्ठितम्॥२१॥
बिभ्राणं वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम्। सान्द्रनीललताहस्तं सिताम्भोजावतंसकम्॥२२॥

व्यासदेव कहते हैं—अक्रूर भक्तिनम्र चित्त द्वारा विष्णु का चिन्तन करते-करते सूर्यास्त तनिक बाकी रहते गोकुल आ पहुंचे। उस समय उन्होंने वहां गोदोहन स्थान में बछड़ों के बीच खिले नील कमल दल की कान्ति से प्रफुल्लित पद्मपत्राक्ष श्रीवत्स चिह्नांकित वक्ष वाले श्रीकृष्ण को देखा। उनके बाहुद्वय लम्बे थे। वक्ष विशाल था। उनकी नासिका उन्नत थी, मुखपंकज मन्द एवं सुन्दर मुस्कान से युक्त था। तुंग तथा लालिमा लिये नखों से युक्त उनके चरणद्वय धरणी पर स्थापित से थे। वे प्रभु पीताम्बरधारी तथा वनमाला विभूषित थे। उनके हाथ घनी नीललता के समान थे। वे हाथ उज्ज्वल कमल से शोभित थे।।१८-२२।।

हंसेन्दुकुन्दधवलं नीलाम्बरधरं द्विजाः। तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम्॥२३॥
प्रांशुमुत्तुङ्गबाहुं च विकाशिमुखपङ्कजम्। मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम्॥२४॥
तौ दृष्ट्वाविकसद्वक्त्रसरोजः स महामतिः। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तदाऽक्रूरोऽभवद्द्विजाः॥२५॥
य एतत्परमं धाम एतत्तत्परमं पदम्। अभवद्वसुदेवोऽसौ द्विधा योऽयं व्यवस्थितः॥२६॥

साफल्यमक्ष्णोर्युगपन्ममास्तु, दृष्टे जगद्धातरि हासमुच्चैः (?)।
अप्यङ्गमेतद्भगवत्प्रसादाद्दत्ताङ्गसङ्गे फलवर्त्म तत्स्यात्॥२७॥
अद्यैव स्पृष्ट्वा मम हस्तपद्मं, करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः।
यस्याङ्गुलिस्पर्शहताखिलाघैरवाप्यते सिद्धिरनुत्तमा नरैः॥२८॥

उनके पार्श्व में हंस तथा कुन्दपुष्प एवं चन्द्र ऐसे धवलवर्ण, नील वस्त्रधारी यदुनन्दन बलभद्र भी दिखलाई पड़ रहे थे। वे आजानुबाहु (जानु तक लम्बी बाहु वाले) खिले कमलवत् मुखयुक्त तथा कैलास

पर्वतवत् धवल यदुनन्दन खड़े थे। यह अक्रूर ने देखा। हे द्विजप्रवरगण! तब उन अक्रूर के अंग पुलकित हो उठे। वे सभी हास्ययुक्त होकर विचार करने लगे कि वे परमधाम परमपद वासुदेव ही भागद्वय में विभक्त होकर यहां अवस्थित हैं। इन दोनों को एक साथ देखने से मुझे अतीव आनन्द हो रहा है तथा अपने दोनों नेत्र भी सफल प्रतीत हो रहे हैं। मेरे अंग भी भगवत् कृपा के द्वारा इन प्रभु के अंगस्पर्श से सफल होंगे। क्या ऐसा नहीं होगा? इनकी उंगली के स्पर्श से मनुष्य समस्त पापों से रहित होकर अत्युत्तमा सिद्धिलाभ करता है। क्या ऐसे प्रभु श्रीमान् अनन्तमूर्त्ति अपने हस्तपद्म के स्पर्श से मेरे अंगों का स्पर्श नहीं करेंगे?।।२३-२८।।

तथाऽऽश्विरुदेन्द्रवसुप्रणीता, देवाः प्रयच्छन्ति वरं प्रहृष्टाः।
चक्रं घ्नता दैत्यपतेर्हृतानि, दैत्याङ्गनानां नयनान्तराणि॥२९॥
यत्रा (तोऽ) म्बु विन्यस्य बलिर्मनोभ्याम (ज्ञान) वाप भोगान्वसुधातलस्थः।
तथाऽमरेशस्त्रिदशाधिपत्यं, मन्वन्तरं पूर्णमवाप शक्रः॥३०॥

उस व्यक्ति को तो आश्विन, रुद्र, इन्द्र, वसु प्रभृति देवता भी प्रसन्न होकर आशीर्वाद करते हैं। जिन्होंने दैत्यराज की सेना का नाश किया तथा दैत्यनारियों के नयनों को अपने प्रति आकर्षित कर लिया, ऐसे प्रभु को दान देने वाले बलि पातालवासी होकर भी सर्वभोगयुक्त हो गये। उनकी ही कृपा थी कि इन्द्र ने मन्वन्तर पर्यन्त तक का देवाधिपत्य लाभ कर लिया।।२९-३०।।

अथेश (थापि) मां कंसपरिग्रहेण, दोषास्पदीभूतमदोषयुक्तम्।
कर्ता न मानोपहितं धिगस्तु, यस्मान्मनः साधुबहिष्कृतो यः (?)॥३१॥
ज्ञानात्मकस्याखिलसत्त्वराशेर्व्यावृत्तदोषस्य सदाऽस्फुटस्य।
किं वा जगत्यत्र समस्तपुंसामज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य॥३२॥
तस्मादहं भक्तिविनम्रगात्रो, व्रजामि विश्वेश्वरमीश्वराणाम्।
अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य, अनादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णक्रीडायामक्रूरागमनवर्णनं नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९१।।

एवंविध प्रभु को मैं यहां से कंस की आज्ञा के कारण ले जाने हेतु आया हूं। मैं निर्दोषी होकर भी दोषी ही हूं। मैं मानवों से अपमानित हूं, मुझे धिक्कार है। मैं साधुओं द्वारा बहिष्कृत सा हूं। जो ज्ञानात्मक, अखिल सत्वराशि, दोषहीन तथा सतत् अव्यक्त हैं, सर्वहृदय निवासी हैं, उनके लिये समस्त जगत्स्थ, सभी प्राणीगण के हृदय की कौन सी बात ज्ञात नहीं है? ऐसी स्थिति में मैं भक्तिविनम्र होकर आदि-मध्य-अन्तहीन अजन्मा विश्वेश्वरों के भी ईश्वर विष्णु के अंशावतार पुरुषोत्तम की शरण ग्रहण करता हूं।।३१-३३।।

।।एकनवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अक्रूर का वापस लौटना

व्यास उवाच

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपगम्य स यादवः। अक्रूरोऽस्मीति चरणौ ननाम शिरसा हरेः॥१॥

सोऽप्येनं ध्वजवज्राब्जकृतचिह्नेन पाणिना।
संस्पृश्याऽऽकृष्य च प्रीत्या सुगाढं परिषस्वजे॥२॥

कृतसंवदनौ तेन यथावद्बलकेशवौ। ततः प्रविष्टौ सहसा तमादायाऽऽत्ममन्दिरम्॥३॥

सह ताभ्यां तदाऽक्रूरः कृतसंवन्दनादिकः।
भुक्तभोज्यो यथान्यायमाचचक्षे ततस्तयोः॥४॥

यथानिर्भत्सितस्तेन कंसेनाऽऽनकदुन्दुभिः। यथा च देवकी देवी दानवेन दुरात्मना॥५॥

उग्रसेने यथा कंस स दुरात्मा च वर्तते। यं चैवार्थं समुद्दिश्य कंसेन स विसर्जितः॥६॥

तत्सर्वं विस्तराच्छ्रुत्वा भगवान्केशिसूदनः। उवाचाखिलमेतत्तु ज्ञातं दानपते मया॥७॥

व्यासदेव कहते हैं—वे यादव अक्रूर यह सब चिन्तन करत गोविन्द के निकट आये तथा "मैं अक्रूर हूं" यह कहकर उन्होंने मस्तक अवनत करके हरि के चरणों में प्रणाम किया! कृष्ण ने भी अपने ध्वज-वज्र-कमल चिह्नांकित करस्पर्श से खींचकर प्रेमावेश में उनका गाढ़ आलिंगन भी किया। बलराम तथा केशव भी अक्रूर द्वारा यथावत् वन्दित होकर उनको साथ लेकर अपने गृह में गये। अक्रूर ने भी वहां वन्दनादि के उपरान्त उनके साथ यथाविधि भोजनोपरान्त समस्त विवरण उनसे कह दिया। दुरात्मा कंस ने वासुदेव को जिस प्रकार कष्ट दिया था, देवकी जिस प्रकार कंस द्वारा लांछित हो रही थीं तथा स्वयं उनको जिस उद्देश्य से कंस ने भेजा था, भगवान् केशीहन्ता हरि ने वह सब सुनकर अक्रूर से कहा—"हे दानपति! वह सब मुझे अवगत है"।।१-७।।

करिष्ये च महाभाग यदत्रौपायिकं मतम्। विचिन्त्यं नान्यथैतत्ते विद्धि कंसं हतं मया॥८॥

अहं रामश्च मथुरां श्वो यास्यावः समं त्वया। गोपवृद्धाश्च यास्यन्ति आदायोपायनं बहु॥९॥

निशेयं नीयतां वीर न चिन्तां कर्तुमर्हसि। त्रिरात्राभ्यन्तरे कंसं हनिष्यामि सहानुगम्॥१०॥

"इस सम्बन्ध में जो उपाय उचित है, हे महाभाग! वह सब मैं सम्पन्न करूंगा। इस सम्बन्ध में तुम अन्यथा विचार मत करो। कंस को मेरे द्वारा मारा गया समझो। कल मैं तुम्हारे साथ बलराम सहित चलूंगा। साथ में वृद्ध गोपगण भी अनेक भेंट लेकर चलेंगे। हे वीर! इस रात्रि को व्यतीत करो। चिन्ता मत करो। मैं तीन रात्रि के बीच कंस का वध उसके भाईयों के साथ कर दूंगा"।।८-१०।।

व्यास उवाच

समादिश्य ततो गोपानक्रूरोऽपि सकेशवः। सुष्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे गतः॥११॥

ततः प्रभाते विमले रामकृष्णौ महाबलौ। अक्रूरेण समं गन्तुमुद्यतौ मथुरां पुरीम्॥१२॥
दृष्ट्वा गोपीजनः साश्रुः श्लथद्वलयबाहुकः। निश्वसंश्चातिदुःखार्तः प्राह चेदं परस्परम्॥१३॥

व्यासदेव कहते हैं—अक्रूर ने गोपगण को राज्यादेश से अवगत कराया तथा कृष्ण-बलराम के साथ उन्होंने नन्दगोप गृह में जाकर शयन किया। अगले दिवस परम विमल प्रातःकाल के समय महाबली बलराम, कृष्ण को अक्रूर सहित मथुरा के लिये गमनोद्यत देखकर गोपियां दुःखी होकर अश्रुपात करने लगीं। उनके बाहु इतने ढीले हो गये कि उनके कंगन निकलने लगे। वे निःश्वास छोड़ते हुये परस्परतः कहने लगीं।।११-१३।।

मथुरां प्राप्य गोविन्दः कथं गोकुलमेष्यति। नागरस्त्रीकलालापमधु श्रोत्रेण पास्यति॥१४॥
विलासिवाक्यजातेषु नागरीणां कृतास्पदम्। चित्तमस्य कथं ग्राम्यगोपगोपीषु यास्यति॥१५॥
सारं समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिम्। प्रहृतं गोपयोषित्सु निघृणेन दुरात्मना॥१६॥
भावगर्भस्मितं वाक्यं विलासललिता गतिः। नागरीणामतीवैतत्काटाक्षेक्षितमेवं तु॥१७॥
ग्राम्यो हरिरयं तासां विलासनिगडैर्यतः। भवतीनां पुनः पार्श्वं कया युक्त्या समेष्यति॥१८॥
एषो हि रथमारुह्य मथुरां याति केशवः। अक्रूरक्रूरकेणापि हताशेन प्रतारितः॥१९॥

वे कह रही थीं—गोविन्द मथुरा जाकर पुनः गोकुल आयेंगे? वे वहां जाकर नगरवासी नारीगण के मधुर आलाप का श्रवण करेंगे। उन नगर की स्त्रियों के विलासपूर्ण वचनों से इनका चित्त जब उधर ही लग जायेगा, कृतास्पद हो जायेगा, तब वह चित्त गोपियों के प्रति बातों का श्रवण करने क्यों आयेगा? निर्दय दुरात्मा विधाता ने कृष्ण को यहां से ले जाकर व्रज के समस्त गोष्ठ के सार धन का हरण कर लिया। यह तो गोप वनिताओं के सर्वस्व का हरण हो गया। नगरवासी स्त्रियों की वाणी भावमय तथा सस्मित वाक्य वाली होती है। उनकी विलास से ललित गति देखते ही बनती है। उनका कटाक्ष निःक्षेप इत्यादि पुरुष को विलास की बेड़ी से बांध लेता है। हरि तो ग्रामवासी हैं। वे इस बेड़ी में बंध जाने पर अब कैसे तुम सबके यहां आ सकते हैं? यह अवलोकन करो? केशव रथ पर बैठकर मथुरा जा रहे हैं। यह क्रूर हताश अक्रूर इनको वंचना करके (ठग कर) यहां से ले जा रहा है।।१४-१९।।

किं न वेत्ति नृशंसोऽयमनुरागपरं जनम्। येनेममक्षराह्लादं नयत्यन्यत्र नो हरिम्॥२०॥
एष रामेण सहितः प्रयात्यत्यन्तनिर्घृणः। रथमारुह्य गोविन्दस्त्वर्यतामस्य वारणे॥२१॥
गुरूणामग्रतो वक्तुं किं ब्रवीषि न नः क्षमम्। गुरवः किं करिष्यन्ति दग्धानां विरहाग्निना॥२२॥
नन्दगोपमुखा गोपा गन्तुमेते समुद्यताः। नोद्यमं कुरुते कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने॥२३॥

यह नृशंस अक्रूर अनुराग परायण हम प्रेमियों को नहीं जानता? यह तो हमें सदा आह्लाद देने वाले हरि को अन्यत्र लिये जा रहा है। यह तो रथ पर बैठाकर कृष्ण-हरि को ले जा रहा है। शीघ्रता करो। इसे रोको। यह क्यों कहती हो कि गुरुजन के समक्ष यह कहना उचित नहीं है? हम तो विरहाग्नि से दग्ध हैं। गुरुजन इसमें क्या करेंगे? तथापि नन्दगोप आदि प्रमुख गोप भी तो जाने के लिये उद्यत हैं। गोविन्द को रोकने का उद्यम कौन करे?।।२०-२३।।

सुप्रभाताऽद्य रजनी मथुरावासियोषिताम्। यासामच्युतवक्त्राब्जे याति नेत्रालिभोग्यताम्॥२४॥

धन्यास्ते पथि ये कृष्णमितो यान्तमवारिताः। उद्वहिष्यन्ति पश्यन्तः स्वदेहं पुलकाञ्चितम्॥२५॥
मथुरानगरीपौरनयनानां महोत्सवः। गोविन्दवदनालोकादतीवाद्य भविष्यति॥२६॥
को नु स्वप्नः सभाग्याभिर्दृष्टस्ताभिरधोक्षजम्।
विस्तारिकान्तनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारितम्॥२७॥
अहो गोपीजनस्यास्य दर्शयित्वा महानिधिम्। उद्धृतान्यद्य नेत्राणि विधात्राऽकरुणात्मना॥२८॥
अनुरागेण शैथिल्यमस्मासु व्रजतो हरेः। शैथिल्यमुपयान्त्याशु करेषु वलयान्यपि॥२९॥
अक्रूरः क्रूरहृदयः शीघ्रं प्रेरयते हयान्। एवमार्तासु योषित्सु घृणा कस्य न जायते॥३०॥

अब तो मथुरा की स्त्रियों हेतु सुप्रभात हो गया है। अब उनके नेत्र रूपी भ्रमरगण कृष्ण के मुखरूपी सरोज का रसपान करेंगे। वे सभी लोग धन्यभाग्य हैं, पथ पर रथ से जाते कृष्णदर्शन द्वारा जिनकी देह आनन्द से पुलकित हो उठेगी। अब तो गोविन्द के मुखकमल का अवलोकन कर सकने के कारण मथुरा वासी लोगों के नेत्रों हेतु एक महोत्सव उपस्थित हो रहा है। वहां की भाग्यवती स्त्रियों ने ऐसा कौन स्वप्नावलोकन किया था, जो वे अपने विस्फारित एवं हर्षयुत नेत्रों से कृष्णदर्शन पा रहे हैं। अहा! इन दयाहीन विधाता ने आज हम गोपियों को पहले महानिधि दिखलाकर मानों अब नेत्र ही निकाल लिये। श्रीहरि हमारे प्रति अपने अनुराग को शिथिल कर रहे हैं, फलस्वरूप हमारे हाथ के कंगन तक हमारी कलाई से खिसके जा रहे हैं। क्रूर हृदय वाले अक्रूर तेजी से घोड़ों को हांकते जा रहे हैं। हम आर्त्त रमणियों के प्रति किसी के मन में करुणा का उदय नहीं हो रहा है?॥२४-३०॥

हे हे कृष्ण रथस्योच्चैश्चक्ररेणुर्निरीक्ष्यताम्। दूरीकृतो हरिर्येन सोऽपि रेणुर्न लक्ष्यते॥३१॥
इत्येवमतिहार्देन गोपीजननिरीक्षितः। तत्याज व्रजभूभागं सह रामेण केशवः॥३२॥
गच्छन्तो जवनाश्वने रथेन यमुनातटम्। प्राप्ता मध्याह्नसमये रामाक्रूरजनार्दनाः॥३३॥

"हा कृष्ण! हा कृष्ण! अब कृष्ण के रथ के चक्के से उठती धूल को देखो। वह धूल इतनी घनी हो गई है कि जिस धूल ने कृष्ण को अलक्षित कर रखा था, वह भी अब दृष्टिगोचर नहीं हो रही है (अर्थात् कृष्ण का रथ इतनी दूर जा चुका है कि उसके पहियों से उठती धूल तक दृग्गोचर नहीं हो रही है)।" वे गोपीगण इस प्रकार अत्यन्त प्रणयपूर्ण हृदय से देखती जा रही थीं, इतने में राम-कृष्ण के रथ ने व्रज के भूभाग को भी पार कर लिया तथा वे बलराम, जनार्दन तथा अक्रूर रथ द्वारा जाते-जाते मध्याह्न काल में यमुना तट पर पहुंच गये॥३१-३३॥

अथाऽऽह कृष्णमक्रूरो भवद्भ्यां तावदास्यताम्।
यावत्करोमि कालिन्द्यमाह्निकार्हणमम्भसि॥३४॥
तथेत्युक्ते ततः स्नातः स्वाचान्तः स महामतिः।
दध्यौ ब्रह्म परं विप्राः प्रविश्य यमुनाजले॥३५॥

वहां अक्रूर ने बलराम-कृष्ण से कहा—"आप कुछ समय यहीं रुकिये। इतने में मैं मध्याह्नकालीन सन्ध्या वन्दनादिं कृत्य कालिन्दी तट पर सम्पन्न करूं। कृपया इसकी अनुमति प्रदान करिये।" हे ब्राह्मणप्रवरगण!

कृष्ण द्वारा अनुमोदन मिल जाने पर वे महामति अक्रूर यमुना जल में प्रविष्ट हो गये तथा वे वहां स्नान एवं सविधि आचमनादि से निवृत्त होकर परब्रह्म का ध्यान करने लगे।।३४-३५।।

फणासहस्रमालाढ्यं बलभद्रं ददर्श सः। कुन्दामलाङ्गमुन्निपद्मपत्रायतेक्षणम्।।३६।।
वृतं वासुकिडिम्भौघैर्महद्भिः पवनाशिभिः। संस्तूयमानसद्गन्धिवनमालाविभूषितम्।।३७।।
दधानमसिते वस्त्रे चारुरूपावतंसकम्। चारुकुण्डलिनं मत्तमन्तर्जलतले स्थितम्।।३८।।

जल में वे देखते हैं कि वहां सहस्रफणों वाले, मालाभूषित, कुन्द के समान निर्मल अंग वाले, खिले कमल पत्र के समान दीर्घ नेत्रों वाले, वासुकि की सन्तानों से घिरे महानागों से स्तुत, मनोहर कुण्डल धारी, नील वस्त्रों से विभूषित, मदमत्त श्रीमान् बलभद्र वहां विराजमान हैं। वे तब जल तलस्थ थे।।३६-३८।।

तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताम्रायतलोचनम्। चतुर्बाहुमुदाराङ्गं चक्राद्यायुधभूषणम्।।३९।।
पीते वसानं वसने चित्रमाल्यविभूषितम्। चक्रचापतडिन्मालाविचित्रमिव तोयदम्।।४०।।
श्रीवत्सवक्षसं चारुकेयूरमुकुटोज्ज्वलम्। ददर्श कृष्णमक्लिष्टं पुण्डरीकावतंसकम्।।४१।।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः सिद्धयोगैरकल्मषैः। सञ्चिन्त्यमानं मनसा नासाग्रन्यस्तलोचनैः।।४२।।
बलकृष्णौ तदाऽक्रूरः प्रत्यभिज्ञाय विस्मितः। अचिन्तयदथो शीघ्रं कथमत्रागताविति।।४३।।
विवक्षोः स्तम्भयामास वाचं तस्य जनार्दनः।
ततो निष्क्रम्य सलिलाद्रथमभ्यागतः पुनः।।४४।।
ददर्श तत्र चैवोभौ रथस्योपरि संस्थितौ। रामकृष्णौ यथा पूर्वं मनुष्यवपुषाऽऽन्वितौ।।४५।।

बलभद्र जो शेष रूपधारी थे, के क्रोड़ में घने श्याम वर्ण वाले, ताम्रवर्ण दीर्घ नेत्र वाले, चतुर्भुज, चक्रादि आयुधभूषित, इन्द्रधनुष, विद्युत् तथा जलयुक्त मेघ के समान प्रतीयमान, उर्जित अंगों वाले, उत्तम मुकुट तथा बाजूबन्द के कारण उज्ज्वल, पीताम्बर तथा विचित्र मालाधारी, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित कमल पुष्पों के आभूषणों से सज्जित, अक्लिष्ट कर्मा कृष्ण को अक्रूर ने देखा, जो प्रभु पापहीन मुनिगण द्वारा नासाग्र में नेत्र एकाग्र करके देखे जाते हैं (ध्यान द्वारा)। ऐसे बलदेव तथा कृष्ण को पहचान कर अक्रूर विस्मयापन्न होकर विचार करने लगे कि ये यहां कैसे आ गये? वे कुछ कहना ही चाहते थे कि कृष्ण ने उनकी वाणी को स्तम्भित कर दिया! ऐसी स्थिति में अक्रूर ने जल से बाहर निकल कर पुनः रथ के पास आकर देखा कि वे दोनों रामकृष्ण तो मनुष्य देहधारी होकर पूर्ववत् रथ पर ही बैठे हैं!।।३९-४५।।

निमग्नश्च पुनस्तोये ददृशे स तथैव तौ। संस्तूयमानौ गन्धर्वैर्मुनिसिद्धमहोरगैः।।४६।।
ततो विज्ञातसद्भावः स तु दानपतिस्तदा। तुष्टाव सर्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम्।।४७।।

पुनः अक्रूर ने जल में डुबकी लगायी। वे देखते हैं कि वहां बलराम-कृष्ण यथावत् गन्धर्व, मुनिगण, सिद्धों तथा महासर्पों द्वारा स्तुत हो रहे हैं। यह दोनों दृश्य देख कर अक्रूर दानपति ने जनार्दन के तत्व को जान लिया और वे सर्वविज्ञानमय ईश्वर तथा अच्युत का स्तव करने लगे।।४६-४७।।

अक्रूर उवाच

तन्मात्ररूपिणेऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने। व्यापिने नैकरूपैकस्वरूपाय नमो नमः।।४८।।

शब्दरूपाय तेऽचिन्त्यहविर्भूताय ते नमः। नमो विज्ञानरूपाय पराय प्रकृतेः प्रभो॥४९॥

भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान्।
आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पञ्चधा स्थितः॥५०॥

प्रसीद सर्वधर्मात्मन्क्षराक्षर महेश्वर। ब्रह्माविष्णुशिवाद्याभिः कल्पनाभिरुदीरितः॥५१॥

अनाख्येयस्वरूपात्मन्ननाख्येयप्रयोजन। अनाख्येयाभिधान त्वां नातोऽस्मि परमेश्वरम्॥५२॥

अक्रूर कहते हैं—तन्मात्ररूपी, अचिन्त्य महिमा, सर्वव्यापी, अनेक स्वरूप, परमात्मा को नमस्कार करता हूं! आप शब्दस्वरूप, अचिन्त्य, हरिभूत, प्रकृति के परे, विज्ञानरूप, एक होकर भी अनेक भूतात्मा-इन्द्रियात्मा-प्रधानात्मा-आत्मा-परमात्मा नामक पंचधा विभक्त होकर विराजमान हैं। आपको नमस्कार! हे सर्वधर्मात्मा, क्षराक्षर, महेश्वर! ब्रह्मा-विष्णु-शिव प्रभृति भी आपका कल्पना द्वारा उल्लेख करते हैं। हे अनाख्येय स्वरूपात्मा! अनाख्येय प्रयोजन! आपको नमस्कार! (जिनका स्वरूप, प्रयोजन तथा संज्ञा भी वाणी द्वारा वर्णित नहीं हो सकता)। हे परमेश्वर! आपको नमस्कार!।।४८-५२।।

न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः। तद्ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानजः॥५३॥

न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्वस्याधिगमो यतः। ततः कृष्णाच्युतानन्त विष्णुसंज्ञाभिरीड्यसे॥५४॥

सर्वात्मंस्त्वमज विकल्पनाभिरेतैर्देवास्त्वं जगदखिलं विश्वम्।
विश्वात्मंस्त्वतिविकारभेदहीनः सर्वस्मिन्न हि भवतोऽस्ति किञ्चिदन्यत्॥५५॥

हे नाथ! जहां नाम, जाति आदि की कल्पना ही नहीं की जा सकती, वह नित्य अविकारी, अजन्मा, परमब्रह्म आप ही हैं। इसी कारण कल्पना के बिना अर्थादि का ज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिये आप कृष्ण, अच्युत, अनन्त, विष्णु आदि संज्ञा से स्तुत होते रहते हैं। हे सर्वात्मा! आप अज ही इन सब विकल्पना के कारण नाना देवता हो गये हैं। आप ही अखिल जगत् तथा विश्व हैं। हे विश्वात्मा! आप विकार तथा भेद से परे हैं। आप सर्वत्र विराजमान रहते हैं। आपसे अलग-भिन्न कुछ भी नहीं है।।५३-५५।।

त्वं ब्रह्मा पशुपतिरर्यमा विधाता, त्वं धाता त्रिदशपतिः समीरणोऽग्निः।
तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको, भिन्नात्मा जगदपि पासि शक्तिभेदैः॥५६॥

आप ही ब्रह्मा, पशुपति, अर्यमा, विधाता, धाता, देवराज, वायु तथा अग्नि हैं। आप ही जलपति वरुण तथा धनपति कुबेर हैं। आप ही अन्य यमादि विभिन्न मूर्त्ति द्वारा विभिन्न शक्ति से जगत्पालन कर्म सम्पन्न करते हैं।।५६।।

विश्वं भवान्सृजति हन्ति गभस्तिरूपो, विश्वं च ते गुणमयोऽयमज प्रपञ्चः।
रूपं परं सदितिवाचकमक्षरं यज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै॥५७॥

ॐ नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च। प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः॥५८॥

हे प्रभो! आप गभस्तिरूपेण (किरण रूपी होकर) विश्व का सृजन-पालन करते हैं। हे अज! यह गुणमय विश्वत्व आप प्रभु का ही प्रपंचमात्र है। 'सत्' रूप वाचक अक्षर आपका परम रूप है। मैं सदसत् ज्ञानात्मा आपको प्रणाम करता हूं! मैं "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" मन्त्र से आपको प्रणाम करता हूं! संकर्षण को प्रणाम! प्रद्युम्न को प्रणाम! अनिरुद्ध को प्रणाम!।।५७-५८।।

व्यास उवाच

एवमन्तर्जले कृष्णमभिष्टूय स यादवः। अर्घयामास सर्वेशं धूपपुष्पैर्मनोमयैः॥५९॥
परित्यज्यान्यविषयं मनस्तत्र निवेश्य सः। ब्रह्मभूते चिरं स्थित्वा विरराम समाश्रितः॥६०॥
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मन्यमानो द्विजोत्तमाः। आजगाम रथं भूयो निर्गम्य यमुनाम्भसः॥६१॥
रामकृष्णो ददर्शाथ यथापूर्वमवस्थितौ। विस्मिताक्षं तदाऽक्रूरं तं च कृष्णोऽभ्यभाषत॥६२॥

व्यासदेव कहते हैं—उन यादव अक्रूर ने जल में इस प्रकार कृष्ण का स्तव करके मानसिक कल्पित पुष्प-धूप से उन सर्वेश्वर की अर्चना किया। तदनन्तर उन्होंने अन्य सब चित्तवृत्ति जनित विचारों (विषयों) का त्याग करके ब्रह्मभूत हरि में मन लगाया। दीर्घकाल इस स्थिति में रहने पर वे इस समाधि से व्युत्थित (उठे) हो गये।हे ब्राह्मणोत्तम वृन्द! वे स्वयं को कृतार्थ अनुभव करके यमुना जल से निकल कर पुनः रथ के पास आये। वहां वे देखते हैं कि वहां राम एवं कृष्ण यथापूर्व विराजमान हैं। उस समय उनको विस्मय से अभिभूत देखकर कृष्ण उनसे कहने लगे।।५९-६२।।

श्रीकृष्ण उवाच

किं त्वया दृष्टमाश्चर्यमक्रूर यमुनाजले।
विस्मयोत्फुल्लनयनो भवान्संलक्ष्यते यतः॥६३॥

श्रीकृष्णदेव कहते हैं—हे अक्रूर! जल में आपको क्या विस्मय दृष्टिगोचर हो गया? मैं आपके नेत्रों को विस्मयाभिभूत तथा प्रफुल्लित देख रहा हूं।।६३।।

अक्रूर उवाच

अन्तर्जले यदाश्चर्यं दृष्टं तत्र मयाऽच्युत। तदत्रैव हि पश्यामि मूर्तिमत्पुरतः स्थितम्॥६४॥
जगदेतन्महाश्चर्यरूपं यस्य महात्मनः। तेनाऽऽश्चर्यपरेणाहं भवता कृष्ण सङ्गतः॥६५॥
तत्किमेतेन मथुरां प्रयामो मधुसूदन। बिभेमि कंसाद्धिग्जन्म परपिण्डोपजीविनः॥६६॥

अक्रूर कहते हैं—हे अच्युत! इस जल में जो आश्चर्य देखा, उसे यहां अपने सामने भी देख रहा हूं! यह महान् आश्चर्यमय जगत् जिनका रूप है, मैं उन आश्चर्यों से अतीत प्रभु के सामने खड़ा हूं। हे मधुसूदन! हम तब मथुरा क्यों जायें? मुझे कंस का भय लगता है। अन्य के अन्नपिण्ड को खाकर जीने वाले के जीवन को धिक्कार है!।।६४-६६।।

व्यास उवाच

इत्युत्त्वा चोदयामास तान्हयान्वातरंहसः।
सम्प्राप्तश्चापि सायाह्ने सोऽक्रूरो मथुरां पुरीम्।
विलोक्य मथुरां कृष्णं रामं चाऽऽह स यादवः॥६७॥

व्यासदेव कहते हैं—अक्रूर ने यह कहने के पश्चात् अपने वायुवेगी अश्वों को हांका। वे सायाह्न काल में मथुरापुरी पहुंच गये। वह यादव अक्रूर अब मथुरा नगरी को देख कर राम एवं कृष्ण से कहने लगे।।६७।।

अक्रूर उवाच

पद्भ्यां यातं महावीर्यौ रथेनैको विशाम्यहम्।
गन्तव्यं वसुदेवस्य नो भवद्भ्यां तथा गृहे।
युवयोर्हि कृते वृद्धः कंसेन स निरस्यते॥६८॥

अक्रूर कहते हैं—हे दोनों महापराक्रमी! आप लोग अब पैदल चलिये। आप अभी वसुदेव के यहां न जायें। मैं वहां एकाकी जा रहा हूं। अन्यथा कंस उन वृद्ध को निष्कासित कर देगा।।६८।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रविवेशासावक्रूरो मथुरां पुरीम्। प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गमुपागतौ॥६९॥
स्त्रीभिर्नरैश्च सानन्दलोचनैरभिवीक्षितौ। जग्मतुर्लीलया वीरौ प्राप्यौ बालगजाविव॥७०॥
भ्रममाणौ तु तौ दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम्।
अयाचेतां स्वरूपाणि वासांसि रुचिराणि तौ॥७१॥
कंसस्य रजकः सोऽथ प्रसादारूढविस्मयः। बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चै रामकेशवौ॥७२॥

व्यासदेव कहते हैं—अक्रूर ने यह कहने के अनन्तर मथुरा में प्रवेश किया। बलराम तथा कृष्ण भी नगर में प्रवेशोपरान्त राजपथ पर पहुंचे। वे दोनों वीर बालक वहां बाल गज के समान लीला पूर्वक चले जा रहे थे। उस समय नर-नारी आनन्दित होकर उनको देखने लगे। भ्रमण करते-करते वे एक वस्त्र रंगने वाले धोबी के यहां पहुंचे। उन्होंने उससे अपने शरीर पर धारण करने योग्य वस्त्र मांगा। कंस की कृपा से गर्वित उस धोबी ने राम तथा कृष्ण से अनेक व्यंग्यपूर्ण वाक्य उच्च स्वर से कहा। कृष्ण उसके व्यवहार से कुपित हो गये। उन्होंने हथेली के प्रहार मात्र से उसका शिरच्छेद कर दिया। वह भूतल पर गिर पड़ा!।।६९-७२।।

ततस्तलप्रहारेण कृष्णतस्य दुरात्मनः। पातयामास कोपेन रजकस्य शिरो भुवि॥७३॥
हत्वाऽऽदाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरौ ततः।
कृष्णरामौ मुदायुक्तौ मालाकारगृहं गतौ॥७४॥
विकासिनेत्रयुगलो मालाकारोऽतिविस्मितः। एतौ कस्य कुतो यातौ मनसाऽचिन्तयत्ततः॥७५॥
पीतनीलाम्बरधरौ दृष्ट्वाऽतिसुमनोहरौ। स तर्कयामास तदा भुवं देवावुपागतौ॥७६॥
विकाशिमुखपद्माभ्यां ताभ्यां पुष्पाणि याचितः।
भुवं विष्टम्य हस्ताभ्यां पस्पर्श शिरसा महीम्॥७७॥
प्रसादसुमुखो नाथौ मम गेहमुपागतौ। धन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह तौ माल्यजीविकः॥७८॥
ततः प्रहृष्टवदनस्तयोः पुष्पाणि कामतः। चारूण्येतानि चैतानि प्रददौ च विलोभयन्॥७९॥
पुनः पुनः प्रणाय्यासौ मालाकारोत्तमो ददौ।
पुष्पाणि ताभ्यां चारूणि गन्धवन्त्यमलानि च॥८०॥

मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रददौ वरम्।
श्रीस्त्वांमत्संश्रया भद्र न कदाचित्त्यजिष्यति॥८१॥
बलहानिर्न ते सौम्य धनहानिरथापि वा। यावद्धरणिसूर्यौ च सन्तीतः पुत्रपौत्रिकी॥८२॥

कृष्ण तथा राम ने उसके वध के उपरान्त उसके यहां से पीले तथा नीले रंग के वस्त्रों को लेकर धारण किया तथा मुदित मन से माली के यहां गये। माली ने विस्मित होकर उत्फुल्ल नेत्रों से उन्हें देखा और मन ही मन सोचा कि यह कहां से आये हैं, कौन हैं? उसने राम-कृष्ण को पीत-नील वस्त्रधारी अत्यन्त सुमनोहर रूप वाला देखकर यह चिन्तन किया कि "हो न हो, ये देवता हैं, जो पृथिवी पर आये हैं।" राम तथा कृष्ण ने अपने मुखकमल से निर्गत वाणी द्वारा माली से पुष्प-माल्यादि मांगा। उस माली ने अपनी दोनों हथेली पृथिवी पर रखकर अपना शिर भूतल से स्पर्श कराते हुये राम-कृष्ण को प्रणाम करके कहा—"हे नाथ! हे प्रसन्नानन! आपके गृहागमन से मैं तो धन्य हो गया। मैं अब आप लोगों की पूजा करूंगा। तत्पश्चात् उसने हर्षित होकर "ये अच्छे पुष्प हैं, ये सुन्दर पुष्प हैं" ऐसे वाक्यों से लुभाते हुये राम-कृष्ण को पुनः-पुनः प्रणति निवेदनोपरान्त उनको सुन्दर-गन्धयुक्त तथा स्वच्छ पुष्प प्रदान किया। इससे कृष्ण प्रसन्न हो गये। उन्होंने माली को वर दिया "हे मालाकार! भद्र! मेरे आश्रित रहने वाली लक्ष्मी तुम्हारा त्याग नहीं करेगी। तुम्हें कभी भी बलहानि तथा धनहानि जनित कष्ट नहीं होगा। जब तक पृथिवी पर चन्द्र-सूर्य हैं, तुम्हारी सन्तति परम्परा, पुत्र-पौत्र बने रहेंगे"।।७३-८२।।

भुक्त्वा च विपुलान्भोगांस्त्वमन्ते मत्प्रसादतः। ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यलोकमवाप्स्यसि॥८३॥
धर्मे मनश्च ते भद्र सर्वकालं भविष्यति। युष्मत्सन्ततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति॥८४॥
नोपसर्गादिकं दोषं युष्मत्सन्ततिसम्भवः। अवाप्स्यति महाभाग यावत्सूर्यो भविष्यति॥८५॥

"तुम विपुल भोगों का उपभोग करने के अनन्तर मेरी कृपा द्वारा मेरा स्मरण करते हुये मेरा लोक प्राप्त करोगे। हे भद्र! सर्वकाल में तुम्हारा मन धर्मतत्पर रहेगा। तुम्हारे वंश के लोग दीर्घायु होंगे। जब तक चन्द्र-सूर्य हैं, उनको उपसर्ग आदि दोष नहीं होगा"।।८३-८५।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तद्गृहात्कृष्णो बलदेवसहायवान्।
निर्जगाम मुनिश्रेष्ठा मालाकारेण पूजितः॥८६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मेऽक्रूरप्रत्यागमनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९२॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवरवृन्द! बलदेव सहित कृष्ण एवंविध मालाकार से पूजित होकर उसके गृह से बाहर आये।।८६।।

।।द्विनवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जा के उद्धार का वर्णन

व्यास उवाच

राजमार्गे ततः कृष्णः सानुलेपनभाजनाम्। ददर्श कुब्जामायान्तीं नवयौवनगोचराम्॥१॥
तामाह ललितं कृष्णः कस्येदमनुलेपनम्। भवत्या नीयते सत्यं वदेन्दीवरलोचने॥२॥
सकामेनैव सा प्रोक्ता सानुरागा हरिं प्रति। प्राह सा ललितं कुब्जा ददर्श च बलात्ततः॥३॥

व्यासदेव कहते हैं—तदनन्तर कृष्ण ने राजपथ पर अनुलेपादि तथा गन्धद्रव्यादि का पात्र लेकर जाती नवयौवनगर्विता कुब्जा को देखकर उससे ललित वचनों में कहा—"हे कमलनयनी! ये अनुलेपनादि लेकर कहां जा रही हो? सत्य कहो।" कृष्ण ने सकाम भाव से उससे यह वाक्य कहा था। अतः कुब्जा भी अनुराग पूर्वक कृष्ण को देखती कहने लगी—॥१-३॥

कुब्जोवाच

कान्त कस्मान्न जानासि कंसेनापि नियोजिता। नैकवक्रेति विख्यातामनुलेपनकर्मणि॥४॥
नान्यपिष्टं हि कंसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम्। भवत्यहमतीवास्य प्रसादधनभाजनम्॥५॥

कुब्जा कहती है—हे कान्त! क्या आप नहीं जानते? मेरा नाम एकवक्रा है। मैं अनुलेपन कार्य हेतु प्रसिद्ध हूं। मैं कंस की सेविका हूं। अन्य के द्वारा पीसा-बनाया लेप कंस को पसन्द नहीं होता। मैं उसका अनुलेपन कार्य करने वाली तथा उसकी कृपाभाजन हूं॥४-५॥

श्रीकृष्ण उवाच

सुगन्धमेतद्राजार्हं रुचिरं रुचिरानने। आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम्॥६॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे रुचिरानने! यह सुगन्ध तो अत्यन्त मनोहारी है। यह राजाओं के योग्य है। अतः हमें अपने अंगों में लगाने हेतु यह प्रदान करो॥६॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा तमाह स कृष्णं गृह्यतामिति सादरम्। अनुलेपं च प्रददौ गात्रयोग्यमथोभयोः॥७॥
भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ। सेन्द्रचापौ विराजन्तौ सितकृष्णाविवाम्बुदौ॥८॥
ततस्तां चिबुके शौरिरुल्लापनविधानवित्। उल्लाप्य तोलयामास द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना॥९॥
चकर्ष पद्भ्यां च तदा ऋजुत्वं केशवोऽनयत्। ततः सा ऋजुतां प्राप्ता योषितामभवद्वरा॥१०॥

व्यासदेव कहते हैं—यह सुनकर कुब्जा ने कृष्ण से सादर कहा—"ग्रहण करिये" तथा वह अंग के लिये उचित लगने वाला अंगलेपन कृष्ण-बलराम को प्रदान किया। तत्पश्चात् उन दोनों पुरुषश्रेष्ठ ने जहां जिस अनुलेपन को लगाना उचित था, तदनुरूप अनुलेपन लगाकर दोनों वीर वहां इन्द्रधनुष तथा श्वेत-कृष्ण मेघ ऐसे

शोभायमान हो गये। तदनन्तर उल्लास-विलास चतुर कृष्ण ने अपनी दो अंगुलि द्वारा कुब्जा के कपोल को पकड़ा और उसे ऊंचा किया। उसी समय अपने दोनों पैरों से उसके पैरों को नीचे खींचा। इस प्रक्रिया से कृष्ण ने कुब्जा का वक्रत्व (कूबड़) दूर कर दिया। वह सीधी हो गयी। अब वह सीधी लग रही थी और श्रेष्ठ स्त्री हो गई।।७-१०।।

विलासललितं प्राह प्रेमगर्भभरालसम्। वस्त्रे प्रगृह्य गोविन्दं व्रज गेहं ममेति वै॥११॥
आयास्ये भवतीगेहमिति तां प्राह केशवः।
विससर्ज जहासोच्चै रामस्याऽऽलोक्य चाऽऽननम्॥१२॥

इसके पश्चात् कुब्जा ने गोविन्द के वस्त्र को पकड़ कर विलास से ललित हो रही प्रेमगर्वित वाणी से कहा—"मेरे गृह चलिये।" केशव ने उससे कहा—"मैं आऊंगा।" तदनन्तर कुब्जा को विदा करके वे बलराम की ओर देखकर उच्च स्वर में हंसने लगे।।११-१२।।

भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ नीलपीतम्बरावुभौ। धनुःशालां ततो यातौ चित्रमाल्योपशोभितौ॥१३॥
अध्यास्य च धनूरत्नं ताभ्यां पृष्टैस्तु रक्षिभिः।
आख्यातं सहसा कृष्णो गृहीत्वाऽपूरयद्धनुः॥१४॥
ततः पूरयता तेन भज्यमानं बलाद्धनुः। चकारातिमहाशब्दं मथुरा तेन पूरिता॥१५॥
अनुयुक्तौ ततस्तौ च भग्ने धनुषि रक्षिभिः।
रक्षिसैन्यं निकृत्योभौ निष्क्रान्तौ कार्मुकालयात्॥१६॥
अक्रूरागमवृत्तान्तमुपलभ्य तथा धनुः। भग्नं श्रुत्वाऽथ कंसोऽपि प्राह चाणूरमुष्टिकौ॥१७॥

तदनन्तर भक्ति द्वारा कुब्जा से प्राप्त अनुलेप का लेप अपने अंगों पर किये हुये, नील-पीत वस्त्र धारण किये हुये, नाना वर्ण की मालाओं से शोभित राम तथा कृष्ण ने कंस की धनुषशाला की ओर प्रस्थान किया। वहां यज्ञीय श्रेष्ठ धनुष के पास जो सब रक्षक नियुक्त थे, उनसे कृष्ण ने धनुष के सम्बन्ध में पूछा। रक्षीगण ने कृष्ण को धनुष दिखला दिया। तदनन्तर कृष्ण ने हठात् उस धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यंचा को बल पूर्वक ऐसे खींचा कि वह धनुष टूट गया और उसके टूटने के महाशब्द से मथुरापुरी नगरी गुंजायमान हो गई। धनुर्भंग देखकर रक्षीगण रामकृष्ण पर टूट से पड़े। रामकृष्ण उन रक्षीगण को प्रहार द्वारा विमुख करके धनुषशाला से बाहर निकल पड़े। उधर कंस ने अक्रूर के आगमन तथा धनुर्भंग का संवाद पाकर चाणूर तथा मुष्टिक से कहा—।।१३-१७।।

कंस उवाच

गोपालदारकौ प्राप्तौ भवद्भ्यां तौ ममाग्रतः।
मल्लयुद्धेन हन्तव्यौ मम प्राणहरौ हि तौ॥१८॥
नियुद्धे तद्विनाशेन भवद्भ्यां तोषितो ह्यहम्। दास्याम्यभिमतान्कामान्नान्यथैतन्महाबलौ॥१९॥
न्यायतोऽन्यायतो वाऽपि भवद्भ्यां तौ ममाहितौ।
हन्तव्यौ तद्वधाद्राज्यं सामान्यं वो भविष्यति॥२०॥

कंस कहता है—दोनों गोपाल बालक यहां आ गये हैं। मेरे सामने उन दोनों को मल्लयुद्ध में निहत करो। वे मेरे प्राणों का हरण करने वाले हैं। उनको नष्ट करने पर मैं तुम लोगों को इच्छानुरूप पुरस्कार प्रदान करूंगा। यह अन्यथा नहीं होगा। चाहे न्यायतः अथवा अन्यायतः, जैसे भी हो, मेरे अहितकारी इन दोनों का वध करो। उनका वध कर देने पर यह राज्य भी तुम्हारे समानाधिकार में रहेगा (मेरे साथ तुम्हारा भी अधिकार होगा)।।१८-२०।।

व्यास उवाच

इत्यादिश्य स तौ मल्लौ ततश्चाऽऽहूय हस्तिपम्।
प्रोवाचौच्चैस्त्वया मत्तः समाजद्वारि कुञ्जरः॥२१॥
स्थाप्यः कुवलयापीडस्तेन तौ गोपदारकौ। घातनीयौ नियुद्धाय रङ्गद्वारमुपागतौ॥२२॥
तमाज्ञाप्याथ दृष्ट्वा च मञ्चान्सर्वानुपाहृतान्। आसन्नमरणः कंसः सूर्योदयमुदैक्षत॥२३॥
ततः समस्तमञ्चेषु नागरः स तदा जनः। राजमञ्चेषु चाऽऽरुढाः सह भृत्यर्महीभृतः॥२४॥
मल्लप्राश्निकवर्गश्च रङ्गमध्ये समीपगः।
कृतः कंसेन कंसोऽपि तुङ्गमञ्चे व्यवस्थितः॥२५॥

व्यासदेव कहते हैं—कंस ने इन दोनों पहलवानों को यह आदेश देकर महावत से बल पूर्वक कहा—“तुम मेरे उस मदमत्त कुवलयापीड़ हाथी को रंगद्वार पर खड़ा करो। जब वे दोनों गोपबालक मल्लयुद्धार्थ वहां आयें, तब तुम इस हाथी द्वारा उन पर आक्रमण कराना।” उसको यह आज्ञा देकर शीघ्र मृत्युमुख में जाने वाले कंस ने यह देखा कि सभी मंच सज्जित हो गये। तब वह सूर्योदय होने की प्रतीक्षा करने लगा। क्रमशः समय होने पर नगरवासी लोग मंचों पर आकर बैठने लगे थे। उधर सभी राजकीय मंचों पर राजा लोग अपने परिचारकों के साथ आकर बैठने लगे। कंस भी रंगभूमि के निकट मल्लों का दोषगुण विवेचित करने वाले पहलवान लोगों को मंचों पर बैठाकर स्वयं एक उच्च मंच पर जा बैठा।।२१-२५।।

अन्तःपुराणां मञ्चाश्च यथाऽन्ये परिकल्पितः। अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नगरयोषिताम्॥२६॥
नन्दगोपादयो गोपा मञ्चेष्वन्येष्ववस्थिताः। अक्रूरवसुदेवौ च मञ्चप्रान्ते व्यवस्थितौ॥२७॥
नगरीयोषितां मध्ये देवकी पुत्रगर्धिनी।
अन्तकालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामीति मुखं स्थिता॥२८॥

इन मंचों के अतिरिक्त वहां पर अन्तःपुर की स्त्रियों, प्रधान-प्रधान वारवनिताओं, नगर की स्त्रियों के निमित्त अलग-अलग मंच बने थे। नन्दगोप आदि गोपालक एक अलग मंच पर आसीन थे। अक्रूर तथा वसुदेव मंचप्रान्त पर बैठे थे। पुत्रस्नेह से विकल देवकी वहां इस आशा से बैठी थी कि मैं मृत्युमुख में जा रहे अपने पुत्रों को देख सकूंगी। इस कारण वे नगरवासिनी स्त्रियों के साथ बैठ गयीं।।२६-२८।।

वाद्यमानेषु तूर्येषु चाणूरे चातिवल्गति। हाहाकारपरे लोक आस्फोटयति मुष्टिके॥२९॥
हत्वा कुवलयापीडं हस्त्यारोहप्रचोदितम्। मदासृगनुलिप्ताङ्गौ गजदन्तवरायुधौ॥३०॥

मृगमध्ये यथा सिंहौ गर्वलीलावलोकिनौ। प्रविष्टौ सुमहारङ्ग बलदेवजनार्दनौ॥३१॥

इसके पश्चात् वहां तूर्यनाद होने लगा। चाणूर ने अतिशय गर्व दिखाया। मुष्टिक भी ताल ठोंकने लगा तथा लोग हाहाकार करने लगे। इसी बीच महावत सहित कुवलयापीड़ गज का वध करके उसके मद एवं रक्त से लिप्त अंगों वाले तथा उस गज के महान् आयुधरूपी दोनों दांतों को हाथों में पकड़े बलदेव तथा जनार्दन ने उस महारंग में प्रवेश किया, मानों मृगों के बीच सिंह ने प्रवेश किया है। वे गर्व पूर्वक लीला में उस रंगभूमि को देखते जा रहे थे।।२९-३१।।

हाहाकारो महाञ्जज्ञे सर्वरङ्गेष्वनन्तरम्।
कृष्णोऽयं बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्मयात्॥३२॥
सोऽयं येन हता घोरा पूतना सा निशाचरी।
प्रक्षिप्तं शकटं येन भग्नौ च यमलार्जुनौ॥३३॥
सोऽयं यः कालियं नागं ननर्ताऽऽरुह्य बालकः।
धृतो गोवर्धनो येन सप्तरात्रं महागिरिः॥३४॥

अरिष्टो धेनुकः केशी लीलयैव महात्मना। हतो येन च दुर्वृत्तो दृश्यते सोऽयमच्युतः॥३५॥

उस समय समस्त रंगमंच में विस्मय से भरे लोगों का महान् कोलाहल श्रुतिगोचर हो रहा था कि "ये कृष्ण हैं", "ये बलराम हैं, जिन्होंने महाघोरा, बालहत्यारी पूतना का वध किया था, जिन्होंने शकट उलट दिया था, यमलार्जुन वृक्ष को भग्न किया था, कालीय के फण पर नृत्य किया था, गोवर्द्धन महापर्वत को सात रात्रि पर्यन्त उठाया था, ये वे ही कृष्ण हैं! दुर्वृत्त अरिष्ट, धेनुक तथा केशी को जिन महात्मा ने लीला में ही मार दिया था, वे अच्युत यहां दृष्टिगोचर हो रहे हैं।।३२-३५।।

अयं चास्य महाबाहुर्बलदेवोऽग्रजोऽग्रतः। प्रयाति लीलया योषिन्मनोनयननन्दनः॥३६॥

अयं स कथ्यते प्राज्ञैः पुराणार्थवलोकिभिः।
गोपालो यादवं वंशं मग्नमभ्युद्धरिष्यति॥३७॥

अयं स सर्वभूतस्य विष्णोरखिलजन्मनः। अवतीर्णो महीमंशो नूनं भारहरो भुवः॥३८॥
इत्येवं वर्णिते पौरै रामे कृष्णे च तत्क्षणात्। उरस्तताप देवक्याः स्नेहस्नुतपयोधरम्॥३९॥
महोत्सवमिवालोक्यं पुत्रावेव विलोकयन्। युवेव वसुदेवोऽभूद्विहायाभ्यागतां जराम्॥४०॥
विस्तारिताक्षियुगला राजान्तःपुरयोषितः। नागरस्त्रीसमूहश्च द्रष्टुं न विरराम तौ॥४१॥

ये महाबली बलदेव उन कृष्ण के बड़े भ्राता हैं। ये नारीगण के नयनों को आनन्द देने वाले बलभद्र हैं, ये लीला पूर्वक आगमन कर रहे हैं। प्राज्ञ पुराणों के अर्थ के तत्ववेत्ताओं का कथन है कि ये डूबे यादववंश का पुनरुद्धार करेंगे। वस्तुतः ये सर्वभूतात्मक अखिलात्मा विष्णु के अंश से भूभार हरणार्थ महीतल पर अवतरित हैं। समस्त नगरवासी लोग राम तथा कृष्ण के सम्बन्ध में इस प्रकार विवेचना किये जा रहे थे। देवकी का वक्षःस्थल सन्तप्त हो उठा। उनके स्तनों से दुग्धक्षरण होने लगा। महोत्सव के समान दोनों पुत्रगण को देखकर वसुदेव का वृद्धभाव ऐसा हटा कि वे स्वयं में युवावस्था का अनुभव करने लगे। नगरीय स्त्रियां तथा अन्य

स्त्रियां अपने विस्फारित नयनों से रामकृष्ण को देखे जा रहीं थीं। दर्शक क्षणमात्र के लिये भी इस राम-कृष्ण दर्शन से विरत नहीं हो रहे थे।।३६-४१।।

स्त्रिय ऊचुः

सख्यः पश्यत कृष्णस्य मुख्यमप्यम्बुजेक्षणम्।
गजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बुकणिकाञ्चितम्।।४२।।
विकासीव सरोम्भोजमवश्यायजलोक्षितम्। परिभूताक्षरं जन्म सफलं क्रियतां दृशः।।४३।।
श्रीवत्साङ्कं जगद्धाम बालस्यैतद्विलोक्यताम्।
विपक्षक्षपणं वक्षो भुजयुग्मं च भामिनि।।४४।।
वल्गता मुष्टिकेनैव चाणूरेण तथा परैः। क्रियते बलभद्रस्य हास्यमीषद्विलोक्यताम्।।४५।।
सख्यः पश्यत चाणूरं नियुद्धार्थमयं हरिः।
समुपैति न सन्त्यत्र किं वृद्धा युक्तकारिणः।।४६।।
क्व यौवनोन्मुखीभूतः सुकुमारतनुर्हरिः। क्व वज्रकठिनाभोशरीरोऽयं महासुरः।।४७।।
इमौ सुललितौ रङ्गे वर्तेते नवयौवनौ। दैतेयमल्लाश्चाणूरप्रमुखास्त्वतिदारुणाः।।४८।।
नियुद्धप्राश्निकानां तु महानेष व्यतिक्रमः। यद्बालबलिनोर्युद्धं मध्यस्थैः समुपेक्ष्यते।।४९।।

स्त्रियां कहती हैं—हे सखीगण! गजयुद्ध के प्रयास के कारण उत्पन्न स्वेदजल के कणों से शोभित कमलनयन कृष्ण का मुख तो देखो। सरोवर में विकसित कमल पर जैसे ओसकण पड़े रहते हैं, उसी प्रकार इस अनिर्वचनीय मुख का दर्शन करके नेत्रों को सफल बनाओ। हे भामिनि! जीव के आधाररूप श्रीवत्स चिह्नांकित, विपक्ष विरोधीगण का क्षय करने वाले के वक्षःस्थल तथा भौंओं को देखो। मुष्टिक चाणूर की स्पर्द्धा को देखकर मुस्कराते बलभद्र के मुखमण्डल का तो अवलोकन करो। हे सखी! यह देखो! बाहुयुद्धार्थ हरि आगे बढ़ रहे हैं। क्या योग्य विचारण वृद्ध लोग यहां नहीं हैं? यौवनोन्मुख सुकुमार देहधारी हरि और कहां? वज्र के समान कठोर पूर्ण शरीर वाला यह महासुर कहां! इस रंगभूमि में ये दोनों बालक नवयौवनशाली तथा कोमल ललित हैं, उधर चाणूर प्रभृति प्रमुख दैत्य मल्ल तो अत्यन्त दारुणाकृति हैं। बाहुयुद्ध की व्यवस्था करने वाले ने तो यह महान् व्यत्रिक्रम किया है! उन्होंने मध्यस्थ होकर भी बालकों से इन महाबलियों के युद्ध की घटना की पूरी उपेक्षा जो किया है।।४२-४९।।

व्यास उवाच

इत्थं पुरस्त्रीलोकस्य वदतश्चालयन्भुवम्। ववर्ष हर्षोत्कर्षं च जनस्य भगवान्हरिः।।५०।।
बलभद्रोऽपि चाऽऽस्फोट्य ववल्ग ललितं यदा।
पदे पदे तदा भूमिर्न शीर्णा यत्तदद्भुतम्।।५१।।
चाणूरेण ततः कृष्णो युयुधेऽमितविक्रमः। नियुद्धकुशलो दैत्यो बलदेवने मुष्टिकः।।५२।।
सन्निपातावधूतैश्च चाणूरेण समं हरिः। क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव कीलीवज्रनिपातनैः।।५३।।

पादोद्धूतैः प्रमृष्टाभिस्तयोर्युद्धमभून्महत्। अशस्त्रमतिघोरं तत्तयोर्युद्धं सुदारुणम्॥५४॥

व्यासदेव कहते हैं—नगर की स्त्रियां इस प्रकार कह रही थीं, तभी हरि अपने पैरों की धमक से भूमि को कंपित करते वहां के उपस्थित नागरिकों के हर्ष को वर्द्धित कर रहे थे। बलभद्र भी ताल ठोंक कर ललित भाव से मल्लों को ललकार रहे थे। उनके पगचालन से भूमि विदीर्ण नहीं हो गयी, यह परम आश्चर्य था! तत्पश्चात् अमित विक्रमी कृष्ण चाणूर से युद्धरत हो गये। बाहुयुद्ध में कुशल मुष्टिक मल्ल बलभद्र से युद्ध करने लगा। इस समाजोत्सव में सबके समक्ष कृष्ण तथा चाणूर अपने बल-पराक्रम से युद्धतत्पर होकर पास खींचना, दूर ढकेलना, पृथिवी पर गिराना, मुष्टि प्रहार, वज्रवत मुक्के का प्रहार, पैर से प्रहार, रगड़ना इत्यादि दांव-पेंच से बिना आयुध दारुणतम महायुद्ध करने लगे।।५०-५४।।

स्वबलप्राणनिष्पाद्यं समाजोत्सवसन्निधौ। यावद्यावच्च चाणूरो युयुधे हरिणा सह॥५५॥
प्राणहानिमापाग्र्यां तावत्तावन्न बान्धवम्। कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मयः॥५६॥
खेदाच्चालयता कोपान्निजशेषकरे करम्। बलक्षयं विवृद्धिं च दृष्ट्वा चाणूरकृष्णयोः॥५७॥
वारयामास तूर्याणि कंसः कोपपरायणः। मृदङ्गादिषु वाद्येषु प्रतिषिद्धेषु तत्क्षणात्॥५८॥
खसङ्गतान्यवाद्यन्त दैवतूर्याण्यनेकशः। जय गोविन्द चाणूरं जहि केशव दानवम्॥५९॥
इत्यन्तर्धिगता देवास्तुष्टुवुस्ते प्रहर्षिताः। चाणूरेण चिरं कालं क्रीडित्वा मधुसूदनः॥६०॥

यह युद्ध ऐसा था मानों समाजोत्सव रूप उस यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति प्रदान करना। जैसे-जैसे चाणूर कृष्ण से युद्ध करता जाता, वैसे, उसी क्रम से वह स्वयं को बलहीन तथा निःसहाय अनुभव करने लगा। जगन्मय कृष्ण तो उसके साथ लीलामय युद्ध ही किये जा रहे थे। उन्होंने अपने हाथों से क्लान्ति के वशीभूत होकर हाथ चलाने वाले चाणूर की भुजा पकड़ा तथा उसे पीसने लगे। तब कंस ने चाणूर का बलक्षय तथा कृष्ण की बलवृद्धि देखकर क्रोधवश होकर वहां तूर्यवादन तक बन्द करवा दिया। वहां के तूर्य, मृदंग आदि वाक्य जैसे ही बन्द किये गये, तत्क्षण आकाश में देवताओं के अनेक तूर्य बजाये जाने लगे। देवगण वहां से अन्तर्हित् स्थिति में ही कहने लगे—"हे गोविन्द, हे केशव! आपकी जय हो! चाणूर दैत्य का वध करिये" इस प्रकार देवता आकाश से स्तव करने लगे! चाणूर के साथ मधुसूदन दीर्घकाल तक यही क्रीड़ा करते जा रहे थे!।।५५-६०।।

उत्पाट्य भ्रामयामास तद्वधाय कृतोद्यमः। भ्रामयित्वा शतगुणं दैत्यमल्लममित्रजित्॥६१॥
भूमावास्फोटयामास गगने गतजीवितम्। भूमावास्फोटितस्तेन चाणूरः शतधा भवन्॥६२॥

तत्पश्चात् कृष्ण ने उसके वधार्थ उद्यम पूर्वक उसे ऊर्ध्व में उठाया तथा घुमाने लगे। शत्रुजित् कृष्ण ने उसे ऊर्ध्व में सौ बार घुमा कर उसे प्राण रहित करके धरती पर पटक दिया। भूपतित होते ही चाणूर का देह सौ टुकड़े हो गया।।६१-६२।।

रक्तस्रावमहापङ्कां चकार स तदा भुवम्। बलदेवस्तु तत्कालं मुष्टिकेन महाबलः॥६३॥

युयुधे दैत्यमल्लेन चाणूरेण यथा हरिः।
सोऽप्येनं मुष्टिना मूर्ध्ना वक्षस्याहत्य जानुना॥६४॥

पातयित्वा धरापृष्ठे निष्पिपेष गतायुषम्।
कृष्णस्तोशलकं भूयो मल्लराजं महाबलम्॥६५॥
वाममुष्टिप्रहारेण पातयामास भूतले। चाणूरे निहते मल्ले मुष्टिके च निपातिते॥६६॥
नीते क्षयं तोशलके सर्वे मल्लाः प्रदुद्रुवुः। ववल्गतुस्तदा रङ्गे कृष्णसङ्कर्षणावुभौ॥६७॥
समानवयसो गोपान्बलादाकृष्य हर्षितौ। कंसोऽपि कोपरक्ताक्षः प्राहोच्चैर्व्यायतान्नरान्॥६८॥
गोपावेतौ समाजौघान्निष्क्रम्येतां बलादितः।
नन्दोऽपि गृह्यतां पापो निगडैराशु बध्यताम्॥६९॥
अवृद्धार्हेण दण्डेन वसुदेवोऽपि वध्यताम्।
वल्गन्ति गोपाः कृष्णेन ये चेमे सहिताः पुनः॥७०॥
गावो ह्रियन्तामेषां च यच्चास्ति वसु किञ्चन। एवमाज्ञापयन्तं तं प्रहस्य मधुसूदनः॥७१॥

वहां की भूमि रक्त बहने से कीचड़ युक्त हो गयी। बलदेव भी महादैत्य बली मुष्टिक से युद्ध कर रहे थे। उन्होंने मुक्के के प्रहार से उसके मस्तक को आहत करके अपने जानु का प्रहार उसके वक्ष पर किया। वहां उसे ऐसा दबाया कि वह भी मृत हो गया। तब कृष्ण ने महाबली मल्लराज तोषलक को बायें मुक्के के प्रहार से निहत करके भूपतित कर दिया। चाणूर तथा मुष्टिक का वध हो जाने तथा तोषलक के मृत हो जाने पर अन्य मल्ल लोग तीव्र गति से भाग गये! उस रंगस्थल में कृष्ण एवं बलराम ने बलात् समवयस्क गोपबालकों को खींच कर बुलाया तथा ताल ठोंकते वहां नृत्यरत हो गये। उस समय कंस क्रोधित होकर नेत्रों को लाल करके बलवान् लोगों से उच्च स्वर में कहने लगा—"बल पूर्वक सभास्थल से गोपगण को निकाल बाहर करो। वसुदेव को वृद्धों को देने योग्य दण्ड से दण्डित करो। नन्द को पकड़कर जंजीर से जकड़ दो। ये गोप, जो कृष्ण के साथ ताल ठोंक रहे हैं, इनका समस्त धन तथा गौयें हरण करो।" कंस की आज्ञा सुनकर कृष्ण हंसने लगे।।६३-७१।।

उत्पत्याऽऽरुह्य तन्मञ्चं कंसं जग्राह वेगितः। केशेष्वाकृष्य विगलत्किरीटमवनीतले॥७२॥
स कंसं पातयामास तस्योपरि पपात च। निःशेषजगदाधारगुरुणा पततोपरि॥७३॥
कृष्णेन त्याजितः प्राणानुग्रसेनात्मजो नृपः। मृतस्य केशेषु तदा गृहीत्वा मधुसूदनः॥७४॥
चकर्ष देहं कंसस्य रङ्गमध्ये महाबलः। गौरवेणातिमहता परिपातेन कृष्यता॥७५॥
कृता कंसस्य देहेन वेगितेन महात्मना। कंसे गृहीते कृष्णेन तद्भ्राताऽभ्यागतो रुषा॥७६॥
सुनामा बलभद्रेण लीलयेव निपातितः। ततो हाहाकृतं सर्वमासीत्तद्रङ्गमण्डलम्॥७७॥
अवज्ञया हतं दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम्। कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरम्॥७८॥
देवक्याश्च महाबाहुर्बलदेवसहायवान्। उत्थाप्य वसुदेवस्तु देवकी च जनार्दनम्।
स्मृतजन्मोक्तवचनौ तावेव प्रणतौ स्थितौ॥७९॥

अब कृष्ण तत्काल उछल कर मंच पर जा पहुंचे। उन्होंने केश पकड़ कर कंस को गिराया। उसके

मुकुट भूतल पर गिर पड़े। वे कंस को गिरा कर उसके ऊपर कूद पड़े। अशेष जगत् के आधार तथा गुरुतर कृष्ण के ऊपर गिरने से उस उग्रसेननंदन कंस ने अपने प्राण त्याग दिये। महाबली मधुसूदन उस समय कंस का केश खींचते हुये उसके शरीर को रंगभूमि में यत्र-तत्र खींचते जा रहे थे। महात्मा कृष्ण द्वारा अत्यन्त भारी कंस देह को पटकना तथा खींचना, इससे वहां की धरती भी मानों खींची जाने लगी। कृष्ण द्वारा कंस का यह वध देखकर उसका भाई सुनामा क्रोध पूर्वक आया, लेकिन बलभद्र ने उसे लीला पूर्वक मृत कर दिया। कृष्ण द्वारा मथुराधीश कंस को इतनी अवज्ञा के साथ मारे जाते देखकर समस्त रंगमण्डल हाहाकार करने लगा। महाबाहु कृष्ण तथा बलदेव ने उस समय शीघ्रता से वसुदेव एवं देवकी का चरण पकड़ा। वसुदेव तथा देवकी भी वहां उठकर उनके जन्मकाल के वचनों का स्मरण करके जनार्दन के समक्ष प्रणत होकर कहने लगे।।७२-७९।।

वसुदेव उवाच

प्रसीद देवदेवेश देवानां प्रवर प्रभो। तथाऽऽवयोः प्रसादेन कृताभ्युद्धार केशव॥८०॥
आराधितो यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम। दुर्वृत्तनिधनार्थाय तेन नः पावितं कुलम्॥८१॥
त्वमन्तः सर्वभूतानां सर्वभूतेष्ववस्थितः। वर्तते च समस्तात्मंस्त्वत्तो भूतभविष्यती॥८२॥
यज्ञे त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाच्युत। त्वमेव यज्ञो यज्वा च यज्ञानां परमेश्वर॥८३॥
सापह्नवं मम मनो यदेतत्त्वयि जायते। देवक्याश्चाऽऽत्मजप्रीत्या तदत्यन्तविडम्बना॥८४॥
त्वं कर्ता सर्वभूतानामनादिनिधनो भवान्।
क्व च मे मानुषस्यैषा जिह्वा पुत्रेति वक्ष्यति॥८५॥

वसुदेव कहते हैं—हे देवदेव प्रभु! प्रसन्न हो जायें। हे केशव! आप कृपा पूर्वक हमारा उद्धार करिये। हे भगवान्! आपने आराधित होकर दुर्वृत्त निधनार्थ (दुराचारियों के वधार्थ), मेरे घर में अवतार लिया था। इससे मेरा कुल पावन हो गया। आप सभी प्राणीगण के अन्तर में अवस्थान करते हैं। हे सबके आत्मन्! आपसे ही भूत-भविष्य-वर्त्तमान प्रवर्तित होता है। हे सर्व देवमय अचिन्त्य अच्युत! आप यज्ञ में अर्चित होते हैं। हे परमेश्वर! आप ही यज्ञ तथा उस यज्ञ के यजमान हैं। पुत्रस्नेह के कारण मेरा तथा देवकी का मन आपसे ईश्वरवत् व्यवहार करने में संकोच का अनुभव कर रहा है। यही अतीव विडम्बना है। आप सभी प्राणीगण के कर्त्ता तथा जन्म-मरण विवर्जित हैं। हम मनुष्य हैं। हमारी जिह्वा आपको पुत्र कैसे कहेगी।।८०-८५।।

जगदेतज्जगन्नाथ सम्भूतमखिलं यतः। कया युक्त्या विना मायां सोऽस्मत्तः सम्भविष्यति॥८६॥
यस्मिन्प्रतिष्ठितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
स कोष्ठोत्सङ्गशयनो मनुष्याज्जायते कथम्॥८७॥

हे जगन्नाथ! जिनमें समस्त स्थावर-जंगम जगत् प्रतिष्ठित है, वे माया बिना कैसे हमारे द्वारा उत्पन्न होंगे? वे किस प्रकार मनुष्य से उत्पन्न होकर उसकी गोद में शयन करेंगे।।८६-८७।।

स त्वं प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्वमंशावतारकरणैर्न ममासि पुत्रः।
आब्रह्मपादपमयं जगदीश सर्वं, चित्ते विमोहयसि किं परमेश्वरात्मन्॥८८॥

मायाविमोहितदृशा तनयो ममेति, कंसाद्भयं कृतवता तु मयाऽतितीव्रम्।
नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलस्य, वृद्धिं गतोऽसि मम चैव गवामधीश॥८९॥
कर्माणि रुद्रमरुदश्विशतक्रतूनां, साध्यानि यानि न भवन्ति निरीक्षितानि।
त्वं विष्णुरीशजगतामुपकारहेतोः, प्राप्तोऽसि नः परिगतः परमो विमोहः॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कंसवधकथनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९३॥

हे परमेश्वर! ऐसे आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जायें। आप अपने अंशावतार से विश्व का पालन करिये। आप मेरे पुत्र नहीं हैं। हे परमेश्वरात्मन्! हे ईश! चित्त में निविष्ट होकर आप क्यों मोह प्रदान कर रहे हैं? ब्रह्मा से तृण पर्यन्त सब कुछ आप हैं। मैंने माया से मोहित होकर आपको अपना पुत्र मान लिया तथा कंस से तीव्र भय की आशंका के कारण मैं आपको गोकुल ले गया। हे गौओं के अधीश्वर! मैं स्वयं शत्रुभय से आकुल था। आप मेरे उद्धारक रक्षक हो गये। रुद्र, मरुत्, अश्विनीकुमार, इन्द्र प्रभृति के लिये जो कर्म असाध्य था, जो उनके लिये दृष्टिगोचर भी नहीं हो सकता, वह आपने किया है। आप ही विष्णु हैं। आप जगत् के उपकारार्थ यहां प्रकट हुये हैं। अब मेरा मोह विगत हो रहा है।।८८-९०।।

।।त्रिनवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवकी-वसुदेव के साथ इन्द्र का संवाद

व्यास उवाच

तौ समुत्पन्नविज्ञानौ भगवत्कर्मदर्शनात्। देवकीवसुदेवौ तु दृष्ट्वा मायां पुनर्हरिः॥१॥
मोहाय यदुचक्रस्य विततान स वैष्णवीम्।
उवाच चाम्ब भोस्तात चिरादुत्कण्ठितेन तु॥२॥
भवन्तौ कंसभीतेन दृष्टौ सङ्कर्षणेन च। कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम्॥३॥
स वृथा क्लेशकारी वै साधूनामुपजायते। गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम्॥४॥
कुर्वतः सफलं जन्म देहिनस्तात जायते। तत्क्षन्तव्यमिदं सर्वमतिक्रमकृतं पितः।
कंसवीर्यप्रतापाभ्यामावयोः परवश्ययोः॥५॥

व्यास देव कहते हैं—यह भागवत कर्म देखकर देवकी तथा वसुदेव को विज्ञान लाभ हो गया। यह

देखकर कृष्ण ने उनमें तथा यादव वर्ग में मोह उत्पन्न करने के लिये वैष्णवी माया का विस्तार करके कहा—"हे तात! हे माता! कंस के भय से भीत तथा उत्कण्ठित मैंने तथा संकर्षण (बलराम) ने दीर्घकाल के उपरान्त आपका दर्शन किया। पिता-माता की सेवा के बिना जो समय व्यतीत होता है, वह साधुगण के लिये वृथा तथा क्लेशकारी है। हे तात! देहधारियों के लिये गुरु, देवता, द्विज तथा माता-पिता की पूजा करने से ही उनका जन्म सफलीभूत होता है। हे पिता! कंस के पराक्रम के तापित, परवश हमारे द्वारा किये इस व्यतिक्रम को क्षमा करिये (परवशता के कारण हम अब तक आपकी सेवा नहीं कर सके!)।।१-५।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाऽथ प्रणम्योभौ यदुवृद्धाननुक्रमात्। पादानतिभिः सस्नेहं चक्रतुः पौरमानसम्।।६।।
कंसपत्न्यस्ततः कंसं परिवार्य हतं भुवि। विलेपुर्मातरश्चास्य शोकदुःखपरिप्लुताः।।७।।
बहुप्रकारमस्वस्थाः पश्चात्तापातुरा हरिः। ताः समाश्वासयामास स्वयमस्त्राविलेक्षणः।।८।।
उग्रसेनं ततो बन्धान्मुमोच मधुसूदनः। अभ्यषिञ्चत्तथैवैनं निजराज्ये हतात्मजम्।।९।।
राज्येऽभिषिक्तः कृष्णेन यदुसिंहः सुतस्य सः।
चकार प्रेतकार्याणि ये चान्ये तत्र घातिताः।।१०।।
कृतौर्ध्वदैहिकं चैनं सिंहासनगतं हरिः। उवाचाऽऽज्ञापय विभो यतकार्यमविशङ्कया।।११।।
ययातिशापाद्वंशोऽयमराज्यार्होऽपि साम्प्रतम्।
मयि भृत्ये स्थिते देवानाज्ञापयतु किं नृपैः।।१२।।

व्यासदेव कहते हैं—दोनों ने यह कहने के पश्चात् (वयःक्रम तथा ज्येष्ठता क्रम से) क्रमशः यदुकुल के वृद्धजन की चरण वन्दना करके नगरवासीगण के चित्त को स्नेहपूर्ण कर दिया। इधर कंस की पत्नियां तथा माता पृथिवी पर पड़े कंस को घेरे हुये शोक एवं दुःख से परिप्लुत होकर नाना प्रकार से विलाप कर रही थीं। उन पश्चात्ताप तत्परा अस्वस्थ चित्त अबला स्त्रियों को कृष्ण ने स्वयं अपने भी नेत्रों से अश्रुपात करते अनेक प्रकार से आश्वस्त किया। तत्पश्चात् मधुसूदन ने उन उग्रसेन को कारागृह से मुक्त किया, जिनका पुत्र कंस मृत हो गया था। उनको यथायोग्य विधि से उनके ही राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। कृष्ण द्वारा अभिषिक्त किये जाने पर अपने पुत्र का तथा जो वहां निहत हो गये थे, उनका प्रेतकार्य सम्पन्न कर दिया। और्ध्वदैहिक कार्य सब सम्पन्न हो जाने पर हरि ने सिंहासनासीन उग्रसेन से कहा—"हे प्रभो! आप संकोच रहित होकर आज्ञा दीजिये। ययाति के शाप के कारण यदुवंश के लोग राजा पद पर नहीं आसीन हो सकते, लेकिन राजाओं की बात क्या, देवता भी आपकी आज्ञा का पालन करेंगे, क्योंकि मेरे जैसा भृत्य आपके यहां है"।।६-१२।।

इत्युक्त्वा चोग्रसेनं तु वायुं प्रति जगाद ह। नृवाच चैव भगवान्केशवः कार्यमानुषः।।१३।।

राजा उग्रसेन से यह कहने के उपरान्त मनुष्यरूपी भगवान् केशव ने मानुषी वाणी में वायुदेव से कहा—।।१३।।

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छेन्द्रं ब्रूहि वायो त्वमलं गर्वेण वासव। दीयतामुग्रसेनाय सुधर्मा भवता सभा।।१४।।

कृष्णो ब्रवीति राजार्हमेतद्रत्नमनुत्तमम्। सुधर्माख्या सभा युक्तमस्यां यदुभिरासितुम्॥१५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे वायु! आप जाकर इन्द्र से कहिये कि "हे इन्द्र! गर्व मत करो। उग्रसेन को सुधर्मा सभा प्रदान करो। कृष्ण ने आदेश दिया है कि वह उत्तम रत्नरूप सुधर्मा सभा राजा के योग्य है। यदुगण उसमें बैठें, यही उचित है"।।१४-१५।।

व्यास उवाच

इत्युतः पवनो गत्वा सर्वमाह शचीपतिम्।
ददौ सोऽपि सुधर्माख्यां सभां वायोः पुरन्दरः॥१६॥
वायुना चाऽऽहृतां दिव्यां ते सभां यदुपुङ्गवाः। बुभुजः सर्वरत्नाढ्यां गोविन्दभुजसंश्रयाः॥१७॥
विदिताखिलविज्ञानौ सर्वज्ञानमयावपि। शिष्याचार्यक्रमं वीरौ ख्यापयन्तौ यदूत्तमौ॥१८॥
ततः सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम्। अस्त्रार्थं जग्मतुर्वीरौ बलदेवजनार्दनौ॥१९॥
तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरौ हि तौ। दर्शयाञ्चक्रतुर्वीरावाचारमखिले जने॥२०॥
सरहस्यं धनुर्वेदं ससङ्ग्रहमधीयताम्। अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या तदद्भुतमभूद्द्विजाः॥२१॥
सान्दीपनिरसम्भाव्यं तयोः कर्मातिमानुषम्।
विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तौ चन्द्रदिवाकरौ॥२२॥
अस्त्रग्राममशेषं च प्रोक्तमात्रवाप्य तौ। ऊचतुर्व्रियतां या ते दातव्या गुरुदक्षिणा॥२३॥

व्यास कहते हैं—पवन ने यह आदेश पाकर इन्द्र से यह सब संवाद कहा। तब इन्द्र ने वह सुधर्मा सभा वायु को दे दिया। वायु उस सभा को वहां से ले आये। गोविन्द के भुजबल से पालित यदुवंशी सर्वरत्नभूषित इस दिव्य सभा का उपभोग करने लगे। तदनन्तर सर्वज्ञानमय, सर्वविज्ञान के ज्ञाता, वीर यादवप्रवर कृष्ण तथा बलराम शिष्य-आचार्य क्रम से काश्य-अवन्तिपुर निवासी सान्दीपनि मुनि से अस्त्रादि की शिक्षा पाने वहां गये। वीर बलदेव तथा जनार्दन ने उन मुनि का शिष्यत्व ग्रहण किया और वे गुरुजन के प्रति जो व्यवहार किया जाता है, वह लोगों के पालनार्थ दिखलाने लगे, ताकि सभी उसका अनुकरण करें। हे ब्राह्मणगण! इन दोनों वीरों ने ६४ दिन में ही संग्रह तथा रहस्य समन्वित धनुर्वेद की पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर लिया! यह अत्यन्त आश्चर्य था। वे मुनि उन लोगों के अपौरुषेय, असंभव कर्म को देखकर यह सोचने लगे कि "क्या सूर्य-चन्द्रमा मनुष्यरूपी होकर आये हैं?" इन दोनों ने केवल उपदेश मात्र से ही समस्त अस्त्रविद्या को सीख लिया। तदनन्तर वे शिष्यद्वय कहने लगे कि "आपको जो दक्षिणा चाहिये, आदेश प्रदान करिये"।।१६-२३।।

सोऽप्यतीन्द्रियमालोक्य तयोः कर्म महामतिः।
अयाचत मृतं पुत्रं प्रभासे लवणार्णवे॥२४॥
गृहीतास्त्रौ ततस्तौ तु गत्वा तं लवणोदधिम्।
ऊचतुश्च गुरोः पुत्रो दीयतामिति सागरम्॥२५॥

कृताञ्जलिपुटश्चाब्धिस्तावथ द्विजसत्तमाः।
उवाच न मया पुत्रो हृतः सान्दीपनेरिति॥२६॥
दैत्यः पञ्चजनो नाम शङ्खरूपः स बालकम्। जग्राह सोऽस्ति सलिले ममैवासुरसूदन॥२७॥
इत्युक्तोऽन्तर्जलं गत्वा हत्वा पञ्चजनं तथा।
कृष्णो जग्राह तस्यास्थिप्रभवं शङ्खमुत्तमम्॥२८॥
यस्य नादेन दैत्यानां बलहानिः प्रजायते। देवानां वर्धते तेजो यात्यधर्मश्च संक्षयम्॥२९॥
तं पाञ्चजन्यमापूर्य गत्वा यमपुरीं हरिः।
बलदेवश्च बलवाञ्जित्वा वैवस्वतं यमम्॥३०॥
तं बालं यातनासंस्थं यथापूर्वशरीरिणम्। पित्रे प्रदत्तवान्कृष्णो बलश्च बलिनां वरः॥३१॥
मथुरां च पुनः प्राप्तावुग्रसेनेन पालिताम्। प्रहृष्टपुरुषस्त्रीकावुभौ रामजनार्दनौ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९४॥

उन महामति सान्दीपनि ऋषि ने इनके अतीन्द्रिय कर्मों को देखा था, अतः उन्होंने प्रार्थना किया लवणसागर में प्रभासतीर्थ के सन्निकट मृत मेरे पुत्रों को ले आओ। कृष्ण-बलराम अपने अस्त्र लेकर लवणसागर गये तथा सागर से कहा कि मेरे गुरुपुत्र को वापस करो। हे ब्राह्मणप्रवरवृन्द! तब लवणसागर हाथ जोड़कर कहने लगा "मैंने सान्दीपनि मुनि के पुत्र का हरण नहीं किया। पंचजन नामक शंखाकृति दैत्य ने बालक का हरण किया है। हे असुरसूदन! वह इसी जल में ही है।" सागर के यह कहने पर कृष्ण ने जल में प्रवेश करके पंचजन दैत्य का वध किया। उन्होंने उसकी अस्थि से निर्मित उत्तम शंख को भी ले लिया। इस शंख का नाद सुनकर दैत्यों का बल नष्ट होता है तथा देवताओं के तेज की वृद्धि हो जाती है। साथ ही अधर्म का क्षय होता है। बलवान् श्रीहरि बलदेव के साथ यह शंख लेकर यमलोक गये तथा वहां वैवस्वत यम को पराजित करके विजय लाभ किया। तदनन्तर नरकस्थ उस बालक को यथापूर्व शरीरयुक्त करके उसे ऋषि सान्दीपनी को प्रदान किया। तत्पश्चात् बलराम तथा जनार्दन प्रहृष्ट नर-नारी से युक्त उग्रसेन द्वारा पालित मथुरा पुरी पुनः लौट आये।।२४-३२।।

।।चतुर्नवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

जरासन्ध सहित राम-जनार्दन के युद्ध का वर्णन

व्यास उवाच

जरासन्धसुते कंस उपयेमे महाबलः। अस्ति प्राप्तिश्च भो विप्रास्तयोर्भर्तृहणं हरिम्॥१॥
महाबलपरीवारो मागधाधिपतिर्बली। हन्तुमभ्याययौ कोपाज्जरासन्धः सयादवम्॥२॥
उपेत्य मथुरां सोऽथ रुरोध मगधेश्वरः। अक्षौहिणीभिः सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिर्वृतः॥३॥
निष्क्रम्याल्पपरीवारावुभौ रामजनार्दनौ। युयुधाते समं तेन बलिनौ बलिसैनिकैः॥४॥
ततो बलश्च कृष्णश्च मतिं चक्रे महाबलः। आयुधानां पुराणानामादाने मुनिसत्तमाः॥५॥
अनन्तरं चक्रशार्ङ्गं तूणौ चाप्यक्षयौ शरैः। आकाशादागतौ वीरौ तदा कौमोदकी गदा॥६॥
हलं च बलभद्रस्य गगनादागमत्करम्। बलस्याभिमतं विप्राः सुनन्दं मुशलं तथा॥७॥
ततो युद्धे पराजित्य स्वसैन्यं मगधाधिपम्। पुरीं विविशतुर्वीरावुभौ रामजनार्दनौ॥८॥
जिते तस्मिन्सुदुर्वृत्ते जरासन्धे द्विजोत्तमाः। जीवमाने गते तत्र कृष्णो मेने न तं जितम्॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—हे विप्रगण! महाबली कंस ने अस्ति तथा नास्ति नामक जरासन्ध की दो कन्या से विवाह किया था। मगधराज महाबली जरासन्ध ने क्रोधित होकर अपनी पुत्रियों के पति के वधकारी हरि का वध यादवों सहित करने हेतु महान् सैन्य के साथ एकत्र हुआ। वह मगधराज तेईस अक्षौहिणी सेना सहित आया तथा मथुरा को घेर लिया। तब बलराम तथा जनार्दन ने अल्प सेना के साथ बाहर जाकर उस महाबली शत्रु सेना से युद्धारंभ कर दिया। हे मुनिप्रवरगण! बलराम तथा कृष्ण ने अपने पुराने अस्त्रों का स्मरण किया, तभी आकाश से शार्ङ्ग धनुष, चक्र, गदा प्रभृति उनके अस्त्र वहां आ गये। हे ब्राह्मणगण! बलभद्र का अभिमत हल तथा सुनन्द नामक मूसल भी उनके हाथों में आ गया। तदनन्तर वीर राम एवं जनार्दन ने मगधपति को सेना के साथ युद्ध में पराजित किया तथा इन दोनों वीरों ने मथुरा में प्रवेश किया। हे द्विजोत्तमगण! दुराचारी जरासन्ध पराजित होकर अपना जीवन बचाकर वहां से पलायित हो गया। उसके बचकर चले जाने के कारण कृष्ण ने स्वयं को विजयी नहीं माना।।१-९।।

पुनरप्याजगामाथ जरासन्धो बलान्वितः। जितश्च रामकृष्णाभ्यामपकृत्य द्विजोत्तमा॥१०॥
दश चाष्टौ च सङ्ग्रामानेवमत्यन्तदुर्मदः। यदुभिर्मागधो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमैः॥११॥
सर्वेष्वेव च युद्धेषु यदुभिः स पराजितः।
अपक्रान्तो जरासन्धः स्वल्पसैन्यैर्बलाधिक॥१२॥
तद्बलं यादवानां वै रक्षितं यदनेकशः। तत्तु सन्निधिमाहात्म्यं विष्णोरंशस्य चक्रिणः॥१३॥

हे द्विजप्रवरगण! वह जरासन्ध पुनः सेना लेकर आया तथा पराजित होकर बलराम-कृष्ण से अपक्रान्त हो गया। यह दुर्मद राजा इस प्रकार अट्ठारह बार मथुरा पर आक्रमण करने आया तथा उसने यादवगण के साथ

युद्ध किया, तथापि सभी युद्धों में वह बली जरासन्ध यादवों द्वारा परास्त होकर बची-खुची सेना के साथ भाग जाता। जरासन्ध के ऐसे अनेक बार आक्रमण से यादव सेना अनेक बार बचती रही। यह थी मात्र चक्रपाणि विष्णु के अंश श्रीकृष्ण के सान्निध्य की महिमा!।।१०-१३।।

मनुष्यधर्मशीलस्य लीला सा जगतः पतेः। अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति॥१४॥
मनसैव जगत्सृष्टिसंहारं तु करोति यः तस्यारिपक्षक्षपणे कियानुद्यमविस्तरः॥१५॥
तथाऽपि च मनुष्याणां धर्मस्तदनुवर्तनम्। कुर्वन्बलवता सन्धिं हीनैर्युद्धं करोत्यसौ॥१६॥
साम चोपप्रदानं च तथा भेदं च दर्शयन्। करोति दण्डपातं च क्वचिदेव पलायनम्॥१७॥
मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्तते। लीला जगत्पतेस्तस्य च्छन्दतः सम्प्रवर्तते॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९५।।

मनुष्य देहधारी जगत्पति प्रभु ने शत्रुओं पर जो अनेक प्रकार के शस्त्रों की वर्षा किया था, वह तो उन भगवान् की मात्र लीला थी। वे प्रभु तो केवल मन से ही सृष्टि का उपसंहार करते हैं। उनको शत्रु-संहारार्थ नाना उद्यक की क्या आवश्यकता? तथापि वे मात्र मनुष्यधर्म का पालन करके बलवानों के साथ सन्धि तथा दुर्बल से युद्धरूपी क्रीड़ा करते। वे कहीं साम, कहीं दाम, तो कहीं दण्ड-भेद प्रदर्शित करते, कहीं भाग जाते, ऐसे मनुष्यों की चेष्टाओं को दुहराते रहते। यह सब उन जगत्पति की स्वेच्छाकृत लीला ही थी।।१४-१८।।

।।पञ्चनवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालयवन का उपाख्यान

व्यास उवाच

गार्ग्यं गोष्ठे द्विजो (जं) श्यालः षण्ढ (ण्ड) इत्युक्तवान्द्विजाः।
यदूनां सन्निधौ सर्वे जहसुर्यादवास्तदा॥१॥
ततः कोपसमाविष्टो दक्षिणापथमेत्य सः। सुतमिच्छंस्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम्॥२॥
आराधयन्महादेवं सोऽयश्चूर्णमभक्षयत्। ददौ वरं च तुष्टोऽसौ वर्षे द्वादशके हरः॥३॥
सम्भावयामास स तं यवनेशो ह्यनात्मजम्।
तद्योषित्सङ्गमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलिसप्रभः॥४॥
तं कालयवनं नाम राज्ये स्वे यवनेश्वरः। अभिषिच्य वनं यातो वज्राग्रकठिनोरसम्॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजगण! यदुगण ने सबके सामने सभा में द्विज गार्ग्य को साले, नपुंसक आदि अपशब्द कहा था। इससे वे द्विज अतीव क्रोध में भरकर दक्षिणापथ गये तथा वहां जाकर वे यादवों को भय देने वाले भयानक पुत्र की कामना के साथ तपःश्चरण करने लगे। उन्होंने महादेवार्चन तत्पर होकर केवल लौह चूर्ण भक्षण करके तप किया। बारह वर्ष के उपरान्त भगवान् महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन्होंने इन ब्राह्मण को वर प्रदान किया। उस समय यवनराज पुत्रहीन थे। उनकी पत्नी तथा गार्ग्य के नियोग से एक भ्रमरकान्तियुक्त (कृष्णवर्ण) पुत्र जन्मा। उसका नाम था कालयवन। यवनराज ने वज्र कठोर वक्ष वाले कालयवन को राज्य पर अभिषिक्त किया तथा वह वन में चला गया।।१-५।।

स तु वीर्यमदोन्मत्तः पृथिव्यां बलिनो नृपान्।
पप्रच्छ नारदश्चास्मै कथयामास यादवान्।।६।।
म्लेच्छकोटिसहस्राणां सहस्रैः सोऽपि संवृत्तः। गजाश्वरथसम्पन्नैश्चकार परमोद्यमम्।।७।।
प्रययौ चाऽऽतव (प) च्छिन्नैः प्रयाणैः स दिने दिने।
यादवान्प्रति सामर्षो मुनयो मथुरां पुरीम्।।८।।
कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपितं यादवं बलम्।
यवनेन समालोक्य मागधः सम्प्रयास्यति।।९।।
मागधस्य बलं क्षीणं स कालयवनो बली। हन्ता तदिदमायातं यदूनां व्यसनं द्विधा।।१०।।
तस्माद्दुर्गं करिष्यामि यदूनामतिदुर्जयम्। स्त्रियोऽपि यत्र युध्येयुः किं पुनर्वृष्णियादवाः।।११।।

बलोन्मत्त कालयवन ने उस समय ऋषि नारद से पृथिवी के बली राजाओं के सम्बन्ध में जानना चाहा। नारद ने उस समय उससे यादवों का समाचार दिया। तब वह कालयवन सहस्र कोटि सेनाओं के साथ अश्व, रथ, गज परम उद्यम से एकत्र करके यादवों से युद्धार्थ चल पड़ा। हे मुनिगण! दिन के समय छाया में विश्राम करता तथा रात्रि में चलता हुआ कालयवन मथुरा आ गया। कृष्ण ने विचार किया कि यादव बल (जरासन्ध से युद्ध करते-करते) क्षीण हो चला है। मगधराज भी पुनः आक्रमण करेगा, यह आशंका बनी है। यद्यपि यादवों ने मगधराज की सेना को क्षीण तो कर दिया है, तथापि कालयवन प्रबल सैन्य के साथ है। अतः इसमे का विनाश साधित होगा। मगधराज की क्षीण सैन्य तथा कालयवन की बली सेना—ये दोनों लड़ेंगे हेतु दो संकट एक साथ हो जायेगा। अतः मैं यादवों के लिये ऐसा दुर्जय दुर्ग रचित करूंगा, जहां से भी युद्ध में सक्षम होंगी। वृष्णि तथा अंधकों की तो बात ही क्या?।।६-११।।

मयि मत्ते प्रमत्ते वा सुप्ते प्रवसितेऽपि वा।
यादवाभिभवं दुष्टा मा कुर्वन्वै (र्युवै) रिणोऽधिकम्।।१२।।
इति सञ्चिन्त्य गोविन्दो योजनानि महोदधिम्।
ययाचे द्वादश पुरीं द्वारकां तत्र निर्ममे।।१३।।
महोद्यानां महावप्रां तडागशतशोभिताम्। प्राकारशतसम्बाधामिन्द्रस्येवामराव
मथुरावासिनं लोकं तत्राऽऽनीय जनार्दनः। आसन्ने कालयवने मथुरां च स्वयं य

बहिरावासिते सैन्ये मथुराया निरायुधः। निर्जगाम स गोविन्दो ददर्श यवनश्च तम्॥१६॥
स ज्ञात्वा वासुदेवं तं बाहुप्रहरणो नृपः। अनुयातो महायोगिचेतोभिः प्राप्यते न यः॥१७॥

यदि वहां मैं मदमत्त, प्रमत्त, सुप्त अथवा प्रवास हेतु बाहर भी गया रहूंगा, तथापि उस दुर्ग में स्थित यादवों का अधिक अभिभव दुष्टगण नहीं कर सकेंगे। गोविन्ददेव ने एवंविध निर्णय करके समुद्र के निकट समुद्र से बारह योजन स्थान मांग कर वहां द्वारकापुरी निर्मित किया। यह पुरी महान् उद्यानों, मिट्टी के टीलों, सैकड़ों-सैकड़ों तालाबों से शोभित थी। यह सैकड़ों दीवारों के कारण घिरी तथा सबके लिये दुर्गम थी। यह इन्द्र की अमरावती के समान शोभायमान थी। कालयवन के आ जाने पर जनार्दन ने मथुरावासी लोगों को द्वारका पहुंचाया तथा स्वयं मथुरा वापस आ गये। जब कृष्ण ने मथुरा के बाहर सैन्य को देखा तब वे स्वयं बिना आयुध लिये बाहर निकले। यवनराज ने कृष्ण को देख लिया। उसने कृष्ण को देखकर केवल बाहु प्रहार से उनको हत करने हेतु कृष्ण का पीछा करने लगा। जिन प्रभु को महायोगीगण के चित्त भी प्राप्त नहीं कर पाते (वह उनको पकड़ने हेतु उद्यम कर रहा था!।।१२-१७।।

तेनानुयातः कृष्णोऽपि प्रविवेश महागुहाम्। यत्र शेते महावीर्यो मुचुकुन्दो नरेश्वरः॥१८॥

सोऽपि प्रविष्टो यवनो दृष्ट्वा शय्यागतं नरम्।
पादेन ताडयामास कृष्णं मत्वा स दुर्मतिः॥१९॥
दृष्टमात्रश्च तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना।
तत्क्रोधजेन मुनयो भस्मीभूतश्च तत्क्षणात्॥२०॥

कृष्ण उसे पीछा करते देखकर वेग पूर्वक उस गुहा में प्रविष्ट हो गये, जहां नरेश्वर महापराक्रमी मुचकुन्द शयनरत थे। वह दुर्मति यवन भी उस गुहा में कृष्ण का पीछा करते प्रविष्ट हो गया। उसने वहां शयनरत नरमूर्त्ति को देख कर सोचा कि ये तो कृष्ण है तथा उसने उस शयनरत व्यक्ति पर चरणों से प्रहार किया। हे मुनिगण! तब मुचकुन्द की दृष्टि उस पर पड़ी तथा उनकी क्रोधाग्नि में वह यवन क्षणमात्र में ही दग्ध हो गया!।।१८-२०।।

स हि देवासुरे युद्धे गत्वा जित्वा महासुरान्।
निद्रार्तः सुमहाकालं निद्रां वव्रे वरं सुरान्॥२१॥
प्रोक्तश्च देवैः संसुप्तं यस्त्वामुत्थापयिष्यति।
देहजेनाग्निना सद्यः स तु भस्मीभविष्यति॥२२॥
एवं दग्ध्वा स तं पापं दृष्ट्वा च मधुसूदनम्।
कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽहं शशिनः कुले॥२३॥

वसुदेवस्य तनयो यदुवंशसमुद्भवः। मुचुकुन्दोऽपि तच्छ्रुत्वा वृद्धगार्ग्यवचः स्मरन्॥२४॥
संस्मृत्य प्रणिपत्यैनं सर्वं सर्वेश्वरं हरिम्। प्राह ज्ञातो भवान्विष्णोरंशस्त्वं परमेश्वरः॥२५॥

पूर्वकाल में राजा मुचकुन्द ने देवासुर युद्ध में असुरों पर विजय पाकर तथा निद्राग्रस्त होकर यह वर मांगा कि "मैं चिरकाल तक शयन करूं।" देवताओं ने उनसे कहा—"आप के शयनकाल में जो आपको

जगायेगा, वह आपकी देह से उत्पन्न अग्नि द्वारा सद्यः दग्ध हो जायेगा।" उन मुचकुन्द ने उस पापी कालयवन को जलाकर मधुसूदन से पूछा "आप कौन हैं?" कृष्ण ने कहा—"मैं चन्द्रवंशीय यदुकुलोत्पन्न हूं। मैं वसुदेव का पुत्र हूं।" तब मुचकुन्द को वृद्ध गार्ग्य के वचन का स्मरण हो आया। उन्होंने ससम्मान प्रणाम करके सर्वरूपी सर्वेश्वर हरि से कहा—"मुझे ज्ञात हो गया, आप ही विष्णु के अंशोत्पन्न परमेश्वर हैं"।।२१-२५।।

पुरा गार्ग्येण कथितमष्टाविंशतिमे युगे। द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवंशे भविष्यति॥२६॥
स त्वं प्राप्तो न सन्देहो मर्त्यानामुपकारकृत्। तथा हि सुमहत्तेजो नालं सोढुमहं तव॥२७॥
तथा हि सुमहाम्भोदध्वनिधीरतरं ततः। वाक्यं तमिति होवाच युष्मत्पादसुलालितम्॥२८॥
देवासुरे महायुद्धे दैत्याश्च सुमहाभटाः। न शेकुस्ते महत्तेजस्तत्तेजो न सहाम्यहम्॥२९॥
संसारपतितस्यैको जन्तोस्त्वं शरणं परम्। सम्प्रसीद प्रपन्नार्तिहर्ता हर ममाशुभम्॥३०॥

त्वं पयोनिधयः शैलाः सरितश्च वनानि च।
मेदिनी गगनं वायुरापोग्निस्त्वं तथा पुमान्॥३१॥

पुंसः परतरं सर्वं व्याप्य जन्म विकल्पवत्। शब्दादिहीनमजरं वृद्धिक्षयविवर्जितम्॥३२॥

"पूर्वकाल में गार्ग्य ने मुझसे कहा था अट्ठाईसवें द्वापरयुग के अन्तिम भाग में यदुवंश में श्रीहरि का जन्म होगा। मनुष्यों के उपकारार्थ ही आप यहां आये हैं। सन्देह नहीं है। अतः मैं आपके महान् तेज को सहन नहीं कर पा रहा हूं। आपकी महासमुद्रवत् धीर वाणी भी मेरे लिये असहनीय लग रही है। देवासुर महायुद्ध में महान् वीर दैत्य भी आपके महातेज को सहन नहीं कर पा रहे थे। वह मुझसे भी सहन नहीं हो रहा है। आप संसार के एक ही स्वामी हैं। सभी प्राणी हेतु आपही एकमात्र शरणरूप हैं। हे शरणागत आर्तिहारी! प्रसन्न होकर मेरे अशुभों को नष्ट करिये। आप ही समुद्र, पर्वत, सरिता, वन, गगन, पृथिवी, पवन, जल, अग्नि तथा पुरुष हैं। आप पुरुष से भी परे हैं। आप सबमें व्याप्त हैं। आपका जन्म तो विकल्पवत् है। मिथ्या है। (जन्म होता ही नहीं)। आप शब्दादि से रहित, अजर तथा वृद्धि एवं क्षय से रहित हैं।।२६-३२।।

त्वत्तोऽमरास्तु पितरो यक्षगन्धर्वराक्षसाः।
सिद्धाश्चाप्सरसत्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः॥३३॥

सरीसृपा मृगाः सर्वे त्वत्तश्चैव महीरुहाः। यच्च भूतं भविष्यद्वा किञ्चिदत्र चराचरे॥३४॥

अमूर्तं मूर्तमथवा स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा।
तत्सर्वं त्वं जगत्कर्तर्नास्ति किञ्चित्त्वया विना॥३५॥

आपसे ही देवता, पितर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, अप्सरा, मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप, मृग प्रभृति उद्भूत होते हैं। वृक्षादि भी आपसे ही उत्पन्न होते हैं। इस चराचर में जो भूत-भविष्यत्, मूर्त्त-अमूर्त्त, स्थूल-सूक्ष्म है, वह सब आप हैं। आपके अतिरिक्त कुछ नहीं है।।३३-३५।।

मया संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमता भगवन्सदा।
तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निवृतिः क्वचित्॥३६॥

दुःखान्येव सुखानीति मृगतृष्णा जलाशयः।
मया नाथ गृहीतानि तानि तापाय मेऽभवन्॥३७॥
राज्यमुर्वी बलं कोशो मित्रपक्षस्तथाऽऽत्मजाः।
भार्या भृत्यजना ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो॥३८॥
सुखबुद्ध्या मया सर्वं गृहीतमिदमव्यय। परिणामे च देवेश तापात्मकमभून्मम॥३९॥

हे भगवान्! मुझे इस संसार चक्र में सतत् भटकते हुये, तापत्रय से अभिभूत होकर कहीं भी शान्ति नहीं मिली। हे नाथ! मैं दुःखों को ही मृगतृष्णा के जलाशय जैसा सुख मानता रहा हूं। ये सब मुझे ताप ही पहुंचाते रहे हैं। हे प्रभो! राज्य, धरती, सैन्य, कोश, मित्रपक्ष, पुत्र, भार्या, भृत्य तथा जो शब्दादि विषय हैं, हे अव्ययदेव! मैंने उसे सुख समझ कर ग्रहण किया! हे देवेश! लेकिन परिणाम में मुझे दुःख-ताप मिला।।३६-३९।।

देवलोकगतिं प्राप्तो नाथ देवगणोऽपि हि।
मत्तः साहाय्यकामोभूच्छाश्वती कुत्र निर्वृतिः॥४०॥
त्वामनाराध्य जगतां सर्वेषां प्रभवास्पदम्। शाश्वती प्राप्यते केन परमेश्वर निर्वृतिः॥४१॥
त्वन्मायामूढमनसो जन्ममृत्युजरादिकान्। अवाप्य पापान्पश्यन्ति प्रेतराजानमन्तरा॥४२॥
ततः पाशशतैर्बद्धा नरकेष्वतिदारुणम्। प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं विश्वरूपमिदं तव॥४३॥
अहमत्यन्तविषयी मोहितस्तव मायया। ममत्वागाधगर्तान्ते भ्रमामि परमेश्वर॥४४॥
सोऽहं त्वां शरणमपारमीशमीड्यं, सम्प्राप्तः परमपदं यतो न किञ्चित्।
संसारश्रमपरितापतप्तचेता निर्विण्णे परिणतधाम्नि साभिलाषः॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कालयवनवधे मुचुकुन्दस्तुतिनिरूपणं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९६।।

हे नाथ! मुझे तो देवलोक तक जाने की गति मिली, देवता भी मेरी सहायता चाहते थे। तथापि शाश्वती शान्ति है कहां? आपकी माया में पड़े मूढ़ मानव जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा आदि पाप भोगने के अनन्तर मरणकाल में प्रेतराज का दर्शन करके सैकड़ों पाशों में आबद्ध होकर नाना नरकों में अकथ दुःख पाते हैं। हे प्रभो! यह सब आपका ही विश्वरूप है। हे परमेश! आपकी माया से मोहित मैं अत्यन्त विषयासक्त होकर ममता रूपी अगाध गर्त्त में विचर रहा हूं। संसार में जन्म-मरणात्मक श्रम के ताप से तप्त, मैं अब निर्वेद पाकर चरमधाम पाने का इच्छुक हूं, जिससे बढ़ कर परम प्राप्य कुछ भी नहीं है। आपके अतिरिक्त परम प्राप्य कुछ नहीं है। मैं आप ईश्वर तथा स्तुत्य देवदेव की शरण ग्रहण करता हूं। मैं आपकी ही कामना करता हूं।।४०-४५।।

।।षण्णवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोकुल में बलराम का पुनः आना

व्यास उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मुचुकुन्देन धीमता। प्राहेशः सर्वभूतानामनादिनिधनो हरिः॥१॥

व्यासदेव कहते हैं—बुद्धिमान् मुचकुन्द द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर सर्वभूतेश्वर अनादिनिधन हरि ने कहा—।।१।।

श्रीकृष्ण उवाच

यथाऽभिवाञ्छितांलोकान्दिव्यान्गच्छ नरेश्वर। अव्याहतपैरश्वर्यो मत्प्रसादोपबृंहितः॥२॥

भुक्त्वा दिव्यान्महाभोगान्भविष्यति महाकुले। जातिस्मरो मत्प्रसादात्ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे नरेश्वर! आप मेरी कृपा से अभिलषित दिव्य लोक में जायें। वहां अव्याहत परम ऐश्वर्यमय होकर दिव्य महान् भोगों का उपभोग करें। तदनन्तर पूर्वजन्म की स्मृति के सहित महान् कुल में आपका जन्म होगा। तत्पश्चात् मेरी कृपा से मोक्ष की प्राप्ति होगी।।२-३।।

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येशं जगतामच्युतं नृपः।
गुहामुखाद्विनिष्क्रान्ता ददृशे सोऽल्पकान्नरान्॥४॥

ततः कलियुगं ज्ञात्वा प्राप्तं तप्तुं ततो नृपः। नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम्॥५॥

कृष्णोऽपि घातयित्वाऽरिमुपायेन हि तद्बलम्। जग्राह मथुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम्॥६॥

आनीय चोग्रसेनाय द्वारवत्यां न्यवेदयत्। पराभिभवनिःशङ्कं बभूव च यदोः कुलम्॥७॥

व्यासदेव कहते हैं—यह कहे जाने पर उन राजा ने जगदीश अच्युत को प्रणाम किया तथा गुफा से बाहर आये। बाहर आकर उन्होंने अल्प ऊंचाई वाले मनुष्यों को देख कर उन्हें कलियुग के आगमन का ज्ञान हो गया। इस कारण वे तप करने के लिये नरनारायण स्थान गन्धमादन पर्वत पर चले गये। कृष्ण ने भी उपाय द्वारा उस बली शत्रु का नाश करके मथुरा पुनरागमन किया। वहां से शत्रु के हाथी, अश्व से समृद्ध सैन्य पर अपना अधिकार स्थापित करके उसे द्वारका में उग्रसेन को प्रदान कर दिया। अब यदुकुल वहां पर सम्पूर्णतः शत्रु के आक्रमण की आशंका से निर्मुक्त हो गया।।४-७।।

बलदेवोऽपि विप्रेन्द्राः प्रशान्ताखिलविग्रहः। ज्ञानिदर्शनसोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम्॥८॥

ततो गोपाश्च गोप्यश्च यथापूर्वममित्रजित्। तथैवाभ्यवदत्प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम्॥९॥

कैश्चापि संपरिष्वक्तः कांश्चित्स परिषस्वजे। हासं चक्रे समं कैश्चिद्गोपगोपीजनैस्तथा॥१०॥

प्रियाण्यनेकान्यवदन्गोपास्तत्र हलायुधम्। गोप्यश्च प्रेममुदिताः प्रोचुः सेर्ष्यमथापराः॥११॥

गोप्यः पप्रच्छुरपरा नागरीजनवल्लभः। कच्चिदास्ते सुखं कृष्णश्चलत्प्रेमरसाकुलः॥१२॥

हे विप्रेन्द्रगण! तब बलदेव ने भी यह देखा कि अब समस्त विग्रह समाप्त हो गया है। इससे वे बान्धवों को देखने के लिये उत्कण्ठित होकर नन्दगोकुल पहुंचे। वहां उन शत्रुओं को जीतने वाले बलराम ने गोपी तथा गोपों से पहले की तरह आदर के साथ प्रेम पूर्वक वार्त्ता किया। किसी-किसी ने उनका आलिंगन किया, तब बलराम ने भी किसी-किसी का आलिंगन किया था। उन्होंने कतिपय गोप-गोपीगण से परिहास भी किया। उस समय प्रेममुदित गोप तथा गोपियों ने उनके साथ अनेक प्रिय वाक्यालाप भी किया था। किसी गोपी ने ईर्ष्यापरवश होकर साथ ही प्रेम में निमज्जित होकर भी उनसे कुछ कहा। कुछ गोपियां पूछने लगीं "चंचलता से (लम्पटतापूर्वक) राजकुल तथा नगर की स्त्रियों के प्रिय कृष्ण सुख पूर्वक तो हैं"?॥८-१२॥

अस्मच्चेष्टोपहसनं न कच्चित्पुरयोषिताम्। सौभाग्यमानमधिकं करोति क्षणसौहृदः॥१३॥

कच्चित्स्मरति नः कृष्णो गीतानुगमनं कृतम्। अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति॥१४॥

अथवा किं तदालापैः क्रियन्तामपराः कथाः।
यदस्माभिर्विना तेन (तस्य) विनाऽस्माकं भविष्यति॥१५॥

पिता माता तथा भ्राता भर्ता बन्धुजनश्च कः।
न त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञस्ततो हि सः॥१६॥

तथाऽपि कच्चिदात्मीयमिहाऽऽगमनसंश्रयम्। करोति कृष्णो वक्तव्यं भवता वचनामृतम्॥१७॥

दामोदरोऽसौ गोविन्दः पुरस्त्रीसक्तमानसः। अपेतप्रीतिरस्मासु दुर्दर्शः प्रतिभाति नः॥१८॥

क्या अस्थायी क्षणिक प्रेम करने वाले वे कृष्ण हम लोगों के प्रेम-व्यवहार का उपहास से वर्णन करते हुये उन नगरवासी स्त्रियों के सौभाग्य-सम्मान की वृद्धि कर रहे हैं? क्या उनको स्मरण है कि हम लोग उनके साथ गायन किया करती थीं? क्या वे एक बार भी अपनी माता यशोदा को देखने आयेंगे? अथवा इन बातों को करने का क्या प्रयोजन? अथवा अब इस चर्चा का क्या प्रयोजन? अब हम ऐसी अन्य बातें करें, जो उन कृष्ण तथा हमारे सम्बन्ध के बारे में न हो! उनके कारण हमने पिता-माता-भ्राता-पति-बन्धु, किसका त्याग नहीं किया? वे कितने अकृतज्ञ हैं! क्या वे कभी यहां आने की बात करते हैं? क्या कभी भी यहां आकर आत्मीयता का परिचय देंगे? अब तो पुरवासिनी नारियों के प्रति आसक्त चित्त वे दामोदर गोविन्द हमारे प्रति प्रीति रहित हो गये हैं। अतः अब हमारे लिये उनका दर्शन संभव ही नहीं रहा!॥१३-१८॥

व्यास उवाच

आमन्त्रितः स कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च। जहसुः सुस्वरं गोप्यो हरिणाकृष्टचेतसः॥१९॥

सन्देशैः सौम्यमधुरैः प्रेमगर्भैरगर्वितैः। रामेणाऽऽश्वासिता गोप्यः कृष्णस्यातिमधुस्वरैः॥२०॥

गोपैश्च पूर्ववद्रामः परिहासमनोहरैः। कथाश्चकार प्रेम्णा च सह तैर्व्रजभूमिषु॥२१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गोकुल बलप्रत्यागमननिरूपणं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९७॥

व्यासदेव कहते हैं—श्रीहरि के प्रेम से आकृष्ट चित्त वाली गोपियां एवंविध अनेक बातें करते-करते प्रेमजनित भ्रम के कारण बलराम को ही कृष्ण तो कभी दामोदर कहते हुये हंसने लगीं। राम भी गोपियों से प्रेम भरे, अगर्वित, सुन्दर मधुर वाक्य कहते उनके चित्त को आश्वस्त कर रहे थे। राम भी गोपों के साथ पहले जैसा परिहास तथा मनोहर आलाप करते हुये व्रजभूमि में ही कुछ काल हेतु रुक गये।।१९-२१।।

।।सप्तनवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हलधर बलराम की क्रीड़ा का वर्णन

व्यास उवाच

वने विहरतस्तस्य सह गोपैर्महात्मनः। मानुषच्छद्मरूपस्य शेषस्य धरणीभृतः।।१।।
निष्पादितोरुकार्यस्य कार्येणैवावतारिणः। उपभोगार्थमत्यर्थं वरुणः प्राह वारुणीम्।।२।।

व्यासदेव कहते हैं—देवकार्य साधनार्थ प्रच्छन्न मनुष्याकृति में अवतीर्ण धरणीधर महात्मा शेष गुरुतर कार्यसाधन के साथ गोपों के सान्निध्य में वृन्दावन के वनों में विहार कर रहे थे। तब वरुण ने उन बलराम के उपभोगार्थ वारुणी को आदेश दिया।।१-२।।

वरुण उवाच

अभीष्टां सर्वदा ह्यस्य मदिरे त्वं महौजसः। अनन्तस्योपभोगाय तस्य गच्छ मुदे शुभे।।३।।

वरुणदेव कहते हैं—हे वारुणी! शुभे! मदिरे! अनन्तदेव शेष को तुम सर्वदा वांछित रहती हो। अतः उनके उपभोगार्थ वहां जाओ।।३।।

व्यास उवाच

इत्युक्ता वारुणी तेन सन्निधानमथाकरोत्। वृन्दावनतटोत्पन्नकदम्बतरुकोटरे।।४।।
विचरन्बलदेवोऽपि मदिरागन्धमुद्धतम्। आघ्राय मदिराहर्षमवापाथ पुरातनम्।।५।।
ततः कदम्बात्सहसा मद्यधारां स लाङ्गली। पतन्तीं वीक्ष्य मुनयः प्रययौ परमां मुदम्।।६।।
पपौ च गोपगोपीभिः समवेतो मुदाऽन्वितः। उपगीयमानो ललितं गीतवाद्यविशारदैः।।७।।

व्यासदेव कहते हैं—वरुण का आदेश पाकर वारुणी वृन्दावन के तट पर उत्पन्न कदम्ब वृक्ष के कोटर में चली आईं। बलदेव भी वनों में विचरण करते-करते जब वहां पहुंचे, तब उन्होंने वहां वारुणी की गन्ध का अनुभव किया। इससे उनको पूर्वानुभूत पुरातन मदिरानन्द का लाभ हो गया। हे मुनिवृन्द! तदनन्तर वे हलधारी उस वृक्ष के निकट पहुंचे तथा देखा कि कदम्ब वृक्ष से मद्यधारा क्षरित होती जा रही है। उन्होंने

गीत-वाद्य विशारद गोप-गोपीगण के साथ मुदान्वित चित्त से उसका पान किया तथा ललित गान का गायन करने लगे।।४-७।।

श्रमतोऽत्यन्तघर्माम्भःकणिकामौक्तिकोज्ज्वलः ।
आगच्छ यमुने स्नातुमिच्छामीत्याह विह्वलः।।८।।
तस्य वाचं नदी सा तु मत्तोक्तामवमन्य वै।
नाऽऽजगाम ततः क्रुद्धो हलं जग्राह लाङ्गली।।९।।
गृहीत्वा तां तटेनैव चकर्ष मदविह्वलः।
पापे नाऽऽयासि नाऽऽयासि गम्यतामिच्छयाऽन्यतः।।१०।।
सा कृष्टा तेन सहसा मार्गं सन्त्यज्य निम्नगा।
यत्राऽऽस्ते बलदेवोऽसौ प्लावयामास तद्वनम्।।११।।
शरीरिणी तथोपेत्य त्रासविह्वललोचना। प्रसीदेत्यब्रवीद्रामं मुञ्च मां मुशलायुध।।१२।।
सोऽब्रवीदवजानासि मम शौर्यबलं यदि। सोऽहं त्वां हलपातेन नयिष्यामि सहस्रधा।।१३।।

उस समय क्रीड़ाजनित श्रम की अधिकता से उनके शरीर से स्वेदबिन्दु निर्गत होकर शरीर पर उज्ज्वल मुक्तावत् परिलक्षित होने लगे। उन्होंने विह्वल होकर यमुना से कहा—"हे यमुना! तुम आओ। मैं स्नान की इच्छा कर रहा हूं।" लेकिन उनको मदमत्त मानकर यमुना ने उनके आदेश की अवहेलना किया और वे वहां नहीं आईं। इससे हलधर राम क्रुद्ध हो गये तथा मदविह्वल स्थिति में उन्होंने हल उठाया और हल द्वारा तट से नदी को खींचने लगे। हलधर ने यमुना से कहा—"हे पापिनी! नहीं आना है, मत आओ। इच्छानुरूप अन्यत्र जाओ।" वह नदी इस प्रकार से हलधर राम द्वारा खींचे जाने के कारण अपने मार्ग को त्याग कर बलदेव की वांछित वनस्थली को अपने जल से भरने लगी और मूर्त्तिमती होकर भयकातरा स्थिति में बलराम से कहने लगी—"हे मूसलधारी! राम! प्रसन्न हो जायें! मुझे छोड़ दें!" तब बलराम ने कहा—"तुमने मेरे आदेश तथा शौर्यबल की अवहेलना किया है। मेरी आज्ञा यदि नहीं मानोगी, तब मैं हल के आघात से तुम्हारे हजारों भाग कर दूंगा"।।८-१३।।

व्यास उवाच

इत्युक्तयाऽतिसन्त्रस्ततया नद्या प्रसादितः।
भूभागे प्लाविते तत्र मुमोच यमुनां बलः।।१४।।
ततः स्नातस्य वै कान्तिराजगाम महावने।
अवतंसोत्पलं चारु गृहीत्वैकं च कुण्डलम्।।१५।।
वरुणप्रहितां चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम्। समुद्रार्हे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत।।१६।।
कृतावतंसः स तदा चारुकुण्डलभूषितः।
नीलाम्बरधरः स्रग्वी शुशुभे कान्तिसंयुतः।।१७।।

इत्थं विभूषितो रेमे तत्र रामस्तदा व्रजे। मासद्वयेन यातश्च पुनः स मथुरां पुरीम्॥१८॥
रेवतीं चैव तनयां रैवतस्य महीपते। उपयेमे बलस्तस्यां जज्ञाते निशठोल्मुकौ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हलिक्रीडावर्णनं नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९८॥

व्यासदेव कहते हैं—बलराम के कथन को सुनकर यमुना सन्त्रस्त हो गयी। उसने बलराम को प्रसन्न किया। अन्ततः जब यमुना ने वहां के भूभाग को अपने जल से प्लावित किया, यह देखकर बलराम ने उसे हल के आकर्षण से मुक्त कर दिया। महावन में बलराम ने स्नान द्वारा कान्तिवृद्धि लाभ किया। उन्होंने आभूषणार्थ एक कमल एवं कुण्डल ग्रहण किया। वरुण ने बलराम को कभी न मुरझाने वाली कमल से बनी माला प्रदान किया था। लक्ष्मी देवी ने बलराम को समुद्र के समान नीलवर्ण वस्त्रद्वय प्रदान किया। भूषणयुक्त, उत्तम सुन्दर कुण्डल तथा नीलवस्त्रद्वय से विभूषित, माला पहने हुये कान्ति सम्पन्न बलदेव वहां शोभायमान हो गये। इस विधि से विभूषित बलराम ने उस व्रजभूमि में दो मास पर्यन्त विहार किया। तदनन्तर वे मथुरापुरी लौटे। उनका विवाह राजा रैवत की पुत्री रेवती के साथ हो गया। रेवती से बलराम के दो पुत्र निशठ एवं उलूक का जन्म हुआ॥१४-१९॥

॥अष्टनवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त॥

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिणी विवाह वर्णन

व्यास उवाच

भीष्मकः कुण्डिने राजा विदर्भविषयेऽभवत्।
रुक्मिणी तस्य दुहिता रुक्मी चैव सुतो द्विजाः॥१॥
रुक्मिणीं चकमे कृष्णः सा च तं चारुहासिनी।
न ददौ याचते चैनां रुक्मी द्वेषेण चक्रिणे॥२॥
ददौ स शिशुपालाय जरासन्धप्रचोदितः। भीष्मको रुक्मिणा सार्धं रुक्मिणीमुरुविक्रमः॥३॥
विवाहार्थं ततः सर्वे जरासन्धमुखा नृपाः।
भीष्मकस्य पुरं जग्मुः शिशुपालश्च कुण्डिनम्॥४॥
कृष्णोऽपि बलभद्राद्यैर्यदुभिः परिवारितः। प्रययौ कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहं चैद्यभूपतेः॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—विदर्भ प्रदेशस्थ कुंडिन नगर के राजा थे भीष्मक। उनकी रुक्मिणी नामक पुत्री तथा रुक्मी नामक पुत्र था। रुक्मिणी को कृष्ण ने पत्नीरूपेण पाने की कामना किया था। उस चारुहासिनी रुक्मिणी ने भी कृष्ण की कामना किया। चक्रधारी कृष्ण से रुक्मी विद्वेष करता था। अतः कृष्ण के मांगे जाने पर भी उसने यह कन्या कृष्ण को प्रदान नहीं किया। उरुविक्रम भीष्मक ने जरासन्ध के कथनानुसार तथा रुक्मी के विचार से सहमत होकर शिशुपाल से ही रुक्मिणी का विवाह कराना चाहा। कालान्तर में विवाहार्थ शिशुपाल, जरासंध एवं अन्य राजा कुण्डिनपुर में भीष्मक के यहां आये। कृष्ण भी चेदिराज शिशुपाल के विवाहोत्सव को देखने हेतु बलराम तथा अन्य यादवों सहित वहां आ गये थे।।१-५।।

श्वोभाविनि विवाहे तु तां कन्यां हृतवान्हरिः। विपक्षभावमासाद्य रामाद्येष्वेव बन्धुषु॥६॥

ततश्च पौण्ड्रकः श्रीमान्दन्तवक्त्रो विदूरथः।
शिशुपालो जरासन्धः शाल्वाद्याश्च महीभृतः॥७॥

कुपितास्ते हरिं हन्तुं चक्रुरुद्योगमुत्तमम्। निर्जिताश्च समागम्य रामाद्यैर्यदुपुङ्गवैः॥८॥

कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि अहत्वा युधि केशवम्।
कृत्वा प्रतिज्ञां रुक्मी च हन्तुं कृष्णमभिद्रुतः॥९॥

हत्वा बलं स नागाश्वपत्तिस्यन्दनसंकुलम्। निर्जितः पातितश्चोर्व्यां लीलयैव स चक्रिणा॥१०॥

निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमे स रुक्मिणीम्। राक्षसेन विधानेन सम्प्राप्तो मधुसूदनः॥११॥

तस्यां जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनांश स वीर्यवान्।
जहार शम्बरो यं वै यो जघान च शम्बरम्॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९९।।

विवाह के एक दिन पहले श्रीहरि ने विपक्षी भाव का अवलम्बन किया और बलराम आदि बन्धुवर्ग की सहायता से उन्होंने उस कन्या का हरण भी कर लिया। इससे वहां उपस्थित पौंड्रक दन्तवक्त्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासन्ध, शाम्ब आदि राजा कुपित होकर श्रीहरि के वध हेतु विशेष उद्यमरत हो गये, लेकिन युद्ध में बलराम आदि यादवों की विजय हो गयी! रुक्मी ने यह प्रण कर लिया कि "कृष्ण का वध किये बिना कुण्डिनपुर में प्रवेश नहीं करूंगा।" अब उसने कृष्ण के वधार्थ कृष्ण का पीछा किया, लेकिन चक्रधारी कृष्ण ने उसके अश्व, हाथी, रथ, पैदल सिपाही वाले समस्त सैन्यबल का विनाश करके रुक्मी को पराजित किया तथा उसे भूपतित कर दिया। कृष्ण ने रुक्मी को इस प्रकार जीत कर सविधि रुक्मिणी से विवाह किया। मधुसूदन ने राक्षस विवाह द्वारा इस पत्नी को प्राप्त किया था। इन रुक्मिणी से ही कामदेव के अंश से महापराक्रमी प्रद्युम्न जन्मे। इनका शम्बर दैत्य ने हरण कर लिया था तथा इन प्रद्युम्न द्वारा ही शम्बर दैत्य का वध किया गया था।।६-१२।।

।।नवनवत्यधिक शततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्विशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्न के आख्यान का वर्णन

मुनयः ऊचुः

शम्बरेण हृतो वीरः प्रद्युम्नः स कथं पुनः। शम्बरश्च महावीर्यः प्रद्युम्नेन कथं हतः॥१॥

मुनिगण कहते हैं—वीर प्रद्युम्न के द्वारा शम्बर किस प्रकार निहत किया गया? प्रद्युम्न ने उस महापराक्रमी शम्बर का वध कैसे किया?।।१।।

व्यास उवाच

षष्ठेऽह्नि जातमात्रे प्रद्युम्नं सूतिकागृहात्। ममैष हन्तेति द्विजा हृतवान्कालशम्बरः॥२॥
नीत्वा चिक्षेप चैवैनं ग्राहोऽग्रे लवणार्णवे। कल्लोलजनितावर्ते सुघोरे मकरालये॥३॥
पतितं चैव तत्रैको मत्स्यो जग्राह बालकम्। न ममार च तस्यापि जठरानलदीपितः॥४॥
मत्स्यबन्धैश्च मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यैः सह द्विजाः।
घातितोऽसुरवर्याय शम्बराय निवेदितः॥५॥
तस्य मायावती नाम पत्नी सर्वगृहेश्वरी। कारयामास सूदानामाधिपत्यमनिन्दिता॥६॥
दारिते मत्स्यजठरे ददृशे साऽतिशोभनम्। कुमारं मन्मथतोर्दग्धस्य प्रथमाङ्कुरम्॥७॥
कोऽयं कथमयं मत्स्यजठरे समुपागतः। इत्येवं कौतुकाविष्टां तां तन्वीं प्राह नारदः॥८॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजगण! प्रद्युम्न का जन्म होने के छठे दिन शम्बर ने प्रद्युम्न को अपना वधकर्त्ता जानकर उनका हरण कर लिया था। उसने उनको वहां जल के भंवरयुक्त तथा भयंकर लहरों वाले लवण सागर में फेंक दिया। वहां बालक को एक मत्स्य ने ग्रास कर लिया। मत्स्य की जठराग्नि में भी बालक दीप्त होने के बाद भी मृत नहीं हो सका। हे द्विजप्रवरगण! धीवरों ने अनेक मत्स्य के साथ इस मत्स्य को भी जाल में पकड़ा तथा असुरराज शम्बर को सभी मत्स्य अर्पित किया। शम्बर की गृहेश्वरी पत्नी अनिन्दिता मायावती थी। सभी रसोईयों पर उसी का आधिपत्य था। उस मत्स्य का पेट जब चीरा गया, उस समय दग्ध मन्मथरूपी वृक्षांकुर के समान अत्यन्त सुन्दर कुमार को मायावती ने देख कर विचार किया "यह कौन है? यह मत्स्य के उदर में कहां से पहुंच गया?" मायावती कौतूहलान्वित होकर यह विचार कर ही रही थी, इतने में नारद ने आकर उससे कहा—।।२-८।।

नारद उवाच

अयं समस्तजगतां सृष्टिसंहारकारिणा। शम्बरेण हृतः कृष्णातनयः सूतिकागृहात्॥९॥
क्षिप्तः समुद्रे मत्स्येन निगीर्णस्ते वशंगतः। नररत्नमिदं सुभ्रु विश्रब्धा परिपालय॥१०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—ये समस्त जगत् की सृष्टि तथा संहार करने वाले कृष्ण के पुत्र हैं। ये शम्बर

द्वारा सूतिकागृह से हरे जाकर समुद्र में फेंके गये। वहां मत्स्य ने इनको निगल लिया। ये अब तुमको प्राप्त हैं। हे सुभ्रु! तुम इन नररत्न का पालन विश्वस्तरूपेण करो।।९-१०।।

व्यास उवाच

नारदेनैव मुक्ता सा पालयामास तं शिशुम्। बाल्यादेवातिरागेण रूपातिशयमोहिता॥११॥

स यदा यौवनाभोगभूषितोऽभूद्द्विजोत्तमाः।
साभिलाषा तदा सा तु बभूव गजगामिनी॥१२॥
मायावती ददौ चास्मै माया सर्वा महात्मने।
प्रद्युम्नायाऽऽत्मभूताय तन्न्यस्तहृदयेक्षणा।
प्रसज्जन्तीं तु तामाह स कार्ष्णिः कमललोचनाः॥१३॥

व्यासदेव कहते हैं—नारद द्वारा यह कहे जाने पर मायावती ने बाल्यावस्था वाले उस बालक का पालन अत्यन्त अनुराग के साथ किया। वह उनके रूपातिशय के कारण मोहित होकर उनका पालन करने लगी। हे द्विजसत्तमगण! जब वह बालक यौवनावस्था से भूषित हो गया, तब वह गजगामिनी मायावती उनके प्रति अभिलाषिणी (मोहित) हो उठी। उसने उनको अपने नेत्र तथा मन का समर्पण कर दिया तथा आत्मभूत इन महात्मा प्रद्युम्न को उसने समस्त माया विद्या प्रदान कर दिया। कमलनयन कृष्णानन्दन ने मायावती को अपने प्रति अनुरागिणी जानकर उससे कहा—।।११-१३।।

प्रद्युम्न उवाच

मातृभावं विहायैव किमर्थं वर्तसेऽन्यथा॥१४॥

प्रद्युम्न कहते हैं—मेरे प्रति तुमने मातृभाव त्याग कर यह अन्य भाव क्यों अपना लिया?।।१४।।

व्यास उवाच

सा चास्मै कथयामास न पुत्रस्त्वं ममेति वै।
तनयं त्वामयं विष्णोर्हृतवान्कालशम्बरः॥१५॥
क्षिप्तः समुद्रे मत्स्यस्य सम्प्राप्तो जठरान्मया।
सा तु रोदिति ते माता कान्ताऽद्याप्यतिवत्सला॥१६॥

व्यासदेव कहते हैं—तुम तो विष्णुपुत्र हो, मेरी सन्तान नहीं हो। तुम्हारा हरण कालशम्बर ने करके तुमको सागर में फेंक दिया था। वहां से मत्स्य के जठर से मैंने तुमको पाया। अति वत्सला तुम्हारी सुरूपा माता तुम्हारे लिये रोती रहती हैं।।१५-१६।।

व्यास उवाच

इत्युक्तः शम्बरं युद्धे प्रद्युम्नः स समाह्वयत्।
क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे च महाबलः॥१७॥

हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य माधविः।
सप्त माया व्यतिक्रम्य मायां संयुजुजेऽष्टमीम्॥१८॥
तया जघान तं दैत्यं मायया कालशम्बरम्।
उत्पत्य च तया सार्धमाजगाम पितुः पुरम्॥१९॥
अन्तःपुरे च पतितं मयावत्या समन्वितम्।
तं दृष्ट्वा हृष्टसङ्कल्पा बभूवुः कृष्णयोषितः।
रुक्मिणी चाब्रवीत्प्रेम्णाऽऽसक्तदृष्टिरनिन्दता॥२०॥

व्यासदेव कहते हैं—यह सुनकर प्रद्युम्न ने क्रोधाकुल मन से शम्बर को युद्धार्थ ललकारा तथा उससे युद्ध करके उसकी समस्त सेना का हनन कर दिया और दैत्य की सात प्रकार की माया का भेदन अपनी माया से कर दिया। तत्पश्चात् माधवनन्दन ने आठवीं माया के प्रयोग द्वारा उस कालशम्बर दैत्य का वध करके मायावती के साथ आकाशपथ से पिता की नगरी हेतु प्रस्थान कर दिया। वहां पहुंचने पर कृष्ण की पत्नियां उनको मायावती के साथ अन्तःपुर में आया देखकर प्रसन्नता से भर उठीं। अनिन्दिता रुक्मिणी प्रद्युम्न को स्नेहासिक्त दृष्टि से देखती कहने लगीं।।१७-२०।।

रुक्मिण्युवाच

धन्यायाः खल्वयं पुत्रो वर्तते नवयौवने।
अस्मिन्वयसि पुत्रो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति॥२१॥
सभाग्या जननी वत्स त्वया काऽपि विभूषिता।
अथवा मादृशः स्नेहो मम यादृग्वपुश्च ते।
हरेपत्यं सुव्यक्तं भवान्वत्स भविष्यति॥२२॥

रुक्मिणी देवी कहती हैं—यह नवयौवन सम्पन्न पुत्र किस धन्या रमणी का होगा? यदि मेरा पुत्र जीवित हो, तब इसी आयु का होगा। हे वत्स! तुम्हारे जन्म से कौन सौभाग्या रमणी धन्य हुई है? अथवा तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो स्नेह उमड़ रहा है, तुम्हारी जैसी आकृति है, उससे तो स्पष्टतः यह प्रतीत होता है कि तुम श्रीहरि के ही पुत्र हो।।२१-२२।।

व्यास उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः सह कृष्णेन नारदः। अन्तःपुरवरां देवीं रुक्मिणीं प्राह हर्षितः॥२३॥

व्यासदेव कहते हैं—तभी वहां नारद के साथ कृष्ण आ गये तथा वे अन्तःपुर की स्त्रियों की प्रधान रुक्मिणी देवी से हर्षित होकर कहने लगे।।२३।।

श्रीकृष्ण उवाच

एष ते तनयः सुभ्रु हत्वा शम्बरमागतः। हृतो येनाभवत्पूर्वं पुत्रस्ते सूतिकागृहात्॥२४॥
इयं मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती। शम्बरस्य न भार्येयं श्रूयतामत्र कारणम्॥२५॥

मन्मथे तु गते नाशं तदुद्भवपरायणा। शम्बरं मोहयामास मायारूपेण रुक्मिणी॥२६॥
विवाहाद्युपभोगेषु रूपं मायामयं शुभम्। दर्शयामास दैत्यस्य तस्येयं मदिरेक्षणा॥२७॥
कामोऽवतीर्णः पुत्रस्ते तस्येयं दयिता रतिः।
विशङ्का नात्र कर्त्तव्या स्नुषेयं तव शोभना॥२८॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे सुभ्रु! पूर्वकाल में सूतिकागृह से जिस पुत्र का हरण हो गया था, तुम्हारा वह पुत्र यही है। यह शम्बर का वध करके यहां आया है। यह सती मायावती तो तुम्हारे पुत्र की पत्नी है। यह शम्बर की भार्या नहीं है। इसका कारण सुनो। हे रुक्मिणी! कामदेव के दग्ध हो जाने पर उसकी उत्पत्ति हेतु चिंतित रति ने माया द्वारा शम्बर को मोहित कर लिया था। इस उत्तम नेत्रों वाली ने अपने विवाह तथा उपभोग के समय दैत्य को मायामय सुन्दर रूप दिखा कर उसी से युक्त किया था। वह काम (प्रद्युम्न के रूप में) तुम्हारा पुत्र होकर जन्मा है। यह उसी की पत्नी रति है। इस सम्बन्ध में शंका रहित हो जाओ। यह तुम्हारी शोभना पुत्रवधू है।।२४-२८।।

व्यास उवाच

ततो हर्षसमाविष्टौ रुक्मिणीकेशवौ तदा।
नगरी च समस्ता सा साधु साध्वित्यभाषत॥२९॥
चिरं नष्टेन पुत्रेण सङ्गतं प्रेक्ष्य रुक्मिणीम्। अवाप विस्मयं सर्वो द्वारवत्यां जनस्तदा॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे शम्बरहृतप्रद्युम्नागमनवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः।।२००।।

व्यासदेव कहते हैं—इसके पश्चात् रुक्मिणी तथा कृष्ण के हर्षित हो जाने पर नगरवासीगण साधुवाद देने लगे। वहां के लोग चिरकाल से नष्ट कृष्णपुत्र को मिला देखकर विस्मयापन्न हो गये। समस्त द्वारकावासी जन आश्चर्य से चकित हो उठे।।२९-३०।।

।।द्विशततम शततम अध्याय समाप्त।।

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्ध के विवाह काल में रुक्मीवध वर्णन

व्यास उवाच

चारुदेष्णं सुदेष्णं च चारुदेहं च शोभनम्।
सुषेणं (विचारुं) चारुगुप्तं च भद्रचारुं तथाऽपरम्॥१॥

चारुविन्दं (चन्द्र) सुचारुं च चारुं च बलिनां वरम्।
रुक्मिण्यजनयत्पुत्रान्कन्यां चारुमतीं तथा॥२॥
अन्याश्च भार्याः कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभनाः।
कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्नजिती तथा॥३॥
देवी जाम्बवती चापि सदा तुष्टा तु रोहिणी।
मद्रराजसुता चान्या सुशीला शीलमण्डला॥४॥
सत्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी।
षोडशात्र सहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—रुक्मिणी देवी ने चारुदेष्ण, सुदेष्ण, शोभन, चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु तथा महाबली चारु को एवं चारुमती नामक कन्या को उत्पन्न किया। कृष्ण की अन्य प्रधान सात सुन्दरी पत्नियां भी थीं। उनके नाम हैं कालिन्दी, मित्रवृन्दा, सत्या, नाग्नजिति, देवी जाम्बवती, सदा प्रसन्ना रोहिणी; मद्रराज की पुत्री सुशीला शीलमण्डला, सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा, चारुहासिनी एवं लक्ष्मणा थीं। चक्रधारी कृष्ण की अन्य सोलह हजार पत्नियां और थीं।।१-५।।

प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो रुक्मिणस्तनयां शुभाम्।
स्वयंवरस्थां जग्राह साऽपि तं तनयं हरेः॥६॥
तस्यामस्याभवत्पुत्रो महाबलपराक्रमः। अनिरुद्धो रणे रुद्धो वीर्योदधिररिन्दमः॥७॥
तस्यापि रुक्मिणः पौत्रीं वरयामास केशवः।
दौहित्राय ददौ रुक्मी स्पर्धयन्नपि शौरिणा॥८॥
तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह।
रुक्मिणो नगरं जग्मुर्नाम्ना भोजकटं द्विजाः॥९॥
विवाहे तत्र निर्वृत्ते प्राद्युम्नेः सुमहात्मनः। कलिङ्गराजप्रमुखा रुक्मिणं वाक्यमब्रुवन्॥१०॥

महाविक्रमी प्रद्युम्न ने रुक्मी की शुभा कन्या को स्वयंवर में ग्रहण किया। उस कन्या ने भी कृष्णपुत्र को स्वीकार किया था। प्रद्युम्न का पुत्र था अनिरुद्ध। वह महाबली, पराक्रमी, शत्रुहन्ता, युद्धसमर्थ, शक्ति सागर था। उसका वरण रुक्मी की पौत्री ने किया। यद्यपि रुक्मी कृष्ण से बराबर ईर्ष्या तथा स्पर्द्धा करता रहता था, तथापि उसने अपने दौहिद्र अनिरुद्ध को अपनी पौत्री प्रदान कर दिया। अनिरुद्ध के विवाह के समय रुक्मी के भोजकट नगर में बलराम प्रभृति सभी यादव गये थे। जब महात्मा अनिरुद्ध का विवाह समारोह सम्पन्न हो गया, तब कलिंगाधिपति प्रभृति राजाओं ने रुक्मी से कहा—।।६-१०।।

कलिङ्गादय ऊचुः

अनक्षज्ञो हली द्यूते तथाऽस्य व्यसनं महत्।
तन्न (ज्ज) यामो बलं तस्माद्द्यूतेनैव महाद्युते॥११॥

कलिंग आदि राजागण कहते हैं—हे रुक्मी! हे महाद्युति! ये हलधर बलराम द्यूतक्रीड़ा नहीं जानते। तथापि उनको द्यूत के प्रति अत्यधिक आसक्ति है। इनको द्यूत में पराजित किया जाये।।११।।

व्यास उवाच

तथेति तानाह नृपानुक्मी बलसमन्वितः।
सभायां सह रामेण चक्रे द्यूतं च वै तदा॥१२॥
सहस्रमेकं निष्काणां रुक्मिणा विजितो बलः।
द्वितीये दिवसे चान्यत्सहस्रं रुक्मिणा जितः॥१३॥
ततो दश सहस्राणि निष्काणां पणमाददे। बलभ्रद्रप्रपन्नानि रुक्मी द्यूतविदां वरः॥१४॥
ततो जहासाथ बलं कलिङ्गाधिपतिर्द्विजाः।
दन्तान्विदर्शयन्मूढो रुक्मी चाऽह मदोद्धतः॥१५॥

व्यासदेव कहते हैं—बलवान् रुक्मी ने उन लोगों से कहा—"यही हो" तथा वह सभा में बलराम के साथ द्यूत क्रीड़ा करने लगा। पहले दिन रुक्मी ने बलराम को एक हजार निष्क से हरा दिया (एक निष्क सोलह मासा स्वर्ण का होता है) इस प्रकार बलराम १६००० मासा स्वर्ण पहले दिन हार गये। अगले दिन भी रुक्मी एक हजार निष्क जीत गया था। क्रमशः रुक्मी ने बलराम से द्यूत क्रीड़ा में दस हजार निष्क जीत लिया, क्योंकि रुक्मी द्यूतक्रीड़ा में अत्यन्त निपुण था। हे ब्राह्मणगण! यह देखकर मूढ़ कलिंगराज दांत दिखलाकर हंसने लगा तथा उसने बलराम का उपहास उड़ाया! उस समय मदमत्त रुक्मी भी दांत दिखाते कहने लगा—।।१२-१५।।

रुक्म्युवाच

अविद्योऽयं महाद्यूते बलभद्रः पराजितः।
मृषावाक्षावलेपप्वाद्योऽयं मेनेऽक्षकोविदम्॥१६॥
दृष्ट्वा कलिङ्गराजं तु प्रकाशदशनाननम्।
रुक्मिणं चापि दुर्वाक्यं कोपं चक्रे हलायुध्याः॥१७॥

रुक्मी कहता है—यह विद्या रहित (मूर्ख) बलभद्र इस महाद्यूत में पराजित हो गये। इन्होंने वृथा अपने को गर्व के कारण अक्षविद्या निष्णात माना है। हलायुध बलभद्र ने इस प्रकार रुक्मी का दुर्वाक्य सुना और कलिंगराज का दांत दिखलाकर उपहास करना भी देखा। इससे वे क्रोधित हो गये।।१६-१७।।

व्यास उवाच

ततः कोपपरीतात्मा निष्ककोटिं हलायुधः।
ग्लहं जग्राह रुक्मी च ततस्त्वक्षानपातयत्॥१८॥
अजयद्बलदेवोऽथ प्राहोच्चैस्तं जितं मया।
ममेति रुक्मी प्राहोच्चैरलीकोक्तैरलं बलम्॥१९॥

त्वयोक्तोऽयं ग्लहः सत्यं न ममैषोऽनुमोदितः।
एवं त्वया चेद्विजितं न मया विजितं कथम्॥२०॥

व्यासदेव कहते हैं—क्रोधातिरेक के कारण तब बलभद्र ने एक कोटि निष्क का दांव लगाया। पासा फेंके जाने पर अब बलभद्र जीत गये। उन्होंने दृढ़ता से कहा—"मैं विजयी हो गया।" तब रुक्मी ने भी जोर से कहा—"मैं जीता, तुम झूठे हो, क्योंकि मैंने तुम्हारे दांव का अनुमोदन नहीं किया था। इसे यदि तुम जीता मानते हो, तब मैं क्यों नहीं जीता हूं"।।१८-२०।।

ततोऽन्तरिक्षे वागुच्चैः प्राह गम्भीरनादिनी।
बलदेवस्य तं कोपं वर्धयन्ती महात्मनः॥२१॥

तभी महात्मा बलदेव का क्रोध वर्द्धन करती अन्तरिक्ष से घोरनादिनी गंभीर आकाशवाणी हो गई।।२१।।

आकाशवागुवाच

जितं तु बलदेवेन रुक्मिणा भाषितं मृषा।
अनुक्त्वा वचनं किञ्चित्कृतं भवति कर्मणा॥२२॥

आकाशवाणी कहती है—रुक्मी असत्य कहता है। विजय बलराम की हुई है। कोई वाक्य न कहकर भी कर्मानुष्ठान करने पर उसे अनुमोदन ही कहते हैं।।२२।।

व्यास उवाच

ततो बलः समुत्थाय क्रोधसंरक्तलोचनः। जघानाष्टापदेनैव रुक्मिणं स महाबलः॥२३॥

कलिङ्गराजं चाऽऽदाय विस्फुरन्तं बलाद्बलः।
बभञ्ज दन्तान्कुपितो यैः प्रकाशं जहास सः॥२४॥
आकृष्य च महास्तम्भं जातरूपमयं बलः।
जघान ये तत्पक्षास्तान्भूभृतः कुपितो बलः॥२५॥

व्यासदेव कहते हैं—तदनन्तर महाबली बलदेव के नेत्र क्रोधारक्तवर्ण हो गये। महाबलवान् बलभद्र ने उठकर द्यूत के पासे के (अष्टपाद) के प्रहार द्वारा रुक्मी का वध कर दिया। दांत दिखाकर हंसने वाले कलिंगराज के दांतों को बल पूर्वक तोड़ दिया। क्रोधित बलदेव ने तब अन्य सभी रुक्मी का पक्ष लेने वाले राजाओं को उसी सभामण्डप का एक स्वर्णमय खंभा उखाड़ कर उसी के प्रहार से मार दिया।।२३-२५।।

ततो हाहाकृतं सर्वं पलायनपरं द्विजाः। तद्राजमण्डलं सर्वं बभूव कुपिते बले॥२६॥
बलेन निहतं श्रुत्वा रुक्मिणं मधुसूदनः। नोवाच वचनं किञ्चिद्रुक्मिणीबलयोर्भयात्॥२७॥
ततोऽनिरुद्धमादाय कृतोद्वाहं द्विजोत्तमाः। द्वारकामाजगामाथ यदुचक्रं सकेशवम्॥२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मेऽनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधनिरूपणं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०१॥

हे ब्राह्मणवृन्द! एवंविध बलदेव को कुपित देख कर वहां का समग्र राजमण्डल हाहाकार कर उठा तथा वे सभी राजा भागने लगे। मधुसूदन ने बलदेव द्वारा रुक्मी का वध किये जाने के संवाद को सुनकर रुक्मिणी तथा बलदेव के भय के कारण कुछ भी नहीं कहा। हे द्विजप्रवरगण! तदनन्तर विवाह सम्पन्न हो गये अनिरुद्ध को लेकर केशव तथा समस्त यादवगण द्वारका आ गये।।२६-२८।।

।।एकाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरक वध वर्णन

व्यास उवाच

द्वारवत्यां ततः शौरिं शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः। आजगामाथ मुनयो मत्तैरावतपृष्ठगः॥१॥
प्रविश्य द्वारकां सोऽथ समीपे च हरेस्तदा। कथयामास दैत्यस्य नरकस्य विचेष्टितम्॥२॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिवृन्द! तदनन्तर त्रिभुवनपति इन्द्र मत्त ऐरावत पर आरूढ़ होकर कृष्ण के पास आये। उन्होंने द्वारका में प्रवेशोपरान्त श्रीहरि से नरक दैत्य के समस्त आचरण को कहा—।।१-२।।

त्वया नाथेन देवानां मनुष्यत्वेऽपि तिष्ठता। प्रशमं सर्वदुःखानि नीतानि मधुसूदन॥३॥
तपस्विजनरक्षायै सोऽरिष्टो धेनुकस्तथा। प्रलम्बाद्यास्तथा केशी ते सर्वे निहतास्त्वया॥४॥
कंसः कुवलयापीडः पूतना बालघातिनी। नाशं नीतास्त्वया सर्वे येऽन्ये जगदुपद्रवाः॥५॥
युष्मद्दोर्दण्डसम्बुद्धिपरित्राते जगत्त्रये। यज्ञे यज्ञहविः प्राश्य तृप्तिं यान्ति दिवौकसः॥६॥

देवराज इन्द्र कहते हैं—हे नाथ, मधुसूदन! आप मनुष्यावतार में रहकर देवताओं के सभी दुःखों का प्रशमन कर रहे हैं। आपने जनगण की रक्षा हेतु अरिष्ट, धेनुक, प्रलम्ब तथा केशी प्रभृति सभी को निहत कर दिया। कंस, कुवलयापीड़, बालघातिनी पूतना इत्यादि जो सब उपद्रवी जीव संसार को दुःख देने वाले थे, सभी आप द्वारा नष्ट किये गये। जब आप अपने भुजबल तथा बुद्धि के बल से तीनों लोकों की रक्षा करते हैं, तब ही देवता लोग यज्ञों में हविः प्राशन से तृप्त हो जाते हैं।।३-६।।

सोऽहं साम्प्रतमायातो यन्निमित्तं जनार्दन। तच्छ्रुत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्नं कर्तुमर्हसि॥७॥
भौमोऽयं नरको नाम प्राग्ज्योतिषपुरेश्वरः। करोति सर्वभूतानामपघातमरिन्दम॥८॥
देवसिद्धसुरादीनां नृपाणां च जनार्दन। हत्वा तु सोऽसुरः कन्या रुरोध निजमन्दिरे॥९॥
छत्रं यत्सलिलस्त्रावि तज्जहार प्रचेतसः। मन्दरस्य तथा शृङ्गं हतवान्मणिपर्वतम्॥१०॥
अमृतस्त्राविणी दिव्ये मातुर्मेऽमृतकुण्डले। जहार सोऽसुरोऽदित्या वाञ्छत्यैरावतं द्विपम्॥११॥

दुर्नीतमेतद्गोविन्दं मया तस्य तवोदितम्। यदत्र प्रतिकर्तव्यं तत्स्वयं परिमृश्यताम्॥१२॥

हे जनार्दन! आप कृपया मेरे आगमन का उद्देश्य श्रवण करके उसके प्रतिकार का प्रयत्न करिये। हे शत्रुनाशक! प्रभो! जनार्दन! पृथिवी पुत्र नरक नामक प्राग्ज्योतिषपुर का अधिपति सभी प्राणीगण के प्रति हिंसा का व्यवहार कर रहा है। हे जनार्दन! वह देवता, सिद्ध, सुर तथा राजाओं का वध करके उनकी कन्याओं को लाकर अपने यहां बन्दी बना रहा है। प्राचेतस वरुण का जो जलस्त्रावी छत्र था, मेरी माता अदिति का जो अमृतस्त्रावी दिव्य कुण्डल हर लिया था तथा ऐरावत हाथी का भी वह हरण करना चाहता है। हे गोविन्द! उसकी दुष्ट नीति मैंने आपसे कह दिया। इसका प्रतिकार कैसे हो, यह तो आपको विचार करना होगा।।७-१२।।

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा स्मितं कृत्वा भगवान्देवकीसुतः।
गृहीत्वा वासवं हस्ते समुत्तस्थौ वरासनात्॥१३॥

सञ्चिन्तितमुपारुह्य गरुडं गगनेचरम्। सत्यभामां समारोप्य ययौ प्राग्ज्योतिषं पुरम्॥१४॥
आरुह्यैरावतं नागं शक्रोऽपि त्रिदशालयम्। ततो जगाम सुमनाः पश्यतां द्वारकौकसाम्॥१५॥
प्राग्ज्योतिषपुरस्यास्य समन्ताच्छतयोजनम्। आचितं भैरवैः पाशैः परसैन्यनिवारणे॥१६॥

तांश्चिच्छेद हरिः पाशान्क्षिप्त्वा चक्रं सुदर्शनम्।
ततो मुरः समुत्तस्थौ तं जघान च केशवः॥१७॥

व्यासदेव कहते हैं—इन्द्र का यह वचन सुनकर भगवान् देवकीनन्दन ने तनिक मुस्कान के साथ इन्द्र का हाथ पकड़ा तथा वे अपने उत्तम आसन से उठ गये। उनके स्मरण करते ही आकाश से गरुड़ वहां उपस्थित हो गये तथा भगवान् सत्यभामा के साथ गरुड़ पर बैठकर तत्काल प्राग्ज्योतिषपुर के लिये आकाशमार्ग से चल पड़े। इन्द्र भी ऐरावत पर आसीन होकर द्वारकावासी लोगों के समक्ष ही देवलोक चले गये। उक्त प्राग्ज्योतिषपुर का चतुर्दिक् का सौ योजन स्थान पराई सेना को रोकने वाले भयंकर पाशों से घिरा था। हरि ने सुदर्शन चक्र चलाकर उन पाशों का उच्छेद कर दिया! तब वहां मुर दानव उठ कर खड़ा हो गया। उसे केशव ने मार दिया।।१३-१७।।

मरोस्तु (रस्य) तनयान्सप्त सहस्रास्तां (सा तां) स्ततो हरिः।
चक्रधाराग्निनिर्दग्धांश्चकार शलभानिव॥१८॥

हत्वा पुरं हयग्रीवं तथा पञ्चजनं द्विजाः। प्राग्ज्योतिषपुरं धीमांस्त्वरावान्समुपाद्रवत्॥१९॥
नरकेनास्य तत्राभून्महासैन्येन संयुगः। कृष्णस्य यत्र गोविन्दो जघ्ने दैत्यान्सहस्रशः॥२०॥
शस्त्रास्त्रवर्षं मुञ्चन्तं स भौमं नरकं बली। क्षिप्त्वा चक्रं द्विधा चक्रे चक्री दैतेयचक्रहा॥२१॥
हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वाऽदितिकुण्डले। उपतस्थे जगन्नाथं वाक्यं चेदमथाब्रवीत्॥२२॥

मुर दानव के सात हजार पुत्र थे। श्रीहरि ने चक्र की धाररूपी अग्नि से उसी प्रकार उनको नष्ट कर दिया, जैसे अग्नि से पतंग नष्ट हो जाते हैं। हे द्विजवृन्द! धीमान् हरि ने हयग्रीव, मुर, पाञ्चजन दैत्यों का वध

कर दिया और वे शीघ्रता पूर्वक प्राग्ज्योतिषपुर जाने लगे। गोविन्द ने वहां भी हजारों-हजार असुरों का वध प्रारम्भ कर दिया। ऐसी स्थिति में महासैन्य के साथ नरकासुर वहां आ गया। उसके साथ श्रीकृष्ण का महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। दैत्यनाशक चक्रधारी महाबली चक्रपाणि कृष्ण ने उस शस्त्रास्त्र की वर्षा कर रहे धरतीनन्दन नरकासुर को चक्र के प्रहार से दो भागों में बांट दिया। नरक के निहत होने पर भूमिदेवी अदिति के दोनों कुण्डल लेकर वहां आई तथा जगन्नाथ से कहने लगीं।।१८-२२।।

धरण्युवाच

यदाऽहमुद्धृता नाथ त्वया शूकरमूर्तिना। त्वत्संस्पर्शभवः पुत्रस्तदाऽयं मय्यजायत॥२३॥

सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातितः।
गृहाण कुण्डले चेमे पालयास्य च सन्ततिम्॥२४॥

भारावतरणार्थाय ममैव भगवानिमम्। अंशेन लोकमायातः प्रसादसुमुख प्रभो॥२५॥

त्वं कर्ता च विकर्ता च संहर्ता प्रभवोऽव्ययः।
जगत्स्वरूपो यश्च त्वं स्तूयसेऽच्युत किं मया॥२६॥
व्यापी व्याप्यः क्रिया कर्ता कार्यं च भगवान्सदा।
सर्वभूतात्मभूतात्मा स्तूयसेऽच्युत किं मया॥२७॥

धरणीदेवी कहती हैं—हे नाथ! आपने वराहरूपी होकर जब मेरा महाजल से उद्धार किया था, तब आपके ही संग के कारण मुझसे यह पुत्र जन्मा। यह पुत्र आपने ही प्रदान किया था, तथा यह आप द्वारा ही मृत किया गया। आप यह कुण्डलद्वय ग्रहण करिये। आप नरक की सन्तति का प्रतिपालन करिये। आप मेरा भार उतारने के लिये ही अपने अंश से यहां अवतीर्ण हैं। हे प्रभो! हे सुन्दर मुखाकृति वाले! हे अच्युत! आप ही सृष्टिकर्त्ता, परिवर्त्तन करने वाले, विकर्त्ता, संहर्त्ता, प्रभु तथा अव्यय हैं। आप जगत्स्वरूप हैं। आपका स्तव मैं कैसे कर सकती हूं?।।२३-२७।।

परमात्मा त्वमात्मा च भूतात्मा चाव्ययो भवान्।
यदा तदा स्तुतिर्नास्ति किमर्थं ते प्रवर्तताम्॥२८॥

प्रसीद सर्वभूतात्मन्नरकेन कृतं च यत्। तत्क्षम्यतामदोषाय मत्सुतः स निपातितः॥२९॥

आप तो परमात्मा, भूतात्मा तथा अविनाशी हैं। आप अव्यय हैं। जब आप ऐसे हैं, तब आपकी स्तुति ही नहीं है। तब इस सम्बन्ध में प्रवृत्ति कैसे होगी? हे सर्वभूतात्मा! आप प्रसन्न हो जायें। नरक ने जो कुछ किया था, उसे क्षमा करिये। वास्तव में आपने मेरे उस पुत्र को दोष रहित (पापरहित) करने के लिये ही निहत किया है।।२८-२९।।

व्यास उवाच

तथेति चोक्त्वा धरणीं भगवान्भूतभावनः। रत्नानि नरकावासाज्जग्राह मुनिसत्तमाः॥३०॥

कन्यापुरे स कन्यायां षोडशातुलविक्रमः। शताधिकानि ददृशे सहस्राणि द्विजोत्तमाः॥३१॥

चतुर्दंष्ट्रान्गजांश्चोग्रान्षट्सहस्त्राणि दृष्टवान्।
काम्बोजानां तथाऽश्वानां नियुतान्येकविंशतिम्॥३२॥
कन्यास्ताश्च तथा नागांस्तानश्वान्द्वारकां पुरीम्।
प्रापयामास गोविन्दः सद्यो नरककिङ्करैः॥३३॥
ददृशे वारुणं छत्रं तथैव च मणिपर्वतम्। आरोपयामास हरिर्गरुडे पतगेश्वरे॥३४॥
आरुह्य च स्वयं कृष्णः सत्यभामासहायवान्।
अदित्याः कुण्डले दातुं जगाम त्रिदशालयम्॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णचरिते नरकवधो नाम द्वयधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०२।।

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिसत्तमगण! भूतभावन भगवान् ने धरणी से कहा—"ऐसा ही हो।" यह कहकर नरक के महल से उन्होंने समस्त रत्न ले लिया। हे द्विजोत्तमवृन्द! उन्होंने वहां कन्यापुर में सोलह हजार एक सौ कन्याओं को देखा, राजपुरी में चार दन्तयुक्त छः सहस्र भयानक हस्ति तथा इक्कीस लाख काम्बोज जाति के अश्वों को देखा। गोविन्द ने नरक के भृत्यों द्वारा सभी कन्या, हाथी एवं अश्वों को तत्क्षण द्वारका भेज दिया। हरि ने वहां वारुणछत्र तथा मणिपर्वत को देखा था। उन्होंने वह सब पक्षिराज गरुड़ पर रखकर स्वयं सत्यभामा के साथ उन पर आरोहण किया। तत्पश्चात् वे अदिति को उनका कुण्डल वापस करने देवलोक सत्यभामा के साथ गये।।३०-३५।।

।।द्वयधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अदिति कृत भगवान् की स्तुति

व्यास उवाच

गरुडो वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम्। सभार्यं च हृषीकेशं लीलयैव वहन्ययौ॥१॥
ततः शङ्खमुपाध्माय स्वर्गद्वारं गतो हरिः। उपतस्थुस्ततो देवाः सार्घपात्रा जनार्दनम्॥२॥
स देवैरर्चितः कृष्णो देवमातुर्निवेशनम्। सिताभ्रशिखराकारं प्रविश्य ददृशेऽदितिम्॥३॥
स तां प्रणम्य शक्रेण सहितः कुण्डलोत्तमे। ददौ नरकनाशं च शशंसास्यै जनार्दनः॥४॥
ततः प्रीता जगन्माता धातारं जगतां हरिम्। तुष्टावादितिरव्यग्रं कृत्वा तत्प्रवणं मनः॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—गरुड़ लीला पूर्वक बिना श्रम अनुभव किये वारुणक्षत्र, मणिपर्वत तथा सपत्नीक नारायण को पीठ पर बैठा कर चल पड़े। तदनन्तर श्रीहरि ने स्वर्ग के द्वार पर पहुंचकर अपना शंख बजाया। उस समय देवगण हाथों में अर्घ्य लिये जनार्दन की अभ्यर्थना करने लगे। कृष्ण ने देवताओं से अर्चित होकर देवमाता आदिति के स्वच्छ श्वेत मेघगण से आवृत शिखराकार भवन में प्रवेश करके अदिति को देखा। इन्द्र तथा उपेन्द्र (कृष्ण) ने उनको प्रणामोपरान्त कुण्डलद्वय दे दिया। तब जगन्माता अदिति प्रसन्न होकर हरि के प्रति मन को संलग्न करके अव्यग्र भाव से जगत् को धारण करने वाले हरि का स्तव करने लगीं।।१-५।।

अदितिरुवाच

नमस्ते पुण्श्रडरीकाक्ष भक्तानामभयङ्कर। सनातनात्मन्भूतात्मन्सर्वात्मन्भूतभावन॥६॥
प्रणेतर्मनसो बुद्धेरिन्द्रियाणां गुणात्मक। सितदीर्घादिनिःशेषकल्पनापरिवर्जित॥७॥
जन्मादिभिरसंस्पृष्ट स्वप्नादिपरिवर्जित। सन्ध्या रात्रिरहर्भूमिर्गगनं वायुरम्बु च॥८॥
हुताशनो मनो बुद्धिर्भूतादिस्त्वं तथाऽच्युत।
सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्ता कर्तृपतिर्भवान्॥९॥
ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वरः। मायाभिरेतद्व्याप्तं ते जगत्स्थावरजङ्गमम्॥१०॥
अनात्मन्यात्मविज्ञानं सा ते माया जनार्दन। अहं ममेति भावोऽत्र यया समुपजायते॥११॥
संसारमध्ये मायायास्तवैतन्नाथ चेष्टितम्। यैः स्वधर्मपरैर्नाथ नरैराराधितो भवान्॥१२॥

देवी अदिति कहती हैं—हे पुण्डरीकाक्ष! भक्तों को अभय देने वाले, सनातनात्मा, भूतात्मा, सर्वात्मा, भूतभावन! आप बुद्धि-इन्द्रिय-मन के प्रणेता हैं। आप गुणात्मक हैं। शुक्ल, दीर्घ आदि कल्पना से परिवर्जित हैं। हे अच्युत! आप सन्ध्या, रात्रि, दिन, भूमि, गगन, पवन, जल, अग्नि, मन, बुद्धि तथा प्राणीसमूह के आदि हैं। आप सृष्टि-स्थिति-विनाश के कर्त्ता, अव्यय, कर्तृपति हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नामक अपनी मूर्त्ति द्वारा ईश्वर पदवाच्य हैं। हे जनार्दन! आपकी मायाराशि से स्थावर-जंगम जगत् व्याप्त रहता है। अनात्मा में आत्मबुद्धि ही आपकी यह माया है। इसी के द्वारा "मैं-मेरा" भाव उत्पन्न होता है। हे नाथ! संसार का समस्त कार्य आपकी माया द्वारा ही होता है। हे नाथ! स्वधर्म तत्पर लोग आपकी आराधना में निरत रहते हैं।।६-१२।।

ते तरन्त्यखिलामेतां मायामात्मविमुक्तये। ब्रह्माद्याः सकला देवा मनुष्याः पशवस्तथा॥१३॥
विष्णुमायामहावर्ते मोहान्धतमसाऽऽवृताः। आराध्य त्वामभीप्सन्ते कामानात्मभवक्षये॥१४॥

ऐसे लोग आपकी माया से उत्तीर्ण हो जाते हैं। सभी ब्रह्मादि देवता तथा मनुष्य-पशु प्रभृति प्राणी इस विष्णु मायारूपी महाआवर्त्त मोह तमस् से आच्छन्न बने रहते हैं। हे प्रभो! आपकी माया से बद्ध पुरुष अपने जन्म तथा मरण के क्षयकारी (जन्म-मरण चक्र का क्षय करने वाले) आपके चरणद्वय की आराधना करते हैं।।१३-१४।।

पदे ते पुरुषा बद्धा मायया भगवंस्तव। मया त्वं पुत्रकामिन्या वैरिपक्षक्षयाय च॥१५॥
आराधितो न मोक्षाय मायाविलसितं हि तत्।
कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि॥१६॥

जायते मदपुण्यानां सोऽपराधः स्वदोषजः। तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराव्यय॥१७॥
अज्ञानं ज्ञानसद्भाव भूतभूतेश नाशय। नमस्ते चक्रहस्ताय शार्ङ्गहस्ताय ते नमः॥१८॥
गदाहस्ताय ते विष्णो शङ्खहस्ताय ते नमः। एतत्पश्यामि ते रूपं स्थूलचिह्नोपशोभितम्।
न जानामि परं यत्ते प्रसीद परमेश्वर॥१९॥

हे प्रभो! सभी पुरुष (प्राणी) आपकी माया द्वारा ही आपके चरणों में बद्ध लगते हैं। मैंने सन्तान कामना तथा वैरीपक्ष के क्षयार्थ आपकी आराधना किया था। मैंने मोक्ष के लिये आपकी आराधना नहीं किया। यह भी तो माया का ही विलास है। पापी लोगों के मन में जो कल्पवृक्ष हैं, उनके निकट मात्र कौपीन तथा आच्छादनार्थ मन में कामना उठती है। यह तो अपने दोष से ही उत्पन्न अपराध मात्र है। हे अखिल जगत् को माया से व्यामोहित करने वाले! अव्यय प्रभु! आप प्रसन्न हों। हे भूतभावन, ज्ञानसद्भाव! मेरे अज्ञान का नाश करें। हे चक्रधारी! आपको नमस्कार! हे शार्ङ्गधारी! आपको नमस्कार! हे गदा एवं शंखधारी! आपको नमस्कार!

मैं आपके स्थूल चिह्नों से अंकित रूप को ही देख पाती हूं। परम रूप कैसा है? मैं नहीं जानती। हे परमेश्वर! प्रसन्न हो जाईये!।।१५-१९।।

व्यास उवाच

अदित्यैवं स्तुतो विष्णुः प्रहस्याऽऽह सुरारणिम्॥२०॥

व्यासदेव कहते हैं—विष्णु ने एवंविध अदिति द्वारा स्तुत होकर हंसते हुये उन देवमाता से कहा—।।२०।।

श्रीकृष्ण उवाच

माता देवि त्वमस्माकं प्रसीद वरदां भव॥२१॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे देवी! आप हमारी माता हैं। प्रसन्न हों। वर दीजिये!।।२१।।

अदितिरुवाच

एवमस्तु यथेच्छा ते त्वमशेषसुरासुरैः। अजेयः पुरुषव्याघ्र मर्त्यलोके भविष्यसि॥२२॥

देवी अदिति कहती हैं—तुम्हारी जो इच्छा है, वही हो! हे पुरुषसिंह! तुम मर्त्यलोक में अशेष देव-दैत्यादि से अजेय रहोगे।।२२।।

व्यास उवाच

ततोऽनन्तरमेवास्य शक्राणीसहितां दितिम्।
सत्यभामा प्रणम्याऽऽह प्रसीदेति पुनः पुनः॥२३॥

व्यासदेव कहते हैं—तब इन्द्राणी एवं सत्यभामा माता अदिति को प्रणाम करके कहने लगीं "प्रसन्न हो जाईये"!।।।२३।।

अदितिरुवाच

मत्प्रसादान्न ते सुभ्रु जरा वैरूप्यमेव च। भविष्यत्यनवद्याङ्गि सर्वकामा भविष्यसि॥२४॥

देवी अदिति कहती हैं—हे सुभ्रु! मेरी कृपा से तुमको वृद्धावस्था तथा कुरूपता प्राप्त नहीं होगी। हे अनिन्दित अंगों वाली! तुम सर्वकाम प्राप्त करोगी।।२४।।

व्यास उवाच

अदित्या तु कृतानुज्ञो देवराजो जनार्दनम्। यथावत्पूजयामास बहुमानपुरःसरम्॥२५॥

ततो ददर्श कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान्।
देवोद्यानानि सर्वाणि नन्दनादीनि सत्तमाः॥२६॥

ददर्श च सुगन्धाढ्यं मञ्जरीपुञ्जधारिणम्। शैत्याह्लादकरं दिव्यं ताम्रपल्लवशोभितम्॥२७॥

मथ्यमानेऽमृते जातं जातरूपसमप्रभम्। पारिजातं जगन्नाथः केशवः केशिसूदनः।
तं दृष्ट्वा प्राह गोविन्दं सत्यभामा द्विजोत्तमाः॥२८॥

व्यासदेव कहते हैं—तब देवराज इन्द्र ने अदिति के आदेश से अत्यन्त आदर भाव से जनार्दन देव की सविधि पूजा सम्पन्न किया। तदनन्तर सत्यभामा कृष्ण के साथ नन्दनादि देवोद्यान देखने लगे। केशीसूदन भगवान् केशव ने क्रमशः सुगन्धयुक्त मंजीरपुंजधारी ताम्रवर्ण पल्लवों से भूषित, अमृत मंथन के समय उत्पन्न, स्वर्णवर्ण पारिजात वृक्ष को देखा। उसे देखकर सत्यभामा ने गोविन्द से कहा—।।२५-२८।।

सत्यभामोवाच

कस्मान्न द्वारकामेष नीयते कृष्ण पादपः।
यदि ते तद्वचः सत्यं सत्याऽत्यर्थं प्रियेति मे॥२९॥
मद्गृहे निष्कुटार्थाय तदयं नीयतां तरुः।
न मे जाम्बवती तादृगभीष्टा न च रुक्मिणी॥३०॥
सत्ये यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम्।
सत्यं तद्यदि गोविन्द नोपचारकृतं वचः॥३१॥

तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेहविभूषणम्। बिभ्रती पारिजातस्य केशपाशेन मञ्जरीम्।
सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये॥३२॥

सत्यभामा कहती है—हे कृष्ण! यह वृक्ष द्वारका ले चलिये। आपने ही कहा था "सत्यभामा मेरी अतीव प्रिय है।" आप यह वृक्ष द्वारका क्यों नहीं ले जाते। मेरे गृह में रखने के लिये इस तरु को ले चलें। हे कृष्ण! आपने यह प्रिय वाक्य कई बार कहा था कि "हे सत्या! तुम्हारी तुलना में मुझे जाम्बवती तथा रुक्मिणी भी अभीष्ट (प्रिय) नहीं हैं।" यदि आपका यह वाक्य सत्य है, केवल वाणी को उपकृत करने हेतु (जबानी जमाखर्च नहीं है) नहीं कहा गया, तब यह पारिजात मेरे गृह का भूषण बने। मैं पारिजात की मंजरी बाल के जूड़े में धारण करके सौतों के बीच अधिक शोभित रहूंगी।।२९-३२।।

व्यास उवाच

इत्युक्तः स प्रहस्यैनं पारिजातं गरुत्मति। आरोपयामास हरिस्तमूचुर्वनरक्षिणः॥३३॥

व्यासदेव कहते हैं—सत्यभामा का वचन सुनकर कृष्ण ने हंसते हुये पारिजात वृक्ष को गरुड़ पर रख दिया। तब वन-रक्षक श्रीहरि से कहने लगे।।३३।।

वनपाला ऊचुः

भोः शची देवराजस्य महिषी तत्परिग्रहम्। पारिजातं न गोविन्द हर्तुमर्हसि पादपम्।।३४।।
शचीविभूषणार्थाय देवैरमृतमन्थने। उत्पादितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वैनं गमिष्यसि।।३५।।
मौढ्यात्प्रार्थयसे क्षेमी गृहीत्वैनं च को व्रजेत्।
अवश्यमस्य देवेन्द्रो विकृतिं कृष्ण यास्यति।।३६।।
वज्रोद्यतकरं शक्रमनुयास्यन्ति चामराः। तदलं सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत।
विपाककटु यत्कर्म न तच्छंसन्ति पण्डिताः।।३७।।

वनपाल कहते हैं—हे गोविन्द! यह कल्पवृक्ष इन्द्रपत्नी शची इन्द्राणी का है। आप इसका हरण न करें। देवगण द्वारा अमृतमन्थन काल में शचीदेवी के विभूषणार्थ उसे उत्पादित किया गया था। यह लेकर आप पृथिवी पर नहीं जा सकते। आप मूढ़ता के कारण इसे ले जा रहे हैं। इसे पृथिवी पर कौन ले जा सकता है? हे कृष्ण! इससे देवेन्द्र अवश्य असन्तुष्ट हो जायेंगे। वे वज्र धारण करके आगमन करेंगे। देवता लोग भी उनके साथ आयेंगे। हे अच्युत! आपको देवताओं से विवाद का प्रयोजन नहीं होना चाहिये। जो कर्म परिणाम में दुःखप्रद हो, पण्डितजन ऐसे कार्य की बड़ाई नहीं करते।।३४-३७।।

व्यास उवाच

इत्युक्ते तैरुवाचैतान्सत्यभामाऽतिकोपिनी।।३८।।

व्यासदेव कहते हैं—वनरक्षकों के यह कहने पर सत्यभामा क्रोध पूर्वक कहने लगीं।।३८।।

सत्यभामोवाच

का शची पारिजातस्य को वा शक्रः सुराधिपः।
सामान्यः सर्वलोकानां यद्येषोऽमृतमन्थने।।३९।।
समुत्पन्नः पुरा कस्मादेको गृह्णाति वासवः। यथा सुरा यथा चेन्दुर्यथा श्रीर्वनरक्षिणः।।४०।।
सामान्यः सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुमः। भर्तृबाहुमहागर्वाद्रुणद्ध्येनमथो शची।।४१।।
तत्कथ्यतां द्रुतं गत्वा पौलोम्या वचनं मम। सत्यभामा वदत्येवं भर्तृगर्वोद्धताक्षरम्।।४२।।
यदि त्वं दयिता भर्तुर्यदि तस्य प्रिया ह्यसि। मद्भर्तुर्हरतो वृक्ष तत्कारय निवारणम्।।४३।।
जानामि ते पतिं शक्रं जानामि त्रिदशेश्वरम्।
पारिजातं तथाऽप्येनं मानुषी हारयामि ते।।४४।।

देवी सत्यभामा कहती हैं—पारिजात के लिये शची कौन है? देवताओं का स्वामी इन्द्र कौन होता है? यदि यह अमृत-मन्थन से उद्भूत है, तब यह सबका धन है। अकेले इन्द्र इसे क्यों लेंगे। हे वनपालगण! जैसे

सुरा, चन्द्र, लक्ष्मी सबके हैं, उसी प्रकार यह वृक्ष भी सभी का साधारण धन है। यदि अपने स्वामी इन्द्र के बाहुबल का घमण्ड करते हुये शची इसे ले जाने से रोकती है, तब तुम लोग शीघ्रता से जाकर पौलोमी शची से कहो कि सत्यभामा पति के गर्व से गर्वित होकर यह उद्धत वाक्य कह रही है कि "यदि तुम पति की प्रिया हो, तब मेरे पति इस वृक्ष को हर कर ले जा रहे हैं। उनको ले जाने से रोको। मैं तुम्हारे पति इन्द्र को जानती हूं। उन देवराज को जानती हूं। तथापि मैं मानुषी तुम्हारे पारिजात का हरण कर रही हूं।।३९-४४।।

व्यास उवाच

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा प्रोच्चैः प्रोचुर्यथोदितम्।
शची चोत्साहयामास त्रिदशाधिपतिं पतिम्॥४५॥
ततः समस्तदेवानां सैन्यैः परिवृतो हरिम्।
प्रवृत्तः पारिजातार्थमिन्द्रो योधयितुं द्विजाः॥४६॥
ततः परिघनिस्त्रिंशगदाशूलधरायुधाः। बभूवुस्त्रिदशाः सज्जाः शक्रे वज्रकरे स्थिते॥४७॥
ततो निरीक्ष्य गोविन्दो नागराजोपरि स्थितम्।
शक्रं देवपरीवारं युद्धाय समुपस्थितम्॥४८॥
चकार शङ्खनिर्घोषं दिशः शब्देन पूरयन्। मुमोच च शरव्रातं सहस्रायुतसम्मितम्॥४९॥
ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशताचितम्।
मुमुचुस्त्रिदशाः सर्वे शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः॥५०॥
एकैकमस्त्रं शस्त्रं च देवैर्मुक्तं सहस्रधा। चिच्छेद लीलयैवेशो जगतां मधुसूदनः॥५१॥
पाशं सलिलराजस्य समाकृष्योरगाशनः। चचाल खण्डशः कृत्वा बालपन्नगदेहवत्॥५२॥

व्यासदेव कहते हैं—रक्षीगण ने यह सुनकर यह बात जाकर शची से यथायथ कह दिया। शची ने भी पति त्रिदशाधिपति इन्द्र से कह कर उनको वृक्ष के रक्षणार्थ उत्साहित किया। हे ब्राह्मणवृन्द! तब इन्द्र समस्त देवसेना के साथ पारिजात की रक्षा के लिये हरि से युद्धार्थ प्रवृत्त हो गये। इन्द्र हाथ में वज्र लेकर युद्धक्षेत्र में आये। उस समय अन्य देवता परिघ, निस्त्रिंश, गदा तथा शूल आदि आयुध से सज्जित होकर इन्द्र के साथ आये थे। उस समय गोविन्द ने देवताओं से घिरे युद्धार्थ वहां आये इन्द्र को गजराज पर आरूढ़ देखकर शंख के उद्घोष द्वारा दिशाओं को गुंजरित करके हजारों-हजार, दसों हजार बाण छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। उस समय देवता भी सभी दिशाओं को तथा गगनमण्डल को बाणों से व्याप्त देखकर अपने अस्त्र-शस्त्रों का वर्षण करने लगे। समस्त जगत् के ईश मधुसूदन ने देवगण द्वारा छोड़े गये सभी अस्त्र-शस्त्र को एक-एक करके हजारों खण्ड कर दिया। गरुड़ ने भी वरुण के पाश को खींचा तथा उसके टुकड़े उसी प्रकार कर दिये, जैसे वे बाल सर्पों को टुकड़े कर देते हैं।।४५-५२।।

यमेन प्रहितं दण्डं गदाप्रक्षेपखण्डितम्। पृथिव्यां पातयामास भगवान्देवकीसुतः॥५३॥
शिबिकां च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः। चकार शौरिरर्केन्दू दृष्टिपातहतौजसौ॥५४॥

नीतोऽग्निः शतशो बाणैर्द्राविता वसवो दिशः।
चक्रविच्छिन्नशूलाग्रा रुद्रा भुवि निपातिताः॥५५॥
साध्या विश्वे च मरुतो गन्धर्वाश्चैव सायकैः।
शार्ङ्गिणा प्रेरिताः सर्वे व्योम्नि शालमलितूलवत्॥५६॥

गरुडश्चापि वक्त्रेण पक्षाभ्यां च नखाङ्कुरैः। भक्षयन्प्रहनद्दे वान्दानवांश्च सदा खगः॥५७॥

जब यम ने यमदण्ड छोड़ा, तब भगवान् देवकीनन्दन ने गदाघात से उस दण्ड को खण्डित करके पृथिवी पर गिरा दिया। विभु कृष्ण ने चक्र के प्रहार द्वारा कुबेर की शिविका (पालकी) को तिल-तिल के बराबर काट दिया। उन्होंने दृष्टिपात से ही सूर्य-चन्द्र को तेजहीन कर दिया। उनके बाण के आघात से अग्नि शतधा विद्ध हो गये। वसुगण को चारों दिशाओं में भगा दिया। चक्र के प्रहार से शूलाग्र कट जाने के कारण रुद्रगण भूपतित हो गये। साध्य, विश्वेदेव, मरुत्, गन्धर्वगण शार्ङ्गधनुष के बाणों द्वारा विद्ध होकर सेमल की रुई की तरह उड़ते व्योममण्डल में परिलक्षित हो रहे थे। गरुड़ भी अपने मुख (चोंच), पंख तथा नखों द्वारा देव-दानव दल को क्षत-विक्षत कर रहे थे तथा उनका भक्षण कर रहे थे।।५३-५७।।

ततः शरसहस्रेण देवेन्द्रमधुसूदनौ। परस्परं ववर्षाते धाराभिरिव तोयदौ॥५८॥
ऐरावतेन गरुडो युयुधे तत्र संकुले। देवैः समेतैर्युयुधे शक्रेण च जनार्दनः॥५९॥

तदनन्तर इन्द्र तथा कृष्ण आपस में वर्षा के समान हजारों-हजार बाणों का जलधारा की तरह वर्षण करते युद्ध कर रहे थे। उस समय रण में गरुड़ तथा ऐरावत में और जनार्दन का देवताओं तथा इन्द्र से घोर युद्ध होने लगा।।५८-५९।।

छिन्नेषु शीर्यमाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु सत्वरम्। जग्राह वासवो वज्रं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम्॥६०॥
ततो हाहाकृतं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्। वज्रचक्रधरौ दृष्ट्वा देवराजजनार्दनौ॥६१॥
क्षिप्तं वज्रमथेन्द्रेण जग्राह भगवान्हरिः। न मुमोच तदा चक्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥६२॥
प्रनष्टवज्रं देवेन्द्रं गरुडक्षतवाहनम्। सत्यभामाऽब्रवीद्वाक्यं पलायनपरायणम्॥६३॥

तत्पश्चात् जब सभी अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये, तब इन्द्र और कृष्ण ने अपना वज्र तथा सुदर्शन चक्र (इन्द्र ने वज्र तथा कृष्ण ने चक्र) उठाया। यह देखकर त्रैलोक्य में हाहाकार मच गया। तत्पश्चात् इन्द्र के वज्र फेंकने पर हरि ने उसे पकड़ लिया तथापि इन्द्र के प्रति अपना चक्र नहीं छोड़ा, अपितु इन्द्र से "रुको-रुको" कहा। जब इन्द्र का वज्र नष्ट हो गया तथा गरुड़ ने देवेन्द्र के वाहन ऐरावत को क्षत-विक्षत कर दिया, तब इन्द्र भागने लगे थे, जिस पर कृष्ण ने उनको रुकने के लिये कहा था। तब सत्यभामा इन्द्र से कहने लगीं।।६०-६३।।

सत्यभामोवाच

त्रैलोक्येश्वर ना युक्तं शचीभर्तुः पलायनम्।
पारिजातस्त्रगाभोगात्त्वामुपस्थास्यस्ते शची॥६४॥

कीदृशं देव राज्यं ते पारिजातस्त्रगुज्ज्वलाम्।
अपश्यतो यथापूर्वं प्रणयाभ्यागतां शचीम्॥६५॥
अलं शक्र प्रयासेन न व्रीडां यातुमर्हसि।
नीयतां पारिजातोऽयं देवाः सन्तु गतव्यथाः॥६६॥
पतिगर्वावलेपेन बहुमानपुरःसरम्। न ददर्श गृहायातामुपचारेण मां शची॥६७॥
स्त्रीत्वादगुरुचित्ताऽहं स्वभर्तुः शलाघनापरा।
ततः कृतवती शक्र भवता सह विग्रहम्॥६८॥
तदलं पारिजातेन परस्वेन हृतेन वा। रूपेण यशसा चैव भवेत्स्त्री का न गर्विता॥६९॥

सत्यभामा कहती हैं—हे शचीपति, त्रैलोक्येश्वर! तुम्हारा भागना उचित नहीं है। शचीदेवी पारिजात की माला पहनकर तुम्हारे पास जायेंगी। हे देव! यदि तुम प्रणयिनी शची को पहले की तरह पारिजात माला से मण्डिता नहीं देखोगे, तब तुम्हारा देवेन्द्रत्व कैसे होगा? हे इन्द्र! और प्रयास का प्रयोजन नहीं है। यह पारिजात ले जाओ। देवता क्लेश रहित हो जायें। शची पति के गर्व से गर्विता होकर अपने गृह में आये हम लोगों के प्रति उपचार आदि के साथ सम्मान देते हुये देखने नहीं आईं। मैंने भी स्त्रियोचित स्वभाव के कारण संकीर्ण मन वाली होकर पति से हठ किया तथा तुमसे यह विग्रह कर लिया। यह पारिजात कल्पवृक्ष मैं नहीं चाहती। परायी वस्तु का हरण करना मेरा प्रयोजन नहीं है। कौन स्त्री ऐसी है, जो रूप तथा यश का गर्व नहीं करती।।६४-६९।।

व्यास उवाच

इत्युक्ते वै निववृते देवराजस्तया द्विजाः।
प्राह चैनामलं चण्डि सखि खेदातिविस्तरैः॥७०॥
न चाऽपि सर्गसंहारस्थितिकर्ताऽखिलस्य यः।
जितस्य तेन मे व्रीडा जायते विश्वरूपिणा॥७१॥
यस्मिञ्जगत्सकलमेतदनादिमध्ये, यस्माद्यतश्च न भविष्यति सर्वभूतात्।
तेनोद्भवप्रलयपालनकारणेन, व्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य॥७२॥
सकलभुवनमूर्तेर्मूर्तिरल्पा सुसूक्ष्मा, विदितसकलवेदैर्ज्ञायते यस्य नान्यैः।
तमजमकृतमीशं शाश्वतं स्वेच्छयैनं, जगदुपकृतिमाद्यं को विजेतुं समर्थः॥७३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे पारिजातहरणे शक्रस्तवनिरूपणं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥२०३॥

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! यह कहकर जब सत्यभामा मौन हो गईं, तब सत्यभामा से देवराज ने कहा—"हे चण्डी, सखी! खेद को अत्यधिक विस्तृत न करें। विश्वरूपधारी अखिल जगत् की सृष्टि-स्थिति-संहार करने वाले हरि से युद्ध में पराजित होने पर मुझमें कोई लज्जा नहीं है। जो आदि-मध्य रहित हैं, जिनमें

यह समस्त जगत् विद्यमान रहता है, जिन सर्वभूतात्मक पुरुष से यह संसार उत्पन्न होता है, जिनमें यह लयीभूत हो जाता है, ऐसे उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय कारण से पराजित होने पर कैसी लज्जा! समस्त भुवन उनकी ही मूर्त्ति है। वह मूर्त्ति अत्यन्त सूक्ष्म एवं अल्प है। उसे वेदज्ञगण ही जान सकते हैं। वह अन्य के ज्ञान का विषय नहीं है। उन अजन्मा, निष्क्रिय, शाश्वत, आद्य अक्षय जगत् का उपकार करने वाले ईश्वर को जीतने में कौन समर्थ है?।।७०-७३।।

।।त्र्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

इन्द्र तथा कृष्ण के संवाद का वर्णन

व्यास उवाच

संस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशवः। प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेदं द्विजोत्तमाः॥१॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजोत्तमगण! जब देवराज ने इस प्रकार भगवान् केशव की स्तुति किया तब प्रभु ने हंसते हुये यह भावगंभीर वाक्य उनसे कहा—।।१।।

श्रीभगवानुवाच

देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते। क्षन्तव्यं भवतैवैतदपराधकृतं मम॥२॥
पारिजाततरुश्चायं नीयतामुचितास्पदम्। गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात्॥३॥
वज्रं चेदं गृहाण त्वं यष्टव्यं प्रहितं त्वया। तवैवैतत्प्रहरणं शक्रवैरिविदारणम्॥४॥

श्रीभगवान् कहते हैं—आप देवराज इन्द्र हैं। मैं तो मर्त्य हूं। मनुष्य हूं। अतएव हे जगत्पति! आप मेरे द्वारा कृत इस अपराध को क्षमा करिये। यह पारिजात वृक्ष यहीं रहे, यही उचित है। इसे आप ले जाईये। हे इन्द्र! सत्यभामा के अनुरोध के कारण मैंने इसे ग्रहण किया था। आपने जो वज्र मुझ पर छोड़ा था, उसे भी लीजिये। हे इन्द्र! शत्रु को विदीर्ण करने में समर्थ यह आपका ही है।।२-४।।

व्यास उवाच

विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन्।
जानीमस्त्वां भगवतोऽनन्तसौख्यविदो वयम्॥५॥
योऽसि सोऽसि जगन्नाथ प्रवृत्तौ नाथ संस्थितः। जगतः शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन॥६॥
नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवतीं पुरीम्।
मर्त्यलोके त्वया मुक्ते नायं संस्थास्यते भुवि॥७॥

इन्द्र कहते हैं—हे ईश्वर! "मैं मनुष्य हूं" यह कहकर आप मुझे विमोहित क्यों कर रहे हैं? भगवान् के अनन्त विलास को जानने वाला मैं आपको जानता हूं। हे जगन्नाथ! आप जो हैं, वही हैं! हे जगन्नाथ! शत्रुनाशक! आप प्रवृत्ति पथ पर अवस्थित हैं। इस प्रकार आप संसार के संकट के नाशक हैं। हे कृष्ण! आप द्वारका में यह पारिजात ले जाईये। जब आप मर्त्यलोक त्याग देंगे, तब यह वृक्ष भूतल पर नहीं रहेगा।।५-७।।

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा तु देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः। प्रयुक्तैः सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानस्त्वथर्षिभिः॥८॥
जगाम कृष्णः सहसा गृहीत्वा पादपोत्तमम्। ततः शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि संस्थितः॥९॥
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विजाः। अवतीर्याथ गरुडात्सत्यभामासहायवान्॥१०॥
निष्कुटे स्थापयामास पारिजातं महातरुम्।
यमभ्येत्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम्॥११॥
वास्यते यस्य पुष्पाणां गन्धेनोर्वी त्रियोजनम्।
ततस्ते यादवाः सर्वे देवगन्धानमानुषान्॥१२॥
ददृशुः पादपे तस्मिन्कुर्वतो मुखदर्शनम्। किङ्करैः समुपानीतं हस्त्यश्वादि ततो धनम्॥१३॥
स्त्रियश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहात्। ततः काले शुभे प्राप्त उपयेमे जनार्दनः॥१४॥
ताः कन्या नरकावासात्सर्वतो याः समहृताः।
एकस्मिन्नेव गोविन्दः कालेनाऽऽसां द्विजोत्तमाः॥१५॥
जग्राह विधिवत्पाणीन्पृथग्देहे स्वधर्मतः। षोडश स्त्रीसहस्राणि शतमेकं तथाऽधिकम्॥१६॥
तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान्मधुसूदनः। एकैकशश्च ताः कन्या मेनिरे मधुसूदनम्॥१७॥
ममैव पाणिग्रहणं गोविन्दः कृतवानिति। निशासु जगतः स्रष्टा तासां गेहेषु केशवः।
उवास विप्राः सर्वासां विश्वरूपधरो हरिः॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०४।।

व्यासदेव कहते हैं—हरि ने देवेन्द्र से कहा—"यही हो" तथा वे पृथिवी लोक के लिये चल पड़े। भगवान् कृष्ण सिद्ध, गंधर्व तथा ऋषिगण द्वारा प्रयुक्त स्तुति से स्तूयमान होकर तथा उस उत्तम वृक्ष को लेकर सहसा द्वारका के ऊपर आकाश में पहुंचकर वहां शंखवादन करने लगे। हे ब्राह्मणों! उनके आगमन से द्वारकावासी जनता के मन में हर्ष उमड़ उठा। उन्होंने सत्यभामा के साथ गरुड़ से नीचे उतर कर उस पारिजात महावृक्ष को अपने गृह के उद्यान में लगा दिया। इस वृक्ष के निकट आकर सभी लोग अपने पूर्वजन्म को स्मरण कर लेते थे। इसके पुष्प की गन्ध से तीन योजन तक का भूभाग सुवासित हो जाता था। सभी यादव लोग इस अमानुषी दैवी गन्ध को सूंघते तथा इस वृक्ष में मुखदर्शन करते। सेवकगण उस वृक्ष से वांछित धन, अश्व-हस्ति प्रभृति पा जाते थे। नरकासुर के यहां से छुड़ाई गई सोलह हजार एक सौ कन्याओं का कृष्ण ने

वरण किया अर्थात् शुभ मुहूर्त में जनार्दन ने नरकासुर के यहां से मुक्त कराई उन कन्याओं से सविधि विवाह कर लिया। हे ब्राह्मणश्रेष्ठवृन्द! गोविन्द ने अपना सोलह हजार एक सौ पृथक्-पृथक् शरीर धारण करके एक ही काल में उन कन्याओं से सविधि विवाह कार्य सम्पन्न किया था। प्रभु मधुसूदन ने जितनी कन्या उतने शरीर धारण किये। कन्याओं को लगा कि "मधुसूदन मेरे तथा एक ही हैं। गोविन्द ने मुझसे ही विवाह किया है!" हे द्विजगण! रात्रि में जगत् की सृष्टि करने वाले केशव विश्वरूपी (नाना कृष्ण रूपधारी) होकर प्रत्येक के गृह में निवास करते थे।।८-१८।।

।।चतुरधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्ध के चरित्र का वर्णन

व्यास उवाच

प्रद्युम्नाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्यां कथिता द्विजाः।
भान्वादिकांश्च वै पुत्रान्सत्यभामा व्यजायत॥१॥
दीप्तिमन्तः प्रपक्षाद्या रोहिण्यास्तनया हरेः।
बभूवुर्जाम्बवत्याश्च साम्बाद्या बाहुशालिनः॥२॥
तनया भद्रविन्दाद्या नाग्नजित्यां महाबलाः। संग्रामचित्प्रधानास्तु शैब्यायां चाभवन्सुताः॥३॥
वृकाद्यास्तु सुता माद्री गात्रवत्प्रमुखान्सुतान्।
अवाप लक्ष्मणा पुत्रान्कालिन्द्याश्च श्रुतादयः॥४॥
अन्यासां चैव भार्याणां समुत्पन्नानि चक्रिणः।
अष्टायुतानि पुत्राणां सहस्राणि शतं तथा॥५॥
प्रद्युम्नः प्रमुखस्तेषां रुक्मिण्यास्तु सुतस्ततः। प्रद्युम्नानिरुद्धोऽभूद्वज्रस्तस्मादजायत॥६॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजवृन्द! रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न आदि जो पुत्र जन्मे थे, वह मैंने पहले ही कह दिया है। भानु आदि पुत्रों को सत्यभामा ने जन्म दिया था। श्रीहरि के प्रपक्ष आदि पुत्र रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुये। जाम्बवती के साम्ब आदि प्रतापी पुत्र थे। नाग्नजिति के पुत्र थे महाबली भद्रविन्द आदि। शैव्या के पुत्र थे संग्रामजित् प्रभृति। माद्री के पुत्र थे वृक आदि। लक्ष्मणा ने गात्रवान् आदि पुत्रों को जन्म दिया था। कालिन्दी के पुत्र थे श्रुत आदि। कृष्ण की अन्य स्त्रियों से आठ करोड़ एक सौ पुत्रों ने जन्म लिया था। इन सबमें प्रधान थे, रुक्मिणी नन्दन प्रद्युम्न। प्रद्युम्न के पुत्र थे अनिरुद्ध। अनिरुद्ध के पुत्र थे वज्र।।१-६।।

अनिरुद्धो रणे रुद्धो बलेः पौत्रीं महाबलः।
बाणस्य तनयामू (मु) षामुपयेमे द्विजोत्तमाः॥७॥
यत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशङ्करयोमर्हत्। छिन्नं सहस्त्रं बाहूनां यत्र बाणस्य चक्रिणा॥८॥

हे द्विजोत्तमवृन्द! रण में शत्रुओं को रुद्ध कर देने वाले महाबली अनिरुद्ध ने बाणासुर की पुत्री ऊषा से विवाह किया था। इस विवाहकाल में हरि तथा शंकर के बीच महाघोर युद्ध होने लगा था। इस युद्ध में चक्रपाणि कृष्ण ने बाणासुर के एक हजार बाहुओं को छिन्न-भिन्न किया था।।७-८।।

मुनय ऊचुः

कथं युद्धमभूद्ब्रह्मन्नुषार्थे हरकृष्णयोः। कथं क्षयं च बाणस्य बाहूनां कृतवान्हरिः॥९॥
एतत्सर्वं महाभाग वक्तुमर्हसि नोऽखिलम्।
महत्कौतूहलं जातं श्रोतुमेतां कथां शुभाम्॥१०॥

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! ऊषा के विवाह में हर तथा कृष्ण के बीच युद्ध क्यों हुआ था? श्रीहरि ने किस प्रकार बाण के एक हजार बाहुओं को काट दिया? यह सब वृत्तान्त कहिये। हमें यह सुनने का महान् कौतूहल हो रहा है।।९-१०।।

व्यास उवाच

उषा बाणसुता विप्राः पार्वतीं शम्भुना सह।
क्रीडन्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदा स्वयम्।
ततः सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भामिनीम्॥११॥

गौर्युवाच

अलमित्यनुतापेन भर्त्रा त्वमपि रंस्यसे॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा चक्रे कदेति मतिमात्मनः।
को वा भर्ता ममेत्येनां पुनरप्याह पार्वती॥१३॥

व्यासदेव कहते हैं—हे विप्रगण! एक बार बाणनन्दिनी ऊषा ने शंभु के साथ पार्वती को क्रीड़ारत देख कर मन में यह इच्छा किया कि मैं भी ऐसी क्रीड़ा कर पाती। तब सबके मन की इच्छा जान लेने वाली गौरी ने इस भामिनी कन्या से कहा था "अनुताप मत करो! तुम भी पति के साथ क्रीड़ा करोगी।" यह सुनकर ऊषा ने मन में विचार किया "किस काल में कौन मेरा पति होगा"?।।११-१३।।

पार्वत्युवाच

वैशाखे शुक्लद्वादश्यां स्वप्ने योऽभिभवं तव।
करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति॥१४॥

पार्वती ने पुनः उससे कहा—"वैशाखमासीय शुक्ला द्वादशी के दिन तुम स्वप्न में जिसके साथ रमण प्रसंग करोगी, हे राजकुमारी! वही तुम्हारा पति होगा!"।।१४।।

व्यास उवाच

तस्यां तिथौ पुमान्स्वप्ने यथा देव्या उदीरितः।
तथैवाभिभवं चक्रे रागं चक्रे च तत्र सा।
ततः प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती तमुत्सुका॥१५॥

उषोवाच

क्व गतोऽसीति निर्लज्जा द्विजाश्चोक्तवती सखीम्।
बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा तु तत्सुता॥१६॥
तस्याः सख्यभवत्सा च प्राह कोऽयं त्वयोच्यते।
यदा लज्जाकुला नास्य कथयामास सा सखी॥१७॥
तदा विश्वासमानीय सर्वमेवान्ववेदयत्। विदितायां तु तामाह पुनरूषा यथोदितम्।
देव्या तथैव तत्प्राप्तौ योऽभ्युपायः कुरुष्व तम्॥१८॥

व्यासदेव कहते हैं—देवी पार्वती ने जो कहा था, उसी तिथि पर किसी पुरुष ने स्वप्न में ऊषा के साथ रमण किया। ऊषा उस पुरुष के प्रति अनुरक्त हो गयीं। जाग्रत होने पर ऊषा उस पुरुष को न देखने के कारण सखी से यह कहने लगीं "हे सखा! तुम कहां चले गये?" हे ब्राह्मणों! बाण के मन्त्री कुम्भाण्ड की कन्या चित्रलेखा की सखी थी। उसने ऊषा से पूछा "तुम किसके सम्बन्ध में कहती जा रही हो?" तथापि लज्जा के कारण ऊषा ने कोई उत्तर नहीं दिया, लेकिन चित्रलेखा ने ऊषा को अनेक प्रकार से आश्वस्त करके उससे सब जान लिया। तब ऊषा ने चित्रलेखा से कहा—"देवी ने जैसा बतलाया था, उस पुरुष की प्राप्ति हेतु जो उपाय उचित हो, उसे करो!"।।१५-१८।।

व्यास उवाच

ततः पटे सुरान्दैत्यान्गन्धर्वांश्च प्रधानतः। मनुष्यांश्चाभिलिख्यासौ चित्रलेखाऽप्यदर्शयत्॥१९॥
अपास्य सा तु गन्धर्वांस्तथोरगसुरासुरान्। मनुष्येषु ददौ दृष्टिं तेष्वप्यन्धकवृष्णिषु॥२०॥
कृष्णरामौ विलोक्याऽऽसीत्सुभ्रूर्लज्जायतेक्षणा।
प्रद्युम्नदर्शने व्रीडादृष्टिं निन्ये ततो द्विजाः॥२१॥
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं च ततो लज्जा क्वापि निराकृता।
सोऽयं सोऽयं ममेत्युक्ते तथा सा योगगामिनी।
ययौ द्वारवतीमू (मु) षां समाश्वास्य ततः सखी॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बाणयुद्धे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०५।।

व्यासदेव कहते हैं—तब चित्रलेखा ने देवता, दैत्य, गन्धर्व तथा मनुष्य आदि के प्रधान पुरुषों के चित्र को पट पर चित्रित करके ऊषा को दिखलाया। ऊषा अब गन्धर्व, देवता तथा असुरों के चित्रों को देखकर मनुष्यों का चित्र देखने लगी। उनमें से जब अन्धक एवं वृष्णिवंशीय लोगों के चित्र के बीच राम तथा कृष्ण का चित्र ऊषा ने देखा तब वह लज्जित हो गई। हे द्विजगण! उसके पश्चात् प्रद्युम्न को देखकर उसने नेत्र झुका लिये। क्रमशः जब उसने अनिरुद्ध का चित्र देखा तब वह लज्जा त्याग कर कहने लगी "यही है, यही है!" यह सुनकर उसकी योगगामिनी सखी चित्रलेखा ने उसे आश्वस्त किया तथा उसने द्वारका के लिये प्रस्थान कर दिया!।।१९-२२।।

।।पञ्चाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

बाण के साथ कृष्ण के युद्ध का वर्णन

व्यास उवाच

बाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे ततश्चाऽऽह त्रिलोचनम्॥१॥

व्यासदेव कहते हैं—एक बार बाणासुर ने त्रिलोचन शिव को प्रणाम करके कहा—।।१।।

बाण उवाच

देव बाहुसहस्रेण निर्विण्णोऽहं विनाऽऽहवम्।
कच्चिन्ममैषां बाहूनां साफल्यकरणो रणः।
भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजैः॥२॥

बाणासुर कहता है—हे देव! युद्ध के बिना मेरी एक हजार भुजायें व्यर्थ हो रही हैं। क्या इनको सफल करने वाला कोई युद्ध होगा? युद्ध के बिना इन सहस्रबाहु का क्या फल?।।२।।

शङ्कर उवाच

मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा बाण भविष्यति। पिशिताशिजनानन्दं प्राप्स्यसि त्वं तदा रणम्॥३॥

शंकर कहते हैं—हे बाण! जब तुम्हारा मयूरध्वज टूट जाये, तब तुमको ऐसा युद्ध मिलेगा, जो मांसाहारियों के लिये आनन्दप्रद होगा।।३।।

व्यास उवाच

ततः प्रणम्य मुदितः शम्भुमभ्यागतो गृहात्।
भग्नं ध्वजमथाऽऽलोक्य हृष्टो हर्षं परं ययौ॥४॥

एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम्।
अनिरुद्धमथाऽऽनिन्ये चित्रलेखा वरा सखी॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—यह सुनकर बाणासुर शंभु को प्रणाम करके मुदित मन से अपने भवन आ गया। कुछ काल के अनन्तर अपने ध्वज को टूटा देखकर वह पुलकित एवं हर्षित हो उठा। उसी समय ऊषा की प्रधान सखी योगविद्या द्वारा वहां अनिरुद्ध को उठा लाई।।४-५।।

कन्यान्तःपुरमध्ये तं रममाणं सहोषया। विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशंसुर्दैत्यभूपतेः॥६॥
व्यादिष्टं किङ्कराणां तु सैन्यं तेन महात्मना। जघान परिघं लौहमादाय परवीरहा॥७॥

एक दिन कन्या के अन्तःपुर में ऊषा के साथ रमणरत अनिरुद्ध का संधान वहां के रक्षकों को मिल गया। उन्होंने यह संवाद दैत्यराज बाणासुर को दे दिया। महात्मा बाणासुर ने सेवकों को आदेश प्रदान किया कि अनिरुद्ध का वध करो। तथापि पराये वीरों का हनन करने वाले अनिरुद्ध ने लौह परिघ उठाकर उनका वध कर दिया।।६-७।।

हतेषु तेषु बाणोऽपि रथस्थस्तद्वधोद्यतः। युध्यमानो यथाशक्ति यदा वीरेण निर्जितः॥८॥
मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रचोदितः। ततश्च पन्नगास्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम्॥९॥
द्वारवत्यां क्व यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम्।
यदूनामाचचक्षे तं बद्धं बाणेन नारदः॥१०॥

सैनिक सेवकों के निहत हो जाने पर बाणासुर रथारूढ़ होकर अनिरुद्ध के वधार्थ वहां आया तथा यथाशक्ति युद्ध करके भी अनिरुद्ध द्वारा परास्त हो गया। तब उसने मन्त्रबल सम्पन्न माया द्वारा युद्ध करते हुये नागपाश के प्रयोग से यदुनन्दन अनिरुद्ध को पाशबद्ध कर दिया। इधर द्वारका में यह बात उठने लगी कि अनिरुद्ध कहां चले गये! तब नारद ने यह संवाद यादवों को दिया कि बाणासुर ने अनिरुद्ध को बद्ध कर लिया है।।९-१०।।

तं शोणितपुरे श्रुत्वा नीतं विद्याविदग्धया।
योषिता प्रत्ययं जग्मुर्यादवा नाम वैरिति (णि)॥११॥
ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रा गतं हरिः। बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम्॥१२॥
पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महाबलैः। ययौ बाणपुराभ्याशं नीत्वा तान्संक्षयं हरिः॥१३॥
ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान्। बाणरक्षार्थमत्यर्थं युयुधे शार्ङ्गधन्वना॥१४॥
तद् भस्मस्पर्शसम्भूततापं कृष्णाङ्गसङ्गमात्। अवाप बलदेवोऽपि समं सम्मीलितेक्षणः॥१५॥

"विद्या में निपुण एक नारी द्वारा वे शोणितपुर ले जाये गये हैं।" इस कथा पर सभी ने विश्वास कर लिया। तब हरि ने गरुड़ का स्मरण किया। वे स्मरण मात्र से जब आ गये, उस समय कृष्ण भी बलराम एवं प्रद्युम्न के साथ गरुड़ारूढ़ होकर बाण की नगरी के लिये चल पड़े। पुरी में प्रवेश करते ही कृष्ण का महायुद्ध वहां के रक्षक प्रमथगणों से हो गया। हरि उनका नाश करके बाणपुरी पहुंच गये। वहां बाणासुर की रक्षा में लगे त्रिपाद, तीन शिर वाले माहेश्वर ज्वर के साथ शार्ङ्गधारी कृष्ण का घोर युद्ध होने लगा। ज्वर द्वारा फेंकी

गयी भस्म के स्पर्श द्वारा बलदेव अत्यन्त सन्तप्त हो गये। वे आंखें बन्द करके बैठ गये, लेकिन कृष्ण के अंगस्पर्श द्वारा उन्होंने पुनः स्वास्थ्य लाभ कर लिया।।११-१५।।

ततः संयुध्यमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा। वैष्णवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहान्निराकृतः॥१६॥

नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम्। तं वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देवः पितामहः॥१७॥

ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य तं वैष्णवं ज्वरम्।
आत्मन्येव लयं निन्ये भगवान्मधुसूदनः॥१८॥
मम त्वया समं युद्धं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः।
विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ हरिः॥१९॥

देवदेव शार्ङ्गधारी कृष्ण से युद्धरत माहेश्वर ज्वर कृष्ण देह से निर्गत वैष्णव ज्वर द्वारा शीघ्र कृष्ण की देह से निकाल दिया गया। नारायण के भुजाघात से पीड़ित माहेश्वर ज्वर की हालत देख कर ब्रह्मा ने विष्णु से प्रार्थना किया "इसे क्षमा करिये।" तब भगवान् कृष्ण ने कहा—"क्षमा कर दिया।" तदनन्तर कृष्ण ने वैष्णव ज्वर को स्वदेह में लीन कर दिया। तत्पश्चात् श्रीहरि ने शैव ज्वर (माहेश्वर ज्वर) से कहा—"तुम्हारे तथा मेरे बीच के युद्ध का जो कोई स्मरण करेगा, वह ज्वरमुक्त हो जायेगा।" यह कहकर श्रीहरि वहां से चले गये और युद्धार्थ अग्रसर हो गये।।१६-१९।।

ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा क्षयं तथा।
दानवानां बलं विष्णुश्चूर्णयामास लीलया॥२०॥

ततः समस्तसैन्येन दैतेयानां बलेः सुतः। युयुधे शङ्करश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा॥२१॥

हरिशङ्करयोर्युद्धमतीवाऽऽसीत्सुदारुणम्। चुक्षुभुः सकला लोकाः शस्त्रास्त्रैर्बहुधाऽर्दिताः॥२२॥

प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः। मेनिरे त्रिदशा यत्र वर्तमाने महाहवे॥२३॥

जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शङ्करम्। ततः प्रणेशुर्दैतेयाः प्रमथाश्च समन्ततः॥२४॥

जृम्भाभिभूतश्च हरो रथोपस्थमुपाविशत्। न शशाक तदा योद्धुं कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥२५॥

इसके अनन्तर श्रीहरि ने पंचविध अग्नि का क्षय करके लीला पूर्वक दानव सैन्य को चूर्णीकृत कर दिया। यह देखकर बलि दैत्य का पुत्र बाणासुर समस्त दैत्य सैन्य लेकर वहां आया तथा युद्धरत हो गया। वहां शंकर एवं कार्तिकेय भी कृष्ण के साथ युद्धार्थ आ गये। हरि तथा शंकर के बीच का युद्ध अत्यन्त दारुण था। तब इन दोनों के अस्त्र-शस्त्र की वर्षा से सभी लोक पीड़ित हो गये। इस महायुद्ध को देखकर देवताओं ने यह विचार किया कि निश्चित रूप से समस्त जगत् का प्रलयकाल आ गया है। तब गोविन्द ने शंकर पर जृम्भणास्त्र का प्रयोग करके उनको आलस्य युक्त कर दिया। यह देख कर दैत्य एवं प्रमथगण की सेना भागने लगी। भगवान् हर जंभाई आने के कारण आलस्य पूर्वक रथ पर बैठे रह गये। अब वे अक्लिष्टकर्मा कृष्ण से युद्ध करने में समर्थ नहीं थे।।२०-२५।।

गरुडक्षतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडितः। कृष्णहुङ्कारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुहः॥२६॥

जृम्भिते शङ्करे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते। नीते प्रमथसैन्ये च संक्षयं शार्ङ्गधन्वना॥२७॥
नन्दीशसंगृहीताश्वमधिरूढा महारथम्। बाणस्तत्राऽऽययौ योद्धुं कृष्णकार्ष्णिबलैः सह॥२८॥

इस समय गरुड़ ने भी कार्त्तिकेय के बाहु को क्षत-विक्षत कर दिया। प्रद्युम्न ने भी उनको अपने अस्त्र-शस्त्र से अत्यन्त पीड़ित कर दिया था। कृष्ण के सतत् हुंकार शब्द से भी उनकी शक्ति क्षीण हो चली थी। इस कारण अब वे युद्धरत न रह सकने के कारण रणभूमि से भाग गये। जब बाणासुर ने देखा कि उनकी सेना बलदेव द्वारा उनके हल से खींची जाकर उनके मूसलाघात से मृत होती जा रही है तथा चक्रपाणि के बाणों से छिन्न-भिन्न हो रही है, तब वह आगे बढ़ा। उसने देखा कि शंकर जृम्भणास्त्र के वश में हैं, कार्त्तिकेय परास्त हो गये, दैत्यसैन्य नष्ट है, शार्ङ्गधन्वा हरि ने प्रमथ सैन्य को भी क्षीण कर दिया, तब बाण शिव के रथ का सारथी बनकर कृष्ण एवं उनके सैन्य से युद्ध करने वहां आ गया।।२६-२८।।

बलभद्रो महावीर्यो बाणसैन्यमनेकधा। विव्याध बाणैः प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलायतः॥२९॥

आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुशलेन च पोथितम्।
बलं बलेन ददृशे बाणो बाणैश्च चक्रिणः॥३०॥

ततः कृष्णस्य बाणेन युद्धमासीत्समासतः। परस्परं तु संदीप्तान्कायत्राणविभेदिनः॥३१॥

कृष्णश्चिच्छेद बाणांस्तान्बाणेन प्रहिताञ्शरैः।
बिभेद केशवं बाणो बाणं विव्याध चक्रधृक्॥३२॥

मुमुचाते तथाऽस्त्राणि बाणकृष्णो जिगीषया। परस्परक्षतिपरौ परिघांश्च ततो द्विजाः॥३३॥
छिद्यमानेष्वशेषेषु शस्त्रेष्वस्त्रे च सीदति। प्राचुर्येण हरिर्बाणं हन्तुं चक्रे ततो मनः॥३४॥
ततोऽर्कशतसंभूततेजसा सदृशद्युति। जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम्॥३५॥
मुञ्चतो बाणनाशाय तच्चक्रं मधुविद्विषः। नग्ना दैतेयविद्याऽभूत्कोटरी पुरतो हरेः॥३६॥

तदनन्तर महापराक्रमी बलभद्र एवं धर्मतः युद्ध से कभी विमुख होकर न भागने वाले प्रद्युम्न ने भी अपने बाणसमूह से अनेक बार बाणासुर के सैन्य को आहत कर दिया। हलाग्र एवं मूसल प्रहार से बलदेव ने तथा चक्री कृष्ण ने बाण प्रहार से बाण सैन्य को तितर-बितर कर दिया। तब कृष्ण तथा बाण के बीच घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। बाण तीक्ष्ण कवचभेदी बाणों से कृष्ण पर प्रहार करता, तथापि कृष्ण उन बाणों को अपने बाणों से (अपने कवच तक पहुंचने के पूर्व ही) काट देते। बाण कृष्ण के ऊपर तो कृष्ण बाण के ऊपर प्रहार कर रहे थे। वे दोनों एक दूसरे पर जीत की इच्छा के साथ अस्त्र प्रक्षिप्त कर रहे थे। वे पारस्परिक क्षतिग्रस्त करने हेतु मूसलाघात भी करने लगे। जब प्रचुर अस्त्र समूह एवंविध छिन्न-भिन्न तथा चूर्णीकृत हो गये, तब हरि ने बाण का हनन करने का निश्चय किया। उस समय दैत्यशत्रु हरि ने सैकड़ों सूर्य के समान द्युतिमान् सुदर्शन चक्र उठाया। जैसे ही बाण के नाशार्थ कृष्ण चक्र प्रक्षिप्त करने जा रहे थे, तभी दैत्यविद्या कोटरी नग्नावस्था में कृष्ण के समक्ष आ गई।।२९-३६।।

तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलिताक्षः सुदर्शनम्। मुमोच बाणमुद्दिश्य छेत्तुं बाहुवनं रिपोः॥३७॥

क्रमेणास्य तु बाहूनां बाणस्याच्युतचोदितम्।
छेदं चक्रेऽसुरस्याऽऽशु शस्त्रास्त्रक्षेपणादद्भुतम्॥३८॥
छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्थं मधुसूदनः। मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा॥३९॥
स उत्पत्याऽऽह गोविन्दं सामपूर्वमुमापतिः।
विलोक्य बाणं दोर्दण्डच्छेदासृक्स्त्राववर्षिणम्॥४०॥

हरि ने जब उसे सामने नग्न आया देखा, तब उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये तथा उन्होंने बाण के बाहुरूपी वन के उच्छेदार्थ अपना चक्र छोड़ दिया। कृष्ण द्वारा प्रक्षिप्त सुदर्शन चक्र ने शस्त्रास्त्र छोड़ने के अद्भुत कौशल सम्पन्न बाणासुर के शस्त्रास्त्र प्रक्षेप करने के पहले ही उसकी भुजाओं को त्वरित रूप से काट दिया। वह चक्र बाणासुर के बाहु रूपी वन को काट कर पुनः मधुसूदन के हाथों में आ गया। अब बाणासुर की भुजाओं के नाश के पश्चात् शंकर द्रोह के ज्ञाता (?) मधुसूदन ने अपना चक्र पुनः हाथों में ग्रहण कर लिया। उस समय कटी बाहुओं से रक्तवर्षा करते बाणासुर की स्थिति देख महादेव कृष्ण से प्रार्थना करने लगे।।३७-४०।।

रुद्र उवाच

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वां पुरुषोत्तमम्।
परेशं परमात्मानमनादिनिधनं परम्॥४१॥
दैवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका। लीलेयं तव चेष्टा हि दैत्यानां वधलक्षणा॥४२॥
तत्प्रसीदाभयं दत्तं बालस्यास्य मया प्रभो।
तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं वचः॥४३॥
अस्मत्संश्रयवृद्धोऽयं नापराधस्तवाव्यय। मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वां क्षमयाम्यहम्॥४४॥

भगवान् रुद्रदेव कहते हैं—हे जगन्नाथ, कृष्ण, कृष्ण! मैं आपको परेश, परमात्मा, आदि-अन्त रहित, पर, पुरुषोत्तम रूपेण जानता हूं। दैत्यों के वधार्थ आप जो देवता, तिर्यक् एवं मनुष्य शरीर ग्रहण करते हैं, यह आपकी चेष्टा मात्र लीला है। आप प्रसन्न हो जायें। हे प्रभो! इस बाणासुर को मैंने अभय प्रदान किया था। मेरे वाक्य को मिथ्या कर देना आपके लिये उचित नहीं है। इस दैत्य ने मेरा आश्रय लेकर ही वृद्धिलाभ किया है। हे अव्यय! अतः इसकी वृद्धि में आपका कोई दोष ही नहीं है। इसे मैंने ही वर प्रदान किया था। तभी आपके पास आकर इसे आप द्वारा क्षमा प्रदान करवा रहा हूं।।४१-४४।।

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्राह गोविन्दः शूलपाणिमुमापतिम्।
प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुरं प्रति॥४५॥

व्यासदेव कहते हैं—जब शंकर उमापति ने कृष्ण से यह कहा तब गोविन्द ने उस दैत्य के प्रति क्रोध त्याग करके शूलपाणि से प्रसन्न मुद्रा में कहा—।।४५।।

श्रीभगवानुवाच

युष्मद्दत्तवरो बाणो जीवतादेषं शङ्कर। त्वद्वाक्यगौरवादेतन्मया चक्रं निवर्तितम्।।४६।।
त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमभयं मया। मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शङ्कर।।४७।।
योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्।
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः।।४८।।

श्रीभगवान् कहते हैं—हे शंकर! बाण ने आपसे वरलाभ किया है। अतः यह जीवित रहे। आपके वाक्य गौरव को रखने हेतु मैं चक्र वापस ले रहा हूं। मैं भी इसे अभय देता हूं। आपका कर्त्तव्य है स्वयं को मुझसे अभिन्न देखना। जो आप हैं, वही मैं हूं। वही यह सचराचर जगत् भी है। अविद्या मोहित लोग ही मेरा भिन्न भाव से दर्शन करते हैं।।४६-४८।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ कृष्णः प्राद्युम्निर्यत्र तिष्ठति। तद्बन्धफणिनो नेशुर्गरुडानिलशोषिताः।।४९।।
ततोऽनिरुद्धमारोप्य सपत्नीकं गरुत्मति। आजग्मुर्द्वारकां रामकार्ष्णिदामोदराः पुरीम्।।५०।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बाणयुद्धे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०६।।

व्यासदेव कहते हैं—कृष्ण यह कहकर प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्ध जहां थे, वहां गये। गरुड़ के स्पर्श से बहती वायु के द्वारा अनिरुद्ध को बद्ध किये सर्पगण शोषित होकर नष्ट हो गये। तदनन्तर अनिरुद्ध को उनकी पत्नी के साथ गरुड़ारूढ़ करके कृष्ण, राम द्वारका आ गये।।४९-५०।।

।।षड्धिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

पौंड्रक वध का वर्णन

मुनय ऊचुः

चक्रे कर्ममहच्छौरिर्बिभ्रद्यो मानुषीं तनुम्। निगाय शक्रं शर्वं च सर्वदेवांश्च लीलया।।१।।
यच्चान्यदकरोत्कर्म दिव्यचेष्टाविघातकृत्। कथ्यतां तन्मुनिश्रेष्ठ परं कौतूहलं हि नः।।२।।

मुनिगण कहते हैं—शौरि (विष्णु) ने मानुषी शरीर धारण करके लीला पूर्वक इन्द्र, शिव तथा समस्त देवगण को पराजित करने का महान् कर्म किया। हे मुनिप्रवरगण! उन्होंने दिव्य चेष्टानाशन जो कुछ कृत्य किया, वह सुनने हेतु हम उत्कण्ठित हैं। कृपया कहिये।।१-२।।

व्यास उवाच

गदतो मे मुनिश्रेष्ठाः श्रूयतामिदमादरात्। नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा॥३॥
पौण्ड्रको वासुदेवश्च वासुदेवोऽभवद्भुवि। अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितैः॥४॥
स मेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महीतले। नष्टस्मृतिस्ततः सर्वं विष्णुचिह्नमचीकरत्।
दूतं च प्रेषयामास स कृष्णाय द्विजोत्तमाः॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! आप यह आदर पूर्वक श्रवण करिये। मनुष्यावतार लेकर कृष्ण ने काशी को दग्ध किया। वह कह रहा हूं। पृथिवी पर पौण्ड्रक तथा वासुदेव—ये दो वासुदेव कहे गये। अज्ञानमोहित लोगों ने पौण्ड्रक से कह दिया कि "तुम ही वासुदेव अवतरित हो।" यह कहे जाने पर वह स्वयं को वासुदेव का अवतार मानने लगा। उस नष्ट बुद्धि ने समस्त विष्णुचिह्न धारण कर लिया। तब उसने यही संवाद देकर एक दूत कृष्ण के यहां भेजा। वह दूत कृष्ण से पौण्ड्रक का संवाद कहने लगा—।।३-५।।

दूत उवाच

त्यक्त्वा चक्रादिकं चिह्नं मदीयं नाम माऽऽत्मनः।
वासुदेवात्मकं मूढ मुक्त्वा सर्वमशेषतः॥६॥
आत्मनो जीवितार्थं च तथा मे प्रणतिं व्रज॥७॥

दूत कहता है—हे मूढ़! तुम मेरे चक्र आदि चिह्नों को त्याग दो। वासुदेवात्मक नाम इत्यादि को त्याग दो। अपने जीवन को बचाना चाहो, तब मेरे पास आकर प्रणाम करो।।६-७।।

व्यास उवाच

इत्युक्तः स प्रहस्यैव दूतं प्राह जनार्दनः॥८॥

व्यासदेव कहते हैं—यह कहने पर जनार्दनदेव ने हंसते हुये दूत से कहा—।।८।।

श्रीभगवानुवाच

निजचिह्नमहं चक्रं समुत्स्रक्ष्ये त्वयीति वै।
वाच्यश्च पौण्ड्रको गत्वा त्वया दूत वचो मम॥९॥
ज्ञातस्त्वद्वाक्यसद्भावो यत्कार्यं तद्विधीयतां।
गृहीतचिह्न एवाहमागमिष्यामि ते पुरम्॥१०॥
उत्स्रक्ष्यामि च ते चक्रं निजचिह्नमसंशयम्।
आज्ञापूर्वं च यदिदमागच्छेति त्वयोदितम्॥११॥
सम्पादयिष्ये श्वस्तुभ्यं तदप्येषोऽविलम्बितम्।
शरणं ते समभ्येत्य कर्ताऽस्मि नृपते तथा।
यथा त्वत्तो भयं भूयो नैव किञ्चिद्भविष्यति॥१२॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे दूत! तुम पौण्ड्रक से जाकर मेरा संदेश कहना कि "मैं अपना चिह्न चक्र तुम्हारे प्रति त्याग कर दूंगा। तुम्हारे कथन का साधुभाव मुझे ज्ञात हो गया। अब तुमको जो करना हो करो। मैं चिह्न धारण करके तुम्हारे नगर में आऊंगा। मैं वहां तुम्हारे निमित्त अपना चिह्न चक्र भी छोड़ दूंगा। तुमने जो वहां मुझे आने का आदेश दिया है, तुम्हारे उस आदेश का सम्पादन कल अविलम्ब करूंगा। हे राजन्! मैं तुम्हारी शरण में आकर ऐसा व्यवहार करूंगा कि जिससे मुझे पुनः तुमसे भय न मिले।।९-१२।।

व्यास उवाच

इत्युक्तेऽपगते दूते संस्मृत्याभ्यागतं हरिः। गरुत्मन्तं समारुह्य त्वरितं तत्पुरं ययौ॥१३॥
तस्यापि केशवोद्योगं श्रुत्वा काशिपतिस्तदा। सर्वसैन्यपरीवारपार्ष्णिग्राहमुपाययौ॥१४॥
ततो बलेन महता काशिराजबलेन च। पौण्ड्रको वासुदेवोऽसौ केशवाभिमुखं ययौ॥१५॥
तं ददर्श हरिर्दूरादुदारस्यन्दने स्थितम्। चक्रशङ्खगदापाणिं पाणिना विधृताम्बुजम्॥१६॥
स्त्रग्धरं धृतशार्ङ्गं च सुपर्णरचनाध्वजम्। वक्षःस्थलकृतं चास्य श्रीवत्सं ददृशे हरिः॥१७॥
किरीटकुण्डलधरं पीतवासःसमन्वितम्। दृष्ट्वा तं भावगम्भीरं जहास मधुसूदनः॥१८॥

व्यासदेव कहते हैं—जब उस दूत से कृष्ण ने यह कहा, वह वापस चला गया। तब हरि ने गरुड़ का स्मरण किया। गरुड़ के आते ही प्रभु ने उस पर आरोहण किया तथा त्वरित रूप से पौण्ड्रक की नगरी में पहुंच गये। काशीराज कृष्ण के आगमन का संवाद पाने पर अपने समस्त सैन्य के साथ तथा वासुदेव रूपधारी पौण्ड्रक को भी लेकर शत्रु कृष्ण से संघर्ष करने हेतु केशव के पास आने लगा। हरि ने दूर से देखा कि वह ऊंचे रथ पर बैठा है। पौण्ड्रक ने हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किया था। उसका रथ ध्वज गरुड़ की आकृति का था। उसने गले में माला धारण किया था। रथ में शार्ङ्ग (सींग से बना) धनुष रखा था। उसने वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न अंकित किया था। उसने किरीट, कुण्डल तथा पीतवस्त्र भी धारण किया था। उसे देखकर मधुसूदन हंसने लगे, क्योंकि वह गंभीर भाव बनाये हुये था।।१३-१८।।

युयुधे च बलेनास्य हस्त्यश्वबलिना द्विजाः। निस्त्रिंशर्ष्टिगदाशूलशक्तिकार्मुकशालिना॥१९॥
क्षणेन शार्ङ्गनिर्मुक्तैः शरैरग्निविदारणैः। गदाचक्रातिपातैश्च सूदयामास तद्बलम्॥२०॥
काशिराजबलं चैव क्षयं नीत्वा जनार्दनः। उवाच पौण्ड्रकं मूढमात्मचिह्नोपलक्षणम्॥२१॥

हे ब्राह्मणवृन्द! तब भगवान् ने पौण्ड्रक को हाथी तथा अश्व से समन्वित देखकर तथा उसकी प्रबल सेना को देखकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। कृष्ण ने निस्त्रिंश, ऋष्टि, गदा, शूल, शक्ति युक्त सैन्य को क्षण मात्र में शार्ङ्ग दनुष से छोड़े गये बाणों से विदीर्ण कर दिया। उन्होंने गदा तथा चक्र से उस सैन्य का संहार कर दिया। काशीराज के सैन्य का संहार करके अपने चिह्नों से युक्त मूढात्मा पौण्ड्रक से कहा—।।१९-२१।।

श्रीभगवानुवाच

पौण्ड्रकोक्तं त्वया यत्तद्दूतवक्त्रेण मां प्रति।
समुत्सृजेति चिह्नानि तत्ते संपादयाम्यहम्॥२२॥

चक्रमेतत्समुत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता। गरुत्मानेष निर्दिष्टः समारोहतु ते ध्वजम्॥२३॥

इत्युच्चार्य विमुक्तेन चक्रेणासौ विदारितः।
पोथितो गदया भग्नो गरुत्मांश्च गरुत्मता॥२४॥
ततो हाहाकृते लोके काशीनामन्धिपस्तदा।
युयुधे वासुदेवेन मित्रस्यापचितौ स्थितः॥२५॥
ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैश्छित्त्वा तस्य शरैः शिरः।
काशिपुर्यां स चिक्षेप कुर्वंल्लोकस्य विस्मयम्॥२६॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे पौण्ड्रक! तुमने दूत से मेरे पास संदेश भेजा था कि अपने चिह्नों को त्यागो। तुम्हारे संदेश का मैं कार्यान्वयन करता हूं। मैंने यह चक्र छोड़ा। यह गदा भी छोड़ा। गरुड़ से भी कह दिया कि वह तुम्हारे ध्वज पर बैठें। कृष्ण यह कह ही रहे थे, तभी उनके द्वारा फेंके चक्र ने पौण्ड्रक को विदीर्ण कर दिया। गदा ने उसके शरीर को चूर्ण कर दिया। गरुड़ ने उसकी कृत्रिम गरुड़ांकित ध्वजा को भग्न कर दिया। समस्त लोकों में इससे हाहाकार होने लगा। काशिराज मित्र का नाश होते देखकर वासुदेव से युद्धार्थ वहां आया। तब कृष्ण ने सब लोगों के मन में विस्मय उत्पन्न करते हुये उसका शिर शार्ङ्ग धनुष से उन्मुक्त बाणों से काट कर काशीपुरी में फेंक दिया।।२२-२६।।

हत्वा तु पौण्ड्रकं शौरिः काशिराजं च सानुगम्।
रेमे द्वारवतीं प्राप्तोऽमरः स्वर्गगतो यथा॥२७॥

तच्छिरः पतितं तत्र दृष्ट्वा काशिपतेः पुरे। जनः किमेतदित्याह केनेत्यत्यन्तविस्मितः॥२८॥
ज्ञात्वा तं वासुदेवेन हतं तस्य सुतस्ततः। पुरोहितेन सहितस्तोषयामास शङ्करम्॥२९॥
अविमुक्ते महाक्षेत्रे तोषितस्तेन शङ्करः। वरं वृणीष्वेति तदा तं प्रोवाच नृपात्मजम्॥३०॥
स वव्रे भगवन्कृत्या पितुर्हन्तुर्वधाय मे। समुत्तिष्ठतु कृष्णस्य त्वत्प्रसादान्महेश्वरः॥३१॥

भगवान् वासुदेव पौण्ड्रक तथा काशीराज का वध करने के उपरान्त द्वारका पुरी में जाकर देवताओं की तरह विहार करने लगे। जब काशीराज का शिर काशीपुरी में जा गिरा तब वहां लोग "यह किसका काम है?" कहते हुये अतीव विस्मयापन्न हो उठे। काशीराज का पुत्र अपने पिता को वासुदेव द्वारा निहत जानकर पुरोहित के साथ जाकर तप करने लगा। तब अविमुक्त महाक्षेत्र में प्रभु शंकर राजपुत्र के प्रति प्रसन्न होकर कहने लगे कि "वर मांगो।" उस समय उसने कहा—"हे महेश्वर! मेरे पिता के वधकर्त्ता कृष्ण का वध करने हेतु आपकी कृपा से कृत्या उत्पन्न हो।।२७-३१।।

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेरनन्तरम्। महाकृत्या समुत्तस्थौ तस्यैवाग्निनिवेशनात्॥३२॥

ततो ज्वालाकरालास्या ज्वलत्केशकलापिका।
कृष्ण कृष्णेति कुपिता कृत्वा द्वारवतीं ययौ॥३३॥

तामवेक्ष्य जनः सर्वो रौद्रां विकृतलोचनम्। ययौ शरण्यं जगतां शरणं मधुसूदनम्॥३४॥

व्यासदेव कहते हैं—यह सुनकर शिव ने कहा—"दक्षिणाग्नि से यही होगा।" तदनन्तर उस अग्नि से महाकृत्या उत्पन्न हो गयी। कराल ज्वालायुक्त मुख वाली, जिसके केश भी ज्वालायुक्त थे, कुपिता वह कृत्या कृष्ण-कृष्ण कहती द्वारका पहुंची। वहां के लोग इस विकृतलक्षणा कृत्या को देखकर समस्त जगत् को शरण देने वाले मधुसूदन की शरण में गये।।३२-३४।।

जना ऊचुः

काशिराजसुतेनेयमाराध्य वृषभध्वजम्। उत्पादिता महाकृत्या वधाय तव चक्रिण।
जहि कृत्यामिमामुग्रां वह्निज्वालाजटाकुलाम्॥३५॥

जनगण कहते हैं—हे चक्रधारी! काशिराज के पुत्र ने वृषध्वज की आराधना द्वारा आपके वधसाधनार्थ इस कृत्या को उत्पन्न किया है। वह्निज्वाला से दीप्त जटावाली इस भयानक कृत्या का वध करिये।।३५।।

व्यास उवाच

चक्रमुत्सृष्टमक्षेषु क्रीडासक्तेन लीलया। तदग्निमालाजटिलं ज्वालोद्गारातिभीषणम्॥३६॥
कृत्यामनुजगामाऽशु विष्णुचक्रं सुदर्शनम्।
ततः सा चक्रविध्वस्ता कृत्या माहेश्वरी तदा॥३७॥
जगाम वेगिनी वेगात्तदप्यनुजगाम ताम्।
कृत्या वाराणसीमेव प्रविवेश त्वरान्विता॥३८॥
विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तमाः। ततः काशिबलं भूरि प्रमथानां तथा बलम्॥३९॥
समस्तशस्त्रास्त्रयुतं चक्रस्याभिमुखं ययौ। शस्त्रास्त्रमोक्षबहुलं दग्ध्वा तद्बलमोजसा॥४०॥
कृत्वाऽक्षेमामशेषां तां पुरीं वाराणसीं ययौ। प्रभूतभृत्यपौरां तां साश्वमातङ्गमानवाम्॥४१॥
अशेषदुर्गकोष्ठां तां दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि। ज्वालापरिवृताशेषगृहप्राकारतोरणाम्॥४२॥
ददाह तां पुरीं चक्रं सकलामेव सत्वरम्। अक्षीणामर्षमत्यल्पसाध्यसाधननिस्पृहम्॥४३॥
तच्चक्रं प्रस्फुरद्दीप्ति विष्णोरभ्याययौ करम्॥४४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पौण्ड्रकवासुदेववधे काशीदाहवर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०७।।

व्यासदेव कहते हैं—उस समय कृष्ण द्यूत क्रीड़ारत थे। उन्होंने लीला पूर्वक अपना चक्र छोड़ दिया। वह विष्णुचक्र सुदर्शन तब अग्निमाला से जटिलाकार अत्यन्त भीषण ज्वाला उगलने लगा। वह कृत्या के पास पहुंचा। तब वह माहेश्वरी कृत्या चक्र से विध्वस्ता होकर वेग के साथ भागने लगी। चक्र भी उसका पीछा किये जा रहा था। हे मुनिप्रवरगण! विष्णुचक्र द्वारा प्रतिहत प्रभाव वाली कृत्या शीघ्रता पूर्वक वाराणसी में प्रवेश कर

गयी। तब काशीराज की प्रचुर सेना एवं प्रमथों की सेना सशस्त्र होकर विष्णुचक्र के समक्ष आ गयी। वे प्रभूत शस्त्रवर्षा करने लगे, तथापि चक्र ने स्वतेज से उन सबको दग्ध कर दिया। इससे समस्त वाराणसी नगरी की स्थिति अतीव जीर्ण हो गयी। इस चक्र ने प्रभूत भृत्य तथा पुरवासी युता, अश्व-गज समन्विता सुदृढ़ दुर्ग से रक्षित, देवताओं के लिये भी दुर्निरीक्ष्य उस पुरी को जो गृह, प्राकार, तोरणादि से युक्त थी, अपनी ज्वाला से उसे परिवृत करके सम्पूर्णतः दग्ध कर दिया। चक्र ने इसे तुच्छ कार्य की तरह सम्पन्न कर दिया था तथापि उसकी दहनेच्छा अभी निवृत्त नहीं हो सकी थी। वह इस प्रकार दीप्तिमय होते-होते भगवान् विष्णु (कृष्ण) के हाथों में लौट आया।।३६-४४।।

।।सप्ताधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

बलदेव माहात्म्य वर्णन

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे भूयो बलभद्रस्य धीमतः। मुने पराक्रमं शौर्यं तन्नो व्याख्यातुमर्हसि॥१॥
यमुनाकर्षणादीनि श्रुतान्यस्माभिरत्र वै। तत्कथ्यतां महाभाग यदन्यत्कृतवान्बलः॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिवर! पुनः बलदेव का शौर्य-पराक्रम हम श्रवण करना चाहते हैं। वह हमसे विस्तार पूर्वक कहिये। इस विषय में आपसे बलभद्र द्वारा हल से यमुना खींचे जाने का प्रसंग सुना है। हे महाभाग! बलदेव ने और जो कुछ किया था, वह कहिये।।१-२।।

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनयः कर्म यद्रामेणाभवत्कृतम्। अनन्तेनाप्रमेयेन शेषेण धरणीभृता॥३॥
दुर्योधनस्य तनयां स्वयंवरकृतेक्षणाम्। बलादादत्तवान्वीरः साम्बो जाम्बवतीसुतः॥४॥
ततः क्रुद्धा महावीर्याः कर्णदुर्योधनादयः। भीष्मद्रोणादयश्चैव बबन्धुर्युधि निर्जितम्॥५॥
तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु। मुनयः प्रतिचक्रुश्च तान्विहन्तुं महोद्यमम्॥६॥
तान्निवार्य बलः प्राह मदलोलाकुलाक्षरम्।
मोक्ष्यन्ति ते मद्वचनाद्यास्याम्येको हि कौरवान्॥७॥
बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाह्वयम्। बाह्योपवनमध्येऽभून्न विवेश च तत्पुरम्॥८॥
बलमागतमाज्ञाय तदा दुर्योधनादयः। गामर्घमुदकं चैव रामाय प्रत्यवेदयन्।
गृहीत्वा विधिवत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान्॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिगण! उन अनन्त अप्रमेय धरणीधर शेषरूपी राम ने और भी जो कर्म किया था, उसे श्रवण करिये। जाम्बवती पुत्र साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री को स्वयंवर में देखकर उसे बल पूर्वक पकड़ा था। यह देखकर महाबली कर्ण, दुर्योधन, भीष्म तथा द्रोण आदि ने क्रोधित होकर साम्ब को युद्ध में हराकर बन्दी बना लिया। हे मुनिगण! यह सुनकर यादवगण दुर्योधन के प्रति क्रोधित होकर दुर्योधन के वधार्थ महान् उद्यम करने लगे। बलराम ने उनको रोकते हुये मद से लड़खड़ाते हुये कहा कि "कौरव मेरे कहने से साम्ब को छोड़ देंगे।" तत्पश्चात् बलदेव हस्तिनापुर जाकर नगर से बाहर उपवन में रुक गये। उन्होंने नगर में प्रवेश नहीं किया। तब दुर्योधनादि कौरवों ने बलराम के आगमन का संवाद पाकर गौ, अर्घ्य, जल उनके पास भेजा। उन्होंने यह सब ग्रहणोपरान्त बलराम ने कौरवों से कहा—।।३-९।।

बलदेव उवाच

आज्ञापयत्युग्रसेनः साम्बमाशु विमुञ्चत॥१०॥

बलराम कहते हैं—उग्रसेन का आदेश है कि साम्ब को शीघ्र मुक्त करो।।१०।।

व्यास उवाच

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो द्विजाः। कर्णदुर्योधनाद्याश्च चुक्रुधुर्द्विजसत्तमाः॥११॥
ऊचुश्च कुपिताः सर्वे बाह्लिकाद्याश्च भूमिपाः। अराजार्हं यदोर्वंशमवेक्ष्य मुशलायुधम्॥१२॥

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! यह बात सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा दुर्योधन आदि कुपित हो गये। हे द्विजप्रवरगण! वाह्लीक आदि राजा भी यदुवंश को राजवंश नहीं मानते थे। अतः वे भी इस आदेश से क्रोधित हो गये। अतः वे मूसलायुध बलभद्र से कहने लगे।।११-१२।।

कौरवा ऊचुः

भो भाः किमेतद्भवता बलभद्रेरितं वचः। आज्ञां कुरुकुलोत्थानां यादवः कः प्रदास्यति॥१३॥
उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञां कौरवाणां प्रादास्यति। तदलं पाण्डुरैश्छत्रैर्नृपयोग्यैरलङ्कृतैः॥१४॥

तद्गच्छ बलभद्र त्वं साम्बमन्यायचेष्टितम्।
विमोक्ष्यामो न भवतो नोग्रसेनस्य शासनात्॥१५॥
प्रणतिर्या कृताऽस्माकं मान्यानां कुकुरान्धकैः।
न नाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यतः॥१६॥

गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनैः। को दोषो भवतां नीतिर्यत्प्रीणात्यनपेक्षिता॥१७॥

अस्माभिरर्च्यो भवता योऽयं बल निवेदितः।
प्रेम्णैव न तदस्माकं कुलाद्युष्मत्कुलोचितम्॥१८॥

कौरव कहते हैं—आपने यह क्या कहा? कुरुकुल में उत्पन्न व्यक्ति को कौन यादव आज्ञा दे सकता है? यदि उग्रसेन ही कौरवों को आज्ञा देंगे, तब राजाओं के योग्य अलंकारयुक्त श्वेत छत्र धारण का क्या प्रयोजन। हे बलभद्र! आप जायें। अन्यायी साम्ब को आपके कहने से हम नहीं छोड़ सकते। हम सम्मान योग्य

हैं। जिन कुकुर, अन्धकों द्वारा हमें प्रणाम किया जाता है, वे ही हमें आज्ञा प्रदान करें? स्वामी को भृत्यगण कैसे आज्ञा दे सकेंगे? हमारे द्वारा भोजन, आसन दिये जाने से आप लोग गर्वित हो गये। इसमें आपका क्या दोष? हमने ही नीति की अवहेलना किया है। हे बलदेव! हमने आपको पूज्य मान लिया, यह प्रीति के ही कारण हुआ। हम प्रेमवशात् आपका आदर करते हैं। यह हमारा कुलधर्म नहीं है कि आपके कुल की पूजा प्रतिष्ठा करें।।१३-१८।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा कुरवः सर्वे नामुञ्चन्त हरे सुतम्। कृतैकनिश्चयाः सर्वे विविशुर्गजसाह्वयम्॥१९॥

मत्तः कोपेन चाऽऽघूर्ण्य ततोऽधिक्षेपजन्मना।
उत्थाय पार्ष्ण्या वसुधां जघान स हलायुधः॥२०॥
ततो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघातान्महात्मनः।
आस्फोटयामास तदा दिशः शब्देन पूरयन्।
उवाच चातिताम्राक्षो भ्रुकुटीकुटिलाननः॥२१॥

व्यासदेव कहते हैं—कौरवों ने यह कहकर हरिपुत्र साम्ब को मुक्त नहीं किया। तदनन्तर सभी एकमत होकर हस्तिनापुर चले गये। इस आक्षेप से बलभद्र अतीव क्रोध में भर गये। उन्होंने मत्तता पूर्वक वहां से उठ कर घूमते हुये अपनी एड़ी से पृथिवीतल पर आघात किया। इस महाघोर आघात से पृथिवी विदीर्ण हो गयी। वह शब्द के साथ विदीर्ण होने लगी। उस समय बलभद्र के नेत्र आरक्त हो उठे थे। उनका मुंह तथा भौंहें टेढ़ी हो गयीं। ऐसी स्थिति में वे कहने लगे।।१९-२१।।

बलदेव उवाच

अहो महाबलेपोऽयमसाराणां दुरात्मनाम्। कौरवाणामाधिपत्यमस्माकं किल कालजम्॥२२॥

उग्रसेनस्य ये नाऽऽज्ञां मन्यन्ते चाप्यलङ्घनाम्।
आज्ञां प्रतीच्छेद्धर्मेण सह देवैः शचीपतिः॥२३॥

सदाऽध्यास्ते सुधर्मां तामुग्रसेनः शचीपतेः। धिङ्मनुष्यशतोच्छिष्टे तुष्टिरेषां नृपासने॥२४॥

बलभद्र कहते हैं—इन असार दुरात्मा कौरवगण को बल का गर्व हो गया। कौरव हम पर आधिपत्य करेंगे? यह तो निश्चित रूप से कालप्रभाव जनित है। जिनकी आज्ञा की धर्म पूर्वक इन्द्र भी प्रतीक्षा करते रहते हैं, उन उग्रसेन की अलंघनीय आज्ञा को ये नहीं मानते! उग्रसेन की सुधर्मा सभा के अध्यक्ष तो शचीपति इन्द्र हैं, जिसमें उग्रसेन बैठते हैं। ये कौरव तो मनुष्यों के जूठे राज्यसिंहासन से सन्तुष्ट हो जाते हैं। इनको धिक्कार है।।२२-२४।।

पारिजाततरोः पुष्पमञ्जरीर्वनिताजनः। बिभर्ति यस्य भृत्यानां सोऽप्येषां न महीपतिः॥२५॥

समस्तभूभुजां नाथ उग्रसेनः स तिष्ठतु।
अद्य निष्कौरवामुर्वीं कृत्वा यास्मामि तां पुरीम्॥२६॥

कर्णं दुर्योधनं द्रोणमद्य भीष्मं सबाह्लिकम्। दुःशासनादीन्भूरिं च भूरिश्रवसमेव च॥२७॥
सोमदत्तं शलं भीममर्जुनं सयुधिष्ठिरम्। यमजौ कौरवांश्चान्यान्हन्यां साश्वरथद्विपान्॥२८॥
वीरमादाय तं साम्बं सपत्नीकं ततः पुरीम्।
द्वारकामुग्रसेनादीन्गत्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान्॥२९॥
अथवा कौरवादीनां समस्तैः कुरुभिः सह। भारावतरणे शीघ्रं देवराजेन चोदितः॥३०॥
भागीरथ्यां क्षिपाम्याशु नगरं नागसाह्वयम्॥३१॥

जिन उग्रसेन के दासों की स्त्रियां कल्पवृक्ष से उत्पन्न पुष्पों तथा मंजरियों को धारण करती हैं, वे उग्रसेन क्या इनके शासक नहीं हैं? वे इनकी दृष्टि में राजा नहीं हैं? सर्वभूतपतिनाथ उग्रसेन की तो बात ही क्या? मैं आज ही पृथिवी को कौरव रहित करके तभी अपने नगर द्वारका वापस जाऊंगा। अब कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, वाह्लीक, दुःशासन, भूरि, भूरिश्रवा, सोमदत्त, शल, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, यमज नकुल, सहदेव प्रभृति को तथा उनके अन्य पार्षदों की हत्या उनके अश्व तथा हाथियों के साथ करूंगा। तत्पश्चात् वीर साम्ब को उसकी पत्नी सहित लेकर अपनी पुरी द्वारका में उसे उग्रसेन आदि बान्धवों को दिखलाऊंगा अथवा देवराज की प्रार्थना के अनुसार शीघ्र पृथिवी के भार का हरण करने के लिये कौरवों तथा उनके परिजन सहित हस्तिनापुरी को शीघ्र भागीरथी में डुबा दूंगा।।२५-३१।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा क्रोधरक्ताक्षस्तालाङ्कोऽधोमुखं हलम्।
प्राकारवप्रे विन्यस्य चकर्ष मुशलायुधः॥३२॥
आघूर्णितं तत्सहसा ततो वै हस्तिनापुरम्।
दृष्ट्वा संक्षुब्धहृदयाश्चुक्रुशुः सर्वकौरवाः॥३३॥

व्यासदेव कहते हैं—तालध्वज मूसलायुधधारी बलदेव ने क्रोध से आरक्त हो गये नेत्रों की स्थिति में यह कहा तथा हल का फाल नीचे की ओर करके उन्होंने प्राकार तथा स्तूप का विन्यास करके हल को खींचा। इससे हस्तिनापुरी घूर्णित होने लगी। तब सभी कौरव लोग क्षुब्ध होकर परस्पर चीखने-चिल्लाने लगे। वे सभी बलराम के पास आकर कहने लगे।।३२-३३।।

कौरवा ऊचुः

राम राम महाबाहो क्षम्यतां क्षम्यतां त्वया। उपसंह्रियतां कोपः प्रसीद मुशलायुध॥३४॥
एष साम्बः सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल।
अविज्ञातप्रभावाणां क्षम्यतामपराधिनाम्॥३५॥

कौरवगण कहते हैं—हे राम, हे महाबाहु राम! क्षमा करिये, हमें क्षमा करिये! हे मूषलायुध! क्रोध का उपसंहार करिये। प्रसन्न हो जाईये। हे बलदेव! हम आपके साम्ब को सपत्नीक प्रदान करते हैं। हम आपका प्रभाव नहीं जानते थे। अतः हम अपराधी हैं। हमें क्षमा करिये।।३४-३५।।

व्यास उवाच

ततो निर्यातयामासुः साम्बं पत्न्या समन्वितम्।
निष्क्रम्य स्वपुरीं तूर्णं कौरवा मुनिसत्तमाः॥३६॥
भीष्मद्रोणकृपादीनां प्रणम्य वदतां प्रियम्। क्षान्तमेव मयेत्याह बलो बलवतां वरः॥३७॥
अद्याप्याघूर्णिताकारं लक्ष्यते तत्पुरं द्विजाः।
एष प्रभावो रामस्य बलशौर्यवतो द्विजाः॥३८॥
ततस्तु कौरवाः साम्बं सम्पूज्य हलिना सह। प्रेषयामासुरुद्वाहधनभार्यासमन्वितम्॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते बलदेवामाहात्म्यनिरूपणं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०८॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिसत्तमवृन्द! कौरवों ने शीघ्र अपने नगर से बाहर आकर यह सब कहा तथा अविलम्ब सपत्नीक साम्ब को प्रदान कर दिया। तब बलियों में प्रधान बलदेव ने प्रिय उक्ति बोलने वाले भीष्म, द्रोण तथा कृपाचार्य आदि को प्रणाम करके कहा—"क्षमा किया।" हे ब्राह्मणों! आज भी हस्तिनापुर आघूर्णित लक्षित होता है। हे द्विजगण! बल, शौर्ययुक्त बलराम का ऐसा प्रभाव है। तदनन्तर कौरवों ने विवाहोपहार सहित सपत्नीक साम्ब का सत्कार करके बलदेव के साथ द्वारका भेजा।।३६-३९।।

।।अष्टाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

द्विविद वानर वध वर्णन

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे बलस्य बलशालिनः। कृतं यदन्यदेवाभूत्तदपि श्रूयतां द्विजाः॥१॥
नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवपक्षविरोधिनः। सखाऽभवन्महावीर्यो द्विविदो नाम वानरः॥२॥
वैरानुबन्धं बलवान्स चकार सुरान्प्रति॥३॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिगण! आप सब श्रवण करें। हे द्विजों! बली बलदेव ने और भी जो कार्य किया था, उसे कहता हूं। देवपक्ष विरोधी असुरराज नरक का द्विविद नामक एक महाबली वानर सखा था। यह बली वानर देवगण के प्रति विद्वेष करता था।।१-३।।

द्विविद उवाच

नरकं हतवान्कृष्णो बलदर्पसमन्वितम्। करिष्ये सर्वदेवानां तस्मादेष प्रतिक्रियाम्।।४।।

द्विविद ने कहा—बलदर्प युक्त कृष्ण ने नरकासुर का वध किया है। अतः सभी देवताओं से मैं नरकवध का बदला लूंगा।।४।।

व्यास उवाच

यज्ञविध्वंसनं कुर्वन्मर्त्यलोकक्षयं तथा। ततो विध्वंसयामास यज्ञानज्ञानमोहितः।।५।।
बिभेद साधुमर्यादां क्षयं चक्रे च देहिनाम्। ददाह चपलो देशं पुरग्रामान्तराणि च।।६।।
क्वचिच्च पर्वतक्षेपाद्ग्रामादीन्समचूर्णयत्। शैलानुत्पाट्य तोयेषु मुमोचाम्बुनिधौ तथा।।७।।
पुनश्चार्णवमध्यस्थः क्षोभयामास सागरम्। तेनातिक्षोभितश्चाब्धिरुद्वेलो जायते द्विजाः।।८।।
प्लाववयंस्तीरजान्ग्रामान्पुरादीनतिवेगवान्। कामरूपं महारूपं कृत्वा सस्यान्यनेकशः।।९।।
लुठन्भ्रमणसम्मर्दैः सञ्चूर्णयति वानरः। तेन विप्रकृतं सर्वं जगदेतदुरात्मना।।१०।।

व्यासदेव कहते हैं—उस चपल वानर ने यह निश्चय किया तथा मृत्युलोक में यज्ञ विध्वंस तथा लोगों का क्षय करने लगा। उसने साधुमर्यादा का उल्लंघन करके देश, पुर-ग्रामादि को दग्ध करना तथा देहधारी लोगों का विनाश करना प्रारम्भ कर दिया था। कहीं वह पर्वत फेंक कर ग्रामों को चूर्ण कर देता। पर्वत उखाड़कर जलाशयों में तथा समुद्र में फेंक देता। कभी समुद्र में कूद कर उसे संक्षुब्ध करता। हे ब्राह्मणगण! उसके द्वारा क्षुब्ध किया सागर उद्वेलित होकर तीरस्थ ग्राम-नगर आदि को अतीव वेग से बहा ले जाता। वह कामरूपी था। वह महाविशाल रूप धारण करके फसल को मर्दित, भूलुंठित तथा चूर्णित करने लगता। उस दुरात्मा द्वारा सम्पूर्ण जगत् उपद्रव से त्रस्त कर दिया गया।।५-१०।।

निःस्वाध्यायवषट्कारं द्विजाश्चाऽऽसीत्सुदुःखितम्।
कदाचिद्रैवतोद्याने पपौ पानं हलायुधः।।११।।
रेवती च महाभागा तथैवान्या वरस्त्रियः। उद्गीयमानो विलसल्ललनामौलिमध्यगः।।१२।।
रेमे यदुवरश्रेष्ठः कुबेर इव मन्दरे। ततः स वानरोऽभ्येत्य गृहीत्वा सारिणो हलम्।।१३।।
मुशलं च चकारास्य सम्मुखः स विडम्बनाम्।
तथैव योषितां तासां जहासाभिमुखं कपिः।।१४।।
पानपूर्णांश्च करकाञ्चिक्षेपाऽऽहत्य वै तदा।
ततः कोपपरीतात्मा भर्त्सयामास तं बलम्।।१५।।

इस प्रकार उस दुरात्मा के कृत्यों से जगत् स्वाध्याय तथा वषट्कार रहित हो गया। जिससे द्विजगण अत्यन्त दुःखी हो गये। एक समय रैवतोद्यान में बलराम सुरापान कर रहे थे। वहां उनकी पत्नी रेवती तथा अन्य स्त्रियां भी समवेत थीं। विलासशालिनी ललनाओं के बीच यदुवरश्रेष्ठ बलभद्र नृत्य एवं गायन करते हुये वैसा ही विलास कर रहे थे, जैसा विलास मन्दराचल पर धनपति कुबेर करते हैं। तभी वह वानर द्विविद वहां आया

तथा बलदेव का हल-मूषल उठाकर उनके सम्मुख ही उछल-कूद करने लगा। वह उन स्त्रियों के सामने मुख करके हास्य करता तथा उनके पान पात्रों को कंकड़ों से भरता तथा पैरों का उन पर प्रहार करता। तदनन्तर क्रोध में भरकर उसने बलराम की भर्त्सना किया।।११-१५।।

तथाऽपि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलाध्वनिम्।
ततः समुत्थाय बलो जगृहे मुशलं रुषा॥१६॥
सोऽपि शैलशिलां भीमां जग्राह प्लवगोत्तमः।
चिक्षेप च स तां क्षिप्तां मुशलेन सहस्त्रधा॥१७॥
बिभेद यादवश्रेष्ठः सा पपात महीतले। अपतन्मुशलं चासौ समुल्लऽङ्घ्य प्लवङ्गमः॥१८॥
वेगेनाऽऽयम्य रोषेण बलेनोरस्यताडयत्। ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्ध्नि ताडितः॥१९॥
पपात रुधिरोद्गारी द्विविदः क्षीणजीवितः। पतता तच्छरीरेण गिरेः शृङ्गमशीर्यत॥२०॥
मुनयः शतधा वज्रिवज्रेणेव हि ताडितम्। पुष्पवृष्टिं ततो देवा रामस्योपरि चिक्षिपुः॥२१॥
प्रशशंसुस्तदाऽभ्येत्य साध्वेतत्ते महत्कृतम्। अनेन दुष्टकपिना दैत्यपक्षोपकारिणा।
जगन्निराकृतं वीर दिष्ट्या स क्षयमागतः॥२२॥

इसके पश्चात् उसने बलराम की अवज्ञा करके उनके समक्ष किलकिलाहट भरी ध्वनि किया। इससे क्रोधित होकर बलभद्र ने अपना मूषल हाथों में उठा लिया। तभी उस वानरोत्तम ने एक भयानक भारी शिला उठा कर बलभद्र पर फेंका, जिसे यादवश्रेष्ठ बलराम ने मूषल के आघात से सहस्त्रों खण्ड में तोड़ दिया। शिला खण्ड-खण्ड होकर भूपतित हो गयी, वह मूषल भी पृथिवी पर गिर गया। तभी द्विविद वानर ने उछलकर बलराम के वक्ष पर प्रहार किया। इससे बलराम ने क्रोधित होकर वानर के शिर पर मुष्टिका से प्रहार किया। इस प्रहार से आहत द्विविद रक्त वमन करता भूपतित हो गया तथा वह तत्काल निष्प्राण हो गया। उसके भूपतित होते शरीर की चपेट में आकर पर्वत शिखर भी उसी प्रकार शतखण्डों में बंट गया, मानों इन्द्र के वज्र से पूर्वकाल में आहत पर्वत हो। देवगण ने यह देखकर आकाश से बलराम पर स्वर्ग के पुष्पों की वृष्टि किया तथा उनके सन्निकट आकर उनकी प्रशंसा करने लगे कि यह आपका महत् कार्य है। यह दुष्ट वानर दैत्यपक्षीय तथा देवताओं का तथा संसार का अनिष्टकारी था। भाग्यतः यह क्षयीभूत हो गया।।१६-२२।।

व्यास उवाच

एवं विधान्यनेकानि बलदेवस्य धीमतः। कर्माण्यपरिमेयानि शेषस्य धरणीभृतः॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बलदेवमाहात्म्ये द्विविदवानरवधवर्णनं नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०९॥

व्यासदेव कहते हैं—धीमान् बलदेव शेषावतार अनन्तदेव के ऐसे अनेक कार्य हैं, जिनको अपरिमेय ही कहा जा सकता है।।२३।।

।।नवाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भगवान् द्वारा भूमिभार हटाने का वर्णन

व्यास उवाच

एवं दैत्यवधं कृष्णो बलदेवसहायवान्। चक्रे दुष्टक्षितीशानां तथैव जगतः कृते॥१॥

क्षितेश्च भारं भगवान्फाल्गुनेन समं विभुः।
अवतारयामास हरिः समस्ताक्षौहिणीवधात्॥२॥

कृत्वा भारावतरणं भुवो हत्वाऽखिलान्नृपान्। शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम्॥३॥

उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त्वा मानुष्यमात्मभूः।
स्वांशो विष्णुमयं स्थानं प्रविवेश पुनर्निजम्॥४॥

व्यासदेव कहते हैं—जगत् के हित साधनार्थ कृष्ण ने बलदेव की सहायता से इस प्रकार दैत्यों का तथा दुष्ट राजाओं का वध साधन किया। विभु भगवान् ने अर्जुन के सहयोग से कौरवों की समस्त अक्षौहिणी सैन्य का वध करके पृथिवी का भार उतारा। उन्होंने समस्त दुष्ट राजाओं का वध करके भूमि का भार उतारा और विप्रशाप के बहाने अपने कुल तक का उपसंहार कर दिया। आत्मभू कृष्ण ने तदुपरान्त द्वारका का त्याग करके मनुष्य देह का त्याग कर दिया। उन्होंने विष्णुमय अपने अंश से पुनः अपने स्थान में प्रवेश कर लिया।।१-४।।

मुनय ऊचुः

स विप्रशापव्याजेन संजह्रे स्वकुलं कथम्।
कथं च मानुषं देहमुत्ससर्ज जनार्दनः॥५॥

मुनिगण कहते हैं—जनार्दन ने किस प्रकार विप्रश्राप के बहाने स्वकुल संहार किया था? किस प्रकार से उन्होंने अपने मनुष्य देह का उत्सर्जन किया था?।।५।।

व्यास उवाच

विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः। पिण्डारके महातीर्थे दृष्टा यदुकुमारकैः॥६॥

ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिताः।
साम्बं जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा स्त्रियं यथा।
प्रसृतास्तन्मुनीनूचुः प्रणिपातपुरःसरम्॥७॥

व्यासदेव कहते हैं—एक बार पिण्डारक महातीर्थ पर महर्षि विश्वामित्र, कण्व तथा महामुनि नारद को देखकर यौवन से उन्मत्त यादवकुमार भावी घटना से प्रेरित होकर जाम्बवती के पुत्र साम्ब को स्त्री वेश में सज्जित करके उन्हें उन मुनियों के सामने ले गये तथा उनको प्रणाम करके उन कुमारों ने पूछा।।६-७।।

कुमारा ऊचुः

इयं स्त्री पुत्रकामा तु प्रभो किं जनयिष्यति॥८॥

यादव कुमार कहते हैं—हे मुनिगण! यह कामिनी पुत्र की अभिलाषा रखती है। यह किसे प्रसव करेगी?।।८।।

व्यास उवाच

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते विप्रलब्धा कुमारकैः। शापं ददुस्तदा विप्रास्तेषां नाशाय सुव्रताः॥९॥

मुनयः कुपिताः प्रोचुर्मुशलं जनयिष्यति।
येनाखिलकुलोत्सादो यादवानां भविष्यति॥१०॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिवृन्द! वे दिव्य ज्ञानयुक्त सुव्रत मुनिगण कुमारों द्वारा इस प्रकार से छले जाने से कुपित हो गये। उन्होंने कुमारों को शाप प्रदान किया। उन मुनियों ने कहा—"यह कामिनी मूसल प्रसव करेगी। उससे यादवों के अखिल कुल का नाश होगा"।।९-१०।।

इत्युक्तास्तैः कुमारास्त आचचक्षुर्यथातथम्।
उग्रसेनाय मुशलं जज्ञे साम्बस्य चोदरात्॥११॥

तदुग्रसेनो मुशलमयश्चूर्णमकारयत्। जज्ञे तच्चैरका चूर्णं प्रक्षिप्तं वै महोदधौ॥१२॥

मुसलस्याथ लौहस्य चूर्णितस्यान्धकैर्द्विजाः। खण्डं चूर्णयितुं शेकुर्नैव ते तोमराकृति॥१३॥

यह कहे जाने पर वे सभी कुमार उग्रसेन के यहां गये तथा उन्होंने समस्त वृत्तान्त उनसे यथायथ रूप से कहा। यथाकाल साम्ब के उदर से एक मूसल उत्पन्न हो गया। उग्रसेन ने उस लौह मूसल को चूर्ण करा दिया तथा उस चूर्ण को महासागर में विसर्जित कराया। वह चूर्ण सागर तट पर ऐरका घास के रूप में उत्पन्न हो गया। हे द्विजवृन्द! उस लौह मूसल को चूर्ण किये जाने पर भी उसका जो तोमराकृति अल्प अवशेष बच गया, उसे वे अन्धक वंशोत्पन्न यादव कदापि चूर्णित नहीं कर सके।।११-१३।।

तदप्यम्बुनिधौ क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह जालिभिः।
घातितस्योदरात्तस्य लुब्धो जग्राह तज्जरा॥१४॥

विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवान्मधुसूदनः। नैच्छत्तदन्यथा कर्त्तुं विधिना यत्समाहृतम्॥१५॥

देवैश्च प्रहितो दूतः प्रणिपत्याऽऽह केशवम्। रहस्येवमहं दूतः प्रहितो भगवन्सुरैः॥१६॥

वस्वश्विमरुदादित्यरुद्रसाध्यादिभिः सह। विज्ञापयति वः शक्रस्तदिदं श्रूयतां प्रभो॥१७॥

वह अंश समुद्र में प्रक्षिप्त किया गया, जिसे वहां एक मत्स्य ने निगल लिया। मछुआरों ने उस मत्स्य का जब वध किया, तब उसके पेट से वह लौह खण्ड निकला, जिसे जरा नामक व्याध ले गया। भगवान् मधुसूदन इस तत्व से अवगत थे, तथापि उन्होंने इस भावी घटना को व्यर्थ नहीं किया। उन्होंने विधि-विधान अन्यथा नहीं किया। तदनन्तर भगवान् कृष्ण के पास देवताओं द्वारा प्रेषित दूत आया। उसने केशव को प्रणाम करके कहा—"हे भगवान्! मैं देवों द्वारा भेजा दूत हूं। हे प्रभो! वसुगण, अश्विनीकुमारद्वय, मरुद्गण,

आदित्य एवं साध्यगण प्रभृति देवताओं एवं इन्द्र ने आपसे जो कहने हेतु मुझे भेजा है, हे प्रभो! वह श्रवण करिये।।१४-१७।।

देवा ऊचुः

भारावतरणार्थाय वर्षाणामधिकं शतम्। भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदशैः सम्प्रसादितः॥१८॥

दुर्वृत्ता निहता दैत्या भुवो भारोऽवतारितः।
त्वया सनाथस्त्रिदशा व्रजन्तु त्रिदिवेशताम्॥१९॥

तदतीतं जगन्नाथ वर्षाणामधिकं शतम्। इदानीं गम्यतां स्वर्गो भवते यदि रोचते॥२०॥

देवैर्विज्ञापितो देवोऽप्यथात्रैव रतिस्तव।
तत्स्थीयतां यथाकालमाख्येयमनुजीविभिः॥२१॥

देवगण ने कहा है—"देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर आपने पृथिवी का भार उतारने हेतु यहां अवतार लिया था। आपके द्वारा दुर्वृत्त तथा दैत्यादि का नाश करके धरती का भार उतार दिया गया। देवता सनाथ हो गये। उनको पुनः स्वर्ग का ऐश्वर्य प्राप्त हो गया। हे जगन्नाथ! यहां आपका सौ वर्ष से अधिक काल व्यतीत हो गया। अब यदि आपकी इच्छा हो तब स्वर्ग चले आयें। यह देवगण की प्रार्थना है। तथापि यदि आप यहीं रहना चाहें, तब अपने अनुचरों के साथ यहीं रहें। मुझे यही कहना है।।१८-२१।।

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वामात्थाखिलं दूत वेद्मि चैतदहं पुनः।
प्रारब्ध एव हि मया यादवानामपि क्षयः॥२२॥

भुवो नामातिभारोऽयं यादवैरनिबर्हितैः। अवतारं करोम्यस्य सप्तरात्रेण सत्वरः॥२३॥

यथागृहीतं चाम्भोधौ हत्वाऽहं द्वारकां पुनः।
यादवानुपसंहृत्य यास्यामि त्रिदशालयम्॥२४॥

मनुष्यदेहमुत्सृज्य सङ्कर्षणसहायवान्। प्राप्त एवास्मि मन्तव्यौ देवेन्द्रेण तथा सुरैः॥२५॥

जरासन्धादयो येऽन्ये निहता भारहेतवः। क्षितेस्तेभ्यः स भारो हि यदूनां समधीयत॥२६॥

तदेतत्सुमहाभारमवतार्य क्षितेरहम्। यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय ब्रवीहि तान्॥२७॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे दूत! तुमने जो कहा, वह मैं जानता हूं। तदनुसार मैं यादवों के भी क्षयार्थ उपाय कर रहा हूं। इन असंख्य यादवगण से भूभार अत्यन्त बढ़ गया है। मैं सप्त रात्रि में ही इस भार को दूर करूंगा। तदनन्तर यादव संहारोपरान्त द्वारका को समुद्र को अर्पित करके पुनः स्वर्गगमन करूंगा। तुम यही मानो कि मैं मानव देह त्याग कर संकर्षण बलभद्र के साथ स्वर्ग में आ गया हूं (अर्थात् अब विलम्ब नहीं है)। जरासन्ध प्रभृति पृथिवी के भारस्वरूप जिन दुष्टों का मैंने वध किया था, उनसे भी अधिक भार यादवों का है। इस महाभार से धरती को मुक्त करने के अनन्तर मैं अमरलोक का पालन करने हेतु आ जाऊंगा। यह संवाद देवताओं को तुम देना।।२२-२७।।

व्यास उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन देवदूतः प्रणम्य तम्।
द्विजाः स दिव्यया गत्या देवराजान्तिकं ययौ॥२८॥
भगवानप्यथोत्पातान्दिव्यान्भौमान्तरिक्षगान्।
ददर्श द्वारकापुर्यां विनाशाय दिवानिशम्॥२९॥
तान्दृष्ट्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान्।
महोत्पाताञ्शमायैषां प्रभासं याम मा चिरम्॥३०॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजप्रवरवृन्द! वासुदेव द्वारा यह कहने पर वह दूत भगवान् कृष्ण को प्रणाम करने के पश्चात् दिव्य गति से देवराज के यहां चला गया। इधर भगवान् भी द्वारिकापुरी में दिन-रात विनाश सूचक दिव्य, भौम तथा अन्तरिक्ष उत्पातों को देख रहे थे। यह देखकर कृष्ण ने यादवों से कहा—"इन महा उत्पातों को देखो। इनकी शान्ति हेतु हम शीघ्र प्रभासतीर्थ चलें"।।२८-३०।।

व्यास उवाच

महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम्॥३१॥

व्यासदेव कहते हैं—उस समय महाभागवत उद्धव ने प्रणामोपरान्त श्रीहरि से कहा—।।३१।।

उद्धव उवाच

भगवन्यन्मया कार्यं तदाज्ञापय साम्प्रतम्। मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्संहरिष्यति।
नाशायास्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये॥३२॥

उद्धव कहते हैं—हे प्रभो! इस समय मुझे क्या करना है, वह उपदेश आप प्रदान करें। प्रतीत होता है कि आप भगवान् समस्त कुल का संहार करेंगे। हे अच्युत! मैं कुलविनाश जनक समस्त लक्षणों को देख रहा हूं।।३२।।

श्रीभगवानुवाच

गच्छ त्वं दिव्यया गत्या मत्प्रसादसमुत्थया। बदरीमाश्रमं पुण्यं गन्धमादनपर्वते॥३३॥
नरनारायणस्थाने पवित्रितमहीतले। मन्मना मत्प्रसादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि॥३४॥
अहं स्वर्गं गमिष्यामि उपसंहृत्य वै कुलम्।
द्वारकां च मया त्यक्तां समुद्रः प्लावयिष्यति॥३५॥

श्रीभगवान् कहते हैं—मेरी कृपा से तुम दिव्य गति से गन्धमादन पर्वतस्थ पुण्यमय बदरिकाश्रम जाओ। वह नर-नारायण का निवासस्थल होने के कारण अति पवित्र क्षेत्र है। वहां मुझमें मन लगाकर (मन्मना होकर) मेरी कृपा से तुमको सिद्धिलाभ होगा। मैं भी कुल का उपसंहार करने के अनन्तर स्वर्गगमन करूंगा। मेरे द्वारा रिक्त कर दी गई द्वारका को सागर जलमग्न कर देगा।।३३-३५।।

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं जगाम स तदोद्धवः। नरनारायणस्थानं केशवेनानुमोदितः॥३६॥
ततस्ते यादवाः सर्वे रथानारुह्य शीघ्रगान्। प्रभासं प्रययुः सार्धं कृष्णरामादिभिर्द्विजाः॥३७॥
प्राप्य प्रभासं प्रयता प्रीतास्ते कुक्कुरान्धकाः। चक्रुस्तत्र सुरापानं वासुदेवानुमोदिताः॥३८॥
पिबतां तत्र वै तेषां सङ्घर्षेण परस्परम्। यादवानां ततो जज्ञे कलहाग्निः क्षयावहः॥३९॥

व्यासदेव कहते हैं—जब भगवान् ने उद्धव से इस प्रकार कहा तब उन्होंने प्रभु को प्रणाम करने के पश्चात् केशव द्वारा अनुमोदित होकर नर-नारायण स्थल के लिये प्रस्थान कर दिया। हे ब्राह्मणवृन्द! तदनन्तर यादवगण कृष्ण तथा बलभद्र के साथ शीघ्रगामी रथों पर सवार होकर प्रभास के लिये प्रस्थान कर गये। वे कुक्कुर-अन्धकवंशी यादव भी प्रभास पहुंचे तथा वहां पहुंचकर प्रसन्न हो गये। वे वासुदेव का अनुमोदन पाकर वहां सुरापान करने लगे। इस सुरापान करते हुये उनमें विवाद उत्पन्न हो गया तथा उनमें क्षयकारी कलह रूपी अग्नि की उत्पत्ति हो गई। यह भयावह स्थिति थी।।३६-३९।।

जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्दैवबलात्कृताः। क्षीणशस्त्रास्तु जगृहुः प्रत्यासन्नामथैरकाम्॥४०॥
एरका तु गृहीता तैर्वज्रभूतेव लक्ष्यते। तया परस्परं जघ्नुः संप्रहारैः सुदारुणैः॥४१॥
प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवर्माऽथ सात्यकिः। अनिरुद्धादयश्चान्ये पृथुर्विपृथुरेव च॥४२॥
चारुवर्मा सुचारुश्च तथाऽक्रूरादयो द्विजाः। एरकारूपिभिर्वज्रैस्ते निजघ्नुः परस्परम्॥४३॥
निवारयामास हरिर्यादवास्ते च केशवम्। सहायं मेनिरे प्राप्तं ते निजघ्नुः परस्परम्॥४४॥
कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकामुष्टिमाददे। वधाय तेषां मुशलं मुष्टिलोहमभूत्तदा॥४५॥

जघान तेन निःशेषानाततायी स यादवान्।
जघ्नुश्च सहसाऽभ्येत्य तथाऽन्ये तु परस्परम्॥४६॥
ततश्चार्णवमध्येन जैत्रोऽसौ चक्रिणो रथः।
पश्यतो दारुकस्याऽऽशु हृतोऽश्वैर्द्विजसत्तमाः॥४७॥

वे दैव प्रेरित होकर शस्त्रास्त्रों से एक दूसरे पर प्रहार करते जा रहे थे। क्रमशः उनके शस्त्र समाप्त हो गये। तब उन्होंने वहां पर उगी ऐरका घास ग्रहण किया (जो मूसल चूर्ण से जन्मी थी)। उनके द्वारा ग्रहण की गई ऐरका हाथों में आते ही वज्रवत् हो गई। वे यादव ऐरका से आपस में दारुण प्रहार करने लगे। एक दूसरे का उसके प्रहार से वध करने लगे। हे द्विजगण! प्रद्युम्न, साम्ब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, सुचारु तथा अक्रूरादि अन्यान्य सभी लोग इस ऐरका वज्र से परस्परतः एक दूसरे का वध करने लगे। तब कृष्ण ने कुपित होकर उनके वध के लिये एक मुट्ठी ऐरका को हाथ में लिया। वह ऐरका उनके हाथ में आते ही लौह मूसल की तरह हो गयी। पहले तो कृष्ण उन यादवों को मार-पीट से रोकना चाह रहे थे, तथापि उन सबने कृष्ण को इस मार-पीट में सहायक समझा। इसी से कृष्ण क्रुद्ध हो गये। अब कृष्ण स्वयं उन आततायी यादवों का वध कर रहे थे। उन्होंने समस्त यादवों का संहार कर दिया। अन्य लोग भी ऐरका लेकर परस्परतः एक दूसरे का वध कर रहे थे। हे द्विजप्रवरगण! तभी चक्रपाणि का जैत्र रथ दारुक सारथी के सामने ही अश्वों के साथ समुद्र में अपहृत हो गया।।४०-४७।।

चक्रं गदा तथा शार्ङ्गं तूणौ शङ्खोऽसिरेव च।
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा जग्मुरादित्यवर्त्मना॥४८॥
क्षणमात्रेण वै तत्र यादवानामभूत्क्षयः। ऋते कृष्णं महाबाहुं दारुकं च द्विजोत्तमाः॥४९॥
चङ्क्रम्यमाणौ तौ रामं वृक्षमूलकृतासनम्।
ददृशाते मुखाच्चास्य निष्क्रामन्तं महोरगम्॥५०॥
निष्क्रम्य स मुखात्तस्य महाभोगो भुजङ्गमः।
प्रयातश्चार्णवं सिद्धैः पूज्यमानस्तथोरगैः॥५१॥
तमर्घ्यमादाय तदा जलधिः सम्मुखं ययौ। प्रविवेश च तत्तोयं पूजितः पन्नगोत्तमैः।
दृष्ट्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः॥५२॥

श्रीकृष्ण के आयुध चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष, शंख तथा तलवार उन प्रभु की प्रदक्षिणा करके आकाश मार्ग से अन्तर्हित् हो गये। हे द्विजप्रवरगण! वहां क्षणकाल में ही कृष्ण तथा दारुक को छोड़कर समस्त यादवों का क्षय हो गया। उन दोनों ने भ्रमण करते-करते बलराम को वृक्ष के नीचे आसनबद्ध बैठे देखा। उन्होंने देखा कि बलराम के मुख से एक महासर्प निकला। वह महासर्प उनके मुख से बहिर्गत् हो गया। उस समय सर्प-नाग तथा सिद्धगण से पूजित वह महासर्प समुद्र में जाने लगा। उस समय सागर भी अर्घ्य लिये हुये उनके सामने उपस्थित थे। वह सर्प अन्य पन्नगों द्वारा अभ्यर्थना पाकर सागर में प्रविष्ट हो गया। बलदेव का इस प्रकार का महाप्रयाण देख कर कृष्ण ने दारुक से कहा—।।४८-५२।।

श्रीभगवानुवाच

इदं सर्वं त्वमाचक्ष्व वासुदेवोग्रसेनयोः। निर्याणं बलदेवस्य यादवानां तथा क्षयम्॥५३॥
योगे स्थित्वाऽहमप्येतत्परित्यज्य कलेवरम्।
वाच्यश्च द्वारकावासी जनः सर्वस्तथाऽऽहुकः॥५४॥
यथेमां नगरीं सर्वां समुद्रः प्लावयिष्यति।
तस्माद्रथैः सुसज्जैस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जुनागमः॥५५॥
न स्थेयं द्वारकामध्ये निष्क्रान्ते तत्र पाण्डवे। तेनैव सह गन्तव्यं यत्र याति स कौरवः॥५६॥
गत्वा च ब्रूहि कौन्तेयमर्जुनं वचनं मम।
पालनीयस्त्वया शक्त्या जनोऽयं मत्परिग्रहः॥५७॥
इत्यर्जुनेन सहितो द्वारवत्यां भवाञ्जनम्। गृहीत्वा यातु वज्रश्च यदुराजो भविष्यति॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते श्रीकृष्णनिजधामगमननिरूपणं
नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१०।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—बलदेव के महाप्रयाण तथा यादवों के नाश का वृत्तान्त वसुदेव तथा उग्रसेन से कहना। मैं भी योगावलम्बन द्वारा इस शरीर का त्याग करूंगा। यह संवाद समस्त द्वारकावासी तथा आहुक से कहना। कह देना कि समस्त द्वारका को समुद्र जलप्लावित करेगा। सभी लोग रथारूढ़ होकर सन्नद्ध रहो तथा अर्जुन के आने की प्रतीक्षा करो। अर्जुन के साथ द्वारका से निकल जाना। तब कोई द्वारका में नहीं रहे। यह अर्जुन जहां जायें, सभी उधर जाना। तुम जाकर कौन्तेय अर्जुन से कहना कि तुम यथाशक्ति मेरी स्त्रियों की रक्षा-पालन करना। अर्जुन के साथ वज्र (अनिरुद्ध का पुत्र) द्वारका से लाया जायेगा। वज्र ही यदुवंश का राजा होगा।।५३-६२।।

।।दशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

कृष्ण द्वारा मनुष्य देह का विसर्जन

व्यास उवाच

इत्युक्तो दारुकः कृष्णं प्रणिपत्य पुनः पुनः।
प्रदक्षिणं च बहुशः कृत्वा प्रायाद्यथोदितम्।।१।।
स च गत्वा तथा चक्रे द्वारकायां तथाऽऽर्जुनम्।
आनिनाय महाबुद्धिं वज्रं चक्रे तथा नृपम्।।२।।

भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम्। ब्रह्मात्मनि समारोप्य सर्वभूतेष्वधारयत्।।३।।
स मानयन्द्विजवचो दुर्वासा यदुवाच ह। योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तमाः।।४।।
सम्प्राप्तो वै जरा नाम तदा तत्र स लुब्धकः। मुशलशेषलोहस्य सायकं धारयन्परम्।।५।।
स तत्पादं मृगाकारं समवेक्ष्य व्यवस्थितः। ततो विव्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तमाः।।६।।
गतश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुधरं नरम्। प्रणिपत्याऽऽह चैवैनं प्रसीदेति पुनः पुनः।।७।।
अजानता कृतमिदं मया हरिणशङ्कया। क्षम्यतामात्मपापेन दग्धं मा दग्धुमर्हसि।।८।।

व्यासदेव कहते हैं—तदनन्तर दारुक ने कृष्ण को पुनः-पुनः प्रणाम किया तथा उनकी प्रदक्षिणा करने के उपरान्त वहां से चला गया। उसने कृष्ण का संदेश सबसे कहा तथा द्वारका में अर्जुन को बुलाकर महाधीमान् वज्र को राजा बनाया। हे मुनिप्रवरवृन्द! भगवान् गोविन्द ने भी सर्वभूतात्मक आत्मा से वासुदेवात्मक परब्रह्म का संयोग कराकर समाधि का अवलम्बन लिया। वे ब्राह्मणों की शापवाणी का सम्मान करके दुर्वासा के कथनानुरूप जानु पर तलवों को रखकर योगयुक्त हो गये। उसी समय जरा नामक व्याध ने मूसल के

अवशेष से बना बाण धनुष पर चढ़ाये हुये वहां आगमन किया। हे द्विजोत्तमगण! उसने भगवान् के तलवे को मृगाकार देखकर उसे अपने बाण से विद्ध कर दिया। पास आने पर उस जरा व्याध ने वहां प्रभु को चतुर्बाहु तथा नराकार देख कर प्रणाम करते हुये कहा—"प्रसन्न हों, प्रसन्न हों।" वह पुनः कहने लगा "कृपा करिये! मैने हरिण जानकर यह कार्य किया है। मुझे क्षमा करिये। मैं स्वकृत इस पाप से दग्ध हो रहा हूं। मुझे पुनः और दग्ध मत करिये"।।१-८।।

व्यास उवाच

ततस्तं भगवानाह नास्ति ते भयमण्वपि। गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध स्वर्गेश्वरास्पदम्।।९।।

व्यासदेव कहते हैं—कृष्ण ने उस व्याध से कहा—"तुम तनिक भय मत करो। मेरी कृपा से तुम स्वर्ग गमन करो"।।९।।

व्यास उवाच

विमानमागतं सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम्। आरुह्य प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः।।१०।।
गते तस्मिन्स भगवान्संयोज्याऽऽत्मानमात्मनि। ब्रह्मभूतेव्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले।।११।।
अजन्मन्यजरेऽनाशिन्यप्रमेयेऽखिलात्मनि। त्यक्त्वा स मानुषं देहमवाप त्रिवधां गतिम्।।१२।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे श्रीकृष्णचरिते कृष्णमानुषोत्सर्गकथनं नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२११।।

व्यासदेव कहते हैं—जब कृष्ण यह वाक्य कह रहे थे, तभी वहां तत्काल एक विमान आ गया। वह व्याध भगवान् की कृपा से उस पर आरूढ़ होकर स्वर्ग चला गया। उस व्याध के स्वर्गगमन के पश्चात् कृष्ण तब ब्रह्मभूत, अव्यय, अचिन्त्य, अमल, अजन्मा, अजर, अविनाशी, अप्रमेय, अखिलात्मा आत्मा में आत्मा का संयोग करके मानव देह परित्याग पूर्वक दैवी गति को प्राप्त हो गये!।।१०-१२।।

।।एकादशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

रुक्मिणी आदि का परलोकगमन

व्यास उवाच

अर्जुनोऽपि तदाऽन्विष्य कृष्णरामकलेवरे। संस्कारं लम्भयामास तथाऽन्येषामनुक्रमात्।।१।।
अष्टौ महिष्यः कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु याः। उपगृह्य हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम्।।२।।

रेवती चैव रामस्य देहमाश्लिष्य सत्तमाः। विवेश ज्वलितं वह्निं तत्सङ्गाह्लाशीतलम्॥३॥
उग्रसेनस्तु तच्छ्रुत्वा तथैवाऽऽनकदुन्दुभिः। देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम्॥४॥

व्यासदेव कहते हैं—उस समय अर्जुन ने अन्वेषण करके कृष्ण, बलराम तथा अन्य सभी का मृत देह संग्रह किया तथा उनका दाह संस्कार सविधि सम्पन्न किया। पूर्व में मैंने रुक्मिणी आदि जिन प्रमुख आठ कृष्णपत्नियों का वर्णन किया था, वे सभी कृष्ण के शरीर का आलिंगन किये हुये अग्नि में प्रविष्ट हो गयीं। हे सत्तमवृन्द! उधर रेवती ने बलभद्र के मृत देह का आलिंगन किये हुये उनके शरीर के साथ ज्वलन्त अग्नि में सानन्द प्रवेश किया। उग्रसेन, वसुदेव, देवकी तथा रोहिणी ने यह विवरण सुनकर अग्नि में प्रवेश कर लिया।।१-४।।

ततोऽर्जुनः प्रेतकार्यं कृत्वा तेषां यथाविधि। निश्चक्राम जनं सर्वं गृहीत्वा वज्रमेव च॥५॥

द्वारवत्या विनिष्क्रान्ताः कृष्णपत्न्यः सहस्रशः।
वज्रं जनं च कौन्तेयः पालयञ्शनकैर्ययौ॥६॥

सभा सुधर्मा कृष्णेन मर्त्यलोके समाहृता। स्वर्गं जगाम भो विप्राः पारिजातश्च पादपः॥७॥

यस्मिन्दिने हरिर्यातो दिवं सत्यज्य मेदिनीम्।
तस्मिन्दिनेऽवतीर्णोऽयं कालकायः कलिः किल॥८॥

प्लावयामास तां शून्यां द्वारकां च महोदधिः। यदुश्रेष्ठगृहं त्वेकं नाऽऽप्लावयत सागरः॥९॥

तत्पश्चात् अर्जुन ने इन सबका और्ध्वदैहिक प्रेतकार्य यथाविधि सम्पन्न किया और द्वारकावासी जनगण तथा कुमार वज्र को साथ लेकर वे द्वारका से बाहर निकल पड़े। कुन्तिपुत्र अर्जुन द्वारका से निकलकर वहां की जनता तथा सहस्रों कृष्णपत्नियों की रक्षा करते धीरे-धीरे चल रहे थे। कृष्ण मृत्युलोक में जो सुधर्मा सभा तथा कल्पवृक्ष पारिजात लाये थे, वह सब स्वर्ग लौट गया। जिस दिन श्रीहरि ने पृथिवी त्याग कर स्वर्ग प्रस्थान किया था, तभी उसी समय से कलि पृथिवी पर अवतीर्ण हो गया। सागर ने भी उस जनशून्य द्वारका को जलप्लावित कर दिया। एकमात्र यदुश्रेष्ठ कृष्ण का गृह (मन्दिर) उसने जलप्लावित नहीं किया।।५-९।।

नातिक्रामति भो विप्रास्तदद्यापि महोदधिः।
नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्केशवो यतः॥१०॥

तदतीव महापुण्यं सर्वपातकनाशनम्। विष्णुक्रीडान्वितं स्थानं दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते॥११॥
पार्थः पञ्चनदे देशे बहुधान्यधनान्विते। चकार वासं सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तमाः॥१२॥

ततो लोभः समभवन्पार्थेनैकेन धन्विना।
दृष्ट्व स्त्रियो नीयमाना दस्यूनां निहतेश्वराः॥१३॥

ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः। आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्यात्यन्तदुर्मदाः॥१४॥

भगवान् केशव वहां नित्य सन्निहित रहते हैं। इसी कारण सागर ने उसका अतिक्रमण नहीं किया था। वह विष्णुक्रीड़ान्वित स्थान सर्वपातकहारी तथा अतीव पुण्यमय है। उसके दर्शन से व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता

है। हे मुनिसत्तमगण! तदनन्तर पार्थ अर्जुन ने प्रभूत धान्य-धन समन्वित पंचनद प्रदेश में उन द्वारकावासी लोगों का वासस्थान निर्णीत किया। एकमात्र धनुर्धारी अर्जुन को अब पतिहीन हो गई हजारों स्त्रियों के साथ जाते देखकर दस्युओं को लोभ हो गया। उन अतीव पापकर्मा आभीर दस्युगण ने लोभ के वशीभूत चित्त हो जाने के कारण मन्त्रणा किया।।१०-१४।।

आभीरा ऊचुः

अयमेकोऽर्जुनो धन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम्।
नयत्यस्मानतिक्रम्य धिगेतत्क्रियतां बलम्॥१५॥
हत्वा गर्वसामरूढो भीष्मद्रोजयद्रथान्। कर्णादींश्च न जानाति बलं ग्रामनिवासिनाम्॥१६॥
बलज्येष्ठन्नरानन्यान्ग्राम्यांश्चैव विशेषतः। सर्वानेवावजानाति किं बो बहुभिरुत्तरैः॥१७॥

आभीरगण कहते हैं—अकेला अर्जुन धनुष लिये हुये हमारी अवज्ञा करता पतिहीन अनेक स्त्रियों को ले जा रहा है। हमें धिक्कार है। अब हम बल प्रदर्शित करें। इसने भीष्म, द्रोण, जयद्रथ, कर्ण प्रभृति का वध किया था। इस कारण घमण्ड में भर गया है। यह अर्जुन बली लोगों की, ग्रामीणों की तथा सबकी अवहेलना करता है। अब हमें अधिक उत्तर-प्रत्युत्तर की क्या आवश्यकता?।।१५-१७।।

व्यास उवाच

ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्टहारिणः। सहस्रशोऽभ्यधावन्त तं जनं निहतेश्वरम्।
ततो निवृत्तः कौन्तेय प्राहाऽऽभीरान्हसन्निव॥१८॥

व्यासदेव कहते हैं—एवंविध वे हजारों दस्यु मन्त्रणा करने के पश्चात् लाठी, ढेला लेकर उन विधवा अबलाओं के पीछे दौड़ पड़े। यह देखकर कुन्तिपुत्र ने हंसते हुये उनसे कहा—।।१८।।

अर्जुन उवाच

निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदीतो न मुमूर्षवः॥१९॥

अर्जुन कहते हैं—हे अधर्मियों! यदि मरण नहीं चाहते, तब इस कार्य से निवृत्त हो जाओ।।१९।।

व्यास उवाच

अवज्ञाय वचस्तस्य जगृहुस्ते तदा धनम्। स्त्रीजनं चापि कौन्तेयाद्विष्वक्सेनपरिग्रहम्॥२०॥
ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं युधि। आरोपयितुमारेभे न शशाक स वीर्यवान्॥२१॥
चकार सज्जं कृच्छ्रात्तु तदभूच्छिथिलं पुनः।
सस्मार तथाऽस्त्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः॥२२॥
शरान्मुमोच चैतेषु पार्थः शेषान्स हर्षितः। न भेदं ते परं चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्वना॥२३॥
वह्निना चाक्षया दत्ता शरास्तेऽपि क्षयं ययुः। युध्यतः सह गोपालैरर्जुनस्याभवत्क्षयः॥२४॥

व्यासदेव कहते हैं—दस्युगण ने अर्जुन की चेतावनी की अवहेलना करके उन कुन्तिपुत्र के पास स्थित

उन कृष्णपत्नी स्त्रियों का तथा धन का हरण करने लगे। तब महावीर अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष उठाया तथा उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयत्न करने लगे, तथापि वे सफल नहीं हो सके। उन पाण्डव ने यद्यपि अत्यन्त कष्टमय श्रम द्वारा प्रत्यंचा चढ़ाया, तथापि वह पुनः खुल गयी। उनके द्वारा चिन्तन करने पर भी उन्हें दिव्यास्त्रों का स्मरण नहीं हो सका। तदनन्तर पार्थ अतीव कष्ट पूर्वक बाण चलाने लगे, तथापि वे बाण शत्रुओं के शरीर का भेदन नहीं कर सके! जब अर्जुन उन आभीरों से युद्ध कर रहे थे, तभी अग्नि प्रदत्त उनका अक्षय तरकस भी बाण रहित हो गया।।२०-२४।।

अचिन्तयत्तु कौन्तेय कृष्णस्यैव हि तद्बलम्।
यन्मया शरसङ्घातैः सबला भूभृतो जिताः॥२५॥
मिषतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः।
अपाकृष्यन्त चाऽऽभीरैः कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः॥२६॥
ततः शरेषु क्षीणेषु धनुष्कोट्या धनञ्जयः। जघान दस्यूंस्ते चास्य प्रहाराञ्जहसुर्द्विजाः॥२७॥
पश्यतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः।
जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः समन्तान्मुनिसत्तमाः॥२८॥
ततः स दुःखितो जिष्णुः कष्टं कष्टमिति ब्रुवन्।
अहो भगवता तेन मुक्तोऽस्मीति रुरोद वै॥२९॥

यह देखकर अर्जुन ने विचार किया कि मैंने जिन राजाओं को अपने शस्त्र प्रहार से जीता था, वह कृष्ण का ही सामर्थ्य था। तब पाण्डुपुत्रों के समक्ष ही वे दस्यु आभीर लोग उन स्त्रियों को खींच कर ले जाने लगे। कोई स्त्री तो स्वेच्छा से चली गयी। हे द्विजगण! सभी बाणों के क्षीण हो जाने पर अर्जुन धनुष के सिरे से ही दस्युओं पर प्रहार करने लगे। इससे वे दस्यु हंसने लगे। हे मुनिसत्तमगण! वे म्लेच्छ दस्युगण पार्थ के सामने से ही वृष्णि तथा अन्धकों की उन श्रेष्ठ स्त्रियों का हरण करके ले गये। इसको देखकर जिष्णु अर्जुन दुःखी होकर कहने लगे—"क्या कष्ट है! अहो! मैं भगवान् द्वारा त्यक्त हो गया।" वे तदनन्तर यही प्रलाप करते रोने लगे।।२५-२९।।

अर्जुन उवाच

तद्धनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः। सर्वमेकपदे नष्टं दानमश्रोत्रिये यथा॥३०॥
अहो चाति बलं दैवं विना तेन महात्मना। यदसामर्थ्ययुक्तोऽहं नीचैर्नीतः पराभवम्॥३१॥
तौ बाहू स च मे मुष्टिः स्थानं तत्सोऽस्मि चार्जुनः।
पुण्येनेव विना तेन गतं सर्वमसारताम्॥३२॥
ममार्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृतं ध्रुवम्। विना तेन यदाभीरैर्जितोऽहं कथमन्यथा॥३३॥

अर्जुन कहते हैं—मेरा वही धनुष है, वही अस्त्र है, वही रथ तथा अश्व हैं, ये सभी उसी प्रकार वृथा हो गये, जैसे वेदविहीन ब्राह्मण को प्रदत्त दान व्यर्थ होता है। दैव अत्यन्त बली है। उन महात्मा (कृष्ण) के न

रहने पर मैं सामर्थ्य रहित होकर नीचों द्वारा परास्त किया गया। मेरे दोनों बाहु, मुष्टि तथा स्थान वही है। मैं वही अर्जुन हूं। तथापि उन कृष्ण के अभाव में यह सब उसी प्रकार व्यर्थ हो गया जैसे पुण्य रहित हो जाने पर सभी क्रियायें व्यर्थ हो जाती हैं। मुझमें जो अर्जुनत्व था, भीम में जो भीमत्व था, वह सब कृष्ण प्रदत्त था। नहीं तो उनके न रहने पर मैं इन आभीरों द्वारा परास्त क्यों होता?।।३०-३३।।

व्यास उवाच

इत्थं वदन्ययौ निष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम्। चकार तत्र राजानं वज्रं यादवनन्दनम्।।३४।।
स ददर्श तते व्यासं फाल्गुनः काननाश्रयम्। तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादयत्।।३५।।
तं वन्दमानं चरणाववलोक्य सुनिश्चितम्। उवाच पार्थ विच्छायः कथमत्यन्तमीदृशः।।३६।।
अजारजोऽनुगमनं ब्रह्महत्याऽथवा कृता। जयाशाभङ्गदुःखी वा भ्रष्टच्छायोऽसि साम्प्रतम्।।३७।।
सान्तानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः। अगम्यस्त्रीरतिर्वाऽपि तेनासि विगतप्रभः।।३८।।

व्यासदेव कहते हैं—जिष्णु (अर्जुन) यह कहते हुये उत्तम पुरी इन्द्रप्रस्थ पहुंच गये। वहां उन्होंने यादवनन्दन वज्र को राज्यपद पर अभिषिक्त कर दिया। तदनन्तर एक बार उन्होंने वनवासी वेदव्यास को देखा। उनके निकट जाकर अर्जुन ने विनय पूर्वक उनका अभिवादन भी किया। व्यास ने चरणवन्दना तत्पर अर्जुन को अतीव श्रीहीन देखकर उनसे पूछा कि "तुम ऐसे श्रीहीन क्यों हो गये? बकरियों के चलने से जो धूल उड़ती है, वह तुम पर आ पड़ी है? (इस धूल को पापमय मानते हैं)। अथवा तुमने ब्राह्मणवध किया है? अथवा विजय की आशा भंग हो गयी है? क्या तुम निराश्रय हो? अथवा कुछ याचना करने पर पुत्रादि द्वारा निकाले गये हो? अथवा अगम्या नारी का गमन करने से प्रभाहीन हो रहे हो?।।३४-३८।।

भुङ्क्ते प्रदाय विप्रेभ्यो मिष्टमेकमथो भवान्। किं वा कृपणवित्तानि हृतानि भवताऽर्जुन।।३९।।
कच्चिन्नसूर्यवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्जुन। दुष्टचक्षुर्हतो वाऽपि निःश्रीकः कथमन्यथा।।४०।।
स्पृष्टो नखाम्भसा वाऽपि घटाम्भःप्रोक्षितोऽपि वा।
तेनातीवासि विच्छायो न्यूनैर्वा युधि निर्जितः।।४१।।

अथवा तुमने ब्राह्मणों को प्रदान किये बिना एकाकी मिष्ठान्न खाया है? हे अर्जुन! क्या तुमने दरिद्र के वित्त का हरण किया है? हे अर्जुन! क्या तुम सूर्य से उत्तप्त वायु में तो नहीं पड़ गये? क्या तुम दूषित दृष्टि पड़ जाने से तो ऐसे निष्प्रभ नहीं हो गये? तुम श्रीहीन कैसे हो गये? क्या तुम नाखून से स्पर्शित जल द्वारा प्रोक्षित तो नहीं हो गये? अथवा ऐसे नखस्पर्शित जलयुक्त घट से स्नान तो नहीं किया? अथवा नीचों द्वारा तुम जीत लिये गये?।।३९-४१।।

व्यास उवाच

ततः पार्थो विनिःश्वस्य श्रूयतां भगवन्निति। प्रोक्तो यथावदाचष्ट विप्रा आत्मपराभवम्।।४२।।

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणों! यह सुनकर पार्थ अर्जुन ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"हे प्रभो! सुनिये।" तब अर्जुन ने व्यास से अपनी पराजय का संवाद कहा—।।४२।।

अर्जुन उवाच

यद्बलं यच्च नस्तेजो यद्वीर्यं यत्पराक्रमः।
या श्रीश्छाया च नः सोऽस्मान्परित्यज्य हरिर्गतः॥४३॥
इतरेणेव महता स्मितपूर्वभिभाषिणा। हीना वयं मुने तेन जातास्तृणमया इव॥४४॥
अस्त्राणां सायकानां च गाण्डीवस्य तथा मम।
सारता याऽभवन्मूर्ता स गतः पुरुषोत्तमः॥४५॥
यस्यावलोकनादस्याञ्श्रीर्जयः सम्पदुन्नतिः।
न तत्याज स गोविन्दस्त्यक्त्वाऽस्मान्भगवान्गतः॥४६॥
भीष्मद्रोणाङ्गराजाद्यास्तथा दुर्योधनादयः। यत्प्रभावेण निर्दग्धाः स कृष्णस्त्यक्तवान्भुवम्॥४७॥

अर्जुन कहते हैं—मेरे जो बल, पराक्रम, तेज, वीर्य, ऐश्वर्य, श्री थे, उन श्रीहरि ने मेरा त्याग कर दिया। हे मुनिवर! वे स्मित हास्य के साथ बात करने वाले महात्मा हरि थे। उन्होंने तो पराये व्यक्ति की तरह मेरा त्याग कर दिया, इससे मैं तृणवत् हो गया। वे पुरुषोत्तम देव ही मेरे अस्त्र, बाण, गाण्डीव के सार एवं मूर्तत्व थे। वे चले गये। जिनके दर्शन मात्र से श्री, जय, सम्पत्ति, उन्नति हमारा त्याग नहीं करती थी, वे भगवान् गोविन्द मेरा त्याग करके चले गये। रणभूमि में जिनके प्रभाव से भीष्म, द्रोण, अंगपति कर्ण तथा दुर्योधनादि निर्दग्ध हो गये थे, उन कृष्ण ने भूतल त्याग दिया!।।४३-४७।।

निर्यौवना हतश्रीका भ्रष्टच्छायेव मे मही। विभाति तात नैकोऽहं विरहे तस्य चक्रिणः॥४८॥
यस्यानुभावाद्भीष्माद्यैर्मय्यग्नौ शलभायितम्। विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरस्मि निर्जितः॥४९॥
गाण्डीवं त्रिषु लोकेषु ख्यातं यदनुभावतः।
मम तेन विनाऽऽभीरैर्लगुडैस्तु तिरस्कृतम्॥५०॥
स्त्रीसहस्राण्यनेकानि ह्यनाथानि महामुने। यततो मम नीतानि दस्युभिर्लगुडायुधैः॥५१॥
आनीयमानमाभीरैः सर्वं कृष्णावरोधनम्। हृतं यष्टिप्रहरणैः परिभूय बलं मम॥५२॥
निःश्रीकता न मे चित्रं यज्जीवामि तदद्भुतम्।
नीचावमानपङ्काङ्की निर्लज्जोऽस्मि पितामह॥५३॥

उनके अभाव में मुझे यह धरती विगतयौवना, श्रीहीन एवं कान्तिहीन प्रतीत हो रही है। जिन कृष्ण के प्रभाव प्रताप से भीष्मादि परमवीर मुझ अग्नि रूप में पतंगों जैसे पतित हो गये थे, उन कृष्ण के न रहने पर ग्वालों से मेरी पराजय हो गयी। उनके रहने पर मेरा यह गाण्डीव तीनों लोकों में प्रसिद्ध था, वही गाण्डीव कृष्ण के न रहने पर आभीर दस्युओं की लाठी से तिरस्कृत हो गया। हे महामुनि! मैंने अत्यन्त प्रयत्न का प्रयास किया, तथापि वे सहस्रों अनाथ स्त्रियां मात्र लाठी लिये तस्करों द्वारा हर ली गयीं। मात्र लाठी चलाने वाले आभीर दस्युओं ने मेरे बल को परिभूत किया तथा कृष्ण परिजन स्त्रियों को हर ले गये। हे पितामह! मेरी श्रीहीनता कोई विचित्र बात नहीं है। यह तो मेरी महान् निर्लज्जता है, जो नीचों द्वारा अपमानित होकर भी जीवित हूं। यही आश्चर्य है!।।४८-५३।।

व्यास उवाच

श्रुत्वाऽहं तस्य तद्वाक्यमब्रवं द्विजसत्तमाः।
दुःखितस्य च दीनस्य पाण्डवस्य महात्मनः॥५४॥
अलं ते व्रीडया पार्थ न त्वं शोचितुमर्हसि। अवेहि सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी॥५५॥
कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव।
कालमूलमिदं ज्ञात्वा कुरु स्थैर्यमतोऽर्जुन॥५६॥
नद्यः समुद्रा गिरयः सकला च वसुन्धरा। देवा मनुष्याः पशवस्तरवश्च सरीसृपाः॥५७॥
सृष्टा कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम्।
कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वाशममवाप्नुहि॥५८॥
यथाऽऽत्थ कृष्णमाहात्म्यं तत्तथैव धनञ्जय।
भारावतारकार्यार्थमवतीर्णः स मेदिनीम्॥५९॥
भाराक्रान्ता धरा याता देवानां सन्निधौ पुरा।
तदर्थमवतीर्णोऽसौ कामरूपी जनार्दनः॥६०॥
तच्च निष्पादितं कार्यमशेषा भूभृतो हताः।
वृष्ण्यन्धककुलं सर्वं तथा पार्थोपसंहृतम्॥६१॥
न किञ्चिदन्यत्कर्तव्यमस्य भूमितलेऽर्जुन।
ततो गतः स भगवान्कृतकृत्यो यथेच्छया॥६२॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजप्रवरगण! उस समय मैं उन दुःखी, दीन महात्मा पाण्डव का विलाप सुनकर उनसे कहने लगा "हे पार्थ! तुम लज्जित क्यों हो रहे हो? तुम्हारा यह शोक प्रकाशन उचित नहीं है। सभी प्राणीगण में यही काल की गति है। यह जानो। हे पाण्डव! काल ही सबके उदय एवं क्षय का कारण है। हे अर्जुन! यह समझ कर धैर्य धारण करो। नदियां, समुद्र, पर्वत, समग्र धरती, देवता, मानव, पशु, वृक्ष, सरीसृपादि सब कुछ काल से ही सृष्ट होते हैं तथा काल द्वारा क्षयीभूत हो जाते हैं। तुम इन सभी को कालात्मक जानकर शान्तिलाभ करो। हे धनंजय! तुमने जिस प्रकार से कृष्ण की महिमा का वर्णन किया है, वे उसी प्रकार हैं। वे पृथिवी का भार उतारने हेतु पृथिवी पर अवतीर्ण हुये थे। पूर्वकाल में धरती महाभार से आक्रान्त होकर देवगण के पास गयी थी। ये कामरूपी जनार्दन (इच्छानुरूप वेषधारी = कामरूपी) उसी लिये पृथिवी पर अवतीर्ण हुये। हे पार्थ! उनका कार्य सम्पूर्ण हो गया। तभी भूभार हरण हो गया। यहां तक कि सम्पूर्ण वृष्णिं तथा अन्धक कुल तक संहत हो गया! हे अर्जुन! अब भूतल पर उनका कोई भी कर्त्तव्य कार्य बाकी नहीं था। अतः वे प्रभु कृतार्थ होकर स्वेच्छा पूर्वक चले गये।।५४-६२।।

सृष्टिं सर्गे करोत्येष देवदेवः स्थितिं स्थितौ।
अन्ते ताप (लयं) समर्थोऽयं साम्प्रतं वै यथा कृतम्॥६३॥

तस्मात्पार्थ न संतापस्त्वया कार्यः पराभवात्।
भवन्ति भवकालेषु पुरुषाणां पराक्रमाः॥६४॥
यतस्त्वयैकेन हता भीष्मद्रोणादयो नृपाः।
तेषामर्जुन कालोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः॥६५॥
विष्णोस्तस्यानुभावेन यथा तेषां पराभवः।
त्वत्तस्तथैव भवतो दस्युभ्योऽन्ते तदुद्भवः॥६६॥
स देवोऽन्यशरीराणि समाविश्य जगत्स्थितिम्।
करोति सर्वभूतानां नाशं चान्ते जगत्पतिः॥६७॥

ये सृष्टिकाल में सृष्टि, स्थितिकाल में पालन तथा सर्वान्त में प्रलयकालीन संहार कार्य सम्पन्न करते हैं। सम्प्रति यही उन्होंने किया है। हे पार्थ! तुम अपनी पराजय का सन्ताप मत करो। पुरुषगण के अभ्युदय काल में पराक्रम होता है। हे अर्जुन! तुमने जो अकेले भीष्म, द्रोण तथा राजाओं का वध किया, क्या यह कालजन्य न्यूनाभिभव नहीं था? जैसे विष्णु के प्रभाव से तुम्हारे द्वारा उन वीरों को पराजित किया गया, उसी प्रकार अन्त में दस्युओं द्वारा तुम्हारी पराजय भी वही है। यह सब उन प्रभु के प्रभाव से घटित होता रहा है। वह प्रभु अन्य शरीरों में आविष्ट होकर जगत् की स्थिति सम्पन्न करके अन्त में इसका नाश करते हैं।।६३-६७।।

भवोद्भवे च कौन्तेय सहायस्ते जनार्दनः।
भवान्ते त्वद्विपक्षास्ते केशवेनावलोकिताः॥६८॥
कः श्रद्दध्यात्सगाङ्गेयान्हन्यास्त्वं सर्वकौरवान्।
आभीरेभ्यश्च भवतः कः श्रद्दध्यात्पराभवम्॥६९॥
पार्थैतत्सर्वभूतेषु हरेर्लीलाविचेष्टितम्। त्वया यत्कौरवा ध्वस्ता यदाभीरैर्भवाञ्जितः॥७०॥
गृहीता दस्युभिर्यच्च रक्षिता भवता स्त्रियः।
तदप्यहं यथावृत्तं कथयामि तवार्जुन॥७१॥

हे कौन्तेय! वे जनार्दन अभ्युदय काल में तुम्हारे सहायक थे। अभ्युदय के अन्त में तुम्हारे विपक्षी केशव द्वारा अनुगृहीत किये गये। इस बात को कौन मानेगा कि तुमने गंगापुत्र भीष्म सहित समस्त कौरवों का वध किया? इस बात में कौन आस्था स्थापित करेगा कि आभीर दस्युओं ने तुमको पराजित किया? हे पार्थ! तुम्हारे द्वारा जो कौरवों को विध्वस्त किया गया तथा तुम जो आभीर दस्युओं से पराजित हो गये, यह हरि का खेल है। वे सभी प्राणीगण के साथ ऐसा ही करते हैं। हे अर्जुन! तुम्हारे द्वारा रक्षित स्त्रियों को जो दस्यु लोग हरण करके ले गये, मैं उसका भी कारण कहता हूं। श्रवण करो।।६८-७१।।

अष्टावक्रः पुरा विप्र उदवासरतोऽभवत्। बहून्वर्षगणान्पार्थ गृणब्रह्म सनातनम्॥७२॥
जितेष्वसुरसङ्घेषु मेरुपृष्ठे महोत्सवः। बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्तं सुरस्त्रियः॥७३॥
रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च शतशोऽथ सहस्त्रशः। तुष्टुवुस्तं महात्मानं प्रशशंसुश्च पाण्डव॥७४॥

आकण्ठमग्नं सलिले जटाभारधरं मुनिम्। विनयावनताश्चैव प्रणेमुः स्तोत्रतत्पराः॥७५॥
यथा यथा प्रसन्नोभूत्तुष्टुवुस्तं तथा तथा। सर्वास्ताः कौरवश्रेष्ठ वरिष्ठं तं द्विजन्मनाम्॥७६॥

हे पार्थ! पूर्वकाल में विप्र अष्टावक्र सनातन परमेश्वर की आराधना करते अनेक वर्ष उपवास परायण रहे थे। एक बार असुरों को पराजित करके देवगण ने मेरु पर्वत पर महान् उत्सव आयोजित किया। इस उत्सव में जाते समय देवांगनाओं ने इन महर्षि को देखा। हे पाण्डव! उस समय रंभा, तिलोत्तमा आदि हजारों-हजार देवांगनाओं ने आकण्ठ जल में खड़े जटाभार युक्त उन महात्मा को तपःश्चरण करते देखकर उनको प्रणाम किया तथा उनकी प्रशंसा तथा उनकी स्तुति करने लगीं। हे कौरवश्रेष्ठ! वे उन द्विजप्रवर मुनि का उसी प्रकार से स्तव कर रही थीं, जिससे वे महर्षि प्रसन्न हो जायें।।७२-७६।।

अष्टावक्र उवाच

प्रसन्नोऽहं महाभागा भवतीनां यदिष्यते।
मत्तस्तद्विरयतां सर्वं प्रदास्याम्यपि दुर्लभम्॥७७॥

अष्टावक्र कहते हैं—हे महाभाग! मैं तुम लोगों के ऊपर प्रसन्न हो गया। यथेच्छ वर मांगो। दुर्लभ होने पर भी मैं वह प्रदान करूंगा।।७७।।

व्यास उवाच

रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च दिव्याश्चाप्सरसोऽब्रुवन्॥७८॥

व्यासदेव कहते हैं—तब रम्भा-तिलोत्तमा प्रभृति दिव्य अप्सरागण कहने लगीं।।७८।।

अप्सरस ऊचुः

प्रसन्ने त्वय्यसंप्राप्तं किमस्माकमिति द्विजाः॥७९॥
इतरास्त्वब्रुवन्विप्र प्रसन्नो भगवन्यदि। तदिच्छामः पतिं प्राप्तुं विप्रेन्द्र पुरुषोत्तमम्॥८०॥

अप्सरागण कहती हैं—"जब आप प्रसन्न हो गये, तब हमारे लिये अप्राप्त क्या रह गया?" तब एक अप्सरा ने कहा—"हे भगवान्, विप्रेन्द्र! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं, तब हमारी कामना पुरुषोत्तम को पतिरूपेण प्राप्त करने की है"।।७९-८०।।

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा उत्ततार जलान्मुनिः। तमुत्तीर्णं च ददृशुर्विरूपं वक्रमष्टधा॥८१॥
तं दृष्ट्वा गूहमानानां यासां हासः स्फुटोऽभवत्।
ताः शशाप मुनिः कोपमवाप्य कुरुनन्दनः॥८२॥

जब उन वराङ्गनाओं ने अष्टावक्र मुनि से इस प्रकार से कहा—"यही होगा" तब वे जल से बाहर निकले। हे कुरुनन्दन! उन जल से निकले मुनि के आठ अंग वक्र तथा विकृत आकार वाले देख कर अप्सरायें हंसने लगीं। इससे मुनि ने क्रोधित होकर उनको शाप प्रदान किया।।८१-८२।।

अष्टावक्र उवाच

यस्माद्विरूपरूपं मां मत्वा हासावमानना।
भवतीभिः कृता तस्मादेष शापं ददामि वः॥८३॥
मत्प्रसादेन भर्तारं लब्ध्वा तु पुरूषोत्तमम्। मच्छापोपहताः सर्वा दस्युहस्तं गमिष्यथ॥८४॥

ऋषि अष्टावक्र कहते हैं—तुम सबने मेरी विकृत आकृति का अवलोकन करके हास्य किया है। इस प्रकार मेरी अवमानना तुम लोगों द्वारा की गयी है। अतः मेरा शाप है कि यद्यपि तुम लोग मेरी कृपा से पुरुषोत्तम को पतिरूपेण प्राप्त करोगी, तथापि मेरे शाप के कारण तुम सबका हरण दस्युओं द्वारा होगा।।८३-८४।।

व्यास उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य मुनिस्ताभिः प्रसादितः। पुनः सुरेन्द्रलोकं वै प्राह भूयो गमिष्यथ॥८५॥
एवं तस्य मुनेः शापादष्टावक्रस्य केशवम्।
भर्तारं प्राप्य ताः प्राप्ता दस्युहस्तं वराङ्गनाः॥८६॥
तत्त्वया नात्र कर्तव्यः शोकोऽल्पोऽपि हि पाण्डव।
तेनैवाखिलनाथेन सर्वं तदुपसंहृतम्॥८७॥
भवतां चोपसंहारमासन्नं तेन कुर्वता। बलं तेजस्तथा वीर्यं महात्म्यं चोपसंहृतम्॥८८॥
जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः।
विप्रयोगावसानं तु संयोगः संचयः क्षा (यात्क्ष) यः॥८९॥
विज्ञाय न बुधाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये।
तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृशाः॥९०॥

व्यासदेव कहते हैं—यह सुनकर वे सभी मुनिराज को प्रसन्न करने लगीं। तब मुनि ने पुनः कहा कि "तदनन्तर तुम लोग पुनः स्वर्ग जाओगी।" वे ही वरांङ्गनायें अष्टावक्र मुनि के शाप द्वारा केशव को पतिरूपेण पाने के पश्चात् दस्युओं द्वारा अपहृत की गयीं। हे पाण्डव! इस सम्बन्ध में तुम अल्पमात्र भी शोक मत करो। वे अखिलेश्वर ही सब का संहार करते हैं। उपसंहार करने वाले केशव द्वारा तुम लोगों के जीवन उपसंहार का समय निकटस्थ है। जन्म लेने वाले की मृत्यु तो निश्चित ही है। उन्नति के अनन्तर पतन भी निश्चित तथ्य है। संयोग भी वियोगावह होता है। संचय भी क्षयपूर्ण होता है। यह जानकर विज्ञ लोग शोक किंवा हर्ष नहीं करते। अन्य लोग भी ऐसे विज्ञजन का अनुशीलन करने से शोक रहित हो जाते हैं।।८५-९०।।

तस्मात्त्वया नरश्रेष्ठ ज्ञात्वैतद्भ्रातृभिः सह।
परित्यज्याखिलं राज्यं गन्तव्यं तपसे वनम्॥९१॥
तद्गच्छ धर्मराजाय निवेद्यैतद्वचो मम। परश्वो भ्रातृभिः सार्धं गतिं वीर यथा कुरू॥९२॥

हे नरश्रेष्ठ अर्जुन! यह जान कर अब तुम भाईयों के साथ समस्त राज्य का त्याग करके तपस्यार्थ वनगमन करो। यही तुम्हारा कर्त्तव्य है। हे वीर! तुम जाकर मेरा कथन धर्मराज युधिष्ठिर से कहना कि भाईयों के साथ वे परसों मेरे उपदेशानुसार प्रस्थान करें।।९१-९२।।

व्यास उवाच

इत्युक्तो धर्मराजं तु समभ्येत्य तथोक्तवान्। दृष्टं चैवानुभूतं वा कथितं तदशेषतः॥९३॥

व्यासवाक्यं च ते सर्वे श्रुत्वाऽर्जुनसमीरितम्।

राज्ये परीक्षितं कृत्वा ययुः पाण्डुसुता वनम्॥९४॥

इत्येवं वो मुनिश्रेष्ठा विस्तरेण मयोदितम्। जातस्य च यदोर्वंशे वासुदेवस्य चेष्टितम्॥९५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरितसमाप्तिकथनं नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१२॥

व्यासदेव कहते हैं—तब अर्जुन धर्मराज के पास गये तथा उन्होंने जो देखा था, पराजयादि का अनुभव किया था तथा जो व्यास ने कहा था, वह सब युधिष्ठिर से कहा। मेरा उपदेश सुनकर पाण्डुपुत्रों ने परीक्षित को राज्यभार देकर वनगमन कर दिया!। हे मुनिप्रवरवृन्द! मैंने इस प्रकार आप लोगों से यदुवंशोत्पन्न वासुदेव की लीला कथा कह दिया॥९३-९५॥

॥द्वादशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त॥

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

वराहावतार वर्णन

मुनयः ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यमद्भुतं चातिमानुषम्।

रामस्य च मुनिश्रेष्ठ त्वयोक्तं भुवि दुर्लभम्॥१॥

न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तो भगवत्कथाम्।

तस्माद्ब्रूहि महाभाग भूयो देवस्य चेष्टितम्॥२॥

प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः। सतां कथयतामेष वराह इति नः श्रुतम्॥३॥

न जानीमोऽस्य चरितं न विधिं न च विस्तरम्। न कर्मगुणसद्भावं न हेतुत्वमनीषितम्॥४॥

किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः का च देवता।

किमाचारप्रभावो वा किंवा तेन तदा कृतम्॥५॥

यज्ञार्थे समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम्। महावराहचरितं सर्वलोकसुखावहम्॥६॥

मुनिगण कहते हैं—अहो! मुनिश्रेष्ठ! आपने कृष्ण-बलराम का जगतदुर्लभ अद्‌भुद् अतिमानुष माहात्म्य

कहा। भगवत् कृपा के सम्बन्ध में सुनने से हमारी आकांक्षा निवृत्त नहीं हो रही है। अतएव हे महाभाग! पुनः उन देव की कार्यावलि का वर्णन करिये। पुराणों में अमित तेजस्वी विष्णु का वराह नामक एक प्रादुर्भाव भी कहा गया है। हमने साधुगण के मुख से ऐसा सुना अवश्य है, तथापि उनका चरित, विधान, विस्तार, कर्म, गुण, सद्भाव, हेतुत्व नहीं जानते। उन वाराहदेव की प्रकृत मूर्त्ति क्या है? उनका देवत्व किस प्रकार का है? उनका आचार-प्रभाव क्या है? उन्होंने क्या किया था? यज्ञार्थ जब द्विजाति वाले एकत्रित, समवेत थे, उस समय क्या हुआ? यह महावराह वृत्तान्त सर्वलोक समूह हेतु सुखप्रद है।।१-६।।

यथा नारायणो ब्रह्मन्वाराहं रूपमास्थितः। दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः।।७।।
विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः। श्रोतुं नो वर्तते बुद्धिर्हरेः कृष्णस्य धीमतः।।८।।
कर्मणामानुपूर्व्या च प्रादुर्भावाश्च ये विभोः।
या वाऽस्य प्रकृतिर्ब्रह्मंस्तांश्चाऽऽख्यातुं त्वमर्हसि।।९।।

हे ब्रह्मन्! इन शत्रुमर्दन प्रभु ने जिस प्रकार से वराहरूप का आश्रय लेकर सागरगता धरती का उद्धार अपनी दाढ़ों द्वारा किया था, धीमान् मुक्तिदाता रिपुघाती हरि का समस्त कर्म विस्तार पूर्वक श्रवणार्थ हमारी अभिलाषा हो रही है। हे ब्रह्मन्! यथाक्रमेण इन विभु का समस्त कर्म, प्रादुर्भाव एवं उनकी जो प्रकृति है, वह सभी हमसे कहिये।।७-९।।

व्यास उवाच

प्रश्नभारो महानेष भवद्भिः समुदाहृतः।
यथाशक्त्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यशः।।१०।।
विष्णोः प्रभावश्रवणे दिष्ट्या वो मतिरुत्थिता।
तस्माद्विष्णोः समस्ता वै शृणुध्वं याः प्रवृत्तयः।।११।।

व्यासदेव कहते हैं—आप लोगों ने इस महाप्रश्न को किया है। मैं यथाशक्ति कहता हूं। आप इस वैष्णव कीर्त्ति का श्रवण करिये। विष्णु का प्रभाव सुनने की मति आप लोगों को भाग्यवशात् हुई है। अब मैं विष्णु की समस्त लीला कहता हूं। आप लोग श्रवण करें।।१०-११।।

सहस्रास्यं सहस्राक्षं सहस्रचरणं च यम्। सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम्।।१२।।
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम्। सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम्।।१३।।
हवनं सवनं चैव होतारं हव्यमेव च। पत्राणि च पवित्राणि वेदिं दीक्षां समित्स्रुवम्।।१४।।
स्रुक्सोमसूर्यमुशलं प्रोक्षणीं दक्षिणायनम्। अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः।।१५।।
यूपं चक्रं ध्रुवां दर्वीं चरूंश्चोलूखलानि च।
प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं च परं च यत्।।१६।।
ह्रस्वाण्यतिप्रमाणानि स्थावराणि चराणि च।
प्रायश्चित्तानि वाऽर्घ्यं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा।।१७।।

मन्त्रयज्ञवहं वह्निं भागं भागवहं च यत्। अग्रासिनं सोमभुजं हुतार्चिषमुदायुधम्॥१८॥
आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं प्रभुम्।
तस्य विष्णो सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः॥१९॥
प्रादुर्भावसहस्राणि समतीतान्यनेकशः। भूयश्चैव भविष्यन्ति ह्येवमाह पितामहः॥२०॥

जो देव सहस्रमुख, सहस्रनेत्र, सहस्र चरण, सहस्र शिर, सहस्र हस्त, सहस्र जिह्वा वाले, सहस्र मुकुटधारी, सहस्र चरण, सहस्र भुजा, अव्यय, शाश्वत तथा ज्योतिर्मय हैं, जो हवन, सोमपाना होता, देवात्र, पात्र, पवित्री, वेदी, दीक्षा, समिधा, स्रुव, चन्द्रमा, सूर्य, मूशल, प्रोक्षणीपात्र, दक्षिणायन, अध्वर्यु, सामगायक विप्र, सदस्य, सदन, सभा, यूप, चक्र, धुरी, चरु, ओखली, प्राग्वंश, यज्ञभूमि, सबसे परे, ह्रस्व, अतिदीर्घ, स्थावर, जंगम, प्रायश्चित्त, अर्घ्य, स्थण्डिल, कुश, मन्त्र, यज्ञवाहक अग्नि, भाग, भागवाहक, आगे स्थित रहने वाले, सोमभोक्त, अग्नि में हवन करने वाले, अस्त्र धारण करने वाले हैं, जिनको वेदज्ञ यज्ञ में 'नित्य' कहते हैं, उन देवेश, श्रीवत्स चिह्नांकित, धीमान् विष्णु सहस्रों बार प्रादुर्भूत हो गये हैं। अब अनेक बार प्रादुर्भूत होंगे। यह पितामह ब्रह्मा का वचन है।।१२-२०।।

यत्पृच्छध्वं महाभागा दिव्यां पुण्यामिमां कथाम्।
प्रादुर्भावाश्रितां विष्णोः सर्वपापहरां शिवाम्॥२१॥
शृणुध्वं तां महाभागास्तद्गतेनान्तरात्मना। प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येण यत्पृच्छध्वं ममानघाः॥२२॥
वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महामतेः। हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च॥२३॥
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति वीर्यवान्।
प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान्दिव्यान्गुणान्वितान्॥२४॥
सुप्तो युगसहस्रं यः प्रादुर्भवति कार्यतः। पूर्णे युगसहस्रेऽथ देवदेवो जगत्पतिः॥२५॥
ब्रह्मा च कपिलश्चैव त्र्यम्बकस्त्रिदशास्तथा।
देवाः सप्तर्षयश्चैव नागाश्चाप्सरसस्तथा॥२६॥
सनत्कुमारश्च महानुभावो, मनुर्महात्मा भगवान्प्रजाकरः।
पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः॥२७॥
योऽसौ चार्णवमध्यस्थो नष्टे स्थावरजङ्गमे। नष्टे देवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे॥२८॥
योद्धुकामौ दुराधर्षौ तावुभौ मधुकैटभौ। हतौ भगवता तेन तयोर्दत्त्वाऽमितं वरम्॥२९॥
पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि। पुष्करे तत्र संभूता देवाः सर्षिगणास्तथा॥३०॥

हे महाभागगण! आप लोगों ने जो यह विष्णु प्रादुर्भाव विषयक सर्व पापहारिणी शुभकरी दिव्य पुण्यकथा पूछा है, उसे मैं क्रमानुरूप कहता हूं। हे निष्पापगण! आप लोग एकाग्रता पूर्वक महामति वासुदेव के चरित माहात्म्य का श्रवण करें। यह देव मनुष्यगण के हितार्थ तथा देवता एवं लोकों की उत्पत्ति हेतु बहुधा प्रादुर्भूत हो गये हैं। उनके समस्त पुण्यमय दिव्य एवं गुणमय प्रादुर्भाव का वर्णन करता हूं। ये जगत्पति

देवाधिदेव सहस्र युग पर्यन्त निद्रित रहकर कार्यवशात् प्रादुर्भूत हो जाते हैं। इन्होंने सहस्र युगों का अन्त होने पर प्रज्वलित अग्निवत् तेजयुक्त पुराणदेव ब्रह्मा, कपिल, त्र्यम्बक, देवता, सप्तर्षि, नाग, अप्सरा, महानुभाव सनत्कुमार, महात्मा मनु तथा तेजस्वी सूर्य प्रभृति को सृष्ट करके तब उन्होंने पुर राष्ट्र आदि का सृजन किया था। पूर्व में स्थावर, जंगम, सुर-असुर, मनुष्य, सर्प तथा राक्षसादि सभी प्राणीवर्ग के नष्ट हो जाने पर भगवान् सागर जल में शयन करने लगे। उन कमलनाभ के नाभिपद्म से देव, ऋषि प्रभृति की उत्पत्ति हो गयी। भगवान् ने प्रसिद्ध दुराधर्ष मधु-कैटभ दानवों को अमित वर प्रदान करने के पश्चात् निहत किया था।।२१-३०।।

एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः। पुराणं कथ्यते यत्र देवश्रुतिसमाहितम्॥३१॥

वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मनः। यत्र विष्णुः सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः॥३२॥

वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः। अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः॥३३॥

अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्गः श्रुतिभूषणः।
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वरो महान्॥३४॥

सत्यधर्ममयः श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृतः। प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्मुखाकृतिः॥३५॥

यह श्रीहरि का पौष्करक प्रादुर्भाव है। वहां देवगण समाहित होकर पुराण सुनते हैं। तदनन्तर वराह नामक प्रादुर्भाव है। उसमें देवप्रवर महात्मा विष्णु ने वराह रूप धारण किया था। उनके चार पैर हैं चारों वेद। दंष्ट्रा ही यज्ञयूप है। यज्ञ है इनके दन्त। चिति अर्थात् यज्ञ का अग्निसंस्कार इनका मुख है। अग्नि जिह्वा है। दर्भ (कुश) इनके रोम हैं। बह्मा शीर्ष हैं। अहोरात्र नेत्र हैं। सभी वेदांग इनके कर्णभूषण हैं। घृत नासा है। स्रुव ही थूथन है। सामध्वनि इनका भारी स्वर है। प्रायश्चित्त इनके नख हैं। यज्ञपशु ही जानु तथा मुखाकृति है। ये महातपस्वी सत्यधर्मात्मक, श्रीमान् तथा पराक्रम से सत्कृत हैं।।३१-३५।।

उद्गातान्त्रो होमलिङ्गो बीजौषधिमहाफलः। वाद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृतः सोमशोणितः॥३६॥

वेदिस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्। प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः॥३७॥

दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्। उपाकर्मोष्टरुचकः प्रगर्वावर्तभूषणः॥३८॥

उद्गाता उनकी आंतें हैं। होम उनके लिंग हैं। सभी मन्त्र उनके विकृत नितम्ब हैं, महाफलयुक्त औषधिसमूह उनका वीर्य है। वाद्य ही अन्तरात्मा है। सोम रक्त है। वेदी उनका कंधा, हविष्य गन्ध, हव्य-कव्य उनका वेग है। यज्ञशाला के हविर्गृह स्थित पूर्वकक्ष को प्राग्वंश कहते हैं, जो उनका देह है। नाना दीक्षा उनकी द्युति तथा दक्षिणा हृदय है। ये देवदेव योगी तथा महान् और महास्त्रमय हैं, जिसके उपाकर्म ही उनके कुण्डल हैं। होमाग्नि का अन्य रूप प्रवर्ग ही उनके आवर्त्तमय आभूषण हैं।।३६-३८।।

नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः। छायापत्नीसहायोऽसौ मणिशृङ्ग इवोत्थितः॥३९॥

महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम्। एकार्णवजलभ्रष्टामेकार्णवगतः प्रभुः॥४०॥

दंष्ट्रया यः समुद्धृत्य लोकानां हितकाम्यया।
सहस्रशीर्षो लोकादिश्चकार जगतीं पुनः॥४१॥

एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना। उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुधरा पुरा॥४२॥

नाना छन्द उनके संचरण के मार्ग हैं। सभी गुप्त उपनिषद् उनका आसन रूप है। यज्ञाकृति वराहमूर्ति प्रभु महातपःस्वरूप, अत्यन्त द्युतिमान्, कान्तिसम्पन्न, बीजौषधि रूप, महाफलोत्पादक देव हैं। इन देव की पत्नी है छाया। ये मणिशृंग के समान ऊर्ध्वोत्थित रहते हैं। सभी लोकों के आदिकर्त्ता सहस्रशीर्ष प्रभु ने लोकहित की कामना से छाया नामक पत्नी के साथ मणिशृंगवत् उक्त वराहमूर्ति धारण करके एकार्णव में निमग्ना सागरसीमान्विता शैल-वन-कानन युक्ता धरणी का अपनी दाढ़ों द्वारा उद्धार करके पुनः जगत् का निर्माण किया था। पूर्वकाल में सागरजल को धारण करने वाली धरणी देवी का एकार्णव से उद्धार प्राणीगण के हितार्थ भगवान् ने यज्ञवराहरूपी होकर किया।।३९-४२।।

वाराह एष कथितो नारसिंहस्ततो द्विजाः। यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः॥४३॥
पुरा कृतयुगे नाम सुरारिर्बलदर्पितः। दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः॥४४॥
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च। जपोपवासनिरतस्तस्थौ मौनव्रतस्थितः॥४५॥
ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि। प्रीतोऽभवत्ततस्तस्य तपसा नियमेन च॥४६॥
तं वै स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागम्य भो द्विजाः।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता॥४७॥
आदित्यैर्वसुभिः सार्धं मरुद्भिर्दैवतैस्तथा। रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः॥४८॥
दिशाभिः प्रदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा। नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः॥४९॥
देवर्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैर्विद्वद्भिरेव च। राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः॥५०॥
चराचरगुरुः श्रीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा। ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत्॥५१॥

हे ब्राह्मणवृन्द! यह वाराह अवतार मैंने कह दिया। तत्पश्चात् इन प्रभु का नारसिंह अवतार हुआ। हे द्विजों! इस अवतार में उन्होंने मृगेन्द्ररूपी होकर हिरण्यकशिपु का वध किया। पूर्वकाल में दैत्यों का यह आदिपुरुष देववैरी उपवास में निरत होकर मौनावलम्बन करके ११५००० वर्ष तक तपःश्चरण करता रहा था। भगवान् स्वयम्भु उसके शम, दम, नियम, ब्रह्मचर्य तथा तपः से प्रसन्न हो गये। हे द्विजगण! चराचरगुरु ब्रह्मविदों में प्रधान श्रीमान् ब्रह्मा ने स्वयं द्युतियुक्त सूर्यवर्ण हंसयोजित विमानारूढ़ होकर आदित्य, वसु, मरुत्, रुद्र, विश्वेदेव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, दिक्, विदिक्, नदी, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त्त, खेचर, ग्रह, देवर्षि, तपोवृद्ध, सिद्ध, विद्वान्, राजर्षि, पुण्यात्मा, गंधर्व, अप्सरा तथा समस्त देवगण के साथ आकर इस दैत्य से कहा—।।४३-५१।।

ब्रह्मोवाच

प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत। वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे सुव्रत! मैं तुम्हारी भक्तिपूर्ण तपस्या द्वारा प्रसन्न हो गया। हे भद्र! तुम इच्छित वर मांगो।।५२।।

हिरण्यकशिपुरुवाच

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः। ऋषयो वाऽथ मां शापैः क्रुद्धा लोकपितामह॥५३॥

शपेयुस्तपसा युक्ता शर एष वृतो मया। न शस्त्रेण न वाऽस्त्रेण गिरिणा पादपेन वा॥५४॥
न शुष्केण न चाऽऽर्द्रेण न चैवोर्ध्वं न चाप्यधः।
प्राणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम्॥५५॥
यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति। भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः॥५६॥
सलिलं चान्तरिक्षं च आकाशं चैव सर्वशः। अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः॥५७॥

हिरण्यकशिपु कहता है—हे लोकपितामह! देवता, असुर, गंधर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस अथवा तपोमूर्त्ति ऋषि इनमें से कोई भी क्रोधित होने पर मुझे शाप न दे सके। शस्त्र, अस्त्र, गिरि, वृक्ष, शुष्क किंवा आर्द्र पदार्थ से किंवा ऊर्ध्व एवं अधोभाग में मेरी मृत्यु न हो। जो केवल एक हाथ के प्रहार से सेवकों, सैन्य तथा वाहनादि के साथ मेरा वध करने में समर्थ हो, उसी के द्वारा मेरा वध हो। मैं ही सूर्य, सोम, वायु, अग्नि, जल, आकाश, काम, क्रोध, वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर, धनाध्यक्ष, यक्ष तथा किम्पुरुष का अधिपति होकर रहूं, मैं यही वर मांगता हूं।।५३-५७।।

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या शरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः।
सर्वान्कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः॥५८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे तात! मैं तुमको ये सभी अद्भुत दिव्य वर देता हूं। मेरी कृपा से तुमको यह सब प्राप्त होगा। इसमें संशय नहीं है।।५८।।

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भावाञ्जगामाऽऽशु पितामहः। वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥५९॥
अतो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा। वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः॥६०॥

व्यासदेव कहते हैं—भगवान् पितामह यह कह कर ब्रह्मर्षिगणों के साथ वैराजधाम लौट गये। तत्पश्चात् यह वर प्रदान का संवाद जान कर देवता लोग नाग, गन्धर्व, मुनिगण सभी पितामह के पास पहुंचे।।५९-६०।।

देवा ऊचुः

वरेणानेन भगवन्बाधिष्यति स नोऽसुरः।
तत्प्रसीदाऽऽशु भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम्॥६१॥
भगवन्सर्वभूतानां स्वयंभूरादिकृत्प्रभुः। स्रष्टा च हव्यकाव्यानामव्यक्तं प्रकृतिर्ध्रुवम्॥६२॥

देवता कहते हैं—हे भगवान्! इस वर से यह असुर हमारा उत्पीड़न करेगा। इसलिये आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों। इसके वध के उपाय का विचार करिये। हे प्रभो! आप ही स्वयम्भु, सर्व प्राणीगण के आदिकर्त्ता, प्रभु, हव्य-कव्य के स्रष्टा, प्रकृति, अव्यक्त तथा सदा एकरूप हैं।।६१-६२।।

व्यास उवाच

ततो लोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः।
प्रोवाच भगवान्वाक्यं सर्वदेवगणांस्तथा॥६३॥

व्यासदेव कहते हैं—यह लोकहितकारी वाक्य सुनकर भगवान् प्रजापति देव ने तब सभी देवगण से कहा—॥६३॥

ब्रह्मोवाच

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम्।
तपसोऽन्ते च भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति॥६४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवताओं! वह असुर तपस्या का फल अवश्य प्राप्त करेगा। तपस्या क्षय होने पर भगवान् विष्णु उसका वध साधन करेंगे॥६४॥

व्यास उवाच

एतछ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पङ्कजजन्मनः।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः॥६५॥
लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः। हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः॥६६॥
आश्रमेषु महाभागन्मुनीन्वै संशितव्रतान्। सत्यधर्मरतान्दान्तांस्तदा धर्षितवांस्तथा॥६७॥
त्रिदिवस्तांस्तथा देवान्पराजित्य महाबलः।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति सोऽसुरः॥६८॥
यदा वरमदोन्मत्तो विचरन्दानवो भुवि। यज्ञीयानकरोद्दैत्यानयज्ञीयाश्च देवताः॥६९॥
आदित्या वसवः साध्या विश्वे च मरुतस्तथा।
शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम्॥७०॥
देवब्रह्ममयं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम्। भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम्।
नारायणं विभुं देवं शरण्यं शरणं गताः॥७१॥

व्यासदेव कहते हैं—कमलयोनि ब्रह्मा का यह कथन सुनकर सभी देवता आनन्दित होकर अपने-अपने स्थान चले गये। दैत्य हिरण्यकशिपु वरलाभ से दर्पित होकर प्रजावर्ग को पीड़ा देने लगा। तब वह महाबली असुर आश्रमस्थ व्रतशील, सत्यधर्मतत्पर, दमगुणयुक्त मुनिगण को पीड़ित करने लगा। उसने देवलोक निवासी देवगण को पराजित कर दिया तथा त्रैलोक्य को वशीभूत करके स्वर्ग में ही निवास करने लगा। वह वरदान से उन्मत्त होकर भूमि पर विचरण करने लगा। उसने दैत्यों को यज्ञभाग का भाजन बना कर देवगण को यज्ञभाग रहित कर दिया था। तब आदित्य, वसु, साद्य, विश्वेदेव, मरुद्गण ने जाकर आश्रित पालक महाबली विष्णु की शरण ग्रहण किया। देवगण ने उन देव, ब्रह्ममय, यज्ञरूप, सनातन, भूत-भविष्यत्-वर्तमान रूपी, सर्वभूतात्मक, लोकनमस्कृत, प्रभु-विभु, देवदेव नारायण की शरण में जाकर कहा—॥६५-७१॥

देवा ऊचुः

त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात्।
त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः॥७२॥
त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम। उत्फुल्लामलपत्राक्ष शत्रुपक्षक्षयङ्कर।
क्षयाय दितिवंशस्य शरणं त्वं भवस्व नः॥७३॥

देवगण कहते हैं—हे देवेश! आप हिरण्यकशिपु के भय से हमारी रक्षा करें। हे सुरोत्तम! आप ही हमारे परम देवता हैं। आप ही परमगुरु हैं। आप ही हम ब्रह्मा आदि परमदेवों के धारक हैं। हे विकसित कमलवत् नेत्रों वाले प्रभु! आप शत्रुपक्ष का क्षय करिये। दितिवंश के दैत्यों के क्षयार्थ आप हमारे रक्षक हो जायें!।।७२-७३।।

वासुदेव उवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम्।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिलप्स्यथ मा चिरम्॥७४॥
एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्। अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्मि तम्॥७५॥

वासुदेव कहते हैं—हे देवताओं! भय का त्याग करो। मैं तुम लोगों को अभयदान देता हूं। हे देवगण! तुम अल्पकाल में ही पूर्ववत् स्वर्गलाभ करोगे। मैं वरगर्वित तथा अमर लोगों से भी अवध्य इस दैत्य को उसके अनुगामियों के साथ निहत करूंगा।।७४-७५।।

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्विसृज्य त्रिदशेश्वरान्।
हिरण्यकशिपोः स्थानमाजगाम महाबलः॥७६॥
नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः। नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना॥७७॥
घनजीमूतसंकाशो घनजीमूतनिस्वनः। घनजीमूतदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान्॥७८॥
दैत्यं सोऽतिबलं दृष्ट्वा दृप्तशार्दूलविक्रमः। दृप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना॥७९॥

व्यासदेव कहते हैं—उन महाबली भगवान् प्रभु ने यह कहकर स्वर्गाधिपति तथा देवताओं को विदा किया तथा उन्होंने आधा शरीर सिंह,का तथा आधा शरीर नराकृति कर लिया। इस प्रकार उन्होंने नृसिंह रूप धारण किया था। उस देह की कान्ति घने मेघ के समान थी। उनका स्वर भी मेघगर्जनवत् ही था। वे अपने हाथों से हाथ का स्पर्श करते हुये अर्थात् हाथों को मलते हुये हिरण्यकशिपु के पास आये। आते समय उनका वेग भी मेघ के ही समान था। दृप्त शार्दूलविक्रमी श्रीहरि ने जब दैत्यों द्वारा रक्षित हिरण्यकशिपु को देखा, तब उसको हथेली के एक ही आघात से मृत कर दिया।।७६-७९।।

नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनः परः। यत्र वामनमास्थाय रूपं दैत्यविनाशनम्॥८०॥
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा। विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः॥८१॥

विप्रचित्तिः शिवः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च। अयः शिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान्॥८२॥
वेगवान्केतुमानुग्रः सोग्रव्यग्रो महासुरः।
पुष्करः पुष्कलश्चैव शा (सा) श्वोऽश्वपतिरेव च॥८३॥
प्रह्लादोऽश्वपतिः कुम्भः संह्लादो गमनप्रियः। अनुह्लादो हरिहयो वाराहः संहरोऽनुजः॥८४॥
शरभः शलभश्चैव कुपथः क्रोधनः क्रथः। बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शङ्कुकर्णो महास्वनः॥८५॥
दीप्तजिह्वोऽर्कनयनो मृगपादो मृगप्रियः। वायुर्गरिष्ठो नमुचिः सम्बरो विस्करो महान्॥८६॥
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च।
कालकः कालकोपश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः॥८७॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ। इन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलदर्पितः॥८८॥
असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः।
स्वमिश्रः कालवदनः करालःकेशिरेव च॥८९॥
एकाक्षश्चन्द्रमा राहुः संह्लादः सम्बरः स्वनः। शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुशलपाणयः॥९०॥
अश्वयन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा। शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वदधरास्तथा॥९१॥
पाशमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः। महाशिलाप्रहरणः शूलहस्ताश्च दानवाः॥९२॥
नानाप्रहरणा घोरा नानावेशा महाबलाः। कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा॥९३॥
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवरनास्तथा। मार्जारशिखिवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथा परे॥९४॥
नक्रमेषाननाः शूरा गोजाविमहिषाननाः।
गोधाशल्लकिवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः॥९५॥
आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखस्तथा।
भीमा मकरवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवाः॥९६॥
अश्वाननाः खरमुखा मयूरवदनास्तथा। गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बरा॥९७॥
चीरसंवृतगात्राश्च तथा नीलकवाससः। उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः॥९८॥
किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः। नानावेशधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः॥९९॥
स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तानि च तेजसा। क्रममाणं हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः॥१००॥

यह मैंने नृसिंहावतार का विवरण कह दिया। अब वामनावतार कहता हूं। पूर्वकाल में इस अवतार में भगवान् विष्णु ने दैत्यविनाशक वामनमूर्त्ति धारण करके बलि के यज्ञ में जाकर वहां अक्षोभ्य महान् असुरों को क्षुब्ध किया था। तब विप्रचित्ति, शिव, शंकु, अयःशंकु, अयःशिरा, अश्वशिरा, वीर्यवान् हयग्रीव, वेगवान् केतुमान्, उग्र, महान् असुर उग्रव्यग्र, पुष्कर, पुष्कल, साम्ब, अश्वपति, प्रह्लाद, श्वपति, कुम्भ, संह्लाद, गमनप्रिय, अनुह्लाद, हरिहय, वाराह, संहार, अनुज, शरभ, शलभ, कुपथ, क्रोधन, क्रथ, बृहत्कीर्त्ति, महाजिह्व, शंकुकर्ण, महास्वन, दीप्तजिह्व, अर्कनेत्र, मृगपाद, मृगप्रिय, वायु, गरिष्ठ, नमुचि, सम्वर, विस्कर, महान्,

चन्द्रहन्ता, क्रोधहन्ता, क्रोधवर्द्धन, कालक, कालकोप, वृत्र, क्रोध विरोचन, गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रतापन, वातापि, केतुमान्, बलदर्पित, असिलोमा, पुलोमा, वाष्कल, प्रमद, मद, स्वमिश्र, कालवदन, कराल, केशि, एकाक्ष, चन्द्रमा, राहु, संह्लाद, सम्बर, स्वन, आदि दैत्य श्रोत्र शतघ्नि, चक्रहस्त, मूसलपाणि तथा अश्व, यन्त्रादि एवं आयुधों से युक्त भिन्दिपाल, शूल, ऊखल, परशु, पाश, मुद्गर, परिघहस्त, महाशिलारूप आयुधधारी शूलहस्थ दानव वहां थे। वे नाना अस्त्रों को धारण करने वाले घोर, नाना वेश युक्त, बलवान् कच्छप तथा कुक्कुटवत् मुखवाले, शशक एवं उलूकमुखी, गर्दभ तथा उष्ट्र जैसे मुख वाले, शूकर, बिड़ाल, मयूर, शृगाल, मूषक, मंडूक, वृक् (भेड़िया), ग्राहवत् मुख वाले थे। वे कराकुल पक्षी, अश्वमुखी थे। उन्होंने गजचर्म, कृष्णमृगचर्म धारण किया था। कुछ वस्त्र से आवृत देह वाले, नील वस्त्रधारी, पगड़ी पहने, मुकुट धारण किये, कुण्डलधारी, दीर्घ चोटी वाले, शंखवत् ग्रीवा वाले, अमित तेजस्वी, नाना माला तथा अंगलेप समन्वित राक्षसगण ने उन भगवान् पर आक्रमण किया, जो पग से धरती नाप रहे थे।।८०-१००।।

प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैर्विभुः। रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराऽऽशु स मेदिनीम्॥१०१॥

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।
नभः प्रकममाणस्य नाभ्यां किल तथा स्थितौ॥१०२॥

परमाक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ। विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः॥१०३॥

हृत्वा स मेदिनीं कृत्स्नां हत्वा चासुरपुङ्गवान्।
ददौ शक्राय वसुधां विष्णुर्बलवतां वरः॥१०४॥

उन वामन देव ने अल्पकाल में ही महाभीम रूप धारण करके हथेली तथा तलवों के प्रहार से उन दैत्यों का वध कर दिया। द्विज-पण्डितगण कहते हैं कि जब अमितविक्रमी वामनदेव भूमि नापने हेतु बढ़े थे, तब उनकी लम्बाई इतनी अधिक थी कि सूर्य-चन्द्र उनके स्तन प्रदेश तक आ गये थे। जब वे और बढ़कर आकाश नापने लगे, तब सूर्य-चन्द्रमा उनके नाभि तक थे। जब वे और ऊपर का माप करने लगे, तब सूर्य-चन्द्रमा उनके जानु प्रदेश तक थे। द्विजगण यह कहते हैं कि महाबलियों में प्रधान विष्णु ने इस प्रकार से असुरपुंगवों का हनन किया तथा धन-रत्न से पूर्ण समस्त पृथिवी इन्द्र को प्रदान कर दिया।।१०१-१०४।।

एष वो वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः। वेदविद्भिर्द्विजैरेतत्कथ्यते वैष्णवं यशः॥१०५॥

भूयो भूतात्मनो विष्णोः प्रादुर्भावो महात्मनः।
दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः॥१०६॥

तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च। चातुर्वर्ण्ये च संकीर्णे धर्मे शिथिलतां गते॥१०७॥

अतिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते।
प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाऽऽकुलतां गते॥१०८॥

सयज्ञाः सक्रिया वेदाः प्रत्यानीता हि तेन वै।
चातुर्वर्ण्यमसङ्कीर्णं कृतं तेन महात्मना॥१०९॥

महात्मा विष्णु का यह वामन नामक प्रादुर्भाव मैंने आप लोगों से कह दिया। वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण इस

प्रकार विष्णु के यश तथा महिमा का वर्णन करते हैं। अब भूतात्मा महात्मा विष्णु का दत्तात्रेय नामक अवतार है, जो अतीव प्रसिद्ध एवं क्षमागुणान्वित था। कालप्रभाव से जब अधर्म वर्द्धित हो गया तथा धर्म में शैथिल्य आ गया और वह आकुलित हो उठा, वेद नष्ट हो गये, यज्ञ-उपासना प्रक्रिया आदि लुप्त होने लगे, चातुर्वर्ण व्यवस्था संकीर्ण होने लगी, धर्म शिथिल हो गया। (चातुर्वर्ण में संकरता आ गई), अधर्म के कारण सत्य का नाश एवं असत्य का उत्कर्ष परिलक्षित होने लगा, प्रजा वर्ग शीर्ण होने लगा, धर्म आकुलित हो उठा, तब दत्तात्रेय ने यज्ञ, धर्मशास्त्र तथा वेदमार्ग एवं वेदों को पुनरास्थापित किया था। उन महात्मा ने चातुर्वर्ण व्यवस्था में से वर्णसंकरता का विनाश कर दिया।।१०५-१०९।।

तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमतः। वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता॥११०॥

एतद्बाहुद्वयं यत्ते तत्ते मम कृते नृप। शतानि दश बाहूनां भविष्यन्ति न संशयः॥१११॥

पालयिष्यसि कृत्स्नां च वसुधां वसुधेश्वर।
दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां युद्धस्थश्च भविष्यसि॥११२॥

एष वो वैष्णवः श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्भुतः शुभः।
भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मनः॥११३॥

यत्र बाहुसहस्रेण द्विषतां दुर्जयं रणे। रामोऽर्जुनमनीकस्थ जघान नृपतिं प्रभुः॥११४॥

रथस्थं पार्थिवं रामः पातयित्वाऽर्जुनं भुवि।
धर्षयित्वाऽर्जुनं रामः क्रोशमानं च मेघवत्॥११५॥

कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः। परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै॥११६॥

इन धीमान् दत्तात्रेय ने बुद्धिमान् हैहयराज कार्त्तिवीर्य को वर दिया था कि "मेरी कृपा से तुमको सहस्र बाहु होंगे। इसमें संशय नहीं है। हे राजन्! तुम समग्र वसुधा का पालन करोगे तथा रणस्थल में शत्रुओं से अजेय रहोगे।" यह मैंने आप लोगों से विष्णु का श्रीमान् शुभ आविर्भाव कहा। अब इन महात्मा विष्णु का जामदग्न्य नामक प्रादुर्भाव कहता हूं। इस अवतार में प्रभु ने जमदग्नि ऋषि के पुत्र राम (परशुराम) का अवतार लेकर रणदुर्मद अर्जुन सहस्रबाहु राजा का वध किया, जो दुर्जय था। रण में भृगुनन्दन राम ने इस रथस्थ अर्जुन राजा को पृथिवी पर गिराकर उस मेघस्वर में चीत्कार करते राजा की एक हजार बाहु का अपने दीप्त कुठार से छेदन कर दिया। साथ ही उसका बन्धु-बान्धवों सहित वध कर दिया।।११०-११६।।

कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मेरुमन्दरभूषणा। त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता॥११७॥

कृत्वा निःक्षत्रियां चैनां भार्गवः सुमहायशाः।
सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान्॥११८॥

यस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः।
मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुन्धराम्॥११९॥

वाराणांस्तुरगाञ्शुभ्रान्थाश्च रथिनां वरः। हिरण्यमक्षयं धेनुर्गजेन्द्रांश्च महीपतिः॥१२०॥

ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः।
अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः॥१२१॥
चरमाणस्तपो घोरं जामदग्न्यः पुनः प्रभुः।
आस्ते वै देववच्छ्रीमान्महेन्द्रे पर्वतोत्तमे॥१२२॥

परशुराम ने मेरु-मन्दर पर्वतों से भूषित पृथिवी को जो क्षत्रियों से भरी थी, उसे इक्कीस बार क्षत्रिय रहित किया। महायशस्वी भार्गव ने इक्कीस बार धरती को क्षत्रिय रहित करके अपने सर्वपापनाशार्थ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था। भृगुनन्दन इन परशुराम ने उस यज्ञ में महादान स्वरूप दक्षिणार्थ समग्र पृथिवी ऋषि मरीचिनन्दन कश्यप को दान में दिया था। महायशस्वी परशुराम ने उस महायज्ञोपलक्ष्य में उज्ज्वल अश्व, रथ, अतुलित स्वर्ण के ढेर, धेनु तथा हाथी भी दान में प्रदान किया था। वे श्रीमान् प्रभु आज भी लोकहितार्थ देवता की तरह महेन्द्र पर्वत पर घोर तप करते विराजित हैं।।११७-१२२।।

एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च।
जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः॥१२३॥
चतुर्विंशे युगे वाऽपि विश्वामित्रपुरःसरः। जज्ञे दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥१२४॥
कृत्वाऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः। लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः॥१२५॥
प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निग्रहाय च।
धर्मस्य च विवृद्ध्यर्थं जज्ञे तत्र महायशाः॥१२६॥

यह सुरेश, शाश्वत, अव्यय विष्णु का अवतार जामदग्न्य (जमदग्नि के पुत्र) के नाम से प्रख्यात हो गया। चौबीसवें युग में भी विश्वामित्र के सामने चलने वाले कमलनयन दशरथ के पुत्र के रूप में इनका अवतार (श्रीरामरूपेण) हुआ। इन्होंने स्वयं को चार रूपों में विभक्त किया था (यथा—राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न)। ये महाबाहु ईश्वर प्रभु सूर्यवत् तेजस्वी राम के नाम से प्रसिद्ध हो गये। लोकहितार्थ, राक्षसों के निग्रहार्थ तथा धर्म की वृद्धि के लिये इन विष्णु ने महायशस्वी रामावतार लिया।।१२३-१२६।।

तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतहिते रतम्। यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत॥१२७॥
लक्ष्मणानुचरो रामः सर्वभूतहिते रतः। चतुर्दश वने तप्त्वा तपो वर्षाणि राघवः॥१२८॥
रूपिणी तस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जने।
पूर्वोदिता तु या लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति॥१२९॥
जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशानां चकार सः।
तस्यापकारिणं क्रूरं पौलस्त्यं मनुजर्षभः॥१३०॥
सीतायाः पदमन्विच्छन्निजघान महायशाः। देवासुरगणानां च यक्षराक्षसभोगिनाम्॥१३१॥
यत्रावध्यं राक्षसेन्द्रं रावणं युधि दुर्जयम्। युक्तं राक्षसकोटीभिर्नीलाञ्जनचयोपमम्॥१३२॥
त्रैलोक्यद्रावणं क्रूरं रावणं राक्षसेश्वरम्। दुर्जयं दुर्धरं दृप्तं शार्दूलसमविक्रमम्॥१३३॥

दुर्निरीक्ष्यं सुरगणैर्वरदानेन दर्पितम्। जघान सचिवैः सार्धं ससैन्यं रावणं युधि॥१३४॥

महाभ्रगणसङ्काशं महाकायं महाबलम्।
रावणं निजघानाऽऽशु रामो भूतपतिः पुरा॥१३५॥
सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः।
बाली विनिहतः सङ्ख्ये सुग्रीवश्चाभिषेचितः॥१३६॥

मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः। हतो मधुवने वीरो वरमत्तो महासुरः॥१३७॥

ये प्रभु मनुष्येन्द्र सदा प्राणीगण के हित में रत कहे गये हैं। हे द्विजवृन्द! सर्वधर्मज्ञ राम पिता की आज्ञा के पालन हेतु लक्ष्मण सहित १४ वर्ष वनवास में तपस्याचरण में प्रवृत्त थे। पूर्व में मैंने जिन विष्णुपत्नी लक्ष्मी का वर्णन किया था, उन लक्ष्मी ने सीता नामक राम की पार्श्वचारिणी पत्नी के रूप में अवतीर्ण होकर पति का वन में अनुगमन किया। राम ने वनस्थ होकर देवताओं के महान् कार्य को सम्पन्न किया। उन मनुजर्षभ राम ने सीता का अन्वेषण करते हुये क्रूर राक्षस रावण का वध किया। इन भूतपति राम ने देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, सर्पादि सभी से अवध्य, दुर्जय, दुर्मद, दृप्त (तेजवान्), देवगण से भी दुर्निरीक्ष्य, शार्दूल (व्याघ्र) के समान विक्रान्त, वरदान पाकर गर्वित, त्रैलोक्य को पीड़ित करने वाले, क्रूर, महाबली, महाकाय, नील अंजन की राशि के समान, महामेघ जैसे राक्षसराज रावण को अनेक कोटि राक्षसों की सेना तथा मन्त्रियों के साथ अल्पकाल में ही युद्ध में निहत करा था। उन्होंने सुग्रीव के अनुरोधानुसार युद्ध में महाबली वानरेन्द्र बालि का वध करने के उपरान्त उस राज्य पर सुग्रीव का अभिषेक कर दिया था। उन्होंने मधुवन में मधुपुत्र लवण नामक वीरता में मत्त तथा वर प्राप्ति से गर्वित राक्षस का वध भी किया।।१२७-१३७।।

यज्ञविघ्नकरौ येन मुनीनां भावितात्मनाम्।
मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरौ॥१३८॥
निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना।
समरे युद्धशौण्डेन तथाऽन्ये चापि राक्षसाः॥१३९॥
विराधश्च कबन्धश्च राक्षसौ भीमविक्रमौ।
जघान पुरुषव्याघ्रो गन्धर्वौ शापमोहितौ॥१४०॥

उन महात्मा राम ने संयमी मुनिगण के यज्ञ के विघ्नकर्त्ता महाबली मारीच को निहत करके सुबाहु का वध कर दिया। उन महायोद्धा राम ने युद्ध में अन्य अनेक राक्षस भीमविक्रमी विराध एवं कबन्ध का वध कर दिया। ये दोनों पूर्व में गन्धर्व थे, जो शाप के कारण राक्षस हो गये थे।।१३८-१४०।।

हुताशनार्कांशुतडिद्गुणाभैः प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खैः।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारै रिपून्स रामः समरे निजघ्ने॥१४१॥

तस्मै दत्तानि शस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता। वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धर्षाणां सुरैरपि।१४२॥

वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः। भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लीलया पुरा॥१४३॥

एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः।
दशाश्वमेधाञ्जारूथ्यानाजहार निरर्गलान्॥१४४॥

उन राम ने युद्ध में अग्नि के समान, सूर्यकिरण आकाशीय विद्युत्वत् एवं तप्तस्वर्ण जैसी प्रभा से युक्त तथा इन्द्र वज्रवत् सारयुक्त अपने बाण समूह से शत्रुओं का वध किया था। राम को अविजित देवशत्रुगण के वध के लिये श्रीमान् विश्वामित्र ने अनेक अस्त्र प्रदान किया था। इन महात्मा राम ने विदेहराज जनक के धनुर्यज्ञ में लीला से ही माहेश्वर धनुष को भंग कर दिया। धर्मात्मा राम ने यह सब कर्म सम्पन्न करने के अनन्तर दस संख्यक विघ्नबाधा मुक्त जारुथ्य संज्ञायुक्त अश्वमेध यज्ञ किया।।१४१-१४४।।

नाश्रूयन्ताशुभा वाचो नाऽऽकुलं मारुतो ववौ।
न वित्तहरणं चाऽऽसीद्रामे राज्यं प्रशासति॥१४५॥
परिदेवन्ति विधवा नानर्थाश्च कदाचन। सर्वमासीच्छुभं तत्र रामे राज्यं प्रशासति॥१४६॥

राम के राज्यशासन के समय कहीं भी अशुभ वाक्य श्रुतिगोचर नहीं होते थे। वायु भी आकुलित रूप से प्रवाहित नहीं होती थी। किसी का धन अपहृत नहीं होता था, कोई भी स्त्री विधवा होने के कारण अनुतप्त नहीं थी। अनर्थपूर्ण स्थिति कभी नहीं होती थी। रामराज्य में सर्वत्र सब कुछ कल्याणमय होता था।।१४५-१४६।।

न प्राणिनां भयं चाऽऽसीज्जलाग्न्यनिलघातजम्।
न चापि वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि चक्रिरे॥१४७॥
ब्रह्मचर्यपरं क्षत्रं विशस्तु क्षत्रिये रताः। शूद्राश्चैव हि वर्णांस्त्रीञ्शुश्रूषन्त्यनहंकृताः॥१४८॥

किसी को भी जल, वायु, अग्निजनित भय उत्पन्न नहीं होता था। वृद्धों को बालकों का प्रेतकर्म नहीं करना पड़ता था (अर्थात् वृद्ध के सामने उनके रहते उनके परिवार में बालक, युवक का मरण नहीं होता था)। क्षत्रियगण ब्राह्मणों का पालन करते थे। वैश्यगण क्षत्रियों की शुश्रूषा करते तथा शूद्रगण तीनों वर्णों की सेवा अहंकार रहित होकर करते रहते।।१४७-१४८।।

नार्यो नात्यचरन्भर्तॄन्भार्यां नात्यचरत्पतिः। सर्वमासीज्जगद्दान्तं निर्दस्युरभवन्मही॥१४९॥
राम एकोऽभवद्भर्ता रामः पालयिताऽभवत्। आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः॥१५०॥
अरोगाः प्राणिनाश्चाऽऽसन्रामे राज्यं प्रशासति।
देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः॥१५१॥

पतिगण पत्नियों का तथा पत्नीगण अपने पतियों का त्याग कभी नहीं करती थीं। समस्त जगत् उस समय सुशासित था। समस्त धरती दस्यु रहित थी। प्राणीगण रोग रहित थे। उस समय अकेले श्रीराम ही प्रजा के पालक तथा स्वामी थे। प्राणीगण सहस्रों सन्तान वाले होकर सहस्राधिक वर्ष जीवित रहते थे। उस समय राम के राज्य में पृथिवी पर सर्वत्र देवता, ऋषि तथा मनुष्यों की प्रतिष्ठा थी।।१४९-१५१।।

पृथिव्यां समवायाऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति।
गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः॥१५२॥

रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः।
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः॥१५३॥
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः।
दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत्॥१५४॥
ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः।
अव्युच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति॥१५५॥

राम तत्त्व के ज्ञाता पुराणज्ञ लोग इन धीमान् महात्मा राम के सम्बन्ध में एक गाथा का गायन करते हैं कि राम श्यामवर्ण, युवा, लोहितनेत्र, सुमुख, प्रफुल्ल चेहरे वाले, सिंह के समान विशाल कंधों से शोभायमान, महाबाहु, जानु पर्यन्त लम्बित बाहु वाले तथा मितभाषी थे। राम ने दस हजार वर्ष तक राज्य का शासन किया। इन महाराज के राज्य में ऋक्, यजुः तथा साममन्त्रों का उद्घोष, धनुष की टंकार, "दान करो, उपभोग करो" की ध्वनि अहर्निश अविच्छिन्न रूप से चलती रहती थी।।१५२-१५५।।

सत्त्ववान्गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा। अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ॥१५६॥
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः। हित्वाऽयोध्यां दिवं यातो राघवो हि महाबलः॥१५७॥
एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः। रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः॥१५८॥

सत्वगुणयुक्त स्वतेज से दीप्त दाशरथी राम अपने ही तेज से दीप्त रहते थे। वे चन्द्र-सूर्य से भी अधिक शोभायमान एवं तेजस्वी थे। इन महापराक्रमी राम ने प्रभूत दक्षिणा सम्पन्न सैकड़ों पुण्यमय यज्ञों से यजन किया था। विभु विष्णु इक्ष्वाकु कुलनन्दन श्रीराम ने रण में सदल-बल रावण का वध करके एवंविध स्वर्गगमन किया था।।१५६-१५८।।

अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः।
विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै॥१५९॥
यत्र शाल्वं च चैद्यं च कंसं द्विविदमेव च।
अरिष्टं वृषभं केशिं पूतनां दैत्यदारिकाम्॥१६०॥

नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा। दैत्यान्मानुषदेहेन सूदयामास वीर्यवान्॥१६१॥
छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः। नरकश्च हतः सङ्ख्ये यवनश्च महाबलः॥१६२॥
हतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा। दुराचाराश्च निहिताः पार्थिवा ये महीतले॥१६३॥
एष लोकहितार्थाय प्रादुर्भावो महात्मनः। कल्की विष्णुयशा नाम शम्भलग्रामसंभवः॥१६४॥

कल्पान्तर में इन महात्मा विष्णु का सर्वलोकहितार्थ मथुरा पुरी में जो अवतार हुआ, वह केशव के नाम से प्रख्यात है। इस अवतार में मनुष्यदेहधारी केशव विष्णु ने शाम्ब, शिशुपाल, कंस, द्विविद, अरिष्ट, प्रलम्ब, केशी, दैत्यकन्या पूतना, हाथी कुवलयापीड़, चाणूर तथा मुष्टिक मल्ल का विनाश किया। उन्होंने रण में नरकासुर का वध करके अद्भुतकर्मा बाण के हजार बाहु को काट दिया। उनके द्वारा महाबली यवन कालयवन

का वध किया गया। महीतल में तब जितने भी दुराचारी राजा थे, उन्होंने अपने तेज से सभी का हनन करके उनके समस्त धन-रत्नादि को ग्रहण किया। यह विष्णु अवतार लोकहितार्थ हुआ था। इसके अनन्तर सर्वलोक हितार्थ सम्भल ग्राम में विष्णु का महायशस्वी विष्णुयशा कल्की अवतार होगा।।१५९-१६४।।

सर्वलोकहितार्थाय भूयो देवो महायशाः।
एते चान्ये च बहवो दित्या देवगणैर्वृतः॥१६५॥
प्रादुर्भावः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः। यत्र देवा विमुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने॥१६६॥
पुराणं वर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम्। एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम्॥१६७॥
कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोर्विभोः। पीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावनुकीर्तनात्॥१६८॥
विष्णोरमितवीर्यस्य यःशृणोति कृताञ्जलिः॥१६९॥
एताश्च योगेश्वरयोगमायाः श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात्॥१७०॥

ब्रह्मवादी पुराणज्ञों ने इन सभी तथा और भी अनेक दिव्य अवतारों का वर्णन किया है। इन सबको यदि देवराज भी कहेंगे, तब वे भी मुग्धमना हो जायेंगे। इस सम्बन्ध में प्रमाण हैं वेद एवं श्रुति विहित एवं सम्मत पुराण। मैंने उन सर्वलोकगुरु सर्वकीर्त्तनीय विष्णु के प्रादुर्भाव का वृत्तान्त अति संक्षेप में कह दिया। अमितवीर्य इन विष्णु के प्रादुर्भाव का पाठ किंवा हाथ जोड़कर इसका श्रवण करने से पितृगण प्रसन्न हो जाते हैं। इन योगेश्वर की इन योगमाया वृत्तान्त को सुनकर मनुष्य इन प्रभु की कृपा से सर्वपापविनिर्मुक्त हो जाते हैं। उसे भगवत् कृपा से शीघ्र ऋद्धि, समृद्धि, विपुल भोग प्राप्त होते हैं।।१६५-१७०।।

एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः।
सर्वपापहराः पुण्याः प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णोः प्रादुर्भावानुकीर्तनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१३।।

हे मुनिप्रवरगण! मैंने इस प्रकार से अति तेजवान् विष्णु के पापहरण करने वाले पुनीत अवतारों का वर्णन कर दिया।।१७१।।

।।त्रयोदशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

नरक वर्णन

मुनय ऊचुः

न तृप्तिमधिगच्छामः पुण्यधर्मामृतस्य च। मुने त्वन्मुखगीतस्य तथा कौतूहलं हि नः॥१॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम्।
वेत्सि सर्वं मुने तेन पृच्छामस्त्वां महामतिम्॥२॥

श्रूयते यमलोकस्य मार्गः परमदुर्गमः। दुःखक्लेशकरः शश्वत्सर्वभूतभयावहः॥३॥

कथं तेन नरा यान्ति मार्गेण यमसादनम्। प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो वदतां वर॥४॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिप्रवर! आपके मुख से वर्णित पुण्य मर्ममय अमृत पान से हमारी तृप्ति का अन्त ही नहीं हो रहा है। अभी भी कौतूहल विद्यमान है। हे मुनिवर! सभी महाभूतों की उत्पत्ति, प्रलय तथा कर्म की गति आपको ज्ञात है। तभी हम आप महामति से जिज्ञासा कर रहे हैं। सुना गया है कि यमलोक का मार्ग अतीव दुर्गम है। वह दैहिक तथा मानसिक सन्ताप उत्पन्न करने वाला सदा सभी प्राणीगण के लिये भयप्रद भी है। इस पथ पर मानव यमलोक कैसे जाते हैं? इस पथ का परिमाण (माप) क्या है? हे वाग्मीप्रवर! यह आप कहें।।१-४।।

मुने पृच्छाम सर्वज्ञ ब्रूहि सर्वमशेषतः। कथं नरकदुःखानि नाऽऽप्नुवन्ति नरान्मुने॥५॥

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च। मानुषस्य च याम्यस्य लोकस्य किमदन्तरम्॥६॥

कथं च स्वर्गतिं यान्ति नरकं केन कर्मणा।
स्वर्गस्थानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च॥७॥

कथं सुकृतिनो यान्ति कथं दुष्कृतकारिणः।
किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि।
जीवस्य नीयमानस्य यमलोकं ब्रवीहि नः॥८॥

हे मुनिप्रवर! आप सर्वज्ञाता हैं। तभी हम आपसे यह जिज्ञासा कर रहे हैं। मनुष्य किस उपाय से, दान-धर्म-नियम करने से नरकयातना भोग नहीं करते? मनुष्य लोक से यम लोक की दूरी क्या है? किस कर्म से मनुष्य नरक तथा किस कर्म द्वारा स्वर्ग चला जाता है? स्वर्ग तथा नरक में भी कितने स्थान हैं? सुकृति करने वाले कैसे जाते हैं? दुष्कृतिशाली कैसे जाते हैं? यमलोक में ले जाये गये इन दोनों प्रकार के प्राणियों का रूप, परिमाण तथा वर्ण क्या होता है? आप कृपा पूर्वक कहें।।५-८।।

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला वदतो मम सुव्रताः। संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते॥९॥

सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम्।
उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति॥१०॥

स्वरूपं चैव मार्गस्य यन्मां पृच्छथ सत्तमाः।
यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च॥११॥
योजनानां सहस्त्राणि षडशीतिस्तदन्तरम्। तप्तताम्रमिवाऽऽतप्तं तदध्वानमुदाहृतम्॥१२॥
तदवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जीवसंज्ञकैः।
पुण्यान्पुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतोऽधमाः॥१३॥
द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः।
येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक्॥१४॥

व्यासदेव कहते हैं—हे सुव्रतगण, मुनिशार्दूलवृन्द! मैं यह प्रसंग कहता हूं। श्रवण करिये! जिसमें कभी स्थिरता नहीं है, मैं उस अजेय संसारचक्र का वर्णन करता हूं। सुनिये। मैं आप लोगों से मरणकाल का समग्र यममार्ग वृत्तान्त इस प्रकार से कहूंगा, जिस प्रकार कोई नहीं कह सकता। हे सत्तमगण! आपने जो मुझसे यमलोक का मार्ग पूछा है, वह यमलोक इस मनुष्य लोक से छियासी हजार योजन के पार है। यह मार्ग तप्त ताम्रमय है। जीवन का क्षय होने जाने पर इस मार्ग से प्राणियों को अवश्य जाना होगा। तथापि पुण्यकर्मा सुख के साथ तथा अधम पातकी लोग इसे दुःख भोगते पार कर पाते हैं। यम के शासन में बाईस नरक स्थित हैं। इन सबमें दुष्कर्मी लोग अलग-अलग छोड़े जाते हैं।।९-१४।।

नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च।
कुम्भीपाको महाघोरः शाल्मलोऽथ विमोहनः॥१५॥
कीटादःकृमिभक्षश्च ना (ला) लाभक्षो भ्रमस्तथा।
नद्यः पूयवहाश्चान्या रुधिराम्भस्तथैव च॥१६॥
अग्निज्वाला महाघोरः संदंशः शुनभोजनः। घोरा वैतरणी चैव असिपत्रवनं तथा॥१७॥
न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागाः सरांसि च।
न वाप्यो दीर्घिका वाऽपि न कूपो न प्रपा सभा॥१८॥
न मण्डपो नाऽऽयतनं न नद्यो न च पर्वताः।
न किञ्चिदाश्रमस्थानं विद्यते तत्र वर्त्मनि॥१९॥
यत्र विश्रमते श्रान्तः पुरुषोऽतीवकर्षितः। अवश्यमेव गन्तव्यः स सर्वैस्तु महापथः॥२०॥
प्राप्ते काले तु संत्यज्य सुहृद्बन्धुधनादिकम्।
जरायुजाण्डजाश्चैव स्वदेजाश्चोद्भिजास्तथा॥२१॥
जङ्गमाजङ्गमाश्चैव गमिष्यन्ति महापथम्। देवासुरमनुष्यैश्च वैवस्वतवशानुगैः॥२२॥
स्त्रीपुंनपुंसकैश्चैव पृथिव्यां जीवसंज्ञितैः।
पूर्वाह्णे चापराह्णे वा मध्याह्ने वा तथा पुनः॥२३॥
संध्याकालेऽर्धरात्रे वा प्रत्यूषे वाऽप्युपस्थिते। वृद्धैर्वा मध्यमैर्वाऽपि यौवनस्थैस्तथैव च॥२४॥

गर्भवासेऽथ बाल्ये वा गन्तव्यः स महापथः।
प्रवासस्थैगृर्हस्थैर्वा पर्वतस्थैः स्थलेऽपि वा॥२५॥

रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुंभीपाक, महाघोर शाल्मल, विमोहन, कीटाद, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, भ्रम, अग्निज्वाल, महाघोर सन्दंश, शुनभोजन आदि नरक कुण्ड तथा पूयवहा, रुधिरवहा (रुधिराम्भ) तथा घोरा वैतरणी आदि नदी, असिपत्रवन आदि नाना यातनास्थल यहां हैं। इस मार्ग पर ऐसा कोई छायाप्रद वृक्ष, तड़ाग, सरोवर, वापी, दीर्घिका, कूप, प्याऊ, सभा, मंडप, आयतन, नदी अथवा पर्वत जैसा कोई भी आश्रयस्थल नहीं है, जहां यमदूतों द्वारा खींचा जा रहा जीव एक क्षण भी विश्राम कर पाये। काल आ जाने पर सभी को सुहृद, बन्धु, धनादि त्याग कर इसी मार्ग से अवश्यमेव जाना होगा। सभी जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जंगम-अजंगम को मृत्यु के उपरान्त इसी महापथ से जाना होगा। देवता, असुर, मनुष्य, स्त्री, पुरुष, नपुंसक जितने भी पृथिवी के प्राणी हैं, वे सभी पूर्वाह्न, अपराह्न, मध्याह्न, सन्ध्याकाल अथवा अर्द्धरात्रि किंवा प्रातःकाल इसी महापथ से जाते हैं। भले ही वे वृद्ध, मध्यमायु वाले, युवक किंवा गर्भस्थ क्यों न हों। प्रवास में, गृह में, पर्वत पर अथवा स्थल पर।।१५-२५।।

क्षेत्रस्थैर्वा जलस्थैर्वा गृहमध्यगतैस्तथा। आसीनैश्चास्थितैर्वाऽपि शयनीयगतैस्तथा॥२६॥
जाग्रद्भिर्वा प्रसुप्तैर्वा गन्तव्यः स महापथः। इहानुभूय निर्दिष्टमायुर्जन्तुः स्वयं तदा॥२७॥
तस्यान्ते च स्वयं प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते।
जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः॥२८॥
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्रणैर्विमुच्यते।
विहाय सुमहत्कृत्स्नं शरीरं पाञ्चभौतिकम्॥२९॥
अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मजम्। दृढं शरीरमाप्नोति सुखदुःखोपभुक्तये॥३०॥

अथवा क्षेत्र में, जल में, गृह में, बैठे हों, खड़े हों अथवा शयन कर रहे हों, जाग्रत हों किंवा प्रसुप्त हों, मृत होने पर सभी को इसी मार्ग से जाना है। यहां निर्धारित आयु वाला भले ही भोगोपरान्त मरना न चाहे, तथापि समय आने पर सभी मृत हो जाते हैं। वे प्राणों से मुक्त हो जाते हैं। जल, आग, विष, शास्त्र, क्षुद्र रोग, गिरने आदि किसी भी निमित्त से जीव प्राण रहित हो जाता है। वह इस अत्यन्त महत्वमय पांचभौतिक देह को त्याग कर स्वकर्म जनित अन्य यातना भोगार्थ वैसा देह प्राप्त करता है। वह स्वकर्मज सुख-दुःख भोग हेतु दृढ़ देह पाता है।।२६-३०।।

तेन भुङ्क्ते स कृच्छ्राणि पापकर्ता नरो भृशम्।
सुखानि धार्मिको हृष्ट इह नीतो यमक्षये॥३१॥
ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः। भिनत्ति मर्मस्थानानि दीप्यमानो निरन्धनः॥३२॥
उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्तते।
भुज्यता (क्ताना) मम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत्॥३३॥
ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा। दत्ताः स तस्यामाह्लादमापदि प्रतिपद्यते॥३४॥

अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा।
सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाऽप्यन्नेन वै तदा॥३५॥
येनानृतानि नोक्तानि प्रतिभेदः कृतो न च।
आस्तिकः श्रद्धानश्च सुखमृत्युं स गच्छति॥३६॥

(यही यातना देह कहा गया है) उसी में व्यक्ति पापकर्मों का अत्यन्त दुःख झेलता है, लेकिन धर्मात्मा तो प्रसन्नता पूर्वक सुखलाभ करता है। तीव्र वायु शरीर में ऊष्मा वृद्धि करती है। वह ज्वलिताग्निवत् मर्मस्थानों को पक्व करती है। इससे उदान वायु ऊर्ध्वगामी होकर अन्न-पानादि की अधोगति को रोक देता है। तब देही अत्यन्त कष्ट से प्राणत्याग कर दुर्गम पथ से यमलोक ले जाया जाता है। जो लोग इहलोक में अन्नपानादि का दान किये रहते हैं, वे इस दुर्गम मार्ग पर आनन्दित होकर जाते हैं। जो मानव सश्रद्ध होकर अन्नदान किये रहता है, उसे यममार्ग पर भले ही अन्नाभाव हो, वह अन्नजनित तृप्तिलाभ करता है। जिसने झूठी बातें नहीं की हैं, किसी से प्रीतिभंग नहीं किया, जो आस्तिक तथा सश्रद्ध रहते हैं, वे सुख से मरते हैं।।३१-३६।।

देवब्राह्मणपूजायां निरताश्चानसूयकाः। शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः॥३७॥
यः कामान्नापि संरम्भान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत्। यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति॥३८॥
वारिदास्तृषितानां ये क्षुधितान्नप्रदायिनः। प्राप्नुवन्ति नराः काले मृत्युं सुखसमन्वितम्॥३९॥
शीतं जयन्ति धनदास्तापं चन्दनदायिनः। प्राणघ्नीं वेदनां कष्टां ये चानयोद्वेगधारिणः॥४०॥
मोहं ज्ञानप्रदातारस्तथा दीपप्रदास्तमः। कूटसाक्षी मृषावादी यो गुरुर्नानुशास्ति वै॥४१॥
ते मोहमृत्यवः सर्वे तथा याः वेदनिन्दकाः।
विभीषिणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः॥४२॥
आगच्छन्ति दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तथा। प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः॥४३॥

देवता, ब्राह्मण, पूजारत, शुद्धाचारी, असूया रहित (ईर्ष्या रहित), दानी, अकार्य करने में जिसे लज्जा हो ऐसे व्यक्ति सुख पूर्वक मृत होते हैं। जो व्यक्ति काम-क्रोध तथा द्वेष के कारण धर्मत्याग नहीं करते, जो शास्त्रोक्त कर्म करते हैं, सौम्य स्वभाव हैं, उनकी मृत्यु सुख पूर्वक होती है। जो पिपासायुक्त को जल प्रदान करते हैं, भूखे को अन्न देते हैं, वे मनुष्य यथाकाल मृत होते हैं (अकाल में मृत नहीं होते)। उनकी सुख पूर्वक मृत्यु होती है। जो अन्य को उद्विग्न करते हैं, वे प्राणनाशक दारुण वेदना भोग करते हैं। धनदाता शीतजय कर लेते हैं (नरक मार्ग में उनको जाते समय शीत नहीं सताती)। चन्दन दाता व्यक्ति वहां के मार्ग के ताप पर विजय पा लेते हैं। ज्ञानादाता मोह रहित वहां रहते हैं। दीपदाता यमपथ पर दुस्तर अन्धकार से त्राण पा लेते हैं। जो गुरु शिष्य को यथायोग्य शिक्षा नहीं देते, जो झूठी गवाही देते हैं, वे मरणकाल में मोहाभिभूत हो जाते हैं। उनको लेकर जाने वाले यमदूत दुर्गन्धित, क्रूर, भीषणाकृति मुद्गरधारी होते हैं। उनको देखते ही मुमूर्षु भयकम्पित हो जाता है।।३७-४३।।

क्रन्दत्यविरतः सोऽथ भ्रातृमातृपितॄ स्तथा।
सा तु वागस्फुटा विप्रा एकवर्णा विभाव्यते॥४४॥

दृष्टिर्विभ्राम्यते त्रासात्कासावृष्ट्त्य (विष्टम) थाऽऽननम्।
ततः स वेदनाविष्टं तच्छशरीरं विमुञ्चति॥४५॥
वाय्वग्रसारी तद्रूपदेहमन्यत्प्रपद्यते। तत्कर्मयातनार्थे च न मातृपितृसम्भवम्॥४६॥
तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैः प्राप्यते व्यथा।
ततो दूतो यमस्याथ पाशैर्बध्नाति दारुणैः॥४७॥
जन्तोः सम्प्राप्तकालस्य वेदनार्तस्य वै भृशम्।
भूतैः सन्त्यक्तदेहस्य कण्ठप्राप्तानिलस्य च॥४८॥
शरीराच्च्यावितो जीवो रोरवीति तथोल्बणम्। निर्गतो वायुभूतस्तु षाट्कौशिककलेवरे॥४९॥

उस समय वह मुमूर्षु व्यक्ति भाई, माता, पिता आदि को पुकारता अविरत क्रन्दन करता है। हे विप्रगण! उस समय उसके मुख से ये शब्द बाहर नहीं निकलते। लगता है वह एक ही अक्षर बोल पा रहा है। त्रास के कारण उसकी दृष्टि विभ्रान्त होती है। खांसी से कफ से कण्ठ रुद्ध हो जाता है। इस क्रमिक यन्त्रणा द्वारा क्लिष्ट होकर वह देहत्याग कर अपने ही समान वायुमय देहान्तर प्राप्त करता है। यह देह माता-पिता के संयोग से नहीं उत्पन्न होता। वह देह पूर्ववत् आयु वाला, उसी आकार का तथा उसी अंग-प्रत्यंग वाला होता है। मृत व्यक्ति कृत कर्म के फलभोगार्थ ही ऐसा शरीर पाता है। मृत्युकालासन्न जन्तु को यमदूत दारुण पाश से बांध कर खींचते हैं। पंचभूत उस देह का त्याग कर देते हैं। प्राणवायु कण्ठगत हो जाता है। ऐसी स्थिति में प्राणी अत्यन्त रुदन करता देह से बहिर्गत् होता है। वह वायुभूत षट्कौशिक अन्य देह में प्रवेश करता है।।४४-४९।।

मातृभिः पितृभिश्चैव भ्रातृभिर्मातुलैस्तथा। दारैः पुत्रैर्वयस्यैश्च गुरुभिस्त्यज्यते भुवि॥५०॥
दृश्यमानश्च तैर्दीनैरश्रुपूर्णेक्षणैर्भृशम्। स्वशरीरं समुत्सृज्य वायुभूतस्तु गच्छति॥५१॥

उस समय मृतक के माता, पिता, भाई, मामा, स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव तथा गुरुजनादि उसके प्राण रहित देह को पृथिवी पर रख कर अश्रुसिक्त नयनों से उसे देखते हैं। तथापि वह वायुभूत जीव अपने पार्थिव देह को त्याग कर वहां से गमन करता है।।५०-५१।।

अन्धकारमपारं च महाघोरं तमोवृतम्। सुखदुःखप्रदातारं दुर्गमं पापकर्मणाम्॥५२॥
दुःसहं च दुरन्तं च दुर्निरीक्षं दुरासदम्। दुरापमतिदुर्गं च पापिष्ठानां सदाऽहितम्॥५३॥
कृष्यमाणाश्च तैर्भूतैर्याम्यैः पाशैस्तु संयताः।
मुद्गैरस्ताड्यमानाश्च नीयन्ते तं महापथम्॥५४॥
क्षीणायुषं समालोक्य प्राणिनं चाऽऽयुषक्षये।
निनीषवः समायान्ति यमदूता भयङ्कराः॥५५॥
आरूढा यानकाले तु ऋक्षव्याघ्रखरेषु च। उष्ट्रेषु वानरेष्वन्ये वृश्चिकेषु वृकेषु च॥५६॥
उलूकसर्पमार्जारं तथाऽन्ये गृध्रवाहनाः। श्येनशृगालमारूढाः सरघाकङ्कवाहनाः॥५७॥
वराहपशुवेतालमहिषास्यास्तथा परे। नानारूपधरा घोराः सर्वप्राणिभयङ्कराः॥५८॥

दीर्घमुष्काः करालास्या वक्रनासास्त्रिलोचनाः। महाहनुकपोलास्याः प्रलम्बदशनच्छदाः॥५९॥
निर्गतैर्विकृताकारैर्दशनैरङ्कुरोपमैः। मांसशोणितदिग्धाङ्गा दंष्ट्राभिर्भृशमुल्बणैः॥६०॥
मुखैः पातालसदृशैर्ज्वलज्जिह्वैर्भयंकरैः। नेत्रैः सुविकृताकारैर्ज्वलत्पिङ्गलचञ्चलैः॥६१॥
मार्जारोलूकखद्योतशक्रगोपवुद्धतैः। केकरैः संकुलैस्तब्धैर्लोचनैः पावकोपमैः॥६२॥

इसके अनन्तर यमदूत उसे यमपाश बद्ध करके खींचते हुये तथा मुद्‌गर से मारते पापियों के लिये सदा कष्टप्रद, दुःसह, दुर्निरीक्ष्य, दुर्गम, अतिदीर्घ, भयंकर महापथ पर से ले जाते हुये यमराज के यहां पहुंचा देते हैं। प्राणियों की जब आयु का क्षय हो जाता है, तब उल्लू, व्याघ्र, गर्दभ, ऊंट, वानर, बिच्छू, बाज, शृगाल, मधुमक्खी, बकुले आदि अनेक वाहनों पर बैठ कर सभी को भयप्रद लगने वाले नाना रूपधारी शूकर, पशु, वेताल, महिष की मुखाकृति वाले, लम्बित अण्डकोष, विकराल मुखी, वक्र नासिका, त्रिनेत्र, महान् ठुड्डी वाले, महान् कपोल तथा विशाल मुख वाले, लम्बदन्त, विकृताकृति, बड़े दांतों वाले, क्षुद्र दांतों वाले, भयानक दाढ़ों वाले, मांस-शोणित से लिप्त, पाताल जैसे गहरे मुख वाले, लपलपाती जीभ वाले, विकृत नेत्र, जलते नेत्र वाले, पिंगलवर्ण नेत्र वाले, चंचल नेत्र, भैंगीं आंखों वाले, संकीर्ण तथा एकटक देखने वाले नेत्रों से युक्त, शुष्कनेत्र, अग्नि उगलते नेत्रों वाले, मार्जार-उलूक-जुगनू-बीरबहूटी कीट जैसे नेत्रों वाले वे यमदूत आते हैं।।५२-६२।।

भृशमाभरणैर्भीमैराबद्धैर्भुजगोपमैः। शोणसरलगात्रैश्च मुण्डमालाविभूषितैः॥६३॥
कण्ठस्थकृष्णसर्पैश्च फूत्काररवभीषणैः। वह्निज्वालोपमैः केशैस्तब्धरूक्षैर्भयङ्करैः॥६४॥
बभ्रुपिङ्गललोलैश्च कद्रुश्मश्रुभिरावृताः। भुजदण्डैर्महाघोरैः प्रलम्बैः परिघोपमैः॥६५॥

उनमें से कोई सर्पवत् भूषणों से आबद्ध, कोई भयंकर सर्पवत् फूत्कार करने वाले, कोई रक्तवर्ण, कोई वक्र अंगों वाला, कोई मुण्डमाला धारी, कोई गले में काला सर्प पहने, किसी के बाल अग्निशिखा जैसे, कोई रूखे बालों वाला, किसी के केश भयंकर तथा ऊर्ध्व में फहराने वाले, किसी की दाढ़ी मूछें लाल, पिंगल, पक्व तथा कद्रुवर्ण की थीं। वे महाभयानक तथा बरछे जैसे लम्बी भुजा वाले यमदूत आते हैं।।६३-६५।।

केचिद् द्विबाहवस्तत्र तथाऽन्ये च चतुर्भुजाः। द्विरष्टाबाहवश्चान्ये दशविंशभुजास्तथा॥६६॥
असंख्यातभुजाश्चान्ये केचिद्बाहुसहस्रिणः। आयुधैर्विकृताकारैः प्रज्वलद्भिर्भयानकैः॥६७॥
शक्तितोमरचक्राद्यैः सुदीप्तैर्विविधायुधैः। पाशशृंखलदण्डैश्च भीषयन्तो महाबलाः॥६८॥

आगच्छन्ति महारौद्रा मर्त्यानामायुषः क्षये।
ग्रहीतुं प्राणिनः सर्वं यमस्याऽऽज्ञाकरास्तथा॥६९॥

कोई दो भुज, कोई चतुर्भुज, कोई दसभुज, कोई बीस भुजा वाला, कोई हजार भुजा, कोई असंख्य भुजा वाला यमदूत होता है। वे हाथों में विकृताकृति प्रज्वलन्त भयानक आयुध लिये रहते हैं। शक्ति, तोमर, चक्र तथा सुदीप्त विविध आयुध, पाश, सिकड़ी, दण्ड से वे मृतक आत्मा को भयभीत करते हैं। वे मृत्युलोक में आयु समाप्त होने पर इस प्रकार प्राणियों को ले जाने हेतु आगमन करते हैं।।६६-६९।।

यत्तच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मजम्। तदस्य नीयते जन्तोर्यमस्य सदनं प्रति॥७०॥

बद्ध्वा तत्कालपाशैश्च निगडैर्वज्रशृङ्खलैः। ताडयित्वा भृशं क्रुद्धैर्नीयते यमकिङ्करैः॥७१॥

प्रस्खलन्तं रुदन्तं च आक्रोशन्तं मुहुर्मुहुः। हा तात मातः पुत्रेति वदन्तं कर्मदूषितम्॥७२॥

आहत्य निशितैः शूलैर्मुद्गरैर्निशितैर्घनैः। खड्गशक्तिप्रहारैश्च वज्रदण्डैः सुदारुणैः॥७३॥

भर्त्स्यमानो महारावैर्वज्रशक्तिसमन्वितैः।
एकैकशो भृशं क्रुद्धैस्ताडयद्भिः समन्ततः॥७४॥

स मुह्यमानो दुःखार्तः प्रप्तपंश्च इतस्ततः। आकृष्य नीयते जन्तुरध्वानं सुभयंकरैः॥७५॥

जीव अपने कर्मानुरूप यातनादेह ग्रहण करता है। यमदूत उस यातनादेहस्थ जीव को पकड़ कर यमालय ले जाते हैं। जब क्रोधित यमसेवक वज्र के समान दृढ़ सिक्कड़, बेड़ी-पाशादि में बांध कर जीव को ले जाते हैं, तब वह प्राणी हा तात, हा माता, हा पुत्र! इत्यादि रूप से चीत्कार-रोदन करते-करते लड़खड़ाते हुये चला जाता है। भयंकर दूतगण प्रत्येक पापी पर आक्रमण करते हुये, तर्जन तथा भर्त्सना करते हुये सुदारुण तीक्ष्ण शूल, मुद्गर, खड्ग, शक्ति, वज्र तथा दण्डों से प्रहार करके आकर्षण करते हैं। वे पापी यातना से अवसन्न होकर गिरते-पड़ते उस महापथ का अतिक्रम करते हैं।।७०-७५।।

कुशकण्टकवल्मीकाङ्कुपाषाणशर्करे। तथा प्रदीप्तज्वलने क्षारवज्रशतोत्कटे॥७६॥

प्रदीप्तादित्यतप्तेन दह्यमानस्तदंशुभिः। कृष्यते यमदूतैश्च शिवासंनादभीषणैः॥७७॥

विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणः शिवाशतैः।
प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्मा यमालयम्॥७८॥

क्वचिद्भीतैः क्वचित्त्रस्तैः प्रस्खलद्भिः क्वचित्क्वचित्।
दुःखेनाऽक्रन्दमानैश्च गन्तव्यः स महापथः॥७९॥

इस पथ पर कुश, कंटक, दीमक की बांबी, शकु, पाषाण, कंकड़ भरे पड़े हैं। वह मार्ग प्रदीप्त आदित्यताप से अतीव उत्तप्त है। इसमें शत-शत सियारिनें भीषण निनाद करते हैं। पापी जीव इस दारुण पथ से उन सियारिनों द्वारा काटे तथा खाये जाते हैं। इस प्रकार अतीव क्लेश से यमालय की ओर जाते हैं। इस महापथ पर उक्त जीव कहीं भयभीत तथा कहीं त्रस्त भाव से, रोते, कहीं गिरते-पड़ते, आक्रोश करते उस महापथ पर जाता है।।७६-७९।।

निर्भर्त्स्यमानैरुद्विग्नैर्विद्रुतैर्भयविह्वलैः। कम्पमानशरीरैस्तु गन्तव्यं जीवसंज्ञकैः॥८०॥

कण्टकाकीर्णमार्गेण संतप्तसिकतेन च। दह्यमानैस्तु गन्तव्यं नरैर्दानविवर्जितैः॥८१॥

मेदःशोणितदुर्गन्धैर्बस्तगात्रैश्च पूगशः। दग्धस्फुटत्वचाऽऽकीर्णैर्गन्तव्यं जीवघातकैः॥८२॥

वह व्यक्ति यमदूतों से भर्त्सना द्वारा उद्विग्न एवं भयविह्वल तथा कम्पित शरीर से खड़ा हो जाता है। जो इहलोक में दान नहीं किये रहता, ऐसे जीव कण्टकाकीर्ण तथा उत्तप्त बालू से पूर्ण दारुण पथ पर दग्धप्रायः होकर जाता है। जीवगण का हत्यारा यह यम मार्ग मेदमय तथा शोणित द्वारा दुर्गन्धमय कहीं दग्ध जली त्वचा, मनुष्यों की वसा जैसे दुर्गन्धित शरीर धारण करके जाता है।।८०-८२।।

कूजद्भिः क्रन्दमानैश्च विक्रोशद्भिश्च विस्वरम्।
वेदनार्तैश्च सद्भिश्च गन्तव्यं जीवघातकैः॥८३॥
शक्तिभिर्भिन्दपालैश्च खड्गतोमरसायकैः। भिद्यद्भिस्तीक्ष्णशूलाग्रैर्गन्तव्यं जीवघातकैः॥८४॥
श्वानैर्व्याघ्रैर्वृकैः कङ्कैर्भक्ष्यमाणैश्च पापिभिः॥८५॥
कृन्तद्भिः क्रकचाघातैर्गन्तव्यं मांसखादिभिः। महिषर्षभशृङ्गाग्रैर्भिद्यमानैः समन्ततः॥८६॥
उल्लिखद्भिः शूकरैश्च गन्तव्यं मांसखादकैः। सूचीभ्रमरकाकोलमक्षिकाभिश्च सङ्घशः॥८७॥

जीवों का प्राण हरण करने वाला व्यक्ति शक्ति, तोमर, खड्ग, भिन्दिपाल, बाण, क्रकच तथा तीक्ष्ण शूलाग्रादि से विद्ध तथा छिन्न-भिन्न किया जाता है। कभी उस पथ पर जाने वाले पापी कुत्तों, बाघ, भेड़िया तथा श्वेत चील द्वारा खाया जाता है। मांस खाने वाला व्यक्ति आरे से चीरा जाता है। वह कभी महिष, वृष के शृंग से भेदा जाता है। वह कभी शूकरों के दन्त के द्वारा चीरा जाता है। कहीं सूई, भ्रमर, काकोल, मक्खी, मधुमक्खी द्वारा चीरा जाता है।।८३-८७।।

भुज्यमानैश्च गन्तव्यं पापिष्ठैर्मधुघातकैः।
विश्वस्तं स्वामिनं मित्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत्॥८८॥
शस्त्रैर्निकृत्यमानैश्च गन्तव्यं चातुरैर्नरैः। घातयन्ति च ये जन्तूंस्ताडयन्ति निरागसः॥८९॥
राक्षसैर्भक्ष्यमाणास्ते यान्ति याम्यपथं नराः। ये हरन्ति परस्त्रीणां वरप्रावरणानि च॥९०॥
ते यान्ति विद्रुता नग्नाः प्रेतीभूता यमालयम्।
वासो धान्यं हिरण्यं वा गृहक्षेत्रमथापि वा॥९१॥
ये हरन्ति दुरात्मानः पापिष्ठाः पापकर्मिणः। पाषाणैर्लगुडैर्दण्डैस्ताड्यमानैस्तु जर्जरैः॥९२॥
वहद्भिः शोणितं भूरि गन्तव्यं तु यमालयम्। ब्रह्मस्वं ये हरन्तीह नरा नरकनिर्भयाः॥९३॥
ताडयन्ति तथा विप्रानाक्रोशन्ति नराधमाः।
शुष्ककाष्ठनिबद्धास्ते छिन्नकर्णाक्षिनासिकाः॥९४॥

ऐसी स्थिति मधुमक्खी को शहद हेतु मारने वालों की भी होती है। विश्वास करने वाले स्वामी, मित्र, स्त्री का वध करने वाला शस्त्रों से आहत होता यममार्ग से जाता है। निरपराध जीवों का घात करने वाला वह यमपथ पर राक्षसों द्वारा भक्षित होता है। इसी तरह भक्षित होता वह जाता है। परनारी का दुपट्टा हरण करने वाला प्रेत की तरह नग्न करके उस पथ को पार करता है। जो दुरात्मा पापीगण वस्त्र, स्वर्ण, गृह तथा क्षेत्रादि का हरण करता है, वह यममार्ग पर पाषाण, लाठी, दण्डों द्वारा जर्जर करके पीटा जाता है। वह रक्त से आप्लुत किंवा आक्रोश पूर्वक यमगण द्वारा दुर्वाक्य सुनता मार्ग पार करता है। जो नराधम ब्रह्मस्व का हरण करता है, विप्रों को आघात पहुंचाता है, उसे यमगण सूखे काष्ठ से आबद्ध करके उसके कान, नाक काट कर आंखें भी फोड़ देते हैं।।८८-९४।।

पूयशोणितदिग्धास्ते कालगृध्रैश्च जम्बुकैः। किङ्करैर्भीषणैश्चण्डैस्ताड्यमानाश्च दारुणैः॥९५॥

विक्रोशमना गच्छन्ति पापिनस्ते यमालयम्। एवं परमदुर्धर्षमध्वानं ज्वलनप्रभम्॥९६॥
रौरवं दुर्गविषमं निर्दिष्टं मानुषस्य च। प्रतप्तताम्रवर्णाभं वह्निज्वालास्फुलिङ्गवत्॥९७॥

उसका शरीर मवाद, रक्त से सना रहता है। काल के समान गृद्ध तथा शृगाल उसका भक्षण करते हैं। भीषण यमकिंकर उस पर प्रहार करते हैं। दारुण रूप से उसे ताड़ना देते हैं। वैसा पापी व्यक्ति आक्रोशित होता यमलोक जाता है। यह रौरव नरक जैसा यममार्ग पापीगण हेतु परम दुर्धष, जलता हुआ, कठिन, विषम उनके लिये है, जो पापकर्मा व्यक्ति हैं। यह मार्ग उत्तप्त ताम्रवर्ण की आभा वाला है। यह अग्नि ज्वाला की चिनगारियों जैसा है।।९५-९७।।

कुरण्टकण्टकाकीर्णं पृथुविकटताडनैः। शक्तिवज्रैश्च सङ्कीर्णमुज्ज्वलं तीव्रकण्टकम्॥९८॥
अङ्गारवालुकामिश्रं वह्निकीटकदुर्गमम्। ज्वालामालाकुलं रौद्रं सूर्यरश्मिप्रतापितम्॥९९॥

यह पथ शृंग जैसे दृढ़ अंकुरों से भरा शक्ति, वज्र तथा उज्ज्वल तीव्र कुरन्टों (कांटों से) व्याप्त है। यहां की बालू पूर्णतः तपती रहती है। यह मार्ग अग्नि तथा कीड़ों की भरमार के कारण अत्यन्त दुर्गम है। ज्वालाओं से समाकुल और भयानक सूर्य किरणों से सन्तप्त है।।९८-९९।।

अध्वानं नीयते देही कृष्यमाणः सुनिष्ठुरैः।
यदेव क्रन्दते जन्तुर्दुःखार्तः पतितः क्वचित्॥१००॥
तदैवाऽऽहन्यते सर्वैरायुधैर्यमकिंकरैः। एवं संताड्यमानश्च लुब्धः पापेषु योऽनयः॥१०१॥
अवशो नीयते जन्तुर्दुर्धरैर्यमकिंकरैः। सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वानं तत्सुदुर्गमम्॥१०२॥
नीयते विविधैर्घोरैर्यमदूतैरवज्ञया। नीत्वा सुदारुणं मार्गं प्राणिनं यमकिंकरैः॥१०३॥
प्रवेश्यते पुरीं घोरां ताम्रायसमयीं द्विजाः। सा पुरी विपुलाकारा लक्षयोजनमायता॥१०४॥
चतुरस्रा विनिर्दिष्टा चतुर्द्वारवती शुभा।
प्राकाराः काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिताः॥१०५॥
इन्द्रनीलमहानीलपद्मरागोपशोभिता। सा पुरी विविधैः सङ्घैर्घोरा घोरैः समाकुला॥१०६॥

अत्यन्त निर्दयी यमकिंकर द्वारा इस प्रकार वह पापी अवज्ञा पूर्वक ताड़ित एवं उत्पीड़ित किया जाता पूर्णतः घसीटा जाता और परवश होकर ले जाया जाता है। इससे जब वह क्रन्दन-रुदन करता है, तब वे यमदूत उस पर और प्रहार करते हैं। इस प्रकार विधि एवं नियम का जीवन काल में उल्लंघन करने वाले पापी लोगों को इस दुर्गम पथ पर ले जाते हैं। हे द्विजप्रवरगण! यमदूतगण अत्यन्त अवज्ञा के साथ प्राणी को दुर्गम पथ से ले जाते हुये अन्ततः उसे ताम्र-लौहमयी यमपुरी में प्रवेश कराते हैं। यह महानगर अत्यन्त फैला हुआ तथा एक लाख योजन विस्तार का है, जिसमें चौकोर, चार द्वार वाली एक सुन्दर पुरी है, जो दस हजार योजन विस्तार वाली दीवाल से घिरी है। यह दीवार स्वर्णमयी है। यह पुरी इन्द्रनील, महानील तथा पद्मराग प्रभृति मणियों से भूषित भी है। एवंविध यह पुरी घोर-अघोर, दोनों ही प्रकार के उपचारों से युक्त है।।१००-१०६।।

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः। पूर्वद्वारं शुभं तस्याः पताकाशतशोभितम्॥१०७॥

वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यमुक्ताफलविभूषितम्। गीतनृत्यैः समाकीर्णं गन्धर्वाप्सरसां गणैः॥१०८॥
प्रवेशस्तेन देवानामृषीणां योगिनां तथा।
गन्धर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम्॥१०९॥
उत्तरं नगरद्वारं घण्टाचामरभूषितम्। छत्रचामरविन्यासं नानारत्नैरलंकृतम्॥११०॥
वीणारेणुरवै रम्यैर्गीतमङ्गलनादितैः। ऋग्यजुःसामनिर्घोषैर्मुनिवृन्दसमाकुलम्॥१११॥
विशन्ति येन धर्मज्ञाः सत्यव्रतपरायणाः।
ग्रीष्मे वारिप्रदा ये च शीते चाग्निप्रदा नराः॥११२॥
श्रान्तसंवाहका ये च प्रियवादरताश्च ये। ये च दानरताः शूरा मातापितृपराश्च ये॥११३॥
द्विजशुश्रूषणे युक्ता नित्यं येऽतिथिपूजकाः।
पश्चिमं तु महाद्वारं पुर्या रत्नैर्विभूषितम्॥११४॥

इसका पूर्व दिशा वाला द्वार अतीव मनोहर लगता है। वह सैकड़ों पताकाओं से शोभित, हीरा-इन्द्रनील-वैदूर्य तथा मोतियों से विभूषित है। यह द्वार देवता, यक्ष, दानव, राक्षस तथा सर्पों से समाकीर्ण है। यह अप्सरा-गन्धर्वादि के नृत्य-गीत से मुखरित बना रहता है। इस द्वार से इस पुरी में देव, ऋषि, योगी, गन्धर्व, सिद्धगण, यज्ञ तथा विद्याधर एवं पन्नगादि ही प्रविष्ट होते हैं। इस पुरी का उत्तर दिशा वाला द्वार घंटा, चामर, छत्र आदि से भूषित, विविध रत्नों से अलंकृत रहता है। वह वीणा, वेणु आदि रम्य मंगल वाद्यों से गूंजता रहता है। गीतों तथा मुनियों द्वारा की जा रही ऋक्-यजुः तथा सामवेद की ध्वनि से वह समाकुल रहता है। इस मार्ग से धर्मज्ञ एवं सत्यव्रत परायण, ग्रीष्म में जलदान करने वाले, शीत में लोगों हेतु अग्नि की व्यवस्था करने वाले, पथ श्रान्त व्यक्ति की सेवा करने वाले, प्रिय बोलने वाले, दानी-वीर-मातृपितृभक्त, ब्राह्मण सेवक, अतिथिपूजक इस द्वार से जाते हैं। इस पुरी का पश्चिमी द्वार सभी रत्नों से विभूषित है।।१०७-११४।।

विचित्रमणिसोपानं तोमरैः समलंकृतम्। भेरीमृदङ्गसन्नादैः शङ्खकाहलनादितम्॥११५॥
सिद्धवृन्दैः सदा हृष्टैर्मङ्गलैः प्रणिनादितम्।
प्रवेशस्तेन हृष्टानां शिवभक्तिमतां नृणाम्॥११६॥

इसमें विचित्र मणियों की सीढ़ियां हैं, यह तोमरों से सज्जित, सदा प्रसन्न रहने वाले सिद्धों से वादित ढोल, मृदंग, शंख, डमरू, काहल ध्वनि से निनादित है। इस द्वार से प्रसन्न चित्त वाले शिवभक्त मानव ही पुरी में प्रवेश करते हैं।।११५-११६।।

सर्वतीर्थप्लुता ये च पञ्चाग्नेर्ये च सेवकाः।
प्रस्थाने ये मृता वीरा मृताः कालञ्जरे गिरौ॥११७॥
अग्नौ विपन्ना ये वीराः साधितं वैरनाशकम्।
ये स्वामिमित्रलोकार्थे गोग्रहे सङ्कुले हताः॥११८॥
ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः।
पूर्यां तस्या महाघोरं सर्वसत्त्वभयङ्करम्॥११९॥

जो समस्त तीर्थों में स्नान करते हैं, जो पंचाग्नि सेवक हैं, जो वीर युद्ध में मृत होते हैं, कालंजर पर्वत पर देहत्याग करते हैं, अग्नि से घिरे व्यक्ति-प्राणी की रक्षा करते हैं, जो मित्र, गौ तथा अन्य को बचाने में प्राण त्याग देते हैं, ऐसे तपस्वी शूर इस पुरी में पश्चिम द्वार से प्रवेश पाते हैं। इस पुरी का दक्षिण द्वार महाघोर है तथा सभी प्राणीगण के लिये भयंकर है।।११७-११९।।

हाहाकारसमाक्रुष्टं दक्षिणं द्वारमीदृशम्। अन्धकारसमायुक्तं तीक्ष्णशृङ्गैः समन्वितम्॥१२०॥
कण्टकैर्वृश्चिकैः सर्पैर्वज्रकीटैः सुदुर्गमैः। विलुम्पद्भिर्वृकैर्व्याघ्रैर्ऋक्षैः सिंहैः सजम्बुकैः॥१२१॥
श्वानमार्जारगृध्रैश्च सज्वालकवलैर्मुखैः। प्रवेशस्तेन वै नित्यं सर्वेषामपकारिणाम्॥१२२॥
ये घातयन्ति विप्रान्गा बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्।
शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम्॥१२३॥
येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहारिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवह्निप्रदाश्च ये॥१२४॥
परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्रालंकारहारिणः। पररन्ध्रेषु ये क्रूरा ये सदाऽनृतवादिनः॥१२५॥
ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने महादुःखप्रदा हि ये। कूटसाक्षिप्रदातारः कन्याविक्रयकारकाः॥१२६॥
अभक्ष्यभक्षणरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्।
मातरं पितरं चैव ये वदन्ति च पौरुषम्॥१२७॥
अन्ये ये चैव निर्दिष्टा महापातककारिणः। दक्षिणेन तु ते सर्वे द्वारेण प्रविशन्ति वै॥१२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे यमलोकस्य मार्गस्वरूपाख्याननिरूपणं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१४।।

यह अतीव भयप्रद, अंधकार से ढंका, हाहाकार के चीत्कार से भरा है। यह तीक्ष्ण शृंग, काटों, बिच्छू, सर्प, वज्रकीटों से परिपूर्ण है। यह व्याघ्र, वृक (भेड़िया), भालू, सिंह, शृगाल, कुत्तों, बिलाव, गृध्र तथा अग्निमुखी मांसभक्षी जन्तुगण से परिपूर्ण है। यह द्वार समस्त अपकर्मा पापियों के प्रवेशार्थ निर्दिष्ट है। जो विप्र, गौ, बालक, वृद्ध, आतुर, शरणागत, विश्वासी, स्त्री, मित्र तथा अस्त्रहीन का वध करते हैं, जो मूढ़जन कन्या, पुत्रवधू जैसी अगम्या स्त्री से गमन करते हैं, अन्य का धन हरण करते हैं, धरोहर का हरण करते हैं, विष देते हैं, अग्नि से गृहादि दग्ध करते हैं, दूसरे की भूमि-शय्या-गृह-वस्त्र तथा अलंकारों का हरण कर लेते हैं, जो सदा दूसरे के भेद आदि जानने में लगे रहते हैं, जो ग्राम, नगर, राज्य का अनिष्ट करते, सदा झूठ बोलते हैं, झूठी गवाही देते हैं, कन्या विक्रय तथा अभक्ष्य भक्षण करते हैं, माता-पिता से कटु भाषण करते हैं, वे महापापी दक्षिण द्वार से यमपुरी में जाते हैं।।१२०-१२८।।

।।चतुर्दशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

दक्षिण मार्ग वर्णन

मुनय ऊचुः

कथं दक्षिणमार्गेण विशन्ति पापिनः पुरम्।
श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि विस्तरेण तपोधन॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे तपोधन! पापीगण दक्षिण मार्ग से किस प्रकार जाते हैं? हमें यह सुनने की इच्छा है। कृपया विस्तार से कहिये।।११।।

व्यास उवाच

सुघोरं तन्महाघोरं द्वारं वक्ष्यामि भीषणम्। नानाश्वापदसङ्कीर्णं शिवाशतनिनादितम्॥२॥
फेत्कारवसंयुक्तमगम्यं लोमहर्षणम्। भूतप्रेतपिशाचैश्च वृतं चान्यैश्च राक्षसैः॥३॥
एवं दृष्ट्वा सुदूरान्ते द्वारं दुष्कृतकारिणः। मोहं गच्छन्ति सहसा त्रासाद्विप्रलपन्ति च॥४॥
ततस्ताञ्शृङ्खलैः पाशैर्बद्ध्वा कर्षन्ति निर्भयाः।
ताडयन्ति च दण्डैश्च भर्त्सयन्ति पुनः पुनः॥५॥
लब्धसंज्ञास्तस्ते वै रुधिरेण परिप्लुताः। व्रजन्ति दक्षिणं द्वारं प्रस्खलन्तः पदे पदे॥६॥
तीव्रकण्टकयुक्तेन शर्करानिचितेन च। क्षुरधारानिभैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निचितेन च॥७॥

व्यासदेव कहते हैं—इस घोर दक्षिण द्वार का वर्णन सुनिये। पापी लोग दूर से ही नाना मांसभक्षी प्राणियों से भरे, सैकड़ों सियारिनों द्वारा निनादित, फुफकार ध्वनि से युक्त, भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षसों से समावृत, दुर्गम तथा लोमहर्षक दक्षिण द्वार को देख कर त्रस्त होकर भयवश विलाप करते हैं। भय रहित यमकिंकर उनको बेड़ी तथा यमपाश से बद्ध करके लगुड़ प्रहार करते तथा अपशब्द कहते हैं। अन्ततः वे पातकी चेतना लौटने पर प्रत्येक डग पर लड़खड़ाते, रुधिर से भरे अंगों की स्थिति में उस दक्षिण द्वार में जाते हैं, जहां का मार्ग तीखे कांटों वाला, कंकड़ों से भरा तथा छूरे की धार जैसे तीखे कांटों से परिपूर्ण है।।२-७।।

क्वचित्पङ्केन निचिता निरुत्तारैश्च खातकैः।
लोहसूचीनिभैर्दन्तैः संछन्नेन क्वचित्क्वचित्॥८॥
तटप्रपातविषमैः पर्वतैर्वृक्षसङ्कुलैः। प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः॥९॥
क्वचिद्विषमगर्ताभिः क्वचिल्लोष्टैः सुपिच्छलैः।
सुतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः॥१०॥
अयःशृङ्गाटकैस्तप्तैः क्वचिद्दावाग्निना युतम्।
क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद्व्याप्तं हिमेन च॥११॥

क्वचिद्वालुकया व्याप्तमाकण्ठान्तःप्रवेशया।
क्वचिद्दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचित्कर्षाग्निना पुनः॥१२॥

वहां कहीं तो भयानक कीचड़ का दलदल है, कहीं गंभीर खाईयां हैं, कहीं लौह की सूई ऐसे दण्ड जगह-जगह गड़े हैं। कोई स्थान अतीव उच्च है, तो कोई अतीव निम्न (नीचा) है। कोई स्थान पर्वतों से भरा होने के कारण दुर्गम है। कोई स्थल वृक्षों से ढंका है। कोई स्थान तपती बालू से भरा है। कहीं तीक्ष्ण कांटे हैं, कहीं लौह कीलें पूरे मार्ग में गड़ी हैं, कहीं दावाग्नि है, कहीं उत्तप्त शिलायें बिछी हैं, कहीं हिम है, कहीं कण्ठ तक बालू है, जो तप्त है, कहीं दूषित जल है, कहीं प्रबल अग्निताप है।।८-१२।।

क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्दंशकीटैश्च दारुणैः। क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिदजगरैः पुनः॥१३॥
मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्वणैः। क्वचिद्दुष्टगजैश्चैव बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः॥१४॥
पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महावृषैः। महाशृङ्गैश्च महिषैरुष्ट्रैर्मत्तैः खादनैः॥१५॥
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः।
व्याधिभिश्च महारौद्रैः पीड्यमाना व्रजन्ति ते॥१६॥

कहीं सिंह, कहीं गृध्र, कहीं व्याघ्र, कहीं डसने वाले जीव, कहीं मच्छर आदि दारुण कीट, कहीं महान् जोंक, कहीं अजगर, कहीं भयानक मक्खी, कहीं तीव्र विषैले सर्प, कहीं दुष्ट मत्त हाथी, कहीं तीखे-नुकीले सींग वाले मार्ग को सींगों से खोदते हुये बलोन्मत्त उच्छ्रिंखल महावृष, कहीं महाशृंग वाले भैंसें, कहीं अतीव उच्च मदमत्त ऊंट, कहीं अत्युग्र डाकिनियां, कहीं अति कराल राक्षस, कहीं महा भयंकर व्याधि, ये सब उस दक्षिण पथ पर रहते हैं। इस भीषण पथ से यमकिंकर पापियों को ले जाते हैं।।१३-१६।।

महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना। महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः॥१७॥
क्वचिद्विद्युन्निपातेन दीर्यमाणा व्रजन्ति ते। महता बाणवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वशः॥१८॥
पतद्भिर्वज्रनिर्घातैरुल्कापातैः सुदारुणैः। प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना विशन्ति च॥१९॥

ये पापीगण इस दक्षिण पथ द्वारा ले जाये जाते हैं। जहां धूलभरी प्रचण्ड आंधी चलती है। वहां वे भयंकर पत्थरों की वर्षा से आहत होते चलते हैं। इनको कहीं आश्रय नहीं मिलता। ये वहां पर विद्युत् गिरने से शीर्ण होते, महान् बाणवर्षा से छेदे जाते हैं। कहीं इन पर वज्राघात जैसा उल्कापात होता है, तो कहीं इन पर ज्वलन्त अंगारों की वर्षा होती है, वज्र प्रहार होता है। ऐसी स्थिति में ये पुरी में जाते हैं।।१७-१९।।

महता पांशुवर्षेण पूर्यमाणा रुदन्ति च। मेघारवैः सुघोरैश्च वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः॥२०॥
निःशेषाः शरवर्षेण चूर्ण्यमानाश्च सर्वतः।
महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना व्रजन्ति च॥२१॥
महाशीतेन मरुता रूक्षेण परुषेण च। समन्ताद्दीर्यमाणाश्च शुष्यन्ते सङ्कुचन्ति च॥२२॥
इत्थं मार्गेण पुरुषाः पाथेयरहितेन च। निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः॥२३॥
अतिश्रमेण महता निर्गतेनाऽऽश्रमाय वै। नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः॥२४॥

यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात्। एकाकिनः पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः॥२५॥
शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्ति च मुहुर्मुहुः। प्रेतीभूता निषिद्धास्ते शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः॥२६॥

कभी ये वहां महान् धूल वर्षा से ढंके जाकर रोते हैं। भयंकर मेघगर्जन से बारम्बार सन्त्रस्त होते जाते हैं। कभी दारुण बाणवर्षा से चूर्णित होते जाते हैं। कभी-कभी महान् क्षार जल की वर्षा से ओतप्रोत हो जाते हैं। कभी महाशीतल वायु बहने से सिकुड़ जाते हैं। कभी महान् रूखी कठोर वायु प्रवाह के कारण सूख जाते हैं। त्वचा विदीर्ण हो जाती है। यमदूत लोग ऐसे दुर्गम, जलहीन, मार्ग के पाथेय (भोजनादि) से रहित, आश्रय रहित पथ पर अत्यन्त थके, मूढ़ पापीगण को बलात् खींचते हुये यमलोक यमगृह तक ले जाते हैं। ये पतित लोग एकाकी, पराधीन स्थिति में मित्र-बन्धुगण से रहित स्थिति में अपने पूर्वकृत कर्मों को बारम्बार स्मरण करते रुदन करते हैं। इस प्रेतावस्था में जीव दूषित हो जाता है। उसके कंठ, तालु, ओष्ठादि शुष्कवत् हो जाते हैं।।२०-२६।।

कृशाङ्गा भीतभीताश्च दह्यमानाः क्षुधाग्निना।
बद्धाः शृङ्खलया केचित्केचिदुत्तानपादयोः॥२७॥
आकृष्यन्ते शुष्यमाणा यमदूतैर्बलोत्कटैः।
नरा अधोमुखाश्चान्ये कृष्यमाणाः सुदुःखिताः॥२८॥
अन्नपानीयरहिता याचमानाः पुनः पुनः। देहि देहीति भाषन्तः साश्रुगद्गदया गिरा॥२९॥
कृताञ्जलिपुटादीनाः क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः।
भक्ष्यानुच्चावचान्दृष्ट्वा भोज्यान्पेयांश्च पुष्कलान्॥३०॥

बलोन्मत्त यमदूतगण कृश अंगों वाले, भयभीत, क्षुधा की आग से दग्ध, शृंखला से बांधे गये, इन प्राणियों से किसी को पैर उठाये हुये, तो किसी को अधोमुख करके खींचते जाते हैं। ये अन्न-जल रहित प्राणी बारम्बार अश्रुपूर्ण स्वर से बारम्बार यमदूतों से दीनता पूर्वक याचना करते हैं कि "अन्नपान प्रदान करो।" वे दूरस्थ प्रचुर परिमाण में रखे भोजन-पान को देखकर बारम्बार हाथ जोड़कर याचना करते हैं।।२७-३०।।

सुगन्धद्रव्यसंयुक्तान्याचमानाः पुनः पुनः। दधिक्षीरघृतोन्मिश्रं दृष्ट्वा शाल्योदनं तथा॥३१॥
पानानि च सुगन्धीनि शीतलान्युदकानि च।
तान्याचमानांस्ते याम्या भर्त्सयन्तस्तदाऽब्रुवन्।
वचोभिः परुषैर्भीमाः क्रोधरक्तान्तलोचनाः॥३२॥

जब ये प्राणी उस दूरस्थ दधि, दुग्ध, घृत मिश्रित भात, सुगन्ध द्रव्यान्वित पेय की पुनः-पुनः याचना करते हैं, तब वे यमकिंकर क्रोध से रक्तवर्ण हो गये नेत्रों की स्थिति में अत्यन्त कठोर तथा उच्च स्वर में यह कहते हैं।।३१-३२।।

याम्या ऊचुः

न भवद्भिर्हुतं काले न दत्तं ब्राह्मणेषु च। प्रसभं दीयमानं च वारितं च द्विजातिषु॥३३॥

तस्य पापस्य च फलं भवतां समुपागतम्। नाग्नौ दग्धं जले नष्टं न हृतं नृपतस्करैः॥३४॥

कुतो वा साम्प्रतं विप्रे यत्र दत्तं पुराऽधमाः।
यैर्दत्तानि तु दानानि साधुभिः सात्त्विकानि तु॥३५॥

तेषामेते प्रदृश्यन्ते कल्पिता ह्यन्नपर्वताः। भक्ष्यभोज्याश्च पेयाश्च लेह्याश्चोष्याश्च संवृताः॥३६॥

न यूयमभिलप्स्यध्वे न दत्तं च कथञ्चन। यैस्तु दत्तं हुतं चेष्टं ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः॥३७॥

तेषामन्नं समानीय इह निक्षिप्यते सदा। परस्वं कथमस्माभिर्दातुं शक्येत नारकाः॥३८॥

यमकिंकर कहते हैं—पूर्व में तुम लोगों ने विहित समय पर होम नहीं किया, ब्राह्मण को दान नहीं दिया, यदि कोई द्विजों को दान देता भी था, तो उसे तुमने समझा कर रुकवा दिया, उसी पाप का फल अब यहां है। हे अधमगण! तुम लोगों का धन अग्नि में नहीं जला था, जल में नष्ट नहीं हुआ था, राजा अथवा दस्युओं ने भी उसका हरण नहीं किया था। तथापि तुमने कभी ब्राह्मणों को दान नहीं दिया! तब यहां तुमको अन्न-जल कैसे मिलेगा? जिन सब साधु प्रवृत्ति लोगों ने दान दिया है, उनके लिये यह सब नाना भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय, चोष्य विविध प्रकार का यह अन्न पर्वत यहां रखा है। तुम लोगों ने यह सब किसी को दान नहीं दिया। अतः उसकी अभिलाषा यहां मत करो। जो लोग दान, होम, यज्ञ तथा यज्ञ और ब्राह्मण पूजनादि कर चुके हैं, यहां उन लोगों के लिये ही यह सब भोग्य द्रव्य लाकर एकत्र किया गया है। हे नारकीयों! हम दूसरे की वस्तु तुम लोगों को किस प्रकार दे सकते हैं?।।३३-३८।।

व्यास उवाच

किङ्कराणां वचः श्रुत्वा निःस्पृहा क्षुत्तृषार्दिताः।
ततस्ते दारुणैश्चास्त्रैः पीड्यन्ते यमकिङ्करैः॥३९॥

मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च शक्तितोमरपट्टिशैः। परिघैर्भिन्दिपालैश्च गदापरशुभिः शरैः॥४०॥

पृष्ठतो हन्यमानाश्च यमदूतैः सुनिर्दयैः। अग्रतः सिंहव्याघ्राद्यैर्भक्ष्यन्ते पापकारिणः॥४१॥

न प्रवेष्टुं न निर्गन्तुं लभन्ते दुःखिता भृशम्।
स्वकर्मोपहताः पापाः क्रन्दमानाः सुदारुणाः॥४२॥

तत्र संपीड्य सुभृशं प्रवेशं यमकिङ्करैः। नीयन्ते पापिनस्तत्र यत्र तिष्ठेत्स्वयं यमः॥४३॥

धर्मात्मा धर्मकृद्देवः सर्वसंयमनो यमः। एवं पथाऽतिकष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं नराः॥४४॥

व्यासदेव कहते हैं—यमकिंकरों का यह कथन सुनकर क्षुधा-तृष्णा से पीड़ित पापी निराश हो जाते हैं। यमदूत भी पीछे से अब पापियों को मुद्गर, लौहदण्ड, शक्ति, तोमर, पट्टिश, परिघ, भिन्दिपाल, गदा, परशु, बाणादि नाना आयुधों द्वारा आहत करते हैं। सामने से सिंह, व्याघ्रादि मांसाहारी भी उसे खाने हेतु दौड़ पड़ते हैं। तब वे अपने कर्मों के मारे पातकी न तो आगे बढ़ पाते हैं, न पीछे लौट पाते हैं। अतः वे दुःख में क्रन्दन करते रहते हैं। यमकिंकर इस अवस्था में उनको और भी पीड़ित करके वहां ले जाते हैं, जहां धर्मात्मा धर्मव्यवस्थापक सर्वसंयमनकारी यमदेव विराजित हैं। एवंविध अति कष्टकारी मार्ग से पातकी लोग प्रेतपुरी जाते हैं।।३९-४४।।

प्रज्ञापितास्तदा दूतैर्निवेश्यन्ते यमाग्रतः। ततस्ते पापकर्माणस्तं पश्यन्ति भयानकम्॥४५॥
पापापविद्धनयना विपरीतात्मबुद्धयः। दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम्॥४६॥
ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुं प्रस्फुरदधरोत्तरम्। अष्टादशभुजं क्रुद्धं नीलाञ्जनचयोपयम्॥४७॥
सर्वायुधोद्यतकरं तीव्रदण्डेन संयुतम्। महामहिषमारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम्॥४८॥

यमदूतगण उनको यमराज के समक्ष ले जाते हैं। जो पापी व्यक्ति हैं, वे अपने पापदूषित नेत्रों से तथा अपनी विपरीत बुद्धि के कारण उनका दर्शन अतीव भयानक आकृति के रूप में करते हैं। वे देखते हैं कि उनका चेहरा दाढ़ तथा दांतों के कारण घोर रूप है, वे वक्र भ्रूभंगी वाले, ऊर्ध्वोत्थित केश वाले, दीर्घ दाढ़ी-मूंछ वाले हैं। उनके अधर क्रोध से फड़कते रहते हैं। वे अष्टादश भुजा वाले, सदा क्रोधित, नीलांजन समप्रभ, सभी आयुधों को उठाये हुये, तीव्र दण्ड धारण करने वाले, महान् विशाल महिष पर बैठे प्रज्वलन्त नेत्रों से युक्त हैं।।४५-४८।।

रक्तमाल्याम्बरधरं महामेघमिवोच्छ्रितम्। प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्निव महोदधिम्॥४९॥
ग्रसन्तमिव त्रैलोक्यमुद्गिरन्तमिवानलम्। मृत्युं च तत्समीपस्थं कालानलसमप्रभम्॥५०॥
प्रलयानलसङ्काशं कृतान्तं च भयानकम्। मारीचोग्रा महामारी कालरात्री च दारुणा॥५१॥
विविधा व्याधयः कष्टा नानारूपा भयावहाः। शक्तिशूलाङ्कशधराः पाशचक्रासिधारिणः॥५२॥
वज्रदण्डधरा रौद्राः क्षुरतूणधनुर्धराः। असङ्ख्याता महावीर्याः क्रूराश्चाञ्जनसप्रभाः॥५३॥
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः। अनेन परिवारेण महाघोरेण संवृतम्॥५४॥
यमं पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं विभीषणम्। निर्भर्त्सयति चाऽत्यर्थं यमस्तान्पापकारिणः॥५५॥
चित्रगुप्तस्तु भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयन्॥५६॥

उन्होंने रक्त वर्ण की माला धारण किया है। उनका शरीर महामेघ सा तथा शब्द प्रलयकालीन मेघों जैसा है। लगता है मानों वे समुद्रपान कर रहे हैं। लगता है मानों मुख से अग्नि निर्गत हो रही है। उनके पास कालाग्नि जैसे मृत्यु, प्रलयाग्नि तुल्य दीप्तिमान् भयानक कृतान्त, मारी, अत्यन्त उग्र महामारी, दारुणा कालरात्रि तथा कष्ट देने वाली नाना रूपधारी विविध व्याधियां भी विराजित हैं। इसके अतिरिक्त वहां अनेक यमकिंकरगण यमराज के चारों ओर चारों दिशाओं को घेर कर खड़े हैं। उन्होंने शक्ति, शूल, अंकुश, पाश, चक्र, तलवार, वज्र, दण्ड, छूरा, बाण तथा धनुष धारण किया है। वे अंजन वर्ण, कृष्णकाय, उग्रमूर्त्ति, भयानक तथा विविध आकृति वाले हैं। उन यमराज के पार्श्व में भयानक आकृति वाले चित्रगुप्त भी अवस्थान कर रहे हैं। पापी लोग यमराज को इस प्रकार से परिवार परिवेष्ठित, घोराकृति देखते हैं। यमराज इन पापीगण की अत्यन्त भर्त्सना करते हैं। भगवान् चित्रगुप्त इन पापीगण को धर्मवाक्य से प्रबोधित करने लगते हैं।।४९-५६।।

चित्रगुप्त उवाच

भो भो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारिणः। गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दकाः॥५७॥
यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः। तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम्॥५८॥

चित्रगुप्त कहते हैं—हे दुष्कृति कर्मा! पराया द्रव्य हरण करने वाले, परदारा का गमन करने वाले, अपने रूप-बल का गर्व करने वाले, प्राणी जो कर्म करते हैं, वही फल भोगते हैं। तुम लोगों ने अपना नाश स्वयं करने वाला दुष्कार्य किया है।।५७-५८।।

इदानीं किं नु शोचध्वं पीड्यमानाः स्वकर्मभिः।
भुञ्जध्वं स्वानि दुःखानि न हि दोषोऽस्ति कस्यचित्॥५९॥
य एते पृथिवीपालाः सम्प्राप्ता मत्समीपतः। स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञा बलगर्विताः॥६०॥
भो भो नृपाः दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः।
अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम्॥६१॥
राज्यलोभेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः। यद्दण्डिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः॥६२॥
कुतो राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम्। तत्सर्वं सम्परित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः॥६३॥
पश्यामो न बलं सर्वं येन विध्वंसिताः प्रजाः। यमदूतैः पाट्यमाना अधुना कीदृशं फलम्॥६४॥

अब तुम लोग अपने ही कर्म से पीड़ा पाकर शोक क्यों कर रहे हो? इस शोक का क्या फल मिलेगा? अब अपने कर्मों से उत्पन्न दुःखों को भी स्वयं भोगो। इसमें अन्य किसी का कोई दोष नहीं है। यह जो दुर्बुद्धि, बलगर्वित राजा मेरे समक्ष लाये गये हैं, हे प्रजा का ध्वंस करने वाले राजाओं! तुमने अल्पकालीन राज्य के लिये कौन दुष्कर्म नहीं किया? मोहवशात् राज्यलोभ के कारण अन्यायतः तुम लोगों ने प्रजाजन को दण्डित किया था। अब उसका फलभोग करो। जिस राज्य हेतु तुमने यह सब अशुभ कर्म किया था, वह राज्य कहां है? अब तो वह सब छोड़ कर तुम लोगों को यहां अकेले आना पड़ा। जिस बल पर तुमने प्रजाजन का विध्वंस किया था, अब तो वह बल कहीं परिलक्षित ही नहीं हो रहा है? यमदूतों से पिटाई होने पर अब तुम कैसा फललाभ कर रहे हो?।।५९-६४।।

व्यास उवाच

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपालब्धा यमेन ते।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति पार्थिवाः॥६५॥
इति कर्म समादिश्य नृपाणां धर्मराट्स्वयम्। तत्पातकविशुद्ध्यर्थमिदं वचनमब्रवीत्॥६६॥

व्यासदेव कहते हैं—एवंविध यमलोक में कहे गये अनेक उपालम्भ पूर्ण वाक्यों को सुनकर वे राजा मौनी रहते हुये अपने पूर्वकृत कर्म का विचार करने लगे। तदनन्तर स्वयं धर्मराज यम ने उन राजाओं का कर्मोल्लेख करते हुये उनके पापों की विशुद्धि हेतु दूतों को यह आदेश प्रदान किया।।६५-६६।।

यम उवाच

भो भोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान्।
विशोधयध्वं पापेभ्यः क्रमेण नरकाग्निषु॥६७॥

यमराज कहते हैं—हे चण्ड! हे महाचण्ड! इन राजाओं को क्रमानुसार नरकाग्नियों में फेंको तथा इनके द्वारा इनके कृत पापों का प्रायश्चित्त कराओ।।६७।।

व्यास उवाच

ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्सङ्गृह्य पादयोः।
भ्रामयित्वा तु वेगेन क्षिप्त्वा चोर्ध्वं प्रगृह्य च॥६८॥
तत्तत्पापप्रमाणेन यमदूताः शिलातले। आस्फोटयन्ति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमम्॥६९॥
ततस्तु रक्तं स्त्रोतोभिः स्त्रवते जर्जरीकृतः। निःसंज्ञः स तदा देही निश्चेष्टश्च प्रजायते॥७०॥
ततः स वायुना स्पृष्टः शनैरुज्जीवते पुनः। ततः पापविशुद्ध्यर्थं क्षिपन्ति नरकार्णवे॥७१॥
अन्यांश्च ते तदा दूताः पापकर्मरतान्नरान्।
निवेदयन्ति विप्रेन्द्रा यमाय भृशदुःखितान्॥७२॥

व्यासदेव कहते हैं—यमराज का आदेश सुनकर दूत शीघ्र उठते हैं और उन राजाों को उनके पापों के क्रमानुरूप दोनों पैर पकड़ कर सवेग घुमाकर ऊर्ध्व में फेंकते हैं तथा पुनः पकड़ कर शिलातल पर पटक देते हैं। जैसे बिजली गिरने से वृक्ष छिन्न होता है, उसी प्रकार पटके जाने पर इन राजाओं के जर्जरीकृत शरीर के मुख, नेत्रादि छिद्र से रुधिर बहता है, जिससे वे मूर्च्छित तथा चेष्टा रहित पड़े रहते हैं। जब वायुस्पर्श से वे पुनः चेतन होते हैं, तब यमदूत उनको ले जाकर नरक में फेंकते हैं। हे विप्रेन्द्रवृन्द! यमदूतगण इसी प्रकार से अति दु;खी प्राणियों को यम के पास लाकर एक-एक के सम्बन्ध में निवेदन करने लगते हैं।।६८-७२।।

यमदूता ऊचुः

एष देव तवाऽऽदेशादस्माभिर्मोहितो भृशम्।
आनीतो धर्मविमुखः सदा पापरतः परः॥७३॥
एष लुब्धो दुराचारो महापातकसंयुतः। उपपातककर्ता च सदा हिंसारतः शुचिः॥७४॥
अगम्यागामी दुष्टात्मा परद्रव्यापहारकः। कन्याक्रयी कूटसाक्षी कृतघ्नो मित्रवञ्चकः॥७५॥
अनेन मदमत्तेन सदा धर्मो विनिन्दितः। पापमाचरितं कर्म मर्त्यलोके दुरात्मना॥७६॥
इदानीमस्य देवेश विग्रहानुग्रहौ वद। प्रभुरस्य क्रियायोगे वयं वा परिपन्थिनः॥७७॥

यमदूत कहते हैं—हे देव! आपकी आज्ञा पाकर मैं धर्मविमुख तथा अतीव मोह प्राप्त पापी को लाया हूं। यह लोभी, दुराचारी, महापातकी, नाना उपपातक करने वाला, हिंसक तथा अशुद्ध है। अन्य दूसरा दुरात्मा अगम्या नारी से गमन करने वाला, परधन हरण कर्त्ता, कन्या विक्रेता, झूठी गवाही देने वाला, कृतघ्न तथा मित्र को ठगने वाला है। हे देवेश! यह अन्य वाला व्यक्ति मर्त्यलोक में सदा धर्मनिन्दक तथा पापकर्मा था। हे देवेश! यह अन्य व्यक्ति धर्मद्वेषी था। इसका निग्रह-अनुग्रह जो उचित हो, आप आदेश करिये। हम वही करेंगे।।७३-७७।।

व्यास उवाच

इति विज्ञाप्य देवेशं न्यस्याग्रे पापकारिणम्। नरकाणां सहस्त्रेषु लक्षकोटिशतेषु च॥७८॥
किङ्करास्ते ततो यान्ति ग्रहीतुमपरान्नरान्। प्रतिपन्ने कृते दोषे यमो वै पापकारिणाम्॥७९॥

समादिशति तान्घोरान्निग्रहाय स्वकिङ्करान्। यथा यस्य विनिर्दिष्टो वसिष्ठाद्यैर्विनिग्रहः॥८०॥

पापस्य तद्भृ (तं भृ) शं क्रुद्धाः कुर्वन्ति यमकिङ्कराः।

अंकुशैर्मुद्गरैर्दण्डैः क्रकचैः शक्तितोमरैः॥८१॥

खड्गशूलनिपातैश्च भिद्यन्ते पापकारिणः। नरकाणां सहस्रेषु लक्षकोटिशतेषु च॥८२॥

स्वकर्मोपार्जितैर्दोषैः पीड्यन्ते यमकिङ्करैः। शृणुध्वं नरकाणां च स्वरूपं च भयङ्करम्॥८३॥

व्यासदेव कहते हैं—यमदूतों ने यमराज से उन पापी लोगों के कृतकर्म का विवरण प्रदान किया तथा वे अन्य पापीगण को सैकड़ों, हजारों, लाखों, कोटि-कोटि नरकों से लाने चल पड़ते हैं। जिन पापीगण पर दोष सिद्ध हो जाता है, धर्मराज यम उनको पकड़ कर अपने समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश अपने घोररूपी किंकरों को देते हैं। वसिष्ठ प्रभृति मुनिगण द्वारा जिस पातक का जो दण्ड निश्चित किया गया है, ये सभी यमदूत उसे उसी प्रकार से दण्डित करते हैं। वे पातकी लोगों को अंकुश, मुद्‌गर, दण्ड, क्रकच (आरी) शक्ति, तोमर, तलवार, शूल के प्रहार से कष्ट देते हैं। ये पापी जीव शत, सहस्र, लक्ष, कोटि संख्यक नरकसमूह में स्व-स्व कर्मजनित पापों के कारण यमकिंकरों द्वारा दण्डित तथा पीड़ित किये जाते हैं। हे मुनिगण! अब आप सब लोग नरकों के भयानक स्वरूप, नाम, उनका परिमाण (माप) तथा वहां मनुष्यों के गमन का कारण श्रवण करें।।७८-८३।।

नामानि च प्रमाणं च येन यान्ति नराश्च तान्।

महावीचीति विख्यातं नरकं शोणितप्लुतम्॥८४॥

वज्रकण्टकसम्मिश्रं योजनायुतविस्तृतम्। तत्र संपीड्यते मग्नो भिद्यते वज्रकण्टके॥८५॥

वर्षलक्षं महाघोरं गोघाती नरके नरः। योजनानां शतं लक्षं कुम्भीपाकं सुदारुणम्॥८६॥

महावीचि नाम से प्रख्यात नरक रक्त से आप्लुत, वज्र जैसे कांटों से भरा तथा दस हजार योजन विस्तार वाला है। गौहत्यारे लोग उसमें गिराये जाते हैं तथा एक लाख वर्ष पर्यन्त वहां महान् दुःखभोग करते हैं। दारुण कुंभीपाक नरक एक लक्ष योजन विस्तीर्ण है।।८४-८६।।

ताम्रकुम्भवती दीप्ता वालुकाङ्गारसंवृता। ब्रह्महा भूमिहर्ता च निक्षेपस्यापहारकः॥८७॥

दह्यन्ते तत्र संक्षिप्ता यावदाभूसम्प्लवम्।

रौरवो वज्रनाराचैः प्रज्वलद्भिः समावृतः॥८८॥

योजनानां सहस्राणि षष्टिरायामविस्तरैः। भिद्यन्ते तत्र नाराचैः सज्वालैर्नरके नराः॥८९॥

इक्षुवत्तत्र पीड्यन्ते ये नराः कूटसाक्षिणः। अयोमयं प्रज्वलितं मञ्जूषं नरकं स्मृतम्॥९०॥

निक्षिप्तास्तत्र दह्यन्ते वन्दिग्राहकृताश्च ये। अप्रतिष्ठेति नरकं पूयमूत्रपुरीषकम्॥९१॥

अधोमुखः पतेत्तत्र ब्राह्मणस्योपपीडकः। लाक्षाप्रज्वलितं घोरं नरकं तु विलेपकम्॥९२॥

वह अंगार जैसी तप्त बालुका वाला तथा दीप्त ताम्रकुंभ वाला है। ब्रह्महत्यारे, भूमिहारी तथा दिये हुये किंवा धरोहर का हरण करने वाले उसमें फेंके जाकर अनन्त काल पर्यन्त दग्ध होते हैं। रौरव नरक ज्वलन्त वज्र

जैसे नाराचों से भरा है। वह साठ हजार योजन वाला है। वहां ज्वालामय नाराचों (बाणों) से मनुष्यों को भेदा जाता है। जो झूठी गवाही देते हैं, वे लोग वहां कोल्हू में गन्ने की तरह पेरे-निचोड़े जाते हैं। मंजूष नरक एकदम तप्त लौह की तरह ज्वलित रहता है। अन्यायतः किसी प्राणी को बांधने वाले इस नरक में जलाये जाते हैं। अप्रतिष्ठ नरक मवाद, मूत्र, मल से भरा है। ब्राह्मण को पीड़ा देने वाले लोग इसमें उलटे फेंके जाते हैं। विलेपक नरक प्रज्वलित लाक्षा से भरा है।।८७-९२।।

निमग्नास्तत्र दह्यन्ते मद्यपाने द्विजोत्तमाः। महाप्रभेति नरकं दीप्तशूलमहोच्छ्रयम्॥९३॥

तत्र शूलेन भिद्यन्ते पतिभार्योपभेदिनः।
नरकं च महाघोरं जयन्ती चाऽऽयसी शिला॥९४॥

तया चाऽऽक्रम्यते पापः परदारोपसेवकः। नरकं शाल्मलाख्यं तु प्रदीप्तदृढकण्टकम्॥९५॥

तया (दा) लिङ्गानि दुःखार्ता नारी बहुनरङ्गमा। ये वदन्ति सदाऽसत्यं परमर्मावकर्तनम्॥९६॥

जिह्वा चोच्छ्रिय (च्छिद्य) ते तेषां सदस्यैर्यमकिङ्करैः।
ये तु रागैः कटाक्षैश्च वीक्षन्ते परयोषितम्॥९७॥
तेषां चक्षूंषि नाराचैर्विध्यन्ते यमकिङ्करैः।
मातरं येऽपि गच्छन्ति भगिनीं दुहितरं स्नुषाम्॥९८॥

स्त्रीबालवृद्धहन्तारो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ज्वालामालाकुलं रौद्रं महारौरवसंज्ञितम्॥९९॥

नरकं योजनानां च सहस्राणि चतुर्दश। पुरं क्षेत्रं गृहं ग्रामं यो दीपयति वह्निना॥१००॥

मद्यपायी इसमें फेंके जाकर दग्ध किये जाते हैं। महाप्रभ नामक नरक प्रदीप्त लम्बे शूलों से पूर्ण है। जो पति-पत्नी के प्रेम को भग्न करता है, वहां पर उसे शूलों से भेदा जाता है। जयन्ती नामक जो लौह की शिला है, वह अतीव भयानक नरक है। परस्त्रीगामी पापी उस शिलामय नरक पर फेंके जाते हैं। शाल्मल नामक नरक प्रदीप्त (तपे) दृढ़ कांटों से भरा है तथा वह शाल्मली वृक्ष के आकार वाला है। जो रमणी अनेक पुरुषों का संग करती है, उसे इस वृक्ष रूपी नरक का आलिंगन कराया जाता है। उसके दृढ़ कण्टक उस नारी को आलिंगन काल में भेदते हैं। जो मनुष्यगण जगत् में दूसरों के प्रति सदा मर्मभेदी वाक्यों को कहते हैं तथा इसमें असत्य का प्रयोग करते हैं, यमकिंकर अपनी विकराल संड़सियों से उनकी जीभ उखाड़ लेते हैं। जो अनुरागी दृष्टि से कटाक्षपूर्ण वृत्ति से पराई नारी को देखते हैं, उनके नेत्र यमकिंकर तीक्ष्ण बाणों से वेधते रहते हैं। जो नर माता, भगिनी, पुत्री, पुत्रवधू से संयोग करता है, जो स्त्री, बालक, वृद्ध का हत्यारा है, वह चौदह इन्द्रों के अधिकार काल पर्यन्त ज्वालामाला युक्त चतुर्दश सहस्र योजन विस्तृत महाभयानक रौरव नरक में पतित किये जाते हैं। जो व्यक्ति नगर, क्षेत्र, गृह, ग्राम को अग्निदग्ध करता है।।९३-१००।।

स तत्र दह्यते मूढो यावत्कल्पस्थितिर्नरः।
तामिस्रमिति विख्यातं लक्षयोजनविस्तृतम्॥१०१॥

निपतद्भिः सदा रौद्रः खड्गपट्टिशमुद्गरैः। तत्र चौरा नराः क्षिप्तास्ताड्यन्ते यमकिङ्करैः॥१०२॥

शूलशक्तिगदाखड्गैर्यावत्कल्पशतत्रयम्। तामिस्राद्द्विगुणं प्रोक्तं महातामिस्रसंज्ञितम्॥१०३॥

जलौकासर्पसम्पूर्णा निरालोकं सुदुःखदम्। मातृहा पितृहा चैव मित्रविस्त्रम्भघातकः॥१०४॥
तिष्ठन्ति तक्ष्यमाणाश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी। असिपत्रवनं नाम नरकं भूरिदुःखदम्॥१०५॥
योजनायुतविस्तारं ज्वलत्खड्गैः समाकुलम्।
पातितस्तत्र तैः खड्गैः शतधा तु समाहतः॥१०६॥

वह मूर्ख उसी नरक में कल्पान्त पर्यन्त जलाया जाता है। तामिस्र नरक एक लक्ष योजन विस्तृत है। वह अतीव भयानक खड्ग, पट्टिश, मुद्गरादि से भरा है। यमकिंकरगण द्वारा चोर लोग उसी में गिराये जाते हैं। वे वहां शूल, शक्ति, गदा तथा खड्ग आदि से तीन सौ कल्प पर्यन्त ताड़ित किये जाते हैं। महातामिस्र नरक तामिस्र नरक से दूना है। यह आलोक रहित तथा अति दुःखप्रद जोंकों एवं सर्प से व्याप्त है। पिता-माता के हत्यारे, विश्वासघाती लोग वहां तब तक पड़े रहते हैं, जब तक पृथिवी की सत्ता है। असिपत्रवन नरक अतीव दुःखद है। यह दस हजार योजन विस्तार वाला अति दुःखप्रद है। यह जलते तप्त खड्गों से भरा है। मित्रघाती व्यक्ति इस नरक में गिराये जाकर कल्पकाल तक खड्गों से सैकड़ों स्थानों पर आघात सहता पड़ा रहता है।।१०१-१०६।।

मित्रघ्नः कृत्यते तावद्यावदाभूतसम्प्लवम्।
करम्भवालुका नाम नरकं योजनायुतम्॥१०७॥
कूपाकारं वृतं दीप्तैर्वालुकाङ्गारकण्टकैः। दह्यते भिद्यते वर्षलक्षायुतशतत्रयम्॥१०८॥
येन दग्धो जनो नित्यं मिथ्योपायैः सुदारुणैः।
काकोलं नाम नरकं कृमिपूयपरिप्लुतम्॥१०९॥
क्षिप्यते तत्र दुष्टात्मा एकाकी मिष्टभुङ्नरः।
कुड्मलं नाम नरकं पूर्णं विण्मूत्रशोणितैः॥११०॥
पञ्चयज्ञक्रियहीनाः क्षिप्यन्ते तत्र वै नराः। सुदुर्गन्धं महाभीमं मांसशोणितसङ्कुलम्॥१११॥
अभक्ष्यान्ने रतास्तेऽत्र निपतन्ति नराधमाः। क्रिमिकीटसमाकीर्णं शवपूर्णं महावटम्॥११२॥
अधोमुखः पतेत्तत्र कन्याविक्रयकृन्नरः। नाम्ना वै तिलपाकेति नरकं दारुणं स्मृतम्॥११३॥

करंभ बालुका नामक जो नरक है, वह दस हजार योजन विस्तीर्ण है। वह रूपाकार बालुका, अंगार तथा कंटकों से व्याप्त है। जो दारुण मिथ्या उपायों से मनुष्य को दग्ध करते हैं, वे इस नरक में गिराये जाकर एक लाख दस हजार तीन सौ वर्ष तक दग्ध तथा छिन्न किये जाते हैं। काकोल नरक कृमि तथा मवाद से भरा है। अन्य के समक्ष अकेले मिठाई खाने वाले दुष्ट उसमें फेंके जाते हैं। कुड्मल नरक विष्ठा, मूत्र, रक्तपूर्ण है। जो मानव पंचयज्ञ क्रिया रहित हैं, वे उस नरक में निक्षिप्त होते हैं। सुदुर्गन्ध नरक अत्यन्त भयानक मांस-रक्त युक्त है। अभक्ष्य-भक्ष्य निरत नराधम इसमें प्रक्षिप्त होते हैं। महावट नरक कृमि, कीट, पतंगों तथा शव से पूर्ण रहता है। इसमें कन्या विक्रेता उलटे फेंके जाते हैं। तिलपाक नरक अत्यन्त दारुण कहा गया है।।१०७-११३।।

तिलवत्तत्र पीड्यन्ते परपीडारताश्च ये। नरकं तैलपाकेति ज्वलत्तैलमहीप्लवम्॥११४॥

पच्यते तत्र मित्रघ्नो हन्ता च शरणागतम्। नाम्ना वज्रकपाटेति वज्रशृङ्खलयाऽन्वितम्॥११५॥
पीड्यन्ते निर्दयं तत्र यैः कृतः क्षीरविक्रयः।
निरुच्छ्वास इति प्रोक्तं तमोन्धं वातवर्जितम्॥११६॥

परपीड़ारत रहने वाले लोग यहां कोल्हू में तिल की तरह पेरे जाते हैं। तैलपाक नरक जलते-उबलते तेल से भरा है। मित्रहत्यारे, शरणागत् वधकर्त्ता यहीं पकाये जाते हैं। वज्रकपाट नरक वज्र की सिक्कड़ों वाला है। दुग्ध बेचने वाले निर्दयता के साथ वहां पीड़ित किये जाते हैं। निरुच्छ्वास नरक अंधकारमय तथा वात रहित है।।११४-११६।।

निश्चेष्टं क्षिप्यते तत्र विप्रदाननिरोधकृत्। अङ्गारोपचयं नाम दीप्ताङ्गारसमुज्ज्वलम्॥११७॥
दह्यते तत्र येनोक्तं दानं विप्राय नार्पितम्। महापायीति नरकं लक्षयोजनमायतम्॥११८॥
पात्यन्तेऽधोमुखास्तत्र ये जल्पन्ति सदाऽनृतम्।
महाज्वालेति नरकं ज्वालाभास्वरभीषणम्॥११९॥
दह्यते तत्र सुचिरं यः पापे बुद्धिकृन्नरः।
नरकं क्रकचाख्यातं पीड्यन्ते तत्रैव नराः॥१२०॥
क्रकचैर्वज्रधारोग्रैरगम्यागमने रताः। नरकं गुडपाकेति ज्वलद्गुडह्रदैर्वृतम्॥१२१॥

जो मनुष्य ब्राह्मणों को दान देने में बाधा उत्पन्न करते हैं, उनको बांध कर चेष्टा रहित करने के उपरान्त इसमें फेंका जाता है। अंगारोपचय नरक प्रदीप्त अंगारों से उज्ज्वल बना रहता है। जो व्यक्ति दान देने का वचन देकर भी दान नहीं देता, उसे इसमें जलाते हैं। महापापी नरक एक लाख योजन की लम्बाई वाला है। जो सदा झूठ बोलते हैं, उनको इसमें उल्टा लटकाया जाता है। महाज्वाल नरक अग्निशिखा समूह से समुज्ज्वल तथा अतीव भीषण है। पापबुद्धि वाले लोग इसमें दीर्घकाल तक जलाये जाते हैं। क्रकच नामक नरक में मनुष्यों को पीड़ित किया जाता है। यहां लाये गये पातकी वज्रवत् उग्र धारयुक्त आरे से काटे जाते हैं। गुड़पाक नरक उबलते गुड़ से भरे ह्रदों से भरा है।।११७-१२१।।

निक्षिप्तो दह्यते तस्मिन्वर्णसङ्करकृन्नरः। क्षुरधारेति नरकं तीक्ष्णक्षुरसमावृतम्॥१२२॥
छिद्यन्ते तत्र कल्पान्तं विप्रभूमिहरा नराः। नरकं चाम्बरीषाख्यं प्रलयानलदीपितम्॥१२३॥
कल्पकोटिशतं तत्र दह्यते स्वर्णहारकः। नाम्ना वज्रकुठारेति नरकं वज्रसङ्कुलम्॥१२४॥
छिद्यन्ते तत्र छेत्तारो द्रुमाणां पापकारिणः।
नरकं परितापाख्यं प्रलयानलदीपितम्॥१२५॥
गरदो मधुहर्ता च पच्यते तत्र पापकृत्। नरकं कालसूत्रं च वज्रसूत्रविनिर्मितम्॥१२६॥
भ्रमन्तस्तत्र च्छिद्यन्ते परसस्योपलुण्ठकाः।
नरकं कश्मलं नाम श्लेष्मशिङ्घाणकावृतम्॥१२७॥

जो वर्णसंकरों की उत्पत्ति करते हैं, वे यहां पर जलाये (उबलते गुड़ में फेंके) जाते हैं। क्षुरधार नरक

तीखे छूरों से भरा है। जो ब्राह्मण की भूमि का हरण करता है, वह यहां कल्पान्त पर्यन्त काटा जाता है। अम्बरीष नरक प्रलयाग्नि की तरह प्रदीप्त होता है। स्वर्ण चोर व्यक्ति उसमें सौ करोड़ कल्प पर्यन्त भूंजे जाते हैं। वज्रकुठार नामक जो नरक है, वह वज्रों से समाकुल है। जो बिना प्रयोजन पेड़ काटते हैं, उनको इसमें गिराया जाता है। वे इसमें कल्पान्त तक वज्र से छिन्न किये जाते हैं। परिताप नामक नरक प्रलयाग्नि जैसा जाज्वल्यमान रहता है। विष देते वाले तथा मधु का हरण करने वाले पापी व्यक्ति उसमें फेंके जाते हैं। वज्र सूत्रों से बना कालसूत्र नरक है। जो अन्य के खेत की फसल का हरण करते हैं, वे यहां घुमाये तथा काटे जाते हैं। कश्मल नरक कफ तथा नासिका के मल से ढंका है।।१२२-१२७।।

तत्र संक्षिप्यते कल्पं सदा मांसरुचिर्नरः। नरकं चोग्रगन्धेति लालामूत्रपुरीषवत्॥१२८॥

क्षिप्यन्ते तत्र नरके पितृपिण्डाप्रयच्छकाः। नरकं दुर्धरं नाम जलौकावृश्चिकाकुलम्॥१२९॥

उत्कोचभक्षकस्तत्र तिष्ठते वर्षकायुतम्। यच्च वज्रमहापीडा नरकं वज्रनिर्मितम्॥१३०॥

तत्र प्रक्षिप्य दह्यन्ते पीड्यन्ते यमकिङ्करैः।
धनं धान्यं हिरण्यं वा परकीयं हरन्ति ये॥१३१॥
यमदूतैश्च चौरास्ते छिद्यन्ते लवशः क्षुरैः।
ये हत्वा प्राणिनं मूढाः खादन्ते काकगृधवत्॥१३२॥

जो व्यक्ति सदा मांस के प्रति रुचि रखता है, उसे यहां फेंका जाता है। उग्रग्ध नामक नरक लार, मलमूत्र से भरा रहता है। जो पितरों को पिण्ड नहीं देते, वे यहां फेंके जाते हैं। दुर्धर नरक जोंक तथा बिच्छुओं से भरा है, जहां घूस खाने वाले दस हजार वर्ष रखे जाते हैं। वज्र महापीड़ा नरक वज्र निर्मित है, जहां अन्य के धन-धान्य स्वर्ण के अपहरणकर्त्ता को यमदूत दग्ध करते तथा नाना प्रकार से पीड़ा देते हैं। जो लोग प्राणीगण को मार कर उनको कैये तथा गृद्ध के समान खाते हैं।।१२८-१३२।।

भोज्यन्ते च स्वमांसं ते कल्पान्तं यमकिङ्करैः।
आसनं शयनं वस्त्रं परकीयं हरन्ति ये॥१३३॥
यमदूतैश्च ते मूढा भिद्यन्ते शक्तितोमरैः।
फलं पत्रं नृणां वाऽपि हृतं यैस्तु कुबुद्धिभिः॥१३४॥

यमदूतैश्च ते क्रुद्धैर्दह्यन्ते तृणवह्निभिः। परद्रव्ये कलत्रे च यः सदा दुष्टधीर्नरः॥१३५॥

यमदूतैर्ज्वलत्तस्य हृदि शूलं निखन्यते।
कर्मणा मनसा वाचा ये धर्मविमुखा नराः॥१३६॥

उनको यमकिंकर लोग कल्पान्त तक उनका ही मांस खिलाते हैं। जो पराया आसन, शय्या तथा वस्त्र हरण करते हैं, यमदूत उन मूढ़ बुद्धि वालों को शक्ति, तोमर, अस्त्रों से खण्ड-खण्ड करते रहते हैं। जो दुर्बुद्धि व्यक्ति अन्य के फल अथवा पत्तों का हरण करते हैं, क्रोधी यमदूत लोग उनको तृणाग्नि से जलाते हैं। पराये द्रव्य तथा परायी नारी पर कुभाव रखते हैं, यमदूत उनके वक्ष में ज्वलन्त त्रिशूल प्रवेश कराते हैं। जो लोग मनसा-वाचा-कर्मणा धर्म से विमुख हैं।।१३३-१३६।।

यमलोके तु ते घोरा लभन्ते परियातनाः। एवं शतसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च॥१३७॥
नरकाणि नरैस्तत्र भुज्यन्ते पापकारिभिः।
इह कृत्वा स्वल्पमपि नरः कर्माशुभात्मकम्॥१३८॥
प्राप्नोति नरके घोरे यमलोकेषु यातनाम्।
न शृण्वन्ति नरा मूढा धर्मोक्तं साधु भाषितम्॥१३९॥
दृष्टं केनेति प्रत्यक्षं प्रत्युत्त्यैवं वदन्ति ते।
दिवा रात्रौ प्रयत्नेन पापं कुर्वन्ति ये नराः॥१४०॥
नाऽऽचरन्ति हि ते धर्मं प्रमादेनापि मोहिताः।
इहैव फलभोक्तारः परत्र विमुखाश्च ये॥१४१॥
ते पतन्ति सुघोरेषु नरकेषु नराधमाः। दारुणो नरके वासः स्वर्गवासः सुखप्रदः।
नरैः सम्प्राप्यते तत्र कर्म कृत्वा शुभाशुभम्॥१४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे नरकगतपृथग्यातनाकीर्तनं नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१५॥

यमलोक में उनको घोर यातना मिलती है। जो साधु द्वारा कहे धर्मोक्त वाक्य नहीं सुनते, अपितु यह बहस करते हैं कि "यह सब प्रत्यक्ष किसने देखा है?" तथा जो लोग दिन-रात पापरत रहते हैं, मोहित चित्त होने के कारण जो लोग धर्माचरण नहीं करते, जो यह कहते हैं कि "फलभोग यहीं होता है" परलोक की सत्ता नहीं मानते, वे नराधम घोर नरकगामी होते हैं। इस प्रकार नरक में रहना भयंकर है। स्वर्ग में निवास सुखद है। व्यक्ति कर्मानुरूप ही शुभ अथवा अशुभ फल पाता है।।१३७-१४२।।

।।पञ्चदशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकगत दुःखों का निवारण तथा धर्माचरण का वर्णन

मुनय ऊचुः

अहोऽतिदुःखं घोरं च यममार्गे त्वयोदितम्। नरकाणि च घोराणि द्वारं याम्यं च सत्तम॥१॥
अस्त्युपायो न वा ब्रह्मन्यममार्गेऽतिभीषणे। ब्रूहि येन नरा यान्ति सुखेन यमसादनम्॥२॥

मुनिगण कहते हैं—अहो! हे सत्तम व्यास देव! आपने यममार्ग का घोर दुःख, यमगणों के द्वार तथा

नरकों का विवरण कहा है। हे ब्रह्मन्! मनुष्यगण बिना क्लेश उठाये भीषण यमपथ को पार करके यमसदन में जा सकें, ऐसा कोई उपाय है अथवा नहीं है, वह कहिये।।१-२।।

व्यास उवाच

इह ये धर्मसंयुक्तास्त्वहिंसानिरता नराः। गुरुशुश्रूषणं युक्ता देवब्राह्मणपूजकाः॥३॥
यस्मिन्मनुष्यलोकास्ते सभार्याः ससुतास्तथा।
तमध्वानं च गच्छन्ति यथा तत्कथयामि वः॥४॥
विमानैर्विविधैर्दिव्यैः काञ्चनध्वजशोभितैः। धर्मराजपुरं यान्ति सेवमानाप्सरोगणैः॥५॥
ब्राह्मणेभ्यस्तु दानानि नानारूपाणि भक्तितः।
ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति सुखेनैव महापथे॥६॥
अन्नं ये तु प्रयच्छन्ति ब्राह्मणेभ्यः सुसंस्कृतम्।
श्रोत्रियेभ्यो विशेषेण भक्त्या परमया युतः॥७॥
तरुणीभिर्वरस्त्रीभिः सेव्यमानाः प्रयत्नतः। धर्मराजपुरं यान्ति विमानैरभ्यलङ्कृतैः॥८॥
ये च सत्यं प्रभाषन्ते बहिरन्तश्च निर्मलाः। तेऽपि यान्त्यमरप्रख्या विमानैर्यममन्दिरम्॥९॥
गोदानानि पवित्राणि विष्णुमुद्दिश्य साधुषु। ये प्रयच्छन्ति धर्मज्ञाः कृशेषु कृशवृत्तिषु॥१०॥
ते यान्ति दिव्यवर्णाभैर्विमानैर्मणिचित्रितैः। धर्मराजपुरं श्रीमान्सेव्य (व) मानाप्सरोगणैः॥११॥

व्यासदेव कहते हैं—इस लोक में जो अहिंसक, गुरुसेवा तत्पर, देव-ब्राह्मणपूजक हैं, वे सभी मानव पत्नी-पुत्रादि सहित इस मार्ग को पार कर सकें, वही मैं आप लोगों को कहता हूं। वे स्वर्ण ध्वज से शोभित विविध विमानों पर बैठ कर अप्सराओं की सेवा प्राप्त करते हुये ससम्मान यमपुरी जाते हैं। जो ब्राह्मणों को भक्ति के साथ नाना दान देते हैं, वे ही उक्त महामार्ग पर सुख से जाते हैं। जो परम भक्तिभाव के साथ ब्राह्मणों, विशेषतया श्रोत्रिय जन को सुसंस्कृत अन्नदान देते हैं, वे अलंकृत विमानों पर आरूढ़ होकर धर्मराजपुर जाते हैं। वे उत्तम नारीगण से सेवित होते हुये जाते हैं। जो सत्य बोलने वाले, अन्तः-बहिः निर्मल चित्त हैं, वे भी देवतुल्य विमानारूढ़ होकर यमलोक गमन करते हैं। जो धर्मज्ञ लोग क्षीणवृत्ति साधुजन को विष्णु की प्रसन्नता के उद्देश्य से पवित्र गोदान करते हैं, वे भी दिव्य कान्ति समन्वित मणियुक्त विमानों पर बैठ कर श्रीमान् होकर तथा अप्सराओं से सेव्यमान होकर धर्मराज की नगरी जाते हैं।।३-११।।

उपानद्युगलं छत्रं शय्यासनमथापि वा। ये प्रयच्छन्ति वस्त्राणि तथैवाऽऽभरणानि च॥१२॥
ते यान्त्यश्वै रथैश्चैव कुञ्जरैश्चाप्यलङ्कृताः। धर्मराजपुरं दिव्यं छत्रैः सौवर्णराजतैः॥१३॥
ये च भक्त्या प्रयच्छन्ति गुडपानकमर्चितम्।
ओदनं च द्विजाग्र्येभ्यो विशुद्धेनान्तरात्मना॥१४॥
ते यान्ति काञ्चनैर्यानैर्विविधैस्तु यमालयम्।
वरस्त्रीभिर्यथाकामं सेव्यमानाः पुनः पुनः॥१५॥

ये च क्षीरं प्रयच्छन्ति घृतं दधि गुडं मधु।
ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नेन शुद्ध्योपेतं सुसंस्कृतम्॥१६॥
चक्रवाकप्रयुक्तैश्च विमानैस्तु हिरण्मयैः। यान्ति गन्धर्ववादित्रैः सेव्यमाना यमालयम्॥१७॥

जो पादुका की जोड़ी, छत्र, शय्या, आसन, वस्त्र, आभूषण दान करते हैं, वे अलंकृत होकर स्वर्ण अथवा चांदी के छत्र से युक्त होकर अश्व अथवा रथ पर बैठे धर्मराज की नगरी जाते हैं। जो विशुद्ध अन्तःकरण पूर्वक भक्तिभाव के साथ द्विजों को उत्तम अन्न तथा भात-गुड़-जल प्रदान करते हैं, वे नाना कांचन युक्त यान पर बैठ कर पुनः-पुनः श्रेष्ठ नारीगण द्वारा यथेच्छ सेवित होकर यमालय जाते हैं। जो सयत्न ब्राह्मण को उत्तम उपाय से संगृहीत सुसंस्कृत दुग्ध, दधि, घृत अथवा मधु प्रदान करते हैं, वे चक्रवाक युक्त स्वर्णमय विमानारूढ़ होकर गन्धर्वों द्वारा गायन एवं वाद्य-वादन से सेवित होकर यमभवन जाते हैं।।१२-१७।।

ये फलानि प्रयच्छन्ति पुष्पाणि सुरभीणि च। हंसयुक्तैर्विमानैस्तु यान्ति धर्मपुरं नराः॥१८॥
ये तिलांस्तिलधेनुं च घृतधेनुमथापि वा।
श्रोत्रियेभ्यः प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यः श्रद्धयाऽन्विताः॥१९॥
सोममण्डलसङ्काशैर्यानैस्ते यान्ति निर्मलैः। गन्धर्वैरुपगीयन्ते पुरे वैवस्वतस्य ते॥२०॥
येषां वाप्यश्च कूपाश्च तडागानि सरांसि च।
दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च शीतलाश्च जलाशयाः॥२१॥
यानैस्ते हेमचन्द्राभैर्दिव्यघण्टानिनादितैः। व्यजनैस्तालवृन्तैश्च वीज्यमाना महाप्रभाः॥२२॥

सुगन्धित पुष्प-फल के दाता हंस जुते विमानों द्वारा धर्मराज की नगरी में जाते हैं। जो तिल, तिलधेनु, घृतधेनु सश्रद्ध भाव से श्रोत्रिय ब्राह्मण को देते हैं, वे चन्द्रमण्डलवत् निर्मल विमानारूढ़ होकर यमालय जाते हैं। यमलोक में वे गन्धर्वों द्वारा सेवित भी होते रहते हैं। जो मानव बावली, कूप, तड़ाग, सरोवर, दीर्घिका, पुष्करिणी आदि जो शीतल जलयुक्त होते हैं, उनके जल को सभी प्राणी पीते हैं, इनको बनवाता है, वह घण्टा से नादित, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हैम महाप्रभ विमानारूढ़ होकर यमलोक गमन करते हैं। मार्ग में उन पर अप्सरायें पंखा झलती हैं।।१८-२२।।

येषां देवकुलान्यत्र चित्राण्यायतनानि च। रत्नैः प्रस्फुरमाणानि मनोज्ञानि शुभानि च॥२३॥
ते यान्ति लोकपालैस्तु विमानैर्वातरहंसैः। धर्मराजपुरं दिव्यं नानाजनसमाकुलम्॥२४॥
पानीयं ये प्रयच्छन्ति सर्वप्राण्युपजीवितम्।
ते वितृष्णाः सुखं यान्ति विमानैस्तं महापथम्॥२५॥
काष्ठपादुकयानानि पीठकान्यासनानि च।
यैर्दत्तानि द्विजातिभ्यस्तेऽध्वानं यान्ति वै सुखम्॥२६॥
सौवर्णमणिपीठेषु पादौ कृत्वोत्तमेषु च। ते प्रयान्ति विमानैस्तु अप्सरोगणमण्डितैः॥२७॥

जो पृथिवी लोक में विचित्र, मनोहर, सुदृश्य तथा पवित्र रत्नजटित उज्ज्वल देवमन्दिर बनवाते हैं, वे

सभी वायुवेग वाले विमान पर बैठ कर लोकपालों द्वारा अभिनन्दित होकर नाना जनाकुल दिव्य धर्मराज लोक में गमन करते हैं। सभी प्राणीगण के उपभोगार्थ जो जल प्रदान करते हैं, वे सभी वितृष्ण होकर वे यमपथ का अतिक्रमण कर लेते हैं। जो द्विजगण को काष्ठपादुका, यान, पीठ तथा आसन दान करते हैं, वे भी उत्तम सौवर्ण मणिपीठ पर दोनों पैर रख कर अप्सराओं से मण्डित विमान पर बैठ कर उक्त यमलोक के महामार्ग से सुख पूर्वक जाते हैं।।२३-२७।।

आरामाणि विचित्राणि पुष्पाढ्यानीह मानवाः।
रोपयन्ति फलाढ्यानि नराणामुपकारिणः॥२८॥
वृक्षच्छायासु रम्यासु शीतलासु स्वलङ्कृताः।
वरस्त्रीगीतवाद्यैश्च सेव्यमाना व्रजन्ति ते॥२९॥
सुवर्णं रजतं वाऽपि विद्रुमं मौक्तिकं तथा।
ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति विमानैः कनकोज्ज्वलैः॥३०॥

जो मानव मनुष्यों के उपकार हेतु पुष्प समन्वित उत्तम उपवन निर्मित करते हैं, वे यमपथ पर सुरम्य-शीतल वृक्षों की छाया से होते हुये, सर्वकामना पूर्ण करके सुशीतल रम्यपथ से उत्तम नारियों के गीतवाद्य द्वारा सेवित होकर यमलोक जाते हैं। जो उस समय स्वर्ण, रजत, विद्रुममणि तथा मुक्तामणि दान करते हैं, वे स्वर्ण के समान उज्ज्वल विमानों पर आरूढ़ होकर यमपुर गमन करते हैं।।२८-३०।।

भूमिदा दीप्यमानाश्च सर्वकामैस्तु तर्पिताः। उदितादित्यसङ्काशैर्विमानैर्भृशनादितैः॥३१॥
कन्यां तु ये प्रयच्छन्ति ब्रह्मदेयामलङ्कृताम्।
दिव्यकन्यावृता यान्ति विमानैस्ते यमालयम्॥३२॥

भूदान करने वाले लोग सभी कामना को पूर्ण करके दीप्यमान देह पाकर वाद्यों तथा महानाद की ध्वनि से आपूरित बालसूर्य के समान कान्तियुक्त विमान पर बैठ कर यमभवन जाते हैं। जो ब्राह्म विधान से अपनी कन्या प्रदान करते हैं, वे दिव्य कन्याओं से समावृत होकर विमानारूढ़ होकर यमपुरी जाते हैं।।३१-३२।।

सुगन्धागुरुकर्पूरान्पुष्पधूपान्द्विजोत्तमाः। प्रयच्छन्ति द्विजातिभ्यो भक्त्या परमयाऽन्विताः॥३३॥
ते सुगन्धाः सुवेशाश्च सुप्रभाः सुविभूषिताः। यान्ति धर्मपुरं यानैर्विचित्रैरभ्यलङ्कृताः॥३४॥
दीपदा यान्ति यानैश्च दीपयन्तो दिशो दश। आदित्यसदृशैर्यानैर्दीप्यमाना यथाऽग्नयः॥३५॥
गृहावसथदातारो गृहैः काञ्चनमण्डितैः। व्रजन्ति बालार्कनिभैर्धर्मराजगृहं नराः॥३६॥
जलभाजनदातारः कुण्डिकाकरकप्रदाः। पूज्यमानाप्सरोभिश्च यान्ति दृप्ता महागजैः॥३७॥

हे द्विजोत्तम वृन्द! जो लोग परमभक्ति के साथ द्विजों को अगुरु, कपूर, पुष्प, धूप, सुगन्ध द्रव्य प्रदान करते हैं, वे सुगन्ध, सुवेश तथा उत्तम भूषण से शोभित होकर प्रभायुक्त देह के साथ विचित्र अलंकृत यान पर बैठ कर धर्मराज के भवन में जाते हैं। दीपदान करने वाले लोग अग्निवत् दीप्त देह से युक्त होकर आदित्य के समान यान पर आसीन होकर दसों दिशाओं को उद्भासित करते हुये यमभवन जाते हैं। गृह तथा आवास दान करने वाले मनुष्य तरुण आदित्य के समान गृह में (विमान में) बैठकर धर्मराज के भवन में जाते हैं। जलपात्र

दाता तथा कमण्डलु प्रदाता मनुष्य अप्सरागण से सम्मानित किया जाता हुआ गजराज पर बैठ कर यमसदन जाता है।।३३-३७।।

पादाभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं स्नानपानोदकं तथा। ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्ते यान्त्यश्वैर्यमालयम्॥३८॥

विश्रामयन्ति ते विप्राञ्श्रान्तानध्वनि कर्शितान्।
चक्रवाकप्रयुक्तेन यान्ति यानेन ते सुखम्॥३९॥

स्वागतेन च यो विप्रं पूजयेदासनेन च। स गच्छन्ति तमध्वानं सुखं परमनिर्वृतः॥४०॥

जो व्यक्ति स्नान-पानार्थ जल तथा पादभ्यङ्ग एवं शिरोभ्यङ्ग ब्राह्मणों को प्रदान करते हैं, वे अश्वारूढ़ होकर यमालय जाते हैं। जो मार्ग में श्रान्त तथा थकान से दुःखी ब्राह्मण को विश्राम कराते हैं, वे चक्रवाक जुते विमानों पर बैठ कर सुख पूर्वक जाते हैं। जो मनुष्य ब्राह्मणों से स्वागत प्रश्न करता तथा आसनदान करके उनकी पूजा करता है, वह सुख पूर्वक उद्वेग रहित स्थिति में इस यममार्ग को पार कर लेता है।।३८-४०।।

नमो ब्रह्मण्यदेवेति यो हरिं चाभिवादयेत्।
गां च पापहरेत्युक्त्वा सुखं यान्ति च तत्पथम्॥४१॥

जो हरि का अभिवादन "नमो ब्रह्मण्यदेवाय" कह कर करता है, तथा गौ को "पापहरा" कह कर प्रणाम करता है, वह क्लेश रहित होकर यमपथ पार कर लेता है।।४१।।

अनन्तराशिनौ ये च दम्भानृतविवर्जिताः।
तेऽपि सारसयुक्तैस्तु यान्ति यानैश्च तत्पथम्॥४२॥
वर्तन्ते ह्येकभक्तेन शाठ्यदम्भविवर्जिताः।
हंसयुक्तैर्विमानैस्तु सुखं यान्ति यमालयम्॥४३॥

चतुर्थेनैकभक्तेन वर्तन्ते ये जितेन्द्रियाः। ते यान्ति धर्मनगरं यानैर्बर्हिणयोजितैः॥४४॥

जो दम्भ तथा मिथ्या कथन त्याग कर एक दिन के अन्तर से भोजन ग्रहण करता है, वह सारस जुते विमान पर बैठ कर यममार्ग पार कर लेता है। शठता तथा दम्भ का वर्जन करके जो एक बार ही दिन में आहार का व्रत लेते हैं, वे कुक्कुटयुक्त विमानारूढ़ होकर सुख से यमलोक जाते हैं। जो मात्र प्रति चौथे दिन एक बार आहार ग्रहण करते हैं तथा जितेन्द्रिय रहते हैं, वे वाहन युक्त यान पर बैठ कर धर्मनगरी जाते हैं।।४२-४४।।

तृतीये दिवसे ये तु भुञ्जते नियतव्रताः। तेऽपि हस्तिरथैर्दिव्यैर्यान्ति यानैश्च तत्पदम्॥४५॥

षष्ठेऽन्नभक्षको यस्तु शौचनित्यो जितेन्द्रियः।
स याति कुञ्जरस्थस्तु शचीपतिरिव स्वयम्॥४६॥

धर्मराजपुरं दिव्यं नानामणिविभूषितम्। नानास्वरसमायुक्तं जयशब्दरवैर्युतम्॥४७॥

पक्षोपवासिनो यान्ति यानैः शार्दूलयोजितैः। पुरं तद्धर्मराजस्य सेव्यमानाः सुरासुरैः॥४८॥

ये च मासोपवासं तु कुर्वते संयतेन्द्रियाः।
तेऽपि सूर्यप्रदीप्तैस्तु यान्ति यामैर्यमालयम्॥४९॥

महाप्रस्थानमेकाग्रो यः प्रयाति दृढव्रतः। सेव्यमानस्तु गन्धर्वैर्याति यानैर्यमालयम्॥५०॥

जो लोग प्रति तृतीय दिवस एक बार मात्र आहार का व्रत लेते हैं, वे हस्तिरथ नामक दिव्य विमान पर बैठ कर यह स्थान (महापथ) पार कर लेते हैं। जो व्यक्ति पवित्र तथा जितेन्द्रिय होकर दिन के छठे काल में भोजन का व्रत लेता है, वह इन्द्र के समान हाथी पर बैठ कर यमभवन जाता है। एक पक्ष (१५ दिन) उपवासी लोग शार्दूलयुक्त विमान पर बैठ कर सुरों-असुरों से सेव्यमान होकर नाना मणियों से भूषित, विविध स्वर समन्वित, जय-जयकार घोष युक्त होकर यमालय जाते हैं। जो संयतेन्द्रिय होकर एक मास व्रत करते हैं, वे सूर्य के समान प्रदीप्त यानारूढ़ होकर यमालय जाता है। जो मानव एकाग्रचित्त तथा दृढ़व्रती होकर महाप्रस्थान करता है, वह यान पर बैठ कर गन्धर्वों से सेवित होता यमालय जाता है।।४५-५०।।

शरीरं साधयेद्यस्तु वैष्णवेनान्तरात्मना। स रथेनाग्निवर्णेन यातीह त्रिदशालयम्॥५१॥

अग्निप्रवेशं यः कुर्यान्नारायणपरायणः। स यात्यग्निप्रकाशेन विमानेन यमालयम्॥५२॥

प्राणांस्त्यजति यो मर्त्यः स्मरन्विष्णुं सनातनम्।
यानेनार्कप्रकाशेन याति धर्मपुरं नरः॥५३॥

जो लोग विष्णु में चित्त लगाकर शरीर त्यागते हैं, वे अग्निवर्ण रथ पर आरूढ़ होकर स्वर्ग जाते हैं। जो व्यक्ति नारायण परायण होकर देहत्याग के लिये अग्नि में प्रविष्ट होते हैं, वे अग्निवत् प्रकाशमान विमानारूढ़ होकर यमलोक गमन करते हैं। जो मानव सनातन विष्णु का स्मरण करता प्राणत्याग करता है, वह सूर्य के समान प्रकाशित रथ पर बैठ कर धर्मराज पुरी जाता है। जो मानव जल में प्रवेश करके प्राणत्याग करता है, वह सोममण्डल के समान श्रीसम्पन्न यान पर बैठ कर सुख के साथ यमभवन जाता है।।५१-५३।।

प्रविष्टोऽन्तर्जलं यस्तु प्राणांस्त्यजति मानवः।
सोममण्डलकल्पेन याति यानेन वै सुखम्॥५४॥
स्वशरीरं हि गृध्रेभ्यो वैष्णवो यः प्रयच्छति।
स याति रथमुख्येन काञ्चनेन यमालयम्॥५५॥
स्त्रीग्रहे गोग्रहे वाऽपि युद्धे मृत्युमपैति यः।
स यात्यमरकन्याभिः सेव्यमानो रविप्रभः॥५६॥
वैष्णवा ये च कुर्वन्ति तीर्थयात्रां जितेन्द्रियाः।
तत्पथं यान्ति ते घोरं सुखयानैरलङ्कृताः॥५७॥

ये यजन्ति द्विजश्रेष्ठाः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः। तप्तहाटकसङ्काशैर्विमानैर्यान्ति ते सुखम्॥५८॥

परपीडामकुर्वन्तो भृत्यानां भरणादिकम्।
कुर्वन्ति ते सुखं यान्ति विमानैः कनकोज्ज्वलैः॥५९॥
ये क्षान्ताः सर्वभूतेषु प्राणिनामभयप्रदाः।
क्रोधमोहविनिर्मुक्ता निर्मदाः संयतेन्द्रियाः॥६०॥

पूर्णचन्द्रप्रकाशेन विमानेन महाप्रभाः। यान्ति वैवस्वतपुरं देवगन्धर्वसेविताः॥६१॥

जो वैष्णव अपने देह को गृद्धों को प्रदान कर देता है, वह उत्तम स्वर्णमय रथ पर बैठ कर यमालय जाता है। जो मानव स्त्री तथा गौ रक्षार्थ युद्ध में प्राणत्याग करता है, वह सूर्य के समान उज्ज्वल देहधारी होकर तथा देवकन्याओं द्वारा सम्मानित होकर यमलोक जाता है। जो वैष्णव लोग जितेन्द्रिय होकर तीर्थाटन करते हैं, वे सभी प्रकार से अलंकृत होकर यानारूढ़ होकर इस महाघोर मार्ग को पार करते हैं। हे द्विजप्रवरगण! जो अनेक दक्षिणायुक्त विविध यज्ञों को करते हैं, वे प्रतप्त स्वर्ण कांति वाले विमान पर आरूढ़ होकर सुख पूर्वक प्रस्थान करते हैं। जो अन्य को कष्ट नहीं देते, भृत्यों का उचित भरण-पोषण करते हैं, वे भी कनकोज्ज्वल विमानारूढ़ होकर सुख पूर्वक यमभवन जाते हैं। जो सभी प्राणीगण को क्षमा करने वाले, सबको अभय देने वाले, क्रोध-मोह रहित, गर्वशून्य तथा संयत इन्द्रिय वाले हैं, वे महान् उज्ज्वल देह पाकर पूर्ण चन्द्र के समान विमान पर आसीन होकर यमभवन गमन करते हैं। वे मार्ग में देव-गन्धर्व से सेवित होते जाते हैं।।५४-६१।।

एकभावेन ये विष्णुं ब्रह्माणं त्र्यम्बकं रविम्।
पूजयन्ति हि ते यान्ति विमानैर्भास्करप्रभैः॥६२॥
ये च मांसं न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः।
तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः॥६३॥
मान्सान्मिष्टपुरं नास्ति भक्ष्यभोज्यादिकेषु च।
तस्मान्मान्सं न भुञ्जीत नास्ति मिष्टैः सुखोदयः॥६४॥

गोसहस्रं तु यो दद्याद्यस्तुमांसं च भक्षयेत्। समावेतौ पुरा प्राह ब्रह्मा वेदविदां वरः॥६५॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्समम्॥६६॥

जो अभेद ज्ञान के साथ ब्रह्मा, विष्णु, शिव की अर्चना करते हैं (इनमें भेद नहीं मानते), वे सूर्य के समान प्रभापूर्ण विमान पर बैठ कर यमभवन जाते हैं। जो जीवन काल में सत्य, पवित्रता से रहते हैं, मांस भक्षण नहीं करते, वे मनुष्य सुख के साथ धर्मराज की पुरी जाते हैं। समस्त भक्ष्य-भोज्य में मांस जैसा मधुर पदार्थ कोई नहीं है। अतः मांस त्याग करना चाहिये। मधुर से सुख नहीं प्राप्त होता। सहस्र गोदान तथा मांसवर्जन, इन दोनों का बराबर पुण्यफल है। पूर्वकाल में वेदज्ञों में प्रधान ब्रह्मा का यही वचन है। हे विप्रवृन्द! सभी तीर्थों में जाने का जो पुण्यफल है तथा सभी यज्ञानुष्ठान का जो फल है, मांसभक्षण वर्जन का भी वही फल होता है।।६२-६६।।

एवं सुखेन ते यान्ति यमलोकं च धार्मिकाः। दानव्रतपरा यानैर्यत्र देवो रवेः सुतः॥६७॥

दृष्ट्वा तान्धार्मिकान्देवः स्वयं सम्मानयेद्यमः।
स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण तु॥६८॥
धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः।
येन दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम्॥६९॥

इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषिताः। स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम्॥७०॥

तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यपरिक्षयात्।
यत्किञ्चिदल्पमशुभं फलं तदिह भोक्ष्यथ॥७१॥
ये तु तं धर्मराजानं नराः पुण्यानुभावतः। पश्यन्ति सौम्यमनसं पितृभूतमिवाऽऽत्मनः॥७२॥
तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदा मुक्तिफलप्रदः। धर्मादर्थस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते॥७३॥

दान-व्रत परायण धार्मिकगण इस प्रकार यान-वाहन से वहां जाते हैं, जहां सूर्यपुत्र यमदेव स्थित हैं। वे लोग यमभवन सुख से जाते हैं। यमदेव इन धार्मिकों को आया देख कर उन्हें स्वयं पाद्य, अर्घ्य, स्वागत प्रश्न तथा प्रिय भाषणों से सम्मानित करते हैं। वे उनसे कहते हैं कि "आप लोग अपना हित करने वाले महात्मा धन्य हैं। आपने दिव्य सुखलाभार्थ सुकृत कर्मों को किया है। आप लोग विमान पर बैठ कर दिव्य स्त्रियों के साथ दिव्य भोग युक्त होकर सर्वकाम समन्वित अतुलनीय स्वर्ग जायें। वहां महान् भोगों को भोगने के उपरान्त जो कुछ अत्यल्प अशुभ कर्म बाकी रह जायेगा, यहां आकर उसका भोग कीजियेगा।" जो धर्मात्मा लोग हैं, वे लोग इन धर्मराज को अपने पिता के समान सौम्य चित्त रूप में देखते हैं! इस कारण मनुष्य को चाहिये कि वह सदा सभी फलों को देने वाले धर्म की ही सेवा करें। धर्म से ही अर्थ, काम तथा मोक्षलाभ होता है।।६७-७३।।

धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नाथः सुहृत्तथा।
धर्मः स्वामी सखा गोप्ता तथा धाता च पोषकः॥७४॥
धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद्भोगः सुखानि च।
धर्मादैश्वर्यमैकाग्र्यं धर्मात्स्वर्गगतिः परा॥७५॥
धर्मस्तु सेवितो विप्रास्त्रायते महतो भयात्।
देवत्वं च द्विजत्वं च धर्मात्प्राप्नोत्यसंशयम्॥७६॥
यदा च क्षीयते पापं नराणां पूर्वसञ्चितम्। तदैषां भजते बुद्धिर्धर्मं चात्र द्विजोत्तमाः॥७७॥
जन्मान्तरसहस्रेषु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
यो हि नाऽऽचरते धर्मं भवेत्स खलु वञ्चितः॥७८॥
कुत्सिता ये दरिद्राश्च विरूपा व्याधितास्तथा।
परप्रेष्याश्च मूर्खाश्च ज्ञेया धर्मविवर्जिताः॥७९॥
ये हि दीर्घायुषः शूराः पण्डिता भोगिनोऽर्थिनः।
अरोगा रूपवन्तश्च तैस्तु धर्मः पुरा कृतः॥८०॥

धर्म ही प्राणीगण का माता, पिता, भ्राता, स्वामी तथा सुहृद है। धर्म ही स्वामी, सखा, पालक, धारण करने वाला तथा पोषक है। धर्म से ही अर्थ, अर्थ से काम, काम से भोगसुख मिलता है। धर्म से ही अखण्ड ऐश्वर्य तथा उत्तम स्वर्ग गति मिलती है। हे विप्रगण! धर्म सेवित होने पर वह महाभय से रक्षा भी करता है। देवत्व एवं द्विजत्व भी धर्म से मिलता है। हजारों-हजार जन्मों के उपरान्त मनुष्यत्व मिलने पर जो धर्माचरण नहीं करते, वे ठगे गये हैं। जो इस समय इस लोक में कुत्सित, दरिद्र किंवा विकृताकृति, रोगी, दूसरे के अधीन

आज्ञा पालन को विवश, मूर्ख हैं, उन्होंने पूर्वजन्म में धर्मपालन नहीं किया है। जो दीर्घायु, बली, पण्डित, भोगयुक्त, धनी, रोगहीन तथा सुरूप हैं, उन्होंने तो पूर्वजन्म में धर्माचरण अवश्य किया है।।७४-८०।।

एवं धर्मरता विप्रा गच्छन्ति गतिमुत्तमाम्। अधर्मं सेवमानास्तु तिर्यग्योनिं व्रजन्ति ते।।८१।।
ये नरा नरकध्वंसिवासुदेवमनुव्रताः। ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकाणि वा।।८२।।
अनादिनिधनं देवः दैत्यदानवदारणम्। ये नमन्ति नरा नित्यं नहि पश्यन्ति ते यमम्।।८३।।

हे ब्राह्मणवृन्द! धर्मरत व्यक्ति एवंविध उत्तम गति लाभ करते हैं। अधर्मी लोग तिर्यक् योनि में जाते हैं। जो मनुष्य नरक निवारक वासुदेव की शरण लेता है, वह स्वप्न में भी यमराज तथा नरक नहीं देखता। जो नित्यप्रति दैत्य-दानवों का निवारण करते हैं, उन आदि-अन्त हीन देव नारायण को प्रणाम करना चाहिये। ऐसे लोग कदापि यम का दर्शन नहीं करते।।८१-८३।।

कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युतं शरणं गताः।
न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः।।८४।।
ये जना जगता नाथं नित्यं नारायणं द्विजाः।
नमन्ति नहि ते विष्णोः स्थानादन्यत्र गामिनः।।८५।।
न ते दूतान्न तन्मार्गं न यमं न च तां पुरीम्।
प्रणम्य विष्णुं पश्यन्ति नरकाणि कथञ्चन।।८६।।

कृत्वाऽपि बहुशः पापं नरा मोहसमन्विताः। न यान्ति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम्।।८७।।

जो मन, वाणी, कर्म से अच्युत देव की शरण लेते हैं, यम उन पर शासन नहीं कर पाते। वे मुक्ति नामक फललाभ करते हैं। हे ब्राह्मणगण! जो लोग नित्य समस्त जगत् के नाथ नारायण को प्रणाम करते हैं, उनको यह विष्णु स्थान मिलता है। उनको कहीं अन्यत्र नहीं जाना पड़ता। विष्णु को प्रणाम करने के फलस्वरूप उनको यमदूत, यममार्ग, यमराज, यमपुरी अथवा नरक नहीं देखना पड़ता। लोग भले ही अनेक पापकृत्य युक्त हों, तथापि सर्वपापहारी श्रीहरि को प्रणाम करने पर उनको नरक नहीं जाना पड़ता।।८४-८७।।

शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम्।
तेऽपि यान्ति तनुं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम्।।८८।।

अत्यन्तक्रोधसक्तोऽपि कदाचित्कीर्तयेद्धरिम्। सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं लभेच्चेदिपतिर्यथा।।८९।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे धार्मिकाणां सुगतिनिरूपणं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१६।।

जो शठता पूर्वक अथवा छलक्रमेण भी जनार्दन का स्मरण करते हैं, वे भी देह त्यागोपरान्त अनामय विष्णुलोक की प्राप्ति कर लेते हैं। यदि अत्यन्त क्रोधाक्रान्त व्यक्ति भी कदाचित् हरि नाम उच्चारण करता है, वह भी मुक्तिलाभ करता है, जैसे चेदिराज शिशुपाल ने प्राप्त किया था। वह व्यक्ति दोषमुक्त हो जाता है।।८८-८९।।

।।षोडशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वैवं यममार्गं ते नरकेषु च यातनाम्। पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं संशयं मुनिसत्तमाः॥१॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे मुनिसत्तमगण! उन मुनिगण ने यमपथ तथा नरकयातना का विषय एवंविध सुनकर संशय के कारण पुनः व्यासदेव से प्रश्न किया।।१।।

मुनय ऊचुः

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद। मर्त्यस्य कः सहायो वै पिता माता सुतो गुरुः॥२॥
ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च। गृहं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनः।
गच्छन्त्यमुत्र लोके वै कश्चताननुगच्छति॥३॥

मुनिगण कहते हैं—हे सर्वधर्मज्ञ, सर्वशास्त्र विशारद! प्रभो! मृत्युलोकवासी का पिता, माता, गुरु, पुत्र, बान्धव, सम्बन्धी, मित्रगण एवं अपने गोत्र वालों में से कौन सहायक है? क्योंकि मनुष्य काष्ठ तथा मिट्टी के ढेले के समान जब शरीर त्याग कर, गृह छोड़ कर यमालय चला जाता है, तब कौन उनका अनुगमन करता है?।।२-३।।

व्यास उवाच

एकः प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति। एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्॥४॥
असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः। ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च॥५॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः। मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः॥६॥

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणगण! जीव एकाकी जन्म लेता है, एकाकी नष्ट होता है, एकाकी ही कठिनाईयों को पार करता है। एकाकी ही नरकगमन करता है। पिता, माता, भाई, गुरु, पुत्र, सगोत्रीय, सम्बन्धी, बान्धवादि कोई भी उसके सहायक नहीं होते। जनगण काठ तथा मिट्टी के ढेले के समान मृत शरीर को त्याग देते हैं, कुछ समय रोते हैं, तत्पश्चात् विमुख होकर चले जाते हैं।।४-६।।

तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति। तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः॥७॥
प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गगतिं पराम्। तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते॥८॥
तस्मात्पापागतैरर्थैर्नानुरज्येत पण्डितः। धर्म एको मनुष्याणां सहायः परिकीर्तितः॥९॥
लोभान्मोहादनुक्रोशाद् भयाद्वाऽथ बहुश्रुतः। नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः॥१०॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीवतः फलम्। एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम्॥११॥

तब एकमात्र धर्म ही उनका अनुगमन करता है। अतः मनुष्यों का प्रधान सहायक जो धर्म है, सदा

उसका ही सेवन करना चाहिये। धर्मयुक्त होने पर ही प्राणी परमा स्वर्गगति लाभ करता है। अधर्म के संयोग के कारण वह नरकगति पाता है। अतः पण्डित व्यक्ति पापों में अनुरक्त न हो! एकमात्र धर्म ही मानवों का सहायक होता है। अनेक शास्त्रों का ज्ञाता भी लोभ, मोह, दया, भय आदि के वशीभूत होकर पराये पदार्थ से मोहित होकर अकार्य करता है। जीवन धारण के तीन फल हैं—धर्म, अर्थ, काम। अतएव अधर्म त्याग कर इन तीनों की प्राप्ति के लिये सभी यत्न करना चाहिये।।७-११।।

मुनय ऊचुः

श्रुतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्तं परं हितम्। शरीरनिचयं ज्ञातुं बुद्धिर्नोऽत्र प्रजायते॥१२॥
मृतं शरीरं हि नृणां सूक्ष्मव्यक्ततां गतम्। अचक्षुर्विषयं प्राप्तं कथं धर्मोऽनुगच्छति॥१३॥

मुनिगण कहते हैं—हम लोगों ने आपकी परम धर्मयुक्त तथा हितकर वचनावलियों का श्रवण किया। अब हमें शरीर तत्व जानने की इच्छा है। मृत व्यक्ति का जो सूक्ष्म शरीर होता है, वह तो अव्यक्तव्य है। उसे नेत्रों से नहीं देखा जा सकता। तब धर्म उनका अनुगमन कैसे करेगा?।।१२-१३।।

व्यास उवाच

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोन्तरम्।
बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा॥१४॥
प्राणिनामिह सर्वेषां साक्षिभूता दिवानिशम्। एतैश्च सह धर्मो हि तं जीवमनुगच्छति॥१५॥
त्वगस्थि मांसं शुक्रं च शोणितं च द्विजोत्तमाः।
शरीरं वर्जयन्त्येते जीवितेन विवर्जितम्॥१६॥
ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेधते। इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि वः॥१७॥

व्यासदेव कहते हैं—सभी प्राणीगण के साक्षीभूत धरती, वायु, आकाश, जल तथा ज्योतिः, मन, बुद्धि तथा आत्मा, ये सर्वदा दिन-रात धर्म को देखते रहते हैं। धर्म इनके द्वारा ही जीव का अनुगामी होता है। हे द्विजोत्तमवृन्द! त्वक्, अस्थि, मांस, शुक्र, शोणित रूपी शरीर का ये सभी त्याग कर देते हैं। तदनन्तर जीव धर्म से युक्त होकर इहलोक-परलोक में सुख पाता है। यह मैंने शरीर तत्व कह दिया। अब आप लोग क्या जानना चाहते हैं?।।१४-१७।।

मुनय ऊचुः

तद्दर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति। एतत्तु ज्ञातुमिच्छामः कथं रेतः प्रवर्तते॥१८॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिप्रवर! आपने यह तो समझा दिया कि धर्म प्राणी का अनुगमन कैसे करता है? अब कृपया यह कहिये कि वीर्य निर्माण कैसे होता है?।।१८।।

व्यास उवाच

अन्नमश्नन्ति ये देवाः शरीरस्था द्विजोत्तमाः। पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा॥१९॥
ततस्तृप्तेषु भो विप्रास्तेषु भूतेषु पञ्चसु। मनः षष्ठेषु शुद्धात्मा रेतः सम्पद्यते महत्॥२०॥

ततो गर्भः सम्भवति श्लेष्मा स्त्रीपुंसयोर्द्विजाः।
एतद्वः सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥२१॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजप्रवर! शरीरधारी के शरीर में स्थित देवता जो अन्न भोजन करते हैं, उसके द्वारा पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज तथा मन को तृप्ति होती है। हे ब्राह्मणों! पञ्चभूत (ये पांच) तथा मन, ये छः जब तृप्त हो जाते हैं, तब विशुद्ध महत् आत्मा रेतः के आकार में परिणत होता है। हे ब्राह्मणगण! तदनन्तर स्त्री-पुरुष के संयोग से रजः-वीर्य का संयोग गर्भरूपेण परिणत हो जाता है। आप लोगों की जिज्ञासा का मैंने यथेष्ट उत्तर दे दिया। अब आप लोग क्या जानना चाहते हैं?।।१९-२१।।

मुनय ऊचुः

आख्यातं नो भगवता गर्भः सञ्जायते यथा। यथा जातस्तु पुरुषः प्रपद्येत तदुच्यताम्॥२२॥

मुनिगण कहते हैं—हे भगवान्! जैसे गर्भोत्पत्ति होती है तथा जीव जैसे उसमें आविष्ट होकर जन्म लेता है? वह उपाख्यान कहिये।।२२।।

व्यास उवाच

आसन्नमात्रपुरुषस्तैर्भूतैरभिभूयते। विप्रयुक्तस्तु तैर्भूतैः पुनर्यात्यपरां गतिम्॥२३॥
स च भूतसमायुक्तः प्राप्नोति जीवमेव हि।
ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥२४॥

व्यासदेव कहते हैं—पुरुष उत्पन्न होते ही पंचमहाभूतों से अभिभूत हो जाता है। जब वह पंचभूतों से अलग होता है, तब अन्य गति (मरण) प्राप्त करता है। जब तक पुरुष इन पंचभूतों से आक्रान्त रहता है (स्थितिकाल) तब तक सजीव रहेगा। तब तक पंचभूतों के अधिष्ठातृ देवगण उसके शुभाशुभ कर्मों को (अच्छे, बुरे कर्मों को) देखते रहते हैं। अब आप लोग क्या श्रवण करना चाहते हैं?।।२३-२४।।

मुनय ऊचुः

त्वगस्थि मांसमुत्सृज्य तैस्तु भूतैर्विवर्जितः। जीवः स भगवन्क्वस्थः सुखदुःखे समश्नुते॥२५॥

मुनिगण कहते हैं—हे प्रभो! यह जीव त्वक्-अस्थि, मांसादि का त्याग करके पंचभूत रहित होकर कहां रहता हुआ सुख-दुःखभोग करता है?।।२५।।

व्यास उवाच

जीवः कर्मसमायुक्तः शीघ्रं रेतः समागतः।
स्त्रीणां पुष्पं समासाद्य ततः कालेन भो द्विजाः॥२६॥
यमस्य पुरुषैः क्लेशो यमस्य पुरुषैर्वधः।
दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं च विन्दति॥२७॥

इह लोके स तु प्राणी जन्मप्रभृति भो द्विजाः।
सुकृतं कर्म वै भुङ्क्ते धर्मस्य फलमाश्रितः॥२८॥

यदि धर्मं समायुज्य जन्मप्रभृति सेवते। ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम्॥२९॥
अथान्तरान्तरं धर्ममधर्ममुपसेवते। सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोऽप्यधिगच्छति॥३०॥
अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः। महादुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते॥३१॥

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! जीव अपने कर्म के वशीभूत होकर शीघ्र रेतः में प्रविष्ट होता है। तदनन्तर स्त्री-पुरुष संयोग के कारण गर्भरूपेण परिणत होता है। मनुष्य इस प्रकार से यमगणों के हाथों के प्रहारादि द्वारा नाना प्रकार के क्लेशों का भोग करके संसारचक्र में प्रवेश करता है और पुनः संसार में अनेक यातना भोग करता है। हे द्विजगण! यह प्राणी इहलोक में जन्म लेकर अपने द्वारा किये गये धर्म का फलभोग करता है। यदि जन्म के पश्चात् वह धर्माचरण करेगा, तब वह निश्चित रूप से सुख भोग करेगा। यदि वह धर्म पालन के बीच में अधर्माचरण करेगा, तब उसे सुख भोग के साथ दुःख भी मिलता रहेगा। अधार्मिक जीव यमलोक जाकर महादुःख प्राप्त करने के अनन्तर तिर्यक् योनि पाते हैं।।२६-३१।।

कर्मणा येन येनेह यस्यां योनौ प्रजायते। जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे शृणुत साम्प्रतम्॥३२॥
यदेतदुच्यते शास्त्रैः सेतिहासैश्च छन्दसि। यमस्य विषयं घोरां मर्त्यलोकं प्रवर्तते॥३३॥

इह स्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भो द्विजाः।
तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः॥३४॥

यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे गुणैः। कर्मभिर्नियतैर्बद्धो जन्तुर्दुःखान्युपाश्नुते॥३५॥

येन येन हि भावेन येन वै कर्मणां गतिम्।
प्रयाति पुरुषो घोरां तथा वक्ष्याम्यतः परम्॥३६॥

जीवगण मोहवश में होकर जैसा कर्म करते हैं, तदनुरूप योनि मिलती है। सम्प्रति वह सब मुझसे श्रवण करिये। वेद, इतिहासादि शास्त्रों में इस घोर मर्त्यलोक को भी यम का ही घोर राज्य कहा गया है। हे ब्राह्मणों! यहां देवलोक जैसे पुण्यस्थल भी हैं तथा पाप भोगार्थ विविध स्थावर-जंगम योनियां भी हैं। ब्रह्मलोक के समान गुणपूर्ण दिव्य यमभवन में प्राणीगण कर्मबद्ध होकर विविध दुःख पाते हैं। पुरुष जिन-जिन कर्मों को करके तदनुरूप जो घोर गति पाता है, अब वही कहता हूं।।३२-३६।।

अधीत्य चतुरो वेदान्द्विजो मोहसमन्वितः। पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनौ प्रजायते॥३७॥

खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः।
खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति॥३८॥

बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः। ब्रह्मरक्षस्तु मासांस्त्रींस्ततो जायेत ब्राह्मणः॥३९॥

पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते।
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः॥४०॥

क्रिमिभावाद्विनिर्मुक्तस्ततो जायेत गर्दभः। गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि शूकरः॥४१॥

कुक्कुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः।
श्वा वर्षमेकं भवति ततो जायेत मानवः॥४२॥

जो चारों वेदों का अध्ययन करके पतितों का दान ग्रहण करता है, वह मृत्यु के उपरान्त गर्दभ होता है। हे द्विजगण! वह गर्दभ १५ वर्ष की आयु पाकर मरने पर सात वर्ष बैल होता है। तदनन्तर तीन माह ब्रह्मराक्षस होता है। तदनन्तर ब्राह्मण योनि मिलती है। पतित का यज्ञ कराने वाला १५ वर्ष कृमियोनि में रहकर, गर्दभ होकर पांच वर्ष, शूकर योनि में भी पांच वर्ष, मुर्गा होकर पांच वर्ष तथा शृगाल होकर पांच वर्ष व्यतीत करता है। तदनन्तर एक वर्ष श्वान योनि में रहकर तब उसे मानव देह की प्राप्ति होती है।।३७-४२।।

उपाध्यायस्य यः पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान्।
स जन्मानीह संसारे त्रीनाप्नोति न संशयः॥४३॥
प्राक्श्वा भवति भो विप्रास्ततः क्रव्यात्ततः खरः।
प्रेत्य च परिक्लिष्टेषु पश्चाज्जायेत ब्राह्मणः॥४४॥

जो शिष्य अबुद्धि पूर्वक अध्यापक का अनिष्ट करता है, वह पहले कुत्ता, तदनन्तर मांसाहारी प्राणी, तदनन्तर गर्दभ होता है। यह निःसंशय है। यह क्लेश भोगने के उपरान्त उसे ब्राह्मण जन्म मिलता है।।४३-४४।।

मनसाऽपि गुरोभार्यां यः शिष्यो याति पापकृत्।
उदग्रान्प्रैति संसारानधर्मेणेह चेतसा॥४५॥
श्वयोनौ तु स सम्भूतस्त्रीणि वर्षाणि जीवति।
तत्रापि निधनं प्राप्तः क्रिमियोनौ प्रजायते॥४६॥

कृमिभावमनुप्राप्तो वर्षमेकं तु जीवति। ततस्तु निधनं प्राप्य ब्रह्मयोनौ प्रजायते॥४७॥

यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्यादकारणम्।
आत्मनः कामकारेण सोऽपि हिंस्रः प्रजायते॥४८॥

पितरं मातरं चैव यस्तु पुत्रोऽवमन्यते। सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुः पूर्वं जायेत गर्दभः॥४९॥

गर्दभत्वं तु सम्प्राप्य दश वर्षाणि जीवति।
संवत्सरं तु कुम्भीरस्ततो जायेत मानवः॥५०॥

पुत्रस्य मातापितरौ यस्य रुष्टावुभावपि। गुर्वपध्यानतः सोऽपि मृतो जायेत गर्दभः॥५१॥

खरो जीवति मासांश्च दश चापि चतुर्दश।
बिडालः सप्त मासांस्तु ततो जायेत मानवः॥५२॥
मातापितरावाक्रुश्य सारीकः सम्प्रजायते।
ताडयित्वा तु तावेव जायते कच्छपो द्विजाः॥५३॥

कच्छपो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः।
व्यालो भूत्वा तु षण्मासांस्ततो जायेत मानुषः॥५४॥
भर्तृपिण्डमुपाश्नीनो (दत्ते) राजद्विष्टानि सेवते।
सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायेत वानरः॥५५॥
वानरो दश वर्षाणि सप्त वर्षाणि मूषकः।
श्वा च भूत्वा तु षण्मासांस्ततो जायेत मानवः॥५६॥

जो शिष्य मानसिक रूप से भी गुरुपत्नी गमन करता है, वह उस पाप के कारण श्वान योनि में तीन वर्ष, क्रिमियोनि में एक वर्ष घोर कष्ट उठाता है। तब उसे ब्राह्मण योनि मिलती है। यदि गुरु पुत्र के समान शिष्य पर अकारण स्वेच्छा से प्रहार करे, तब उसे भी हिंस्र योनि में जन्म लेना पड़ता है। हे ब्राह्मणवृन्द! जो पुत्र माता-पिता का अपमान करता है, वह दस वर्ष गर्दभ होकर एक वर्ष मगरमच्छ होकर रहता है। तदनन्तर मानव रूप में उसका जन्म होगा। जिस पुत्र के प्रति माता-पिता दोनों ही रुष्ट रहते हैं तथा गुरुजन के रोष के कारण वह गर्दभ होकर जन्म लेगा। वह चौबीस मास तक गर्दभ तथा सात मास तक बिड़ाल होगा। तत्पश्चात् वह मनुष्य होकर जन्म लेगा। माता-पिता के प्रति कटु वचन बोलने वाला सारिक पक्षी होगा। माता-पिता पर प्रहार करने वाला दश वर्ष पर्यन्त कच्छप होकर, तीन वर्ष तक साही पशु होगा। तदनन्तर छः मास तक सर्पयोनि में रहकर तब मनुष्य योनि उसे मिलेगी। जो वेतनभोगी व्यक्ति स्वामीद्रोह करता है, वह मरणोपरान्त दस वर्ष वानर, सात वर्ष मूषक तथा श्वान योनि में छः मास रहने के उपरान्त मनुष्य योनि में जन्म लेगा।।४५-५६।।

न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः। संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते॥५७॥
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः।
दुष्कृतस्य क्षयं कृत्वा ततो जायेत मानुषः॥५८॥
असूयको नरश्चापि मृतो जायेत शार्ङ्गकः। विश्वासहर्ता च नरो मीनो जायेत दुर्मतिः॥५९॥
भूत्वा मीनोऽष्टवर्षाणि मृगी जायेत भो द्विजाः।
मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते॥६०॥
छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णे संवत्सरे ततः। कीटः सञ्जायते जन्तुस्ततो जायेत मानुषः॥६१॥
धान्यान्यवांस्तिलान्माषान्कुलित्थान्सर्षपांश्चणान्।
कलायानथ मुद्गांश्च गोधूमानतसीस्तथा॥६२॥
सस्यान्यन्यानि हर्ता च मर्त्यो मोहादचेतनः। सञ्जायते मुनिश्रेष्ठा मूषिको निरपत्रपः॥६३॥
ततः प्रेत्य मुनिश्रेष्ठा मृतो जायेत शूकरः। शूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते पुनः॥६४॥
श्वा ततो जायते मूकः कर्मणा तेन मानवः।
भूत्वा श्वा पञ्च वर्षाणि ततो जायेत मानवः॥६५॥

धरोहर को हड़पने वाला व्यक्ति यमपुर में यातना भोग कर १५ वर्ष पर्यन्त कृमियोनि में दुष्कृत भोग

कर तब मानव हो पाता है। ईर्ष्या करने वाला मरने के उपरान्त सींगधारी जीव होता है। विश्वासघातक दुर्मति व्यक्ति मछली का जन्म लेगा। आठ वर्ष के उपरान्त चार मास मृग, एक वर्ष तक बकरा, तदनन्तर कीट होगा। कीट योनि में मृत्यु होने पर तब उसे मनुष्य जन्म मिलता है। हे मुनिप्रवरवृन्द! जो मूर्ख मानव मोहग्रस्तता के कारण धान्य, जौ, तिल, उर्द, कुलत्थ, सरसों, चना, मूंग, गेहूं, तीसी तथा अन्य अन्न चोरी करता है, वह निर्लज्ज मूषक योनि में जन्म लेता है। वहां मरणोपरान्त वह शूकर होगा, जहां जन्मते ही रोग से मृत होगा। तत्पश्चात् वह मूक श्वान होकर पांच वर्ष के पश्चात् देहत्यागोपरान्त मनुष्य जन्म लेगा।।५७-६५।।

परदाराभिमर्शं तु कृत्वा जायेत वै वृकः।
श्वा शृगालस्ततो गृध्रो व्यालः कङ्को बकस्तथा॥६६॥
भ्रातुर्भार्यां तु पापात्मा यो घर्षयति मोहितः।
पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति सोऽपि संवत्सरं द्विजाः॥६७॥
सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्यां तथैव च।
प्रघर्षयित्वा कामात्मा मृतो जायेत शूकरः॥६८॥
शूकरः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि वै बकः।
पिपीलिकस्तु मासांस्त्रीन्कीटः स्यान्मासमेव च॥६९॥
एतानासाद्य संसारान्कृमियोनौ प्रजायते। तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ चतुर्दश॥७०॥
नरोऽधर्मक्षयं कृत्वा ततो जायेत मानुषः।
पूर्वं दत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति॥७१॥
सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुः क्रिमियोनौ प्रजायते।
तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश द्विजोत्तमाः॥७२॥
अधर्मसंक्षये मुक्तस्ततो जायेत मानुषः। देवकार्यमकृत्वा तु पितृकार्यमथापि वा॥७३॥

परस्त्रीगामी वृक (भेड़िया) होगा। तत्पश्चात् क्रमशः श्वान, शृगाल, गृध्र, सर्प, चील तथा बगुला योनि में जायेगा। जो मूर्ख मानव भातृपत्नी से गमन करता है, वह मरणोपरान्त एक वर्ष तक नर कोयल होगा। मित्र की भार्या, गुरुजनों की भार्या तथा राजा की भार्या से बलात्कार करने वाला मरणोपरान्त पांच वर्ष शूकर, दस वर्ष बकुला, तीन मास चींटी, एक मास कीट तथा चौदह मास कृमि योनि में व्यतीत करेगा। इस प्रकार अधर्मक्षय होने पर उसे मानव योनि प्राप्त होगी। हे ब्राह्मणोत्तमगण! पहले एक को वाग्दान करके जो अन्य को पुनः कन्या प्रदान करता है, वह मरणोपरान्त तेरह वर्ष कृमि होकर रहता है। तब अधर्म क्षयीभूत होने पर वह मनुष्य होगा। जो व्यक्ति देवकर्म, पितृकर्म नहीं करता।।६६-७३।।

अनिर्वाप्य पितृन्देवान्मृतो जायेत वायसः।
वायसः शतवर्षाणि ततो जायेत कुक्कुटः॥७४॥
जायते व्यालकश्चापि मासं तस्मात्तु मानुषः।
ज्येष्ठं पितृसमं चापि भ्रातरं योऽवमन्यते॥७५॥

सोऽपि मृत्युमुपागम्य क्रौञ्चयोनौ प्रजायते।
क्रौञ्चो जीवति वर्षाणि दश जायेत जीवकः॥७६॥
ततो निधनमाप्नोति मानुषत्वमवाप्नुयात्।

तथा ये दोनों कार्य बिना किये मृत हो जाता है, वह मरणोपरान्त कौआ होकर १०० वर्ष, मुर्गा होकर एक मास, सर्प होकर एक मास जीवित रहेगा। तदनन्तर उसे मानव जन्मलाभ होगा। जो पितातुल्य बड़े भाई का अपमान करता है, वह मरणान्त में क्रौञ्च पक्षी होगा। दस वर्ष इस पक्षी योनि के पश्चात् वह चकोर योनि पाकर वहां मृत होने पर तब मनुष्य योनिलाभ करेगा।।७४-७६।।

वृषलो ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते॥७७॥
ततः सम्प्राप्य निधनं जायते शूकरः पुनः। शूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते द्विजाः॥७८॥
श्वा च वै जायते मूढः कर्मणा तेन भो द्विजाः।
श्वा भूत्वा कृतकर्माऽसौ जायते मानुषस्ततः॥७९॥

यदि शूद्र ब्राह्मणीगमन करता है, तब वह कृमि होगा। वहां मृत होकर शूकर योनि में रोगग्रस्त होकर मरेगा। तदनन्तर श्वान योनि में पाप फल भोगने के उपरान्त मनुष्य योनिलाभ करेगा।।७७-७९।।

तत्रापत्यं समुत्पाद्य मृतो जायेत मूषिकः। कृतघ्नस्तु मृतो विप्रा यमस्य विषयं गतः॥८०॥
यमस्य विषये क्रूरैर्बद्धः प्राप्नोति वेदनाम्। दण्डकं मुद्गरं शूलमग्निदण्डं च दारुणम्॥८१॥
असिपत्रवनं घोरं वालुकां कूटशाल्मलीम्।
एताश्चान्याश्च बहवो यमस्य विषयं गताः॥८२॥
यातनाः प्राप्य घोरास्तु ततो याति च भो द्विजाः।
संसारचक्रमासाद्य क्रिमियोनौ प्रजायते॥८३॥
क्रिमिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः। ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते नरः॥८४॥
ततो गर्भशतैर्जन्तुर्बहुशः सम्प्रपद्यते। संसारान्सुबहून्गत्वा ततस्तिर्यक्प्रजायते॥८५॥
ततो दुःखमनुप्राप्य बहुवर्षगणानि वै। स पुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते॥८६॥
दधि हृत्वा बकश्चापि प्लवो मत्स्यानसंस्कृतान्।
चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधुदंशः प्रजायते॥८७॥
फलं वा मूलकं हृत्वा पूपं वाऽपि पिपीलिकः।
चोरयित्वा तु निष्पावं जायते फलमूषकः॥८८॥

यदि वह शूद्र ब्राह्मणी से सन्तानोत्पत्ति करता है, तब वह शूद्र मरणान्त में मूषक होगा। हे विप्रगण! कृतघ्न व्यक्ति यमालय जाकर दण्ड, मुद्गर, शूल, दारुण अग्निदण्ड से ताड़ित होकर तब घोर असिपत्रवन, बालुका नरक तथा कूटशाल्मलि आदि नाना नरकों में यन्त्रणा भोग करता है। तदनन्तर संसार चक्र में गिर कर १५ वर्ष कृमि होकर तब मनुष्य योनि के गर्भ में गर्भकाल में ही मर जाता है। इस प्रकार वह अनेक बार

सैकड़ों वर्ष तक गर्भगत होकर तिर्यक् योनि में जन्म लेकर वर्षों क्लेशभोग करके कूर्म (कच्छप) होता है। तदनन्तर मनुष्य जन्म उसे मिल पाता है। दधि चोर बकुला होता है। असंस्कृत मत्स्यों का चोर दुष्टबुद्धि मधुमक्खी होगा। फल, मूल, पिष्टक (पूआ) चोरी करने वाला चींटी होगा। सेम चोर गिलहरी की योनि में जन्म लेगा।।८०-८८।।

पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरत्वमवाप्नुयात्। हत्वा पिष्टमयं पूपं कुम्भोलूकः प्रजायते।।८९।।

अपो हत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः। कांस्यं हत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारीतो जायते नरः।।९०।।

राजतं भाजनं हत्वा कपोतः सम्प्रजायते।
हत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते।।९१।।

पत्रोर्णं चोरयित्वा तु कुररत्वं नियच्छति। कोशकारं ततो हत्वा नरो जायेत नर्तकः।।९२।।

अंशुकं चोरयित्वा तु शुक्रो जायेत मानवः। चोरयित्वा दुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते।।९३।।

क्रौञ्चः कार्पासिकं हत्वा मृतो जायेत मानवः।
चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं चैव भो द्विजाः।।९४।।
क्षौमं च वस्त्रमाहृत्य शशो जन्तुः प्रजायते।
चूर्णं तु हत्वा पुरुषो मृतो जायेत बर्हिणः।।९५।।
हत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः।
वर्णकादींस्तथा गन्धांश्चोरयित्वेह मानवः।।९६।।

चुच्छुन्दरित्वमाप्नोति विप्रो लोभपरायणः। तत्र जीवति वर्षाणि ततो दश च पञ्च च।।९७।।

अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायेत मानवः। चोरयित्वा पयश्चापि बलाका सम्प्रजायते।।९८।।

खीर चोर तीतर, मालपूआ चोर उल्लू, जल चोर मूर्ख काक, कांसा चोर मूर्ख व्यक्ति हारीत पक्षी, चांदी पात्र चोर कबूतर, स्वर्णपात्र चोर कृमि, रेशमी वस्त्र चोर कुरर पक्षी, रेशम का कीट चोर नर्तक, महीन वस्त्र चोर शुक पक्षी, चिकना वस्त्र चोर हंस, सूती वस्त्र चोर क्रौंच पक्षी, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र चोर शशक पशु, चूर्ण हर्त्ता मयूर, लाल वस्त्र हर्त्ता चकोर पक्षी, गन्ध-चन्दनादि हर्त्ता छछुंदर होता है। यह पन्द्रह वर्ष छछुन्दर रहकर अधर्मक्षय के उपरान्त मनुष्य योनि में जन्म लेता है। दुग्ध चोर बगुला होता है।।८९-९८।।

यस्तु चोरयते तैलं नरो मोहसमन्वितः। सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुस्तैलपायी प्रजायते।।९९।।

अशस्त्रं पुरुषं हत्वा सशस्त्रः पुरुषाधमः।
अर्थार्थं यदि वा वैरी मृतो जायेत वै खरः।।१००।।

खरो जीवति वर्षे द्वे ततः शस्त्रेण बध्यते। स मृतो मृगयोनौ तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते।।१०१।।

मृगो विध्येत शस्त्रेण गते संवत्सरे ततः। हतो मृगस्ततो मीनः सोऽपि जालेन बध्यते।।१०२।।

मासे चतुर्थे सम्प्राप्ते श्वापदः सम्प्रजायते।
श्वापदो दश वर्षाणि द्वीपी वर्षाणि पञ्च च।।१०३।।

ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायचोदितः। अधर्मस्य क्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुयात्॥१०४॥

मोहवश तेल चुराने वाला व्यक्ति तैलपायी जीव होकर जन्म लेता है। जो पुरुषाधम धन लोभ के कारण अथवा शत्रुता के कारण स्वयं शस्त्रधारी होकर शस्त्र रहित व्यक्ति का वध करता है, वह मरणान्त में गर्दभ होकर दो वर्ष जीवित रहकर शस्त्राघात से मृत होगा। तदनन्तर सदा भयभीत रहने वाले मृग योनि में एक वर्ष व्यतीत करके शस्त्राघात से मर कर मछली योनि में जलबद्ध होकर मरने के उपरान्त दस वर्ष श्वान रहकर पांच वर्षों तक व्याघ्र योनि में रहेगा। काल प्रेरित मृत्यु पाकर तब वह मनुष्य होगा।।९९-१०४।।

वाद्यं हृत्वा तु पुरुषो लोमशः सम्प्रजायते। तथा पिण्याकसम्मिश्रमन्नं यश्चोरयेन्नरः॥१०५॥

स जायते बभ्रुसटो दारुणो मूषिको नरः।
दशन्वै मानुषान्नित्यं पापात्मा स द्विजोत्तमाः॥१०६॥
घृतं हृत्वा तु दुर्बुद्धिः काको मद्गुः प्रजायते।
मत्स्यमांसमथो हृत्वा काको जायेत मानवः॥१०७॥

वाद्ययन्त्र चोर मृत्यु के उपरान्त प्रचुर रोमयुक्त प्राणी होगा। हे ब्राह्मणवृन्द! तिलयुक्त खाद्य अपहर्त्ता भूरे वर्ण के रोम वाला दारुण मूषक होकर मनुष्यों को काटता रहेगा। दुर्बुद्धि से घृत हरण करने वाला मागुर मत्स्य अथवा कौआ होकर जन्म लेता है। मानव भी मांस-मद्य हरण करने पर काक ही होगा।।१०५-१०७।।

लवणं चोरयित्वा तु चिरिकाकः प्रजायते।
विश्वासेन तु निक्षिप्तं योऽपनिह्नोति मानवः॥१०८॥

स गतायुर्नरस्तेन मत्स्ययोनौ प्रजायते। मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायेत मानुषः॥१०९॥

मानुषत्वमनुप्राप्य क्षीणायुरुपजायते। पापानि तु नरः कृत्वा तिर्यग्जायेत भो द्विजाः॥११०॥

न चाऽऽत्मनः प्रमाणं तु धर्मं जानाति किञ्चन।
ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यन्ति व्रतैः सदा॥१११॥
सुखदुःखसमायुक्ता व्याधिमन्तो भवन्त्युत।
असंवीताः प्रजायन्ते म्लेच्छाश्चापि न संशयः॥११२॥

नरा पापसमाचारा लोभमोहसमन्विताः। वर्जयन्ति हि पापानि जन्मप्रभृति ये नराः॥११३॥

लवण चोर क्षुद्राकृति काक होता है। विश्वास करके जो मनुष्य धरोहर छिपा कर वापस नहीं करता, वह आयु समाप्त होने पर मत्स्य होता है। मत्स्य योनि में मृत होकर क्षीणायु मानव के रूप में जन्म लेता है। पापी व्यक्ति तिर्यक् योनि प्राप्त करता है। हे द्विजगण! जो आत्मा के सम्बन्ध से कोई धर्म नहीं जानता, पाप करने पर भी प्रायश्चित्तरूप धर्म का पालन नहीं करता, वह सुख-दुःख समायुक्त तथा रोगी होता है। निःसंशय रूपेण मर्यादा लंघनकारी म्लेच्छ जन्म लेते हैं। वे पापयुक्त तथा लोभमोहान्वित रहते हैं। जो मनुष्य जन्म से लेकर कभी पाप नहीं करते।।१०८-११३।।

अरोगा रूपवन्तश्च धनिनस्ते भवन्त्युत। स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयुः॥११४॥

एतेषामेव पापानां भार्यात्वमुपयान्ति ताः।
प्रायेण हरणे दोषाः सर्व एव प्रकीर्तिताः॥११५॥
एतद्वै लेशमात्रेण कथितं वो द्विजर्षभाः।
अपरस्मिन्कथायोगे भूयः श्रोष्यथ भो द्विजाः॥११६॥
एतन्मया महाभागा ब्रह्मणो वदतः पुरा। सुरर्षीणां श्रुतं मध्ये पृष्टं चापि यथा तथा॥११७॥
मयाऽपि तुभ्यं कार्त्स्न्येन यथावदनुवर्णितम्।
एतच्छ्रुत्वा मुनिश्रेष्ठा धर्मे कुरुत मानसम्॥११८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे संसारचक्रनिरूपणं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१७॥

वे रूपवान्, निरोग तथा धनी होते हैं। जो स्त्रियां भी पूर्वोक्तरूपेण पापाचरण करती हैं, उनको पतिरूपेण वैसे ही लोग पतिरूप में प्राप्त होते हैं। हे द्विजश्रेष्ठगण! मैंने प्रायः सभी हरण जनित दोषों को कहा। मैंने जैसा सुना था, उसी प्रकार से कह दिया। हे मुनिप्रवरगण! आप यह वृत्तान्त सुनकर धर्म में मन लगायें।।११४-११८।।

।।सप्तदशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अन्नदान की प्रशंसा का वर्णन

मुनय ऊचुः

अधर्मस्य गतिर्ब्रह्मन्कथिता नस्त्वयाऽनघ। धर्मस्य च गतिं श्रोतुमिच्छामो वदतां वर॥१॥
कृत्वा पापानि कर्माणि कथं यान्त्यशुभां गतिम्।
कर्मणा च कृतेनेह केन यान्ति शुभां गतिम्॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे वाणीविशारद! ब्रह्मन्! आपने अधर्मगति तो हम लोगों से कह दिया। अब धर्म की गति को हम सुनने की आकांक्षा कर रहे हैं। पापकर्म से किस प्रकार की अशुभ गति मिलती है? किस सत्कर्म के करने से शुभ गति की प्राप्ति होती है?।।१-२।।

व्यास उवाच

कृत्वा पापानि कर्माणि त्वधर्मवशमागतः। मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते॥३॥

मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनःसमनुतप्यते। मनः समाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम्।।४।।
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते। तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते।।५।।
यदि विप्राः कथयते विप्राणां धर्मवादिनाम्। ततोऽधर्मकृतात्क्षिप्रमपराधात्प्रमुच्यते।।६।।

व्यासदेव कहते हैं—मनुष्यगण पापकर्मानुष्ठान करके अधर्म के वशीभूत हो जाते हैं। अतः उसके प्रतिकार की चेष्टा न करने के कारण वे नरकगामी होते हैं। जो लोग मोह के कारण अधर्म का आचरण करते हैं, यदि वे पुनः संयत होकर उसके लिये अनुताप करते हैं, तब उनको उस कर्म हेतु नरकगमन नहीं करना पड़ता। जैसे उनका मन अपने द्वारा कृत दुष्कर्म की अनुशोचना तथा निन्दा करता है, उसी प्रकार मन के ही साथ उसका देह भी उस अधर्म से मुक्त हो जाता है। हे ब्राह्मणवृन्द! यदि पापी व्यक्ति ब्राह्मणों से अपने दुष्कर्म कह देता है, तब वह अत्यल्प काल में उन अधर्मजनित अपराधों से रहित हो जाता है।।३-६।।

यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते। समाहितेन मनसा विमुञ्चति तथा तथा।।७।।

भुजङ्ग इव निर्मोकान्पूर्वभुक्ताञ्जहाति तान्।
दत्त्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः।।८।।
मनः समाधिसंयुक्तः स्वर्गतिं प्रतिपद्यते।
दानानि तु प्रवक्ष्यामि यानि दत्त्वा द्विजोत्तमाः।।९।।

समाहित चित्त वाले मनुष्य जैसे-जैसे स्वकृत अधर्म को कहते जाते हैं, वैसे-वैसे अधर्म से वे उसी प्रकार मुक्त होते जाते हैं, जिस प्रकार सर्प पुरानी केंचुल क्रमशः उतारता जाता है। पापी लोग समाहित होकर विविध दान करके समाहित होकर स्वर्गगति प्राप्त करते हैं। हे ब्राह्मणप्रवरगण! अकार्य करने वाला व्यक्ति भी दान द्वारा धर्मयुक्त हो जाता है। मैं उन दोनों का वर्णन करता हूं।।७-९।।

नरः कृत्वाऽप्यकार्याणि ततो धर्मेण युज्यते। सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम्।।१०।।
सर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता। प्राण ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुः प्रजायते।।११।।
अन्ने प्रतिष्ठिता लोकास्तस्मादन्नं प्रशस्यते। अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवाः।।१२।।
अन्नस्य हि प्रदानेन स्वर्गमाप्नोति मानवः। न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिभ्योऽन्नमुत्तमम्।।१३।।
स्वाध्यायसमुपेतेभ्यः प्रहृष्टेनान्तरात्मना। यस्य त्वन्नमुपाश्नन्ति ब्राह्मणाश्च सकृद्दश।।१४।।

हृष्टेन मनसा दत्तं न स तिर्यग्गतिर्भवेत्।
ब्राह्मणानां सहस्राणि दशाऽऽभोज्य द्विजोत्तमाः।।१५।।

नरोऽधर्मात्प्रमुच्येत पापेष्वभिरतः सदा। भैक्षेणान्नं समाहृत्य विप्रो वेदपुरस्कृतः।।१६।।

सभी प्रकार के दानों में से अन्नदान ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। धर्मकामी मानव सरल चित्त से सभी प्रकार का अन्न प्रदान करे। अन्न ही मनुष्यों का प्राण है। अन्न से ही प्राणियों की उत्पत्ति होती है। अन्न ही सभी लोगों में प्रतिष्ठित रहता है। इसी कारण अन्न प्रशस्त है। देव, ऋषि, पितर, मानव सभी अन्न की सर्वापेक्षा प्रशंसा करते हैं। मानव अन्नदान करके स्वर्गलाभ करता है। स्वाध्याय युक्त द्विजों को प्रसन्न अन्तःकरण से न्याय

से अर्जित उत्तम अन्न दान करना विहित है। दस ब्राह्मण जिसके द्वारा प्रदत्त अन्न का प्रसन्न अन्तःकरण से भोजन करते हैं, उनको तिर्यक् योनि नहीं मिलती। यदि सदा अधार्मिक रहने वाले व्यक्ति का अन्न दस हजार ब्राह्मण खा लेते हैं, तब वह अधर्मराशि से मुक्त हो जाता है। यदि वेदज्ञ तथा वेदविधि पालन करने वाला विप्र भिक्षान्न एकत्र करके—।।१०-१६।।

स्वाध्यायनिरते विप्रे दत्त्वेह सुखमेधते। अहिंसन्ब्राह्मणस्वानि न्यायेन परिपाल्य च॥१७॥
क्षत्त्रियस्तरसा प्राप्तमन्नं यो वै प्रयच्छति। द्विजेभ्यो वेदमुख्येभ्यः प्रयतः सुसमाहितः॥१८॥
तेनापोहति धर्मात्मा दुष्कृतं कर्म भो द्विजाः। षड्भागपरिशुद्धं च कृषेर्भागमुपार्जितम्॥१९॥
वैश्यो दददद्विजातिभ्यः पापेभ्यः परिमुच्यते। अवाप्य प्राणसन्देहं कार्कश्येन समार्जितम्॥२०॥
अन्नं दत्त्वा द्विजातिभ्यः शूद्रः पापात्प्रमुच्यते।

अध्ययन तत्पर ब्राह्मण को प्रदान करता है, तब उसे सुखलाभ होगा। हे द्विजगण! यदि क्षत्रिय व्यक्ति बिना ब्राह्मणों से धन ग्रहण किये तथा हिंसा रहित एकत्र एवं न्यायपूर्ण ढंग से लिये गये धन से प्रजा पालन करके अपने बल से उपार्जित अन्न को पवित्र होकर सुसमाहित चित्त से द्विजगण को प्रदान करता है, तब उस धर्मात्मा की उसके किये गये दुष्कृतों से भी रक्षा हो जाती है। यदि वैश्य कृषिकार्य करके उसका १/६ भाग द्विजों को प्रदान करता है, तब वह पापों से मुक्त हो जायेगा। आत्मक्लेशकारी कठोर कर्म द्वारा उपार्जित अन्न द्विजों को दान करता है, वह यदि शूद्र भी हो, तथापि पापमुक्त हो जाता है।।१७-२०।।

औरसेन बलेनान्नमर्जयित्वा विहिंसकः॥२१॥
यः प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि सेवते। न्यायेनावाप्तमन्नं तु नरो हर्षसमन्वितः॥२२॥
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यो दत्त्वा पापात्प्रमुच्यते। अन्नमूर्जस्करं लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नरः॥२३॥
सतां पन्थानमावृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते।
दानविद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः॥२४॥

जो मनुष्य अन्य की हिंसा नहीं करके अपने परिश्रम से उपार्जन करके ब्राह्मणगण को अन्नदान करता है, उसकी दुर्गति नहीं होती। न्यायोपार्जित अन्न सादर आनन्द के साथ वयोवृद्ध वेदज्ञ ब्राह्मणों को दान करने वाला पापमुक्त हो जाता है। तेजोवर्द्धक दान देने वाला मानव लोक में तेजस्वी हो जाता है। वह सत्पथगामी होकर सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है। मनीषी दानी लोग जिस पथ से जाते हैं (जिस मार्ग का आश्रय लेते हैं) उनके बतलाये मार्ग पर विद्वानों को जाना चाहिये।।२१-२४।।

तेष्वप्यन्नस्य दातारस्तेभ्यो धर्मः सनातनः।
सर्वावस्थं मनुष्येण न्यायेनान्नमुपार्जितम्॥२५॥
कार्यान्न्यायागतं नित्यमन्नं हि परमा गतिः।
अन्नस्य हि प्रदानेन नरो याति परां गतिम्॥२६॥
सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम्।
एवं पुण्यसमायुक्तो नरः पापैः प्रमुच्यते॥२७॥

सर्वकामसमायुक्तः चेत्य चाप्यश्नुते सुखम्। एवं पुण्यसमायुक्तो नरः पापै प्रमुच्यते॥२८॥
तस्मादन्नं ऽदातव्यमन्यायपरिवर्जितम्। यस्तु प्राणाहुतीपूर्वमन्नं भुङ्क्ते गृही सदा॥२९॥

अन्नदाताओं में ही सनातन धर्म प्रतिष्ठित है। मनुष्यों के लिये सभी स्थिति में न्यायानुसार अर्जित अन्नदान ही परमगति है। अन्नदान के प्रभाव से मनुष्यों को परमगति लाभ होता है। मरणान्त में वह दानकर्त्ता (परलोक में) सभी कामना युक्त होकर सुखभोग करता है। अन्नदान द्वारा ऐसा पुण्यलाभ होता है तथा पापमुक्ति मिलती है। अतः न्याय से उपार्जित अन्न दान विहित है। ऐसे पुण्य कार्य से समायुक्त मनुष्य पाप रहित हो जाता है, अतः व्यक्ति अन्यायपूर्ण उपायों से जो अन्न उपार्जित नहीं हो, उसका दान करे। गृही व्यक्ति अग्नि में आहुति के उपरान्त अन्न भोजन करे।।२५-२९।।

अबन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः। भोजयित्वा शतं नित्यं नरो वेदविदां वरम्॥३०॥
न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा। न याति नरकं घोरं संसारं न च सेवते॥३१॥
सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम्। एवं कर्मसमायुक्तो रमते विगतज्वरः॥३२॥
रूपवान्कीर्तिमांश्चैव धनवांश्चोपजायते। एतद्वः सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत्।
मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भो द्विजाः॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे संसारचक्रेऽन्नदानप्रशंसावर्णनं नामष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१८॥

न्याय पथ पर चलने वाला व्यक्ति नित्य इतिहासविद् (पुराणविद्), धर्मतत्वज्ञ तथा वेदज्ञ सौ ब्राह्मणों को भोजन नित्य कराये। ऐसा व्यक्ति अब फिर से घोर नरकों में नहीं गिराया जाता। वह संसार में भी आबद्ध नहीं होता। वह मरणान्त में सर्वकाम समृद्ध होकर सुखभोग करता रहता है। मानव पूर्वोक्तरूप धर्माचरण द्वारा रूपवान्, धनी, कीर्त्तियुक्त तथा मनस्ताप रहित हो जाता है। वह सुख से समय व्यतीत करता है। हे द्विजगण! मैंने आप लोगों से महत् अन्नदान के माहात्म्य को कह दिया। यह समस्त दानरूपी धर्म का मूल स्वरूप है।।३०-३३।।

।।अष्टदशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्राद्ध विधि वर्णन

मुनय ऊचुः

परलोकगतानां तु स्वकर्मस्थानवासिनाम्।
तेषां श्राद्धं कथं ज्ञे (दे) यं पुत्रैश्चान्यैश्च बन्धुभिः॥१॥

मुनिगण कहते हैं—मृत्यु के उपरान्त स्वकर्म से प्राप्त स्थान के निवासी प्राणियों का श्राद्ध उनके पुत्र तथा बन्धुजन किस प्रकार से करें, वह विधि कहिये।।१।।

व्यास उवाच

नमस्कृत्य जगन्नाथं वाराहं लोकभावनम्।
शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि श्राद्धकल्पं यथोदितम्॥२॥
पुरा कोकाजले मग्नान्पितृनुद्धृतवान्विभुः।
श्राद्धं कृत्वा तदा देवो यथा तत्र द्विजोत्तमाः॥३॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजोत्तमगण! मैं लोकभावन जगन्नाथ वाराहदेव को प्रणामोपरान्त श्राद्धकल्प यथायथ कहता हूं। आप सब श्रवण करिये। पुराकाल में विभु वाराहदेव ने कोकातीर्थ जल में पितृगण का श्राद्ध सम्पन्न करके उनका उद्धार किया था।।२-३।।

पितर ऊचुः

किमर्थं ते तु कोकायां निमग्नाः पितरोऽम्भसि।
कथं तेनोद्धतास्ते वै वाराहेण द्विजोत्तम॥४॥
तस्मिन्कोकामुखे तीर्थे भुक्तिमुक्तिफलप्रदे।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः॥५॥

मुनिगण कहते हैं—हे द्विजोत्तम व्यासदेव! उस भुक्ति-मुक्ति देने वाले कोकामुख तीर्थ में पितर किस कारण जलमग्न हो गये थे? वाराहदेव ने किस प्रकार उनका उद्धार किया था? हमें यह श्रवण करने की इच्छा है। हमें परम कुतूहल हो रहा है।।४-५।।

व्यास उवाच

त्रेताद्वापरयोः सन्धौ पितरो दिव्यमानुषाः। पुरा मेरुगिरेः पृष्ठे विश्वैर्देवैः सह स्थिताः॥६॥
तेषां समुपविष्टानां पितृणां सोमसम्भवा।
कन्या कान्तिमती दिव्या पुरतः प्राञ्जलिः स्थिता।
तामूचुः पितरो दिव्या ये तत्राऽऽसन्समागतः॥७॥

व्यासदेव कहते हैं—पूर्व त्रेता-द्वापर युग की सन्धि के समय दिव्य मानव पितृगण सुमेरुपृष्ठ पर विश्वेदेवगण सहित आसनासीन थे। उस समय पितृगण के समक्ष चन्द्रमा की कन्या कान्तिमती हाथ जोड़कर दण्डायमान (खड़ी) हो गयी। तब वहां समागत पितृगण ने उससे कहा—।।६-७।।

पितर ऊचुः

काऽसि भद्रे प्रभुः को वा भवत्या वक्तुमर्हसि॥८॥

पितृगण कहते हैं—हे कन्ये! तुम कौन हो तथा तुम्हारे पति कौन हैं?।।८।।

व्यास उवाच

सा प्रोवाच पितृन्देवान्कला चान्द्रमसीति ह। प्रभुत्वे भवतामेव वरयामि यदीच्छथ॥९॥

ऊर्जा नामास्ति प्रथमं स्वधा च तदनन्तरम्।
भवद्भिश्चाद्यैव कृतं नाम कोकेति भावितम्॥१०॥
ते हि तस्या वचः श्रुत्वा पितरो दिव्यमानुषाः।
तस्या मुखं निरीक्षन्तो न तृप्तिमधिजग्मिरे॥११॥

विश्वेदेवाश्च ताञ्ज्ञात्वा कन्यामुखनिरीक्षकान्। योगच्युतान्निरीक्ष्यैव विहाय त्रिदिवं गताः॥१२॥
भगवानपि शीतांशुरूर्जां नापश्यदात्मजाम्। समाकुलमना दध्यौ क्व गतेति महायशाः॥१३॥
स विवेद तदा सोमःप्राप्तां पितॄंश्च कामतः। तैश्चावलोकितां हार्दात्स्वीकृतां च तपोबलात्॥१४॥

व्यासदेव कहते हैं—पितृगण का वाक्य सुनकर उस कन्या ने कहा—"मैं चन्द्रमा की कला हूं। आपने स्वामी सम्बन्धित पूछा तब यदि आप लोग सम्मत हों, तब आप लोगों को ही प्रभु रूप में वरण करूंगी। पहले मेरा नाम ऊर्जा था, तदनन्तर स्वधा नाम हो गया। अब आप लोगों ने जो प्रश्न किया "को भवत्या" यह नाम तो आप लोगों ने रख दिया। अतः मेरा नाम कोका हो गया।" यह सुनकर वे दिव्य मानुष पितर सतृष्ण नेत्रों से कोका का मुख देखने लगे। तब विश्वेदेवगण ने कन्या का मुख अवलोकन करते देख कर पितृगण को योगभ्रष्ट जाना तथा पितरों का त्याग करके वे स्वर्गगामी हो गये। इधर जब भगवान् चन्द्र ने कन्या ऊर्जा को नहीं देखा, तब वह कहां है, जानने हेतु व्याकुल हो ध्यान तत्पर हो गये। उन महायशस्वी सोमदेव ने तपबल से जान लिया कि वह कन्या कामवश में होकर पितरों के पास उपस्थित है! पितरों ने उसे प्रेमभाव से देखा है। उसे तपोबल से ग्रहण किया है।।९-१४।।

ततः क्रोधपरीतात्मा पितॄञ्शशधरो द्विजाः। शशाप निपतिष्यध्वं योगभ्रष्टा विचेतसः॥१५॥
यस्माददत्तां मत्कन्यां कामयध्वं सुबालिशाः। यस्माद्धृतवती चेयं पतीन्पितृमती सती॥१६॥
स्वतन्त्रा धर्ममुत्सृज्य तस्माद् भवतु निम्नगा। कोकेति प्रथिता लोके शिशिराद्रिसमाश्रिता॥१७॥
इत्थं शप्ताश्चन्द्रमसा पितरो दिव्यमानुषाः। योगभ्रष्टा निपतिता हिमवत्पादभूतले॥१८॥
ऊर्जा तत्रैव पतिता गिरिराजस्य विस्तृते। प्रस्थे तीर्थं समासाद्य सप्तसामुद्रमुत्तमम्॥१९॥

कोका नाम ततो वेगान्नदी तीर्थशताकुला।
प्लावयन्ती गिरेः शृङ्गं सर्पणात्तु सरित्स्मृता॥२०॥

तब शशधर ने क्रोधाकुलित होकर पितृगण को शाप प्रदान किया कि "तुमने मेरी अप्रदत्ता कन्या (जिसे प्रदान नहीं किया गया था) की कामना किया, अतः तुम सब योगभ्रष्ट होकर गिर जाओ। तुम सब विचेतस हो जाओ।" सोमदेव ने कन्या को भी शाप दिया "यह कन्या पिता के रहने पर भी स्वाधीन भाव से धर्म त्याग करके स्वाधीनता पूर्वक पति वरण कर चुकी है, अतः यह हिमालय से निर्गता कोका नदी हो जाये।" उस समय दिव्य मानुष पितृगण अभिशप्त होते ही योगभ्रष्ट होकर हिमालय की तराई में गिर गये। सोमपुत्री ऊर्जा भी उस

विस्तृत पर्वत के तटप्रान्त में सप्तसमुद्र तीर्थ के पास गिर कर कोका नदी के रूप में परिणत हो गई। वह नदी वेग पूर्वक गिरिशिखर को प्लावित कर सैकड़ों तीर्थों को परिव्याप्त करती वेगवती होकर सर्पण (अर्थात् गमन) करने के कारण सरित् कहलाई।।१५-२०।।

अथ ते पितरो विप्रा योगहीना महानदीम्।
ददृशुः शीतसलिला न विदुस्तां सुलोचनाम्॥२१॥
ततस्तु गिरिराड्दृष्ट्वा पितृस्तांस्तु क्षुधार्दितान्।
बदरीमादिदेशाय धेनुं चैकां मधुस्त्रवाम्॥२२॥

क्षीरं मधु च तद्दिव्यं कोकाम्भो बदरीफलम्। इदं गिरिवरेणैषां पोषणाय निरूपितम्॥२३॥
तया वृत्त्या तु वसतां पितृणां मुनिसत्तमाः। दश वर्षसहस्त्राणि ययुरेकमहो यथा॥२४॥
एवं लोके विपितरि तथैव विगतस्वधे। दैत्या बभूवुर्बलिनो यातुधानाश्च राक्षसाः॥२५॥

हे विप्रगण! पितृगण ने योगभ्रष्ट होकर जब इस शीत जल वाली सुशोभना महानदी को देखा, तब वे इसे पहचान नहीं सके। तब पर्वतराज हिमाचल ने इन पितरों को भूखा देख कर बदरी, मधु के समान दुग्धवती एक गौ प्रदान किया। गिरिराज ने उनके निर्वाहार्थ बदरीफल, मधु, दुग्ध तथा कोका नदी का जल निर्दिष्ट कर दिया। हे मुनिप्रवरगण! इस प्रकार पितृगण ने दस हजार वर्ष एक दिन के समान व्यतीत कर दिया। इधर सभी लोग पितरों से रहित तथा स्वधाशून्य हो गये। अतः राक्षस, यातुधान एवं दैत्य बली हो गये।।२१-२५।।

ते तान्पितृगणान्दैत्या यातुधानाश्च वेगिताः। विश्वैर्देवैर्विरहितान्सर्वतः समुपाद्रवन्॥२६॥

दैतेयान्यातुधानांश्च दृष्ट्वैवाऽऽपततो द्विजाः।
कोकातटस्थामुत्तुङ्गां शिलां ते जगृहू रुषा॥२७॥
गृहीतायां शिलायां तु कोका वेगवती पितृन्।
छादयामास तोयेन प्लावयन्ती हिमाचलम्॥२८॥

पितृनन्तर्हितान्दृष्ट्वा दैतेया राक्षसास्तथा। विभीतकं समारुह्य निराहारास्तिरोहिताः॥२९॥

सलिलेन विषीदन्तः पितरः क्षुद्भ्रमातुराः।
विषीदमानमात्मानं समीक्ष्य सलिलाशयाः।
जगुर्जनार्दनं देवं पितरः शरणं हरिम्॥३०॥

विश्वेदेव से रहित उन पितृगण को देख कर उन्होंने चारों ओर से पितरों पर आक्रमण कर दिया। पितृगण ने दैत्य, यातुधानगण को आगमन करते देखकर रोष पूर्वक कोकानदी के तट से एक महती शिला उठाया, तथापि कोका नदी ने पितरों को शिलाधारी देख कर अपने जल के वेग से हिमाचल को आप्लावित कर दिया तथा पितरों को आच्छादित कर दिया। तब दैत्य एवं राक्षसगण को पितर दृष्टिगोचर नहीं हो सके। तदनन्तर वे पितृगण को विलीन मानकर बहेड़ा के पेड़ पर भोजन रहित निवास करने लगे। उधर जल से आच्छादित क्षुधातुर एवं विषादग्रस्त पितृगण स्वयं के कष्ट को देख कर भगवान् हरि की शरणागत होकर उनकी स्तुति करने लगे।।२६-३०।।

मुनय ऊचुः

जयस्व गोविन्द जगन्निवास जयोऽस्तु नः केशव ते प्रसादात्।
जनार्दनास्मान्सलिलान्तरस्थानुद्धर्तुमर्हस्यनघप्रताप ॥३१॥
निशाचरैर्दारुणदर्शनैः प्रभो वरेण्य वैकुण्ठ वराह विष्णो।
नारायणाशेषमहेश्वरेश प्रयाहि भीताञ्जय पद्मनाभ॥३२॥
उपेन्द्र योगिन्मधुकैटभघ्न विष्णो अनन्ताच्युत वासुदेव।
श्रीशार्ङ्गचक्राम्बुजाशङ्खपाणे रक्षस्व देवेश्वर राक्षसेभ्यः॥३३॥
त्वं पिता जगतः शम्भो नान्यः शक्तः प्रबाधितुम्।
निशाचरगणं भीममतस्त्वां शरणं गताः॥३४॥
त्वन्नामसङ्कीर्तनतो निशाचरा द्रवन्ति भूतान्यपयान्ति चारयः।
नाशं तथा सम्प्रति यान्ति विष्णो धर्मादि सत्यं भवतीह मुख्यम्॥३५॥

मुनिगण कहते हैं—हे गोविन्द! जगन्निवास! आपकी जय हो। हे केशव! आपकी कृपा से हमारी भी जय हो। हे निष्कलंक प्रतापवान्, जनार्दन! जलमध्यगत हमारा उद्धार करिये। हे वरेण्य! वैकुण्ठ, वाराह, विष्णु, अशेष, महेश्वर, ईश्वर, नारायण, प्रभो! हम दारुण दीखने वाले राक्षसों से भयभीत हैं। हे पद्मनाभ! आपकी जय हो। हे उपेन्द्र! मधुकैटभ हन्ता, अनन्त, अच्युत, योगी, वासुदेव, शार्ङ्ग-चक्र-पद्म-शंखपाणि! देवेश्वर! राक्षसगण से हमारी रक्षा करिये। हे शम्भु! जगत्पिता! अन्य कोई भी इनको नहीं रोक सकता। वे निशाचर अतीव भयानक हैं। हम तभी आपकी शरण में आये हैं। हे विष्णो! आपके नाम कीर्त्तन के प्रभाव से क्षणमात्र में राक्षस विदीर्ण हो जाते हैं, भूतगण भाग जाते हैं, शत्रुओं का नाश हो जाता है तथा सभी सुख हेतु धर्म एवं सत्य आदि का उद्भव हो जाता है।।३१-३५।।

व्यास उवाच

इत्थं स्तुतः स पितृभिर्धरणीधरस्तु तुष्टस्तदाऽऽविष्कृतदिव्यमूर्तिः।
कोकामुखे पितृगणं सलिले निमग्नं देवो ददर्श शिरसाऽथ शिलां वहन्तम्॥३६॥
तं दृष्ट्वा सलिले मग्ने क्रोडरूपी जनार्दनः। भीतं पितृगणं विष्णुरुद्धर्तुं मतिरादधे॥३७॥
दंष्ट्राग्रेण समाहत्य शिलां चिक्षेप शूकरः। पितॄनादाय च विभुरुज्जहार शिलातलात्॥३८॥
वराहदंष्ट्रासंलग्नाः पितरः कनको। कोकामुखे गतभयाः कृता देवेन विष्णुना॥३९॥
उद्धृत्य च पितॄन्देवो विष्णुतीर्थे तु शूकरः।
ददौ समाहितस्तेभ्यो विष्णुर्लोहार्गले जलम्॥४०॥

व्यासदेव कहते हैं—देवदेव धरणीधर पितृगण द्वारा एवंविध स्तुत होकर सन्तुष्ट हो गये। वे वहां अपनी दिव्य मूर्त्ति द्वारा आविर्भूत हो गये। उन्होंने जल में अपना मस्तक निमज्जित करके वहां शिला उठाये पितरों को देखा। लोकपालक वाराहाकृति विष्णु ने पितरों को भयभीत तथा जलमग्न देखकर उनके उद्धारार्थ अपने दांतों

से उस शिलाखण्ड को दूर फेंक कर उस शिलातल से उन लोगों को निकाल कर तट पर उठा दिया। वाराहदेव के दांतों से संलग्न कनक के समान उज्ज्वल पितर उस समय परम शोभित होने लगे। इस प्रकार देवदेव विष्णु ने उनको निर्भय कर दिया! कोकातीर्थ स्थित विष्णुतीर्थ नामक स्थान पर वाराहदेव ने पितरों का उद्धार किया था। तब लोहार्गल तीर्थ में वाराहदेव ने पितरों हेतु लौह अर्गल में जलदान किया।।३६-४०।।

ततः स्वरोमसम्भूतान्कुशानादाय केशवः। स्वेदोद्भवांस्तिलांश्चैव चक्रे चोल्मुकमुत्तमम्।।४१।।
ज्योतिः सूर्यप्रभं कृत्वा पात्रं तीर्थं च कामिकम्।
स्थितः कोटिवटस्यसधो वारि गङ्गाधारं शुचि।।४२।।
तुङ्गकूटात्समादाय यज्ञीयानोषधीरसान्। मधुक्षीरसान्गन्धान्पुष्पधूपानुलेपनान्।।४३।।
आदाय धेनुं सरसो रत्नान्यादाय चार्णवात्।
दंष्ट्रयोल्लिखय्य धरणीमभ्युक्ष्य सलिलेन च।।४४।।
धर्मोद्मवेनोपलिप्य कुशैरुल्लिखय्य तां पुनः। परिणीयोल्मुकेनैनामभ्युक्ष्य च पुनः पुनः।।४५।।

तत्पश्चात् वाराह देहधारी केशव ने अपने रोम से उद्भूत कुशों तथा स्वेद से उत्पन्न तिलों को लेकर उत्तम अंगार को सूर्य प्रभा से युक्त किया। उसे तीर्थ पात्र रूप में कल्पित करके वे कोटि कल्पवृक्ष के नीचे अवस्थान करने लगे। वे गंगाजल धारण करके वहां अवस्थित हो गये। तुङ्गकूट से यज्ञीय औषधिरस, मधु, दुग्ध, गन्ध, पुष्प, धूप तथा अनुलेपनादि लाये। एक गौ तथा समुद्र से विविध रत्न भी ले आये। तत्पश्चात् दंष्ट्रा द्वारा पृथिवी पर रेखा खींचने के अनन्तर स्वोदोत्पन्न प्रणीता पात्र के जल से उसको अभिषेक किया।।४१-४५।।

कुशानादाय प्रागग्रांल्लोमकूपान्तरस्थितान्।
ऋषीनाहूय पप्रच्छ करिष्ये पितृतर्पणम्।।४६।।
तैरप्युक्ते कुरुष्वेति विश्वान्देवांस्ततो विभुः। आहूय मन्त्रतस्तेषां विष्टराणि ददौ प्रभुः।।४७।।
आहूय मन्त्रतस्तेषां वेदोक्तविधिना हरिः। अक्षतैर्देवतारक्षां चक्रे चक्रगदाधरः।।४८।।
अक्षतास्तु यवौषध्यः सर्वदेवांशसम्भवाः। रक्षन्ति सर्वत्र दिशो रक्षार्थं निर्मिता हि ते।।४९।।
देवदानवदैत्येषु यक्षरक्षःसु चैव हि। नहि कश्चित्क्षयं तेषां कर्तुं शवतश्चराचरे।।५०।।
न केनचित्कृतं (त्क्षता) यस्मात्तस्मात्ते ह्यक्षताः कृताः।
देवानां ते हि रक्षार्थं नियुक्ता विष्णुना पुरा।।५१।।
कुशगन्धयवैः पुष्पैरर्घ्यं कृत्वा च शूकरः। विश्वेभ्यो देवेभ्य इति ततस्तान्पर्यपृच्छत।।५२।।

उन्होंने लोमकूपस्थ कुशाग्र भाग को पूर्वाभिमुख किया तथा ऋषियों को निमन्त्रित करके कहा मैं पितृतर्पण करूंगा। ऋषियों ने सहमति प्रदान किया। तदनन्तर विश्वेदेवों का आवाहन करके उन विभु ने मन्त्रोच्चार सहित उनको आसन दान किया। तब वेदोक्त विधान के अनुरूप मन्त्रोच्चारण से चक्र-गदाधारी श्रीहरि ने अक्षतों से देवताओं का रक्षाविधान किया। औषधियों में से यव को अक्षत कहते हैं। यह समस्त देवताओं के अंश से उत्पन्न है। यव सभी दिशाओं के रक्षार्थ प्रयुक्त होता है। ये रक्षार्थ ही निर्मित हैं। चराचर में देव,

दानव, यक्ष, राक्षस आदि कोई भी यवक्षय करने की शक्ति नहीं रखते। इसे क्षत नहीं कर सकते। तभी यह अक्षत है। पूर्वकाल में विष्णु ने देवगण की रक्षा का काम इसे दिया था। वाराहदेव ने विश्वेदेवों के उद्देश्य से कुश, गन्ध, यव तथा पुष्प से अर्घ्य बनाया तथा विश्वेदेवों से प्रश्न किया।।४६-५२।।

पितॄनावाहयिष्यामि ये दिव्या ये च मानुषाः।
आवाहयस्वेति च तैरुक्तस्त्वावाहये (य) च्छुचिः॥५३॥
श्लिष्टमूलाग्रदर्भास्तु सतिलान्वेद वेदवित्।
जानावारोप्य हस्तं तु ददौ सव्येन चाऽऽसनम्॥५४॥
तथैव जानुसंस्थेन करेणैकेन तान्पितॄन्। वाराहः पितृविप्राणामायान्तु न इतीरयन्॥५५॥
अपहतेत्युवाचैव रक्षणं चापसव्यतः। कृत्वा चाऽऽवाहनं चक्रे पितॄणां नामगोत्रतः॥५६॥
तत्पितरो (पितरोऽत्र) मनोजराना वा आ (गच्छत इतरीयन् (?)।
संवत्सरैरित्युदीर्य ततोऽर्घ्यं तेषु विन्यसेत्॥५७॥
यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो यन्मेति च पितुःपितुः।
यन्मे पितामहेत्येवं ददावर्घ्यं पितामहे॥५८॥
यन्मे प्रपितामहेति ददौ च प्रपितामहे। कुशगन्धतिलोन्मिश्रं सपुष्पमपसव्यतः॥५९॥

विष्णु ने कहा था—जो दिव्य तथा जो मानुष पितर हैं, मैं उनका आवाहन करूंगा? तब उन्होंने कहा—"आवाहन करिये" तब वेदज्ञ हरि ने जानु पर हाथ रख कर बायें हाथ द्वारा तिलयुक्त कुश मोटक को पितृगण के आसनार्थ प्रदान किया तथा पितरों से "आयान्तु नः" इत्यादि का उच्चारण करके "अपहत" इत्यादि मन्त्रोच्चार किया। तब रक्षा विधानान्तर नाम गोत्र का उल्लेख करके "मन के समान वेगवान् पितर संवत्सर में यहां आगमन करें" से आवाहन किया। तदनन्तर उन्होंने उनके लिये अर्घ्य बनाकर समाहित भाव से कहा—"यास्तिष्ठन्यमृता वाचो" इत्यादि से पिता को, 'यन्मे पितामह" इत्यादि से पितामह को तथा "यन्मे प्रपितामह" इत्यादि से प्रपितामह को अर्घ्य दान किया। तत्पश्चात् अपसव्य होकर (यज्ञोपवीत को दक्षिण कन्धे पर धारण करके) कुश-गन्ध-तिल-पुष्प अर्पित किया।।५३-५९।।

तद्वन्मातामहेभ्यस्तु विधिं चक्रे जनार्दनः।
तानर्च्य भूयो गन्धाद्यैर्धूपं दत्त्वा तु भक्तितः॥६०॥
आदित्या वसवो रुद्रा इत्युच्चार्य जगत्प्रभुः। ततश्चान्नं समादाय सर्पिस्तिलकुशाकुलम्॥६१॥
विधाय पात्रे तच्चैव पर्यपृच्छत्ततो मुनीन्।
अग्नौ करिष्य इति तैः कुरुष्वेति च चोदितः॥६२॥

एवंविध मातामह आदि को भी जनार्दन ने सब सामग्री युक्त अर्घ्य दिया। तदनन्तर उन्होंने भक्तिभाव पूर्वक गन्ध-पुष्पादि से उनकी अर्चना करने के उपरान्त "आदित्य वसवो रुद्र" इत्यादि मन्त्र का उच्चारण किया। इस मन्त्र से घृत, तिल, पुष्पयुक्त अन्न लेकर पात्र में स्थापित करके उन्होंने मुनिगण से कहा—"अग्नि में आहुति देना है।" ऋषियों ने कहा प्रदान करिये।।६०-६२।।

आहुतित्रितयं दद्यात्सोमायाग्नेर्यमाय च। ये मामकेति च जपेद्यजुः सप्तकमच्युतम्।।६३।।
हुतावशिष्टं च ददौ नामगोत्रसमन्वितम्। त्रिराहुतिकमेकैकं पितरं तु प्रति द्विजाः।।६४।।

अतोऽवशिष्टमन्नाद्यं पिण्डपात्रे तु निक्षिपेत्।
ततोऽन्नं सरसं स्वादु ददौ पायसपूर्वकम्।।६५।।

प्रत्यग्रमेकदा स्विन्नमपर्युषितमुत्तमम्। अल्पशाकं बहुफलं षड्रसममृतोपमम्।।६६।।

यद्ब्राह्मणेषु प्रददौ पिण्डपात्रे पितॄंस्तथा।
वेद (देव) पूर्वंपितृस्व (च्व) न्नमाज्यप्लुतं मधूक्षितम्।।६७।।

मन्त्रितं पृथिवीत्येवं मधुवातातृचं जगौ। भुञ्जानेषु तु विप्रेषु जपन्वै मन्त्रपञ्चकम्।।६८।।
यत्ते प्रकारमारभ्य नाधिकं ते ततो जगौ। त्रिमधु त्रिसुपर्णं च बृहदारण्यकं तथा।।६९।।

जजाप वैषां जाप्यं तु सूक्तं सौरं सपौरुषम्।
भुक्तवत्सु च विप्रेषु पृष्ट्वा तृप्ताःस्थ इत्युत।।७०।।
तृप्ताः स्मेति सकृत्तोयं ददौ मौनविमोचनम्।
पिण्डपात्रं समादाय च्छायायै प्रददौ ततः।।७१।।

तदनन्तर वाराहदेव ने यह अनुज्ञा लेकर सोम, अग्नि एवं यम को आहुतित्रय प्रदान किया। हे ब्राह्मणों! तदनन्तर "ये मामक" इत्यादि मन्त्र से नाम-गोत्र का उच्चारण करके पितरों में से प्रत्येक को होम से बचे अन्न द्वारा तीन-तीन आहुति प्रदान किया। तदनन्तर बचे हुये अन्नादि को पिण्ड पात्र में छोड़ दिया। तत्पश्चात् कुछ शाक, अनेक पुष्प, अनेक फल तथा पायसादि सामग्री के साथ एक बार पके (जिसे दोबारा गर्म न किया गया हो) नये, जो बासी न हो, रसपूर्ण, स्वादिष्ट अन्न लेकर घृत एवं मधु से उसे आप्लुत करके पिण्डपात्र में स्थापित किया। तत्पश्चात् 'पृथिवी' आदि मन्त्रपाठ के अनन्तर पहले देवता तथा ब्राह्मणों को, तदनन्तर पितृगण को वह प्रदान किया। 'मधुवाता' मन्त्र का तब तीन बार पाठ किया। जब ब्राह्मण भोजन कर रहे थे, तब 'यत्ते प्रकारम्'-'नाधिकम्'-'त्रिमधु'-'त्रिसुपर्णम्'-'बृहदारण्यकम्' इन पांच मन्त्रों को पढ़ा। तदनन्तर सहस्रशीर्ष इत्यादि सूक्तों को पढ़ा। जब ब्राह्मणों ने भोजन सम्पन्न कर लिया, तब प्रभु ने पूछा कि "आप सभी तृप्त तो हैं।" जब ब्राह्मणगण ने स्वीकार किया कि वे तृप्त हैं, तब उनको जल देकर भगवान् ने पिण्डपात्र पत्नी छाया को प्रदान किया।।६३-७१।।

सा तदन्नं द्विधा कृत्वा त्रिधैकैकमथाकरोत्।
वाराहो भूमथोल्लिख्य समाच्छाद्य कुशैरपि।।७२।।
दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा तेषामपुरि चाऽऽसनम्।
सतिलेषु समूलेषु कुशेष्वेव तु संश्रयः।।७३।।
गन्धपुष्पादिकं कृत्वा ततः पिण्डं तु भक्तितः।
पृथिवी दधीरित्युक्त्वा ततः पिण्डं (पित्रे) प्रदत्तवान्।।७४।।

पितामहाः प्रपितामहास्तथेति (?) चान्तरिक्षतः।
मातामहानामप्येवं ददौ पिण्डान्स शूकरः॥७५॥

प्रभुपत्नी छाया ने उस अन्न का दो भाग किया। तब इनमें से प्रत्येक के तीन-तीन भाग किये। वाराहदेव ने भूमि पर रेखा बनाकर उसे कुशों से ढांक दिया। कुशों के अग्रभाग दक्षिण की दिशा में किया और उन कुशों पर आसन स्थापित करके गन्ध-पुष्पादि अर्पित करके भक्ति पूर्वक "पृथिवीदधीः" इत्यादि मन्त्रोच्चार करके पितृपिण्ड प्रदान किया। इसके पश्चात् प्रभु वाराहदेव ने पितामह-प्रपितामह-मातामह को पिण्ड दिया, तथापि यह कार्य पात्र को स्पर्श किये बिना किया था।।७२-७५।।

पिण्डनिर्वापणोच्छिष्टमन्नं लेपभुजेष्वदात्। एतद्वः पितरित्युक्त्वा ददौ वासांसि भक्तितः॥७६॥
द्व्यङ्गुलजानि शुक्लानि धौतान्यभिनवानि च।
गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा कृत्वा चैषां प्रदक्षिणाम्॥७७॥
आचम्याऽऽचमयेद्विप्रान्पैत्रानादौ ततः सुरान्।
ततस्त्वभ्युक्ष्य तां भूमिं दत्त्वाऽपः सुमनोक्षतान्॥७८॥
सतिलाम्बु पितृष्वादौ दत्त्वा देवेषु साक्षतम्।
अक्षय्यं नस्त्विति पितॄन्प्रीयतामिति देवताः॥७९॥

वाराहदेव ने पिण्ड के उच्छिष्ट (बचे) भाग को लेपभक्षी पितृगण को देकर भक्तियुक्त मन से "एतद्वः पितः" इत्यादि पढ़ कर दो अंगुल स्वच्छ, नवीन वस्त्र जो छिदा हुआ (सूई आदि से) नहीं था, प्रदान किया। तदनन्तर आचमनोपरान्त पहले पितरों को तदनन्तर देवता, ब्राह्मणों को आचमनीय द्वारा आचमन कराने के पश्चात् पृथिवी को इस जल से सिक्त करके पितृगण एवं देवगण को जल, पुष्प, अक्षत तथा तिल अर्पित किया। तदनन्तर "अक्षय्यं नः अस्तु" इत्यादि से पितृगण का तथा "प्रीयताम" इत्यादि से देवगण को जल प्रदान किया।।७६-७९।।

प्रीणयित्वा परावृत्य त्रिर्जपेच्चाघमर्षणम्। ततो निवृत्य तु जपेद्यन्मे नाम इतीरयन्॥८०॥
गृहान्नः पितरो दत्त धनधान्यप्रपूरितान्।
अर्घ्यपात्राणि पिण्डानामन्तरे स पवित्रकान् (?)॥८१॥
निक्षिप्योर्जं वहन्तीति कोकातोयमथोऽजपत्। हिमक्षीरं मधुतिलान्पितॄणां तर्पणां ददौ॥८२॥

उन्होंने यह जल प्रदान करके तीन बार अघमर्षण मन्त्र पाठ किया। तत्पश्चात् "यन्मे" इत्यादि मन्त्र पाठ करने के उपरान्त इस मन्त्र को कहा—

गृहान्न पितरो दत्त धनधान्य प्रपूरितान्।
अर्घ्यपात्राणि पिण्डानामन्तरे स पवित्रकान्।।

"पितर लोग हमारे घर को धन-धान्य से पूर्ण रखें। पिण्डों के बीच सपवित्र अर्घ्यपात्र निक्षेप हो गया। "ऊर्जः वहन्ती" का पाठ करके उस पर कोका नदी की जलधारा प्रदान किया जा रहा है।" तदनन्तर भगवान् ने दुग्ध, मधु, तिल से पितृ तर्पण किया।।८०-८२।।

स्वस्तीत्युक्ते पैतृकैस्तु सोराह्ने प्नावतर्पयन् (?)।
रजतं दक्षिणां दत्त्वा विप्रान्देवो गदाधरः॥८३॥
संविभागं मनुष्येभ्यो ददौ स्वदिति चाब्रुवन्।
कश्चि (च्चि) त्सम्पन्नमि (त्यु) क्त्वा प्रत्युक्तस्तैर्द्विजोत्तमाः॥८४॥
अभिरम्यतामित्युवाच प्रोचुस्तेऽभिरताः स्म वै।
शिष्टमन्नं च पप्रच्छ तैरिष्टैः सह चोदितः॥८५॥
पाणावादाय तान्विप्रान्कुर्यादनुगतस्त (तं तं) दा।
वाजे वाजे इति पठन्बहिर्वेदि विनिर्गतः॥८६॥

तत्पश्चात् प्रभु वाराहदेव ने अपराह्न के समय मधु-तिल मिश्रित अति पितर प्रिय जल द्वारा पितरों का तर्पण सम्पन्न करके ब्राह्मणों को चांदी की दक्षिणा अर्पित किया। विप्रों ने तब स्वस्तिवाचन किया "स्वत्" मन्त्र से मनुष्यों का भाग अर्पित किया। तब हरि ने ब्राह्मणों से कहा—"यह भाग्यतः सम्पन्न हो गया।" इसके पश्चात् हरि ने ब्राह्मणों से कहा—"अब विराम करें।" ब्राह्मणों ने कहा—"विराम कर रहे हैं।" यह कृत्य सम्पन्न हो जाने पर बचा अन्न हाथ में लेकर ब्राह्मणों को प्रदान किया। "वाजे वाजे" इत्यादि का पाठ करते वाराहदेव वेदी से उठ कर बाहर आ गये।।८३-८६।।

कोटितीर्थजलेनासावपसव्यं समुत्क्षिपन्। अलग्नान्विपुलान्वालान्प्रार्थयामास चाशिषम्॥८७॥
दातारो नोऽभिर्धन्तां तैस्तथेति समीरितः। प्रदक्षिणमुपावृत्य कृत्वा पादाभिवादनम्॥८८॥

तदनन्तर कोटितीर्थ के जल से अपसव्य होकर उसमें अपने विपुल केशों को डुबा कर आशीर्वाद के लिये "दातारो" इत्यादि मन्त्रयुक्त प्रार्थना पितरों से किया। भगवान् ने प्रदक्षिणा एवं चरणवन्दना भी सम्पन्न किया था।।८७-८८।।

आसनानि ददौ चैषां छादयामास शूकरः।
विश्राम्यतां प्रविश्याथ पिण्डं जग्राह मध्यमम्॥८९॥
छायामयीमही पत्नी तस्यै पिण्डमदात्प्रभुः।
आधत्त पितरो गर्भमित्युक्त्वा साऽपि रूपिणी॥९०॥
पिण्डं गृहीत्वा विप्राणां चक्रे पादाभिवन्दनम्।
विसर्जनं पितॄणां स कर्तुकामश्च शूकरः॥९१॥

तत्पश्चात् उनको आसन देकर वाराहदेव ने उनसे विश्राम करने को कह कर गृह में जाकर मध्य पिण्ड अपनी पत्नी छायामयी धरित्री को प्रदान किया। उन्होंने "आधत्त पितरो गर्भम्" का उच्चारण करके पिण्ड ले लिया तथा ब्राह्मणों को प्रणाम किया! अब वाराहदेव ने पितृविसर्जन की कामना किया था।।८९-९१।।

कोका च पितरश्चैव प्रोचुः स्वार्थकरं वचः।
शप्ताश्च भगवन्पूर्वं दिवस्था हिमभानुना॥९२॥

योगभ्रष्टा भविष्यध्वं सर्वं एव दिवश्च्युताः।
तदेव भवता त्राताः प्रविशन्तो रसातलम्॥९३॥
योगभ्रष्टांश्च विश्वेशास्तत्यजुर्योगरक्षिणः। तत्ते भूयोऽभिरक्षन्तु विश्वे देवा हि नः सदा॥९४॥
स्वर्गं यास्यामश्च विभो प्रसादात्तव शूकर।
सो (य) मोऽधिदेवोऽस्माकं च भवत्वच्युत योगधृक्॥९५॥
योगाधारस्तथा सोमस्त्रायते न कदाचन। दिवि भूमौ सदा वासो भवत्वस्मासु योगतः॥९६॥

उस समय कोका एवं पितृगण ने अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु वाराहदेव से कहा—"हे भगवान्! पूर्वकाल में चन्द्र ने हमें शाप दिया था कि तुम लोग योगभ्रष्ट तथा स्वर्ग से च्युत हो जाओ। इस प्रकार हम अभिशप्त होकर रसातल जा रहे थे, आपने हमारी रक्षा कर दिया। योगरक्षक विश्वेदेवगण ने भी हमारा त्याग कर दिया था। उन्होंने हमें योगभ्रष्ट मान कर त्याग दिया था। हे देव! अब आपकी कृपा से वे विश्वेदेव हमारी रक्षा करें। हम स्वर्ग जा सकें। योगशाली यमदेव हमारे अधिपति हो जायें। योगाधार सोमदेव सदा हमारी रक्षा करें। हम योग द्वारा सदा स्वर्ग तथा पृथिवी पर निवास कर सकें"॥९२-९६॥

अन्तरिक्षे च केषांचिन्मासं पुष्टिस्तथाऽस्तु नः।
ऊर्जा चेयं हि नः पत्नी स्वधानाम्ना तु विश्रुता॥९७॥
भवत्वेषैव योगाढ्या योगमाता च खेचरी। इत्येवमुक्तः पितृभिर्वाराहो भूतभावनः॥९८॥
प्रोवाचाथ पितॄन्विष्णुस्तां च कोकां महानदीम्। यदुक्तं तु भवद्भिर्मे सर्वमेतद्भविष्यति॥९९॥
यमोऽधिदेवो भवतां सोमः स्वाध्याय ईरितः।
अधियज्ञस्तथैवाग्निर्भवतां कल्पना त्वियम्॥१००॥
अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च स्थानं हि भवतामिति। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवतामधिपूरुषाः॥१०१॥
आदित्या वसवो रुद्रा भवतां मूर्तयस्त्विमाः।
योगिनो योगदेहाश्च योगाधाराश्च सुव्रताः॥१०२॥
कामतो विचरिष्यध्वं फलदाः सर्वजन्तुषु।
स्वर्गस्थान्नरकस्थांश्च भूमिस्थांश्च चराचरन्॥१०३॥
निययोगबलेनैवाऽऽप्याययिष्वध्वमुत्तमाः। इयमूर्जा शशिसुता कीलालमधुविग्रहा॥१०४॥
भविष्यति महाभागा दक्षस्य दुहिता स्वधा।
तत्रेयं भवतां पत्नी भविष्यति वरानना॥१०५॥

"अन्तरिक्ष में कुछ मास हमें पुष्टि प्राप्त हो। यह हमारी ऊर्जा नामक जो पत्नी स्वधा नाम से प्रसिद्ध है, यही योगमाता, योगाड्या तथा आकाश में विचरण करने वाली हो जाये।" पितृगण की यह प्रार्थना सुनकर भूतभावन वाराहदेव विष्णु ने पितृगण तथा महानदी कोका से कहा—"आप लोगों ने जो कहा, वही हो।" यम आप लोगों के अधिदेव, सोम स्वाध्याय, अग्नि अधियज्ञ होंगे। अग्नि-वायु-सूर्य आप लोगों के निवास होंगे।

आप यही चाहते हैं? ब्रह्मा-विष्णु-शिव आप लोगों की मूर्त्ति होंगे। आप लोग योगी, योगदेह तथा योगाधार होंगे। आप लोग सुव्रती होकर सभी प्राणीगण को उनकी इच्छा से फल देने हेतु सदा विचरण करेंगे। आप सब स्वर्गस्थ, नरकस्थ, पृथ्वीस्थ तथा सचराचर को योगबल से आप्यायित करते रहेंगे। जल एवं मधुमय देहधारिणी चन्द्र कन्या ऊर्जा प्रजापति दक्ष की कन्या होकर वरानना स्वधा नाम से प्रसिद्ध हो जायेगी। यही आप लोगों की पत्नी होगी।।९७-१०५।।

कोकानदीति विख्याता गिरिराजसमाश्रिता। तीर्थकोटिमहापुण्या मद्रूपपरिपालिता॥१०६॥

अस्यामद्य प्रभृति वै निवत्स्यसाम्यघनाशकृत्।
वराहदर्शनं पुण्यं पूजनं भुक्तिमुक्तिदम्॥१०७॥

कोकासलिलपानं च महापातकनाशनम्। तीर्थेष्वाप्लवनं पुण्यमुपवासश्च स्वर्गदः॥१०८॥

दानमक्षय्यमुदितं जन्ममृत्युजरापहम्। माघे मास्यसिते पक्षे भवद्भिरुडुपक्षये॥१०९॥

कोकामुखमुपागम्य स्थातव्यं दिनपञ्चकम्।
तस्मिन्काले तु यः श्राद्धं पितॄणां निर्वपिष्यति॥११०॥
प्रागुक्तफलभागी स भविष्यति न संशयः।
एकादशीं द्वादशीं च स्थेयमत्र मया सदा॥१११॥

गिरिराज हिमालय की आश्रिता यह कोकानदी मेरे रूप से पालित होगी। यह लोगों को कोटितीर्थ का फल प्रदान करेगी। मैं आज से यहां नित्य निवास करूंगा। मेरी इस वाराह मूर्त्ति का अवलोकन करके मनुष्यों का पाप नाश होगा तथा भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होगी। कोका नदी का जल पान करने से महापातकों का नाश होगा। इसके जल में स्नान पुण्यवर्द्धक होगा। इस तीर्थ में उपवास द्वारा स्वर्गलाभ होगा। यहां दान अक्षय फलप्रद होगा तथा यह जन्म-मृत्यु-जरा का नाशक भी होगा। आप लोग माघमासी कृष्णा एकादशी से लगाकर अमावस्या पर्यन्त चन्द्र क्षय वाले पांच दिन कोकामुख पर आकर निवास करेंगे। उस समय जो व्यक्ति पितरों का श्राद्ध करेंगे, वे पूर्वोक्त फललाभ करेंगे। इसमें संशय नहीं है। मैं एकादशी तथा द्वादशी के दिन यहीं निवास करूंगा।।१०६-१११।।

यस्तत्रोपवसेद्धीमान्स प्रागुक्तफलं लभेत्।
तद्व्रजध्वं महाभागाः स्थानमिष्टं यथेष्टतः॥११२॥
अहमप्यत्र वत्स्यामीत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत।
गते वराहे पितरः कोकामामन्त्र्य ते ययुः॥११३॥
कोकाऽपि तीर्थसहिता संस्थिता गिरिराजनि।
छाया महीमयी क्रोडो पिण्डप्राशनबृंहिता॥११४॥

गर्भमादाय सश्रद्धा वाराहस्यैव सुन्दरी। ततोऽस्याः प्राभवत्पुत्रो भौमस्तु नरकासुरः।
प्राग्ज्योतिषं च नगरमस्य दत्तं च विष्णुना॥११५॥

एवं मयोक्तं वरदस्य विष्णोः कोकामुखे दिव्यवराहरूपम्।
श्रुत्वा नरस्त्यक्तमलो विपाप्मा दशाश्वमेधेष्टिफलं लभेत॥११६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे श्राद्धविधिनिरूपणं नामैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१९॥

"जो धीमान् व्यक्ति उपवासी रहेगा, उसे पूर्व कथित फल मिलेगा। हे महाभागगण! आप लोग यथेच्छ स्थान पर जायें। मैं यहीं रहूंगा।" यह कहने के साथ ही भगवान् अन्तर्हित् हो गये। तब पितृगण भी कोका नदी को आमन्त्रित करके प्रस्थान कर गये। कोका नदी भी नाना तीर्थ समन्वित होकर हिमालय पर स्थित हो गयी। पृथ्वीमयी वाराहपत्नी छाया ने उस पिण्डभोजन के कारण गर्भधारण किया था। उन्होंने आनन्द पूर्वक कुछ समय पश्चात् हिमालय पर ही पुत्र को जन्म दिया। वह पुत्र ही पृथिवी पुत्र नरकासुर कहलाया। विष्णु ने उसे प्राग्ज्योतिषपुर का राज्य प्रदान किया। मैंने आप लोगों से वरप्रद भगवान् विष्णु का कोकामुख तीर्थ में दिव्य वाराहरूपी होने का प्रयोजन कहा। इस पावन प्रसंग को सुनने वाले व्यक्ति निर्मल तथा पापमुक्त हो जायेंगे। वे दस अश्वमेध यज्ञफल लाभ करेंगे।।११२-११६।।

।।एकोनविंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्राद्ध कल्प वर्णन

मुनय ऊचुः

भूयः प्रब्रूहि भगवञ्श्राद्धकल्पं सुविस्तरात्।
कथं क्व च कदा केषु कैस्तद्ब्रूहि तपोधन॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे भगवान्! कृपा पूर्वक पुनः आपसे श्राद्ध कल्प सुनना चाहते हैं। यह किस प्रकार, किस समय, कहां पर, किस द्रव्य द्वारा किसे करना चाहिये। यह सब विषय कहिये।।१।।

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः श्राद्धकल्पं सुविस्तरात्। यथा तत्र यदा येषु यैर्द्रव्यैस्तद्वदाम्यहम्॥२॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः श्राद्धं स्ववरणोदितम्। कुलधर्ममनुतिष्ठद्भिर्दातव्यं मन्त्रपूर्वकम्॥३॥
स्त्रीभिर्वर्णावरैः शूद्रैर्विप्राणामनुशासनात्। अमन्त्रकं विधिपूर्वं वह्नियागविवर्जितम्॥४॥
पुष्करादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च। शिखरेषु गिरीन्द्राणां पुण्यदेशेषु भो द्विजाः॥५॥

सरित्सु पुण्यतोयासु नदेषु च सरःसु च। सङ्गमेषु नदीनां च समुद्रेषु च सप्तसु॥६॥
स्वनुलिप्तेषु गेहेषु स्वेष्वनुज्ञापितेषु च। दिव्यपादपमूलेशु यज्ञियेषु ह्रदेषु च॥७॥
श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु चोच्यते। किरातेषु कलिङ्गेषु कोङ्कणेषु कृमिष्वपि॥८॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिशार्दूलगण! आप लोग विस्तार के साथ श्राद्धकल्प श्रवण करें। यह कब, किस प्रकार, कहां पर, किस द्रव्य से, किसे करना चाहिये, मैं वह कहता हूं। कुल धर्माचरण परायण ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य लोग इन मन्त्रों के साथ करें। ब्राह्मणों के निर्देशानुरूप स्त्री तथा शूद्र लोग इसे सविधि बिना मन्त्र तथा अग्निपाक रहित करें। कुल धर्मपालक लोग इसे पुष्करादि तीर्थ में, पुण्य आयतनों में, नदी-नद-सरोवर तट पर, नदीसंगम पर, सातों समुद्र तट पर, सुलिप्त स्वगृह में अथवा ब्राह्मण की आज्ञा लेकर अन्य के सुलिप्त गृह में, देवस्थान में, वृक्ष के नीचे, यज्ञस्थल पर अथवा झील ह्रद के किनारे श्राद्ध करें। अब मैं श्राद्ध के लिये वर्जित कहे गये स्थानों का वर्णन करता हूं। किरात, कलिंग, कोंकण, कृमिदेश।।२-८।।

दशार्णेषु कुमार्येषु तङ्गणेषु क्रथेष्वपि। सिन्धोरुत्तरकूलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे॥९॥
पूर्वेषु करतोयाया न देयं श्राद्धमुच्यते। श्राद्धं देयमुशन्तीह मासि मास्युडुपक्षये॥१०॥

पौर्णमासेषु (?)श्राद्धं च कर्त्तव्यमृक्षगोचरे।
नित्यश्राद्धमदेवं च मनुष्यैः सह गीयते॥११॥
नैमित्तिकं सुरैः सार्धं नित्यं नैमित्तिकं तथा।
काम्यान्यन्यानि श्राद्धानि प्रतिसंवत्सरं द्विजैः॥१२॥

वृद्धिश्राद्धं च कर्तव्यं जातकर्मादिकेषु च। तत्र युमान्द्विजानाहुर्मन्त्रपूर्वं तु वै द्विजाः॥१३॥

दशार्ण, कुमार्य, तङ्गण, क्रथ देश में, सिन्धु नदी के उत्तर तट पर, नर्मदा के दक्षिण तट पर, करतोया के पूर्व तट पर श्राद्ध न करे। प्रतिमास कृष्णपक्ष में श्राद्ध करना चाहिये। पूर्णिमा के दिन भी नक्षत्रगोचर स्थिति में श्राद्ध विहित है। नित्य श्राद्ध में देवपक्ष नहीं होता, ब्राह्मण भोजनादि की भी बाध्यता नहीं रहती। यह मनुष्यपक्षीय होता है। नैमित्तिक श्राद्ध में देवपक्ष-ब्राह्मण भोजनादि आवश्यक है। नित्य श्राद्ध अदैव श्राद्ध (देवतारहित) होता है। देवपक्ष सहित श्राद्ध ही नैमित्तिक कहा जाता है। अन्य श्राद्ध जो प्रतिवर्ष सम्पन्न होते हैं, वे काम्य श्राद्ध हैं। काम्य श्राद्ध ब्राह्मण पक्षीय होता है। इसे प्रतिवर्ष करे। जातकर्मादि के उपलक्ष्य में वृद्धिश्राद्ध करे। हे द्विजगण! नान्दी श्राद्ध (वृद्धि श्राद्ध) में मन्त्र के साथ दो-दो ब्राह्मण स्थापित करना होता है (दो-दो ब्राह्मण बुलाये)।।९-१३।।

कन्यां गते सवितरि दिनानि दश पञ्च च। पूर्वेणैवेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते॥१४॥
प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा। पुत्रार्थिनी तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी॥१५॥

श्रियं प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः।
गणाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां बुद्धिमुत्तमाम्॥१६॥
स्त्रियो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम्।
वेदांस्तथाऽऽप्नुयात्सर्वानेकादश्यां क्रियापरः॥१७॥

द्वादश्यां जयलाभं च प्राप्नोति पितृपूजकः।
प्रजावृद्धिं पशुं मेधां स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम्॥१८॥
दीर्घायुरथवैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम्।
अवाप्नोति न सन्देहः श्राद्धं श्रद्धासमन्वितः॥१९॥

जब सूर्य कन्याराशीस्थ हो, तब पूर्वोक्त विधानानुरूप १५ दिनों तक श्राद्ध विहित कहा गया है। प्रतिपदा श्राद्ध से धनलाभ, द्वितीया श्राद्ध से जनलाभ, तृतीया श्राद्ध से पुत्रलाभ, चतुर्थी श्राद्ध से शत्रुनाश, पंचमी श्राद्ध से स्त्रीलाभ, षष्ठी श्राद्ध से सम्मान लाभ, सप्तमी श्राद्ध से आधिपत्य, अष्टमी श्राद्ध से उत्तम बुद्धि, नवमी श्राद्ध से स्त्रीलाभ, दशमी श्राद्ध से कामना लाभ, एकादशी श्राद्ध से वेदज्ञान, द्वादशी श्राद्ध से जयलाभ, त्रयोदशी श्राद्ध से मानव को प्रभूत सन्तानलाभ, इस दिन श्राद्ध से प्रजा, बुद्धि, स्वातंत्र्य, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु तथा निःसन्देह ऐश्वर्यलाभ होता है।।१४-१९।।

यथासम्भविनाऽन्नेन श्राद्धं श्रद्धासमन्वितः।
युवानः पितरो तस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः॥२०॥
तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता।
श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः॥२१॥
सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गं चानन्तमश्नुते। अतःपरं मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं वदतो मम॥२२॥
पितॄणां प्रीतये यत्र यद्देयं प्रीतिकारिणा। मासं तृप्तिः पितॄणां तु हविष्यान्नेन जायते॥२३॥
मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तिं यान्ति पितामहाः। त्रीन्मासान्हारिणं मांसं विज्ञेयं पितृतृप्तये॥२४॥
पुष्णाति चतुरो मासाञ्शशस्य पिशितं पितॄन्।
शाकुनं पञ्च वै मासान्षण्मासाञ्शूकरामिषम्॥२५॥
छागलं सप्त वै मासानैणेयं चाष्टमासाकान्।
करोति तृप्तिं नव वै रुरुमांसं न संशयः॥२६॥
गव्यं मांसं पितृतृप्तिं करोति दशमासिकीम्।
तथैकादश मासांस्तु औरभ्रं पितृतृप्तिदम्॥२७॥
संवत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव च।
वाध्रीनमा (ध्रीणसा) मिषं लोहं कालशाकं तथा मधु॥२८॥

जिसके पिता अल्पायु में ही मृत हो गये, शस्त्राघात अथवा अन्य कारण से मृत हुये हों, उनकी तृप्ति हेतु चतुर्दशी श्राद्ध सम्पन्न करे। इससे उनकी तृप्ति होगी। पवित्र पुरुष अमावस्या के दिन यत्नतः श्राद्ध करे। इससे उसे सर्वकाम प्राप्ति तथा अनन्तकाल के लिये स्वर्ग प्राप्ति होगी। हे मुनिप्रवरगण! तदनन्तर पितरों की प्रसन्नता हेतु दान काल कहता हूं। श्रवण करें। हविष्यान्न दान से पितर एक मास तृप्त रहते हैं। मत्स्य-मांस से दो मास, हरिण मांस से तीन मास, शशक मांस से चार मास, वन्य पक्षी मांस से पांच मास, शूकर मांस से

छः मास, बकरे के मांस से सात मास, एण हिरण के मांस से आठ मास, रुरु हिरण के मांस से नौ मास, गवय के मांस से दस मास, भेड़े के मांस से ग्यारह मास तृप्त रहते हैं। गोदुग्ध तथा पायस से पितर एक वर्ष तक की तृप्तिलाभ करते हैं। गैंडे का मांस, लाल बकरे का मांस, कालशाक, मधु—।।२०-२८।।

रोहितामिषमन्नं च दत्तान्यात्मकुलोद्भवैः।
अनन्तं वै प्रयच्छन्ति तृप्तियोगं सुतांस्तथा॥२९॥
पितॄणां नात्र सन्देहो गयाश्राद्धं च भो द्विजाः।
यो ददाति गुडोन्मिश्रांस्तिलान्वा श्राद्धकर्मणि॥३०॥
मधु वा मधुमिश्रं वा अक्षयं सर्वमेव तत्।
अपि नः स कुले भूयाद्यो नो दद्याज्जलाञ्जलिम्॥३१॥
पायसं मधुसंयुक्तं वर्षासु च मघासु च। एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥३२॥

रोहू मछली का मांस तथा अन्न मिला कर, यह पितृगण को अनन्त तृप्ति प्रदान करता है। वे पुत्र प्रदान करते हैं। हे ब्राह्मणों! निःसन्देह पितरों को गया श्राद्ध द्वारा भी तृप्ति होती है। हे द्विजगण! श्राद्ध में गुड़, मधुयुक्त तिल तथा केवल मधु प्रदान करने से वह सब अक्षय हो जाता है। पितृगण यह कामना करते हैं कि "हमारे कुल में ऐसी सन्तान का जन्म हो, जो हमें नित्य जलांजलि प्रदान करे तथा वर्षा ऋतु में तथा मघा नक्षत्र काल में मधुमिश्रित पायस प्रदान करे। अनेक पुत्रों की कामना करनी चाहिये, जिनमें से एक भी गया जाये!"।।२९-३२।।

गौरीं वाऽप्युद्वहेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्।
कृत्तिकासु पितॄनर्च्य स्वर्गमाप्नोति मानवः॥३३॥
अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये तेजस्वितां लभेत्।
शौर्यमार्द्रासु चाऽऽप्नोति क्षेत्राणि च पुनर्वसौ॥३४॥
पुष्ये तु धनमक्षय्यमाश्लेषे चाऽऽयुरुत्तमम्।
मघासु च प्रजां पुष्टिं सौभाग्यं फाल्गुनीषु च॥३५॥
प्रधानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासु च। प्रयाति श्रेष्ठतां शास्त्रे हस्ते श्राद्धप्रदो नरः॥३६॥
रूपं तेजश्च चित्रासु तथाऽऽपत्यमवाप्नुयात्।
वाणिज्यलाभदा स्वाती विशाखा पुत्रकामदा॥३७॥
कुर्वन्तां चानुराधासु ता दद्युश्चक्रवर्तिताम्। आधिपत्यं च ज्येष्ठासु मूले चाऽऽरोग्यमुत्तमम्॥३८॥
आषाढासु यशःप्राप्तिरुत्तरासु विशोकता।
श्रवणेन शुभांल्लोकान्धनिष्ठासु धनं महत्॥३९॥
वेदवित्त्वमभिजिति भिषक्सिद्धिं च वारुणे।
अजाविकं प्रौष्ठपद्यां विन्देद्गावस्त (श्च त) थोत्तरे॥४०॥

रेवतीषु तथा कुप्यमश्विनीषु तुरङ्गमान्। श्राद्धं कुर्वंस्तथाऽप्नोति भरणीष्वायुरुत्तमम्॥४१॥

"अष्टवर्षीया कन्या (वर को) प्रदान करे। अथवा नीलवर्ण वृष छोड़े। इससे हमारी दीर्घकालीन तृप्ति होगी।" कृत्तिका नक्षत्र में पितरों की अर्चना करने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है। इसी प्रकार रोहिणी में सन्तान, मृगशिरा में तेज, आर्द्रा में शौर्य, पुनर्वसु में क्षेत्रलाभ, पूषा में अक्षय धन, आश्लेषा में दीर्घ आयु, मघा में सन्तानलाभ तथा पुष्टि, पूर्वाफाल्गुनी में सौभाग्य, उत्तरा फाल्गुनी में प्रधानता तथा शीलत्वलाभ और पुत्रलाभ, हस्त नक्षत्र में शास्त्रज्ञान, चित्रा में रूप-तेजः-सम्मानलाभ, स्वाती में वाणिज्यलाभ, विशाखा में पुत्रलाभ, अनुराधा में राजत्व, ज्येष्ठा में आधिपत्य, मूल में आरोग्य, पूर्वाषाढ़ा में यश, उत्तराषाढ़ा में शोक का अभाव, श्रवणा में शुभ लोक लाभ, धनिष्ठा में प्रभूत धनलाभ, अभिजित् में वेदज्ञान, शतभिषा में चिकित्सकत्व, पूर्वभाद्रपद में बकरे आदि पशु का लाभ, उत्तरभाद्रपद में कान्ति, रेवती में स्वर्ग तथा चांदी को छोड़कर अन्य धातुलाभ, अश्विनी में अश्व तथा भरणी में श्राद्ध द्वारा दीर्घ आयु लाभ होता है।।३३-४१।।

एवं फलमवाप्नोति ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्ववित्।
तस्मात्काम्यानि श्राद्धानि देयानि विधिवद्द्विजाः॥४२॥
कन्याराशिगते सूर्ये फलमत्यन्तमिच्छता।
यान्यान्कामानभिध्यायन्कन्याराशिगते रवौ॥४३॥
श्राद्धं कुर्वन्ति मनुजास्तांस्तान्कामाँल्लभन्ति ते।
नान्दीमुखानां कर्तव्यं कन्याराशिगते रवौ॥४४॥
पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वाराहवचनं यथा।
दिव्यभौमान्तरिक्षाणि स्थावराणि चराणि च॥४५॥
पिण्डमिच्छन्ति पितरः कन्याराशिगते रवौ।
कन्यां गते सवितरि यान्यहानि तु षोडश॥४६॥
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि देवो नारायणोऽब्रवीत्।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां य इच्छेद्दुर्लभं फलम्॥४७॥

जो इन-इन नक्षत्रों में श्राद्ध कार्य करता है, उसे ऊपर लिखे फल उन-उन नक्षत्रों में मिलते हैं। मनुष्य ये सभी काम्यश्राद्ध करे। विशेष फलेप्सु मनुष्य जब सूर्य कन्या राशि में हों, तब श्राद्ध करे। उस समय जिन-जिन कामनाओं हेतु श्राद्ध किया जाता है, वह सब सफल हो जाती हैं। देवदेव वाराह भगवान् का कथन है कि जब सूर्य कन्याराशीस्थ रहें, तब पूर्णिमा तिथि पर नान्दीमुख पितरों का श्राद्ध करना चाहिये। जब सूर्य कन्या राशि में हों, तब दिव्य, भौम तथा अन्तरिक्ष स्थित स्थिर तथा चर सभी पितरों को पिण्ड की कामना होती है। भगवान् नारायण के कथनानुसार कन्याराशिस्थ सूर्य की स्थिति में वे सोलहों दिवस यज्ञतुल्य हैं। जो राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ को दुर्लभ फल की कामना करता है।।४२-४७।।

अप्यम्बुशाकमूलाद्यैः पितॄन्कन्यागतेऽर्चयेत्। उत्तराहस्तनक्षत्रगते तीक्ष्णांशुमालिनि॥४८॥
योऽर्चयत्स्वपितॄन्भक्त्या तस्यवासस्त्रिविष्टपे। हस्तर्क्षगे दिनकरे पितृराजानुशासनात्॥४९॥

तावत्पितृपुरी शून्या यावद्वृश्चिकदर्शनम्। वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह॥५०॥
निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदुःसहम्।
अष्टकासु च कर्तव्यं श्राद्धं मन्वन्तरासु वै॥५१॥

वह शाक, मूल, जल द्वारा भी पितरों की अर्चना करे। जब सूर्य उत्तराफाल्गुनी किंवा हस्त नक्षत्रगत हों, तब जो व्यक्ति भक्तिभाव से पितृगण की अर्चना करते हैं, उनको स्वर्ग में निवास मिलता है। सूर्य हस्त नक्षत्र में जाकर जब तक वृश्चिक राशि में उदित नहीं हो जाते, तब तक यमराज के आदेश से पितृलोक शून्य रहता है। इस समय के बीच श्राद्ध न किये जाने पर जब सूर्य वृश्चिक राशि में चले जाते हैं, तब पितर लोग दीर्घ श्वास छोड़ते हुये देवताओं के साथ लौटते समय उन श्राद्ध न करने वालों को दारुण शाप देकर वापस चले जाते हैं। अष्टका (पौष, माघ, फाल्गुन की कृष्णनवमी) तथा मन्वन्तर पर श्राद्ध अवश्यमेव करना चाहिये।।४८-५१।।

अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते। ग्रहणे च व्यतीपाते रविचन्द्रसमागमे॥५२॥
जन्मर्क्षे ग्रहपीडायां श्राद्धं पार्वणमुच्यते। अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा॥५३॥
सङ्क्रान्तिषु च कर्तव्यं श्राद्धं विधिवदुत्तमम्।
एषु कार्यं द्विजाः श्राद्धं पिण्डनिर्वापणावृते॥५४॥

अन्वष्टका (पौष, माघ, फाल्गुन की कृष्णा नवमी) के दिन मातृपूर्व श्राद्ध विहित है। (माता से लगाकर क्रमिक श्राद्ध करे)। ग्रहण, व्यतीपात योग, अमावस्या, जन्म नक्षत्र पर तथा ग्रहपीड़ा होने पर पार्वण श्राद्ध करे। दोनों अयन, संक्रान्ति, दोनों विषुव संक्रान्ति तथा साधारण संक्रान्ति काल में भी सविधि उत्तम रूप से श्राद्ध करना कर्त्तव्य है। हे ब्राह्मणवृन्द! ये सभी श्राद्ध बिना पिण्ड प्रदान किये विशेष फल देने वाले हैं।।५२-५४।।

वैशाखस्य तृतीयायां नवम्यां कार्तिकस्य च।
श्राद्धं कार्यं तु शुक्लायां सङ्क्रान्तिविधिना नरैः॥५५॥
त्रयोदश्यां भाद्रपदे माघे चन्द्रक्षयेऽहनि। श्राद्धं कार्यं पायसेन दक्षणायनवच्च तत्॥५६॥
यदा च श्रोत्रियोऽभ्येति गेहं वेदविदग्निमान्।
तेनैकेन च कर्तव्यं श्राद्धं विधिवदुत्तमम्॥५७॥

वैशाखमासीय शुक्ला तृतीया तथा कार्त्तिकी शुक्ला नवमी के दिन संक्रान्ति विधान से श्राद्ध करना चाहिये। भाद्रपदी त्रयोदशी तथा माघी अमावस्या को पायस से दक्षिणायन वाली विधि से श्राद्ध करे। वेदज्ञ साग्निक श्रोत्रिय लोग जब अतिथिरूपेण अपने घर आ जायें, तब एकमात्र उसी से सविधि श्राद्ध कराये।।५५-५७।।

श्राद्धीयद्रव्यसम्प्राप्तिर्यदा स्यात्साधुसम्मता।
पार्वणेन विधानेन श्राद्धं कार्यं तथा द्विजैः॥५८॥
प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापित्रोर्मृतेऽहनि। पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि॥५९॥

पार्वणं देवपूर्वं स्यादेकोद्दिष्टं सुरैर्विना। द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा॥६०॥
मातामहानामप्येवं सर्वमूहेन कीर्तिकम्। प्रेतीभूतस्य सततं भुवि पिण्डं जलं तथा॥६१॥
सतिलं सकुशं दद्याद्वहिर्जलसमीपतः। तृतीयेऽह्नि च कर्तव्यं प्रेतास्थिचयनं द्विजैः॥६२॥
दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति॥६३॥

जब कभी उत्तमोत्तम श्राद्धीय वस्तु जुट जाये, पास में द्रव्य हो, तब द्विजगण पार्वण विधान से श्राद्ध करें। प्रति वर्ष माता, पिता, पुत्र, पितृव्य, भ्राता का श्राद्ध इनकी मृत्यु तिथि पर करना चाहिये। पार्वण श्राद्ध में देवता की पूजा हो, लेकिन एकोदिष्ट श्राद्ध देवता रहित करे। देवकर्म में दो, पितृकर्म में तीन अथवा दोनों में एक-एक ब्राह्मण निमन्त्रित करे। मातामह पक्ष को भी पितृपक्षवत् जाने। प्रेतत्व प्राप्त व्यक्ति हेतु बाहर जल के पास पृथिवी पर तिल-कुश-जल तथा पिण्ड देना चाहिये। द्विजगण तीसरे दिन प्रेत की अस्थि का संचय करें। ब्राह्मण दशम दिन, क्षत्रिय द्वादश दिन, वैश्य पंचदश दिन तथा शूद्र एक मास में अशौच रहित हो पाता है।।५८-६३।।

सूतकान्ते गृहे श्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते। द्वादशेऽहनि मासे च त्रिपक्षे च ततः परम्॥६४॥

मासि मासि च कर्तव्यं यावत्संवत्सरं द्विजाः।
ततः परतरं कार्यं सपिण्डीकरणं क्रमात्॥६५॥
कृते सपिण्डीकरणे पार्वणं प्रोच्यते पुनः।
ततः प्रभृति निर्मुक्ताः प्रेतत्वात्पितृतां गताः॥६६॥
अमूर्ता मूर्तिमन्तश्च पितरो द्विविधाः स्मृताः।
नान्दीमुखास्त्वमूर्ताः स्युमूर्तिमन्तोऽथ पार्वणाः।
एकोद्दिष्टाशिनः प्रेताः पितृणां निर्णयस्त्रिधा॥६७॥

जब अशौच (सूतक) समाप्त हो जाये, तब एकोदिष्ट श्राद्ध करे। ब्राह्मण तथा द्विज (क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण) बारहवें दिवस, एक मास, तीन पक्ष पर एक वर्ष तक प्रतिमास श्राद्ध करे। तदनन्तर सपिण्डीकरण सम्पन्न करे। सपिण्डीकरण जब हो जाये, तभी पार्वण करे। इससे प्राणी प्रेतत्व रहित होकर पितर स्थिति लाभ करता है। पितृगण द्विविध होते हैं—यथा रूपयुक्त, रूपरहित। नांदीमुख पितृगण रूप रहित होते हैं। पार्वण पितृगण रूपयुक्त होते हैं। एकोदिष्ट श्राद्ध के पिण्डभोजी प्रेत होते हैं। ये त्रिविध पितृगण निर्णीत किये गये हैं।।६४-६७।।

मुनय ऊचुः

कथं सपिण्डीकरणं कर्तव्यं द्विजसत्तम। प्रेतीभूतस्य विधिवद्ब्रूहि नो वदतां वर॥६८॥

मुनिगण कहते हैं—हे वाग्मीप्रवर! प्रेतत्व स्थिति वाले का सपिण्डीकरण कैसे किया जाये, विस्तृत वर्णन करिये।।६८।।

व्यास उवाच

सपिण्डीकरणं विप्राः शृणुध्वं वदतो मम। तच्चापि देवरहितमेकार्धैकपवित्रकम्॥६९॥

नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चाऽऽवाहनवर्जितम्।
अपसव्यं च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान्॥७०॥
विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासक्रियादिकः।
तं कथ्यमानमेकाग्राः शृणुध्वं मे द्विजोत्तमाः॥७१॥
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम्। कुर्यात्पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य च द्विजाः॥७२॥

व्यासदेव कहते हैं—हे विप्रवृन्द! मैं कह रहा हूं। आप लोग एकाग्र होकर यह विषय श्रवण करिये। सपिण्डीकरण तथा एकोद्दिष्ट ये दोनों देव रहित किये जाते हैं। इसको एक ही अर्घ्य तथा एक ही पवित्री से देव रहित किया जाता है। यहां अपसव्य करे तथा अयुग्म संख्या में ब्राह्मण भोजन कराये। जैसे ३, ५, ७ इत्यादि। इसमें प्रतिमास विहित कार्य की विशेषता कहता हूं। हे द्विजोत्तमगण! एकाग्रता पूर्वक श्रवण करें। हे ब्राह्मणों! पितरों हेतु तीन तथा प्रेतार्थ एक पात्र तिल, गंधजल युक्त स्थापित करे।।६९-७२।।

पात्रत्रये प्रेतपात्रादर्धं चैव प्रसेचयेत्। ये समाना इति जपन्पूर्ववच्छेषमाचरेत्॥७३॥
स्त्रीणामप्येवमेव स्यादेकोद्दिष्टमुदाहृतम्। सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते॥७४॥
प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः।
मृताहनि च तत्कार्यं पितॄणां विधिचोदितम्॥७५॥
पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदराः।
कुर्युरेतं विधिं सम्यक्पुत्रस्य च सुताः सुताः॥७६॥
कुर्यान्मातामहानां तु पुत्रिकातनयस्तथा। द्व्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहान्॥७७॥
पूजयेयुर्यथान्यायं श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि। सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्॥७८॥

"ये समाना" इत्यादि मन्त्रजप के साथ प्रेतपात्र का आधा जल पितृपात्र में छोड़े। अन्य कार्य यथापूर्व करे। स्त्रियों का एकोद्दिष्ट भी इसी प्रकार का होता है, लेकिन अपुत्रक स्त्रियों का सपिण्डीकरण पुत्र के अभाव में नहीं होता। स्त्री का एकोद्दिष्ट प्रतिवर्ष करे। पितृगण का एकोद्दिष्ट सविधि उनकी मृत्यु तिथि पर करे। पुत्र न होने पर सपिण्ड (अर्थात् जिनको पिण्डदान का अधिकार है) श्राद्ध करें। उसका अभाव हो, तब सहोदर भ्राता, पुत्र का पुत्र भी एकोद्दिष्ट सविधि कर सकते हैं। मातामह का श्राद्ध दौहित्र भी करने का अधिकारी है। पुत्रिका पुत्र भी मातामह एवं पितामहादि का नैमित्तिक श्राद्ध करे। यदि ये सब अधिकारी न मिलें, तब पत्नी ही पति का श्राद्ध बिना मन्त्र के कर सकती है।।७३-७८।।

तदभावे च नृपतिः कारयेत्त्वकुटुम्बिनाम्।
तज्जातीयैर्नरैः सम्यग्दाहाद्याः सकलाः क्रियाः॥७९॥
सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः।
एता वः कथिता विप्रा नित्या नैमित्तिकास्तथा॥८०॥

यदि कोई न मिले, तब राजा मृतक के जाति वालों से दाहादि समस्त कार्य कराये। राजा तो सभी वर्ण

वालों का बन्धु होता है। हे विप्रगण! मैंने आप लोगों से श्राद्ध सम्बन्धित नित्य, नैमित्तिक विधि कह दिया। अब नित्य-नैमित्तिक कार्य का श्रवण करें।।७९-८०।।

वक्ष्ये श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकां क्रियाम्।
दर्शस्त (र्शत) त्र निमित्तं तु विद्यादिन्दुक्षयान्वितः (तम्)।।८१।।
नित्यस्तु नियतः कालस्तस्मिन्कुर्याद्यथोदितम्।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः।।८२।।
स तु लेपभुजं याति प्रलुप्तः पितृपिण्डतः।
तेषां हि यश्चतुर्थोऽन्यः स तु लेपभुजो भवेत्।।८३।।
सोऽपि सम्बन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते। पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।।८४।।
पिण्डसम्बन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः। लेपसम्बन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात्।।८५।।
प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः। इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः सम्बन्धः साप्तपौरुषः।।८६।।
यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा। ततोऽन्ये पूर्वजाः सर्वे ये चान्ये नरकौकसः।।८७।।
येऽपि तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः।
तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्यथाविधि।।८८।।

निमित्त में चन्द्रक्षय युक्त अमावस्या ही कारण है। निर्दिष्ट काल का कार्य ही नित्य है। उसमें यथोक्त कार्य करे। सपिण्डीकरणोपरान्त पितामह के पितामह पितृपिण्ड से वंचित होकर लेपभुज हो जाते हैं। तब उन लेपभुज के चौथी पीढ़ी पूर्व वाले अब लेपभुजत्व रहित हो जाते हैं। पिता, पितामह तथा प्रपितामह—ये तीन पीढ़ी वाले पितर पिण्डभोजी होते हैं। सपिण्डीकरण में पितामह के पितामह तीन पीढ़ी के पितर लेपभुज हो जाते हैं। पिण्डदाता से लगाकर सात पूर्व पीढ़ी तक सम्बन्ध रहता है। हे ब्राह्मणगण! भले ही वे नरकवासी हों, तिर्यक् योनि में हों, भूत योनि में हों, श्राद्धकर्त्ता से उनको श्राद्ध द्वारा जैसे तृप्ति होती है, वह कहता हूं। पितामह से लेकर तीन पीढ़ी के पितृगण लेपसम्बन्धी हैं। सप्तम यजमान हैं। (पिता से लेकर पितामह की तीन पीढ़ी तक ये छः लेपसम्बन्धी पितर, इससे पूर्ण वाले सप्तम पीढ़ी वाले यजमान हैं)। इन यजमान से लेकर और ऊपरी पीढ़ी वाले अनुलेपभुज हैं। उनसे ऊर्ध्व पीढ़ी वाले पूर्वज हैं। नरकवासी तथा तिर्यक् योनि वाले एवं भूत योनि वाले जो हैं, उनका भी श्राद्ध सविधि करे।।८१-८८।।

स समाप्यायते विप्रा येन येन वदामि तत्। अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि।।८९।।
तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः।
यदम्बु स्नानावस्त्रोत्थं भूमौ पतति भो द्विजाः।।९०।।
तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते।
यास्तु गन्धाम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले।।९१।।
ताभिराप्यायनं तेषां देवत्वं ये कुले गताः।
उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु याश्चाम्बुकणिका भुवि।।९२।।

ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः।
ये चान्दन्ताः कुले बालाः क्रियायोगाद्बहिष्कृताः॥९३॥
विपन्नास्त्वनधिकाराः सम्मार्जितजलाशिनः।
भुक्त्वा चाऽऽचामतां यच्च यज्जलं चाङ्घ्रिशौचजम्॥९४॥
ब्राह्मणानां तथैवान्यत्तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै।
एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम्॥९५॥
कश्चिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा।
तेनान्नेन कुले तत्र ये य योन्यन्तरं गताः॥९६॥
प्रयान्त्याप्यायनं विप्राः सम्यक्श्राद्धक्रियावताम्।

उनको कैसे तृप्ति हो, वह कहता हूं। मनुष्य भूतल पर जो अन्न फैलाते हैं, उससे पिशाचत्व प्राप्त पितृगण तृप्त हो जाते हैं। गन्ध जल के जो जलकण पृथिवी पर गिरते हैं, उनसे देवत्व प्राप्त पितर तृप्त होते हैं। जिन्होंने वंश में तिर्यक् योनि पाया है, पिण्ड को उठाते समय पृथिवी पर जो जलकण भूपतित होते हैं, उनसे वे पितृगण तृप्त हो जाते हैं। ब्राह्मणों को जलपान कराने से वे तृप्त हो जाते हैं। वंश में दांत उगने के पूर्व जो बालक मृत हो जाते हैं, वे श्राद्ध क्रिया के अन्तर्गत् नहीं आते। वे सम्मार्जन वाले जल के गिरने पर तृप्त हो जाते हैं। ब्राह्मण जब भोजनोपरान्त आचमन करते, पैर धोते हैं, उस गिरे जल से इनकी तृप्ति हो जाती है। इस प्रकार यथाविधि श्राद्धक्रियावान यजमान किंवा श्राद्ध में आये ब्राह्मणों का झूठा अथवा अन्य किसी प्रकार का भी जो जल-अन्न भूपतित होता है, उसमें वंश के अन्य योनी में पड़े सभी आप्यायित हो जाते हैं।।८९-९६।।

अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः॥९७॥
तृप्यन्ते ते न चाण्डालपुल्कसाद्यासु योनिषु।
एवमाप्यायनं विप्रा बहूनामेव बान्धवैः॥९८॥
श्राद्धं कुर्वद्भिरत्राम्बुविक्षेपैः सम्प्रजायते।
तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकेनापि यथाविधि॥९९॥
कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति।
श्राद्धं देयं तु विप्रेषु संयेतेष्वग्निहोत्रिषु॥१००॥
अवदातेषु विद्वत्सु श्रोत्रियेषु विशेषतः। त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित्॥१०१॥
मातापितृपरश्चैव स्वस्त्रीयः सामवेदवित्। ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमुपाध्यायां च भोजयेत्॥१०२॥
मातुलः श्वशुरः श्यालः सम्बन्धी द्रोणपाठकः। मण्डलब्राह्मणो यस्तु पुराणार्थविशारदः॥१०३॥
अकल्पः कल्पसन्तुष्टः प्रतिग्रहविवर्जितः।
ऋते श्राद्धे नियोक्तव्या ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः॥१०४॥

अन्याय से उपार्जित धन से जो श्राद्ध किया जाता है, उससे चाण्डाल-व्याधि आदि योनिगत पितर भी

तृप्त नहीं हो पाते। अतः (न्यायोपार्जित) शाक आदि से भी भक्तियुक्त होकर श्राद्ध करना चाहिये। इससे वे कुल वाले कदापि अतृप्त नहीं रहते। जितेन्द्रिय, अग्निहोत्री ब्राह्मण को, विशेष करके शुद्ध-विद्वान् श्रोत्रिय को श्राद्ध में दान करना उचित है। इन्द्रियजित्, अग्निहोत्री ब्राह्मण, त्रिनाचिकेत, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, षडङ्गज्ञाता, पिता-माता की सेवा करने वाले, भांजा, सामवेदज्ञ, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, उपाध्याय, मातुल, श्वशुर, साला, सम्बन्धी, पुराण के अर्थ ज्ञाता, मण्डल द्विज, द्रोण पाठक, निःसंशय, सन्तुष्ट, प्रतिग्रह रहित—ये सभी पंक्तिपावन विप्र हैं। ये श्राद्ध कार्य में नियुक्त हों।।९७-१०४।।

निमन्त्रयेत पूर्वेद्युः पूर्वोक्तान्द्विजसत्तमान्। दैवे नियोगे पित्र्ये च तांस्तथैवोपकल्पयेत्॥१०५॥

तैश्च संयमिभिर्भाव्यं यस्तु श्राद्धं करिष्यति।

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति॥१०६॥

पितरस्तस्य वै मासं तस्मिन्रेतसि शेरते।

गत्वा च योषितं श्राद्धे ये भुङ्क्ते यस्तु ग (य) च्छति॥१०७॥

रेतोमूत्रकृताहारास्तं मासं पितरस्तयोः। तस्मात्त्व (त्तु) प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम्॥१०८॥

इन पूर्वोक्त ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना चाहिये। श्राद्ध के दिन के पूर्व ही इनको निमन्त्रित करे। देवकर्म तथा पितृकर्म, दोनों में यही विधान है। निमन्त्रण पाकर वे ब्राह्मण तथा श्राद्धकर्त्ता संयमी रहे। जो श्राद्धोपरान्त श्राद्ध करने वाला तथा श्राद्धान्न भोजी है, वह उस दिन मैथुन न करे। अन्यथा उसके पितर एक मास तक उसी के वीर्य में शयन करेंगे। स्त्री संग करके जो श्राद्ध करता है अथवा जो व्यक्ति स्त्री संग के बाद श्राद्ध भोजन करता है, उसके पितर एक मास तक उसके वीर्य तथा मूत्र का भोजन करते हैं। अतः श्राद्ध हेतु प्राज्ञ व्यक्ति श्राद्ध के एक दिन पूर्व निमन्त्रण ब्राह्मण को प्रदान करे अथवा स्त्री संग रहित ब्राह्मण को निमन्त्रित करे।।१०५-१०८।।

अप्राप्तौ तद्दिने वाऽपि वर्ज्या योषित्प्रसङ्गिनः।

भिक्षार्थमागतांश्चापि कालेन संयतान्यतीन्॥१०९॥

भोजयेत्प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः। योगिनश्च तदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता॥११०॥

योगधारा हि पितरस्तस्मात्तान्पूजयेत्सदा।

ब्राह्मणानां सहस्राणि एको योगी भवेद्यदि॥१११॥

यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत्। पितृगाथा तथैवात्र गीयते ब्रह्मवादिभिः॥११२॥

पता लग जाने पर कि इस ब्राह्मण ने स्त्री संग किया है, तब (श्राद्ध के पूर्व दिन तथा श्राद्ध के दिन) उस ब्राह्मण का त्याग करे। श्राद्ध काल में भिक्षा लेने के लिये समागत यति आदि भिक्षुकगण को संयत होकर प्रणाम द्वारा प्रसन्न करके भोजन कराये। पितृगण योग के आधार होते हैं। अतः योगी को श्राद्ध में भोजन कराना चाहिये। सदा योगी का सम्मान करे। यदि सहस्र ब्राह्मण में एक योगी भी बुलाया जाये तब वह यजमान को तथा सहभोजीगण को उस तरह उत्तीर्ण कर देता है, जैसे जल से नाव पार करा देती है। इस सम्बन्ध में ब्रह्मवादी लोग एक गाथा गाते हैं।।१०९-११२।।

या गीता पितृभिः पूर्वमैलस्याऽऽसीन्महीपतेः।
कदा नः सन्ततावग्यः कस्यचिद्भविता सुतः॥११३॥
यो योगिभुक्तशेषान्नो भुवि पिण्डान्प्रदास्यति।
गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं तथा हविः॥११४॥
कालशाकं तिलाज्यं च तृप्तये कृसरं च नः।
वैश्वदेवं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः॥११५॥
विषाणवर्जं शिरस आ पादादाशिषामहे। दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि॥११६॥
मधुसर्पिसमायुक्तं पायसं दक्षिणायने। तस्मात्सम्पूजयेद्भक्त्या स्वपितृन्विविधवन्नरः॥११७॥
कामानभीप्सन्सकलान्पापादात्मविमोचनम्। वसून्रुद्रांस्तथाऽऽदित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः॥११८॥
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतर्पिताः।
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च॥११९॥
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः। तथाऽपराह्णः पूर्वाह्णात्पितृणामतिरिच्यते॥१२०॥
सम्पूज्य स्वागतेनैतान्सदनेऽभ्यागतान्द्विजान्। पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत्॥१२१॥

वह यह है कि ऐल राजा से पितरों ने कहा—"हमारी सन्तान में से कब एक संयत अव्यग्र सन्तान जन्म लेगा, जो योगीगण के द्वारा भक्षित शेष अन्न से हमें पिण्ड देगा? अथवा हमारी तृप्ति हेतु गया में पिण्ड देगा? गया में गैंडे के मांस, हविः, कालशाक, तिलयुक्त घृत किंवा खिचड़ी प्रदान करेगा? गैंडे के सींग को छोड़कर उसका शिर से पैर तक का मांस विश्वेदेव तथा चन्द्रमा को प्रिय है। हमें भी उसी की कामना है। श्राद्ध में त्रयोदशी, मघा तथा दक्षिणायन काल में मधु तथा घृत मिश्रित पायस देना चाहिये। मनुष्य भक्तिभाव से पितृपूजन करे। जब पितृगण श्राद्ध द्वारा तृप्त होते हैं, वे श्राद्धकर्त्ता की सर्व कामना पूर्ण कर देते हैं। वे व्यक्ति को पापमुक्ति प्रदान करते हैं। वे पितृगण श्राद्धकर्त्ता के प्रति वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण, नक्षत्र-ग्रह-तारक प्रभृति को श्राद्धकर्त्ता के अनुकूल कर देते हैं। श्राद्ध से तृप्त पितृगण आयु, सन्तति, धन, विद्या, सुख, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष भी देते हैं। पितृकार्य को पूर्वाह्ण की जगह अपराह्णकाल में सम्पन्न करे। गृहागत विप्रगण को पवित्र हाथों से (अथवा पवित्र हाथों में धारण करके) जल प्रदान आचमन प्रदान तथा आसन प्रदान करे।।११३-१२१।।

श्राद्धं कृत्वा विधानेन सम्भोज्य च द्विजोत्तमान्।
विसर्जयेत्प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भक्तितः॥१२२॥
आद्वारमनुगच्छेच्च आगच्छेदनुमोदितः।
ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथाऽतिथीन्॥१२३॥
नित्यक्रियां पितृणां च केचिदिच्छन्ति सत्तमाः। न पितृणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत्॥१२४॥
पृथक्त्वेन वदन्त्यन्ये केचित्पूर्वं च पूर्ववत्। ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः॥१२५॥

सविधि श्राद्ध सम्पन्न हो जाने पर द्विजों को भोजन, दक्षिणा, प्रिय वाक्य से सम्मान कराये। उनको भक्तिभाव से प्रणामोपरान्त विदा करे। तत्पश्चात् द्वार तक उनके पीछे चलते हुये उनकी आज्ञा लेकर प्रत्यावर्त्तन करे (वापस आये)। नित्यक्रिया के पश्चात् अतिथिगण को भोजन कराना चाहिये। कोई-कोई श्रेष्ठ मुनि पितृक्रिया के पहले ही नित्यक्रिया करना चाहते हैं। कोई-कोई ऐसा नहीं करते। पितृक्रिया के उपरान्त नित्यक्रिया करते हैं। बाकी क्रिया पूर्ववत् की जाये अर्थात् बाकी क्रिया पितृक्रिया के उपरान्त करनी चाहिये। किसी का मत है कि पृथक्-पृथक् पितरों की क्रिया करे। किसी का मत है कि पूर्ववत् सब कर्म करे। श्राद्धान्न भक्षण परिजनों, सेवकों के साथ करे। यह विधान है।।१२२-१२५।।

एवं कुर्वीत धर्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः।
यथा च विप्रमुख्यानां परिपोषोऽभिजायते॥१२६॥
इदानीं सम्प्रवक्ष्यामि वर्जनीयान्द्विजाधमान्।
मित्रधुक्कुनखी क्लीबः क्षयी शुक्ली वणिक्पथः॥१२७॥
श्यावदन्तोऽथ खल्वाटः काणोऽन्धो बधिरो जडः।
मूकः पङ्गुः कुणिः षण्ढो दुश्चर्मा व्यङ्गकेकरौ॥१२८॥
कुष्ठी रक्तेक्षणः कुब्जो वामनो विकटोऽलसः।
मित्रशत्रुर्दुष्कुलीनः पशुपालो निराकृतिः॥१२९॥
परिवित्तिः परिवेत्ता परिवेदनिकासुतः। वृषलीपतिस्तत्सुतश्च न भवेच्छ्राद्धभुग्द्विजः॥१३०॥

धर्मज्ञ व्यक्ति इस प्रकार समाहित होकर श्राद्धानुष्ठान करें, जिससे ब्राह्मणगण भोजनादि से सन्तुष्ट हो जायें। श्राद्धार्थ जो ब्राह्मण वर्जित हैं, अब उनका वर्णन श्रवण करिये। मित्रद्रोही, विकृत नख वाला, नपुंसक, क्षय रोगी, श्वेत कुष्ठ रोगी, वाणिज्य व्यवसाय करने वाला, काले दांतों वाला, मद्यप, गंजा, काना, अन्धा, बहरा, जड़, मूक, भैंगीं आंखों वाला, विकृत चर्मयुक्त, कुष्ठ रोगी, लंगड़ा, लाल आंखों वाला, वामन, जिसके दांत बाहर निकले हों, आलस्य युक्त, अकुलीन, पशुपालक, परिवित्ति अर्थात् जिसके कनिष्ठ भ्राता का विवाह उससे पहले हो गया हो, परिवेत्ता जिसका विवाह अपने से बड़े भाई के पहले हो गया हो, शूद्रा का पति तथा ऐसे व्यक्ति का पुत्र शास्त्रों के अनुसार श्राद्धार्थ वर्जित कहा गया है।।१२६-१३०।।

वृषलीपुत्रसंस्कर्ता अनूढो दिधिषूपतिः।
भृतकाध्यापको यस्तु भृतकाध्यापितश्च यः॥१३१॥
सूतकान्नोपजीवी च मृगयुः सोमविक्रयी।
अभिषस्तस्तथा स्तेनः पतितो वार्धुषिः शठः॥१३२॥
पिशुनो वेदसंत्यागी दानाग्नित्यागनिष्ठुरः।
राज्ञः पुरोहितो भृत्यो विद्याहीनोऽथ मत्सरी॥१३३॥
वृद्धद्विड्दुर्धरः क्रूरो मूढो देवलकस्तथा। नक्षत्रसूचकश्चैव पर्वकारश्च गर्हितः॥१३४॥

अयाज्ययाजकः षण्ढो गर्हिता ये च येऽधमाः।
न ते श्राद्धे नियोक्तव्या दृष्ट्वाऽमी पङ्क्तिदूषकाः॥१३५॥

शूद्रा पुत्र का संस्कारकर्त्ता, अविवाहित, दूसरा विवाह करने वाली स्त्री का पति, वेतन लेकर अध्यापन करने वाला, सूतक के अन्न को लेने वाला, मृगया प्रेमी, मद्य विक्रेता, कलंकयुक्त, तस्कर, पतित, सूदभोगी, चुगली करने वाला, वेद को त्याग देने वाला, दान तथा अग्नि त्यागी, निष्ठुर, राजपुरोहित, विद्यारहित, ईर्ष्यालु, वृद्धजन द्वेषी, उद्धत, क्रूर, मूर्ख, पुजारी, ग्रह आदि की भविष्यवाणी करने वाला, निन्दित, जो यज्ञ के अधिकारी नहीं हैं, उनको यज्ञ कराने वाला, अधम—ऐसे ब्राह्मण को श्राद्ध में न बुलाये। ये पंक्तिदूषक कहे गये हैं।।१३१-१३५।।

असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैवावमानना। दण्डो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः॥१३६॥
हित्वाऽऽगमं सुविहितं बालिशं यस्तु भोजयेत्।
आदिधर्मं समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति॥१३७॥

इनको श्राद्ध में भोजनादि हेतु न बुलाये। जहां असत् का सम्मान तथा सत् व्यक्ति का अपमान हो, वहां शीघ्र ही दैवकृत दारुण दण्ड लगता है। जो मनुष्य शास्त्रविधि की अवहेलना करके मूर्ख को भोजन देता है, वह दाता अपने पूर्वकृत धर्म से भी रहित होकर विनष्ट हो जाता है।।१३६-१३७।।

यस्त्वाश्रितं द्विजं त्यक्त्वा अन्यमानीय भोजयेत्।
तन्निःश्वासाग्निनिर्दग्धस्तत्र दाता विनश्यति॥१३८॥
वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च।
तस्माद्वासांसि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः॥१३९॥
कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा।
श्राद्धे त्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोति चोत्तमान्॥१४०॥

जो मानव आश्रित ब्राह्मण का त्याग करके अन्य को बुला कर भोजन देता है, वह आश्रित ब्राह्मण की श्वासरूपी अग्नि द्वारा दग्ध हो जाता है। सभी कार्य में, विशेषतः श्राद्ध के समय वस्त्रदान करना कर्त्तव्य है। नूतन कौशेय (रेशमी), क्षौम (पट्टवस्त्र), कपास का बना वस्त्र तथा महीन वस्त्र श्राद्ध के समय प्रदान करता है, वह उत्तम कामनालाभ करता है।।१३८-१४०।।

यथा गोषु प्रभूतासु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथाऽन्नं तत्र विप्राणां जन्तुर्यत्रावतिष्ठते॥१४१॥
नामगोत्रं च मन्त्राश्च दत्तमन्नं नयन्ति ते। अपि ये निधनं प्राप्तास्तृप्तिस्तानुपतिष्ठते॥१४२॥
देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव भवन्त्विति॥१४३॥
आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्त्या जपेत्तदा।
पिण्डनिर्वपणे वाऽपि जपेदेवं समाहितः॥१४४॥

क्षिप्रमायान्ति पितरो राक्षसाः प्रद्रवन्ति च।
प्रीयन्ते त्रिषु लोकेषु मन्त्रोऽयं तारयत्युत॥१४५॥
क्षौमसूत्रं नवं दद्याच्छा (च्छो) णं कार्पासिकं तथा।
पत्रोर्णं पट्टसूत्रं च कौशेयं च विवर्जयेत्॥१४६॥

जैसे अनेक गौओं के रहते हुये भी बछड़ा अपनी मां को खोज कर उसके निकट आ जाता है, तदनुरूप श्राद्ध में ब्राह्मण के मुख में प्रदत्त अन्न उसके पास पहुंच जाता है, जिसके उद्देश्य से श्राद्ध किया गया है। मृत व्यक्ति के पास वह अन्न उसका नाम-गोत्रादि उच्चारण करके "देवताभ्यः" इत्यादि मन्त्र तीन बार कहने पर श्राद्ध के द्वारा पहुंचती है, ऐसा कहना उचित नहीं है। परन्तु ब्राह्मण द्वारा अन्नभोजन जनित तृप्ति ही पितरों के पास पहुंचता है। पितृगण के श्राद्धकाल में प्रथमतः सावधान होकर "देवताभ्यः" इत्यादि का जप करे, इससे पितृगण का त्वरित आगमन होता है। राक्षस पलायन करते हैं। आसन दान करने के अनन्तर यह मन्त्र पढ़े। "देवता तथा महायोगी पितरों को प्रणाम! स्वाहा तथा स्वधा को भी प्रणाम! वे नित्य यहां सन्निहित रहें।" (यही मूलोक्त 'देवताभ्यः' मन्त्र है, जो श्लोक १४३ में अंकित है)। इस मन्त्र से पितृगण प्रसन्न हो जाते हैं। वे दाता का परित्राण कर देते हैं। नूतन रेशमी कपड़ा प्रदान करे। कपास, ऊन, पट्ट तथा कौशेय वस्त्र न प्रदान करे।।१४१-१४६।।

वर्जयेच्चादशं प्राज्ञो यद्यप्यव्याहतं भवेत्।
न प्रीणयन्त्यथैतानि दातुश्चाप्यनयो भवेत्॥१४७॥
न निवेद्यो भवेत्पिण्डः पितॄणां यस्तु जीवति।
इष्टेनान्नेन भक्ष्येण भोजयेत्तं यथाविधि॥१४८॥
पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी सततं नरः।
पत्न्यै दद्यात्प्रजार्थी च मध्यमं मन्त्रपूर्वकम्॥१४९॥
उत्तमां द्युमिमन्विच्छन्पिण्डं गोषु प्रयच्छति।
प्रज्ञां चैव यशःकीर्तिमप्सु चैव निवेदयेत्॥१५०॥
प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति। कुमारशालामन्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति॥१५१॥
एके विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमग्रतः। अनुज्ञातस्तु विप्रैस्तैः काममुद्ध्रियतामिति॥१५२॥
तस्माच्छ्राद्धं तथा कार्यं यथोक्तमृषिभिः पुरा।
अन्यथा तु भवेद्दोषः पितॄणां नोपतिष्ठति॥१५३॥
यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा। सन्तर्पयेत्पितॄनमुद्गै श्यामाकैः सर्षपद्रवैः॥१५४॥
नीवारैर्हस्तिश्यामाकैः प्रियङ्गुभिस्तथाऽर्घयेत्।
प्रसातिकां (असितकां) सतूलिकां द (तीलकान्द) द्याच्छ्राद्धे विचक्षणः॥१५५॥

इसके अतिरिक्त दशाहीन वर्जित वस्तु है (अर्थात् जिसमें किनारी न हो वह दशाहीन है)। उससे (वर्णित

वस्तु से) पितर प्रसन्न नहीं होते। इससे दाता का अनिष्ट होता है। यदि पितरों में कोई जीवित है, तब उसे पिण्ड प्रदान न करे, परन्तु उसे उत्तम रूप से भोजनीय वस्तु देकर भोजन कराये। भोगार्थी व्यक्ति सदा अग्नि में पिण्ड प्रदान करे। सन्तानकामी मनुष्य मध्यम पिण्ड मन्त्र पाठ करके पत्नी को प्रदान करे। उत्तम कान्ति की कामना वाला व्यक्ति गौओं को पिण्ड खिलाये। कीर्ति चाहने वाला जल में पिण्ड विसर्जित करे। गृह में पुत्र कामना वाला मुर्गों को पिण्ड प्रदान कर दे। किसी ब्राह्मण का कथन है कि पिण्डोद्धार के पहले आज्ञा लेना चाहिये। जब ब्राह्मण आज्ञा दे कि पिण्डोद्धार कर दो, तब वह कार्य करे। फलस्वरूप पूर्व के ऋषिगण ने जो विधान किया है, तदनुरूप श्राद्ध करना उचित है। अन्यथा वह पितरों के लिये तृप्तिदायक नहीं होता। वह तो दोष उत्पन्न करता है। विद्वान् मानव यव, व्रीहि, तिल, उर्द, गोधूम, चना, से तर्पण तथा मूंग, श्यामाक (साई), सरसों, नीवार, हस्तिश्यामक (सांवा चावल), प्रियंगु से पितृगण को अर्घ्यदान करे। विद्वान् व्यक्ति श्राद्धकाल में सभी सम्बन्धित वस्तु सहित शय्या प्रदान करे।।१४७-१५५।।

आम्रमाम्रातकं बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम्।
प्राचीनामलकं क्षीरं नारिकेलं परूषकम्॥१५६॥
नारङ्गं च सखूर्जरं द्राक्षानीलकपित्थकम्।
पटोलं च प्रियालं च कर्कन्धूबदराणि च॥१५७॥
विकङ्कतं वत्सकं च कस्त्वारु (र्कारू) र्वारकानपि।
एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः॥१५८॥
गुडशर्करमत्स्यण्डी देयं फाणितमूर्मुरम्।
गव्यं पयो दधि घृतं तैलं च तिलसम्भवम्॥१५९॥
सैन्धवं सागरोत्थं च लवणं सारसं तथा। निवेदयेच्छुचीन्गान्धांश्चन्दनागुरुकुङ्कुमान्॥१६०॥
कालशाकं तन्दुलीयं वास्तुकं मूलकं तथा।
शाकमारण्यकं चापि दद्यात्पुष्पाण्यमूनि च॥१६१॥

आम, आंवला, अनार, बिजौरा नींबू, पानीय आमलक, नारीयल, नारंगी, खजूर, मुनक्का, कठबेल, पटोल, प्रियाल, वेर, विकंतक वत्सक, कस्तवारु, वारक फल श्राद्धार्थ प्रदान करे। गुड़, चीनी, खांड़, गोदुद्ध, दही, तिल तैल, गोघृत, सेंधा नमक, पवित्र सुगन्ध, चन्दन, अगरु, कुंकुम, कालशाक, तंडुलीय, बथुआ, मूली तथा वन्यशाक तथा पुष्प प्रदान करे।।१५६-१६१।।

जातिचम्पकलोधाश्च मल्लिकाबाणबर्बरी।
वृन्ताशोकाटरूषं च तुलसी तिलकं तथा॥१६२॥
पावन्तीः शतपत्रां च गन्धशेफालिकामपि।
कुब्जकं तगरं चैव मृगमारण्यकेतकीम्॥१६३॥
यूथिकामतिमुक्तं च श्राद्धयोग्यानि भो द्विजाः। कमलं कुमुदं पद्मं पुण्डरीकं च यत्नतः॥१६४॥

इन्दीवरं कोकनदं कह्लारं च नियोजयेत्।
कुष्ठं मांसी बालकं च कुक्कुटी जातिपत्रकम्॥१६५॥

नलिकोशीरमुस्तं च ग्रन्तिपर्णी च सुन्दरी। पुरप्येवमादीनि गन्धयोग्यानि चक्षते॥१६६॥

पुष्पों में जाती, मालती, चम्पा, लोध, भल्लिका, बाण, वर्वरी, वृन्त, अशोक, अटरूप, तुलसी, तिलक, शतपत्र, गन्धशेफालिका, कुब्जक, तगर, मृग, जंगली केतकी, जूही, अतिमुक्त श्राद्ध में ग्रहणीय हैं। कमल, कुमुद, श्वेत कमल, नीलकमल, कल्हार श्राद्धोक्त पुष्प हैं। कूठ, जटामासी, बालक, कुक्कुटी, जातीपत्र, नलिक, खस, मुस्त, ग्रन्थिपर्णी पितृगण के लिये गन्धार्थ उपयुक्त माने जाते हैं।।१६२-१६६।।

गुग्गुलुं चन्दनं चैव श्रीवासमगुरुं तथा। धूपानि पितृयोग्यानि ऋषिगुग्गुलमेव च॥१६७॥

राजमाषांश्च चणकान्मसूरान्कोरदूषकान्। विप्रुषान्मर्कटांश्चैव कोद्रवांश्चैव वर्जयेत्॥१६८॥

माहिषं चामरं मार्गमाविकैकशफोद्भवम्।
स्त्रैणमौष्ट्रमाविकं च दधि क्षीरं घृतं त्यजेत्॥१६९॥
तालं वरुणकाकोलौ बहुपत्रार्जुनीफलम्।
जम्बीरं रक्तबिल्वं च शालस्यापि फलं त्यजेत्॥१७०॥
मत्स्यसूकरकूर्माश्च गावो वर्ज्या विशेषतः।
पूतिकं मृगनाभिं च रोचनां पद्मचन्दनम्॥१७१॥
कालेयकं तूग्रगन्धं तुरुष्कं चापि वर्जयेत्।
पालङ्कं च कुमारी किरातं पिण्डमूलकम्॥१७२॥
गृञ्जनं चुक्रिकां चुक्रं वरुमां चनपत्रिकाम्।
जीवंच शतपुष्पां च नालिकां गन्धशूकरम्॥१७३॥
हलभृत्यं सर्षपं च पलाण्डुं लशुनं त्यजेत्।
मानकन्दं विषकन्दं वज्रकन्दं गदास्थिकम्॥१७४॥
पुरुषाल्वं सपिण्डालुं श्राद्धकर्मणि वर्जयेत्।
अलाबुं तिक्तपर्णां च कूष्माण्डं कटुकत्रयम्॥१७५॥

गन्ध योग्य गुग्गुलु, चन्दन, श्रीवास, अगुरु, धूप तथा ऋषिगुग्गुलु ये ऋषिगण के धूप योग्य हैं। राजमाष, चना, मसूर, कोरदूषक, विप्रुष, मर्कट तथा कोदो वर्जित हैं। महिष, चमरी गौ, हरिणी, मेष, एक खुर वाले पशु, मादा पशु, ऊंट, बकरी—इन सभी का दूध पदार्थ श्राद्धार्थ वर्जित है। इनका दूध तथा घृत भी वर्जित है। ताल, वरुण, काकोल, बहुपत्र, अर्जुनीफल, जम्बीर, रक्त बिल्व, शालफल श्राद्ध में वर्जित है। मछली, शूकर, कच्छप, गोमांस श्राद्ध में विशेष रूप से त्याग करे। पूतिका, मृगनाभि, गोरोचन, पद्मचन्दन, कलेयक तथा तीक्ष्ण गन्ध लोबान का भी त्याग कर देना चाहिये। पालक, कुमारी, किरात, पिण्डभूत, गाजर, चुक्रिका, चुक्र, वरुका, वचपत्रिका, जीव, शतपुष्पा, नालिका, गन्धशूकर, हलभृत्य, सरसों, प्याज, लहसुन श्राद्ध में

त्याज्य है। मानकन्द, विषकन्द, वज्रकन्द, गदास्थिक, पुरुषाल्व, पिण्डालु श्राद्ध कर्म में वर्जित है। लौकी, तिक्तपर्णा, कोहड़ा, त्रिकटु (पीपल-सोंठ, मिर्च) श्राद्ध में वर्जित है।।१६३-१७५।।

वार्ताकं शिवजातं च लोमशानि वटानि च।
कालीयं रक्तबाणां च बालकां लकुचं तथा॥१७६॥
श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानि विभीतकफलं तथा।
आरनालं च शुक्तं च शीर्णं पर्युषितं तथा॥१७७॥
नोग्रगन्धं च दातव्यं कोविदारकशिग्रुकौ।
अत्यम्लं पिच्छिलं सूक्ष्मं यातयामं च सत्तमाः॥१७८॥
न च देयं गतरसं मद्यगन्धं च यद्भवेत्। हिङ्ग्वग्रगन्धं फणिशं भूनिम्बं निम्बराजिके॥१७९॥
कुस्तुम्बुरु कलिङ्गोत्थं वर्जयेदम्लवेतसम्।
दाडिमं मागधीं चैव नागरार्द्रकतित्तिडीः॥१८०॥
आम्रातकं जीवकं च तुम्बुरुञ्च नियोजयेत्।
पायसं शाल्मलीमुद्रान्मोदकादींश्च भक्तितः॥१८१॥
पानकं च रसालं च गोक्षीरं च निवेदयेत्।
यानि चाभ्यवहार्याणि स्वादुस्निग्धानि भो द्विजाः॥१८२॥
ईषदम्लकटून्येव देयानि श्राद्धकर्मणि। अत्यम्लं चातिलवणमतिरिक्तकटूनि च॥१८३॥
आसुराणीह भोज्यानि तान्यतो दूरतस्त्यजेत्।
मृष्टस्निग्धानि यानि स्युरीषत्कट्वम्लकानि च॥१८४॥
स्वादूनि देवभोज्यानि तानि श्राद्धे नियोजयेत्।
छागमांसं वार्तिकं च तैत्तिरं शशकामिषम्॥१८५॥
शिवालावकराजीवमांसं श्राद्धे नियोजयेत्।
वाघ्रीणसं रक्तशिवं लोहं शल्कसमन्वितम्॥१८६॥
सिंहतुण्डं च खड्गं च श्राद्धे योज्यं तथोच्यते।
यदप्युक्तं हि मनुना रोहितं प्रतियोजयेत्॥१८७॥

वार्त्ताकु (बैंगन), शिवजात, लोमश, वट, कालीय, रक्तबाण, बलाका, बड़हर भी श्राद्ध में वर्जित है। बहेड़ा अमरनाल, शुक्त तथा फटा बासी तीक्ष्ण गन्ध फल श्राद्ध में उपयोग न करे। अतीव खट्टा, अत्यन्त चिकना, बासी, रसहीन एवं मद्यगन्ध फल भी वर्जित है। हींग जैसी गन्ध वाला फल, फणिश, भूनिम्व, निम्बराजिक, कलिंग देश के कुस्तुम्बुरु, अमलतास का श्राद्ध में त्याग करे। अनार, मागधी, नागर, अदरख, इमली, आंवला, जीवक, तुम्बुरु, खीर, शाल्मली, मूंग, मोदक, पानक, आम, गोदुग्ध भी भक्ति पूर्वक प्रदान करे। भोज्य योग्य, स्वादिष्ट, स्निग्ध, तनिक खट्टा, कटु पदार्थ भी श्राद्ध कर्म में विहित है। अतीव अम्लीय,

अधिक नमकीन, अत्यन्त कटु भोज्य राक्षसी भोज्य है। उसे दूर से त्यागे। स्निग्ध, मधुर रस वाला, तनिक कटु तथा तनिक अम्लरस स्वादु द्रव्य देवभोज्य है। इन सबसे श्राद्ध प्रदान करे। बकरे का मांस, बटेर पक्षी का मांस, तीतर, खरहा, शिवा, लावक तथा राजीव (तीनों पक्षी) का मांस श्राद्ध में विहित है। गैंडा, रक्तशिव, लौह, शल्कल, सिंहतुण्ड तथा खड्ग का मांस श्राद्ध में उचित कहते हैं। मनु ने श्राद्ध में रोहित मत्स्य को प्रयोज्य माना है।।१७६-१८७।।

योक्तव्यं हव्यकव्येषु तथा न विप्रयोजयेत्।
एवमुक्तं मया विप्रा वाराहेणावलोकितम्॥१८८॥
मया निषिद्धं भुञ्जानो रौरवं नरकं व्रजेत्।
एतानि च निषिद्धानि वाराहेण तपोधनाः॥१८९॥
अभक्ष्याणि द्विजातीनां न देयानि पितृष्वपि।
रोहितं शूकरं कूर्मं गोधाहंसं च वर्जयेत्॥१९०॥
चक्रवाकं च मद्गुं च शल्कहीनांश्च मत्स्यकान्।
कुररं च निरस्थिं च वासहातं च (?) कुक्कुटान्॥१९१॥
कलविङ्कमयूरांश्च भारद्वाजांश्च शार्ङ्गकान्। नकुलोलूकमार्जारांल्लोपानन्यान्सुदुर्ग्रहान्॥१९२॥
टिट्टिभान्सार्धजम्बूकान्व्याघ्रऋक्षतरक्षुकान्। एतानन्यांश्च सन्दुष्टान्यो भक्षयति दुर्मतिः॥१९३॥
स महापापकारी तु रौरवं नरकं व्रजेत्। पितृष्वेतांस्तु यो दद्यात्पापात्मा गर्हितामिषान्॥१९४॥

इन सबको हव्य-कव्य में प्रयोग करे तथापि इनका दुरुपयोग न करे। हे ब्राह्मणवृन्द! वाराहदेव ने पूर्व में जिस प्रकार से श्राद्ध सम्पन्न किया था, मैंने उनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग आप लोगों से कह दिया। हे तपोधनों! मैंने जिन द्रव्यों को निषिद्ध कहा है, वह वाराहदेव के ही उपदेशानुसार कहा है। उन निषिद्ध वस्तु का श्राद्ध में प्रयोग करने पर रौरव नरक जाना पड़ता है। यह सब द्विजों के लिये अभक्ष्य है। यह सब पितृगण को नहीं देना चाहिये। रोहित मत्स्य, शूकर, कर्म, गोधा, हंस वर्जित है। चक्रवाक, मद्गु, शल्क रहित मत्स्य, कुरर पक्षी, भारद्वाज, शार्ङ्गक, नकुल, उलूक, मार्जार, गोप तथा अन्य दुर्लभ प्राणी, टिटिहिरी, सियार, व्याघ्र, भालू, लकड़बग्घा, मुर्गा, गौरैया, मयूर, को जो दुर्मति खाता है, वह महापापी रौरव नरक गमन करता है। जो व्यक्ति इन गर्हित मांसादि को पितृगण को देता है।।१८८-१९४।।

स स्वर्गस्थानपि पितॄन्नरके पातयिष्यति। कुसुम्भशाकं जम्बीरं सिग्रुकं कोविदारकम्॥१९५॥
पिण्याकं विप्रुषं चैव मसूरं गृञ्जनं शणम्। कोद्रवं कोकिलाक्षं च चक्रं कम्बुकपद्मकम्॥१९६॥
चकोरश्येनमांसं च बर्तुलालाबुतानिलीम्। फलं तालतरूणां च भुक्त्या नरकमृच्छति॥१९७॥

उसके स्वर्गस्थ पितृगण नरक चले जाते हैं। कुसुम्भ शाक, जम्बीर, सहजन, कोविदार, पिण्याक, विप्रुष, मसूर, गाजर, शण, कोदो, कोकिलक्ष, चुक्र, कम्बुक, पद्मक, चकोर पक्षी, बाज पक्षी का मांस, गोल लौकी, तालफल भोजी नरकगामी होता है।।१९५-१९७।।

दत्त्वा पितृषु तैः सार्धं व्रजेत्पूयवहं नरः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नाऽऽहरेत्तु विचक्षणः॥१९८॥

जो पापी जन इन सब द्रव्य को पितृगण को प्रदान करते हैं, वे पितरों के साथ मवाद युक्त नरक में जाते हैं। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति इनका प्रयोग श्राद्ध में न करे।।१९८।।

निषिद्धानि वराहेण स्वयं पित्रर्थमादरात्। वरमेवाऽऽत्ममांसस्य भक्षणं मुनयः कृतम्।।१९९।।

न त्वेव हि निषिद्धानामादानं पुम्भिरादरात्।
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा सकृदेतानि च द्विजाः।।२००।।

भक्षितानि निषिद्धानि प्रायश्चित्तं ततश्चरेत्। फलमूलदधिक्षीरतक्रगोमूत्रयावकैः।।२०१।।

भोज्यान्नभोज्यसम्भुक्ते प्रत्येकं दिनसप्तकम्।
एवं निषिद्धाचरणे कृते सकृदपि द्विजैः।।२०२।।
शुद्धि नेयं शरीरं तु विष्णुभक्तैर्विशेषतः।
निषिद्धं वर्जयेद्द्रव्यं यथोक्तं च द्विजोत्तमाः।।२०३।।
समाहृत्य ततः श्राद्धं कर्तव्यं निजशक्तितः।
एवं विधानतः श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम्।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्प्रीणाति मानवः।।२०४।।

वाराहदेव ने आग्रह पूर्वक स्वयं यह सब पितृगण को प्रदान करने से निषेध किया है। हे मुनिगण! अपना मांस खा लेना अच्छा है, तथापि निषिद्ध द्रव्य खाना मनुष्यों के लिये अकर्त्तव्य है। हे ब्राह्मणगण! यदि कोई व्यक्ति अज्ञानतः बिना जाने अथवा लापरवाही से भी यह खा ले, तब वह प्रायश्चित् अवश्य करे। यदि खाद्य द्रव्य के साथ मिला हुआ यह सब खा लिया गया है, तब सप्ताह पर्यन्त एक-एक दिन यह वस्तु एक-एक भक्षण करके रहे। यथा—फल, मूल, दधि, दुग्ध, मट्ठा, गोमूत्र तथा यावक। हे ब्राह्मणवृन्द! निषिद्ध आचरण हो जाने पर इस प्रकार सभी लोग, विशेष करके विष्णु के भक्त लोग शरीरशोधन करें। हे द्विजप्रवरगण! अपनी शक्ति के अनुरूप इन निषिद्ध द्रव्यों को छोड़ कर अन्य विहित द्रव्य एवं उपकरणों द्वारा श्राद्ध सम्पन्न करना उचित है। मानव अपनी धनशक्ति के अनुरूप यथाविधान श्राद्ध करके ब्रह्मा से तृण पर्यन्त जगत् का तृप्ति साधन करे।।१९९-२०४।।

मुनय ऊचुः

पिता जीवति यस्याथ मृतौ द्वौ पितरौ पितुः।
कथं श्राद्धं हि कर्तव्यमेतद्विस्तरशो वद।।२०५।।

मुनिगण कहते हैं—पिता के जीवित रहते पिता के माता-पिता मृत हो गये हैं, वह कैसे उद्धार करे, यह विस्तार से कहिये।।२०५।।

व्यास उवाच

यस्मै दद्यात्पिता श्राद्धं तस्मै दद्यात्सुतः स्वयम्।
एवं न हीयते धर्मो लौकिको वैदिकस्तथा।।२०६।।

व्यासदेव कहते हैं—पिता जिसका श्राद्ध करता है, पुत्र को भी उसी का श्राद्ध करना चाहिये। इससे लौकिक एवं वैदिक धर्म नष्ट नहीं होता।।२०६।।

मुनय ऊचुः

मृतः पिता जीवति च यस्य ब्रह्मन्पितामहः।
स हि श्राद्धं कथं कुर्यादेतत्त्वं वक्तुमर्हसि॥२०७॥

मुनिगण कहते हैं—जिस व्यक्ति के पिता मृत हो गये, पितामह जीवित हैं, उसके श्राद्ध का विधान कहिये।।२०७।।

व्यास उवाच

पितुः पिण्डं प्रदद्याच्च भोजयेच्च पितामहम्।
प्रपितामहस्य पिण्डं वै ह्ययं शास्त्रेषु निर्णयः॥२०८॥
मृतेषु पिण्डं दातव्यं जीवन्तं चापि भोजयेत्।
सपिण्डीकरणं नास्ति न च पार्वणमिष्यते॥२०९॥
आचारमाचरेद्यस्तु पितृमेधाश्रितं नरः। आयुषा धनपुत्रैश्च वर्धत्याशु न संशयः॥२१०॥
पितृमेधाध्यायमिमं श्राद्धकालेषु यः पठेत्।
तदन्नमस्य पितरोऽश्नन्ति च त्रियुगं द्विजाः॥२११॥
एवं मयोक्तः पितृमेधकल्पः, पापापहः पुण्यविवर्धनश्च।
श्रोतव्य एष प्रयतैर्नरैश्च, श्राद्धेषु चैवाप्यनुकीर्तयेत॥२१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे श्राद्धकल्पनिरूपणं नाम विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२०॥

व्यासदेव कहते हैं—यहां वह पुत्र पिता को तो पिण्ड प्रदान करे, लेकिन जीवित पितामह को मात्र भोजन कराये। यही शास्त्र का विधान है। मृत व्यक्ति का पिण्डदान करे तथा जीवित को भोजन कराये। परन्तु यहां सपिण्डीकरण नहीं होगा। पार्वण भी नहीं होगा। जो व्यक्ति पितृमेधाश्रित (पूर्वजों के अनुरूप) आचार पालन करता है, वह आयु, धन तथा पुत्रगण की वृद्धिलाभ करता है। इसमें संशय नहीं है। हे द्विजगण! जो व्यक्ति श्राद्धकाल में इस अध्याय का पाठ करता है, उसके पितृगण उसके द्वारा प्रदत्त अन्न का भोजन तीन युग तक करते हैं। यह मैंने पापनाशक, पुण्यवर्द्धनकारी, पितृमेधकल्प कह दिया। पवित्र मनुष्यों के लिये यह श्रवण करने योग्य है तथा श्राद्धकाल में कीर्त्तनीय है।।२०८-२१२।।

।।विंशाधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सदाचार वर्णन

व्यास उवाच

एवं सम्यग्गृहस्थेन देवताः पितरस्तथा। सम्पूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबान्धवाः॥१॥

भूतानि भृत्याः सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः।
भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये पान्थका गृहे॥२॥
सदाचाररता विप्राः साधुना गृहमेधिना।
पापं भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः॥३॥

व्यासदेव कहते हैं—एवंविध गृहस्थगण द्वारा इस प्रकार हव्य-कव्य द्वारा देवता तथा पितरों को तथा अन्न द्वारा अतिथि, बान्धव, भृत्य, भिक्षुक, याचक, पथिक, गृह में आये अन्य लोग, सदाचारी जनगण, पशु-पक्षी-पिपीलिकादि सभी प्राणियों को तृप्त करे। जो मानव नित्य-नैमित्तिक क्रिया को नहीं करता, वह तो पाप ही खाता है।।१-३।।

मुनय ऊचुः

कथितं भवता विप्र नित्यनैमित्तिकं च यत्।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं कर्म पौरुषम्॥४॥

सदाचारं मुने श्रोतुमिच्छामो वदतस्तव। यं कुर्वन्सुखमाप्नोति परत्रेह च मानवः॥५॥

मुनिगण कहते हैं—हे विप्र! आपने नित्य-नैमित्तिक कर्म विधान कह दिया। पुरुषों (मनुष्यों) हेतु नित्य, नैमित्तिक तथा काम्यरूपेण कर्म त्रिविध है। हम अब यह श्रवण करना चाहते हैं कि मानव क्या करने पर इहलोक तथा परलोक में सुखलाभ करता है, वह सदाचार कहिये।।४-५।।

व्यास उवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम्। न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा॥६॥
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये। भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते॥७॥
दुराचारो हि पुरुषो नेहाऽऽयुर्विन्दते महत्। कार्यो धर्मः सदाचार आचारस्यैव लक्षणम्॥८॥

सत्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य भो द्विजाः।
आत्मनैकमना भूत्वा तथैव परिपालयेत्॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—गृहस्थ के लिये सतत् आचार पालन करना कर्तव्य है। आचारहीन लोग इहलोक अथवा परलोक कहीं भी अपना मंगललाभ करने में समर्थ नहीं होते। जो व्यक्ति सदाचार की उपेक्षा करके यज्ञ, दान, तप करता है, उसके यज्ञ-दान-तप ऐश्वर्यप्रद नहीं होते। दुराचारी इहलोक में दीर्घायु नहीं होते। सदा

सदाचारमय धर्म करे। मैं आचार लक्षण कहता हूं। हे द्विजगण! मैं सदाचार का सत्य रूप कहता हूं। एकाग्रचित्तता के साथ सदाचार का पालन करे।।६-९।।

त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिना। तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च॥१०॥

पादेनाप्यस्य पारत्र्यं कुर्याच्छ्रेयः स्वमात्मवान्।
अर्धेन चाऽऽत्मभरणं नित्यनैमित्तिकानि च॥११॥

पादेनैव तथाऽप्यस्य मूलभूतं विवर्धयेत्। एवमाचरतो विप्रा अर्थः साफल्यमृच्छति॥१२॥

तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता। परत्रार्थस्तथैवान्यः कार्योऽत्रैव फलप्रदः॥१३॥

प्रत्यवायभयात्कामस्तथाऽन्यश्चाविरोधवान्। द्विधा कामोऽपि रचितस्त्रिवर्गायाविरोधकृत्॥१४॥

परस्परानुबन्धांश्च सर्वानेतान्विचिन्तयेत्। विपरीतानुबन्धांश्च बुध्यध्वं तान्द्विजोत्तमाः॥१५॥

धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो नाऽऽत्मार्थपीडकः।
उभाभ्यां च द्विधा कामं तेन तौ च द्विधा पुनः॥१६॥

गृहस्थ व्यक्ति त्रिवर्ग साधन यत्नतः करे। यह सिद्ध होने से गृहस्थ को इहकालीन तथा परकालीन सिद्धि मिलती है। उपार्जित अर्थ के १/४ भाग द्वारा अपना पारलौकिक हित साधन करना चाहिये। उस आय के १/२ भाग से अपना पोषण (परिवार का पोषण) तथा नित्य नैमित्तिक कार्य करे। आय का बाकी १/४ भाग मूलधन रूप से रक्षा करके बढ़ाये। हे ब्राह्मणगण! इस प्रकार का व्यवहार करने पर ही अर्थ की सफलता होती है। एवंविध विज्ञ व्यक्ति पाप निवारण हेतु धर्माचरण करे। वह धर्माचरण ऐहिक तथा पारलौकिक सुखसाधन रूप में अनुष्ठित करे। ऐसा काम जो धर्म-काम तथा अर्थ का विरोधी नहीं, यह भी दो प्रकार का माना गया है। पहला पाप से भय करने वाला तथा दूसरा सबका अविरोधी है। विपदा के भय से काम एवं अर्थकामी ऐसे उपार्जन करे, जो धर्म का अविरोधी हो। धर्म-अर्थ-काम परस्परतः सम्बन्ध कहे गये हैं, तथापि विपरीत भी हैं। जो अर्थ-धर्म में सहायक है, उस अर्थ को भी धर्म कहे। तथापि जो धर्म आत्मा तथा अर्थ का नाशक हो, वह कदापि धर्म नहीं है। धर्म तथा अर्थ के परस्परतः भेद से काम द्विविध होता है। काम भेद से अर्थ एवं धर्म भी द्विविध कहे जाते हैं।।१०-१६।।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत्।
समुत्थाय तथाऽचम्य प्रस्नातो नियतः शुचिः॥१७॥
पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम्।
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि॥१८॥

ब्राह्म मुहूर्त्त में जाग कर उठे तथा अच्छी तरह स्नान, आचमन करके पवित्र एवं संयत होकर धर्मार्थ चिन्तन करे। यहां प्रातःकालीन सन्ध्योपासना आसमान में तारे दीखने तक कर ले। सायंकालीन सन्ध्या भी सूर्य अस्त होने के पूर्व कर ले। सम्यक् समय पर यह उपासना करनी चाहिये। आपत्ति के समय भी यह न त्यागे।।१७-१८।।

असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत्। असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवा च वै द्विजाः॥१९॥

सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान्। नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वतः॥२०॥

असत्य भाषण, मिथ्या कथन तथा कटु वाक्य का प्रयोग न करे। हे द्विजगण! असत् शास्त्र, असत् तर्क तथा असत् सेवन का भी त्याग करे। नियत होकर सायं तथा प्रातः होम करे। उदयकालीन तथा अस्तकालीन सूर्य को न देखे।।१९-२०।।

केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम्। पूर्वाह्न एवं कार्याणि देवतानां च तर्पणम्॥२१॥
ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि। न विण्मूत्रमनुष्ठेयं न च कृष्टे न गोव्रजे॥२२॥
नग्नां परस्त्रियं नेक्षन्न पश्येदात्मनः शकृत्। उदक्यादर्शनस्पर्शमेवं सम्भाषणं तथा॥२३॥
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा मैथुनं वा समाचरेत्। नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मसपालिकाः॥२४॥

तुषाङ्गारविशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च।
नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि वस्त्राणि वा भुवि॥२५॥
पितृदेवमनुष्याणां भूतानां च तथाऽर्चनम्।
कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति॥२६॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि स्वाचान्तो वाग्यतः शुचिः।
भुञ्जीत चाऽन्नं तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः॥२७॥

उपघातमृते दोषान्नान्नस्योदीरयेद्बुधः। प्रत्यक्षलवणं वर्ज्यमन्नमुच्छिष्टमेव च॥२८॥

न गच्छन्न च तिष्ठन्वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान्।
कुर्वीत चैवमुच्छिष्टं न किञ्चिदपि भक्षयेत्॥२९॥
उच्छिष्टो नालपेत्किञ्चित्स्वाध्यायं न विवर्जयेत्।
न पश्येच्च रविं चेन्दुं नक्षत्राणि च कामतः॥३०॥

बाल संवारना, दर्पण में मुखावलोकन, दन्तधावन, आंखों में अंजन लगाना, देवतर्पण, पूर्वाह्न में ही सम्पन्न करे। ग्राम, वासस्थान, तीर्थ तथा खेत के मार्ग के बगल में, जोती भूमि में, गोचर भूमि में मल-मूत्र त्याग न करे। नग्ना पराई स्त्री तथा अपने मल को न देखे। रजस्वला को देखना, स्पर्श करना, बातें करना वर्जित कार्य है। जल में मलमूत्र त्याग भी न करे। मल-मूत्र, केश, भस्म, खपड़ा, भूसी, अंगार, रस्सी, वस्त्र अथवा गले द्रव्य पर खड़ा होना निषिद्ध है। मार्ग में भूतलस्थ पत्ते पर अथवा वस्त्र पर न बैठे। गृहस्थ व्यक्ति के लिये पिता, देव, मनुष्य तथा अन्य प्राणीगण का सत्कार अपने धन की शक्ति के अनुसार करना चाहिये। तब वह व्यक्ति आहार ग्रहण करे। मनुष्य को चाहिये कि सदा आचमनोपरान्त पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर मुख करके जानु नत करके (पालथी माल कर) बैठे। भोजन काल में वाणी संयम एवं तद्गत् चित्त होकर भोजन करे। बुद्धिमान् व्यक्ति अन्न के उपघात अथवा उससे क्षति होने के अतिरिक्त अन्न के किसी दोष को न कहे। अधिक लवण मिश्रित भोजन त्यागे। चलते हुये अथवा खड़े होकर मलमूत्र त्याग न करे। आचमन किये बिना उच्छिष्ट मुख कुछ भी भोजन न करे। उच्छिष्ट मुख वार्त्तालापादि न करे। कोई पाठ भी न करे। बिना प्रयोजन सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र न देखे।।२१-३०।।

भिन्नासनं च शय्यां च भाजनं च विवर्जयेत्। गुरूणामासनं देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम्॥३१॥
अनुकूलं तथाऽऽलापमभिकुर्वीत बुद्धिमान्। तत्रानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न सञ्चरेत्॥३२॥
नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम्।
नाऽऽवाहयेद्द्विजाग्ननौ होमं कुर्वीत बुद्धिमान्॥३३॥

भग्न आसन, भग्न शय्या, भग्न पात्र वर्जित करे। गुरुगण आयें तब उठकर सत्कार करके उनको आसन प्रदान करे। बुद्धिमान् मानव उनके साथ प्रीतिकर आलाप करे। उनके जाते समय उनके साथ कुछ दूरी तक जाना चाहिये। उनके प्रति कोई प्रतिकूल आचरण न करे। बुद्धिमान् मानव उत्तरीय कंधे पर धारण किये बिना भोजन अथवा देवार्चन न करे। तब अग्नि में होम भी न करे तथा ब्राह्मणों को भी न बुलाये।।३१-३३।।

न स्नायीत नरो नग्नो न शयीत कदाचन।
न पाणिभ्यामुभाभ्यां तु कण्डूयेत शिरस्तथा॥३४॥
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं बुधैः।
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदुपस्पृशेत्॥३५॥
अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायं च विवर्जयेत्। ब्राह्मणानलगोसूर्यान्नावमन्येत्कदाचन॥३६॥
उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखः। आबाधासु यथाकामं कुर्यान्मूत्रपुरीषयोः॥३७॥
दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैन प्रसादयेत्। परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम्॥३८॥
पन्था देयो ब्राह्मणानां रामो दुःखातुरस्य च।
विद्याधिकस्य गर्भिण्या रोगार्तस्य महीयतः॥३९॥
मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च। देवालयं चैद्यतरुं तथैव च चतुष्पथम्॥४०॥
विद्याधिकं गुरुं चैव बुधः कुर्यात्प्रदक्षिणम्। उपानद्वस्त्रमाल्यादि धृतमन्यैर्न धारयेत्॥४१॥

नग्न स्थिति में शयन अथवा स्नान न करे। एक साथ दोनों हाथों से शिर न खुजलाये। बिना कारण मस्तक धोना नहीं चाहिये। मस्तक धोने के उपरान्त देह में तैल न लगाये। जब अनध्याय वाली तिथि हो तब अध्ययन न करे। ब्राह्मण, अग्नि, गौ तथा सूर्य की अवमानना कभी न करे। दिन में मलमूत्र त्याग काल में उत्तर मुख रहे। रात्रि में मलमूत्र त्याग काल में दक्षिणमुख रहे। जहां कहीं आतंक की आशंका न हो, वहीं मलमूत्र त्याग करना चाहिये। गुरु के दुष्कृत्य को कहीं प्रकट न करे। यदि क्रोधित हो जायें, तब उनको प्रसन्न करना चाहिये। यदि कोई गुरु निन्दा करता हो, उसे श्रवण न करे। मार्ग में यदि सामने ब्राह्मण, राजा, भूखा, विद्वान्, मत्त, रोगी, मान्य व्यक्ति, मूक, अन्धा, बधिर, गर्भिणी तथा उन्मत्त व्यक्ति पड़ जाये, तब उनके लिये मार्ग छोड़ कर बगल हट जाये। जो विद्वान् है, वह देवालय, ग्राम की सीमा पर स्थित वृक्ष, चौराहा, अपने से अधिक विद्यायुक्त व्यक्ति तथा गुरु की प्रदक्षिणा करे। अन्य द्वारा प्रयुक्त जूता, वस्त्र, माला आदि का उपयोग कदापि न करे।।३४-४१।।

चतुर्दश्यां तथाऽष्टम्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु।
तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत्॥४२॥

नोत्क्षिप्ताबहुजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन। न चापि विक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाऽऽक्रमेत्।४३॥
पुंश्चल्याः कृतकार्यस्य बालस्य पतितस्य च। मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्जयेत्॥४४॥
दम्भाभिमानं तैक्ष्ण्यं च न कुर्वीत विचक्षणः।
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपानपि वा तथा॥४५॥
न्यूनाङ्गांश्चाधनांश्चैव नोपहासेन दूषयेत्। परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं शिष्यपुत्रयोः॥४६॥

चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावस्या तथा अन्य पर्वकाल में तैल मालिश, स्त्री संग तथा भोगविलास वर्जित है। प्राज्ञ जन हाथ-पैर फैलाकर न बैठे अथवा पैरों को फैलाये भी नहीं। एक पैर पर दूसरा पैर न रखे। वेश्या, कृतकार्य बालक तथा पतित व्यक्ति से मर्मभेदी बातें न कहे। इनके प्रति घृणा अथवा आक्रोश भी प्रकट न करे। बुद्धिमान् लोग दम्भ, अभिमान तथा रूढ़ता त्यागें। मूर्ख, उन्मत्त, वासनासक्त, विरूप, अंगहीन तथा दीनों का उपहास न करें। शिक्षा देने के समय पुत्र तथा शिष्य के अतिरिक्त किसी के निमित्त दण्ड उठाने का उद्यम न करें।।४२-४६।।

तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाऽऽकृष्य चाऽऽसनम्।
संयावं कृशरं मांसं नाऽऽत्मार्थमुपसाधयेत्॥४७॥
सायं प्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम्।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि वाग्यतो दन्तधावनम्॥४८॥

पैरों से आसन कदापि न खींचे। मात्र अपने भोजनार्थ तिल का लड्डू, हलुआ, खिचड़ी तथा मांस न बनाये। सांय-प्रातः दोनों समय अतिथि सत्कारोपरान्त भोजन करे। पूर्व अथवा उत्तरमुख करके मौनी होकर दन्तधावन करे।।४७-४८।।

कुर्वीत सततं विप्रा वर्जयेद्वर्ज्यवीरुधम्।
नोदक्शिराः स्वपेज्जातु न च प्रत्यक्शिरा नरः॥४९॥
शिरस्त्वागस्त्यामाधाय शयीताथ पुरन्दरीम्। न तु गन्धवतीष्वप्सु शयीत न तथोषसि॥५०॥

हे विप्रगण! निषिद्ध वृक्ष का काष्ठ दन्तधावनार्थ नहीं लेना चाहिये। उत्तर तथा पश्चिम की ओर शिर करके कदापि शयन न करे। सदा पूर्व एवं दक्षिण की ओर सिर रखकर शयन करे। दुर्गन्धित तथा जलयुक्त भूमि पर शयन न करे। प्रातःकाल में शयन नहीं करना चाहिये।।४९-५०।।

उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम्। अपमृज्यान्न वस्त्रान्तैर्गात्राण्यम्बरपाणिभिः॥५१॥
न चावधूनयेत्केशान्वाससी न च निर्धुनेत्। अनुलेपनमादद्यान्नास्नातः कर्हिचिद्बुधः॥५२॥
न चापि रक्तवासा स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा।
न च कुर्याद्विपर्यासं वाससोर्नापि भूषयोः॥५३॥
वर्ज्यं च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतं च यत्। कीटकेशावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम्॥५४॥
अवलीढं शुना चैव सारोद्धरणदूषितम्। पृष्ठमांसं वृथामांसं वर्ज्यमांसं च वर्जयेत्॥५५॥

दिन में स्नान उत्तम है, तथापि यदि ग्रहण हो, तब रात में भी स्नान विहित है। ग्रहणोपरान्त स्नान विहित है। दिन में भी ग्रहणोपरान्त स्नान करे। वस्त्र के छोर को हाथ से पकड़ कर उससे शरीर न पोछे। केशों को हिलाये नहीं। एक साथ दो वस्त्र लेकर धोते समय न पटके। स्नान रहित स्थिति में कदापि अनुलेप न लगाये। रक्तवर्ण वस्त्र धारण न करे। काला, धब्बा वाला भी वस्त्र धारण न करे। दो वस्त्र तथा दो आभूषण में उलट फेर न करे। जिसमें किनारे न हों तथा अत्यन्त जीर्ण हो, ऐसा वस्त्र न पहने। कीड़ा तथा केशयुक्त, जिसे कुत्तों ने देखा तथा चखा हो, सारहीन तथा दूषित मांस न खाये। पीठ का मांस, व्यर्थ मांस तथा निषिद्ध मांस भक्षण न करे।।५१-५५।।

न भक्षयेच्च सततं प्रत्यक्षं लवणं नरः।
वर्ज्यं चिरोषितं विप्राः शुष्कं पर्युषितं च यत्।।५६।।

पिष्टशाकेक्षुपयसां विकारा द्विजसत्तमाः। तथा मांसविकाराश्च नैव वर्ज्याश्चिरोषिताः।।५७।।

केवल लवण न खाये। विप्रगण शुष्क, बासी, बहुत दिन का बना न खाये। उसे वर्जित करे। हे द्विजसत्तम! लेकिन पिष्टशाक, ईख तथा पायस तथा मांस विकार पुराना होने पर भी वर्जित नहीं है।।५७।।

उदयास्तमने भानोः शयनं च विवर्जयेत्। नास्नातो नैव संविष्टो न चैवान्यमना नरः।।५८।।
न चैव शयने नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दकृत्। प्रेष्याणामप्रदायाथ न भुञ्जीत कदाचन।।५९।।
भुञ्जीत पुरुषः स्नातः सायंप्रातर्यथाविधि। परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता।।६०।।
इष्टापूर्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम्। न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते।।६१।।

भानु के उदय तथा अस्तकाल में शयन न करे। बिना स्नान न रहे। अन्यमनस्क होकर नहीं रहना चाहिये। पैर धोये बिना शय्या पर न रहे। भूमि पर न बैठे। शोर न मचाये। सेवकों को अन्न प्रदान किये बिना कभी भोजन न करे। पुरुष सविधि स्नानोपरान्त दिन तथा रात्रि के समय भोजन ग्रहण करे। विद्वान् व्यक्ति कदापि परदारागमन न करें। अन्य की पत्नी से गमन करने वाला व्यक्ति अपने इष्ट-आपूर्त कर्म का तथा आयु का क्षय करता है। व्यक्ति के लिये परदारागमन की तरह का आयुष्य कम करने वाला कारण अन्य कोई नहीं है।।५६-६१।।

यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्शनम्। देवाग्निपितृकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम्।।६२।।
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम्। अफेनशब्दगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात्।।६३।।

आचामेच्चैव तद्वच्च प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकास्थलात् ।।६४।।
कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत्पञ्च वै मृदः।
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहितः।।६५।।
अन्तर्जानुस्तथाऽऽचामेत्त्रिश्चतुर्वाऽपि वै नरः।
परिमृज्य द्विरावर्त्य खानि मूर्धानमेव च।।६६।।

सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचिः।
क्षुतेऽवलीढे वाते च तथा निष्ठीवनादिषु॥६७॥
कुर्यादाचमनं स्पर्शे वाऽस्पृष्टस्यार्कदर्शनम्।
कुर्वीताऽऽलम्भनं चापि दक्षिणश्रवणस्य च॥६८॥
यथाविभवतो ह्येतत्पूर्वाभावे ततः परम्। न विद्यमाने पूर्वोक्त उत्तरप्राप्तिरिष्यते॥६९॥

देवकार्य, अग्नि (होम), पितृकार्य, गुरुवन्दना के पूर्व यथाविधि आचमन करना चाहिये। पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके गन्ध एवं फेन रहित स्वादु जल से बिना जलपान का शब्द किये आचमन करे। जल में से, निवास स्थान से, दीमक की बांबी से अथवा चूहे द्वारा खोदे बिल की मृत्तिका एवं शौचकार्य से बची मृत्तिका कदापि नहीं लेना चाहिये। हाथ-पैर धोकर समाहित चित्त से पद्मासनासीन होकर तीन-चार आचमन करने के पश्चात् ओष्ठद्वय का दो बार मार्जन करे। तत्पश्चात् मस्तक, नाक, कान, मुख स्पर्श करे। सम्यक् रूप से जल द्वारा आचमन सम्पन्न करने से पवित्रता प्राप्त करने के पश्चात् क्रिया करनी चाहिये। छींकने, थूकने तथा अधोवायु त्यागने के उपरान्त आचमन कर्त्तव्य है अथवा सूर्य को देखे किंवा दाहिने कान का स्पर्श करे। इनमें यदि आचमन न कर सके तब सूर्य को देखे। सूर्य जब उदित न हों अथवा दिखलाई न पड़ें, तब दाहिना कान छूने से शुद्धि होगी अर्थात् जब पहले वाला विकल्प (आचमन) हो सके तब अन्य विकल्प (सूर्यदर्शन, कर्णस्पर्श) न करे।।६२-६९।।

न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं नाऽऽत्मनो देहताडनम्।
स्वापेऽध्वनि तथा भुञ्जन्स्वाध्यायं च विवर्जयेत्॥७०॥
सन्ध्यायां मैथुनं चापि तथा प्रस्थानमेव च।
तथाऽपराह्णे कुर्वीत श्रद्धया पितृतर्पणम्॥७१॥
शिरः स्नानं च कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि च।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकर्म च कारयेत्॥७२॥
व्यङ्गिनीं वर्जयेत्कन्यां कुलजां वाऽप्यरोगिणीम्।
उद्वहेत्पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीं तथा॥७३॥

दांतों से दांत न घिसे। अपने शरीर पर ताल न दे। मार्ग में चलते हुये अथवा आहार करते पढ़ना नहीं चाहिये। सन्ध्या काल में (जब दोनों प्रहर मिलते हैं) कहीं गमन (जाना) तथा मैथुन करना वर्जित हैं। पितृतर्पण श्रद्धा पूर्वक करे। दैव-पितृकार्य, शिरःस्नान तथा क्षौर कार्य पूर्व अथवा उत्तरमुखी करे। हीनांग (कम अंग वाली) अथवा अधिकांग कन्या भले ही उच्च कुल की क्यों न हो तथा निरोग क्यों न हो, वह विवाहार्थ त्याज्य है। जो कन्या दम्पति की सप्तम किंवा पंचम सन्तान हो, उससे विवाह न करे (यह अर्थ विवादित है। विद्वान् लोग इस पर विचार करें)।।७०-७३।।

रक्षेद्दारांस्त्यजेदीर्ष्यां तथाऽह्नि स्वप्नमैथुने। परोपतापकं कर्म जन्तुपीडां च सर्वदा॥७४॥
उदक्या सर्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम्। स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीं चापि वर्जयेत्॥७५॥

ततः षष्ठ्यां व्रजेद्रात्र्यां ज्येष्ठयुग्मासु रात्रिषु।
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु॥७६॥

स्त्री की सदैव रक्षा करनी चाहिये। ईर्ष्या भी न करे। दिन में सोना अथवा स्त्रीप्रसंग करना त्याज्य माना गया है। अन्य को कष्ट, दुःख, चिन्ता देना त्याज्य माना जाता है। इसका सर्वदा त्याग करे। सभी वर्ण वाले लोग चार रात्रि पर्यन्त ऋतुमती नारी का स्पर्श भी न करें। यदि कन्या का जन्म नहीं चाहें, तब पंचम रात्रि में उस स्त्री से मैथुन न करें। षष्ठ रात्रि में स्त्री संग करें। युग्म रात्रि में (छठे, आठवें, दसवें इत्यादि) स्त्री संग से पुत्र जन्म तथा अयुग्म रात्रि में (पंचम, सप्तम नवम इत्यादि) स्त्री प्रसंग करने से कन्या जन्म होता है।।७४-७६।।

विधर्मिणो वै पर्वादौ संध्याकालेषु षण्ढकाः।
क्षुरकर्मणि रिक्तां वै वर्जयीत विचक्षणः॥७७॥

पर्व आदि निषिद्ध काल में स्त्री संग से विधर्मी पुत्र होगा। सन्ध्याकालीन स्त्री संग से नपुंसक सन्तान का जन्म होगा। क्षौर कार्य हेतु रिक्ता तिथियों (चतुर्थी, चतुर्दशी, नवमी) का वर्जन करे।।७७।।

ब्रुवतामविनीतानां न श्रोतव्यं कदाचन। न चोत्कृष्टासनं देयमनुत्कृष्टस्य चाऽऽदरात्॥७८॥
क्षुरकर्मणि चा (वा) न्ते च स्त्रीसंभोगे च भो द्विजाः।
स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः कूटभूमिमुपेत्य च॥७९॥
देववेदद्विजातीनां साधुसत्यमहात्मनाम्। गुरोः पतिव्रतानां च ब्रह्मयज्ञतपस्विनाम्॥८०॥
परिवादं न कुर्वीत परिहासं च भो द्विजाः। धवलाम्बरसंवीतः सितपुष्पविभूषितः॥८१॥
सदा माङ्गल्यवेषः स्यान्न वाऽमाङ्गल्यवान्भवेत्।
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः॥८२॥
गच्छेन्मैत्रीमशीलेन न वयोजातिदूषितैः। न चातिव्ययशीलैश्च पुरुषैर्नैव वैरिभिः॥८३॥
कायाक्षमैर्निन्दितैर्न न चैव विटसङ्गिभिः। निःस्वैर्न वादैकपरैर्नैश्चान्यस्तथाऽधमैः॥८४॥

अविनीत की कोई बातों को न सुने। जो व्यक्ति निम्न कोटि वाला हो, उसे उत्तम आसन नहीं देना चाहिये। हे ब्राह्मणवृन्द! क्षौर कार्य, वमन, स्त्रीगमन करने पर तैल लगाकर स्नान करे। मलिन जगह जाने पर जो वस्त्र पहने हो, उसी के साथ स्नान करे। वेद, देवता, यज्ञ, पतिव्रता, ईश्वर, ब्राह्मण, साधु, सत्य वाक्य, महात्मा तथा गुरु का उपहास न करे। इनकी निन्दा करना भी वर्जित है। हे द्विजगण! व्यक्ति स्वच्छ परिधान धारण करे। श्वेत पुष्प से भूषित रहे। सदा सौम्य वेश धारण किये रहना चाहिये। अमांगलिक वेश तो सदा वर्जनीय है। पतित, उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, अविनीत, शीलरहित, वय तथा जातिदूषित, कंजूस, वैरी, कार्य में अक्षम, निंदित, अधमों से मित्रता रखने वाले से कदापि बन्धुत्व एवं मित्रत्व न रखे। वेश्यागमनकारी, दरिद्र, निन्दा करने वाले तथा अधमों से कदापि मित्रत्व भाव न करे।।७८-८४।।

सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह। उत्तिष्ठेद्विभवाच्चैनानर्चयेद्गृहमागतान्॥८५॥

यथाविभवतो विप्राः प्रतिसंवत्सरोषितान्। सम्यग्गृहेऽर्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात्॥८६॥

सम्पूजयेत्तथा वह्नौ प्रदद्याच्चाऽऽहुतीः क्रमात्।
प्रथमां ब्राह्मणे दद्यात्प्रजानां पतये ततः॥८७॥
तृतीयां चैव गृह्येभ्यः कश्यपाय तथाऽपराम्।
ततोऽनुमतये दद्याद्द्याद्गृहु (द्गृह) बलिं ततः॥८८॥

जब सुहृद, दीक्षित, राजा, स्नातक, श्वसुर गृह में आयें, तब उठ कर तथा अपनी धनशक्ति के अनुसार उनका स्वागत करना चाहिये। हे ब्राह्मणवृन्द! वर्ष पर्यन्त गृहागत सुहृद आदि अपनी धनशक्ति के अनुरूप सादर स्वागत करे। तदनन्तर अग्नि में आहुति प्रदान करना चाहिये। यथा—प्रथमाहुति ब्रह्मा के निमित्त, द्वितीय प्रजापति के निमित्त, तृतीय घर वालों को, चतुर्थ कश्यप को प्रदान करे (यहां "घरवालों" उचित अर्थ प्रतीत नहीं होता। पाठान्तर है। "गुह्येभ्यः" अतः विद्वद् वर्ग यथायोग्य अर्थ ग्रहण करे)। तदनन्तर पंचम आहुति अनुमति को प्रदान करे।।८५-८८।।

पूर्वं ख्याता मया या तु नित्यक्रमविधौ क्रिया।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वदत श्रृणुत द्विजाः॥८९॥
यथास्थानविभागं तु देवानुद्दिश्य वै पृथक्।
पर्जन्यापोधरित्रीणां दद्यात्तु मणिके त्रयम्॥९०॥
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादिषु क्रमात्।
ब्राह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमात्॥९१॥

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च। उषसे भूतपतये दद्याद्वोत्तरतः शुचिः॥९२॥

स्वधा च नम इत्युक्त्वा पितृभ्यश्चैव दक्षिणे।
कृत्वाऽपसव्यं वायव्यां यक्ष्मैतत्तेति संवदन्॥९३॥
अन्नावशेषमिश्रं वै तोयं दद्याद्यथाविधि।
देवानां च ततः कुर्याद्ब्राह्मणानां नमस्क्रियाम्॥९४॥

मैंने पूर्व में जिस नित्य क्रिया प्रकरण के नाना अनुष्ठान का वर्णन किया है, उन सबके अनन्तर वैश्वदेव करे। हे ब्राह्मणों! उसका क्रम सुनिये। स्थान विभाग के अनुसार देवगण के उद्देश्य से यह करे। पूर्व की ओर पर्जन्य, जल एवं धरती को, वायुकोण में वायु को बलि देकर पूर्वादि दिक् समूह को भी एक-एक करके बलि देना चाहिये। तदनन्तर उत्तर में ब्रह्मा, अन्तरिक्ष, सूर्य, विश्वेदेव, विश्वभूत, उषस तथा भूतपति को बलि प्रदान करे। दक्षिण में अपसव्य क्रमेण "पितृभ्यः स्वधा च नमः" मन्त्र से पितरों को बलि प्रदान करे। तब वायु कोण में "यक्ष्मै तत्त" कहते अवशेष बचा अन्न जल प्रदान करे। इसके बाद देवता एवं ब्राह्मण को प्रणाम निवेदन करना चाहिये।।८९-९४।।

अङ्गुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य च। एतद्ब्रह्ममिति ख्यातं तीर्थमाचमनाय वै॥९५॥

तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्र्यं तीर्थमुदाहृतम्। पितृणां तेन तोयानि दद्यान्नान्दीमुखादृते॥९६॥
अङ्गुल्यग्रे तथा दैवं तेन दिव्यक्रियाविधिः। तीर्थं कनिष्ठिकामूले कायं तत्र प्रजापतेः॥९७॥

एवमेभिः सदा तीर्थैर्विधानं पितृभिः सह।
सदा कार्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थैः कदाचन॥९८॥
ब्राह्मेणाऽऽचमनं शस्तं पैत्र्यं पित्र्येण सर्वदा।
देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्यं जिते (त्यजले) न च॥९९॥
नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम्।
प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित्प्रजापतेः॥१००॥

दक्षिण हथेली की निम्न भाग वाली रेखा ब्राह्मतीर्थ है। यह आचमनार्थ विहित है। तर्जनी एवं अंगूठे के बीच पितृतीर्थ है। नान्दीमुख पितृगण को छोड़कर अन्य पितृगण का तर्पण पितृतीर्थ से करे। अंगुलियों का अग्रभाग दैवतीर्थ है। यह दैवकार्य हेतु विहित है। कनिष्ठा मूल प्रजापति का कायतीर्थ है। इन तीर्थों द्वारा सतत् उक्त पितृगण तथा देवगण का कार्य करे। अन्य तीर्थ द्वारा यह कार्य उचित नहीं है। ब्रह्मतीर्थ से आचमन, पैत्रतीर्थ से पितृकार्य, दैव तीर्थ से दैवकृत्य, प्राजापत्य तीर्थ से नान्दीमुख श्राद्ध तथा पितरों को पिण्डदानादि करना प्रशस्त माना गया है। प्राज्ञ व्यक्ति लोग प्राजापत्य तीर्थ से प्रजापति सम्बन्धित कार्य करें।।९५-१००।।

युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः।
गुरुदेवपितृन्विप्रान्न च पादौ प्रसारयेत्॥१०१॥
नाऽऽचक्षीत धयन्तीं गां जलं नाञ्जलिना पिबेत्।
शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः।
न विलम्बेत मेधावी न मुखेनानलं धमेत्॥१०२॥

बुद्धिमान् लोग कदापि एक साथ अग्नि तथा जल धारण न करे। गुरु, देवता, ब्राह्मण तथा पितृगण की ओर कदापि पैरों को न फैलाये। गौ जब जल आदि पी रही हो, तब जल का स्वामी उसे न रोके। कोई जलस्वामी से शिकायत भी न करे कि गौ जल पी रही है अथवा बछड़े को दुग्धपान करा रही है। अंजलि से जल नहीं पीना चाहिये। शौच कार्य चाहे अल्प हो अथवा अधिक हो, उसमें विलम्ब न करे। मुख से अग्नि कदापि न फूंके।।१०१-१०२।।

तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्।
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी॥१०३॥
जितभृत्यो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः।
तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम्॥१०४॥
पौराः सुसंहता यत्र सततं न्यायवर्तिनः।
शान्ता मत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः॥१०५॥

यस्मिन्कृषीवला राष्ट्रे प्रायशो नातिमानिनः।
यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षणः॥१०६॥

हे विप्रगण! उस ग्राम अथवा नगर में कदापि निवास न करे, जहां ऋणदाता, वैद्य, श्रोत्रिय तथा जलयुक्त नदी न हो। जिसके भृत्य वश में हैं, जो बली तथा धार्मिक हैं, प्राज्ञ व्यक्ति ऐसे ही राजा के राज्य में निवास करे। निन्दित राजा के राज्य में रहने पर सुख कैसे मिलेगा? पुरवासी लोग जहां यथायोग्य रूप से एक साथ रहते हों, सतत् न्याय का पालन करते हों, शान्त प्रकृति तथा मात्सर्य रहित हों, वहीं निवास करना उत्तम है। जिस राज्य में कृषक लोग गर्व न करें, जहां नाना औषधियां हों, बुद्धिमान् व्यक्ति वहीं रहे।।१०३-१०६।।

तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा। जिगीषुः पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः॥१०७॥
वसेन्नित्यं सुशीलेषु सहाचारिषु पण्डितः। यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यप्रदा मही॥१०८॥
इत्येतत्कथितं विप्रा मया वो हितकाम्यया।
अतःपरं प्रवक्ष्यामि भक्ष्यभोज्यविधिक्रियाम्॥१०९॥

हे ब्राह्मणों! जहां लोग सदा विजय चाहने वाले, पुराने शत्रु हों, सदा उत्सवरत रहते हों, वहां कदापि निवास न करे। जहां का राजा अपराजेय हो, भूमि फसलों वाली हो, राजा उद्धत न हों, वहीं रहना चाहिये। हे ब्राह्मणों! मैंने आप सब की हितकामना से यह सब कहा। अब भक्ष्य-भोज्य विधान सुनें।।१०७-१०९।।

भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसम्भृतम्। अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः॥११०॥
शशकः कच्छपो गोधा श्वाविन्मत्स्योऽथ शल्यकः।
भक्ष्याश्चैते तथा वर्ज्यो ग्रामशूकरकुक्कुटौ॥१११॥
पितृदेवादिशेषं च श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया।
प्रोक्षितं चौषधार्थं च खादन्मांसं न दुष्यति॥११२॥

दीर्घकाल से रखा गया स्नेहयुक्त (घृतादि युक्त) भक्ष्य पुराना होने पर भी ग्राह्य है। स्नेह रहित गेहूं, जौ, घी, मट्ठा, प्रभृति ग्राह्य है। ग्राम्य शूकर तथा मुर्गे अभक्ष्य हैं। शशक, कच्छप, गोह, साही, मत्स्य भक्ष्य हैं। श्राद्धकार्य में पितृ-देव कार्य से जो मांस बचा हो, ब्राह्मण हेतु एवं औषधि हेतु जो मांस लाया गया, उसे संस्कृत करके भक्षण करे। वह दोषहीन कहा गया है।।११०-११२।।

शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम्।
शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम्॥११३॥
मणिवस्त्रप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च।
पात्राणां चमसानां च अम्बुना शौचमिष्यते॥११४॥
तथाऽश्मकानां तोयेन अश्मसङ्घर्षणेन च।
सस्नेहानां च पात्राणां शुद्धिरुष्णेन वारिणा॥११५॥

शंख, पत्थर, स्वर्ण, चांदी, रज्जु, वस्त्र, शाक, मूल, फल, बांस के पात्र, मृगचर्मादि, मणि, मूंगा,

मोती जल से धौत होकर पवित्र हो जाते हैं। पत्थर को पत्थरों से घर्षित करके अथवा प्रक्षालन करके शुद्ध करे। स्नेहाक्त (चिकने) पात्र गर्म जल से शुद्ध होते हैं।।११३-११५।।

शूर्पाणामजिनानां च मुशलोलूखलस्य च।
संहतानां च वस्त्राणां प्रोक्षणात्सञ्चयस्य च॥११६॥
वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते। आविकानां समस्तानां केशानां चैवमिष्यते॥११७॥
सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः।
शोधनं चैव भवति उपघातवतां सदा॥११८॥
तथा कार्पासिकानां च शुद्धि स्याज्जलभस्मना।
दारुदन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते॥११९॥
पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानाममेध्यता।
शुद्धं भैक्ष्यं कारुहस्तः पण्यं योषिन्मुखं तथा॥१२०॥
रथ्यागमनविज्ञानं दासवर्गेण संस्कृतम्। प्राक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु॥१२१॥
अन्तः प्रभूतं बालं च वृद्धान्तरविचेष्टितम्।
कर्मान्तागारशालाश्च स्तनद्वयं शुचि स्त्रियाः॥१२२॥
शुचयश्च तथैवाऽऽपः स्त्रवन्त्यो गन्धवर्जिताः। भूमिर्विशुद्धते कालाद्दाहमार्जनगोकुलैः॥१२३॥
लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्म सम्मार्जनादिना। केशकीटावपन्ने च गोघ्राते मक्षिकान्विते॥१२४॥
मृदम्बु भस्म चाप्यन्ने प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये।
औदुम्बराणामम्लेन वारिणा त्रपुसीसयोः॥१२५॥
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च।
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च॥१२६॥
अन्येषां चैव द्रव्याणां वर्णगन्धांश्च हारयेत्।
शुचि मांसं तु चाण्डालक्रव्यादैर्विनिपातितम्॥१२७॥

सूप, मृगचर्म, ऊखल-मूषल, सिला वस्त्र, छाल (वृक्ष की छाल), भेड़ का बाल जल से शुद्ध होता है। सरसों किंवा तिल के कल्क से (काढ़े से) अत्यन्त उपघात वाले शुद्ध हो जाते हैं। कपास के वस्त्र की शुद्धि जल अथवा भस्म से होती है। काष्ठ, दान्त, अस्थि तथा सींग से बने द्रव्य की शुद्धि उनको छीलने से हो जाती है। मिट्टी के पात्र सभी तपाने से शुद्धि प्राप्त हो जाते हैं। भिक्षा, शिल्पकार का हाथ, दुकान में बिक्री हेतु रक्षित द्रव्य, स्त्रियों का मुख, सेवकों द्वारा स्वच्छीकृत मार्ग शुद्ध माना गया है। पहले जो प्रशंसित है, वह सुदीर्घकाल अतिवाहित होने पर भी शुद्ध वस्तु बनी रहती है। अनेक वस्तु से आवरित होने के कारण जो अशुचि (अपवित्रता रहित हो) रहित, लघु वस्तु जिसे अशुद्ध हुये दीर्घकाल बीत गया हो, शरीर में युक्त केश, वृद्ध तथा आतुर लोगों का आचरण, कर्मकार का गृह (अथवा जहां सत्कर्म किये गये हों, वह गृह) स्त्री के

उभय स्तन, शुद्ध जाना जाये। दुर्गन्ध रहित प्रवहमान जल (नदी जल आदि) शुद्ध है। दाह, मार्जन तथा गौओं के विचरण से भूमि शुद्ध होती है। लेप, झाड़ू-सफाई जल से धोने से चूना-सफेदी कराने से गृह शुद्ध होता है। केश, कीट अथवा मक्खी गिरे अथवा गौओं ने सूंघ लिया हो, ऐसे अन्न की शुद्धि के लिये मिट्टी, भस्म, जल उस पर छिड़के। ताम्रपात्र खटाई से, रांगा तथा शीशा धातु का पात्र जल से तथा कांस्य पात्र भस्म-जल से शुद्ध होते हैं। अमेध्य (अपवित्र) वस्तु से मिट्टी एवं जल से दुर्गन्ध मिटाये। वह शुद्ध होगी। साधारण अपवित्र वस्तु भी विवर्णता तथा दुर्गन्ध हटा देने पर शुद्ध हो जाती है। चाण्डाल तथा व्याध द्वारा हत होने पर भी वह पशु मांस शुद्ध कहा गया है।।११६-१२७।।

रथ्यागतं च तैलादि शुचि गोतृप्तिदं पयः।
रजोऽग्निरश्वगोछायारश्मयः पवनो मही॥१२८॥
विप्लुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः।
अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गोर्वत्सस्य चाऽऽननम्॥१२९॥
मातुःप्रस्त्रवणे (णं) मेध्यं शकुनिः फलपातने।
आसनं शयनं यानं तटौ नद्यास्तृणानि च॥१३०॥
सोमसूर्यांशुपवनैः शुध्यन्ते तानि पण्यवत्।
रथ्यापसर्पणे स्नाने क्षुपानानां च कर्मसु॥१३१॥
आचामेत यथान्यायं वाससः परिधापने।
स्पृष्टानामथ संस्पर्शैर्दिरथ्याकर्दमाम्भसि॥१३२॥
पक्वेष्टकचितानां च मेध्यता वायुसंश्रयात्।
प्रभूतोपहतादन्नदग्रमुद्धृत्य सन्त्यजेत्॥१३३॥
शेषस्य प्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा।
उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभक्ताशिनो भवेत्॥१३४॥

राजमार्ग पर तेल आदि पवित्र माने गये हैं। गौ को तृप्त करने वाला जल भी पवित्र है। धूल, अग्नि, अश्व, गौ, छाया, किरण, वायु, भूमि, वायु में उड़ रहे जल के कण शुद्ध हैं। मक्खी आदि दुष्ट संग (स्पर्श) से वस्तु दूषित नहीं होती। बकरी तथा अश्व का मुख पवित्र माना है। बछड़ा तथा गौ का मुख अशुद्ध है। माता के स्तन से टपका दुग्ध शुद्ध है। फल गिराने वाला पक्षी पवित्र है अर्थात् पक्षी द्वारा वृक्ष से पातित फल शुद्ध है। ये सब वस्तु सूर्य-चन्द्र किरण से पवित्र हो जाती हैं, यथा—आसन, शय्या, वाहन, नदी का तट तथा तृण। मार्ग पर चलने, स्नान काल में, भोज्य-पेय ग्रहण काल में, वस्त्र धारण के समय सविधि आचमन करे। यदि जाते समय गली आदि में तथा गन्दे जल के कीचड़ का स्पर्श हो जाये, तब वायु से शुद्धि हो जाती है। पके ईंटों से निर्मित वस्तु वायु से पवित्र होती है। जो अन्न नष्ट हो रहा हो, उसका अग्रभाग फेंक कर बाकी को जल से धोना होगा। जाने-अनजाने जो दूषित भात भक्षण कर लेता है, वह त्रिरात्र उपवास से शुद्ध हो जायेगा।।१२८-१३४।।

अज्ञाने ज्ञानपूर्वे तु तद्दोषोपशमे न तु।
उदक्यां वावलग्नां च सूतिकान्त्यावसायिनः॥१३५॥
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः।
नारं स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति॥१३६॥
आचम्यैव तु निस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा।
न लङ्घयेत्तथैवाथ ष्ठीवनोद्वर्तनानि च॥१३७॥
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रं पादाम्भस्तत्क्षिपेद्बहिः। पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि॥१३८॥

जब किसी वस्तु अथवा पदार्थ की अपवित्रता का ज्ञान हो जाये, तब उसका यथाविधान शोधन करके भक्षण का कोई दोष नहीं होगा। रजस्वला, सूतिका का स्पर्श हो तब शुचिता हेतु स्नानाचरण करे। शव उठाकर श्मशान जाने वालों का स्पर्श होने पर भी स्नान कर्त्तव्य है। मनुष्यास्थि यदि ब्राह्मण छू लेता है, तब वह तैल लगाकर स्नान द्वारा शुद्ध होगा अथवा सचैल स्नान बिना भी गौ का स्पर्श, सूर्यदर्शन किंवा आचमन से वह पवित्र होगा। थूक, अभ्यंग (उबटन), जूठा, मल-मूत्र तथा चरण धोये गये जल का अतिक्रमण (लांघना) वर्जित है। यदि अन्य के सरोवरादि में स्नान करना पड़े, तब उसमें से पांच पिण्ड मिट्टी बाहर निकाल कर तभी स्नान करे।।१३५-१३८।।

स्नायीत देवखातेषु गङ्गाह्लदसरित्सु च। नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन॥१३९॥
नाऽऽलपेज्जनविद्विष्टान्वीरहीनास्तथा स्त्रियः।
देवतापितृसच्छास्त्रयज्विसंन्यासिनिन्दकैः ॥१४०॥
कृत्वा तु स्पर्शनालापं शुध्यत्यर्कावलोकनात्।
अवलोक्य तथोदक्यां संन्यस्तं पतितं शवम्॥१४१॥
विधर्मिसूतिकाषण्ढविवस्त्रान्त्यावसायिनः। मृतनिर्यातकांश्चैव परदाररताश्च ये॥१४२॥
एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः। अभोज्यभिक्षुपाखण्डमार्जारखरकुक्कुटान्॥१४३॥
पतितापविद्धचाण्डालमृताहारांश्च धर्मवित्। संस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्याग्रामशूकरौ॥१४४॥
तद्वच्च सूतिकाशौचदूषितौ पुरुषावपि। यस्य चानुदिनं हानिगृहे नित्यस्य कर्मणः॥१४५॥
यश्च ब्राह्मणसन्त्यक्तः किल्बिषाशी नराधमः।
नित्यस्य कर्मणो हानिं न कुर्वीत कदाचन॥१४६॥

व्यक्ति गंगा, जलाशय, झील, सरोवरों में स्नान करे। गृह से जूठन, पैर धोये जल, मलादि को दूर ले जाकर विसर्जित करे, लेकिन जो जलाशय देवताओं के नाम पर उत्सर्ग कर दिये गये हों, ऐसे जलाशय, ह्रद एवं नदी में स्नान करने पर मृत्तिका पिण्ड बाहर निकालना विहित नहीं है। प्राज्ञ व्यक्ति असमय में उद्यानादि में न रहे। साधारणों से विद्वेष करने वालों तथा विधवा से वार्त्तालाप न करे। जो देवता, पितर, सज्जन, शास्त्र, यज्ञकर्त्ता, सन्यासी की निन्दा करता है, उसके संग यदि वार्त्ता हो भी जाये, तब सूर्यदर्शन से पवित्रता मिलती

है। प्राज्ञ व्यक्तिगण, रजस्वला नारी, त्यक्त व्यक्ति, पतित, शव, विधर्मी, शववाहक, परस्त्रीरत मनुष्यों को तथा वस्त्रहीन स्त्री को देखकर विद्वान् मनुष्य सूर्यदर्शन करे। अखाद्य वस्तु, भिक्षुक, पाखण्डी, मार्जार, गर्दभ, कुक्कुट, पतित, चाण्डाल, शववाहक के स्पर्श हो जाने पर धार्मिक मनुष्य स्नान से शुद्ध होगा। रजस्वला, ग्राम्यशूकर, नव प्रसूता नारी के अशौचमय स्पर्श से अशुद्ध हो गये व्यक्ति भी स्नान करें। नित्यप्रति नित्यकर्म से वंचित है, जो ब्राह्मणगण से त्यक्त है, जो मानवद्रोही है तथा जो कुलटा स्त्री है, इन सबसे संभाषण न करे। जो देवता, ब्राह्मण को समर्पित किये बिना भोजन करता है, उससे भी स्पर्श हो जाने पर स्नान करना कर्त्तव्य है।।१३९-१४६।।

तस्य त्वकरणं वक्ष्ये केवलं मृतजन्मसु। दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमविवर्जितः।।१४७।।
क्षत्रियो द्वादशाहं च वैश्यो मासार्धमेव च। शूद्रश्च मासमासीत निजकर्मविवर्जितः।।१४८।।

ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोचितम्।
प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गत्वा तु गोत्रकैः।।१४९।।
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे च सप्तमे नवमे तथा।
तस्यास्थिसञ्चयः कार्यश्चतुर्थेऽहनि गोत्रकैः।।१५०।।
ऊर्ध्वं सञ्चयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते।
गोत्रकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्याः सञ्चयनात्परम्।।१५१।।

केवल जन्म तथा मरणजनित अशौच होने पर नित्यकर्म त्यागना चाहिये। इसका विधान कहता हूं। जन्म-मरण में ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य १५ दिन, तक दान होमादि नित्य कर्म वर्जित रखे। यह समय व्यतीत हो जाने पर अपना कर्म करे। शूद्र के लिये यह अशौच एक मास काल का होता है। किसी के मृत हो जाने पर सगोत्र वाले बाहर जाकर मृतक के लिये जलदान करें। सगोत्रजन प्रथम, चतुर्थ, सप्तम किंवा नवम दिन मृत व्यक्ति को जला दें तथा अस्थि का संचय करें। इस कार्य के अनन्तर अंगस्पृशत्व हो। सगोत्र जन अस्थिसंचय हो जाने पर समस्त क्रिया सम्पन्न करें।।१४७-१५१।।

स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः। अन्वर्थमिच्छया शस्त्ररज्जुबन्धनवह्निषु।।१५२।।
विषप्रतापदिमृते प्रायानाशकयोरपि। बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजिते मृते।।१५३।।

सद्यः शौचं मनुष्याणां त्र्यहमुक्तमशौचकम्।
सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि।।१५४।।
पूर्वशौचं समाख्यातं कार्यास्तत्र दिनक्रियाः।
एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके।।१५५।।

मृत्यु के दिन केवल सपिण्ड का ही स्पर्श मान्य है। आत्महत्या से, शस्त्र से, बन्धन से, अग्नि अथवा गिरने से मरे व्यक्ति हों अथवा शिशु किंवा देशान्तरस्थ व्यक्ति का निधन हो गया हो, किंवा संन्यासग्रहण के पश्चात् मरा हो, साधारण लोगों को सद्यः अशौच लगता है, लेकिन मृतक के सपिण्डगण को तीन दिवस का अशौच होता है। यदि एक सपिण्ड मरा हो तथा इस तीन दिवस में दूसरा सपिण्ड मृत हो जाय तब भी प्रथम

मृतक के दिन के ही अनुसार अशौच मान्य होगा। तब केवल दिन क्रिया ही करे। यही विधि जनना शौच में भी मानी गयी है।।१५२-१५५।।

सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च।
पुत्रे जाते पितुः स्नानं सचैलस्य विधीयते॥१५६॥
तत्रापि यदि वाऽऽन्यस्मिन्ननुयातस्ततः परम्।
तत्रापि शुद्धिरुदिता पूर्वजन्मवतो दिनैः॥१५७॥
दशद्वादशमासार्धमाससङ्ख्यैर्दिनैर्गतैः। स्वाः स्वाः कर्मक्रिया कुर्युः सर्वे वर्णा यथाविधि॥१५८॥

जनना शौच में सपिण्ड एवं सोदकगण के लिये यही विधि है। पुत्र जन्म पर पिता सचैल स्नान करें। यदि वहां जनना शौच के बीच अन्य जननाशौच हो जाने पर पूर्व अशौच का अन्त हो जाने पर दोनों जननाशौच में शुद्धि मिल जायेगी। जनना शौच में सभी वर्ण पूर्ववत् ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय द्वादश दिन, वैश्य अर्द्ध मास तथा शूद्र एक मास तक अशुद्ध रहेंगे। तत्पश्चात् सभी अपने-अपने कर्म सम्पन्न कर सकते हैं।।१५६-१५८।।

प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टमतः परम्। दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः॥१५९॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे। तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥१६०॥
पूर्णैस्तु दिवसैः स्पृष्ट्वा सलिलं वाहनायुधैः।
दत्तप्रेतोदपिण्डाश्च सर्वे वर्णाः कृतक्रियाः॥१६१॥

मृतक की स्थिति में अशौच समाप्त होने पर एकोदिष्ट श्राद्ध करे। विद्वान् व्यक्ति ब्राह्मणों को दान प्रदान करे। उस मृतक को जो भी प्रिय था तथा उसका वांछित द्रव्य था, वह सब दान करे, क्योंकि इससे उस मृतक को परलोक में अक्षय तृप्ति मिलती है। अशौच पूर्ण हो जाने पर प्रेत को पिण्ड दान करे। तर्पणादि करके जल, वाहन तथा आयुधों का स्पर्श करने से पवित्रता का लाभ होता है।।१५९-१६१।।

कुर्युः समग्राः शुचिनः परत्रेह च भूतये।
अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता॥१६२॥
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः।
येन प्रकुपितो नाऽऽत्मा जुगुप्सामेति भो द्विजाः॥१६३॥

इसके अनन्तर सभी इहलोक तथा परलोक के हित प्रदान करने वाला कर्मानुष्ठान करे। नित्य वेदत्रयी का अध्ययन करना चाहिये। सतत् धर्मानुरूप धनार्जन करके यत्नतः यज्ञ करे। हे ब्राह्मणवृन्द! जिस कार्य को करने से आत्मा कुपित तथा लज्जित न हो, ऐसा कार्य शंका रहित होकर सम्पन्न करे।।१६२-१६३।।

तत्कर्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजनैः। एवमाचरतो विप्राः पुरुषस्य गृहे सतः॥१६४॥
धर्मार्थकामं सम्प्राप्य परत्रेह च शोभनम्। इदं रहस्यमायुष्यं धनं बुद्धिविवर्धनम्॥१६५॥
सर्वपापहरं पुण्यं श्रीपुष्ट्यारोग्यदं शिवम्।
यशःकीर्तिप्रदं नृणां तेजोबलविवर्धनम्॥१६६॥

अनुष्ठेयं सदा पुम्भिः स्वर्गसाधनमुत्तमम्।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्येः शूद्रैश्च मुनिसत्तमाः॥१६७॥
ज्ञातव्य सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभिः।
ज्ञात्वैव यः सदा कालमनुष्ठानं करोति वै॥१६८॥

जिस कार्य को महाजनगण से छिपाना न पड़े, ऐसा कार्य शंका रहित होकर करना चाहिये। मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर ऐसा करने से इहलोक तथा परलोक, दोनों काल में उत्तम धर्म-अर्थ-काम की प्राप्ति कर लेते हैं। हे मुनिप्रवरगण! मैंने यह रहस्य कथा कह दिया। यह आयुप्रद, धन-समृद्धि बढ़ाने वाला, बुद्धिवर्द्धक, सर्वपापहारी, पुण्यप्रद, श्री-पुष्टि-यश-आरोग्य-कीर्त्ति-तेज-बल आदि वर्द्धक तथा उत्तम स्वर्गसाधक है। हे मुनिप्रवरवृन्द! कल्याणकामी ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र इसे यत्नतः जान लें। जो इनको जान कर इनका सदा अनुष्ठान करता है।।१६४-१६८।।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते। सारात्सारतरं चेदमाख्यातं द्विजसत्तमाः॥१६९॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं न देयं यस्य कस्यचित्।
न नास्तिकाय दातव्यं न दुष्टमतये द्विजाः।
न दाम्भिकाय मूर्खाय न कुतर्कप्रलापिने॥१७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे सदाचारनिरूपणं नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२१।।

वह सर्व पाप विनिर्मुक्त होकर स्वर्ग में महिमान्वित होता है। हे द्विजसत्तमगण! यह मैंने सबसे श्रेष्ठ सार आप लोगों से कह दिया। यह धर्म श्रुति-स्मृति में वर्णित है। यह सार का भी सार है। इसे चाहे जिसे नहीं प्रदान करे। जो नास्तिक, दुष्टचित्त, दम्भी, मूर्ख तथा कुकर्मी हैं, उनको यह कदापि प्रदान न करे।।१६९-१७०।।

।।एकविंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वर्णाश्रम धर्म वर्णन

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्वर्णधर्मान्विशेषतः। चतुराश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ब्रवीहि तान्॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे द्विजराज! अब हम सब चतुर्वर्ण तथा चारों आश्रम की धर्मविधि श्रवण करना चाहते हैं। आप कहिये।।१।।

व्यास उवाच

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम्। शृणुध्वं संयता भूत्वा वर्णधर्मान्मयोदितान्॥२॥
दानदयातपोदेवयज्ञस्वाध्यायतत्परैः। नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम्॥३॥
वृत्त्यर्थं याजयेत्त्वन्यान्द्विजानध्यापयेत्तथा। कुर्यात्प्रतिग्रहदानं यज्ञार्थं ज्ञानतो द्विजाः॥४॥
सर्वलोकहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद्द्विजाः।
मैत्री समस्तसत्त्वेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम्॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिगण! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों के धर्म का वर्णन सुनिये। आप सब संयत चित्त होकर श्रवण करें। ब्राह्मण नित्यप्रति दान, दया, तप, देवपूजा, यज्ञ, वेदाध्ययन, तर्पण परायण तथा अग्नियुक्त (साग्निक) रहे। वह जीविका निर्वाह के लिये अन्य का याजन तथा अध्यापन करे। यज्ञार्थ प्रतिग्रह भी ग्रहण करे। ज्ञानतः सभी लोगों का हित साधन करे। ब्राह्मण का उत्तम धन है सभी प्राणीगण से मैत्री।।२-५।।

गवि रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद्द्विजाः।
ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते वाऽस्य भो द्विजाः॥६॥
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि हि।
यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च भो द्विजाः॥७॥
शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका। तस्यापि प्रथमे कल्पे पृथिवीपरिपालनम्॥८॥

किसी का वह अहित न करे। ब्राह्मणगण पराये गौ, रत्न में परलोकार्थ समबुद्धि रखें। ब्राह्मण हेतु पत्नी से केवल ऋतुकाल में भार्यागमन करना उचित है। हे द्विजगण! क्षत्रिय इच्छानुसार ब्राह्मणों को दान प्रदान करे। वह नाना यज्ञ तथा अध्ययन भी करे। युद्धार्थ अस्त्र उठाये। वह पृथिवी रक्षा भी करे। ये दोनों काम उसका कर्त्तव्य है। यही उसकी जीविका भी है। इसमें पृथिवी रक्षा (पालन) ही प्रधान है।।६-८।।

धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपाः। भवन्ति नृपते रक्षा यतो यज्ञादिकर्मणाम्॥९॥
दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात्।
प्राप्नोत्यभिमतांल्लोकान्वर्णसंस्थापको नृपः॥१०॥

पृथिवी पालन द्वारा राजा कृतकृत्य होता है। उसका यही ऐसा कार्य है, जिससे यज्ञादि कर्म सुरक्षित हो जाते हैं। जो राजा दुष्टों को दंडित करता है, सज्जनों का परिपालन करता है, वर्णों की यथायथ संस्थापना कराता है, वह अभिमत लोकों को प्राप्त कर लेता है।।९-१०।।

पाशुपाल्यं वणिज्यां च कृषिं च मुनिसत्तमाः।
वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोकपितामहः॥११॥
तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्च शस्यते। नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च कर्मणाम्॥१२॥
द्विजातिसंश्रयं कर्म तदर्थं तेन पोषणम्। क्रयविक्रयजैर्वाऽपि धनैः कारुभवैस्तु वा॥१३॥

दानं दद्याच्च शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च। पित्र्यादिकं च वै सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै॥१४॥
भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहाः। ऋतुकालाभिगमनं स्वदारेषु द्विजोत्तमाः॥१५॥
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नाभिमानिता। सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता॥१६॥

मैत्री चैवास्पृहा तद्वदकार्पण्यं द्विजोत्तमाः।
अनसूया च सामान्या वर्णानां कथिता गुणाः॥१७॥
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः।
गुणास्तथोपधर्माश्च विप्रादीनामिमे द्विजाः॥१८॥

हे मुनिसत्तमवृन्द! लोकों के पितामह ब्रह्मा ने पशुपालन, वाणिज्य, कृषि—इन तीन वृत्तियों का वैश्यों हेतु निर्देश किया है। वैश्यगण दान, अध्ययन, यज्ञ तथा अन्य धर्मकार्यों का तथा नित्यकर्मानुष्ठान करें। द्विजातिगण के कार्य से, क्रय-विक्रयादि वाणिज्य द्वारा वह अपनी जीविका करे। शूद्र के लिये दान तथा पाकयज्ञ विहित है। उसके द्वारा ही वह श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करता रहे। पोष्य परिवारादि हेतु सभी वर्ग के लोग धनादि का संग्रह परिग्रह करें। ऋतुकाल में स्त्री प्रसंग, सभी जीवों के प्रति दया भाव, क्षमा, अभिमान रहित होना, सत्य-शौच पालन, प्रिय बोलना, मित्रता, लोभ न होना, अकार्पण्य, ईर्ष्या रहित होना, मंगल साधना आदि गुणों से सभी युक्त रहें। सभी आश्रमादि वालों हेतु ये सभी सामान्य गुण कहे गये हैं। हे ब्राह्मणवृन्द! अब मैं विप्रादि सबके उपधर्म कहता हूं। श्रवण करें।।११-१८।।

क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यकर्म तथाऽऽपदि।
राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्माणि चैतयोः॥१९॥
स (अ) सामर्थ्ये सति त्याज्यमुभाभ्यामपि च द्विजाः।
तदेवाऽऽपदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसङ्करम्॥२०॥

आपत्ति के समय ब्राह्मण भी क्षत्रिय एवं वैश्यकर्म कर सकते हैं। यदि सामर्थ्य हो, तब ये सब कर्म न करें, तथापि आपत्तिकाल में यह कर सकते हैं। क्षत्रिय आपत्ति काल में वैश्यकर्म कर सकता है। वैश्य शूद्र कर्म कर सकते हैं। तथापि सामर्थ्य रहने पर (विपत्ति न रहने पर) अपने से निम्न वर्ग का कार्य सबके लिये त्याज्य है। यह केवल आपत्ति काल के लिये है। कर्म संकर कदापि न करे।।१९-२०।।

इत्येते कथिता विप्रा वर्णधर्मा मयाऽद्य वै।
धर्ममाश्रमिणां सम्यग्ब्रुवतोऽपि निबोधत॥२१॥

बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः। गुरोर्गेहे वसन्विप्रा ब्रह्मचारी समाहित॥२२॥
शौचाचाररतस्तत्र कार्यं शुश्रूषणं गुरोः। व्रतानि चरता ग्राह्यो वेदश्च कृतबुद्धिना॥२३॥
उभे सन्ध्ये रविं विप्रास्तथैवाग्निं समाहितः। उपतिष्ठेत्तथा कुर्याद्गुरोप्यभिवादनम्॥२४॥

स्थिते तिष्ठेद्व्रजेद्याति नीचैरासीत चाऽऽसिते।
शिष्टो गुरौ द्विजश्रेष्ठाः प्रतिकूलं च सन्त्यजेत्॥२५॥

हे विप्रगण! चारों वर्णों का विधान मैंने कह दिया। अब आश्रमधर्म कहता हूं। श्रवण करिये। हे विप्रवृन्द! बालक उपनयन के पश्चात् वेदाभ्यास तत्पर होकर गुरुगृह में निवास करे। उस समय ब्रह्मचारी होकर समाहित चित्त के साथ शौचाचार प्रतिपालन करता हुआ गुरु शुश्रूषा तथा विविध व्रत पालन के साथ एकाग्रता पूर्वक वेदाध्ययन करे। दोनों संध्याकाल में समाहित होकर सूर्य तथा अग्नि की उपासना तथा गुरु का अभिवादन करना चाहिये। हे द्विजप्रवरगण! शिष्यगण किसी भी प्रकार से गुरु के प्रति विपरीत आचरण न करें। गुरु जब खड़े हों, तब शिष्य भी खड़ा हो जाये। जब वे चलें, तब शिष्य भी चले। जब गुरु बैठ जायें, तब शिष्य उनसे किंचित् नीचे बैठे। उनके प्रतिकूल व्यवहार कदापि न करे।।२१-२५।।

तेनैवोक्तं पठेद्वेदं नान्यचित्तः पुरस्थितः। अनुज्ञातं च भिक्षान्नमश्नीयाद्गुरुणा ततः।।२६।।
अवगाहेदपः पूर्वमाचार्येणावगाहिताः। समिज्जलादिकं चास्य कल्पकल्पमुपानयेत्।।२७।।
गृहीतग्राह्यवेदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्य वै। गार्हस्थ्यमावसेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिष्कृतिः।।२८।।
विधिनाऽवाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा।
गृहस्थकार्यमखिलं कुर्याद्विप्राः स्वशक्तितः।।२९।।

गुरुदेव के आदेशानुरूप भिक्षान्न भोजन करना चाहिये। उनके आदेश के अनुसार एकाग्रता पूर्वक वेदों का अध्ययन करे। जब गुरु स्नान कर लें, तब स्वयं स्नान करे। प्रतिनियत रूप से नित्य प्रातः गुरु के उद्देश्य से समिध्, कुश, जल प्रभृति को एकत्र करके रखना चाहिये। प्राज्ञ व्यक्ति शिक्षणीय वेदाभ्यास सम्पन्न करने के उपरान्त गुरु की अनुमति प्राप्त करके दक्षिणा प्रदान करने के पश्चात् गृहाश्रम में जाये। सविधि विवाहोपरान्त स्वकर्म से प्राप्त धन द्वारा स्वशक्ति के अनुरूप गृहस्थ धर्म का सम्यक् पालन करना चाहिये।।२६-२९।।

निर्वापेण पितॄनर्च्य यज्ञैर्देवास्तथाऽतिथीन्। अन्नैर्मुनींश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम्।।३०।।
बलिकर्मणा भूतानि वाक्सत्येनाखिलं जगत्।
प्राप्नोति लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितान्।।३१।।

वह गृहस्थाश्रमी व्यक्ति पिण्डदान द्वारा पितृगण का, यज्ञ से देवगण का, अन्न द्वारा अतिथियों का, पुत्रोत्पादन द्वारा प्रजापतिगण का, बलि प्रदान द्वारा भूत (प्राणी) गण का, सत्य एवं प्रिय वाक्यों द्वारा समग्र जगत् को तृप्त करता रहे। मनुष्य एवंविध अनुष्ठान के उपरान्त तथा इसके फल स्वरूप विविध लोकों की प्राप्ति करता है।।३०-३१।।

भिक्षाभुजश्च ये केचित्परिव्राड्ब्रह्मचारिणः। तेऽप्यत्र प्रतितिष्ठन्ति गार्हस्थ्यं तेन वै परम्।।३२।।
वेदाहरणकार्येण तीर्थस्नानाय च द्विजाः। अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च।।३३।।
अनिकेता ह्यनाहारा ये तु सायं गृहास्तु ते। तेषां गृहस्थः सततं प्रतिष्ठा योनिरुच्यते।।३४।।
तेषां स्वागतदानानि वक्तव्यं मधुरं सदा। गृहागतानां दद्याच्च शयनासनभोजनम्।।३५।।

संन्यासी, ब्रह्मचारी, भिक्षोपजीवी गृहस्थाश्रमावलम्बी के दान से ही जीवित रहते हैं। अतः गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है। हे द्विजगण! जो सभी ब्राह्मण वेदाध्ययनार्थ, तीर्थपर्यटनार्थ तथा पृथिवी भ्रमणार्थ पृथिवी के नाना स्थल पर भ्रमण करते हैं तथा जो निवास स्थान रहित तथा आहारहीन होकर गृही लोगों के यहां श्रान्त होकर पहुंचते

हैं, गृहस्थ ही उन लोगों के एकमात्र सहायक हैं। सदा सत्कारपूर्ण विनम्र वाणी से उनका स्वागत करे। गृहागत होने पर उनको विश्रामार्थ शयन स्थान, आसन तथा भोजन कराये।।३२-३५।।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥३६॥
अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्चापि गृहे सतः। परिवादोपघातौ च पारुष्यं च न शस्यते॥३७॥
यश्च सम्यक्करोत्येवं गृहस्थः परमं विधिम्।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चोत्तमान्॥३८॥
वयःपरिणतौ विप्राः कृतकृत्यो गृहाश्रमी। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥३९॥

जिसके गृह से अतिथि जब निराश होकर (बिना कुछ सत्कार पाये) वापस जाता है, तब उस अतिथि का पाप गृहस्वामी के पास तथा गृहस्वामी का पुण्य अतिथि के पास चला जाता है। अवज्ञा, अहंकार, दंभ, परिवाद, प्रहार, कठोर वचन गृहस्थ हेतु उचित नहीं है। जो गृहस्थ इस नियम का सम्यक्तः पालन करता है, वह सर्वबन्धन रहित होकर उत्तम लोकों में जाता है। इस प्रकार गृहस्थ को चाहिये कि अपने समस्त कर्त्तव्य का समापन करने के उपरान्त जब उसकी अवस्था परिपक्व हो जाये, तब अपने पुत्रों के पास अपनी पत्नी (उनकी माता) को सौंप कर अथवा पत्नी के साथ ही वनगमन करे।।३६-३९।।

पर्णमूलफलाहारः केशश्मश्रुजटाधरः। भूमिशायी भवेत्तत्र मुनिः सर्वातिथिर्द्विजाः॥४०॥
चर्मकाशकुशैः कुर्यात्परिधानोत्तरीयके। तद्वत्त्रिषवणं स्नानं शस्तमस्य द्विजोत्तमाः॥४१॥
देवताभ्यर्चनं होमः सर्वाभ्यागतपूजनम्। भिक्षा बलिप्रदानं तु शस्तमस्य प्रशस्यते॥४२॥
वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चापि शस्यते। तपस्या तस्य विप्रेन्द्राः शीतोष्णादिसहिष्णुता॥४३॥
यस्त्वेता नियतश्चर्या वानप्रस्थश्चरेन्मुनिः। स दहत्यग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकांश्च शाश्वतान्॥४४॥

हे ब्राह्मणगण! वन में वह व्यक्ति वृक्ष के नीचे शयन करे। पत्र-मूल-फलाहार करे। सबको आतिथ्य प्रदान करे। वह सदैव मुनिवृत्ति का अवलम्बन लेकर रहे। चर्म (मृगचर्म), कुश, काश पहने। उसी का उत्तरीय बनाये। वनवासी दिन में तीन बार स्नान करे। देवार्चन, होम, अभ्यागतों का यथायोग्य सत्कार, भिक्षाटन (अन्न) बलिप्रदान—ये सब कार्य वानप्रस्थी हेतु विशेष प्रशस्त हैं। वह वन में उत्पन्न स्निग्ध पदार्थ का अभ्यंग (उबटन) लगाये। वह शीत तथा उष्ण मौसम के प्रति सहनशील रहे। जो व्यक्ति वानप्रस्थी होकर मुनि वृत्ति का पालन करते एकाग्रता तथा नियम के अनुसार सभी आचारों का पालन करते हैं, वे अपने दोषों को वैसे ही दग्ध करते हैं, जैसे तृण अग्नि में दग्ध हो जाता है। उनको शाश्वत लोकों की प्राप्ति होती है। वे सर्वबन्धन विनिर्मुक्त हो जाते हैं।।४०-४४।।

चतुर्थश्चाऽऽश्रमो भिक्षो प्रोच्यते यो मनीषिभिः।
तस्य स्वरूपं गदतो बुध्यध्वं मम सत्तमाः॥४५॥
पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यजेत्स्नेहं द्विजोत्तमाः। चतुर्थमाश्रमस्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सरः॥४६॥

त्रैवर्णिकांस्त्यजेत्सर्वानारम्भान्द्विजसत्तमाः। मित्रादिषु समो मैत्राः समस्तेष्वेव जन्तुषु॥४७॥
जरायुजाण्डजादीनां वाङ्मनःकर्मभिः क्वचित्।
युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसङ्गांश्च वर्जयेत्॥४८॥
एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे। तथा प्रीतिर्न तिर्यक्षु द्वेषो वा नास्य जायते॥४९॥
प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारेऽभुक्तवज्जने।
काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थी पर्यटेद्गृहान्॥५०॥
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे नैव च हर्षयेत्।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः॥५१॥

हे मुनिप्रवरगण! मनीषी लोगों ने जिस चतुर्थाश्रम रूप भिक्षुकाश्रम का निर्देश दिया है, उसका स्वरूप आप लोग एकाग्रता पूर्वक श्रवण करिये। हे द्विजोत्तमवृन्द! पुत्र-स्त्री-धन के प्रति स्नेह त्याग कर मात्सर्यहीन होकर चतुर्थाश्रम में जाना चाहिये। मनुष्य को चाहिये कि वह तीनों वर्ण के समस्त आचार का त्याग करे। शत्रु-मित्र सबके प्रति समदृष्टि सम्पन्न तथा समबुद्धि सम्पन्न होकर सभी का हित चिन्तक हो जाये। वह जरायुज, अण्डज किसी भी प्राणी के प्रति द्रोह न करे। वह मनसा-वाचा-कर्मणा किसी से भी द्रोह न करे। वह समस्त संगों को त्याग कर संयत चित्त होकर रहे। सन्यासी व्यक्ति ग्राम में एक रात्रि, नगर में पांच रात्रि निवास कर सकता है। तिर्यक् योनि वाले प्राणियों से न तो द्वेष करे न तो स्नेह करे। जब गृहस्थों के घर में चूल्हा बुझ जाये, भोजन पाकादि सम्पन्न हो जाये तब यह जान कर कि उन लोगों ने भोजन ग्रहण कर लिया है, तब भिक्षुक (यती) जीवन निर्वाहार्थ उत्तम वर्ण वालों के गृह में भिक्षार्थ जाये। भिक्षा पाने पर सन्तुष्ट होना तथा भिक्षा न मिलने पर असन्तुष्ट होना उचित ही नहीं है। वह संग रहित होकर केवल प्राणयात्रा का निर्वाह मात्र करने हेतु भिक्षाटन करे।।४५-५१।।

अतिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सं चै (प्सेच्चै) व सर्वतः।
अतिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते॥५२॥
कामः क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहादयश्च ये।
तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिव्राण्निर्ममो भवेत्॥५३॥
अभयं सर्वसत्त्वेभ्यो दत्त्वा यश्चरते महीम्।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नोत्पद्यते क्वचित्॥५४॥
कृत्वाऽग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं, शरीरमग्निं स्वमुखे जुहोति।
विप्रस्तु भिक्षोपगतैर्हविर्भिश्चिताग्निना स व्रजति स्म लोकान्॥५५॥
मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं, शुचिश्च सङ्कल्पितबुद्धियुक्तः।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं, स ब्रह्मलोकं व्रजति द्विजातिः॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२२।।

यदि कोई अत्यन्त आदर से भिक्षा देता है, तब उसे अपने को बचाना चाहिये। अति सम्मान, लाभ से यह मुक्त भिक्षुक भी मोहबद्ध हो जाता है। सन्यासी (भिक्षुक) काम, क्रोध, अभिमान, लालच, मोह आदि दोषों का वर्जन करे। ममता रहित होकर रहे। जगत् के समस्त प्राणीगण को अभय देकर पृथिवी पर विचरता सन्यासी देहात्मबोध रहित हो जाता है। ऐसे मुक्त महात्मा को भय कहां? ऐसा अग्निहोत्र करे, जिसमें वह शरीरस्थ अग्नि में भिक्षा से प्राप्त वस्तु का हवन करता है। यही हवनीय वस्तु ही उसके लिये घृताहुति है। वह चिताग्नि में शरीर को भी अन्ततः भस्म करके दिव्य लोकों को प्राप्त करता है। जो द्विज पवित्र तथा दृढ़ संकल्पवान् होकर इस मोक्षाश्रम के आचार का पालन करेगा, वह उस ब्रह्मलोक को पाता है, जो इंधन रहित अग्नि के समान प्रशान्त स्थल है।।५२-५६।।

।।द्वाविंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

संकर जातियों का लक्षण वर्णन

मुनय ऊचुः

सर्वज्ञस्त्वं महाभाग सर्वभूतहिते रतः। भूतं भव्यं भविष्यं च न तेऽस्त्यविदितं मुने॥१॥
कर्मणा केन वर्णानामधमा जायते गतिः। उत्तमा च भवेत्केन ब्रूहि तेषां महामते॥२॥
शूद्रस्तु कर्मणा केन ब्राह्मणत्वं च गच्छति।
श्रोतुमिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात्॥३॥

मुनिगण कहते हैं—हे महामति! आप सर्वज्ञ हैं। भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान आपसे अविदित नहीं है। हे महामति! चारों वर्ण वाले किस कर्म को करने पर अधम गति पाते हैं? किस कर्म द्वारा उनको उत्तम गति का लाभ होता है? वह कहिये। शूद्र को किस कर्म द्वारा ब्राह्मणत्व लाभ होता है? ब्राह्मण किस कर्म के फल से शूद्रत्व पाते हैं? यह सब श्रवण हेतु इच्छा है।।१-३।।

व्यास उवाच

हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविभूषिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानाश्चर्यसमन्विते॥४॥
तत्र स्थितं महादेवं त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम्। शैलराजसुता देवी प्रणिपत्य सुरेश्वरम्॥५॥
इमं प्रश्नं पुरा विप्रा अपृच्छच्चारुलोचना। तदहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मम सत्तमाः॥६॥

व्यास कहते हैं—हे ब्राह्मणगण! पूर्वकाल में नाना धातु से विभूषित, नाना लता वृक्षों से भरे, नाना आश्चर्ययुक्त रमणीय हिमवान् पर्वत पर स्थित त्रिपुरारि, सुरेश्वर, महादेव को प्रणाम करके चारुनेत्रा, शैलराजनन्दिनी उमा देवी ने उनसे यह प्रश्न किया। वह प्रसंग मैं कहता हूं। आप सब उसका श्रवण करें।।४-६।।

उमोवाच

भगवन्भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तविनाशन। दक्षक्रतुहर त्र्यक्ष संशयो मे महानयम्॥७॥
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयम्भुवा। केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम्॥८॥
वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत्।
प्रतिलोमे कथं देव शक्यो धर्मो निवर्तितुम्॥९॥
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते।
क्षत्रियः शूद्रतामेति केना व कर्मणा विभो॥१०॥
एतं मे संशयं देव वद भूतपतेऽनघं। त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः॥११॥

भगवती उमा कहती हैं—हे पूषा का दांत तोड़ने वाले, दक्षयज्ञहारी, भग के नेत्रों को नष्ट करने वाले भगवान्! मुझे एक महान् संशय हो रहा है। पूर्वकाल में भगवान् स्वयम्भु ने चार वर्णों की सृष्टि किया था। तदनन्तर उन्होंने यह स्थापित किया था कि किस कर्म से वैश्य को शूद्रत्व मिलता है, वैश्य किस कर्म द्वारा क्षत्रियत्व लाभ करता है? ब्राह्मण किस कर्म द्वारा क्षत्रिय होता है? किस कर्म से उसे शूद्रत्व मिलता है? अथवा किस कर्म से किसे कौन वर्ण मिलता है? इस प्रतिलोम होने की निवृत्ति कैसे हो? हे निष्पाप, भूतपति, प्रभो! किस प्रकार से क्षत्रियादि वर्ण ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकेंगे? इस विषय सम्बन्धित हमारे संदेह का निवारण करिये।।७-११।।

शिव उवाच

ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद्ब्राह्मणः शुभे।
क्षत्रियो वैश्यशूद्रो वा निसर्गादिति मे मतिः॥१२॥
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्नानादभ्रश्यति स द्विजः।
श्रेष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः॥१३॥
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति॥१४॥
यश्च विप्रत्वमुत्सृज्य क्षत्रधर्मान्निषेवते। ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्त्रयोनौ प्रजायते॥१५॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा॥१६॥
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात्।
स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुयात्॥१७॥

शिव कहते हैं—हे देवी! कल्याणी! ब्राह्मणत्व तो अतीव दुर्लभ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र स्वभावतः उत्पन्न होते हैं। कोई ब्राह्मण जन्म लेकर भी दुष्कृति करने पर ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है। वह सवर्ण होकर भी पाप के कारण उससे भ्रष्ट हो जाता है। यदि क्षत्रिय तथा वैश्य भी ब्राह्मण धर्म का

अवलम्बन लेकर जीविका निर्वाह करते हैं, तब उनको ब्राह्मणत्व लाभ होकर रहता है। जो लोग ब्राह्मणत्व त्याग कर क्षत्रियत्व ग्रहण करते हैं, वे मरणान्त में क्षत्रिय होकर जन्म लेते हैं। दुर्लभ ब्राह्मण्य लाभ करके जो अल्पबुद्धि द्विज लोभ-मोहान्वित होकर वैश्यकर्म करते हैं, उनको वैश्यत्व लाभ होता है। इस प्रकार हीन कर्म के कारण वैश्य को भी शूद्रत्व मिलता है। जो ब्राह्मण अपने धर्म से च्युत हो जाता है, उसे शूद्रत्व मिलता है।।१२-१७।।

तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः। ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रयोनौ प्रजायते॥१८॥

क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणी।
स्वानि कर्माण्यपाकृत्य शूद्रकर्म निषेवते॥१९॥
स्वस्थानात्स परिभ्रष्टो वर्णसङ्करतां गतः।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः॥२०॥

वह वर्ण धर्म रहित होकर ब्रह्मलोक नहीं जाता, वह नरकगामी होता है। तदनन्तर उसका जन्म शूद्र योनि में हो जाता है। हे महाभागे! क्षत्रिय, वैश्य यदि अपने कर्म का त्याग करते हैं, वे इसी प्रकार शूद्रत्व भागी हो जाते हैं। वे स्वस्थान भ्रष्ट होकर वर्णसंकर हो जाते हैं। क्रमशः उनको शूद्रत्व मिलता है। ऐसे ही तीनों वर्ण वाले कर्मदोष से शूद्र होते हैं।।१८-२०।।

यस्तु शूद्रः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्शुचिः। धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते॥२१॥

इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा समुदाहृतम्। अध्यात्मं नैष्ठिकी सिद्धिर्धर्मकामैर्निषेव्यते॥२२॥

उग्रान्नं गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम्।
घुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव वा क्वचित्॥२३॥

जो स्वधर्म पालक, ज्ञान-विज्ञानवान् है, धर्मज्ञ तथा धर्मनिरत है, उसे धर्मफल लाभ होता है। हे देवी! ब्रह्मा ने धर्मकामी लोगों द्वारा सेवनीय नैष्ठिकी सिद्धिविषयक यह बात कही है कि उपजाति का अन्न, गणों (?) का अन्न, श्राद्ध तथा सूतक का अन्न, निन्दित अन्न तथा शूद्रान्न भक्षण न करे (यहां 'घुष्टान्न' शब्द का मूल में प्रयोग है, जिसे कहीं 'पृष्टान्न' भी अन्य प्रति में लिखा गया है। कहीं इसे पिष्टान्न भी लिखा गया है, किसी ने इसे वह अन्न माना है, जिसकी घोषणा वितरणार्थ की गयी है)।।२१-२३।।

शूद्रान्नं गर्हितं देवि सदा देवैर्महात्मभिः। पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः॥२४॥

शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः। आहिताग्निस्तथा यज्वा स शूद्रगतिभाग्भवेत्॥२५॥

तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः। ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणाः॥२६॥

हे देवी! महात्मा देवताओं ने शूद्रान्न की सर्वदा निन्दा किया है। यह पितामह कथित वचन सदा सत्य मानता हूं। शूद्रान्न खाने के पश्चात् यदि वह पेट में ही रहते व्यक्ति मृत हो जाता है, तब चाहे वह व्यक्ति आहिताग्नि, यागकारी कोई क्यों न हो, उसको अगले जन्म में शूद्रत्व ही मिलेगा। जठर (उदर) में परिपाक क्रिया में पड़ा वह अन्न हो तथा मृत्यु हो जाये, उस अवस्था में शूद्रान्न के कारण ब्राह्मण भी ब्रह्मलोक प्राप्ति से च्युत होकर शूद्रत्व लाभ करता है। इसमें सन्देह नहीं है।।२४-२६।।

यस्यान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः। तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति॥२७॥

ब्राह्मणत्वं सुखं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते।
अभोज्यान्नानि वाऽश्नाति स द्विजत्वात्पतेत वै॥२८॥

जिस जाति का प्रदत्त अन्न मृत्युकाल में ब्राह्मण के उदर में रह जाता है, वह ब्राह्मण उसी योनि में जन्म ग्रहण करता है। दुर्लभ सुखप्रद ब्राह्मणत्व पाकर जो उसकी अवहेलना करके अभोज्य अन्न भक्षण करते हैं, वे द्विजत्व से च्युत हो जाते हैं।।२७-२८।।

सुरापो ब्रह्महा स्तेयी चौरो भग्नव्रतोऽशुचिः।
स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः॥२९॥

अव्रती वृषलीभर्ता कुण्डाशी सोमविक्रयी। विहीनसेवी विप्रो हि पतते ब्रह्मयोनितः॥३०॥

मद्यपायी, ब्रह्महत्यारा, तस्कर, व्रत भंग करने वाला, अशुद्ध, स्वाध्याय त्यागी, पापी, लुब्ध, हिंसक, शठ, व्रतहीन, वृषली पति (शूद्रा पति), जार से उत्पन्न पुत्र के यहां भोजनकारी, मद्यविक्रयी, हीन लोगों का सेवक विप्र ब्राह्मण ब्रह्मयोनि से गिर जाता है।।२९-३०।।

गुरुतल्पी गुरुद्वेषी गुरुकुत्सारतिश्च यः। ब्रह्मद्विड्वाऽपि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः॥३१॥

एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्॥३२॥

शूद्रः कर्माणि सर्वाणि यथान्यायं यथाविधि। सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्शेषान्नकृतभोजनः॥३३॥
शुश्रूषां परिचर्यां यो ज्येष्ठवर्णे प्रयत्नतः। कुर्यादविमनाः श्रेष्ठः सततं सत्पथे स्थितः॥३४॥
देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रतः। ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः॥३५॥
दक्षः शिष्टजनान्वेषी शेषान्नकृतभोजनः। वृथा मांसं न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति॥३६॥

गुरुपत्नीगामी, गुरुद्वेषी, गुरु की निन्दा में निरत, ब्राह्मणद्वेषी, ब्राह्मण भी ब्राह्मण योनि से पतित हो जाता है। हे देवी! यहां आगे कहे जाने वाले शुभ कर्मों का आचरण करने वाला शूद्र भी ब्राह्मणत्व, वैश्य क्षत्रियत्व इत्यादि रूपेण उत्कर्ष प्राप्त कर लेता है। शूद्र को चाहिये कि वह यथाविधान सर्वकर्माचरण करे, सर्वविध आतिथ्य द्वारा सबका स्वागत विधान करे। बचा हुआ अन्न भोजन करे। सयत्नतः सावधानी पूर्वक ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की सेवा करे, सदा सत्पथ गामी रहे। वह देव, द्विज, अतिथि आदि की सेवा में तत्पर रहे। मात्र ऋतुकाल में स्त्री संग करे। नियमतः उत्साहवान्, साधु संग करने वाला, वृथा मांसभोजनत्यागी रहे। इस प्रकार के शूद्र को वैश्यत्व लाभ होता है।।३१-३६।।

ऋतवागनहंवादी निर्द्वन्द्वः सामकोविदः। यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः॥३७॥
दान्तो ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णानसूयकः। गृहस्थव्रतमातिष्ठन्द्विकालकृतभोजनः॥३८॥
शेषाशी विजिताहारो निष्कामो निरहंवदः। अग्निहोत्रमुपासीनो जुह्वानश्च यथाविधि॥३९॥
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्शेषान्नकृतभोजनः। त्रेताग्निमात्रविहितं वैश्यो भवति च द्विजः॥४०॥

स वैश्यः क्षत्रियकुले शुचिर्महति जायते।
स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः॥४१॥
उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति संस्कृतः। ददाति यजते यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः॥४२॥
अधीत्य स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणः सदा।
आर्द्रहस्तप्रदो नित्यं प्रजा धर्मेण पालयन्॥४३॥
सत्यः सत्यानि कुरुते नित्यं यः शुद्धिदर्शनः। धर्मदण्डेन निर्दग्धो धर्मकामार्थसाधकः॥४४॥

वैश्य यदि सत्यवादी, निरहंकारी, शीत-उष्णजनित सुख-दुःख सहने वाला, मधुर बोलने वाला, स्वाध्यायतत्पर, पवित्र, दान्त, ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, मात्र दो समय भोजन करने वाला, अतिथि आदि की सेवा से बचा अन्नभोजी, सामवेदज्ञ, नित्य यज्ञ करने वाला, स्वाध्यय तत्पर, भोजन की मात्रा पर नियन्त्रण रखने वाला, गृहस्थ धर्म पालक, निष्काम, अग्निहोत्र उपासक, सविधि हवनकर्त्ता, दक्षिण-गार्हपत्य एवं आहवनीय अग्नित्रय की उपासना के अनन्तर अतिथि सेवा से अवशिष्ट बचे अन्न का भोजन करने वाला वैश्य ब्राह्मणत्व (अन्ततः) लाभ करता है। वह वैश्य इस प्रकार महान् क्षत्रिय वंश में जन्म लेकर निष्ठावान् व्यक्ति होता है। तदनन्तर वह जन्म से लेकर जातकर्मादि संस्कारों से सम्पन्न होकर उपनयन के पश्चात् व्रततत्पर होता है। वह विहित दान तथा अनेक दक्षिणा से युक्त यज्ञानुष्ठान भी करता है। वह वेदाध्यायी, स्वर्गाभिलाषी, सतत् अग्निहोत्र सेवी, आर्त्तगण का परित्राता, धर्मानुरूप प्रजापालक, सत्यवादी, सत्याचरण परायण तथा नित्य शुभदर्शन हो जाता है। वह धर्मदण्ड से निष्पाप होकर आवश्यकीय धर्म-काम-अर्थ साधन करता है।।३७-४४।।

यन्त्रितः कार्यकारणैः षड्भागकृतलक्षणः। ग्राम्यधर्मान्न सेवेत स्वच्छन्देनार्थकोविदः॥४५॥
ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपाश्रयेत्सदा। सदोपवासी नियतः स्वाध्यायनिरतः शुचिः॥४६॥
वहिस्कान्तरिते (?) नित्यं शयानोऽस्ति सदा गृहे।
सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य कुर्वाणः सुमनाः सदा॥४७॥
शूद्राणां चान्नकामानां नित्यं सिद्धिमिति ब्रुवन्।
स्वार्थाद्वा यदि वा कामान्न किञ्चिदुपलक्षयेत्॥४८॥

धर्मकार्य तत्पर रहते हुये वह प्रजा से प्राप्त १/६ भाग से ही अपना निर्वाह करता है (अर्थान्तर यह भी हो सकता है कि वह कार्यानुरूप दण्ड अर्थात् राजनीति को सन्धि-विग्रहादि षड्भाग में विभक्त कर देता है)। अर्थकोविद (अर्थ ज्ञाता) कदापि ग्राम्य धर्म सेवन (व्यवहार) न करे। वह ऋतुकाल में ही अपनी पत्नी से संगत हो। सदा विहित उपवास एवं स्वाध्याय का आचरण करे। पवित्र दोषहीन गृह में सदा स्वस्थता पूर्वक रहे। वह सदा आतिथ्य धर्म रत रहे। तीनों वर्ग का आतिथ्य करके सदा प्रसन्न मन के साथ अन्नार्थी शूद्रों को भी आश्वासन तथा दान एवं अन्न प्रदान करे। स्वार्थवशात् अथवा काम भावना से किसी कर्त्तव्य कार्य में त्रुटि न करे। किसी का नुकसान न करे।।४५-४८।।

पितृदेवातिथिकृते साधनं कुरुते च यत्। स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्ष्यमेव च॥४९॥

द्विकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधि।
गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हतः॥५०॥
त्रेताग्निमन्त्रपूतेन समाविश्य द्विजो भवेत्। ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः संस्कृतो वेदपारगः॥५१॥
वैश्यो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेन कर्मणा। एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः॥५२॥
शूद्रोऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः। ब्राह्मणो वाऽप्यसद्वृत्तः सर्वसङ्करभोजनः॥५३॥
स ब्राह्मण्यं समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः।
कर्मभिः शुचिभिर्देवी शुद्धात्मा विजेतेन्द्रियः॥५४॥
शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत्स्वयम्।
स्वभावकर्मणा चैव यत्र (श्च) शूद्रोऽधितिष्ठति॥५५॥
विशुद्धः स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मतिः।
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतिर्न च सन्ततिः॥५६॥
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्।
सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते॥५७॥
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति।
ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतः॥५८॥
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः।
एते ये विमला देवि स्थानाभावनिदर्शकाः॥५९॥

वह पितृगण तथा अतिथिपूजक रहकर सविधि कर्त्तव्य निर्वाह करे। दोनों समय अग्निहोत्र उपासना में कभी बाधा अथवा अवहेलना न करे। वह स्वगृह में न्यायपूर्ण भिक्षावृत्ति का अवलम्बन करता अवस्थान करे। वह गौ-ब्राह्मणार्थ युद्ध में प्राण विसर्जित करके अथवा मन्त्रपूत त्रेताग्नि में प्रवेश करके द्विज हो जाता है (अर्थात् वहां प्राणत्याग करके)। ऐसा ज्ञान-विज्ञान से पूतात्मा, संस्कार सम्पन्न वेदज्ञ धार्मिक वैश्य स्वीयकर्मानुरूप क्षत्रिय होता है। हे देवी! नीच कुलोत्पन्न शूद्र भी इन कर्मों के फलस्वरूप सविधि संस्कार सम्पन्न वेदज्ञ संस्कृत ब्राह्मण हो जाता है। असत् कर्म वाला, सभी के साथ भोजन करने वाला ब्राह्मण भी ब्राह्मणत्व रहित होकर शूद्र हो जाता है। ब्रह्मा का कथन है कि उत्तम कर्म करने वाला, इन्द्रियजित् विशुद्ध शूद्र भी द्विजवत् सम्मान योग्य है। ब्राह्मणत्व लाभार्थ वंश संस्कार, श्रुति ज्ञान, सन्तति विस्तार ये सब कारण कदापि नहीं हैं। आचरण ही ब्राह्मणत्व का मूल कारण है। जगत् में जितने भी ब्राह्मण परिलक्षित होते हैं, सदाचार ही उनके ब्राह्मणत्व का कारण है। सदाचारी शूद्र भी ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है। हे सुश्रोणी! सभी प्राणीगण में समदर्शन ही ब्राह्मण का स्वभाव है। यही मेरा मत है।।४९-५९।।

स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः।
ब्राह्मणो हि महत्क्षेत्रं लोके चरति पादवत्॥६०॥

यत्तत्र बीजं पतति सा कृषिः प्रेत्य भाविनी।
सन्तुष्टेन सदा भाव्यं सत्पालम्बिना सदा॥६१॥
ब्राह्मं हि मार्गमाक्रम्य वर्तितव्यं बुभूषता। संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना॥६२॥
नित्यं स्वाध्याययुक्तेन न चाध्ययनजीविना।
एवंभूतो हि यो विप्रः सततं सत्पथे स्थितः॥६३॥
आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूताय कल्पते।
ब्राह्मण्यं देवि सम्प्राप्य रक्षितव्यं यतात्मना॥६४॥

जिसमें निर्गुण विमल ब्रह्मविषयक ज्ञान अवस्थित है, वही द्विज कहा जाने योग्य है। प्रजा सृष्टि द्वारा वरप्रद भगवान् ब्रह्मा ने यह विमल स्थान तथा भावप्रापक विधान वर्णित किया है। प्रजासर्जक वरदायक ब्रह्मा का कथन है कि निर्मलचेता ही ब्राह्मण है। लोकों में ब्राह्मण एक पादयुक्त महान् क्षेत्र (खेत) के समान है। इस ब्राह्मणरूप क्षेत्र में जो बीज बोया (प्रदान किया जाता है) जाता है, वही कृषिरूपेण (धर्मफल रूप) उत्पन्न होता है। इसलिये सभी उन्नतिकामी लोग सदैव सन्तुष्ट चित्त से तथा सत्पथगामी होकर ब्राह्मणमार्ग का (ब्रह्मा कथित मार्ग का) अनुसरण करें। गृहस्थ लोग सतत् वेद-संहितादि का पाठ करें। ब्राह्मण गृहस्थगण सतत् आहिताग्नि तथा अध्ययनशील रहें। सतत् सदाचारी सत्पथगामी रहें। तथापि अध्ययन से जीविका न चलायें। ऐसे लोगों को ब्रह्मत्व मिलेगा। हे देवी! ब्राह्मण्य पाकर यतात्मा व्यक्ति उसकी सदा रक्षा करे।।६०-६४।।

योनिप्रतिग्रहादानैः कर्मभिश्च शुचिस्मिते।
एतत्ते गुह्यमाख्यातं तथा शूद्रो भवेद्द्विजः।
ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुयात्॥६५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे सङ्करजातिलक्षणवर्णनं
नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२३।।

हे सुहासिनी देवी! ब्राह्मण्य पाकर योनिसम्पर्क से तथा प्रतिग्रह एवं अन्य अकार्य से सदा उसकी रक्षा करे। शूद्र जिस प्रकार द्विज होता है तथा ब्राह्मण जिस प्रकार धर्मच्युत होकर शूद्रत्व लाभ करता है, इस गोपनीय विषय को मैंने आप लोगों से कह दिया।।६५।।

।।त्रयोविंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मानव को उत्तम गति प्राप्ति का वर्णन

उमोवाच

भगवन्सर्वभूतेश सुरासुरनमस्कृत। धर्माधर्मे नृणां देव ब्रूहि मे संशयं विभो॥१॥
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधैर्देहिनः सदा। बध्यन्ते बन्धनैः कैर्वा मुच्यन्ते वा कथं वद॥२॥
केना शीलेन वै देव कर्मणा कीदृशेन वा। समाचारैर्गुणैः कैर्वा स्वर्गं यान्तीह मानवाः॥३॥

भगवती उमा कहती हैं—हे सुर-असुरों से नमस्कृत, सर्वभूतेश प्रभु! मनुष्यों के धर्म-अधर्म के विषय में मुझे सन्देह है, उसका निराकरण करिये। देहीगण सदा कर्म-मन-वाक्यजनित बन्धन में कैसे आबद्ध होते हैं? कैसे उनको मुक्तिलाभ होता है? मनुष्यगण किस प्रकार के स्वभाव से, किस कर्म से, किस प्रकार के आचार से, किस गुण से स्वरूप लाभ करते हैं? हे देव! वह कहिये।।१-३।।

शिव उवाच

देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्य उमे सदा। सर्वप्राणहितः प्रश्नः श्रूयतां बुद्धिवर्धनः॥४॥
सत्यधर्मरताः शान्ताः सर्वलिङ्गविवर्जिताः। नाधर्मेण न धर्मेण बध्यन्ते छिन्नसंशयाः॥५॥
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः। वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः॥६॥

कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किञ्चन।
ये न मज्जन्ति कस्मिंश्चित्ते न बध्नन्ति कर्मभिः॥७॥
प्राणातिपाताद्विरताः शीलवन्तो दयान्विताः।
तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः॥८॥

सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु। त्यक्तहिंस्रसमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥९॥

भगवान् शिव कहते हैं—हे धर्मार्थतत्वज्ञा! धर्मपरायणा उमा! मैं सर्व प्राणीगण के हितार्थ बुद्धिवर्द्धक प्रश्न का उत्तर देता हूं। श्रवण करो। जो सर्वसंशय छेदन करके सर्वजातीय चिह्नों को त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लेते हैं, वे सत्य धर्मतत्पर, शान्त व्यक्ति धर्म अथवा अधर्म बद्ध नहीं रहते। प्रलय तथा सृष्टितत्वज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वैराग्यवान्, मनुष्यगण कर्म-बन्धन में बंधे नहीं रहते। जो कर्म-मन-वाक्य से तनिक भी हिंसा नहीं करते, जो कहीं आसक्त नहीं होते, उनको कर्म का बन्धन घटित ही नहीं होता। जो प्राणीगण पर दया करने वाले, सबके विश्वस्त हैं, जो हिंसाचार से विरत हैं, वे स्वर्गगमन करते हैं।।४-९।।

परस्वनिर्ममा नित्यं परदारविवर्जिताः। धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥१०॥
मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये। परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥११॥

जो सदा पराये धन के प्रति लोभ नहीं रखते, परायी स्त्री का त्याग करते हैं, धर्मानुसार प्राप्त धन से जीविका चलाते हैं, ऐसे मानव स्वर्ग जाते हैं। सदा परायी नारी को माता के समान देखने वाले, धर्मानुसार प्राप्त

धन से जीविका निर्वाह करने वाले मनुष्य स्वर्गगत होते हैं। जो सतत् परनारी को मातृवत्, भगिनीवत् तथा पुत्रीवत् व्यवहार करते हैं, वे भी स्वर्गगमन करते हैं।।१०-११।।

स्वदारनिरता ये च ऋतुकालभिगामिनः। अग्राम्यसुखभोगाच्च ते नराः स्वर्गगामिनः॥१२॥

स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं संतुष्टाः स्वधनेनन च।
स्वभाग्यान्यूपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः॥१३॥

परदारेषु ये नित्यं चारित्रावृतलोचनाः। जितेन्द्रियाः शीलपरास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥१४॥

एष दैवकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा नरैः। अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः॥१५॥

अवृथापकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः। दानकर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः।
स्वर्गमार्गमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः॥१६॥

जो अपनी पत्नी के प्रति निरत रहकर मात्र उसके ऋतुकाल में ही उससे प्रसंग करते हैं, ग्राम्यसुख भोगासक्त नहीं होते, वे स्वर्ग जाते हैं। जो सुशील, इन्द्रियजित् तथा सत् स्वभाववश कुभाव से परनारी को नहीं देखते, वे स्वर्ग जाते हैं। दैव द्वारा निर्मित यह मार्ग सभी के लिये अवलम्बन लेने योग्य है। यह कलुष (पाप) के स्पर्श से रहित है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य इसका सेवन करें। इससे दुर्लभ आयुकाल व्यर्थ न जाये, इसलिये बुद्धिमान् लोग सदा इसका आश्रय ग्रहण करें। स्वर्ग चाहने वाले व्यक्ति हेतु दान, कर्म, शील, शौच, तप तथा दया से युक्त मार्ग का ही वरण करें। अन्य मार्ग पर न चलें।।१२-१६।।

उमोवाच

वाचा तु बध्यते येन मुच्यते ह्यथवा पुनः। तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ॥१७॥

भगवती उमा कहती हैं—हे भूतपति! हे निष्पाप! कृपया यह कहिये कि किस कर्म से लोग बद्ध होते हैं, तथा किस कर्म से मुक्त हो जाते हैं?।।१७।।

शिव उवाच

आत्महेतोः परार्थे वा अधर्माश्रितमेव च। ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः॥१८॥

वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च। अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥१९॥

श्लक्ष्णां वाणीं स्वच्छवर्णां मधुरां पापवर्जिताम्।
स्वगतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥२०॥

परुषं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा। न पैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥२१॥

भगवान् शिव कहते हैं—जो अपने हितार्थ अथवा अन्य हेतु मिथ्या नहीं कहते, वे स्वर्गगामी होते हैं। वृत्ति, धर्म तथा कामना सम्पन्न करने हेतु भी जो मिथ्या वाक्य नहीं कहते, वे स्वर्ग जाते हैं। जो अभ्यागत से मधुर स्निग्ध, स्वच्छ, पापरहित, स्वागत वाणी बोलने वाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगमन करते हैं। जो कठोर, कटु तथा निष्ठुर वाणी नहीं बोलते तथा चुगलखोरी से दूर रहते हैं, वे स्वर्गगमन करते हैं।।१८-२१।।

पिशुनं न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरं तथा। परपीडाकरं चैव ते नराः स्वर्गगामिनः॥२२॥

ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहं च मानवाः। सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥२३॥
शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः। सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः॥२४॥
न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम्।
शान्तिं विन्दन्ति ये क्रुद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥२५॥
एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः। शुभसत्यगुणैर्नित्यं वर्जनीया मृषा बुधैः॥२६॥

जो परनिन्दात्मक वाक् प्रयोग नहीं करते, वे स्वर्ग जाते हैं। जो कठोर आचरण (व्यवहार) एवं परद्रोह नहीं करते, इन्द्रिय दमन करते हैं, सभी प्राणीगण के प्रति समदर्शी होते हैं, वे स्वर्गगमन करते हैं। जो शठता पूर्वक वाणी नहीं बोलते, विरुद्धाचरण नहीं करते, सौम्यता पूर्वक वाक्यालाप करते हैं, वे स्वर्गगमन करते हैं। हे देवी! वाक्प्रयोगजनित शुभ सत्यगुण मंडित धर्म की सेवा करना सभी मनुष्यों हेतु विहित है। धीमान् लोगों के लिये मिथ्या बोलना सर्वदा वर्जित है।।२२-२६।।

उमोवाच

मनसा बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा। तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृक्॥२७॥

भगवती उमा कहती हैं—हे पिनाकपाणि! महाभाग, देवाधिदेव! पुरुष जिन मानस कर्मो से बद्ध हो जाता है, मुझसे उसका उपदेश करिये।।२७।।

महेश्वर उवाच

मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा।
स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु॥२८॥
दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्राणीतान्तराकृतिः। नरो बध्येत येनेह शृणु वा तं शुभानने॥२९॥
अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते सदा।
मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः॥३०॥
तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोगताः। मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः॥३१॥

महेश्वर कहते हैं—हे कल्याणी! पुरुषगण जिन मानस कर्मो द्वारा स्वर्ग जाते हैं, मैं उनका वर्णन करता हूं। श्रवण करो। मन जब दुष्कार्यरत होता है, तब अन्तःकरण भी दुष्ट हो जाता है। अतः मनुष्य उससे आबद्ध हो जाते हैं। हे शुभानने! इसके अतिरिक्त विवरण का भी श्रवण करो। जो निर्जन वन में परद्रव्य अथवा वस्तु रखी देख कर मन ही मन उसे ग्रहण करने का विचार नहीं करते, वे मनुष्य स्वर्ग जाते हैं। जो काम के वश में नहीं होते तथा निर्जन स्थानस्थ पराई नारी के प्रति दुर्भावना नहीं करते, वे स्वर्ग जाते हैं।।२८-३१।।

शत्रुं मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः।
भजन्ति मैत्र्यं सङ्गम्य ते नराः स्वर्गगामिनः॥३२॥
श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसङ्गराः। स्वैरर्थैः परिसन्तुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥३३॥
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रचित्तरताः सदा। सर्वभूतदयावन्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥३४॥

ज्ञातवन्तः क्रियावन्तः क्षमावन्तः सुहृत्प्रियाः। धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः॥३५॥
शुभानामशुभानां च कर्मणां फलसञ्चये।
निराकाङ्क्षाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः॥३६॥
पापोपेतान्वर्जयन्ति देवद्विजपराः सदा। समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥३७॥
शुभैः कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः। स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि॥३८॥

जो मनुष्यगण शत्रु तथा मित्र के प्रति तुल्यचित्त रहते हैं तथा मित्रभाव से रहते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो शास्त्रज्ञान से सम्पन्न हैं, दयालु, पवित्र, सत्यवादी तथा अपने वैभव से सन्तुष्ट हैं, वे मानव स्वर्ग में निवास करते हैं। हे देवी! जो शुभ-अशुभ किसी भी कर्म के फलसंचय की कामना से रहित हैं, वे भी स्वर्ग जाते हैं। जो उद्यम के साथ पापकर्म छोड़कर देवता, द्विज की सेवा हेतु तत्पर बने रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग में निवास करते हैं। हे देवी! शुभ कर्मफल से स्वर्ग जाने के उपाय को मैंने तुमसे कह दिया। अब क्या सुनने की इच्छा है?॥३२-३८॥

उमोवाच

महान्मे संशयः कश्चिन्मर्त्यान्प्रति महेश्वर। तस्मात्त्वं निपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि॥३९॥
केनाऽऽयुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो।
तपसा वापि देवेश केनाऽऽयुर्लभते महत्॥४०॥
क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः। विपाकं कर्मणां देव वक्तुमर्हस्यनिन्दित॥४१॥
अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथा परे।
अकुलीनाः कुलीनाश्च सम्भवन्ति तथा परे॥४२॥
दुर्दर्शाः केचिदाभान्ति नराः काष्ठमया इव।
प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवाः॥४३॥
दुष्प्रज्ञाः केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः।
महाप्रज्ञास्तथा चान्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः॥४४॥
अल्पवाचास्तथा केचिन्महावाचास्तथा परे। दृश्यन्ते पुरुषा देव ततो व्याख्यातुमर्हसि॥४५॥

भगवती उमा कहती हैं—हे महेश्वर! मनुष्यों के सम्बन्ध में मुझे महान् संशय हो रहा है। वह व्याख्या के साथ निर्मूल करिये। हे प्रभो! पुरुष किस कर्म के द्वारा, तप के द्वारा महत् आयुलाभ करता है? हे देवेश! भूतल पर किस कर्म को करने से मनुष्य की आयु क्षीण हो जाती है? हे अनिन्दित देव! यह सब कर्मविपाक कहिये। कोई-कोई मानव महाभाग्यशाली होते हैं, कोई मन्दभाग्य होते हैं, कोई कुलीन, तो कोई अकुलीन! कोई-कोई मानव काष्ठवत् कठोर प्रतीत होते हैं। वे अत्यन्त दुर्धर्ष होते हैं, कोई अतीव प्रियदर्शन भी मिलते हैं। कोई निर्घोष, कोई पण्डित होते हैं। कोई ज्ञान-विज्ञान विशारद महाप्राज्ञ होते हैं। कोई अल्पभाषी, कोई बहुभाषी होकर जन्म ग्रहण करते हैं। इसका कारण कहिये॥३९-४५॥

शिव उवाच

हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम्। मर्त्यलोके नरः सर्वो यने स्वं फलमश्नुते॥४६॥
प्राणातिपाती योगीन्द्रो दण्डहस्तो नरः सदा। नित्यमुद्यतशस्त्रश्च हन्ति भूतगणान्नरः॥४७॥
निर्दयः सर्वभूतेभ्यो नित्यमुद्वेगकारकः। अपि कीटपतङ्गानामशरण्यः सुनिर्घृणः॥४८॥
एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते। विपरीतस्तु धर्मात्मा स्वरूपेणाभिजायते॥४९॥
निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः।
यातनां निरये रौद्रां सकृच्छ्रां लभते नरः॥५०॥
यः कश्चिन्निरयात्तस्मात्समुत्तरति कर्हिचित्।
मनुष्य लभते वाऽपि हीनायुस्तत्र जायते॥५१॥
पापेन कर्मणा देवि युक्तो हिंसादिभिर्यतः। अहितः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते॥५२॥
शुभेन कर्मणा देवि प्राणिघातविवर्जितः। निक्षिप्तशस्त्रो निर्दण्डो न हिंसति कदाचन॥५३॥
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते। सर्वभूतेषु सस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे॥५४॥
ईदृशः पुरुषो नित्यं देवि देवत्वमश्नुते। उपपन्नान्सुखान्भोगान्सदाऽश्नाति मुदा युतः॥५५॥
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते। एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मणाम्।
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२४॥

भगवान् शिव कहते हैं—हे देवी! मैं तुमसे कर्मफलों का वर्णन करता हूं। मनुष्य मृत्युलोक में जैसे कर्म का जो फलभोग करते हैं, मैं वह कह रहा हूं। हे देवी! जो मानव सभी प्राणी तथा कीट-पतंगों के प्रति भी निर्दय है, जो दण्ड तथा शस्त्रों से रौद्र मुद्रा बनाकर प्राणीगण की हिंसा करता है, सभी के लिये उद्वेगकारी है, (उद्वेग पैदा करने वाले) वह मनुष्य नरकलाभ करता है। इसके विपरीत जो जैसा आचरण करता है, वह अपने कर्मानुरूप वैसी गतिलाभ करता है। हिंसक व्यक्ति नरकगामी होता है। अहिंसक को स्वर्ग मिलता है। मानव नरक में जाकर दुःख भोगता है। जो कोई नरक से (भोगोपरान्त) उद्धार पाता है, वह अल्पायु होता है। हे देवी! जो लोग प्रतिहिंसा रहित हैं, कठोर व्यवहार नहीं करते, अपने-पराये सभी में समदर्शित्व रखते हैं, जो स्नेहमय आचरण परायण हैं, जो परकीय हिंसा का अनुमोदन नहीं करते, वे मानव अपने शुभ कर्मफल द्वारा देवत्वलाभ करते हैं। वे आनन्दित होकर विविध सुखों का उपभोग करते हैं। तदनन्तर वे मनुष्यलोक में जन्म लेकर दीर्घायु हो जाते हैं। सदाचार परायण लोग सत्कर्म के अनुसार जिस प्रकार से प्राणिहिंसा त्याग कर दीर्घायु लाभ करते हैं, वह उपाय मैंने कह दिया॥४६-५६॥

॥चतुर्विंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उमामहेश्वर संवाद में देवलोक प्राप्ति कारण का वर्णन

उमोवाच

किंशीलः किंसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः। स्वर्गं समभिपद्येत सम्प्रदानेन केन वा॥१॥

भगवती उमा कहती हैं—हे देव! पुरुष किस आचार द्वारा, किस प्रकार के व्यवहार द्वारा, किस प्रकार के दान द्वारा स्वर्गलाभ करता है, कृपया कहिये।।१।।

महेश्वर उवाच

दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु। भक्षभोज्यान्नपानानां वाससां च महामतिः॥२॥

प्रतिश्रयान्सभाः कुर्यात्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा।
नित्यकादीनि कर्माणि करोति प्रयतः शुचिः॥३॥

आसनं शयनं यानं गृहं रत्नं धनं तथा। सस्यजातानि सर्वाणि सक्षेत्राण्यथ योषितः॥४॥

सुप्रशान्तमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः। एवंभूतो नरो देवि देवलोकेऽभिजायते॥५॥

तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान्। सहाप्सरोभिर्मुदितो रमित्वा नन्दनादिषु॥६॥

तस्माच्च्युतो महेशानि मानुषेषूपजायते। महाभागकुले देवि धनधान्यसमाचिते॥७॥

तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदाऽन्वितः। महाकार्यो महाभागो धनी भवति मानवः॥८॥

एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशालिनः।
ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः॥९॥

महेश्वर कहते हैं—जहां महामति मानव दाता, ब्राह्मणों का सत्कारकर्ता होता है, जो व्यक्ति दीन, आर्त्त, विपन्न लोगों को भक्ष्य-भोज्य-पानीय तथा वस्त्रादि प्रदान करता है, जन सामान्य हेतु वासस्थल, सभा, प्याऊ, पुष्करिणी, प्रभृति निर्मित कराता है, नियमित तथा पवित्र होकर नित्य कर्मों को सम्पन्न करता है, सुप्रशान्त मन द्वारा आसन, शय्या, यान, गृह, धन, रत्न, नाना अन्न, खेत तथा नारी प्रभृति प्रदान करता है, हे देवी! वह नर देवलोकवासी हो जाता है। वह वहां नन्दनकानन आदि में अप्सराओं के साथ सानन्दचित्त होकर विहार भी करता है। वह अन्ततः (पुण्यक्षय होने पर) इन अत्युत्तम भोगास्वादनोपरान्त स्वर्गच्युत होकर धन-रत्न से समृद्ध महाभाग्यवान् कुल में जन्मलाभ करता है। वह मानव वहां सभी प्रकार के काम्य भोगों से युक्त, प्रीतिपूर्ण चित्त वाला, धनी तथा विविध सत्कार्य करने वाला होकर प्रसिद्धि लाभ करता है। हे देवी! दानी लोग इहलोक में महाभाग्यवान् तथा प्रियदर्शन होकर उत्पन्न होते हैं। यह ब्रह्मा का कहना है।।२-९।।

अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजाः।
येऽन्नानि न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः॥१०॥

दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि। याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमन्विताः॥११॥

न धनानि न वासांसि न भोगान्न च काञ्चनम्।
न गाश्च नान्नविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन॥१२॥
अप्रलुब्धाश्च ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः।
एवं भूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः॥१३॥

जो व्यक्ति दान देने में कृपण है, जो निर्बोध लोग अन्नादि विद्यमान रहते भी योग्य याचक को दान नहीं देते, दीन-अन्ध-कृपण-भिक्षुकों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी जो लोभी व्यक्ति उनको धन-वस्त्र, उपभोगद्रव्य, काञ्चन, गौ, अन्नादि नहीं देते, जो अपने स्वार्थ के कारण अतीव चौकन्ने रहते हैं, जो लोभी-नास्तिक हैं, ये सभी नरकगामी होते हैं।।१०-१३।।

ते वै मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात्।
धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः॥१४॥
क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः। निराशाः सर्वभागेभ्यो जीवन्त्यधर्मजीविकाः॥१५॥
अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः। अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः॥१६॥
अपरे दम्भिनो नित्यं मानिनः परतो रताः।
आसनार्हस्यये पीठं न यच्छन्त्यल्पचेतसः॥१७॥
मार्गार्हस्य च ये मार्गं न प्रयच्छन्त्यबुद्धयः। अर्घार्हान्न च संस्कारैरचर्यन्ति यथाविधि॥१८॥
पाद्यमाचमनीयं वा प्रयच्छन्त्यभिबुद्धयः।
शुभं चाभिमतं प्रेम्णा गुरुं नाभिवदन्ति ये॥१९॥
अभिमानप्रवृद्धेन लोभेन सममास्थिताः।
सम्मान्यांश्चावमन्यन्ते वृद्धान्परिभवन्ति च॥२०॥
एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः। ते चेद्यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति च॥२१॥
वर्षपूगैस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले। श्वपाकपुल्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम्॥२२॥
कुलेषु तेऽभिजायन्ते गुरुवृद्धोपतापिनः। न दम्भी न च मानी यो देवतातिथिपूजकः॥२३॥

वे कालविपर्यय से मनुष्यलोक में दरिद्र वंश में अल्पबुद्धि होकर जन्म लेते हैं। वे सदा क्षुधा-तृष्णातुर रहते क्लेश प्राप्त करते हैं। वे सभी लोगों के बीच निन्दा के पात्र हो जाते हैं। वे सर्वत्र निराश, भोगहीन रहते, अधर्मकृत्यों से जीवन निर्वाह करते हैं। जो दान नहीं करता, वह अपने उसी कर्मफल द्वारा दरिद्र वंशोत्पन्न होकर दरिद्रता का क्लेश भोगता रहता है। अन्य दम्भ करने वाले अभिमानी लोग भी दुर्गति प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति आसन के भागी लोगों, आसनाधिकारी को भी आसन नहीं देता, जो बुद्धिमान् तथा योग्य लोगों के लिये मार्ग नहीं छोड़ते, जो योग्य अधिकारी व्यक्ति को भी पाद्य एवं आचमनीय नहीं देते, जो सप्रेम गुरु की वन्दना तथा उनका अभिवादन नहीं करते, वृद्धों को अपमानित करते तथा उनकी निन्दा करते हैं, ऐसे व्यक्ति नरकगामी हो जाते हैं। नरकयातना भोग कर वे मृत्युलोक में जब जन्म लेते हैं, चाण्डाल, पुक्कस, म्लेच्छ आदि कुल में उन

निन्दित बुद्धि वालों का जन्म होता है। गुरु, वृद्ध को पीड़ा देने वाले की यही गति होती है। जो दम्भी नहीं हैं, अभिमान नहीं करता तथा देवता-अतिथि का पूजक रहता है।।१४-२३।।

लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रसूतो मधुरं वचः। सर्वकर्मप्रियकरः सर्वभूतप्रियः सदा॥२४॥
अद्वेषी सुमुखः श्लक्ष्णः स्निग्धवाणीप्रदः सदा। स्वागतेनैव सर्वेषां भूतानामविहिंसकः॥२५॥
यथार्थं सत्क्रियापूर्वमर्चयन्नवतिष्ठते। मार्गार्हाय ददन्मार्गं गुरुमभ्यर्चयन्सदा॥२६॥
अतिथिप्रग्रहरतस्तथाऽभ्यागतपूजकः। एवंभूतो नरो देवि स्वर्गतिं प्रतिपद्यते॥२७॥

हे देवी! वह जो लोगों को सम्मान देता है, योग्य लोगों को प्रणाम करता है, मधुर बोलने वाला, विविध उत्तम कार्य में लगा रहता है, ऐसा सभी प्राणीगण का प्रिय, द्वेषहीन, प्रसन्नचित्त, श्रीसम्पन्न, सभी लोगों से कुशल प्रश्न करने वाला, अहिंसा निरत, पूज्य लोगों का यथायोग्य सम्मान-सत्कार करने वाला, लोगों के लिये राह में मार्ग देने वाला, सदा गुरुजन का सम्मानकर्त्ता, अतिथिसेवी, अभ्यागतों का आदर करने वाला होता है, उसे स्वर्गगति मिलती है।।२४-२७।।

ततो मानुष्यमासाद्य विशिष्टकुलजो भवेत्। तत्रासौ विपुलैर्भोगैः सर्वरत्नसमायुतः॥२८॥
यथार्हदाता चार्हेषु धर्मचर्यापरो भवेत्। सम्मतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः॥२९॥

(स्वर्गभोग समाप्त होने पर) ऐसे व्यक्ति पृथिवी पर उत्तम कुल में जन्म लेते हैं। वहां वे धन-रत्नादि सम्पन्न तथा विपुल भोग सम्पन्न रहते हैं। वे धर्म चर्चा एवं धर्माचरण परायण, योग्य लोगों को विविध दान प्रदाता, लोगों से सम्मानित होते हैं।।२८-२९।।

स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नरः सदा। एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा स्वयमीरितः॥३०॥
यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयङ्करः।
हस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः॥३१॥
लोष्टैः स्तम्भैरुपायैर्वा जन्तून्बाधेत शोभने।
हिंसार्थं निष्कृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव हि॥३२॥
उपक्रामति जन्तूंश्च उद्वेगजननः सदा। एवं शीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते॥३३॥
स चेन्मनुष्यतां गच्छेद्यदि कालस्य पर्ययात्।
बह्वाबाधापरिक्लिष्टे कुले जयति सोऽधमे॥३४॥
लोकद्विष्टोऽधमः पुंसां स्वयं कर्मकृतैः फलैः।
एष देवि मनुष्येषु बोद्धव्यो ज्ञातिबन्धुषु॥३५॥
अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति। मैत्री दृष्टिः पितृसमो निर्वैरो नियतेन्द्रियः॥३६॥
नोद्वेजयति भूतानि न च हन्ति दयापरः। हस्तपादैश्च नियतैर्विश्वास्यः सर्वजन्तुषु॥३७॥
न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टैर्नाऽऽयुधेन च। उद्वेजयति भूतानि शुभकर्मा दयापरः॥३८॥
एवं शीलसमाचारः स्वर्गे समुपजायते। तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत्॥३९॥

मनुष्य स्वकृत कर्मों का फल ही भोगता है। ब्रह्मा द्वारा कथित यह धर्मगति मैंने कह दिया। हे शोभने! जो रौद्र कर्मकर्त्ता हैं, जीवगण को हाथ, पैर, रस्सी, दण्ड प्रहार, पत्थर मार कर, स्तम्भों में बद्ध करके तथा अन्य प्रकार से पीड़ित करते हैं, जन्तुगण को उद्विग्न करते तथा उनको दबाते रहते हैं, ऐसे स्वभाव से हिंसक तथा दुष्ट प्रवृत्ति वाले नरकगामी होते हैं। यदि वे कालक्रमेण मनुष्य योनि में जन्म लेते भी हैं, तब क्लेशाकुलित रहते हैं तथा निम्न अधम कुल में उनका जन्म होता है। वह लोगों द्वारा द्वेष दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार वह अपने किये का फल ही भोगता है। हे देवी! जो सबसे ज्ञाति बन्धु ऐसा व्यवहार करता है, सभी के प्रति दयावान्, पितृ सम व्यवहार करने वाला, सौम्यदर्शन, वैर रहित, संयतेन्द्रिय, अहिंसक होता है, जो किसी को उद्वेग नहीं पहुंचाता, हाथ-पैर से संयमी, सबका विश्वासी, हाथ-पैर-दण्डाघात, आयुध, ढेले आदि से किसी को भी कष्ट नहीं देता, शुभ कर्म करता है, वह सुस्वभाव एवं सदाचरण कर्त्ता स्वर्गगमन करता है। वहां वह उत्तम भवन में देवगण के समान निवास करता है।।३०-३९।।

स चेत्स्वर्गक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते। अल्पायासो निरातङ्कः स जातः सुखमेधते॥४०॥
सुखभागी निरायासो निरुद्वेगः सदा नरः। एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते॥४१॥

(पुण्यक्षय होने पर) जब वह स्वर्गच्युत होता है, उसे मनुष्य योनि मिलती है। तब वह कष्ट रहित सुखी जीवन धरती पर व्यतीत करता है। वह परिश्रम तथा चिन्ता रहित स्थिति में अपूर्व सुखमय जीवन व्यतीत करता है। हे देवी! यह मैंने साधुगण की बाधा रहित गति का वर्णन कर दिया।।४०-४१।।

उमोवाच

इमे मनुष्या दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः। ज्ञानविज्ञानसम्पन्नाः प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः॥४२॥
दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः। केन कर्मविपाकेन प्रज्ञावान्पुरुषो भवेत्॥४३॥
अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानवः। एवं त्वं संशयं छिन्धि सर्वधर्मभृतां वर॥४४॥
जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा।
नराः क्लीबाश्च दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै॥४५॥

भगवती उमा कहती हैं—लोक में देखा जाता है कि कोई व्यक्ति तर्क-वितर्क पारंगत, ज्ञान-विज्ञान युक्त, बुद्धिमान् तथा तत्वज्ञ एवं अर्थज्ञ होते हैं, जबकि कुछ लोग निर्बोध, ज्ञान-विज्ञान शून्य, मूढ़ होते हैं। हे विरूपाक्ष, सर्वधर्मज्ञ! किस कर्मविपाक से मनुष्य प्रज्ञावान् होता है, किस कर्म से वह मानव अलज्ञ होता है। हे प्रभो! मेरे इस संशय को आप छिन्न करिये। कतिपय व्यक्ति जन्मान्ध, रोगी, नपुंसक भी होते हैं, इसका कारण कहिये।।४२-४५।।

महेश्वर उवाच

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सिद्धान्धर्मविदस्तथा परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाकुशलं सदा॥४६॥
वर्जयन्तोऽशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा।
लभन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके यथासुखम्॥४७॥

स चेन्मनुष्यतां याति मेधावी तत्र जायते। श्रुतं यज्ञानुगं यस्य कल्याणमुपजायते॥४८॥

महेश्वर कहते हैं—जो लोग वेदज्ञ, सिद्ध, धार्मिक पुरुषों की नित्य प्रति कुशलता पूछते रहते हैं, अशुभ कर्मों का वर्जन करते हुये शुभ कर्मों को निष्पन्न करते रहते हैं, वे इहलोक में सुखभोग करते हुये स्वर्ग में भी सुखलाभ करते हैं। यदि उनका जन्म मनुष्य योनि में हो जाता है, तब वे वहां श्रुतिज्ञाता, बुद्धिमान् तथा यज्ञकर्त्ता होते हैं। उन्हें सदा कल्याण की प्राप्ति होती रहती है।।४६-४८।।

परदारेषु ये चापि चक्षुर्दुष्टं प्रयुञ्जते। तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति हि॥४९॥

मनसाऽपि प्रदुष्टेन नग्नां पश्यन्ति ये स्त्रियम्।
रोगार्तास्ते भवन्तीह नरा दुष्कृतकारिणः॥५०॥

ये तु मूढा दुराचारा वियोगौ मैथुने रताः। पुरुषेषु सुदुष्प्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते॥५१॥

पशूंश्च ये वै बध्यन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः।
प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति वै नराः॥५२॥

पराई स्त्रियों पर कुदृष्टि रखने वाले जन्मान्ध होकर जन्म ग्रहण करते हैं। जो दुर्बुद्धि के साथ नग्ना परनारी को देखते हैं, वे दुष्कृतिकर्त्ता इहलोक में रोगी होते हैं। जो मूढ़ दुराचारी व्यक्ति पशुयोनि (वियोनि) में मैथुन करता है, वह परजन्म में नपुंसक होता है। पशु मैथुनकारी, गुरुपत्नी गमनकारी, प्रकीर्ण मैथुनकारी भी नपुंसक होकर जन्म लेते हैं।।४९-५२।।

उमोवाच

अवद्यं किं तु वै कर्म निरवद्यं तथैव च। श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम॥५३॥

भगवती उमा कहती हैं—हे देवाधिदेव! कौन कर्म निन्दित है तथा कौन कर्म प्रशस्त है? किस कर्म से मंगललाभ होता है?।।५३।।

महेश्वर उवाच

श्रेयांसं मार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान्।
धर्मान्वेषी गुकाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते॥५४॥
यदि मानुष्यतां देवि कदाचित्सन्नियच्छति।
मेधावी धारणायुक्तः प्राज्ञस्तत्रापि जायते॥५५॥

एष देवि सतां धर्मो गन्तव्यो भूतिकारकः। नृणां हितार्थाय सदा मया चैवमुदाहृतः॥५६॥

महेश्वर कहते हैं—जो मानव सत्कर्म के अनुष्ठान की कामना से ब्राह्मणों से धर्मतत्व पूछता रहता है, सदा धर्म के अन्वेषण में लगा रहता है, जो गुणों को पाने की कामना मन में रखता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। वह कालान्तर में (स्वर्गच्युत होने पर) मनुष्य योनि में जन्म लेकर मेधावी, प्रतिभावान् होता है। हे देवी! मनुष्य का हित करने वाले, साधुगण द्वारा अवलम्बनीय उन्नतिसाधक यह विविध कर्मफल मैंने कह दिया।।५४-५६।।

उमोवाच

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः। ब्राह्मणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम्॥५७॥
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धादमपरायणाः।
अव्रता भ्रष्टनियमास्तथाऽन्ये राक्षसोपमाः॥५८॥
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्मोहाश्च तथा परे। केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे॥५९॥

भगवती उमा कहती हैं—कितने ही अल्पबुद्धि धर्म से द्वेष करने वाले मानव ब्राह्मणों के सत्संग हेतु आना ही नहीं चाहते। कोई-कोई मनुष्य व्रती तो कोई अव्रती होते हैं। कोई सश्रद्ध तो कोई भ्रष्ट नियम वाले होते हैं। कोई इन्द्रियनिग्रही होते हैं तो कोई व्रतहीन राक्षसवत् दुर्धर्ष भी होते हैं। कोई यज्ञतत्पर तो कोई होम रहित दिखलाई देते हैं। किस कर्मफल से ऐसा होता है कि ऐसा भेद है? यह बतलाने की कृपा करिये।।५७-५९।।

महेश्वर उवाच

आगमालोकधर्माणां मर्यादाः पूर्वनिर्मिताः। प्रमाणेनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते ह दृढव्रताः॥६०॥
अधर्मं धर्ममित्याहुर्ये च मोहवशं गताः। अव्रता नष्टमर्यादास्ते नरा ब्रह्मराक्षसाः॥६१॥
ये वै कालकृतोद्योगात्सम्भवन्तीह मानवाः।
निर्होमा निर्वषट्कारास्ते भवन्ति नराधमाः॥६२॥
एष देवि मया सर्वसंशयच्छेदनाय ते। कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं
नाम पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२५।।

महेश्वर कहते हैं—वेद-शास्त्र ने ऐसी मर्यादा पूर्वकाल में इसलिये निर्मित किया था, जिससे मनुष्य इस प्रकार पालन करते जीवन निर्वाह करें। दृढ़व्रती लोग इन शास्त्रों को प्रमाण मानकर इनका सम्मान करते थे। जो मोह से आच्छन्न, व्रतहीन, आगम मर्यादा की अवहेलना तथा लंघनकारी हैं, जो अधर्म को धर्म कहते हैं, वे मनुष्य ब्रह्मराक्षस संज्ञा वाले ही हैं। जो होम तथा वषट्कारहीन एवं कदाचार युक्त हैं, वे कालप्रभाव से इहलोक में नराधम के रूप में जन्म ग्रहण करते हैं। हे देवी! तुम्हारा संशय नष्ट करने हेतु मैंने मनुष्य के कल्याणकारक तथा अकल्याणकारकरूपी धर्मसमूह का वर्णन किया।।६०-६३।।

।।पञ्चविंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनि तथा महेश्वर संवाद के अन्तर्गत् वासुदेव महिमा का वर्णन

व्यास उवाच

श्रुत्वैवं सा जगन्माता भर्तुर्वचनमादितः। हृष्टा बभूव सुप्रीता विस्मिता च तदा द्विजः॥१॥
ये तत्राऽऽसन्मुनिवरास्त्रिपुरारेः समीपतः। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गतास्तस्मिन्गिरौ द्विजाः॥२॥
तेऽपि सम्पूज्य तं देवं शूलपाणिं प्रणम्य च।
पप्रच्छुः संशयं चैव लोकानां हितकाम्यया॥३॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजगण! जगन्माता भगवती उमा ने अपने पति महेश्वर से यह विवरण सुना तथा वे प्रसन्नतापूर्ण विस्मयविमुग्ध हो गयीं। तीर्थयात्रा प्रसंग में जो मुनिगण इस पर्वत पर जाकर महेश्वर के सन्निधान में विद्यमान थे, उन्होंने तब शूलपाणि को प्रणाम करके लोकहितार्थ अपने संशयों के सम्बन्ध में उनसे प्रश्न किया।।१-३।।

मुनय ऊचुः

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु दक्षक्रतुविनाशन। पृच्छामस्त्वां जगन्नाथ संशयं हृदि संस्थितम्॥४॥
संसारेऽस्मिन्महाघोरे भैरवे लोमहर्षणे। भ्रमन्ति सुचिरं कालं पुरुषाश्चाल्पमेधसः॥५॥
केनोपायेन मुच्यन्ते जन्मसंसारबन्धनात्। ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि नः॥६॥

मुनिगण कहते हैं—हे दक्षयज्ञनाशक! जगन्नाथ! आपको प्रणाम! अपने हृदयगत एक संशय को हम आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। अल्पबुद्धि पुरुष लोग इस महाघोर भैरव (भयानक) लोमहर्षण संसार में चिर काल से भ्रमण कर रहे हैं। तथापि वे किसी भी उपाय से इस आवागमनमय संसार-बन्धन से मुक्त हो सकेंगे? हम यह सुनना चाहते हैं। हमें इस सम्बन्ध में अत्यन्त कुतूहल हो रहा है। आप कहिये।।४-६।।

महेश्वर उवाच

कर्मपाशनिबद्धानां नराणां दुःखभागिनाम्।
नान्योपायं प्रपश्यामि वासुदेवात्परं द्विजाः॥७॥
ये पूजयन्ति तं देवं शङ्खचक्रगदाधरम्। वाङ्मनःकर्मभिः सम्यक्ते यान्ति परमां गतिम्॥८॥
किं तेषां जीवितेनेह पशुवच्चेष्टितेन च। येषां न प्रवणं चित्तं वासुदेवे जगन्मये॥९॥

महेश्वर कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! कर्मपाशबद्ध, दुःखमार्ग व मनुष्यों हेतु एकमात्र वासुदेव की शरण की अपेक्षा कोई भी सत् उपाय नहीं है। जो इन शंख, चक्र, गदाधारी वासुदेव की पूजा वाणी, मन, कर्म से सम्यक्तः करते रहते हैं, उनको परमगति का लाभ होता है। जिनका चित्त जगन्मय वासुदेव के प्रति आसक्त नहीं है, इस लोक में वे जिस पशुवत् व्यवहारमय जीवन को व्यतीत करते हैं, उसका क्या फल?।।७-९।।

ऋषय ऊचुः

पिनाकिन्भगनेत्रघ्न सर्वलोनमस्कृत। माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छाम शङ्कर॥१०॥

महेश्वर उवाच

पितामहादपि वरः शाश्वतः पुरुषो हरिः। कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदितः॥११॥
दशबाहुर्महातेजा देवतारिनिषूदनः। श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतयूथपः॥१२॥
ब्रह्म तस्योदरभवस्तस्याहं च शिरोभवः। शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमभ्यश्च सुरासुराः॥१३॥

मुनिगण कहते हैं—हे पिनाकपाणि! सर्वलोकनमस्कृत, भग के नेत्रों का हरण करने वाले, शंकर! हम सभी वासुदेव के माहात्म्य को जानना चाहते हैं। शाश्वत पुरुष श्रीहरि ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ हैं। वे कृष्ण स्वर्णकान्ति तथा निर्मल नभोमण्डल में उदित सूर्य के समान ज्योतिष्मान् हैं। देवशत्रुनाशन वे हृषीकेश दस भुजाओं वाले, श्रीवत्सचिह्नांकित वक्ष से शोभित, सभी देवगण के प्रतिपालक हैं। ब्रह्मा ने उनके उदर से जन्म लिया था। मेरा उद्भव उनके मस्तक से है। उनके केश से ज्योतिष्कमण्डल (नक्षत्र समूह) तथा रोमों से सुर-असुर उत्पन्न हैं।।१०-१३।।

ऋषयो देहसम्भूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वताः। पितामहगृहं साक्षात्सर्वदेवगृहं च सः॥१४॥
सोऽस्याःपृथिव्याः कृत्स्नायाः स्त्रष्टा त्रिभुवनेश्वरः।
संहर्ता चैव भूतानां स्थावरस्य चरस्य च॥१५॥
स हि देवदेवः साक्षाद्देवनाथः परं तपः। सर्वज्ञः सर्वसंस्त्रष्टा सर्वगः सर्वतोमुखः॥१६॥
न तस्मात्परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। सनातनो महाभागो गोविन्द इति विश्रुतः॥१७॥
स सर्वान्पर्थिवान्सङ्ख्ये घातयिष्यति मानदः। सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुष्यं वपुरास्थितः॥१८॥
न हि देवगणाः शक्तास्त्रिविक्रमविनाकृताः। भवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जितः॥१९॥

उनके शरीर से ऋषियों का जन्म हुआ है। शाश्वत लोक भी उनसे संभूत हैं। वे ही पितामह तथा सर्वदेवसमूह के आश्रय भी हैं। वे त्रिभुवनेश्वर श्रीहरि इस समग्र धरती के तथा स्थावर-जंगमात्मक भूतसमूह के स्त्रष्टा एवं संहर्त्ता हैं। वे देवताओं के स्वामी, शत्रुनाशक तथा परदेव हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वस्त्रष्टा, सर्वगामी तथा सर्वतोमुख भी हैं। उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ त्रैलोक्य में कुछ भी नहीं है। वे सनातन, महाभाग, गोविन्द कहे जाते हैं। वे ही सनातन प्रभु मान्य लोगों का मान बढ़ाने वाले हैं। उन्होंने देवगण के कार्य साधनार्थ मानुष देह धारण करके पृथिवी पर जन्म ग्रहण किया। उन्होंने यहां अवतरित होकर सर्वदा राजाओं का संहार किया है। उन त्रिविक्रम के बिना देवता नायकहीन हो जाने के कारण किसी भी देवकर्म को सम्पन्न करने में समर्थ नहीं होते।।१४-१९।।

नायकः सर्वभूतानां सर्वभूतनमस्कृतः। एतस्य देवनाथस्य कार्यस्य च परस्य च॥२०॥
ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मर्षिशरणस्य च। ब्रह्मा वसति नाभिस्थः शरीरेऽहं च संस्थितः॥२१॥

ये सर्वभूत नमस्कृत श्रीहरि ही समस्त देवकार्य को करते हैं। उनको किसी नायक की आवश्यकता नहीं

रहती। वे स्वयं सबके नायक हैं। वे देवगण के नाथ हैं। वे ही कर्म तथा कारणरूप हैं। वे ब्रह्मभूत ब्रह्मर्षिगण के शरण हैं। उनके त्राणकर्त्ता रक्षक हैं। उनकी नाभि में ब्रह्मा का तथा देह में मेरा वास है।।२०-२१।।

सर्वाः सुखं संस्थिताश्च शरीरे तस्य देवताः।
स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोषितः॥२२॥
शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः। उत्तमेन सुशीलेन शौचेन च दमेन च॥२३॥
पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च। आरोहणप्रमाणेन वीर्येणार्जवसम्पदा॥२४॥
आनृशंस्येन रूपेण बलेन च समन्वितः। अस्त्रैःसमुदितः सर्वैर्दिव्यैरद्भुतदर्शनैः॥२५॥
योगमायासहस्राक्षो विरूपाक्षो महामनाः। वाचा मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः॥२६॥
क्षमावांश्चानहंवादी स देवो ब्रह्मदायकः। भयहर्ता भयार्तानां मित्रानन्दविवर्धनः॥२७॥
शरण्यं सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः। श्रुतवानथ सम्पन्नः सर्वभूतनमस्कृतः॥२८॥
समाश्रितानामुपकृच्छत्रूणां भयकृत्तथा। नीतिज्ञो नीतिसम्पन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः॥२९॥
भवार्थमेव देवानां बुद्ध्या परमया युतः। प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते॥३०॥
समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः।
अंशो नाम मनोः पुत्रो ह्यन्तर्धामा ततः परम्॥३१॥
अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः। प्राचीनबर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो द्विजाः॥३२॥

उन प्रभु की देह में देवता लोग सुख पूर्वक निवास करते हैं। वे देवता पुण्डरीकाक्ष, श्रीगर्भ, श्रीमान्, शार्ङ्गधनु-चक्र तथा खड्गादि आयुधधारी हैं। सर्पशत्रु गरुड़ उनके ध्वजा हैं। वे गोविन्द उत्तम चरित्र, शौच-दम-पराक्रम-बलवीर्य-शरीर-देहप्रमाण-सरलता-अनृशंसता-रूप-दिव्य-अद्भुददर्शन अस्त्रों से समन्वित रहते हैं। वे महामना विरूपाक्ष होकर भी योगमाया के प्रभाव के कारण सहस्राक्ष प्रतीत होते हैं। वे वाक्य से मित्र लोगों द्वारा भी श्लाघनीय हैं। वे ही देव बन्धुजनप्रिय, योगमाया के भी आश्रय सहस्रनेत्रधारी विरूपाक्ष हैं। वे बन्धुजनप्रिय, क्षमाशील, अहंकार रहित, मुक्तिप्रद, भयभीत लोगों का भय हरण करने वाले, आनन्दवर्द्धक, दीनजन पालक, आश्रित जन का उपकार करने वाले, शत्रुओं में भय उत्पादन करने वाले, नीतिज्ञ, नीतिपरायण, ब्रह्मवादी, इन्द्रियजित्, सर्वजन नमस्कृत हैं। वे प्रभु धर्म से संस्कृत शुभ प्राजापत्य पथ पर अवस्थित होकर सतत् देवगण के हित की कामना करते महात्मा मनु के वंश में अवतीर्ण होंगे। वे गोविन्द इन मनु के ही वंश में जन्म लेंगे। मनु के पुत्र होंगे अंश। उनका पुत्र होगा अन्तर्धान, जिसके पुत्र होंगे अनिन्द्य प्रजापति हविर्धान। इनका पुत्र होगा प्राचीनबर्हिस्।।२२-३२।।

तस्य प्रचेतःप्रमुखा भविष्यन्ति दशाऽऽत्मजाः। प्राचेतसस्तथा दक्षो भवितेह प्रजापतिः॥३३॥
दाक्षायण्यस्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्ततः। मनोश्च वंशज इला सुद्युम्नश्च भविष्यति॥३४॥
बुधात्पुरूरवाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति। नहुषो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चाऽऽत्मजः॥३५॥
यदुस्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति। क्रोष्टुश्चैव महान्पुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति॥३६॥

हे द्विजवृन्द! उसके प्रचेता प्रभृति दस पुत्र होंगे। उनके पुत्र होंगे दक्ष प्रजापति। दक्षकन्या से आदित्य का जन्म होगा। उनके पुत्र होंगे मनु। मनु के वंशज होंगे इला एवं सुद्युम्न। बुध के संसर्ग से इला के पुत्र होंगे पुरूरवा। पुरूरवा के पुत्र होंगे आयु। आयु के पुत्र नहुष। नहुष के पुत्र ययाति होंगे। ययाति के पुत्र का नाम होगा यदु। यदु के पुत्र होंगे महाबली क्रोष्टा। उनका पुत्र होगा महात्मा वृजिनिवान्।।३३-३६।।

वृजिनीवतश्च भविता उषङ्गुरपराजितः। उषङ्गोर्भविता पुत्रः शूरश्चित्ररथस्तथा॥३७॥

तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति।
तेषां विख्यातवीर्याणां चारित्रगुणशालिनाम्॥३८॥
यज्विनां च विशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसत्तमाः।
स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशाः॥३९॥

स्ववंशविस्तारकरं जनयिष्यति मानदम्। वसुदेवमिति ख्यातं पुत्रमानकदुन्दुभिम्॥४०॥

तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुवासुदेवो भविष्यति। दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः॥४१॥

उसके पुत्र होंगे विजयी उषंगु, जिनके पुत्र होंगे चित्ररथ तथा शूर। कनिष्ठ पुत्र शूर प्रसिद्ध पराक्रमी, चरित्रवान, गुणी, यज्ञ करने वाले तथा पवित्र राजाओं के वंश में जन्मेंगे। उन महापराक्रमी एवं महायशा क्षत्रियप्रवर शूर के वंशवृद्धिकारी एवं माननीय वसुदेव आनकदुन्दुभि नामक पुत्र जन्म लेंगे। इन आनकदुन्दुभि वसुदेव के पुत्र होंगे चतुर्भुज वासुदेव। ये वासुदेव दाता, ब्राह्मणों का सत्कार करने वाले, ब्रह्मभूत तथा ब्राह्मण प्रिय होंगे।।३७-४१।।

राज्ञो बद्धान्स सर्वान्वै मोक्षयिष्यति यादवः। जरासन्धं तु राजानं निर्जित्य गिरिगह्वरे॥४२॥

सर्वपार्थिवरत्नाढ्यो भविष्यति स वीर्यवान्।
पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येणापि भविष्यति॥४३॥

ये यादव वासुदेव गिरिगर्भवासी जरासन्ध राजा को पराजित करके उसके द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं को मुक्त करके सभी पृथ्वीस्थ रत्नों से सम्पन्न होंगे। ये प्रभु वासुदेव धरती पर अजेय रहेंगे।।४२-४३।।

विक्रमेण च सम्पन्नः सर्वपार्थिवपार्थिवः। शूरः संहननो भूतो द्वारकायां वसन्प्रभुः॥४४॥

पालयिष्यति गां देवीं विनिर्जित्य दुराशयान्। तं भवन्तः समासाद्य ब्राह्मणैरर्हणैर्वरैः॥४५॥

अर्चयन्तु यथान्यायं ब्रह्माणमिव शाश्वतम्।
यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम्॥४६॥

द्रष्टव्यस्तेन भगवान्वासुदेवः प्रतापवान्। दृष्टे तस्मिन्नहं दृष्टो न मेऽत्रास्ति विचारणा॥४७॥

ये विक्रमी तथा राजाओं के भी राजा होंगे। ये द्वारका में रहते हुये शूर सेना के साथ दुष्ट राजाओं पर विजय पाकर धरती का पालन करेंगे। आप सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग वहां जाकर उनकी अर्चना शाश्वत ब्रह्मवत् करेंगे। जो कोई मेरा तथा पितामह ब्रह्मा का दर्शनलाभ करना चाहता है, वह प्रतापी भगवान् वासुदेव का ही दर्शन करे। उनका दर्शन ही मेरा दर्शन है। इस सम्बन्ध में अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।।४४-४७।।

पितामहो वासुदेव इति वित्त तपोधनाः।
स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति॥४८॥
तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति।
यस्तु तं मानवो लोके संश्रयिष्यति केशवम्॥४९॥
तस्य कीर्तिर्यशश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति।
धर्माणां देशिकः साक्षाद्भविष्यति स धर्मवान्॥५०॥
धर्मविद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदाऽच्युतः।
धर्म एव सदा हि स्यादस्मिन्नभ्यर्चिते विभौ॥५१॥

हे तपोधनवृन्द! ये वासुदेव ही पितामह ब्रह्मा हैं। ये पुण्डरीकाक्ष प्रभु जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं, उसके प्रति ब्रह्मा आदि सभी देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं। जगत् में जो मानव उन केशव का आश्रय ग्रहण करता है, वह कीर्त्ति, यश तथा स्वर्ग का लाभ करता है। वह तो धर्म का नियामक ही हो जाता है। ये देवेश अच्युत विष्णु सदैव धर्मतत्वज्ञ लोगों द्वारा नमस्य हैं। इन विष्णु की अर्चना करने पर सदैव धर्म संचय होता है।।४८-५१।।

स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया। धर्मार्थं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटीः ससर्ज च॥५२॥
ताः सृष्टास्तेन विधिना पर्वते गन्धमादने। सनत्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसाऽन्विताः॥५३॥
तस्मात्स वाग्गमी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुङ्गवाः।
वन्दितो हि स वन्देत मानितो मानयीत च॥५४॥
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रितः प्रतिसंश्रयेत्। अर्चितश्चार्ययेन्नित्यं स देवो द्विजसत्तमाः॥५५॥

इन महातेजस्वी पुरुषसिंह प्रभु ने प्रजावर्ग के हित विधानार्थ अनेक कोटि ऋषिगण की सृष्टि किया। उनके द्वारा सृष्ट किये गये सनत्कुमार आदि प्रमुख ऋषिगण गन्धमादन पर्वत पर रहते हैं। हे द्विजप्रवरवृन्द! इसी कारण ये धर्मज्ञ वाग्मी देव सबके प्रणम्य हैं। वे मनुष्यों द्वारा वन्दित तथा सम्मानित होने पर उनको भी जगत् में वन्दित तथा सम्मानित कर देते हैं। ये देव दृष्टिगत होने पर भक्तों को देखते हैं। जो इनका आश्रय लेता है, ये प्रभु उसे अपना आश्रय भी प्रदान कर देते हैं। हे द्विजप्रवरगण! जो इन देव की अर्चना करता है, ये देव भी उसकी अर्चना करते हैं!।।५२-५५।।

एवं तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं तपः। आदिदेवस्य महतः सज्जनाचरितं सदा॥५६॥
भुवनेऽभ्यर्चितो नित्यं देवैरपि सनातनः। अभयेनानुरूपेण प्रपद्य तमनुव्रताः॥५७॥
कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा।
यत्नवद्विरूपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुतः॥५८॥
एष वै विहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमाः।
तं दृष्ट्वा सर्वदेवेशं दृष्टाः स्युः सुरसत्तमाः॥५९॥

महावराहं तं देवं सर्वलोकपितामहम्। अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम्॥६०॥

इन अनवद्य आदिदेव विष्णु की यही महिमा है। सज्जनवृन्द इन प्रभु के आचरण का ही अनुकरण करते हैं। देव सनातन नारायण भुवनों में सदा अर्चित होते रहते हैं। ये द्विजगण परिणाम दोष से रहित होकर कर्म-वाणी-मन द्वारा इनकी उपासना करें। देवकीनन्दन का दर्शन यत्न पूर्वक करना चाहिये। हे मुनिसत्तमगण! मैंने इस विचित्र धर्ममार्ग को कह दिया। उन सर्वदेवेश्वर का दर्शन करने से देवश्रेष्ठों के दर्शन जनित फल का लाभ होता है। सर्वलोक स्रष्टा, पितामह, महावाराहरूपी इन जगत्पति को मैं भी नित्य प्रणाम करता हूं!।।५६-६०।।

तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न संशयः। समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे॥६१॥
तस्यैव चाग्रजो भ्राता सिताद्रिनिचयप्रभः। हली बल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः॥६२॥
त्रिशिरास्तस्य देवस्य दृष्टोऽनन्त इति प्रभोः।
सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्याऽऽत्मजो बली॥६३॥
अन्तं नैवाशकद्द्रष्टुं देवस्य परमात्मनः। स च शेषो विचरते परया वै मुदा युतः॥६४॥
अन्तर्वसति भोगेन परिरभ्य वसुंधराम्। एष विष्णुः सोऽनन्तो भगवान्वसुधाधरः॥६५॥

उनका दर्शन करने पर समस्त त्रैलोक्य का दर्शनलाभ होता है (यह भी अर्थान्तर है कि इनके देह में तीनों देवों का दर्शन होता है) इन देवता के शरीर में समस्त देवगण का निवास है। इन प्रभु के अग्रज भ्राता बलराम नाम से प्रसिद्ध होंगे। वे श्वेत पर्वत जैसे कान्ति वाले तथा हलधर होंगे। धरा को धारण करने वाले अनन्त नाग ही बलराम के रूप में अवतीर्ण होंगे। कश्यप पुत्र बलवान् गरुड़ भी अपनी शक्ति से जिन परमात्मारूपी देव का अन्त नहीं पा सके, वे शेषनाग ही बलभद्र के रूप में भूतल पर विहार करेंगे, लेकिन वे बलभद्र ही पातालतल में सर्परूपी होकर अपने फणों पर धरती को धारण करते हैं।।६१-६५।।

यो रामः स हृषीकेशोऽयुतः सर्वधराधरः। तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ॥६६॥
द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ।
एष वोऽनुग्रहः प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधनाः।
तद्भवन्तो यदुश्रेष्ठं पूजयेयुः प्रयत्नतः॥६७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ऋषिमहेश्वरसंवादे षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२६॥

जो विष्णु हैं, वे ही वसुधाधारी अनन्त हैं। जो बलराम हैं, वे ही सर्व जगदाधार हृषीकेश अच्युत विष्णु हैं। ये दिव्यरूपी, दिव्य पराक्रम युक्त, चक्र-हलधारी पुरुषव्याघ्र हैं। सभी लोग इनका दर्शन करें। ये सबके माननीय हैं। हे तपस्वीगण! मैंने आप सबसे भगवान् के पुण्यमय अनुग्रह का वर्णन किया है। आप सभी लोग यत्न पूर्वक इन यदुकुलश्रेष्ठ की अर्चना करिये।।६६-६७।।

।।षड्विंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनि व्यास संवाद के अन्तर्गत् विष्णुपूजा कथन

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यं श्रुतमस्माभिरद्भुतम्। सर्वपापहरं पुण्यं धन्यं संसारनाशनम्॥१॥
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या वासुदेवं महामुने। कां गतिं यान्ति मनुजा वासुदेवार्चने रताः॥२॥
किं प्राप्नुवन्ति ते मोक्षं किंवा स्वर्गं महामुने।
अथवा किं मुनिश्रेष्ठ प्राप्नुवन्त्युभयं फलम्॥३॥
छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ संशयं नो हृदि स्थितम्।
छेत्ता नान्योऽस्ति लोकेऽस्मिंस्त्वदृते मुनिसत्तम॥४॥

मुनिगण कहते हैं—अहो! हे महामुनि! कृष्ण का सर्वपापहारी, पुण्यप्रद, धन्य, संसारनाशक वर्णन हमने सुन लिया। मनुष्य लोग इन वासुदेव की सविधि पूजा करके किस गति को प्राप्त करते हैं? वासुदेवार्चन में तत्पर लोग स्वर्ग अथवा मोक्ष में से किस फल की प्राप्ति करते हैं? हे मुनिवृन्द! क्या वे उक्त दोनों फल पा जाते हैं? हे सर्वज्ञ मुनिसत्तम! हमारे हृदय के इस संशय का उच्छेद करिये। इहलोक में आपके अतिरिक्त संशय उच्छेदक कोई भी नहीं है।।१-४।।

व्यास उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठा भवद्भिर्यदुदाहृतम्। श्रृणुध्वमानुपूर्व्येण वैष्णवानां सुखावहम्॥५॥
दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा मोक्षं व्रजन्ति वै।
किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं द्विजाः॥६॥
न तेषां दुर्लभः स्वर्गो मोक्षश्च मुनिसत्तमाः।
लभन्ते वैष्णवाः कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति दुर्लभान्॥७॥
रत्नपर्वतमारुह्य नरो रत्नं यथाऽऽददेत्। स्वेच्छया मुनिशार्दूलास्तथा कृष्णान्मनोरथान्॥८॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! साधु-साधु! आप लोगों ने जो प्रश्न किया है, वैष्णव लोगों को सुखप्रद वह विषय यथाक्रमेण श्रवण करिये। हे ब्राह्मणों! मनुष्य कृष्णोपासना की दीक्षा लेकर ही मोक्ष पाने में सक्षम हो पाता है। जो सदा भक्तिभाव से कृष्णार्चना करते हैं, उनके बारे में क्या कहूं? उनके लिये तो स्वर्ग किंवा मोक्ष कुछ भी दुर्लभ नहीं है। वैष्णव लोग जो कुछ भी कामना करते हैं, भले ही वह दुर्लभ क्यों न हो, उनको वह सब प्राप्त होता है। हे ब्राह्मणवृन्द! जिस प्रकार मानव रत्नपूर्ण पर्वत पर चढ़ कर स्वेच्छानुरूप रत्न संग्रह कर सकता है, तद्रूप वैष्णव भी कृष्ण से समस्त मनोरथ पा जाता है।।५-८।।

कल्पवृक्षं समासाद्य फलानि स्वेच्छया यथा।
गृह्णाति पुरुषो विप्रास्तथा कृष्णान्मनोरथान्॥९॥

श्रद्धया विधिवत्पूज्य वासुदेवं जगद्गुरुम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति नराः फलम्॥१०॥
आराध्य तं जगन्नाथं विशुद्धेनान्तरात्मना।
प्राप्नुवन्ति नराः कामान्सुराणामपि दुर्लभान्॥११॥
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेवाख्यमव्ययम्।
न तेषां दुर्लभं किञ्चिद्विद्यते भुवनत्रये॥१२॥
धन्यास्ते पुरुषो लोके येऽर्चयन्ति सदा हरिम्। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्॥१३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः।
सम्पूज्य तं सुरवरं प्राप्नुवन्ति परां गतिम्॥१४॥

जैसे मनुष्य कल्पवृक्ष के पास जाकर स्वेच्छानुरूप फललाभ करते हैं, तद्रूप कृष्ण से भी उसी प्रकार मनोरथ की प्राप्ति होती है। मनुष्य जगद्‌गुरु वासुदेव की सविधि श्रद्धा पूर्वक पूजा करके धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष फललाभ करते हैं। विशुद्ध अन्तःकरण से उन जगन्नाथ की आराधना करने से देवगण भी दुर्लभ अभिमत कामनाफल लाभ करते हैं। जो उन वासुदेव नामक अव्यय देव की पूजा सदैव भक्तिभाव से करते हैं, तीनों लोक में उन मनुष्यों के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। जो सर्वपापहारी, समस्त कामनापूरक देवदेव श्रीहरि की सतत् अर्चना करते हैं, जगत् में ऐसे पुरुष ही धन्य हैं। उन देवदेव की पूजा करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जाति तथा चाण्डाल सभी परमागति लाभ करते हैं।।९-१४।।

तस्माच्छृणुध्वं मुनयो यत्पृच्छत ममानघाः। प्रवक्ष्यामि समासेन गतिं तेषां महात्मनाम्॥१५॥
त्यक्त्वा मानुष्यकं देहं रोगायतनमध्रुवम्। जरामरणसंयुक्तं जलबुद्बुदसन्निभम्॥१६॥
मांसशोणितदुर्गन्धं विष्ठामूत्रादिभिर्युतम्। अस्थिस्थूणममेध्यं च स्नायुचर्मशिरान्वितम्॥१७॥
कामगेन विमानेन दिव्यगन्धर्वनादिना। तरुणादित्यवर्णेन किङ्किणीजालमालिना॥१८॥
उपगीयमाना गन्धर्वैरप्सरोभिरलङ्कृताः। व्रजन्ति लोकपालानां भवनं तु पृथक्पृथक्॥१९॥

हे पाप रहित मुनिगण! आप लोगों ने जो कुछ जिज्ञासा किया था, मैं संक्षेप में वह कहता हूं। आप सब श्रवण करिये। विष्णुसेवक मनुष्य रोग के घर, जरामरणयुक्त, जल के बुलबुले जैसे क्षणिक, अस्थिरूपी स्तम्भ वाले, स्नायु-चर्म-शिराओं से बने, मांस-रक्त-दुर्गन्धयुक्त, विष्ठा-मूत्र समन्वित, अपवित्र मनुष्य देह का त्याग करके तरुण सूर्य के वर्ण वाले, छोटी घन्टियों से सज्जित, दिव्य गन्धर्वों के नाद से नादित, इच्छानुरूप गति से चलने वाले विमान पर आरुढ़ होकर अलंकार युक्त देह वाले होकर अप्सरा-गन्धर्वों द्वारा स्तुत होते हुये तथा उनके द्वारा अलंकृत होते-होते लोकपालगण के पृथक्-पृथक् भवनों में गमन करते हैं।।१५-१९।।

मन्वन्तरप्रमाणं तु भुक्त्वा कालं पृथक्पृथक्। भुवनानि पृथक्तेषां सर्वभोगैरलङ्कृताः॥२०॥
ततोऽन्तरिक्षं लोकं ते यान्ति सर्वसुखप्रदम्।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्दशमन्वन्तरं द्विजाः॥२१॥

तस्माद्गन्धर्वलोकं तु यान्ति वै वैष्णवा द्विजाः।
विंशन्मन्वन्तरं कालं तत्र भुक्त्वा मनोरमान्॥२२॥
भोगानादित्यलोकं तु तस्माद्यान्ति सुपूजिताः।
त्रिंशन्मन्वन्तरं तत्र भोगान्भुक्त्वाऽतिदैवतान्॥२३॥
तस्माद्व्रजन्ति ते विप्राश्चन्द्रलोकं सुखप्रदम्। मन्वन्तराणां ते तत्र चत्वारिंशद्गुणान्वितम्॥२४॥

उन दस लोकपालों के भवनों में से प्रत्येक में एक-एक मन्वन्तर रहकर दस मन्वन्तर व्यतीत होने पर उस अन्तरिक्ष लोकों में वहां नाना भोग भोग कर वे सब समस्त सुखयुक्त होकर गन्धर्व लोक गमन करते हैं, जहां वे बीस मन्वन्तर पर्यन्त उत्तम भोगों का उपभोग करके सम्मान के साथ आदित्यलोक गमन करते हैं। हे द्विजों! ये वैष्णवगण वहां पर तीस मन्वन्तर पर्यन्त दैवी भोगों को भोग कर वे सुखप्रद चन्द्रलोक गमन करते हैं। वहां वे चालीस मन्वन्तर पर्यन्त रहते हैं।।२०-२४।।

कालं भुक्त्वा शुभान्भोगाञ्जरामरणवर्जिताः। तस्मान्नक्षत्रलोकं तु विमानैः समलङ्कृतम्॥२५॥
व्रजन्ति ते मुनिश्रेष्ठा गुणैः सर्वैरलङ्कृताः।
मन्वन्तराणां पञ्चाशद्भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्॥२६॥
तस्माद्व्रजन्ति ते विप्रा देवलोकं सुदुर्लभम्।
षष्टिमन्वन्तरं यावत्तत्र भुक्त्वा सुदुर्लभान्॥२७॥
भोगान्नानाविधान्विप्रा ऋग्द्व्यष्टकसमन्वितान्।
शक्रलोकं पुनस्तस्माद्गच्छन्ति सुरपूजिताः॥२८॥
मन्वन्तराणां तत्रैव भुक्त्वा कालं च सप्ततिम्।
भोगानुच्चावचान्दिव्यान्मनसः प्रीतिवर्धनान्॥२९॥
तस्माद्व्रजन्ति ते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम्।
भुक्त्वा तत्रेप्सितान्भोगान्सर्वकामगुणान्वितान्॥३०॥
मन्वन्तरमशीतिं च कालं सर्वसुखप्रदम्।
तस्मात्पैतामहं लोकं यान्ति ते वैष्णवा द्विजाः॥३१॥

वे वहां जरामरण रहित देह से (इस चालीस मन्वन्तर तक) अत्युत्तम शुभ भोगों का उपभोग करके अन्त में नाना गुणसमन्वित विमान से नक्षत्र लोक जाते हैं। हे मुनिप्रवरगण! वहां वे लोग पचास मन्वन्तर यथेच्छ सुखभोग करके वहां से सुदुर्लभ भोगों का भोग करके वहां से सुदुर्लभ देवलोक जाते हैं। वहां वे साठ मन्वन्तर पर्यन्त अष्ट ऐश्वर्ययुक्त विविध दुर्लभ भोगों को भोगने के उपरान्त देवताओं से पूजित होकर वहां से इन्द्रलोक गमन करते हैं। इन्द्रलोक में वे लोग सत्तर मन्वन्तर पर्यन्त मन को प्रसन्नता देने वाले उत्तम भोगों का उपभोग करके वहां से अत्युत्तम प्राजापत्य लोक जाते हैं। वहां वे अस्सी मन्वन्तर पर्यन्त इच्छित नाना भोग्य साधन का उपभोग करने के अनन्तर सर्वसुखदायक ब्रह्मलोक में वे वैष्णव द्विज गमन करते हैं।।२५-३१।।

मन्वन्तराणां नवति क्रीडित्वा तत्र वै सुखम्।
इहाऽऽगत्य पुनस्तस्माद्विप्राणां प्रवरे कुले॥३२॥
जायन्ते योगिनो विप्रा वेदशास्त्रार्थपारगाः।
एवं सर्वेषु लोकेषु भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्॥३३॥
इहाऽऽगत्य पुनर्यान्ति उपर्युपरि च क्रमात्। सम्भवे सम्भवे ते तु शतवर्षं द्विजोत्तमाः॥३४॥
भुक्त्वा यथेप्सितान्भोगान्यान्ति लोकान्तरं ततः।
दशजन्म यदा तेषां क्रमेणैवं प्रपूर्यते॥३५॥
तदा लोकं हरेर्दिव्यं ब्रह्मलोकाद्व्रजन्ति ते।
गत्वा तत्राक्षयान्भोगान्भुक्त्वा सर्वगुणान्वितान्॥३६॥

वहां वे वैष्णव द्विजगण नब्बे मन्वन्तर पर्यन्त तक सुख पूर्वक विहारोपरान्त मृत्युलोकस्थ उत्तम ब्राह्मणकुल वंश में वेद-शास्त्रार्थ पारंगत योगी के रूप में जन्म लेते हैं। इस प्रकार से वैष्णव लोग सभी लोकों में इच्छित सुखभोग प्राप्त करके इस लोक में जन्म लेते हैं। इसके पश्चात् इस लोक में आयु पूर्ण हो जाने पर पुनः यथाक्रमेण ऊपर-ऊपर वाले लोकों में जाते हैं। हे द्विजोत्तमगण! वे प्रति जन्म में सौ वर्ष काल धरती पर सुखभोग पूर्वक व्यतीत करके यथेच्छ लोकान्तर में जाते हैं। इस प्रकार का दस जन्म व्यतीत हो जाने पर वे वैष्णवजन तब ब्रह्मलोक से दिव्य विष्णुलोक जाते हैं। वहां वे सर्वगुणान्वित होकर रहते हैं।।३२-३६।।

मन्वन्तरशतं यावज्जन्ममृत्युविवर्जिताः। गच्छन्ति भुवनं पश्चाद्वाराहस्य द्विजोत्तमाः॥३७॥
दिव्यदेहाः कुण्डलिनो महाकाया महाबलाः।
क्रीडन्ति तत्र विप्रेन्द्राः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम्॥३८॥
दश कोटिसहस्राणि वर्षाणां द्विजसत्तमाः। तिष्ठन्ति शाश्वते भावे सर्वैर्देवैर्नमस्कृताः॥३९॥

वे वैष्णव जन्म-मृत्यु विवर्जित सौ मन्वन्तर हरिलोक रहकर तत्पश्चात् वाराहलोक जाते हैं। हे द्विजोत्तमगण! वे वैष्णव वाराहलोक में कुण्डलभूषित दिव्य देह, महाकाय, महाबली, चतुर्भुज मूर्त्ति धारण करके सभी देवगण द्वारा नमस्कृत होकर चिरकाल पर्यन्त शाश्वतरूपेण अवस्थान करते हैं।।३७-३९।।

ततो यान्ति तु ते धीरा नरसिंहगृहं द्विजाः। क्रीडन्ते तत्र मुदिता वर्षकोट्ययुतानि च॥४०॥
तदन्ते वैष्णवं यान्ति पुरं सिद्धनिषेवितम्। क्रीडन्ते तत्र सौख्येन वर्षाणामयुतानि च॥४१॥
ब्रह्मलोके पुनर्विप्रा गच्छन्ति साधकोत्तमाः।
तत्र स्थित्वा चिरं कालं वर्षकोटिशतान्बहून्॥४२॥
नारायणपुरं यान्ति ततस्ते साधकेश्वराः।
भुक्त्वा भोगांश्च विविधान्वर्षकोट्यर्बुदानि च॥४३॥
अनिरुद्धपुरं पश्चाद्दिव्यरूपा महाबलाः।
गच्छन्ति साधकवराः स्तूयमानाः सुरासुरैः॥४४॥

तत्र कोटिसहस्राणि वर्षाणां च चतुर्दश। तिष्ठन्ति वैष्णवास्तत्र जरामरणवर्जिताः॥४५॥

प्रद्युम्नस्य पुरं पश्चाद्गच्छन्ति विगतज्वराः।
तत्र तिष्ठन्ति ते विप्रा लक्षकोटिशतत्रयम्॥४६॥

वहां से वे धीर वैष्णवगण नृसिंह लोक गमन करते हैं। वहां वे दस हजार कोटि वर्ष पर्यन्त विराजित रहने के उपरान्त वे वहां से सिद्धगण सेवित विष्णुलोक जाते हैं। वहां वे अनेक युग विहार करके साधकोत्तम लोग पुनः ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। वहां अनेक शत कोटि वर्ष व्यतीत करके वे साधकोत्तम नारायणलोक गमन करते हैं। वहां कोटि अर्बुद वर्ष व्यतीत करके सुखभोग के अनन्तर वह साधक वैष्णव वरेण्य महाबली दिव्य रूप धारण करके देवता-असुरों द्वारा स्तुत होकर अनिरुद्ध लोक जाता है। वे वैष्णव लोग वहां जरामरणहीन होकर चौदह कोटि सहस्र वर्ष निवास करने के उपरान्त प्रद्युम्न लोक में जाते हैं। हे विप्रगण! वहां वे महासुख पूर्वक तीन सौ लक्ष कोटि वत्सर निवास करते हैं।।४०-४६।।

स्वच्छन्दगामिनो हृष्टा बलशक्तिसमन्विताः।
गच्छन्ति योगिनः पश्चाद्यत्र सङ्कर्षणः प्रभुः॥४७॥
तत्रोषित्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्सहस्रशः।
विशन्ति वासुदेवेति विरूपाख्ये निरञ्जने॥४८॥

विनिर्मुक्ताः परे तत्त्वे जरामरणवर्जिते। तत्र गत्वा विमुक्तास्ते भवेयुर्नात्र संशयः॥४९॥

एवं क्रमेण भुक्तिं ते प्राप्नुवन्ति मनीषिणः।
मुक्तिं च मुनिशार्दूला वासुदेवार्चने रताः॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वैष्णवानां गतिख्यापनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२७॥

तदनन्तर वे बलवीर्य समन्वित, स्वच्छन्दगामी, प्रसन्नचित्त वैष्णव योगीगण वहां जाते हैं, जहां प्रभु संकर्षण विद्यमान हैं। वहां जाकर वे वैष्णव उस पुर में दीर्घकाल तक सुखभोग करते हैं। इसके पश्चात् वे जरामरणरहित, नामरूपहीन, वासुदेव पदवाच्य निरंजन परतत्व में प्रवेश द्वारा मुक्तिलाभ करते हैं। इसमें संशय नहीं है। हे मुनिशार्दूलगण! वासुदेव की सेवा में निरत मनीषीगण इस प्रकार से क्रमशः भुक्ति तथा मुक्ति की प्राप्ति कर लेते हैं।।४७-५०।।

।।सप्तविंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास तथा मुनिगण के संवाद में विष्णु-पूजा का वर्णन

व्यास उवाच

एकादश्यामुभे पक्षे निराहारः समाहितः। स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रियः॥१॥
सम्पूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धया सुसमाहितः। पुष्पैर्गन्धैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवेद्यकैस्तथा॥२॥
उपहारैर्बहुविधैर्जप्यैर्होमप्रदक्षिणैः। स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः॥३॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः। एवं सम्पूज्य विधिवद्रात्रौ कृत्वा प्रजागरम्॥४॥
कथां वा गीतिकां विष्णोर्गायन्विष्णुपरायणः।
याति विष्णोः परं स्थानं नरो नास्त्यत्र संशयः॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—मानव दोनों पक्ष की एकादशी तिथियों पर विधिवत् स्नानोपरान्त धुला परिधान धारण करके समाहित चित्त द्वारा जितेन्द्रिय होकर उपवास करके भक्तिभाव से गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा अन्य नाना उपहार, जप, होम, प्रदक्षिणा, नाना दिव्य स्तोत्र, मनोहर गीत-वाद्य, दण्डवत्-प्रणाम तथा जय-जयकार आदि से यथाविधि विष्णु पूजा करे। तत्पश्चात् रात्रिकाल में विष्णुविषयक कथा अथवा गायन द्वारा रात्रि जागरण करना चाहिये। यह विधि पालन करने वाला विष्णुभक्त मानव विष्णुलोक गमन करता है। यह निःसंदिग्ध बात है।।१-५।।

मुनय ऊचुः

प्रजागरे गीतिकायाः फलं विष्णोर्महामुने। ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि नः॥६॥

मुनिगण कहते हैं—हे महामुनि! गायन करते रात्रि जागरण का क्या फल है? यह सुनने हेतु हमारे मन में अत्यन्त कुतूहल है। आप कहिये।।६।।

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः। गीतिकायाः फलं विष्णोर्जागरे यदुदाहृतम्॥७॥
अवन्ती नाम नगरी बभूव भुवि विश्रुता। तत्राऽऽस्ते भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः॥८॥
तस्या नगर्याः पर्यन्ते चाण्डालो गीतिकोविदः।
सद्वृत्त्योपादितधनो भृत्यानां भरणे रतः॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिशार्दूलवृन्द! रात्रि जागरण काल में गीत गायन का फल यथाक्रम सुनिये। पृथिवी पर अवन्ति नामक प्रसिद्ध नगरी थी। वहां भगवान् विष्णु की शंख-चक्र-गदाधारी मूर्त्ति थी। उस नगरी में एक ओर एक विष्णुभक्त चाण्डाल का निवास था। वह गीतकोविद था। वह सद् उपाय से उपार्जित धन द्वारा भृत्यों का पोषण करता था।।७-९।।

विष्णुभक्तः स चाण्डालो मासि मासि दृढव्रतः।
एकादश्यां समागम्य सोपवासोऽथ गायति॥१०॥
गतिका विष्णुनामङ्काः प्रादुर्भावसमाश्रिताः। गान्धारषड्जनैषादस्वरपञ्चमधैवतैः॥११॥
रात्रिजागरणे विष्णुं गाथाभिरुपगायति। प्रभाते च प्रणम्येशं द्वादश्यां गृहमेत्य च॥१२॥
जामातृभागिनेयांश्च भोजयित्वा सकन्यकाः।
ततः सपरिवारस्तु पश्चाद्भुङ्क्ते द्विजोत्तमाः॥१३॥

वह चाण्डाल नियमतः प्रतिमास एकादशी को उपवासी रहकर निषाद, षड्ज, गान्धार, पञ्चम, धैवतादि स्वर से विष्णु के प्रादुर्भाव सम्बन्धित विष्णुनाम समन्वित गीतिकाओं का गायन किया करता था। गायन करते समस्त रात्रि व्यतीत करने के पश्चात् प्रातःकाल द्वादशी के दिन प्रभु के समक्ष प्रणामोपरान्त अपने गृह आकर जामाता, भागिनेय तथा कन्या आदि को भोजन कराने के उपरान्त स्वयं सपरिवार आहार ग्रहण करता था।।१०-१३।।

एवं तस्याऽऽसतस्तत्र कुर्वतो विष्णुप्रीणनम्। गीतिकाभिर्विचित्राभिर्वयः प्रतिगतं बहु॥१४॥
एकदा चैत्रमासे तु कृष्णैकादशिगोचरे। विष्णुशुश्रूषणार्थाय ययौ वनमनुत्तमम्॥१५॥
वनजातानि पुष्पाणि ग्रहीतुं भक्तितत्परः। क्षिप्रातटे महारण्ये विभीतकतरोरधः॥१६॥
दृष्टः स राक्षसेनाथ गृहीतश्चापि भक्षितुम्।
चाण्डालस्तमथोवाच नाद्य भक्ष्यस्त्वया ह्यहम्॥१७॥

हे द्विजोत्तमगण! इस प्रकार विचित्र गीत द्वारा वह विष्णु को प्रसन्न करते-करते उसे वर्षों व्यतीत हो गये। वह अभिज्ञ चाण्डाल एक बार चैत्री एकादशी के दिन विष्णु सेवार्थ उपहार लाने हेतु वन में गया तथा क्रमशः क्षिप्रा नदी के तट पर बहेड़े के वृक्ष के नीचे पहुंचा। वहां एक राक्षस का निवास था। वह राक्षस चाण्डाल को देख कर शीघ्रता पूर्वक चाण्डाल का भक्षण करने आ गया। तब चाण्डाल ने राक्षस से कहा— "हे सज्जन! भगवान्! आज मेरा भक्षण मत करो"।।१४-१७।।

प्रातर्भोक्ष्यसि कल्याण सत्यमेष्याम्यहं पुनः।
अद्य कार्यं मम महत्तस्मान्मुञ्चस्व राक्षस॥१८॥
श्वः सत्येन समेष्यामि ततः खादसि मामिति। विष्णुशुश्रूषणार्थाय रात्रिजागरणं मया।
कार्यं न व्रतविघ्नं मे कर्तुमर्हसि राक्षस॥१९॥

"तुम मेरा भक्षण कल करना। मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कल मैं तुम्हारे निकट आ जाऊंगा। हे राक्षस! मैंने विष्णु को प्रसन्न करने हेतु रात्रि जागरण का व्रत किया है। तब मुझे खा लेना। हे राक्षस! मैंने विष्णु को प्रसन्न करने के लिये यह व्रत किया है। मेरे इस व्रत में विघ्न मत करो।।१८-१९।।

व्यास उवाच

तं राक्षसः प्रत्युवाच दशरात्रमभोजनम्। ममाभूदद्य च भवान्मया लब्धो मतङ्गज॥२०॥

न मोक्ष्ये भक्षयिष्यामि क्षुधया पीडितो भृशम्।
निशाचरवचः श्रुत्वा मातङ्गस्तमुवाच ह।
सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया वाचा स सत्यवचनैर्दृढैः॥२१॥

व्यासदेव कहते हैं—तब राक्षस ने चाण्डाल से कहा—"हे चाण्डाल! मैंने दस रात्रि से भोजन नहीं किया है। इसलिये मैं तुम्हारा भक्षण करूंगा। मैं तुमको छोड़ नहीं सकता। मैं अत्यन्त क्षुधाकातर हो रहा हूं।" राक्षस का कथन सुनकर चाण्डाल ने उसे सान्त्वना प्रदान करते हुये मधुर एवं सत्य वाक्य दृढ़ता के साथ कहा—॥२०-२१॥

मातङ्ग उवाच

सत्यमूलं जगत्सर्वं ब्रह्मराक्षस तच्छृणु। सत्येनाहं शपिष्यामि पुनरागमनाय च॥२२॥
आदित्यश्चन्द्रमा वह्निर्वायुर्भूर्द्यौर्जलं मनः। अहोरात्रं यमः सन्ध्ये द्वे विदुर्नरचेष्टितम्॥२३॥
परदारेषु यत्पापं यत्परद्रव्यहारिषु। यच्च ब्रह्महनः पापं सुरापे गुरुतल्पगे॥२४॥
बन्ध्यापतेश्च यत्पापं यत्पापं वृषलीपतेः।
यच्च देवलके पापं मत्स्यमांसाशिनश्च यत्॥२५॥
क्रोडमांसाशिनो यच्च कूर्ममांसाशिनश्च यत्।
वृथा मांसाशिनो यच्च पृष्ठमांसाशिनश्च यत्॥२६॥
कृतघ्ने मित्रघातके यत्पापं द्विधिषूपतौ। सूतकस्य च यत्पापं यत्पापं क्रूरकर्मणः॥२७॥
कृपणस्य च यत्पापं यच्च बन्ध्यातिथेरपि।
अमावस्याऽष्टमी षष्ठी कृष्णाशुक्लचतुर्दशी॥२८॥
तासु यद्गमनात्पापं यद्विप्रो व्रजति स्त्रियम्।
रजस्वलां तथा पश्चाच्छ्राद्धं कृत्वा स्त्रियं व्रजेत्॥२९॥
सर्वस्वस्नातभोज्यानां यत्पापं मलभोजने।
मित्रभार्यां गच्छतां च यत्पापं पिशुनस्य च॥३०॥

मातङ्ग (चाण्डाल) कहता है—हे ब्रह्मराक्षस! श्रवण करो। समस्त सचराचर जगत् सत्यमूलक है। मैं उसी सत्य का अवलम्बन लेकर प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं पुनः तुम्हारे पास वापस आऊंगा। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, भूमि, जल, मन, रात, दिन, यम, दोनों सन्ध्या, मनुष्यों के सभी आचरण से अवगत रहने वाले हैं। परस्त्रीगामी, परद्रव्यहर्त्ता, ब्रह्महत्यारा, मद्यपायी, गुरुपत्नीगामी, सन्ध्या का अतिक्रमण करने वाले, शूद्रापति, देवल, मत्स्यमांसभोजी, पृष्ठ मांस भक्षक, कृतघ्न, मित्रघाती, पुनर्विवाहिता (द्विधिषुपति) का पति, कच्छप मांस भोजी, शूकर मांस भोजी, अशौच संस्पर्शी, क्रूरकर्मी, कृपण तथा अतिथि को भगा देने वाला, इनको जो पातक लगता है, अमावस्या-अष्टमी-षष्ठी-दोनों पक्षीय चतुर्दशी को स्त्री संगम का जो पातक है, सन्यासी से पुनः गृहस्थ बनने का जो पातक है, ब्राह्मण को रजस्वला नारी संगम का जो पाप होता है, श्राद्धोपरान्त उसी दिन

स्त्री संगम जनित जो पाप होता है, अस्नात भोजन करने का जो पातक है, मलभोजन जनित पातक, मित्र की पत्नी गमन का पातक, चुगलखोरी जनित जो पातक है।।२२-३०।।

दम्भमायानुरक्ते च यत्पापं मधुघातिनः। ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यत्पापं तदयच्छतः॥३१॥

यच्च कन्यानृते पापं यच्च गोश्वतरानृते।
स्त्रीबालहन्तुर्यत्पापं यच्च मिथ्याभिभाषिणः॥३२॥

देववेदद्विजनृपपुत्रमित्रसतीस्त्रियः। यच्च निन्दयतां पापं गुरुमिथ्यापचारतः॥३३॥

अग्नित्यागिषु यत्पापमग्निदायिषु यद्वने। गृहेष्ट्या पातके यच्च यद्गोघ्ने यद्द्विजाधमे॥३४॥

दम्भी, कपटी को जो पातक लगता है, मधुमक्षिका घात का जो पाप है, ब्राह्मण को वचन देकर वह दान न देने का जो पातक है, गौ-अश्व-कन्या को झूठ बोलकर प्राप्त करने का जो पातक है, स्त्री हत्या-बालहत्या तथा मिथ्याभाषण जनित जो पातक है, देवता-वेद-ब्राह्मण-राजा-पुत्र-मित्र-सती नारी निन्दा का जो पातक है, गुरु के साथ कपट व्यवहार जनित पातक, अग्निहोत्र त्याग तथा किसी के गृह में अग्नि लगाने का जो पातक है, गोहत्या का जो पातक है, अधम द्विज को जो पातक लगता है।।३१-३४।।

यत्पापं परिवित्ते च यत्पापं परिवेदिनः। तयोर्दातृग्रहीत्रोश्च यत्पापं भ्रूणघातिनः॥३५॥

बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटे भाई का विवाह करने का जो पातक है, बड़े भ्राता को लगता है तथा वह छोटा भाई जिसने बड़े भाई के अविवाहित रहते विवाह किया, उस छोटे भाई को जो पातक लगता है, इनको दान देने वालों को तथा इन दोनों से दान लेने वालों को जो पातक होता है, जो पातक भ्रूणहत्यारे को होता है, ऐसे पातक मुझे लग जायें।।३५।।

किं चात्र बहुभिः प्रोक्तैः शपथैस्तव राक्षस। श्रूयतां शपथं भीमं दुर्वाच्यमपि कथ्यते॥३६॥

स्वकन्याजीविनः पापं गूढसत्येन साक्षिणः।
अयाज्ययाजके षण्ढे यत्पापं श्रवणेऽधमे॥३७॥
प्रव्रज्यावसिते यच्च ब्रह्मचारिणि कामुके।
एतैस्तु पापैर्लिप्येऽहं यदि नैष्यामि तेऽन्तिकम्॥३८॥

हे राक्षस! इन सब सामान्य पातकों के उल्लेख का कोई प्रयोजन ही नहीं है। अब मैं दुर्वाच्य भयानक शपथ कहता हूं। श्रवण करो। अपनी कन्या को विक्रय करके जीविकोपार्जन का, सत्य छिपा कर मिथ्या गवाही देने का, यज्ञ का जो अधिकारी नहीं है, उसे यज्ञ कराने का, निन्दित बातों को श्रवण करने का, प्रव्रज्या लेकर पुनः गृहस्थ होने का, ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर काम क्रिया करने का जो पाप है, वह मुझे लगे, यदि मैं तुम्हारे निकट लौट कर नहीं आता।।३६-३८।।

व्यास उवाच

मातङ्गवचनं श्रुत्वा विस्मतो ब्रह्मराक्षसः। प्राह गच्छस्व सत्येन समयं चैव पालय॥३९॥

इत्युक्तः कुणपाशेन श्वपाकः कुसुमानि तु।
समादायागमच्चैव विष्णोः स निलयं गतः॥४०॥

तानि प्रादादब्रह्मणाय सोऽपि प्रक्षाल्य चाम्भसा।
विष्णुमभ्यर्च्य निलयं जगाम स तपोधना:॥४१॥
सोऽपि मातङ्गदायादः सोपवासस्तु तां निशाम्।
गायन्हि बाह्यभूमिष्ठः प्रजागरमुपाकरोत्॥४२॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां स्नात्वा देवं नमस्य च। सत्यं स समयं कर्तुं प्रतस्थे यत्र राक्षसः॥४३॥

व्यासदेव कहते हैं—चाण्डाल का यह कथन सुन कर ब्रह्मराक्षस ने विस्मित होकर कहा—"तुम जाओ। प्रतिज्ञा पालन करना।" यह कहे जाने पर चाण्डाल पुष्प लेकर विष्णु मन्दिर की ओर चला गया। हे तपस्वी ब्राह्मणगण! चाण्डाल ने वे पुष्प वहां ब्राह्मण को प्रदान किया। ब्राह्मण ने जल से उन पुष्पों को धोकर विष्णुपूजा किया। तदनन्तर ब्राह्मण स्वगृह चला गया। तब चाण्डाल ने उपवासी रहकर विष्णुमंदिर के बाहर रह कर गायन करते-करते उस रात्रि को रात्रि जागरण सम्पन्न किया। प्रभात होने पर स्नानोपरान्त विष्णु को प्रणाम करने के उपरान्त वह चाण्डाल अपनी प्रतिज्ञा पर स्थित रहते राक्षस के निकट चला गया।।३९-४३।।

तं व्रजन्तं पथि नरः प्राह भद्र क्व गच्छसि।
स तथाऽकथयत्सर्वं सोऽप्येनं पुनरब्रवीत्॥४४॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः। महता तु प्रयत्नेन शरीरं पालयेद्बुधः॥४५॥
जीवधर्मार्थसुखं नरस्तथाऽऽप्नोति मोक्षगतिमग्र्या।
जीवन्कीर्तिमुपैति च भवति मृतस्य का कथा लोके॥४६॥
मातङ्गस्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाचाथ हेतुमत्॥४७॥

मार्ग में जाते समय चाण्डाल से किसी ने पूछा कि कहां जा रहे हो? तब चाण्डाल ने उससे समस्त घटनाक्रम कह दिया। यह प्रसंग सुनकर उस व्यक्ति ने कहा—"धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षार्थ शरीर ही प्रधान साधन है। अतः जो बुद्धिमान् है, वह महान् प्रयत्न द्वारा शरीर की रक्षा करे। जब मानव जीवित रहेगा, तभी वह धर्म, अर्थ, सुख एवं उत्तम मोक्षगति हेतु प्रयत्न करके उसे प्राप्त कर सकेगा। जीवित ही कीर्त्तिलाभ करता है। मृतक की इस लोक में क्या बात होगी।" उस पथिक का कथन सुनकर चाण्डाल ने उत्तर दिया।।४४-४७।।

मातङ्ग उवाच

भद्र सत्यं पुरस्कृत्य गच्छामि शपथाः कृताः॥४८॥

चाण्डाल कहता है—हे भद्र! तुमने जो कहा सत्य है। तथापि मैंने सत्य की शपथ लिया है। अतः जा रहा हूं।।४८।।

व्यास उवाच

तं भूयः प्रत्युवाचाथ किमेवं मूढधीर्भवान्।
किं न श्रुतं त्वया साधो मनुना यदुदीरितम्॥४९॥

गोस्त्रीद्विजानां परिरक्षणार्थं विवाहकाले सुरतप्रसङ्गे।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥५०॥
धर्मवाक्यं न च स्त्रीषु न विवाहे तथा रिपौ।
वञ्चने चार्थहानौ च स्वनाशेऽनृतके तथा।
एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गः प्रत्युवाच ह॥५१॥

व्यासदेव कहते हैं—उस व्यक्ति ने चाण्डाल से पुनः कहा—"हे साधु! तुम तो मूढ़ हो! क्या तुमने मनु का कथन नहीं सुना है कि गौ, स्त्री, ब्राह्मण के रक्षार्थ, विवाह काल में, स्त्री प्रसंग के समय तथा सर्वस्व नाश काल में अथवा प्राणहरण के समय ऐसी संभावना घटित होने पर तथा स्त्रियों से वार्तालाप काल में, शत्रु की वंचना करने में, विवाहार्थ, अर्थनाश तथा स्वनाश की स्थिति में मिथ्या भाषण जनित पाप नहीं लगता। तब यह धर्मवाक्य अमान्य हो जाता है।" पथिक का कथन सुनकर चाण्डाल ने उसे प्रत्युत्तर दिया।।४९-५१।।

मातङ्ग उवाच

मैवं वदस्व भद्रं ते सत्यं लोकेषु पूज्यते। सत्येनावाप्यते सौख्यं यत्किञ्चिज्जगतीगतम्॥५२॥
सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनाऽऽपो रसात्मिकाः।
ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मारुतः॥५३॥
धर्मार्थकामसम्प्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा। सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्यं न सन्त्यजेत्॥५४॥
सत्यं ब्रह्म परं लोके सत्यं यज्ञेषु चोत्तमम्।
सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न सन्त्यजेत्॥५५॥

चाण्डाल कहता है—हे भद्र! ऐसा वचन मत कहो। तुम्हारा मंगल हो। लोकों में सत्य ही पूजित होता है। सत्य से ही जगत् में जो कुछ सुख प्राप्त हो पाता है। सत्य के वशीभूत होकर ही सूर्य ताप देते हैं, जल रसात्मक होता है, अग्नि ज्वलन्त तथा वायु प्रवहमान होता है। मनुष्य भी सत्य द्वारा ही दुर्लभ धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का लाभ करते हैं। इसलिये कदापि सत्य का त्याग न करे। लोक में सत्य ही ब्रह्म है। सत्य ही सभी यज्ञों की तुलना में श्रेष्ठ है। सत्य ही स्वर्ग प्राप्ति का हेतु है। इसलिये सत्यत्याग कदापि न करे।।५२-५५।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सोऽथ मातङ्गस्तं प्रक्षिप्य नरोत्तमम्।
जगाम तत्र यत्राऽऽस्ते प्राणिहा ब्रह्मराक्षसः॥५६॥
तमागतं समीक्ष्यासौ चाण्डालं ब्रह्मराक्षसः।
विस्मयोत्फुल्लनयनः शिरःकम्पं तमब्रवीत्॥५७॥

व्यासदेव कहते हैं—चाण्डाल पथिक से यह कहने के पश्चात् वहां गया, जहां वह ब्रह्मराक्षस निवास करता था। ब्रह्मराक्षस ने चाण्डाल को वापस आया देख कर विस्मयविमुग्ध होकर शिर हिलाते हुये कहा—।।५६-५७।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

साधु साधु महाभाग सत्यवाक्यानुपालक। न मातङ्गमहं मन्ये भवन्तं सत्यलक्षणम्॥५८॥
कर्मणाऽनेन मन्ये त्वां ब्राह्मणं शुचिमव्ययम्।
यत्किञ्चित्त्वां भद्रमुखं प्रवक्ष्ये धर्मसंश्रयम्।
किं तत्र भवता रात्रौ कृतं विष्णुगृहे वद॥५९॥

ब्रह्मराक्षस कहता है—हे सत्यवचन पालक! महाभाग! साधु-साधु! तुम तो सत्यपरायण हो। मैं तुमको चाण्डाल नहीं कह सकता। तुम्हारा यह कार्य देख कर तो तुमको मैं पवित्र सदाचाररत तथा ब्राह्मण ही मान रहा हूं। तुम भद्र लोगों में श्रेष्ठ हो। मैं तुमसे कुछ धर्मकथा पूछना चाहता हूं। तुमने विष्णुमन्दिर में रात में क्या किया था, वह कहो।।५८-५९।।

व्यास उवाच

तमभ्युवाच मातङ्गः शृणु विष्णुगृहे मया। यत्कृतं रजनीभागे यथातथ्यं वदामि ते॥६०॥
विष्णोर्देवकुलस्याधः स्थितेनाऽऽनम्रमूर्तिना।
प्रजागरः कृतो रात्रौ गायता विष्णुगीतिकाम्॥६१॥
तं ब्रह्मराक्षसः प्राह कियन्तं कालमुच्यताम्।
प्रजागरो विष्णुगृहे कृतं (तो) भक्तिमता वद॥६२॥
तमभ्युवाच प्रहसन्विंशत्यब्दानि राक्षस। एकादश्यां मासि मासि कृतस्तत्र प्रजागरः।

व्यासदेव कहते हैं—चाण्डाल ने ब्रह्मराक्षस को प्रत्युत्तर देते हुये कहा—"श्रवण करो। मैंने जो कुछ विष्णुगृह में किया था, वह यथायथ कह रहा हूं। विष्णु मन्दिर के नीचे (बाहर) स्थित रहकर मैंने नतमस्तक स्थिति में रात्रि में जागरण करते हुये गायन किया था।" तब ब्रह्मराक्षस ने कहा—"तुम भक्ति पूर्वक कितने समय से विष्णुगृह में रात्रि जागरण कर रहे हो? यह सुन कर चाण्डाल ने उत्तर दिया "मैं बीस वर्षों से लगातार प्रतिमास की एकादशी तिथि पर ऐसे ही जागरण करता रहता हूं।।६०-६२।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः॥६३॥
यदद्य त्वां प्रवक्ष्यामि तद्भवान्वक्तुमर्हति। एकरात्रिकृतं साधो मम देहि प्रजागरम्॥६४॥
एवं त्वां मोक्षयिष्यामि मोक्षयिष्यामि नान्यथा।
त्रिः सत्येन महाभाग इत्युक्त्वा विरराम ह॥६५॥

चाण्डाल का कथन सुनकर ब्रह्मराक्षस कहने लगा "मैं तुमसे जो कुछ कह रहा हूं, तुम उसका उत्तर देना। हे साधु! तुम एक रात के जागरण का फल मुझे प्रदान करो। तुम ऐसा कार्य करोगे, तब मैं तुमको छोड़ दूंगा। मैं तीन बार सत्य की शपथ लेकर यह वचन देता हूं। अन्यथा नहीं छोड़ूंगा।" यह कहने के अनन्तर राक्षस मौन हो गया।।६३-६५।।

व्यास उवाच

मातङ्गस्तमुवाचाथ मयाऽऽत्मा ते निशाचर।
निवेदितः किमुक्तेन खादस्व स्वेच्छायाऽपि माम्॥६६॥
तमाह राक्षसो भूयो यामद्वयप्रजागरम्। सगीतं मे प्रयच्छस्व कृपां कर्तुं त्वमर्हसि॥६७॥
मातङ्गो राक्षसं प्राह किमसम्बद्धमुच्यते।
खादस्व स्वेच्छया मां त्वं न प्रदास्ये प्रजागरम्।
मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्राह तं ब्रह्मराक्षसः॥६८॥

व्यासदेव कहते हैं—यह सुनकर चाण्डाल ने उत्तर दिया "मैं स्वयं को तुम्हें समर्पित करता हूं। तुम स्वेच्छा पूर्वक मेरा आहार करो।" यह सुनकर राक्षस ने कहा—"अच्छा मात्र दो घड़ी का फल मुझे प्रदान करो।" तब चाण्डाल ने उस राक्षस से कहा—"हे निशाचर! इन बातों का क्या प्रयोजन? मैं स्वयं को निवेदित करता हूं। तुम जैसे चाहो मेरा आहार करो। मैं पुण्य प्रदान नहीं करूंगा।" चाण्डाल का यह वाक्य सुन कर राक्षस ने कहा—।।६६-६८।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

को हि दुष्टमतिर्मन्दो भवन्तं द्रष्टुमुत्सहेत्। धर्षयितुं पीडयितुं रक्षितं धर्मकर्मणा॥६९॥
दीनस्य पापग्रस्तस्य विषयैर्मोहितस्य च। नरकार्तस्य मूढस्य साधवः स्युर्दयान्विताः॥७०॥
तन्मम त्वं महाभाग कृपां कृत्वा प्रजागरम्।
यामस्यैकस्य मे देहि गच्छ वा निलयं स्वकम्॥७१॥

ब्रह्मराक्षस कहता है—कौन दुष्टमति व्यक्ति तुम्हारी ओर दृष्टिपात कर सकेगा? तुमको कष्ट देने अथवा नीचा दिखलाने की तो बात ही क्या? तुम तो स्वयं अपने कर्मानुसार रक्षित हो। मेरे समान पापग्रस्त विषय विमोहित नरक से भयभीत मूढ़ दीन के प्रति तुम्हारे समान साधुओं द्वारा दया किया जाना उचित है। हे महाभाग! कृपा करके मुझे एक प्रहर का अपना जागरण पुण्य देने की कृपा करो अथवा स्वगृह गमन करो।।६९-७१।।

व्यास उवाच

तं पुनः प्राह चाण्डालो न यास्यामि निजं गृहम्।
न चापि तव दास्यामि कथकिञ्चद्यामजागरम्।
तं प्रहस्याथ चाण्डालं प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः॥७२॥

व्यासदेव कहते हैं—तब चाण्डाल ने राक्षस को उत्तर दिया "मैं स्वगृह नहीं जाऊंगा तथा तुमको एक घड़ी का भी जागरण फल प्रदत्त नहीं करूंगा"।।७२।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

रात्र्यवसाने या गीता गीतिका कौतुकाश्रया।
तस्याः फलं प्रयच्छस्व त्राहि पापात्समुद्धर॥७३॥

ब्रह्मराक्षस कहता है—अन्ततः शेष रात्रि में तुमने जो कौतुकमय गीत का गायन किया था, उसी का फल प्रदान कर दो।।७३।।

व्यास उवाच

एवमुच्चारिते तेन मातङ्गस्तमुवाच ह।।७४।।

व्यासदेव कहते हैं—ब्रह्मराक्षस के द्वारा यह कहे जाने पर चाण्डाल कहने लगा—।।७४।।

मातङ्ग उवाच

किं पूर्वं भवता कर्म विकृतं कृतमञ्जसा। येन त्वं दोषजातेन सम्भूतो ब्रह्मराक्षसः।।७५।।

चाण्डाल कहता है—तुमने पूर्वकाल में ऐसा कौन सा विकृत कार्य किया था, जिसके परिणामस्वरूप तुम ब्रह्मराक्षस हो गये?।।७५।।

व्यास उवाच

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गं ब्रह्मराक्षसः।
प्रोवाच दुःखसन्तप्तः संस्मृत्य स्वकृतं कृतम्।।७६।।

व्यासदेव कहते हैं—तब अत्यन्त दुःखी उस राक्षस ने अपने पूर्वकृत कर्मों का स्मरण करते उत्तर दिया।।७६।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

श्रूयतां योऽहमासं वै पूर्वं यच्च मया कृतम्।
यस्मिन्कृते पापयोनिं गतवानस्मि राक्षसीम्।।७७।।
सोमशर्म इति ख्यातः पूर्वमासमहं द्विजः। पुत्रोऽध्ययनशीलस्य देवशर्मस्य यज्वनः।।७८।।
कस्यचिद्यजमानस्य सूत्रमन्त्रबहिष्कृतः। नृपस्य कर्मसक्तेन यूपकर्मसु निष्ठितः।।७८।।
आग्नीध्रं चाकरोद्यज्ञे लोभमोहप्रपीडितः। तस्मिन्परिसमाप्ते तु मौर्ख्याद्दम्भमनुष्ठतः।।८०।।
यष्टुमारब्धवानस्मि द्वादशाहं महाक्रतुम्। प्रवर्तमाने तस्मिन्स्तु कुक्षिशूलोऽभवन्मम।।८१।।
सम्पूर्णे दशरात्रे तू न समाप्ते तथा क्रतौ। विरूपाक्षस्य दीयन्त्यामाहुत्यां राक्षसे क्षणे।।८२।।
मृतोऽहं तेन दोषेण सम्भूतो ब्रह्मराक्षसः। मूर्खेण मन्त्रहीनेन सूत्रस्वरविवर्जितम्।।८३।।
अजानता यज्ञविद्यां यदिष्टं याजितं च यत्। तेन कर्मविपाकेन सम्भूतो ब्रह्मराक्षसः।।८४।।
तन्मां पापमहाम्भोधौ निमग्नं त्वं समुद्धर। प्रजागरे गीतिकैकां पश्चिमां दातुमर्हसि।।८५।।

ब्रह्मराक्षस कहता है—मैं पूर्वकाल में जो था तथा जिस कुकार्य को करने के कारण मैंने यह विकृत ब्रह्मराक्षसत्व पाया है, वह कहता हूं। सुनो। पहले मैं विविध यज्ञानुष्ठान परायण, अध्ययनशील देवशर्मा का पुत्र सोमशर्मा था। मुझे सूत्र-मन्त्रादि का तनिक भी ज्ञान नहीं था, तथापि मैंने लोभ-मोहग्रस्त होकर यजमान के यज्ञानुष्ठान में होता का कार्य लिया था। मैंने लालच के कारण यूपकर्म तथा आग्नीध्र कर्म उसमें किया। उसके

समाप्त होने पर द्वादशाह महायज्ञ प्रारम्भ हो गया। इस कार्य में प्रवृत्त होने पर मुझे कोख में पीड़ा होने लगी। दस दिन व्यतीत होने पर यज्ञ समापन नहीं हुआ था। तब मैं राक्षस क्षण में विरूपाक्ष को आहुति दे रहा था। तभी मैं मृत हो गया। उसी के परिणामस्वरूप मैं ब्रह्मराक्षस हो गया। मैं मूर्ख, मन्त्रोपदेश रहित, स्वरज्ञानहीन तथा यज्ञविद्या से अनभिज्ञ था, तथापि मैंने यज्ञकर्म कराया। यही मेरे ब्रह्मराक्षसत्व का कारण है। अब तुम मेरा उद्धार करो। मैं महापाप समुद्र में डूब रहा हूं। अब तुम जागरण की रात्रि के अन्त में अपने द्वारा गाये मात्र एक जागरण गीत का फल प्रदान करो।।७७-८५।।

व्यास उवाच

तमुवाचाथा चाण्डालो यदि प्राणिवधाद्भवान्।
निवृत्तिं कुरुते दद्यां ततः पश्चिमगीतिकाम्॥८६॥
बाढमित्यवदत्सोऽपि मातङ्गोऽपि ददौ तदा। गीतिकाफलमामन्त्र्य मुहूर्तार्धप्रजागरम्॥८७॥
तस्मिन्गीतिफले दत्ते मातङ्गं ब्रह्मराक्षसः। प्रणम्य प्रययौ हृष्टस्तीर्थवर्यं पृथूदकम्॥८८॥
तत्रानशनसंकल्पं कृत्वा प्राणाञ्जहौ द्विजाः। राक्षसत्वाद्विनिर्मुक्तो गीतिकाफलबृंहितः॥८९॥
पृथूदकप्रभावाच्च ब्रह्मलोकं च दुर्लभम्। दश वर्षसहस्त्राणि निरातङ्कोऽवसत्ततः॥९०॥
तस्यान्ते ब्राह्मणो जातो बभूव स्मृतिमान्वशी।
तस्याहं चरितं भूयः कथयिष्यामि भो द्विजाः॥९१॥

व्यासदेव कहते हैं—तब चाण्डाल ने उस राक्षस से कहा—"यदि तुम प्राणीवध से निवृत्त हो जाओ, तब मैं अंतिम गायन का फल तुमको प्रदान करूंगा।" उस ब्रह्मराक्षस ने कहा—"यही हो।" तब चाण्डाल ने यह कहा—"एकादशी की रात्रि के अन्तिम काल के आधे मुहूर्त जागरण का फल तुमको प्रदान किया।" हे द्विजगण! तदनन्तर प्रसन्नता पूर्वक वह चाण्डाल को प्रणाम करके पृथूदक तीर्थ चला गया। वहां उसने अनशन व्रत ग्रहण करके प्राण त्याग दिया। गीतिका के फलप्रभाव से उसका ब्रह्मराक्षसत्व निवृत्त हो गया। तत्पश्चात् वह उस पृथूदक माहात्म्य के कारण दुर्लभ ब्रह्मलोक चला गया, जहां वह निरातंक दस हजार वर्ष निवास करने के उपरान्त ज्ञानी, संयमी ब्राह्मण के रूप में जन्मा। हे द्विजगण! मैं उसका आख्यान भी बाद में कहूंगा। अभी मैं चाण्डाल का शेष वृत्तान्त कहता हूं, सुनें।।८६-९१।।

मातङ्गस्य कथाशेषं शृणुध्वं गदतो मम। राक्षसे तु गते धीमान्गृहमेत्य यतात्मवान्॥९२॥
तद्विप्रचरितं स्मृत्वा निर्विण्णः शुचिरप्यसौ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य ददौ भूम्याः प्रदक्षिणम्॥९३॥
कोकामुखात्समारभ्य यावद्वै स्कन्ददर्शनम्।
दृष्ट्वा स्कन्दं ययौ धाराचक्रे चापि प्रदक्षिणम्॥९४॥
ततोऽद्रिवरमागम्य विन्ध्यमुच्चशिलोच्चयम्।
पापप्रमोचनं तीर्थमाससाद स तु द्विजाः॥९५॥

स्नानं पापहारं चक्रे स तु चाण्डालवंशजः। विमुक्तपापः सस्मार पूर्वजातीरनेकशः॥९६॥

राक्षस के चले जाने के अनन्तर बुद्धिमान् चाण्डाल स्वगृह आया। उसे उस ब्रह्मराक्षस के वृत्तान्त का स्मरण करने से दुःख हो गया। उसने घर आकर पत्नी का भार पुत्रों को सौंप दिया तथा पृथिवी प्रदक्षिणार्थ निकल पड़ा। उसने कोकामुखतीर्थ से प्रारम्भ करके स्कन्दतीर्थ तक भ्रमण करने के उपरान्त धारातीर्थ की प्रदक्षिणा सम्पन्न किया। हे द्विजगण! तत्पश्चात् वह पर्वतप्रवर विन्ध्य पर्वत जाकर पापप्रमोचन तीर्थ में पहुंचा। वहां उसमें स्नान करने से प्राप्त पापमुक्ति के कारण उसे पूर्व जन्म की स्मृति जाग्रत हो गयी।।९२-९६।।

स पूर्वजन्मन्यभवद्भिक्षुः संयतवाङ्मनाः। यतकायश्च मतिमान्वेदवेदाङ्गपारगः॥९७॥

एकदा गोषु नगराद्ध्रियमाणासु तस्करैः।
भिक्षाऽवधूता रजसा मुक्ता तेनाथ भिक्षुणा॥९८॥

स तेनाधर्मदोषेण चाण्डालीं योनिमागतः। पापप्रमोचने स्नातः स मृतो नर्मदातटे॥९९॥

मूर्खोऽभूद्ब्राह्मणवरो वाराणस्यां च भो द्विजाः।
तत्रास्य वसतोऽब्दैस्तु त्रिंशद्भिः सिद्धपूरुषः॥१००॥

विरूपरूपी बभ्राम योगमायाबलान्वितः। तं दृष्ट्वा सोपहासार्थमभिवाद्याभ्युवाच ह॥१०१॥

कुशलं सिद्धपुरुषं कुतस्त्वागम्यते त्वया॥१०२॥

वह पूर्वजन्म में मन-वचन-शरीर पर संयम रखने वाला वेद-वेदांग पारंगत बुद्धिशाली सन्यासी था। एक बार तस्करों ने नगर से कतिपय गौओं का हरण किया तथा वहां से ले जाने लगे। यह सन्यासी तब भिक्षा लेकर वापस आ रहा था। गौओं के खुरों से उड़ी धूल उसकी भिक्षा सामग्री में पड़ गयी। इससे क्रोधित सन्यासी ने वह भिक्षा फेंक दिया। इसी अधर्म के परिणामस्वरूप उसे चाण्डाल योनि में यह जन्म मिला था। तत्पश्चात् उसका पाप प्रणाशन तीर्थ में स्नानोपरान्त नर्मदा तट पर ही देहान्त हो गया। तदनन्तर उसने वाराणसी में महामूर्ख ब्राह्मण के रूप में जन्म ग्रहण किया। वहां उसे तीस वर्ष की आयु में एक सिद्ध पुरुष मिले। वे विकृतरूपी, तथापि योगाभ्यास एवं जपकार्य और योगमाया बल से सम्पन्न थे। इस महामूर्ख ब्राह्मण ने उनको देख कर उपहास के कारण प्रणामोपरान्त कहा—"हे सिद्ध पुरुष! आपकी कुशल तो है? आपका कहां से आगमन हो रहा है"?।।९७-१०२।।

व्यास उवाच

एवं सम्भाषितस्तेन ज्ञातोऽहमिति चिन्त्य तु। प्रत्युवाचाथ वन्द्यस्तं स्वर्गलोकादुपागतः॥१०३॥

तं सिद्धं प्राह मूर्खोऽसौ किं त्वं वेत्सि त्रिविष्टपे। नारायणोरुप्रभवामुर्वशीमप्सरोवराम्॥१०४॥

सिद्धस्तमाह तां वेद्मि शक्रचामरधारिणीम्।
स्वर्गस्याऽऽभरणं मुख्यमुर्वशीं साधुसम्भवाम्॥१०५॥

विप्रः सिद्धमुवाचाथ ऋजुमार्गविवर्जितः। तन्मित्र मत्कृते वार्तामुर्वश्य भवताऽऽदरात्॥१०६॥

कथनीया यच्च सा ते ब्रूयादाख्यास्ते भवान्।
बाढमित्यब्रवीत्सिद्धः सोऽपि विप्रो मुदाऽन्वितः॥१०७॥

व्यासदेव कहते हैं—उन योगी सिद्ध पुरुष ने यह माना कि यह व्यक्ति मुझे पहचान चुका है। अतः उन्होंने कहा—"मैं स्वर्ग से आ रहा हूं।" तब उस महामूर्ख ब्राह्मण ने कहा—"स्वर्ग में नारायण की जंघा से उत्पन्न श्रेष्ठा अप्सरा उर्वशी को क्या आप पहचानते हैं?" सिद्ध ने उत्तर दिया "हां! इन्द्र को चंवर झलने वाली साधुसम्मता उर्वशी स्वर्ग की भूषण स्वरूपा है।" तब उस महामूर्ख ब्राह्मण ने कपटपूर्ण मन से कहा—"तब आप उसे मेरा संवाद प्रदान करियेगा। वह जो कुछ उत्तर प्रदान करे, वह मुझसे कहने की कृपा करियेगा।" इस पर सिद्ध ने स्वीकृति देते हुये कहा—"ठीक है।" यह सुनकर वह ब्राह्मण मुदित मन हो गया।।१०३-१०७।।

बभूव सिद्धोऽपि ययौ मेरुपृष्ठं सुरालयम्।
समेत्य चोर्वशीं प्राह यदुक्तोऽसौ द्विजेन तु।।१०८।।
सा प्राह तं सिद्धवरं नाहं काशिपतिं द्विजम्।
जानामि सत्यमुक्तं ते न चेतसि मम स्थितम्।।१०९।।
इत्युक्तः प्रययौ सोऽपि कालेन बहुना पुनः।
वाराणसीं ययौ सिद्धो दृष्टो मूर्खेण वै पुनः।।११०।।
दृष्टः पृष्टः किल भूयः किमाहोरुभवा तव।
सिद्धोऽब्रवीन्न जानामि मामुवाचोर्वशी स्वयम्।।१११।।
सिद्धवाक्यं ततः श्रुत्वा स्मितभिन्नौष्टसम्पुटः।
पुनः प्राह कथं वेत्सीत्येवं वाच्या त्वयोर्वशी।।११२।।
वाढमेवं करिष्यामीत्युक्त्वा सिद्धो दिवं गतः। ददर्श शक्रभवनान्निष्क्रामन्तीमथोर्वशीम्।।११३।।
प्रोवाच तां सिद्धवरः सा च तं सिद्धमब्रवीत्।
नियमं कञ्चिदपि हि करोतु द्विजसत्तमः।।११४।।
येनाहं कर्मणा सिद्ध तं जानामि न चान्यथा।
तदुर्वशीवचोऽभ्येत्य तस्मै मूर्खद्विजाय तु।।११५।।
कथयामास सिद्धस्तु सोऽपीयं नियमं जगौ।
तवाग्रे सिद्धपुरुष नियमोऽयं कृतो मया।।११६।।
न भोक्ष्येऽद्यप्रभृति वै शकटं सत्यमीरितम्।
इत्युक्तः प्रययौ सिद्धः स्वर्गे दृष्ट्वोर्वशीमथ।।११७।।

तत्पश्चात् वे सिद्ध सुमेरु पर्वत पर पहुंचे तथा उन्होंने उस उर्वशी अप्सरा से ब्राह्मण का संवाद कहा। उस ब्राह्मण का प्रसंग सुनकर उर्वशी ने कहा—"मैं काशीवासी उस विप्र को नहीं जानती।" यह सुनकर सिद्ध स्वर्ग से दीर्घकाल के उपरान्त काशी आये। वहां उस महामूर्ख विप्र ने उनको देखते ही तत्काल प्रश्न किया "उर्वशी ने क्या उत्तर दिया?" सिद्ध ने उसे बतलाया कि उर्वशी ने कहा है कि वह तुमको नहीं जानती। यह सुनकर वह महामूर्ख विप्र कहने लगा "आप उर्वशी से कहियेगा कि "तुम किस उपाय से मुझे जानोगी।" वे

सिद्ध "ठीक है" कहकर स्वर्ग गये। उस समय उर्वशी चन्द्रभवन से बाहर आ रही थी। तब सिद्ध ने ब्राह्मण का संवाद उसे सुनाया। उर्वशी ने कहा—"यदि वह ब्राह्मण मेरे प्रति कोई प्रण करे तभी मैं उसे पहचान सकूंगी।" सिद्ध ने उर्वशी का यह कथन काशी आकर मूर्खप्रवर ब्राह्मण से कहा। तब उसने एक नियम की प्रतिज्ञा करते हुये सिद्ध से कहा—"मैं आपकी उपस्थिति में यह नियम ग्रहण करता हूं कि मैं आज से कदापि शकट (धाव वृक्ष का फल अथवा छकड़ा गाड़ी) भक्षण नहीं करूंगा।" तदनन्तर सिद्ध ने स्वर्ग जाकर उर्वशी को देखा।।१०८-११७।।

प्राहासौ शकटं भोक्ष्ये नाद्यप्रभृति कर्हिचित्।
तं सिद्धमुर्वशी प्राह ज्ञातोऽसौ साम्प्रतं मया॥११८॥
नियमग्रहणादेव मूर्खो मा (ऽय) मुपाहासकः।
इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं वासं नारायणात्मजा॥११९॥
सिद्धोऽपि विचचारासौ कामचारी महीतलम्।
उर्वश्यपि वरारोहा गत्वा मत्स्योदरीं पुरीम्॥१२०॥
मत्स्योदरीजले स्नानं चक्रे दिव्यवपुर्धरा।
अथासावपि मूर्खस्तु नदीं वाराणसीं मुने॥१२१॥
जगामाथ ददर्शासौ स्नायमानामथोर्वशीम्।
तां दृष्ट्वा ववृधेऽथास्य मन्मथः क्षोभकृद्दृढम्॥१२२॥
चकार मूर्खश्रेष्टाश्च तं विवेदोर्वशी स्वयम्।
तं मूर्खं सिद्धगदितं ज्ञात्वा सस्मितमाह तम्॥१२३॥

उन सिद्ध ने उर्वशी से कहा—"उस ब्राह्मण ने प्रतिज्ञा लिया है कि वह आज से कदापि शकट नहीं खायेगा।" उर्वशी ने तब सिद्ध से कहा—"मैं उसके इस नियम ग्रहण से ही जान गयी कि वह मुझसे परिहास कर रहा है।" तदनन्तर नारायण नन्दिनी उर्वशी स्वगृह चली गयी। वे इच्छानुरूप सर्वत्र गमन शक्तियुक्त सिद्ध भी पृथिवी पर यथेच्छ पर्यटन करने लगे। तदनन्तर एक बार दिव्यरूपी वरारोहा उर्वशी वाराणसी पुरी जाकर मत्स्योदरी के जल में स्नान कर रही थी। तभी उस मूर्ख ब्राह्मण ने वहां आकर उसे देखा। उर्वशी को देखने से उसमें कामवृत्ति संचारित हो गयी। उसका चित्त क्षुब्ध हो उठा। वह अपना मनोभाव, अपनी चेष्टा द्वारा उर्वशी के समक्ष व्यक्त करने लगा। उर्वशी ने सिद्ध द्वारा इस मूर्ख विप्र का प्रसंग सुन लिया था। अतः उर्वशी उस ब्राह्मण को जान कर मुस्कराते हुये कहने लगे।।११८-१२३।।

उर्वश्युवाच

किमिच्छसि महाभाग मत्तः शीघ्रमिहोच्यताम्।
करिष्यामि वचस्तुभ्यं त्वं विश्रब्धं करिष्यसि॥१२४॥

उर्वशी कहती है—हे महाभागगण! तुम मुझसे क्या चाहते हो? शीघ्र कहना। यदि तुम मुझ पर विश्वास करते हो तब तुम्हारी बात मैं मानूंगी।।१२४।।

मूर्खब्राह्मण उवाच

आत्मप्रदानेन मम प्राणान्रक्ष शुचिस्मिते॥१२५॥

मूर्ख ब्राह्मण ने कहा—हे शुचिस्मिते! तुम स्वयं को प्रदान करो। इससे मेरे प्राणों की रक्षा होगी।।१२५।।

व्यास उवाच

तं प्राहाथोर्वशी विप्रं नियमस्थाऽस्मि साम्प्रतम्।
त्वं तिष्ठस्व क्षणमथ प्रतीक्षस्वाऽऽगतं मम्॥१२६॥
स्थितोऽस्मीत्यब्रवीद्विप्रः साऽपि स्वर्गं जगाम ह।
मासमात्रेण साऽऽयाता ददर्श तं कृशं द्विजम्॥१२७॥
स्थितं मासं नदीतीरे निराहारं सुराङ्गना। तं दृष्ट्वा निश्चययुतं भूत्वा वृद्धवपुस्ततः॥१२८॥
सा चकार नदीतीरे शकटं शर्करावृतम्। घृतेन मधुना चैव नदीं मत्स्योदरीं गता॥१२९॥
स्नात्वाऽथ भूमौ वसन्ती शकटं च यथार्थतः।
तं ब्राह्मणं समाहूय वाक्यमाह सुलोचना॥१३०॥

व्यासदेव कहते हैं—तब उर्वशी ने कहा—"मैं अभी नियम पालन कर रही हूं। तुम कुछ काल प्रतीक्षा करो। मैं लौट कर आऊंगी।" यह सुनकर मूर्ख ब्राह्मण ने कहा—"ठीक है। मैं प्रतीक्षा करता हूं।" उस समय उर्वशी स्वर्ग चली गयी। एक मास के उपरान्त उसने वापस आकर देखा वह ब्राह्मण उसी नदी तट पर बैठा निराहार रहने के कारण कृशकाय हो गया था। तब देवांगना उर्वशी ने उस ब्राह्मण को इस स्थिति में नदी तट पर देख कर वृद्धा की तरह रूप धारण किया। उसने शर्करा, घृत तथा मधु मिश्रित एक शकट (छकड़ा) का निर्माण किया। तदनन्तर उस सुलोचना उर्वशी मत्स्योदरी के तट पर स्नानोपरान्त हाथ में शकट लिये हुये भूतल पर बैठ गयी। उसने ब्राह्मण को बुलाते हुये कहा—।।१२६-१३०।।

उर्वश्युवाच

मया तीव्रं व्रतं विप्र चीर्णं सौभाग्यकारणात्।
व्रतान्ते निष्कृतिं दद्यां प्रतिगृह्णीष्व भो द्विज॥१३१॥

उर्वशी कहती है—हे विप्र! मैंने सौभाग्य लाभार्थ कठोर व्रताचरण किया था। अब मैं दक्षिणा देना चाहती हूं। इसे ग्रहण करो।।१३१।।

व्यास उवाच

सा प्राह किमिदं लोके दीयते शर्करावृतम्।
क्षुत्क्षामकण्ठः पृच्छामि साधु भद्रे समीरय॥१३२॥
सा प्राह शकटो विप्र शर्करापिष्टसंयुतः। इमं त्वं समुपादाय प्राण तर्पय मा चिरम्॥१३३॥

स तच्छ्रुत्वा संस्मृत्य क्षुधया पीडितोऽपि सन्।
प्राह भद्रे न गृह्णामि नियमो हि कृतो मया॥१३४॥
पुरतः सिद्धवर्गस्य न भोक्ष्ये शकटं त्विति।
परिज्ञानार्थमुर्वश्या ददस्वान्यस्य कस्यचित्॥१३५॥
साऽब्रवीन्नियमो भद्र कृतः काष्ठमये त्वया।
नासौ काष्ठमयो भुङ्क्ष्व क्षुधया चातिपीडितः॥१३६॥
तां ब्राह्मणः प्रत्युवाच न मया तद्विशेषणम्।
कृतं भद्रेऽथ नियमः सामान्येनैव मे कृतः॥१३७॥

व्यासदेव कहते हैं—तब उस ब्राह्मण ने कहा—"साधु भद्रे! मैं क्षुधा से शुष्ककण्ठ हो गया हूं। तुम जो यह शर्करामय द्रव्य दे रही हो, यह क्या है?" उसका कथन सुनकर उर्वशी ने कहा—"हे विप्र! यह एक शर्करापिष्ट से निर्मित शकट है। इसे ग्रहण करके प्राणों को तृप्त करो। विलम्ब मत करो।" तथापि उस ब्राह्मण ने पूर्वप्रतिज्ञा के कारण क्षुधापीड़ित होने पर भी उस समय उर्वशी से कहा—"हे भद्रे! मैं यह ग्रहण नहीं करूंगा। मैंने सिद्ध के सामने उर्वशी को परिचय देने हेतु शकट का त्याग किया था। इसे अन्य को प्रदान करो।" ब्राह्मण का कथन सुनकर उर्वशी कहने लगी "हे भद्र! तुमने तो काष्ठ के शकट हेतु प्रण किया था। यह काष्ठमय नहीं है। अतः इसे ग्रहण करो। तुम अत्यन्त क्षुधार्त हो।" इसके उत्तर में ब्राह्मण ने कहा—"हे भद्रे! मैंने प्रतिज्ञा काल में काष्ठ विशेषण नहीं कहा था। सामान्य रूप से (सभी प्रकार के शकट हेतु) प्रतिज्ञा ग्रहण किया था।।१३२-१३७।।

तं भूयः प्राह सा तन्वी न चेद्भोक्ष्यसि ब्राह्मण।
गृहं गृहीत्वा गच्छस्व कुटुम्बं तव भोक्ष्यति॥१३८॥
स तामुवाच सुदति न तावद्यामि मन्दिरम्।
इहाऽऽयाता वरारोहा त्रैलोक्येऽप्यधिका गुणैः॥१३९॥
सा मया मदनार्तेन प्रार्थिताऽऽश्वासितस्तया।
स्थीयतां क्षणमित्येवं स्थास्यामीति मयोदितम्॥१४०॥
मासमात्रं गतायास्तु तस्या भद्रे स्थितस्य च। मम सत्यानुरक्तस्य सङ्गमाय धृतव्रते॥१४१॥
तस्य सा वचनं श्रुत्वा कृत्वा स्वं रूपमुत्तमम्।
विहस्य भावगम्भीरमुर्वशी प्राह तं द्विजम्॥१४२॥

तब उर्वशी ने पुनः कहा—"हे ब्राह्मण! यदि इसे तुम भक्षण नहीं करते, तब यह लेकर घर जाओ। अपने परिवार को देना।" ब्राह्मण ने कहा—"हे सुदन्तिनी! (उत्तम दन्त वाली) मैं गृह नहीं जा सकता। त्रैलोक्य में सबसे अधिक गुणमण्डिता वरारोहा उर्वशी का आगमन हुआ था। मैंने कामार्त्त होकर उससे कहा था, तब उसने वचन दिया था कि "यहीं कुछ काल रुको।" यह आश्वासन उससे मुझे मिला था। हे व्रती भद्रे! एक मास

पूर्व उर्वशी चली गयी। मैं भी उसके संग की अभिलाषा लेकर सत्य पालनार्थ यहां आसीन हूं।" उस ब्राह्मण का यह वाक्य सुनकर उर्वशी ने अपना उत्तम स्वरूप पुनः धारण किया तथा हंसकर भाव पूर्वक ब्राह्मण से कहने लगी—।।१३८-१४२।।

उर्वश्युवाच

साधु सत्यं त्वया विप्र व्रतं निष्ठितचेतसा। निष्पादितं हठादेव मम दर्शनमिच्छता।।१४३।।

अहमेवोर्वशी विप्र त्वां जिज्ञासार्थमागता। परीक्षितो निश्चितवान्भवान्सत्यतपा ऋषिः।।१४४।।

गच्छ शूकरवोद्देशं रूपतीर्थेति विश्रुतम्।
सिद्धिं यास्यसि विप्रेन्द्र ततस्त्वं मामवाप्स्यसि।।१४५।।

उर्वशी कहती है—हे विप्र! तुमने मेरे दर्शनार्थ उत्तमरूपेण व्रताचरण किया है। मैं ही उर्वशी हूं। तुम्हारी परीक्षा लेने यहां मैं आई हूं। परीक्षा से विदित हो गया कि तुम सत्यतपा ऋषि हो। हे विप्रप्रवर! रूपतीर्थ नामक एक महातीर्थ है। तुम वहां जाओ। वहां जाने से सिद्धि मिलेगी। तुम मुझे प्राप्त कर लोगे।।१४३-१४५।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा दिवमुत्पत्य सा जगामोर्वशी द्विजाः।
स च सत्यतपा विप्रो रूपतीर्थं जगाम ह।।१४६।।
तत्र शान्तिपरो भूत्वा नियमव्रतधृक्शुचिः।
देहोत्सर्गे जगामासौ गान्धर्वं लोकमुत्तमम्।।१४७।।

तत्र मन्वन्तरशतं भोगान्भुक्त्वा यथार्थतः। बभूव सुकुले राजा प्रजारञ्जनतत्परः।।१४८।।

स यज्वा विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः।
पुत्रेषु राज्यं निक्षिप्य ययौ शौकरवं पुनः।।१४९।।
रूपतीर्थे मृतो भूयः शक्रलोकमुपागतः।
तत्र मन्वन्तरशतं भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युतः।।१५०।।

प्रतिष्ठाने पुरवरे बुधपुत्रः पुरूरवाः। बभूव तत्र चोर्वश्याः सङ्गमाय तपोधनाः।।१५१।।

व्यासदेव कहते हैं—उर्वशी के यह कहने पर वह द्विज रूपतीर्थ प्रस्थान कर गया। वह उर्वशी भी वहीं से आकाशगामिनी हो गई। वह सत्यतपा ब्राह्मण रूपतीर्थ गया। वहां स्नान से शुद्ध होकर वह यम-नियम, व्रततत्पर हो गया। उसने वहां देहत्यागोपरान्त उत्तम गन्धर्वलोक प्राप्त किया। उसने वहां यथासुख सौ मन्वन्तरों तक विहारोपरान्त अन्त में सत्कुल में जन्म लेकर प्रजापालनतत्पर राजा हो गया। अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञानुष्ठान किया। अन्ततः उसने पत्नी का भार अपने पुत्रों को सौंप कर शूकरतीर्थ की यात्रा किया। तत्पश्चात् रूपतीर्थ में प्राणत्यागोपरान्त उसने इन्द्रलोक प्राप्त किया। वहां उसने सौ मन्वन्तर पर्यन्त सुखलाभ किया। तत्पश्चात् पुण्यक्षय हो जाने पर वह प्रतिष्ठानपुर में बुधपुत्र पुरूरवा होकर जन्मा। हे तपोधनो! उस समय उसका उर्वशी से संगम हो गया।।१४६-१५१।।

एवं पुरा सत्यतपा द्विजातिस्तीर्थे प्रसिद्धे स हि रूपसंज्ञे।
आराध्य जन्मन्यथ चार्च्य विष्णुमवाप्य भोगानाथ मुक्तिमेति॥१५२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे प्रजागरे गीतिकायाः प्रशंसानिरूपणं नाम अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२८॥

एवंविध पूर्वजन्म में सत्यतपा नामक उस विप्र ने सुप्रसिद्ध विष्णुतीर्थ में नारायण विष्णु की आराधना किया। तत्पश्चात् अनेक जन्मों में भोगों का उपभोग करने के उपरान्त वह मुक्त हो गया॥१५२॥

॥अष्टाविंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त॥

अथैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनि संवादान्तर्गत् विष्णुभक्ति साधन वर्णन

मुनय ऊचुः

श्रुतं फलं गीतिकाया अस्माभिः सुप्रजागरे।
कृष्णस्य येन चाण्डालो गतोऽसौ परमां गतिम्॥१॥
यथा विष्णौ भवेद्भक्तिस्तन्नो ब्रूहि महामते।
तपसा कर्मणा येन श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम्॥२॥

मुनिगण कहते हैं—आपकी कृपा से कृष्ण सम्बन्धित जागरण गीति का फल हमने आपसे श्रवण किया, जिससे चाण्डाल ने परमगति लाभ किया था। हे महामति! अब तपस्या अथवा अन्य कर्म द्वारा जिससे विष्णु के प्रति भक्ति का उदय हो सके वह कहिये। सम्प्रति हम वही श्रवण करना चाहते हैं॥१-२॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः। यथा कृष्णे भवेद्भक्तिः पुरुषस्य महाफला॥३॥
संसारेऽस्मिन्महाघोरे सर्वभूतभयावहे। महामोहकरे नृणां नानादुःखशताकुले॥४॥
तिर्यग्योनिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः। कथञ्चिल्लभते जन्म देही मानुष्यकं द्विजाः॥५॥
मानुषत्वेऽपि विप्रत्वं विप्रत्वेऽपि विवेकिता।
विवेकाद्धर्मबुद्धिस्तु बुद्ध्या तु श्रेयसां ग्रहः॥६॥
यावत्पापक्षयं पुंसां न भवेज्जन्मसञ्चितम्। तावन्न जायते भक्तिर्वासुदेवे जगन्मये॥७॥

तस्माद्वक्ष्यामि भो विप्राः भक्तिः कृष्णे यथा भवेत्।
अन्यदेवेषु या भक्तिः पुरुषस्येह जायते॥८॥
कर्मणा मनसा वाचा तद्व्रतेनान्तरात्मना। तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमाः॥९॥
स करोति ततो विप्रा भक्तिं चाग्नेः समाहितः।
तुष्टे हुताशने तस्य भक्तिर्भवति भास्करे॥१०॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिशार्दूलगण! श्रवण करिये! कृष्ण ने जिस प्रकार मनुष्यों में महाफलद भक्ति को उत्पन्न किया था, मैं उसे यथाक्रम श्रवण कराना चाहता हूं। हे द्विजगण! मनुष्यगण हेतु भी महामोहप्रद, नाना दुःखाकुलित, सर्वभूत भयावह महाघोर संसार में नाना प्रकार के देहधारी तिर्यक् योनि में जन्म ले-लेकर तदनन्तर किसी प्रकार से मनुष्य जन्म लाभ कर पाते हैं। मनुष्यत्व में भी ब्राह्मणत्व, ब्राह्मणत्व में भी विवेकत्व, विवेकत्व में भी धर्मबुद्धि उत्पन्न होने पर उस धर्मबुद्धि से ही श्रेयःलाभ हो पाता है। जब तक पुरुषों में जन्म-जन्मान्तर में संचित पापक्षय नहीं हो जाता, तब तक उनमें वासुदेव के प्रति भक्ति उत्पन्न नहीं हो पाती। हे द्विजगण! जिस प्रकार से कृष्ण के प्रति भक्ति का जन्म होता है, वह मैं कहता हूं। इहलोक में व्यक्ति की मनसा-वाचा-कर्मणा उसी वांछित देवता के प्रति यजनविषयक बुद्धि का जन्म होता है (अर्थान्तर है कि उनमें चित्त एकाग्र करके यज्ञ द्वारा भक्ति होती है। यज्ञ भी अनेक प्रकार हैं द्रव्य यज्ञ, दान यज्ञ, तप यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, योग यज्ञ इत्यादि)। जो संशितव्रत होकर अग्नि (होमादि) के प्रति भक्तिमान् होता है, उससे अग्नि संतुष्ट होकर भास्कर के प्रति भक्ति प्रदान करते हैं।।३-१०।।

पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजाः। प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शङ्करे॥११॥
पूजां करोति विधिवत्स तु शम्भोः प्रयत्नतः।
तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे॥१२॥
सम्पूज्य तं जगन्नाथं वासुदेवाख्यमव्ययम्।
ततो भुक्तिं च मुक्तिं च स प्राप्नोति द्विजोत्तमाः॥१३॥

हे द्विजगण! जो सतत् भक्ति पूर्वक भास्करार्चन करता है, उस पर भास्कर प्रसन्न होकर उसे शंकर के प्रति भक्ति प्रदान कर देते हैं। तब वह व्यक्ति अत्यन्त प्रयत्न के साथ सविधि शंभु की पूजा में निरत हो जाये। तब शंकर के प्रसन्न होने पर वह व्यक्ति कृष्णभक्ति लाभ भी करता है। वह व्यक्ति अव्यय जगन्नाथ वासुदेव की पूजा करता है। हे द्विजोत्तमगण! तदनन्तर उसे भुक्ति तथा मुक्ति, दोनों का लाभ होता है।।११-१३।।

मुनय ऊचुः

अवैष्णवा नरा ये तु दृश्यन्ते च महामुने।
किं ते विष्णुं नार्चयन्ति ब्रूहि तत्कारणं द्विज॥१४॥

मुनिगण कहते हैं—हे महामुनिवर! जो मानव अवैष्णव हैं, वे विष्णुपूजन तत्पर नहीं रहते। हे विप्र! इसका कारण वर्णन करिये।।१४।।

व्यास उवाच

द्वौ भूतसर्गौ विख्यातौ लोकेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः।
आसुरश्च तथा दैवः पुरा सृष्टः स्वयम्भुवा॥१५॥
दैवीं प्रकृतिमासाद्य पूजयन्ति ततोऽच्युतम्।
आसुरीं योनिमापन्ना दूषयन्ति नरा हरिम्॥१६॥
मायया हतिविज्ञाना विष्णोस्ते तु नराधमाः।
अप्राप्य तं हरिं विप्रास्ततो यान्त्यधमां गतिम्॥१७॥
तस्य या गह्वरी माया दुर्विज्ञेया सुरासुरैः। महामोहकरी नृणां दुस्तरा चाकृतात्मभिः॥१८॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिसत्तमगण! इहलोक में दैव तथा आसुर, ये दो प्रकार के भूतसर्ग हैं। ये दोनों सर्ग प्रसिद्ध हैं। स्वयम्भु ने इन लोगों की सृष्टि किया है। दैवी प्रकृति वाले लोग अच्युत की उपासना करते हैं। आसुरी प्रवृत्ति वाले श्रीहरि की निन्दा करते हैं। विष्णु की माया के कारण आसुरी प्रकृति वालों का विज्ञान नष्ट हो गया है। वे नराधम हरि की प्राप्ति नहीं करते। उनको अधम गति मिलती है। यह विष्णु की माया सुर-असुर दोनों हेतु अविज्ञात है। वह अकृतात्मा, अजितेन्द्रिय मनुष्यों हेतु महामोहरूपा तथा दुस्तरा है।।१५-१८।।

मुनय ऊचुः

इच्छामस्तां महामायां ज्ञातुं विष्णोः सुदुस्तराम्।
वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ परं कौतूहलं हि नः॥१९॥

मुनिगण कहते हैं—हे धर्मज्ञ! हम इस सुदुस्तर विष्णु माया को जानना चाहते हैं। इस विषय में हमें परम कुतूहल हो रहा है। आप विष्णुमाया के सम्बन्ध में व्यक्तरूपेण कहिये।।१९।।

व्यास उवाच

स्वप्नेन्द्रजालसङ्काशा माया सा लोककर्षणी।
कः शक्नोति हरेर्मायां ज्ञातुं तां केशवादृते॥२०॥
या वृत्ता ब्राह्मणस्याऽऽसीन्मायार्थे नारदस्य च।
विडम्बनां तु तां विप्राः शृणुध्वं गदतो मम॥२१॥
प्रागासीन्नृपतिः श्रीमानाग्नीध्र इति विश्रुतः। नगरे कामदमनस्तस्याथ तनयः शुचिः॥२२॥
धर्मारामः क्षमाशीलः पितृशुश्रूषणे रतः। प्रजानुरञ्जको दक्षः श्रुतिशास्त्रकृतश्रमः॥२३॥
पिताऽस्य त्वकरोद्यत्नं विवाहाय न चैच्छत।
तं पिता प्राह किमिति नेच्छसे दारसङ्ग्रहम्॥२४॥
सर्वमेतत्सुखार्थं हि वाञ्छन्ति मनुजाः किल।
सुखमूला हि दाराश्च तस्मात्तं त्वं समाचर॥२५॥

स पितुर्वचनं श्रुत्वा तूष्णीमास्ते च गौरवात्।
मुहुर्मुहुस्तं च पिता चोदयामास भो द्विजाः॥२६॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिगण! यह विष्णुमाया लोगों का आकर्षण करने वाली है। यह स्वप्न तथा इन्द्रजालवत् है। केशव के बिना अन्य कोई माया का तत्व नहीं जान सकते। हे द्विजप्रवरगण! इस माया के कारण नारद के साथ जो विडम्बना हो गई थी, मैं वह कहता हूं। श्रवण करिये। पूर्वकाल में आग्नीध्र नामक एक श्रीमान् राजा थे। उनके पुत्र का नाम था कामदमन। वे पवित्र, क्षमाशील, प्रजापालक, पिता-माता की सेवा में तत्पर रहने वाले, श्रुति तथा शास्त्रों के ज्ञाता, धर्मात्मा थे। पिता ने उनके विवाहार्थ यत्न किया था। पिता ने कहा—"हे वत्स! तुम विवाह करो।" तथापि वह विवाहार्थ प्रवृत्त नहीं हो रहे थे। तब पिता ने उनसे पूछा—"हे वत्स! तुम किस कारण से पत्नी परिग्रह की इच्छा नहीं कर रहे हो? इसे सुख का कारण मान कर सभी इसकी कामना करते हैं। पत्नी सुख का मूल है। अतएव तुम विवाह करो।" कामदमन पिता का कथन सुनकर पिता के सम्मानार्थ मौन हो गया। उसने कोई भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। हे ब्राह्मणगण! पिता उससे विवाहार्थ बारम्बार कहने लगे।।२०-२६।।

अथासौ पितरं प्राह तात नामानुरूपता। मया समाश्रिता व्यक्ता वैष्णवी परिपालिनी॥२७॥
तं पिता प्राह सङ्गम्य नैष धर्मोऽस्ति पुत्रक।
न विधारयितव्या स्यात्पुरुषेण विपश्चिता॥२८॥
कुरु मद्वचनं पुत्र प्रभुरस्मि पिता तव। मा निमज्ज कुलं मह्यं नरके सन्ततिक्षयात्॥२९॥
स हि तं पितुरादेशं श्रुत्वा प्राह सुतो वशी।
प्रीतः संस्मृत्य पौराणीं संसारस्य विचित्रताम्॥३०॥

तदनन्तर कामदमन ने एक बार पिता से कहा—"हे तात! मैंने नामानुरूप परिपालिनी माया वैष्णवी शक्ति का आश्रय लिया है।" तब पिता ने कहा—"हे पुत्र! यह धर्म नहीं है। परिणाम ज्ञाता लोगों के लिये यह मार्ग अवलम्बन करना कदापि कर्तव्य नहीं है। तुम मेरी आज्ञा का पालन करो। मैं तुम्हारा पिता हूं। सन्तति क्रम क्षय होने पर मेरा कुल नरक में पतित हो जायेगा। ऐसा कार्य मत करो।" उस संयमित इन्द्रिय वाले पुत्र ने पिता का ऐसा आदेश सुनकर पुरातनी कथा का स्मरण करते हुये प्रीतिपूर्ण चित्त द्वारा संसार की विचित्रता का चिन्तन करते हुये पिता से निवेदन किया।।२७-३०।।

पुत्र उवाच

शृणु तात वचो मह्यं तत्त्ववाक्यं सहेतुकम्। नामानुरूपं कर्तव्यं सत्यं भवति पार्थिव॥३१॥
मया जन्मसहस्राणि जरामृत्युशतानि च। प्राप्तानि दारसंयोगवियोगानि च सर्वशः॥३२॥
तृणगुल्मलतावल्लीसरीसृपमृगद्विजः। पशुस्त्रीपुरुषाद्यानि प्राप्तानि शतशो मया॥३३॥
गणकिन्नरगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः। यक्षगुह्यकरक्षांसि दानवाप्सरसः सुराः॥३४॥
नदीश्वरसहस्रं च प्राप्तं तात पुनः पुनः। सृष्टस्तु बहुशः सृष्टौ संहारे चापि संहृतः॥३५॥

पुत्र कहता है—हे तात्! मेरा हेतुभूत तत्ववाक्य श्रवण करिये। हे राजन्! नाम के अनुरूप कर्त्तव्य होना सत्य है। मेरे सहस्रों जन्म हो चुके हैं, जिसमें मैंने हजारों बार वृद्धावस्था तथा मृत्यु को प्राप्त किया था। प्रत्येक जन्म में स्त्री परिग्रह, संयोग-वियोगादि का अनुभव किया है। मैं तृण, गुल्म, लता, वल्ली, सर्प, मृग, पक्षी, पशु, स्त्री, शूद्र योनि रूपी सैकड़ों जन्म ले चुका हूं। मैंने गण, किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा, विद्याधर, सर्प, यक्ष, गुह्यक, वृक्ष, दानव, देवता, नदी, सागर प्रभृति नाना योनियां अनेक बार प्राप्त किया है। मैं अनेक बार सृष्टि काल में सृष्ट हुआ था तथा संहारकाल में मेरा अनेक बार संहार भी हो चुका।।३१-३५।।

दारसंयोगयुक्तस्य तातेदृङ्मे विडम्बना। इतस्तृतीये यद्वृत्तं मम जन्मनि तच्छृणु।
कथयामि समासेन तीर्थमाहात्म्यसम्भवम्।।३६।।
अतीत्य जन्मानि बहूनि तात, नृदेवगन्धर्वमहोरगाणाम्।
विद्याधराणां खगकिन्नराणां, जातो हि वंशे सुतपा महर्षिः।।३७।।
ततो महाभूदचला हि भक्तिर्जनार्दने लोकपतौ मधुघ्ने।
व्रतोपवासैर्विविधैश्च भक्त्या, सन्तोषतश्चक्रगदास्त्रधारी।।३८।।
तुष्टोऽभ्यगात्पक्षिपतिं महात्मा, विष्णुः समारुह्य वरप्रदा मे।
प्राहोच्चशब्दं व्रियतां द्विजाते, वरो हि यं वाञ्छसि तं प्रदास्ये।।३९।।

इस कारण स्त्री परिग्रह मेरी दृष्टि में मात्र विडम्बना ही है। अब से पूर्व वाले तीसरे जन्म में तीर्थ माहात्म्य के कारण जो वृत्तान्त है, उसे संक्षेप में श्रवण करें। हे तात! मैंने मनुष्य, देवता, गन्धर्व, सर्प, विद्याधर, पक्षी तथा किन्नर प्रभृति अनेक जन्म अतिवाहित करने के उपरान्त महर्षियों के वंश में सुतपा नाम से जन्म लिया था। उस समय मधु राक्षस हन्ता लोकपति जनार्दन के प्रति मेरी महती भक्ति हो गयी। अतः मैंने विविध व्रतोपवास द्वारा चक्र-गदाधारी विष्णु को सन्तुष्ट किया। उस समय वे प्रभु पक्षिराज गरुड़ पर बैठ कर वरदान देने आये। उन्होंने उच्च स्वर में मुझसे वांछित वर मांगने हेतु कहा—।।३६-३९।।

ततोऽहमूचे हरिमीशितारं, तुष्टोऽसि चेत्केशव तद्वृणोमि।
या सा त्वदीया परमा हि माया, तां वेत्तुमिच्छामि जनार्दनोऽहम्।।४०।।
अथाब्रवीन्मे मधुकैटभारिः, किं ते तया ब्रह्मन्मायया वै।
धर्मार्थकामानि ददानि तुभ्यं, पुत्राणि मुख्यानि निरामयत्वम्।।४१।।

यह सुनकर मैंने ईश्वर श्रीहरि से कहा—"हे केशव! यदि आप मेरे प्रति प्रसन्न हैं, तब मैं यह वर मांगता हूं कि मैं आपकी इन परमा माया को जानना चाहता हूं। हे जनार्दन! मुझे यह वर प्रदान करिये।" यह सुनकर मधुकैटभ हन्ता हरि ने कहा—"हे ब्राह्मण! इस माया को जानने से तुमको क्या मिलेगा? मैं तुमको धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, उत्तम सन्तान तथा निरोग देह आदि वर देता हूं।।४०-४१।।

ततो मुरारिं पुनरुक्तवानहं, भूयोऽर्थधर्मार्थजिगीषितैव यत्।
माया तवेमामिह वेत्तुमिच्छे, ममाद्य तां दर्शय पुष्कराक्ष।।४२।।
ततोऽभ्युवाचाथ नृसिंहमुख्यः, श्रीशः प्रभुर्विष्णुरिदं वचो मे।

तब मैंने मुर दैत्य के शत्रु विष्णु से कहा—"यह धर्म-अर्थ-काम के प्रति जीतने की इच्छा रखने वाली माया को ही जानना चाहता हूं। हे पुष्कराक्ष! मुझे अपनी उसी माया का दर्शन करायें।" तब नृसिंह, श्रीश, प्रभु विष्णु ने मुझसे यह कहा—।।४२।।

विष्णुरुवाच

मायां मदीयां न हि वेत्ति कश्चिन्न चापि वा वेत्स्यति कश्चिदेव॥४३॥
पूर्वं सुरर्षिर्द्विजनारदाख्यो, ब्रह्मात्मजोऽभून्मम भक्तियुक्तः।
तेनापि पूर्वं भवता यथैव, सन्तोषितो भक्तिमता हि तद्वत्॥४४॥
वरं च दत्तं (दातुं) गतवानहं च, स चापि वव्रे वरमेतदेव।
निवारितो मामतिमूढभावाद्धवान्यथैवं वृतवान्वरं च॥४५॥
ततो निमग्नोऽम्भसि नारद त्वं, मायां हि मे वेत्स्यसि सन्निमग्नः।
ततो निमग्नोऽम्भसि नारदोऽसौ, कन्या बभौ काशिपतेः सुशीला॥४६॥
तां यौवनाढ्यामथ चारुधर्मिणे, विदर्भराज्ञस्तनयाय वै ददौ।
स्व (सु) धर्मणे सोऽपि तया समेतः, सिषेव कामानतुलान्महर्षिः॥४७॥
स्वर्गे गतेऽसौ पितरि प्रतापवान्राज्यं क्रमायातमवाप्य हृष्टः।
विदर्भराष्ट्रं परिपालयानः, पुत्रैः सपौत्रैर्बहुभिर्वृतोऽभूत्॥४८॥

भगवान् विष्णु कहते हैं—हे द्विज! मेरी माया को यथार्थतः कोई नहीं जानता न जान सकता है। पूर्वकाल में मेरे प्रति भक्तिमान् ब्रह्मपुत्र नारद ने तुम्हारी तरह ही मुझे सन्तुष्ट किया था। उनको जब मैंने अनेक वर देना चाहा, तब उन्होंने तुम्हारी ही तरह यही वर मांगा। मैंने उनको सिवाय अन्य वर मांगने हेतु कहा भी तथापि उन्होंने मूढ़ता के कारण अन्य वरों के प्रति असम्मत होकर यही वर लेना चाहा। तब मैंने नारद से कहा—"हे नारद! तुम जल में डुबकी लगा कर मेरी माया का दर्शन पा सकोगे। तब नारद को जल में डुबकी लगाते ही काशीराज की सुशीला नामक कन्या का रूप मिल गया। काशीपति ने इस यौवनवती कन्या को विदर्भ राजकुमार सुधर्मा नामक क्षत्रियपुत्र से विवाह कर दिया। यह सुधर्मा उस कन्या के साथ विपुल भोगसुख का आनन्द लेते समय व्यतीत करने लगे। तदनन्तर पिता की मृत्यु हो जाने पर सुधर्मा प्रसन्नता पूर्वक विदर्भ राज्य का पालन करने लगे। विदर्भ राज्य का पालन करते हुये उनके अनेक पुत्र पौत्र जन्मे थे।।४३-४८।।

अथाभवद्भूमिपतेः सुधर्मणः, काशीश्वरेणाथ समं सुयुद्धम्।
तत्र क्षयं प्राप्य (प) सपुत्रपौत्रं, विदर्भराट्काशिपतिश्च युद्धे॥४९॥
ततः सुशीला पितरं सपुत्रं, ज्ञात्वा पतिं चापि सपुत्रपौत्रम्।
पुराद्विनिःसृत्य रणावनिं गता, दृष्ट्वा सुशीला कदनं महान्तम्॥५०॥
भर्तुर्बले तत्र पितुर्बले च, दुःखान्विता सा सुचिरं विलप्य।
जगाम सा मातरमार्तरूपा, भ्रातॄन्सुतान्भ्रातृसुतान्सपौत्रान्॥५१॥

भर्तारमेषा पितरं च गृह्य, महाश्मशाने च महाचितिं सा।
कृत्वा हुताशं प्रददौ स्वयं च, यदा समिद्धो हुतभुग्बभूव॥५२॥
तदा सुशीला प्रविवेश वेगाद्धा पुत्र हा पुत्र इति ब्रुवाणा।
तदा पुनः सा मुनिर्नारदोऽभूत्, स चापि वह्निः स्फटिकामलाभः॥५३॥
पूर्णं सरोऽभूदथ चोत्ततार, तस्याग्रतो देववरस्तु केशवः।
.........प्रहस्य देवर्षिमुवाच नारदम्॥५४॥

तदनन्तर कुछ समयोपरान्त सुधर्मा तथा काशीराज के बीच घोर युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में दोनों राजाओं का तथा उनके सभी पुत्र-पौत्रों का निधन हो गया। अपने पिता तथा पति एवं पुत्र-पौत्रों के निधन का समाचार पाकर सुशीला युद्धक्षेत्र में आई। उसने उस रणभूमि में पिता एवं पति के महासैन्य तथा सामन्तों की दुरवस्था को देखा। तदनन्तर दीर्घकाल पर्यन्त विलाप करके माता के पास गयी। तदनन्तर पिता, भ्राता, पति तथा पुत्र, पौत्र आदि का मृत देह एकत्र किया तथा चिता पर रख कर अग्नि प्रदान किया। उस समय सुशीला भी "हा पुत्र, हा पुत्र" का क्रन्दन करती चिता में प्रविष्ट हो गयी। वह पुनः नारद हो गयी। वह चिताग्नि भी उस समय स्फटिक के समान जलपूर्ण सरोवर हो गयी। उसी समय नारद के समक्ष विभु देवदेव केशव गरुड़ारूढ़ होकर वहां आविर्भूत हो गये। तत्पश्चात् देवप्रवर नारद के पास आकर केशव हास्यपूर्ण मुद्रा में कहने लगे।।४९-५४।।

कस्ते तु पुत्रो वद मे महर्षे, मृतं च कं शोचसि नष्टबुद्धिः।
व्रीडान्वितोऽभूदथ नारदोऽसौ, ततोऽहमेनं पुनरेव चाऽऽह॥५५॥
इतीदृशा नारद कष्टरूपा, माया मदीया कमलासनाद्यैः।
शक्या न वेत्तुं समहेन्द्ररुद्रैः, कथं भवान्वेत्स्यति दुर्विभाव्याम्॥५६॥
स वाक्यमाकर्ण्य महामहर्षिरुवाच भक्तिं मम देहि विष्णो।
प्राप्तेऽथ काले स्मरणं तथैव, सदा च सन्दर्शनमीश तेऽस्तु॥५७॥
यत्राहमार्तश्चितिमद्य रूढस्तत्तीर्थमस्त्वच्युतपाहन्त्रा।
अधिष्ठितं केशव नित्यमेव, त्वया सहाऽऽसं (हेदं) कमलोद्भवेन॥५८॥

तब केशव ने कहा—"हे नारद! तुम्हारा पुत्र कौन है? हतबुद्धि होकर किसके लिये शोक कर रहे हो?" यह सुनकर नारद लज्जित हो गये। तब केशव उनसे कहने लगे (अर्थात् मैं उनसे कहने लगा) "हे नारद! मेरी माया इसी प्रकार से कष्टप्रदा है। इन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा कोई भी उसे सम्यक्तः जान नहीं सकते।" केशव का (मेरा) यह कथन सुनकर नारद ने कहा—"हे विभु! आप मुझे अपनी भक्ति ही दीजिये। अन्तकाल में आपकी स्मृति हृदय में विद्यमान रहे। हे ईश्वर! मैं आपका सदा दर्शन पा सकूं। हे अच्युत! मैंने अब आर्त्त होकर जहां चितारोहण किया था, वह पापनाशक तीर्थ हो जाये। यहां पर कमलयोनि ब्रह्मा के साथ आप सदा सन्निहित रहें।।५५-५८।।

ततो मयोक्तो द्विज नारदोऽसौ, तीर्थं सितोदे (दं) हि चितिस्तवास्तु।
स्थास्याम्यहं चात्र सदैव विष्णुर्महेश्वरः स्थास्यति चोत्तरेण॥५९॥

नदा विरञ्चेर्वदनं त्रिनेत्रः सा च्छेत्स्यत्यं च ममु (त्वथ चो) ग्रवाचम्।
तदा कपालस्य तु मोचनाय, समेष्यते तीर्थमिदं त्वदीयम्॥६०॥
स्नातस्य तीर्थे निपुरान्तकस्य, पतिष्यते भूमितले कपालम्।
ततस्तु तीर्थेति कपालमोचनं, ख्यातं पृथिव्यां च भविष्यते तत्॥६१॥

हे द्विज! मैंने तब नारद से कहा—"तुम्हारा वह चितास्थान सीतोद नाम से प्रसिद्ध होगा। मैं वहां पर सतत् सन्निहित रहूंगा। उसके उत्तर की ओर महेश्वर का अधिष्ठान होगा। त्रिनेत्र शंकर जब दुर्वाक्य बोलने वाले ब्रह्मा का शिरच्छेद करेंगे, तब उनके हाथों में वह ब्रह्मशिर चिपक जायेगा। उससे छुटकारा पाने के लिये वे तुम्हारे इसी तीर्थ में आगमन करेंगे। जब इस तीर्थ में त्रिपुरान्तक महेश्वर स्नान करेंगे, तब उनके हाथ में चिपका ब्रह्मकपाल यहां गिर जायेगा। तब से यह तीर्थ कपालमोचन नाम से प्रसिद्धिलाभ करेगा।।५९-६१।।

तदा प्रभृत्यम्बुदवाहनोऽसौ, न मोक्ष्यते तीर्थवरं सुपुण्यम्।
न चैव तस्मिन्द्विज सम्प्रचक्षते, तत्क्षेत्रमुग्रं त्वथ ब्रह्मवध्या॥६२॥
यदा न मोक्षत्यमरारिहन्ता, तत्क्षेत्रमुख्यं महदाप्तपुण्यम्।
तदा विमुक्तेति सुरै रहस्यं, तीर्थं स्तुतं पुण्यदमव्ययाख्यम्॥६३॥
कृत्वा तु पापानि नरो महान्ति, तस्मिन्प्रविष्टः शुचिरप्रमादी।
यदा तु मां चिन्त्यते स शुद्धः, प्रयाति मोक्षं भगवत्प्रसादात्॥६४॥

तत्पश्चात् तभी से मेघवाहन इन्द्र भी इस पुण्यतीर्थ का त्याग नहीं करेंगे। यहां ब्रह्महत्या का प्रवेश ही नहीं होगा। असुरारिहन्ता मुक्तिप्रदाता विष्णु इस महापुण्यमय क्षेत्र का त्याग नहीं करेंगे। अतएव देवता लोग इस अत्यन्त रहस्यमय, पुण्यप्रद, अव्यय तीर्थ का नाम विमुक्त तीर्थ रखेंगे। मनुष्यगण यहां प्रवेश करते ही पवित्र तथा प्रमाद रहित हो जाते हैं, भले ही उन्होंने महापाप किया हो। यहां रहते हुये जो शुद्धभाव से मेरा चिन्तन करेगा, उसे मेरी कृपा से मोक्षलाभ होगा।।६२-६४।।

भूत्वा तस्मिन्नुद्रपिशाचसंज्ञो योन्यतरे दुःखमुपाश्नुतेऽसौ।
विमुक्तपापो बहुवर्षपूगैरुत्पत्तिमायास्यति विप्रगेहे॥६५॥
शुचिर्यतात्माऽस्य ततोऽन्तकाले, रुद्रो हितं तारकमस्य कीर्तयेत्।
इत्येवमुक्त्वा द्विजवर्य नारदं, गतोऽस्मि दुग्धार्णवमात्मगेहम्॥६६॥
सा चापि विप्रस्त्रिदिवं चचार, गन्धर्वराजेन समर्च्यमानः।
एतत्तवोक्तं ननु बोधनाय माया मदीया नहि शक्यते सा॥६७॥
ज्ञातुं भवानिच्छति चेत्ततोऽद्य, एवं विशस्वाप्सु च वेत्सि येन।
एवं द्विजातिर्हरिणा प्रबोधितो, भाव्यर्थयोगान्निममज्ज तोये॥६८॥

पापी मानव यहां प्राणत्यागोपरान्त रुद्र पिशाच रूप से जन्म लेकर नाना दुःखों का भोग करेगा। तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् पापक्षय होने पर विप्रगृह में उसका जन्म होगा। वह तब संयमी एवं पवित्र होकर रहेगा। रुद्रदेव

अन्तकाल में उसको तारक मन्त्र का उपदेश देंगे। हे द्विजराज! मैं नारद से यह सब कहने के उपरान्त अपने निवासस्थल क्षीरसागर चला गया। वह ब्राह्मण भी स्वर्ग जाकर गन्धर्वराज के साथ विहार करने लगा। तुमको समझाने हेतु मैंने यह वृत्तान्त कहा। मेरी इस माया को कोई नहीं जान सकता, तथापि यदि तुम इसे जानना चाहते हो तो जल में प्रविष्ट हो जाओ। भगवान् के समझाने पर भी वह ब्राह्मण भावी कर्मवश जल में प्रविष्ट हो गया।।६५-६८।।

कोकामुखे तात ततो हि कन्या, चाण्डालवेशमन्यभवद्द्विजः सः।
रूपान्विता शीलगुणोपपन्ना, अवाप सा यौवनमाससाद॥६९॥
चाण्डालपुत्रेण सुबाहुनाऽपि, विवाहिता रूपविवर्जितेन।
पतिर्न तस्या हि मतो बभूव सा तस्य चैवाभिमता बभूव॥७०॥
पुत्रद्वयं नेत्रहीनं बभूव, कन्या च पश्चाद्बधिरा तथाऽन्या।
पतिर्दरिद्रस्त्वथ साऽपि मुग्धा, नदीगता रोदिति तत्र नित्यम्॥७१॥

जल में प्रविष्ट होते ही (उस ब्राह्मण को लगा) वह ब्राह्मण कोकामुख स्थान पर चाण्डालगृह में कन्यारूपेण जन्मा। क्रम से वह कन्या रूपवती, शीलवती तथा यौवनवती हो गयी। उसका विवाह सुबाहु नामक एक रूपहीन चाण्डाल पुत्र से हो गया। यद्यपि पति इस कन्या के मनोनुकूल नहीं था, तथापि यह कन्या पति के मन के अनुकूल थी। इस कन्या के दो अन्धे पुत्र तथा एक बधिर कन्या उत्पन्न हो गई। इस कन्या का पति अतीव दरिद्र था। अतः यह मूर्ख कन्या नदी तट पर जाकर रुदन किया करती थी।।६९-७१।।

गता कदाचित्कलशं गृहीत्वा, साऽन्तर्जलं स्नातुमथ प्रविष्टा।
यावद्द्विजोऽसौ पुनरेव तावज्जातः क्रियायोगरतः सुशीलः॥७२॥
तस्याः स भर्ताऽथ चिरङ्गतेति, द्रष्टुं जगामाथ नदीं सुपुण्याम्।
ददर्श कुम्भं न च तां तटस्थां, ततोऽतिदुःखात्प्ररुरोद नादयन्॥७३॥
ततोऽन्धयुग्मं बधिरा च कन्या, दुःखान्विताऽसौ समुपाजगाम।
ते वै रुदन्तं पितरं च दृष्ट्वा, दुःखान्विता वै रुरुदुर्भृशार्ताः॥७४॥
ततः स पप्रच्छ नदीतटस्थान्द्विजान्भवद्भिर्यदि योषिदेका।
दृष्टा तु तोयार्थमुपाद्रवन्ती, आख्यात ते प्रोचुरिमां प्रविष्टा॥७५॥
नदीं न भूयस्तु समुत्ततार, एतावदेवेह समीहितं नः।
स तद्वचो घोरतरं निशम्य, रुरोद शोकाश्रुपरिप्लुताक्षः॥७६॥

एक बार वह कांख में घट दबाये स्नानार्थ गयी। उसने कलस (घट) तट पर रख दिया तथा उसने तदनन्तर जल में डुबकी लगाया। उसने पूर्ववत् क्रियायोग तत्पर सुशील ब्राह्मणाकृति पा लिया। जब वह चाण्डाल पत्नी दीर्घकाल तक वापस नहीं आई, तब उसका चाण्डाल पति उसको खोजते हुये पुण्य नदी तट पर आया। उसने तट पर तो वह घट देखा, तथापि पत्नी को न देख कर उच्च स्वर में रुदनरत हो गया। क्रमशः उसके दोनों अन्धे पुत्र तथा बधिर कन्या भी वहां आ गये। पिता को रोते देख कर वे तीनों आर्त्त होकर उच्च

स्वर में रोने लगे। उस समय चाण्डाल ने नदी तटस्थ ब्राह्मणों से पूछा कि "यहां जल लेने एक स्त्री आई थी। यदि आप लोगों ने देखा हो, तब कहिये।" ब्राह्मणों ने कहा—"एक रमणीय यहां अवश्य आई तथा उसने जल में प्रवेश भी किया, तथापि उसे जल से निकलते देखा नहीं गया। हमें इतना ही ज्ञात है।" ब्राह्मणगण का घोर वचन सुनकर सुबाहु चाण्डाल के नेत्र शोकार्त्त हो गये। वह रुदनरत हो गया।।७२-७६।।

तं वै रुदन्तं ससुतं सकन्यं, दृष्ट्वाऽहमार्तः सुतरां बभूव।
आर्तिश्च मेऽभूदथ संस्मृतिश्च, चाण्डालयोषाऽहमिति क्षितीश॥७७॥
ततोऽब्रवं तं नृपते मतङ्गं, किमर्थमार्तेन हि रुद्यते त्वया।
तस्या न लाभो भविताऽतिमौर्ख्यादाक्रन्दितेनेह वृथा हि किं ते॥७८॥
स मामुवाचाऽऽत्मजयुग्ममन्धं, कन्या चैका बधिरेयं तथैव।
कथं द्विजाते अधुनाऽऽर्तमेतमाश्वासयिष्येऽप्यथ पोषयिष्ये॥७९॥
इत्येवमुक्त्वा स सुतैश्च सार्धं, फूत्कृत्य फूत्कृत्य च रोदिति स्म।
यथा यथा रोदिति स श्वपाकस्तथा तथा मे ह्यभवत्कृताऽपि॥८०॥

उस समय ब्राह्मणरूपी मैं (जो चाण्डालपत्नी से पुनः ब्राह्मण हो गया था) उन सबको क्रन्दन करते देख कर अत्यन्त दुःखी हो गया। हे राजन्! तब मुझे स्मरण हो आया कि मैं ही चाण्डाल पत्नी था। तब मैंने उस चाण्डाल से कहा—"दुःख मत करो। रुदन करने से वह पत्नी प्राप्त नहीं हो सकेगी। रोना तो पूर्णतः मूर्खता है।" तब चाण्डाल ने कहा—"हे विप्र! मेरे दोनों पुत्र अन्धे तथा कन्या बधिर है। मैं इनको कैसे आश्वस्त कर सकूंगा? कैसे उनका पोषण करूंगा?" यह कहकर वह पुत्र-कन्या के साथ फफक कर रोने लगा। उस चाण्डाल का एवंविध क्रन्दन सुनकर मैं भी दुःखी हो गया।।७७-८०।।

ततोऽहमार्तं तु निवार्य तं वै, स्ववंशवृत्तान्तमथाऽऽचचक्षे।
ततः स दुःखात्सह सपुत्रकैः संविवेश कोकामुखमार्तरूपः॥८१॥
प्रविष्टमात्रे सलिले मतङ्गस्तीर्थप्रभावाच्च विमुक्तपापः।
विमानमारुह्य शशिप्रकाशं, ययौ दिवं तात ममोपपश्यतः॥८२॥
तस्मिन्प्रविष्टे सलिले मृते च, ममार्तिरासीदतिमोहकर्त्री।
ततोऽतिपुण्ये नृपवर्य कोकाजले प्रविष्टस्त्रिदिवं गतश्च॥८३॥
भूयोऽभवं वैश्यकुले व्यथार्तो, जातिस्मरस्तीर्थवरप्रसादात्।
ततोऽतिनिर्विण्णमना गतोऽहं, कोकामुखं संयतवाक्यचित्तः॥८४॥
व्रतं समास्थाय कलेवरं स्वं, संशोषयित्वा दिवमारुरोह।
तस्माच्च्युतस्त्वद्भवने च जातो, जातिस्मरस्तात हरिप्रसादात्॥८५॥
सोऽहं समाराध्य मुरारिदेवं, कोकामुखे त्यक्तशुभाशुभेच्छः।
इत्येवमुक्त्वा पितरं प्रणम्य, गत्वा च कोकामुखमग्रतीर्थम्।
विष्णुं समाराध्य वराहरूपमवाप सिद्धिं मनुजर्षभोऽसौ॥८६॥

उस समय मैंने अपना वंश वृत्तान्त (जन्म वृत्तान्त) उसे सुना दिया। तत्पश्चात् वह पुत्र-कन्या के साथ कोकामुख के जल में प्रविष्ट हो गया तथा पापमुक्त हो गया। वह चन्द्रमा के समान प्रभावान् विमान पर बैठ कर मेरे सामने ही स्वर्ग चला गया। जब वह जल में प्रविष्ट होकर मृत हो गया था, उस समय मेरे मन में अत्यन्त मोहप्रद आर्त्ति का उदय हो गया। मैंने भी तत्काल अतिपुण्यमय कोकाजल में प्रविष्ट होकर (देहत्याग द्वारा) स्वर्ग गमन किया था। तत्पश्चात् मेरा जन्म वैश्य कुल में हुआ। वहां मैं दुःखी रहता था तथा कोकातीर्थ की कृपा से मुझे पूर्व जन्मों का स्मरण हो गया था। तदनन्तर मैं खिन्न होकर उसी कोकामुख तीर्थ गया। वहां मैंने वाणी तथा मन का संयम करते हुये देहत्याग किया तथा स्वर्गलाभ किया। पुण्य क्षीण होने पर स्वर्गच्युत होकर मैं आपके यहां जन्मा हूं। हरि की कृपा से मैं पूर्वजन्म के स्मरण से युक्त हूं। अब मैं शुभ-अशुभ कर्मों के फल तथा कर्मों का त्याग करके कोकामुख जाकर वहां मुरारी देव की आराधना करूंगा तथा मुक्ति प्राप्त करूंगा।'' यह कहने के पश्चात् वह राजपुत्र कोकामुख तीर्थ गया, वहां उस पुरुषर्शभ ने वाराहरूपधारी विष्णु की आराधना द्वारा सिद्धिलाभ किया।।८१-८६।।

इत्थं स कामदमनः सहपुत्रपौत्रः, कोकामुखे तीर्थवरे सुपुण्ये।
त्यक्त्वा तनुं दोषमयीं ततस्तु, गतो दिवं सूर्यसमैर्विमानैः॥८७॥

इस प्रकार कामदमन ने पुण्यमय तीर्थ में पुत्र-पौत्रों के साथ (इस ग्रन्थ में लिखा है कि कामदमन ने विवाह ही नहीं किया था, अतः यहां पुत्र-पौत्र कैसे हो गये? यहां पाठ के सम्बन्ध में शंका हो रही है) इस पवित्र तीर्थ कोकामुख में देहत्यागोपरान्त सूर्य-समप्रभ विमानारूढ़ होकर कामदमन स्वर्ग चला गया।।८७।।

एवं मयोक्तं परमेश्वरस्य, माया सुराणामपि दुर्विचिन्त्या।
स्वप्नेन्द्रजालप्रतिमा मुरारेर्यया जगन्मोहमुपैति विप्राः॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णुधर्मानुकीर्तने मायाप्रादुर्भावनिरूपणं
नामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२९।।

हे विप्रवृन्द! यह मैंने परमेश्वर मुरारी की जगत् मोहक माया की महिमा कह दिया। यह माया स्वप्नवत् तथा इन्द्रजाल के समान है। देवगण भी इसका तत्व नहीं जान सकते।।८८।।

।।एकोनत्रिंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास तथा मुनिसंवाद के अन्तर्गत् महाप्रलय का वर्णन

मुनय ऊचुः

अस्माभिस्तु श्रुतं व्यास यत्त्वा समुदाहृतम्।
प्रादुर्भावाश्रितं पुण्यं माया विष्णोश्च दुर्विदा॥१॥
श्रोतुमिच्छामहे त्वत्तो यथावदुपसंहतिम्। महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे व्यासदेव! आपने दुर्विज्ञेया विष्णुमाया के संबंध में विष्णु के प्रादुर्भाव विषयक जो कथा कहा था, वह हम सबने सुन लिया। हे महामुनिगण! महाप्रलय नामक कल्पान्त काल में जगत् का जो संहार होता है, वह सुनने की इच्छा है।।१-२।।

व्यास उवाच

श्रूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यथावदनुसंहतिः। कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते तथा॥३॥
अहोरात्रं पितॄणां तु मासोऽब्दं त्रिदिवौकसाम्।
चतुर्युगसहस्रे तु ब्राह्मणोऽहर्द्विजोत्तमाः॥४॥
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्। देवैर्वर्षसहस्रैस्तु तद्द्वादशभिरुच्यते॥५॥
चतुर्युगाण्यशेषाणि सदृशानि स्वरूपतः।
आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं मुनयोऽन्त्यं तथा कलिम्॥६॥
आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यतः।
क्रियते चोपसंहारस्तथाऽन्तेऽपि कलौ युगे॥७॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! कल्पान्त काल के प्रकृत प्रलय के समय जगत् का जो संहार होता है, उसे श्रवण करें। मनुष्यों के मान से मनुष्य का एक मास पितरों का एक दिन-रात (अहोरात्र) होता है। चार हजार युगान्त में ब्रह्मा का एक दिन रात होता है। सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि, ये चार युग हैं। दैवमान से बारह हजार वर्ष इनका परिमाण है। सर्वदा इन चारों युगों का समान परिमाण होता है। हे मुनिगण! आदि युग है कृत (सत्य) युग। ब्रह्मा आदि कृतयुग के आदि में सृष्टि करते हैं। अंतिम कलिकाल के अवसान में वे संहार करते हैं।।३-७।।

मुनय ऊचुः

कलेः स्वरूपं भगवन्विस्तराद्वक्तुमर्हसि। धर्मश्चतुष्पाद्भगवान्यस्मिनवैकल्यमृच्छति॥८॥

मुनिगण कहते हैं—कलिकाल में भगवान् धर्म विकल हो जाते हैं। हे भगवान्! विस्तृत रूप से आप कलि का स्वरूप कहिये।।८।।

व्यास उवाच

कलिस्वरूपं भो विप्रा यत्पृच्छध्वं ममानघाः। निबोधध्वं समासेन वर्तते यन्महत्तरम्॥९॥
वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणाम्। न सामऋग्यजुर्वेदविनिष्पादनहैतुकी॥१०॥
विवाहा न कलौ धर्मा न शिष्या गुरुसंस्थिताः।
न पुत्रा धार्मिकाश्चैव न च वह्निक्रियाक्रमः॥११॥
यत्र तत्र कुले जातो बली सर्वेश्वरः कलौ।
सर्वेभ्य एव वर्णेभ्यो नरः कन्योपजीविनः॥१२॥

व्यासदेव कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! आप लोगों ने जो कलि का स्वरूप पूछा है, वह अत्यन्त विस्तृत है। तथापि मैं उसे संक्षेप में कहूंगा। आप लोग श्रवण करिये। कलिकाल में मनुष्यों में ऋक्, यजुः, साम सम्मत वर्णाश्रमाचारमयी प्रवृत्ति नहीं रह जाती। शिष्यगण गुरुओं के अनुगत नहीं रहते। किसी के यहां भी धार्मिक पुत्रों का जन्म नहीं होता। अग्नि से यज्ञ-होमादि कार्य नहीं होता। यदि किसी कुल में कोई बली है तो वही प्रधान। वह अन्य जाति कुल से कन्या ले आयेगा। वे कन्या से जीविका चलायेंगे।।९-१२।।

येन तेनैव योगेन द्विजातिर्दीक्षितः कलौ।
यैव सैव च विप्रेन्द्राः प्रायश्चित्तक्रिया कलौ॥१३॥
सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनं द्विजाः।
देवताश्च कलौ सर्वाः सर्वः सर्वस्य चाऽऽश्रमः॥१४॥
उपवासस्तथाऽऽयासो वित्तोत्सर्गस्तथा कलौ। धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्ठानैरनुष्ठितः॥१५॥
वित्तेन भविता पुंसां स्वल्पेनैव मदः कलौ। स्त्रीणां रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति॥१६॥
सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चापक्षयं गते। कलौ स्त्रिया भविष्यन्ति तदा केशैरलङ्कृताः॥१७॥
परित्यक्ष्यन्ति भर्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः।
भर्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम्॥१८॥
यो यो ददाति बहुलं स स स्वामी तदा नृणाम्।
स्वामित्वहेतुसम्बन्धो भविताऽभिजनस्तदा॥१९॥

कलि में द्विजगण जिस किसी द्वारा दीक्षित होंगे। हे विप्रेन्द्रगण! कलि में प्रायश्चित्त का कोई उचित विधान नहीं रहेगा। हे द्विजगण! कलि में जिसका जो मन होगा, वही कहेगा तथा वही सब शास्त्र माना जायेगा। कलि में सभी देवता कहे जायेंगे। सभी आश्रम स्थापित करेंगे। उपवास, परिश्रम तथा धनदानादि द्वारा सभी धर्म-कर्म स्वेच्छाचार से सम्पन्न होगा। कलि में लोग सामान्य धन का भी घमण्ड करेंगे। कलि में स्त्रियां अपनी केश सज्जा से सौन्दर्यमयी मानी जायेंगी। रमणीगण धनहीन पति का त्याग कर देंगी। धनी ही नारीगण का पति होगा। जो अधिक प्रदान करेगा, वही लोगों का स्वामी कहा जायेगा। सम्बन्ध एवं बन्धुत्व केवल कार्य एवं स्वार्थसिद्धि हेतु ही होगा।।१३-१९।।

गृहान्ता द्रव्यसङ्घाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः।
अर्थाश्चाथोपभोगान्ता भविष्यन्ति तदा कलौ॥२०॥
स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः।
अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषेषु स्पृहालवः॥२१॥
अभ्यर्थितोऽपि सुहृदा स्वार्थहानिं तु मानवः।
पणस्यार्धार्धमात्रेऽपि करिष्यति तदा द्विजाः॥२२॥
सदा सपौरुषं चेतो भावि विप्र तदा कलौ।
क्षीरप्रदानसम्बन्धि भाति गोषु च गौरवम्॥२३॥

अनावृष्टिभयात्प्रायः प्रजाः क्षुद्भयकातराः। भविष्यन्ति तदा सर्वा गगनासक्तदृष्टयः॥२४॥

गृह का प्रयोजन होगा उसमें धन संचय हो। बुद्धि होगी मात्र द्रव्यार्जनार्थ। अर्थ केवल भोगार्थ होगा। ऐसा कलि में होगा। कलि में स्त्रियां स्वेच्छाचारी (स्वैरिणी) होंगी। उनको ललित स्पृहा (विलासिनी) होगी। पुरुषों को अन्याय से अर्जित धन की रुचि रहेगी। मनुष्य अन्य द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी आधे पल धन की भी हानि नहीं सहेगा। सभी का मन गर्व तथा कठोरता से युक्त रहेगा। जब तक गायें दुग्धवती रहेंगी, तभी तक उनका सत्कार होगा। प्रजाजन अनावृष्टि के कारण क्षुधाकातर रहेंगे। वे बराबर वृष्टि हेतु आकाश की ओर ताकते रहेंगे।।२०-२४।।

मूलपर्णफलाहारास्तापसा इव मानवाः। आत्मानं घातयिष्यन्ति तदाऽवृष्ट्याऽभिदुःखिताः॥२५॥

दुर्भिक्षमेव सततं सदा क्लेशमनीश्वराः।
प्राप्स्यन्ति व्याहतसुखं प्रमादान्मानवाः कलौ॥२६॥
अस्नातभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम्।
करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम्॥२७॥
लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बह्वन्नादनतत्पराः।
बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः॥२८॥
उपाभ्यामथ पाणिभ्यां शिरःकण्डूयनं स्त्रियः।
कुर्वत्यो गुरुभर्तॄणामाज्ञां भेत्स्यन्त्यनावृताः॥२९॥

मानव मूल, पत्ता, फलादि से जीवन निर्वाह करेगा। अनावृष्टि स्थिति से दुःखी होकर लोग आत्मघात करेंगे। सदा अकाल होगा तथा लोग इस प्रकार अनाथ से रहेंगे। उस समय के मनुष्य प्रमाद के कारण सभी सुख से व्याहत (बाधित) रहेंगे। लोग बिना स्नान किये भोजन करेंगे। वे देवता तथा अतिथि पूजनादि से विरत रहेंगे। वे पिण्ड-तर्पणादि क्रिया से भी विरत रहेंगे। मनुष्य लोलुप, छोटे कद वाले तथा अधिक भोजनरत रहेंगे। कलि में स्त्रियां अल्पभाग्या तथा अनेक सन्तानों वाली रहेंगी। स्त्रियां दोनों हाथों से शिर खुजलायेंगी। वे अनावृता रहेंगी। गुरु तथा पति की आज्ञा की अवहेलना करेंगी।।२५-२९।।

स्वपोषणपराः क्रुद्धा देहसंस्कारवर्जिताः। परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः॥३०॥
दुःशीला दुष्टशीलेषु कुर्वत्यः सततं स्पृहाम्। असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः॥३१॥

वेदादानं करिष्यन्ति वडवाश्च तथाऽव्रताः।
गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि॥३२॥

कलि में स्त्रीगण अपने पोषण में ही तत्पर रहेंगी। वे क्रुद्ध, देहसंस्कार रहित, कठोर वचन बोलने वाली, मिथ्याभाषिणी होगी। कुलस्त्रियां दुष्टचरित्र युक्त लोगों से लालसा करने वाली, पुरुषों से सद्भाव नहीं करके असत् आचरण करेगी। जो ब्राह्मण व्रतनिष्ठ नहीं हैं, वे वेद ग्रहण करेंगे। गृहस्थगण होम रहित रहेंगे। वे उचित दान भी प्रदान नहीं करेंगे।।३०-३२।।

भवेयुर्वनवासा वै ग्राम्याहारपरिग्रहाः। भिक्षवश्चापि पुत्रा हि स्नेहसम्बन्धयन्त्रकाः॥३३॥

अरक्षितारो हर्तारः शुल्कव्याजेन पार्थिवाः।
हारिणो जनवित्तानां सम्प्राप्ते च कलौ युगे॥३४॥
यो योऽश्वरथनागाढ्यः स स राजा भविष्यति।
यश्च यश्चाबलः सर्वः स स भृत्यः कलौ युगे॥३५॥

इस काल में भिक्षुक ग्रामोचित आहार तथा विहार सामग्री ग्रहण करके सन्यासाश्रम की जगह वानप्रस्थ हो जायेंगे। भिक्षुक (सन्यासीगण) भी पुत्रादि स्नेह में आबद्ध रहेंगे। इस काल में राजा रक्षक की जगह भक्षक रहेंगे। वे कर के बहाने को लेकर जनता के धन के अपहर्त्ता हो जायेंगे। अश्व, रथ तथा हाथी जिसके पास रहेंगे, वही राजा होगा, जो निर्बल होगा वही भृत्य कहा जायेगा।।३३-३५।।

वैश्याः कृषिवणिज्यादि सन्त्यज्य निजकर्म यत्।
शूद्रवृत्त्या भविष्यन्ति कारुकर्मोपजीविनः॥३६॥
भैक्ष्यव्रतास्तथा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः।
पाखण्डसंश्रयां वृत्तिमाश्रयिष्यन्त्यसंस्कृताः॥३७॥
दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवापद्रुता जनाः।
गोधूमान्नयवान्नाद्यान्देशान्यास्यन्ति दुःखिताः॥३८॥

इस काल में वैश्य लोग कृषि-वाणिज्य का त्याग करके शूद्र वृत्ति ग्रहण करके कारीगरी के काम से जीवन यापन करेंगे। शूद्रगण भिक्षाटन करेंगे। अधमगण प्रव्रज्याचिह्न धारण करेंगे। सभी लोग असंस्कृत होकर पाषण्डी वृत्ति ग्रहण करेंगे। मनुष्यगण दुर्भिक्ष, अतिरिक्त राजस्वकर तथा नाना रोगों द्वारा पीड़ित होकर दुःखी मन द्वारा गेहूं तथा जौ हेतु देश-देशान्तर के लिये प्रस्थान करेंगे।।३६-३८।।

वेदमार्गे प्रलीने च पाखण्डाढ्ये ततो जने।
अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति॥३९॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु वै तपः। नरेषु नृपदोषेण बालमृत्युर्भविष्यति॥४०॥

भवित्री योषितां सूतिः पञ्चषट्सप्तवार्षिकी।
नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ॥४१॥
पलितोद्गमश्च भविता तदा द्वादशवार्षिकः।
न जीविष्यति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशतिम्॥४२॥
अल्पप्रज्ञा वृथालिङ्गा दुष्टान्तःकरणाः कलौ।
यतस्तो विनश्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः॥४३॥
यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरत्रोपलक्ष्यते। तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥४४॥
यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम्। तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥४५॥

वेदमार्ग विलीन होगा। लोग पाषण्डधर्म का आश्रय ग्रहण करेंगे। अधर्म बढ़ेगा। लोग अल्पायु होंगे। मनुष्य अशास्त्रीय घोर तपानुष्ठान करेंगे। राजाओं में शासनदोष घटित होगा। इससे लोग अल्पायु में ही मृत्युमुख में जा पड़ेंगे। पांच से सात वर्ष में ही कन्यायें सन्तानोत्पादन करेंगी। बारह वर्ष की आयु में ही मनुष्य को वृद्धदशा प्राप्त होगी। कोई बीस वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहेगा। कलि में मनुष्य अल्पबुद्धि, वृथा चिह्नधारी तथा दुष्ट अन्तःकरण वाले होंगे। इसी कारण से अल्पकाल में वे विनष्ट हो जायेंगे। जब-जब पाखण्ड का प्रादुर्भाव दृष्टिगत होगा, तब-तब बुद्धिमान् लोग कलिकाल की वृद्धि का अनुमान करें।।३९-४५।।

प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मकृतां नृणाम्।
तदाऽनुमेयं प्राधान्यं कलेर्विप्रा विचक्षणैः॥४६॥
यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः। इज्यते पुरुषैर्यज्ञैस्तदा ज्ञेयं कलेर्बलम्॥४७॥
न प्रीतिर्वेदवादेषु पाखण्डेषु यदा रतिः। कलेर्वृद्धिस्तदा प्राज्ञैरनुमेया द्विजोत्तमाः॥४८॥

तब धार्मिकों का प्रारब्ध कर्म समूह विधान से अवसन्न हो जायेगा। विज्ञ व्यक्तिगण इसी समय कलि की वृद्धि जाने। जब-जब वेदमार्ग के पथिक सज्जनों की कमी होती जाये, तब विज्ञजन कलि की वृद्धि का अनुमान करें। जब यज्ञेश्वर पुरुषोत्तम की अर्चना यज्ञों द्वारा न हो, तब विज्ञजन कलिवृद्धि का अनुमान करें। धीमान् लोग तब भी कलि की वृद्धि जाने, जब वेदवाक्यों से लोगों की श्रद्धा हट जाये तथा वे पाखण्ड धर्म का अनुराग करने लगें।।४६-४८।।

कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्वस्त्रष्टारमीश्वरम्।
नार्चयिष्यन्ति भो विप्राः पाखण्डोपहता नराः॥४९॥
किं देवैः किं द्विजैर्वेदैः किं शौचैनाम्बुजल्प (न्म) ना।
इत्येवं प्रलपिष्यन्ति पाखण्डोपहता नराः॥५०॥
अल्पवृष्टिश्च पर्जन्यः स्वल्पं सस्यफलं तथा।
फलं तथाऽल्पसारं च विप्राः प्राप्ते कलौ युगे॥५१॥

कलिकाल में पाखण्ड मत से दूषित चित्त वाले मनुष्यगण सर्वस्त्रष्टा, जगत्पति, ईश्वर, विष्णु की अर्चना

नहीं करते। देवता, द्विज तथा वेद का क्या प्रयोजन? जल द्वारा धोने का क्या प्रयोजन? कलि में यह कहा जाता है। हे द्विजगण! कलिकाल में मेघ अल्प वर्षा करेंगे। शस्य भी अल्प उत्पन्न होगी। फल भी अल्प सार वाले होंगे। हे विप्रगण! यही कलिकाल में होगा।।४९-५१।।

जानुप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहाः।
शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे॥५२॥
अणुप्रायाणि धान्यानि अजाप्रायं तथा पयः।
भविष्यति कलौ प्राप्त औशीरं चानुलेपनम्॥५३॥
श्वश्रूश्वशुरभूयिष्ठा गुरवश्च नृणां कलौ। शालाद्याहारिभार्याश्च सुहृदो मुनिसत्तमाः॥५४॥
कस्य माता पिता कस्य यदा कर्मात्मकः पुमान्।
इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः॥५५॥
वाङ्मनः कायजैर्दोषैरभिभूताः पुनः पुनः। नराः पापान्यनुदिनं करिष्यन्त्यल्पमेधसः॥५६॥
निःसत्यानामशौचानां निह्रवीकाणां तथा द्विजाः।
यद्यद्दुःखाय तत्सर्वं कलिकाले भविष्यति॥५७॥

लोग कलिकाल में वस्त्र जानु तक ही पहनेंगे। वृक्षों में से केवल शमी होगा तथा सभी वर्ण शूद्र बहुल होंगे। कलिकाल में धान्य अत्यन्त क्षुद्र होंगे। बकरी का दुग्ध ही बहुत प्राप्त होगा। लेपों में केवल खस ही रह जायेगा। कलिकाल में मनुष्यों में सास, ससुर भी बहुलता से गुरु माने जायेंगे। हे मुनिप्रवर! गृहकार्य के लिये लायी गयी रमणियां ही पत्नी एवं मित्र होंगी (अर्थान्तर है गृह आदि का हरण अर्थात् आधिपत्य जमाने वाली ही भार्या एवं मित्र होगी)। हे द्विजगण! कलिकाल में मनुष्य श्वसुर के ही प्रभाव में रहकर कहेंगे कि "पुरुष कर्म के वशीभूत होकर जन्म लेता है तथा कौन किसका भ्राता है, कौन किसका पिता है।" अल्पबुद्धि वाले लोग मन-वाणी-कर्मजनित दोष के कारण पुनः-पुनः अभिभूत होकर पापाचरण ही करते रहेंगे। हे ऋषिप्रवरगण! कलिकाल में सभी लोग सत्यहीन, अपवित्र तथा निर्लज्ज होंगे। वे सर्व प्रकार दुःखभागी होंगे।।५२-५७।।

निःस्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते।
तदा प्रविरत्नो विप्रः कश्चिल्लोके भविष्यति॥५८॥
तत्राल्पेनैव कालेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमाम्। करोति यः कृतयुगे क्रियते तपसा हि यः॥५९॥

व्यक्ति स्वाध्याय, वषट्कार तथा स्वाहा-स्वधा रहित रहेंगे। विशुद्ध ब्राह्मण खोजने पर भी प्राप्त नहीं होंगे, लेकिन सत्य युग में सुदीर्घ तप द्वारा जो फल मिलता है, कलि में अल्पकालीन तप से भी वही फललाभ होता है।।५८-५९।।

मुनय ऊचुः

कस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति सुमहाफलम्।
वक्तुमर्हस्यशेषेण श्रोतुं वाञ्छा प्रवर्तते॥६०॥

मुनिगण कहते हैं—हे व्यासदेव! अल्पमात्र धर्म भी कभी महाफलप्रद होता है। इसे विस्तार से कहिये। हमें यह सुनने की अतीव इच्छा है।।६०।।

व्यास उवाच

धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्वल्पक्लेशैर्महत्फलम्।
तथा भवेतां स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यन्निबोधत॥६१॥
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्। द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ॥६२॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलौ साध्विति भाषितुम्॥६३॥
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम्॥६४॥
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ।
स्वल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलौ॥६५॥

व्यासदेव कहते हैं—यह कलिकाल धन्य है, क्योंकि इस काल में अल्प क्लेश उठाने से ही महाफल लाभ होता है। हे विप्रगण! इस समय स्त्री-शूद्र भी धन्य होंगे और भी श्रवण करिये। सत्य युग में दस वर्ष, त्रेता में एक वर्ष, द्वापर में एक मास तप आदि का जो फल होता है, कलिकाल में वह फल एक अहोरात्र में ही मिल जाता है। हे द्विजवृन्द! कलिकाल में व्यक्ति तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा जपादि कार्य का विशिष्ट फललाभ करता है। सत्ययुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ तथा द्वापर में अर्चना द्वारा जो फललाभ होता है, कलि में केशव के संकीर्त्तन से भी वही फल प्राप्त होता है। हे धर्मज्ञगण! इस काल में लोग अल्प प्रयास द्वारा ही धर्मोत्कर्ष लाभ कर लेते हैं। इसीलिये मैं कलि के प्रति सन्तुष्ट रहता हूं।।६१-६५।।

व्रतचर्यापरैर्ग्राह्या वेदाः पूर्वं द्विजातिभिः। ततस्तु धर्मसम्प्राप्तैर्यष्टव्यं विधिवद्धनैः॥६६॥
वृथा कथा वृथा भोज्यं वृथा स्वं च द्विजन्मनाम्।
पतनाय तथा भाव्यं तैस्तु संयतिभिः सह॥६७॥
असम्यक्करणे दोषास्तेषां सर्वेषु वस्तुषु।
भोज्यपेयादिकं चैषां नेच्छाप्राप्तिकरं द्विजाः॥६८॥
पारतन्त्र्यात्समस्तेषु तेषां कार्येषु वै ततः। लोकान्क्लेशेन महता यजन्ति विनयान्विताः॥६९॥

सर्वाग्र में ब्राह्मण ब्रह्मचर्य का अवलम्बन करके वेदाभ्यास करे। यह उनका कर्त्तव्य है। तदनन्तर धर्म लाभार्थ धन द्वारा सविधि अनुष्ठान करना चाहिये। वृथा वाक्यालाप, वृथा भोजन, वृथा धनव्यय पतन के कारण हैं। इन्द्रियसंयम के साथ जब तक यज्ञादि का सम्यक् अनुष्ठान नहीं किया जाता, तब नाना दोष घटित होते हैं। वस्तुओं के विपरीत होने पर कदापि ग्रहण न करे। कलिकाल में भोज्य, पेयादि इच्छानुरूप ब्राह्मणों को प्राप्त नहीं होते। वे समस्त कार्य में परतन्त्रता के कारण महाक्लेश पूर्वक कर्त्तव्य कर्म का निर्वहन करते हैं। कलि में मनुष्य विनयान्वित होकर महाक्लेश पूर्वक महत् यजन करता है।।६६-६९।।

द्विजशुश्रूषणेनैव पाकयज्ञाधिकारवान्। निजं जयति वै लोकं शूद्रो धन्यतरस्ततः॥७०॥

भक्ष्याभक्ष्येषु नाशा (त्रा) स्ति येषां पापेषु वा यतः।

नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितीरितम्॥७१॥

तथापि कलिकाल में शूद्रगण द्विजों की शुश्रूषा के फलस्वरूप पाक यज्ञाधिकारी होकर सर्वलोक जय कर लेते हैं। अतः वे धन्यतर हैं। शूद्रों में खाद्य, अखाद्य, पाप-पुण्यादि का विशेष नियम नहीं होता। हे मुनि शार्दूलगण! इसी कारण कलि में उनको साधु कहा गया है।।७०-७१।।

स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लभ्यं धनं सदा। प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि॥७२॥

तस्यार्जने महान्क्लेशः पालनेन द्विजोत्तमाः।

तथा सद्विनियोगाय विज्ञेयं गहनं नृणाम्॥७३॥

एभिरन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः।

निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात्॥७४॥

योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा। एतद्विषयमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः॥७५॥

नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा। तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः॥७६॥

एतद्वः कथितं विप्रा यन्निमित्तमिहाऽऽगताः।

तत्पृच्छध्वं यथाकाममहं वक्ष्यामि वः स्फुटम्॥७७॥

अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिध्यति वै कलौ। नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्विषैः॥७८॥

मनुष्य के लिये ऐसा दान सत्पात्र को देना चाहिये, जो स्वधर्म के अविरोधी प्रकार से उपार्जित किया गया हो तथा ऐसे न्यायोपार्जित धन से ही याग करना चाहिये। तथापि ऐसे धनार्जन में महान् क्लेश उठाना पड़ता है। इस प्रकार ऐसे क्लेश से उपार्जित धन के दान हेतु सत्पात्र खोज सकना भी अतीव कठिन है। हे द्विजप्रवरगण! मानवगण ये समस्त क्लेश तथा और भी नानाविध क्लेश भोग करके इहलोक तथा प्राजापत्यादि लोक अत्यन्त क्लेश भोग द्वारा यथाक्रमेण प्राप्त करते हैं। रमणीगण मनसा-वाचा-कर्मणा पतिसेवा द्वारा यही सब फल एवं पतिसालोक्य लाभ करती हैं। जितना क्लेश इस सम्बन्ध में पुरुष उठाते हैं, नारीगण के लिये ऐसा क्लेश उठाने का प्रयोजन नहीं होता। तभी स्त्रियों को साधु कहकर निर्देशित किया गया है। हे विप्रगण! आप लोगों ने जो कुछ प्रश्न किया था, उसका वर्णन मैंने कर दिया। यदि और कुछ जिज्ञासा हो, तब उसे व्यक्त करिये। मैं उनका स्पष्ट उत्तर कह रहा हूं। कलिकाल में मनुष्य अपने गुणरूपी जल से अखिल पापों को धोकर अल्प प्रयास में ही धर्म साधनार्थ समर्थ हो जाता है।।७२-७८।।

शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्मुनिसत्तमाः। तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि॥७९॥

ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतमं मतम्। धर्मसंराधने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु॥८०॥

तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः।

धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः॥८१॥

भवद्भिर्यदभिप्रेतं तदेतत्कथितं मया। अपृष्टेनापि धर्मज्ञाः किमन्यत्क्रियतां द्विजाः॥८२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे भविष्यकथनं नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३०॥

इसी प्रकार से द्विजगण भी द्विज शुश्रूषा के फलस्वरूप तथा स्त्रियां पति सेवा द्वारा अनायास ही अभिलषित धर्म लाभ कर लेते हैं। तभी मैंने इनको धन्य कहा है। सत्य आदि युग में द्विजों को धर्म साधनार्थ अत्यधिक कष्ट सहन करना पड़ता है, लेकिन कलिकाल में अल्प तप द्वारा ही वे लोग धर्मफलभागी हो जाते हैं। हे मुनिसत्तमगण! तभी कलिकाल धन्य है। हे मुनिसत्तमगण! इस युगान्त में धर्माचरण कर्त्ता धन्य हैं। हे धर्मज्ञ ब्राह्मणगण! आप लोगों द्वारा जिज्ञासा न करने पर भी आप लोगों द्वारा वांछित इस कलिकथा का मैंने वर्णन कर दिया। अब आप लोगों की जो जिज्ञासा हो, कहिये॥७९-८२॥

॥त्रिंशत्यधिक द्विशततम अध्याय समाप्त॥

अथैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनि संवाद प्रसंग में द्वापर युगान्त का वर्णन

मुनय ऊचुः

आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विद्महे। ततो द्वापरविध्वंसं युगान्तं स्पृहयामहे॥१॥
प्राप्ता वयं हि तत्कालमनया धर्मतृष्णया। आदद्याम परं धर्मं सुखमल्पेन कर्मणा॥२॥
सन्त्रासोद्वेगजननं युगान्तं समुपस्थितम्। प्रनष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तैर्वक्तुमर्हसि॥३॥

मुनिगण कहते हैं—हमको आसन्न किंवा दूरवर्त्ती काल के सम्बन्ध में अभिज्ञता नहीं है। तभी हम द्वापर का विध्वंस करके विराजित होने वाले युगान्त कलिकाल की कामना कर रहे हैं अर्थात् हम द्वापर की समाप्ति तथा कलियुग के आगमन की कामना कर रहे हैं। धर्मतृष्णा के फलस्वरूप यह काल प्राप्त हो गया है। अब हम अल्प कर्म से ही परम धर्म प्राप्त कर सकेंगे। हे धर्मज्ञ! किन लक्षणों द्वारा त्रास-उद्वेगजनक धर्महीन युगान्त कलिकाल की उपस्थिति को जान सकते हैं। आप उसका वर्णन करिये॥१-३॥

व्यास उवाच

आरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः। युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः॥४॥
अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः। शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये॥५॥
श्रोत्रियाः काण्डपृष्ठाश्च निष्कर्माणि हवींषि च।
एकपंक्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः॥६॥

अशिष्टवन्तोऽर्थपरा नरा मद्यामिषप्रियाः। मित्रभार्यां भजिष्यन्ति युगान्ते पुरुषाधमाः॥७॥
राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशीलिनः। भृत्या ह्यनिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये॥८॥
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम्। अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—कलिकाल में जो राजा अवश्य कर ग्रहण करते हैं, वे आत्मरक्षा तत्पर तो रहेंगे, तथापि वे प्रजा की रक्षा नहीं करेंगे। तब राजा लोग द्यूतप्रिय, ब्राह्मण लोग शूद्रान्न से जीविका चलाने वाले तथा शूद्रगण ब्राह्मणों के आचार से युक्त होंगे। श्रोत्रिय ब्राह्मण युद्धजीवी होंगे। कर्म-क्रिया-हवनादि का अभाव हो जायेगा (अर्थात् हविः अकार्य में व्यय होगा। यह अर्थान्तर है)। सभी एक ही पंक्ति में भोजन करेंगे। हे मुनिसत्तमगण! तब अशिष्ट लोग धनी होंगे तथा मनुष्य मद्यप्रिय रहेंगे। पुरुषाधम लोग मित्र-पत्नी में अनुरक्त रहेंगे। राजा चौर्यवृत्ति तथा चोर लोग राजवृत्ति धारण करेंगे। इस युगक्षय काल में भृत्यगण अनिर्दिष्ट धनोपजीवी हो जायेंगे। तब धन ही महत्वपूर्ण हो जायेगा। सच्चरित्र की प्रशंसा नहीं की जायेगी। पतितों की निन्दा कोई नहीं करेगा।।४-९।।

प्रनष्टनासाः पुरुषा मुक्तकेशा विरूपिणः। ऊनषोडशवर्षाश्च प्रसोष्यन्ति तथा स्त्रियः॥१०॥
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः। प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये॥११॥

पुरुष नष्ट नासिका वाले विरूप तथा कटे केशों से युक्त होंगे। सोलह वर्ष होने के पहले ही रमणी सन्तान उत्पन्न करेंगी। अट्टशूल जनपद होंगे (देशों में अन्न विक्रय होगा), चौराहे शिवशूल होंगे (चतुष्पथों पर वेद विक्रय होगा), प्रमदा केशशूल होंगी (स्त्रियां भगविक्रेता होंगी), यह कार्य युगक्षय (कलिकाल) में होगा।।१०-११।।

सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति द्विजा वाजसनेयिकाः।
शूद्राभा वादिनश्चैव ब्राह्मणाश्चान्त्यवासिनः॥१२॥
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मं वदिष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीविनः॥१३॥
श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः। साधूनां परिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे॥१४॥
अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्त्यनिवासिनः।
निर्ह्रीकाश्च प्रजाः सर्वा नष्टास्तत्र युगक्षये॥१५॥

इस समय सभी वाजसनेयी द्विज लोग ब्रह्मवादी हो जायेंगे। शूद्रवत् हीन लोग ही वक्ता होंगे। ब्राह्मणगण नीचों की सेवा करेंगे। उस समय शूद्रगण शठता पूर्वक जीविकोपार्जन करते हुये श्वेत दन्त, मुण्डित मुण्ड तथा गेरुआ वस्त्र धारण करके स्वयं को जितेन्द्रिय बतलाते हुये धर्मोपदेशक हो जायेंगे। कलियुग में मांसाहारी हिंसकों की वृद्धि होगी। गौयें क्षयीभूत होंगी। साधु निन्दा के पात्र हो जायेंगे। अन्त्य वर्ण वाले मध्यवर्ण होंगे। मध्य वर्ण वाले अन्त्यवर्ण हो जायेंगे अर्थात् शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय होंगे। वैश्य, क्षत्रिय शूद्र हो जायेंगे। युगक्षयकाल में समस्त प्रजा निर्लज्ज तथा नष्ट हो जायेगी।।१२-१५।।

तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः। ऋतवो विपरीताश्च भविष्यन्ति युगक्षये॥१६॥

तथा द्विहायना दम्याः कलौ लाङ्गलधारिणः।
चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति॥१७॥
सर्वे शूरकुले जाताः क्षमानाथा भवन्ति हि।
यज्ञा निम्नाः प्रजाः सर्वा भविष्यन्ति युगक्षये॥१८॥

विप्रगण तप तथा यज्ञफल का विक्रय करेंगे। कलि में सभी ऋतु विपरीत भाव युक्त हो जाते हैं। दो वर्ष वाली गौओं को भी खेत जोतने में नियुक्त किया जाता है। मेघगण कहीं अल्प तो कभी अधिक जल वर्षण करते हैं। शूर कुल में उत्पन्न मनुष्य भी निम्न श्रेणी के समान नितान्त निस्तेज हो जायेंगे। वे क्षमायाचना करेंगे। इस युगक्षयकाल में समस्त प्रजा निम्न रूप हो जायेगी।।१६-१८।।

पितृदेयानि दत्तानि भविष्यन्ति तथा सुताः।
न च धर्मं भविष्यन्ति मानवा निर्गते युगे॥१९॥
ऊषरा बहुला भूमिः पन्थानस्तस्करावृताः। सर्वे वाणिज्यकाश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये॥२०॥
पितृदायान्यदत्तानि विभजन्ति तथा सुताः।
हरणे यत्नवन्तोऽपि लोभादिभिर्विरोधिनः॥२१॥
सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षयं गते।
भविष्यन्ति युगस्यान्ते नार्यः केशैरलङ्कृताः॥२२॥
निर्वीर्यस्य रतिस्तत्र गृहस्थस्य भविष्यति।
युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा रतिः॥२३॥
कुशीलानार्यभूयिष्ठा वृथारूपसमन्विताः। पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं तद्युगान्तस्य लक्षणम्॥२४॥
बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम्। राजचौराग्निदण्डादिक्षीणः क्षयमुपैष्यति॥२५॥

पुत्रगण पिता द्वारा धन न दिये जाने पर भी उस धन का विभाजन करेंगे। पुत्रगण पिता को जो कुछ देंगे, उसे वे पिता के प्रति दान समझेंगे (मानों पिता पर कृपा किया हो)। कोई भी मानव धर्माचरण नहीं करेगा। भूमि उर्वरा (उपजाऊ) नहीं रह जायेगी। मार्ग तस्करों से पूर्ण रहेंगे। मानव प्रत्येक कार्य में वाणिज्य व्यवसायी (अपना लाभ देखने वाले) रहेंगे। वे लोग लोभ के कारण परस्पर विरोधी रहेंगे तथा जैसे-तैसे पिता के धन का बंटवारे में हरण करने का प्रयत्न करेंगे कि अन्य से अधिक मिल सके। रमणीगण सुकुमारता, सौन्दर्य तथा आभूषणों से रहित हो जायेंगी। वे केवल केश सज्जा से ही सजती रहेंगी। कलिकाल में निर्वीर्य गृहस्थों की प्रीति ऐसी ही स्त्रियों से होगी। ऐसी पत्नियों के समान प्रीतिकर उनको कुछ नहीं लगेगा। कलिकाल में दुःशील अनार्य तथा वृथा रूप समन्वित व्यक्ति ही अधिक मिलेंगे। यही युगान्तर का लक्षण है। लोग अत्यन्त याचक जैसे हो जायेंगे। बराबर याचना करेंगे। लोग परस्परतः एक-दूसरे को प्रदान नहीं करेंगे। राजा, चोर, अग्नि, दण्डादि से सब क्षय होगा।।१९-२५।।

अफलानि च सस्यानि तरुणा वृद्धशीलिनः।
अशीलाः सुखिना लोके भविष्यन्ति युगक्षये॥२६॥

वर्षासु परुषा वाता नीचा शर्करवर्षिणः। सन्दिग्धः परलोकश्च भविष्यति युगक्षये॥२७॥

वैश्या इव च राजन्या धनधान्योपजीविनः।
युगापक्रमणे पूर्वं भविष्यन्ति न बान्धवाः॥२८॥

अप्रवृत्ताः प्रपश्यन्ति समयाः शपथास्तथा। ऋणं सविनयभ्रंशं युगे क्षीणे भविष्यति॥२९॥

भविष्यत्यफलो हर्षः क्रोधश्च सफलो नृणाम्।
अजाश्चापि निरोत्स्यन्ति पयसोऽर्थे युगक्षये॥३०॥

अशास्त्रविहितो यज्ञ एवमेव भविष्यति। अप्रमाणं करिष्यन्ति नराः पण्डितमानिनः॥३१॥

शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति न संशयः।
सर्वः सर्वं विजानाति वृद्धाननुपसेव्य वै॥३२॥

न कश्चिदकविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते। नक्षत्राणि वियोगानि न कर्मस्था द्विजातयः॥३३॥

चौरप्रायाश्च राजानो युगान्ते समुपस्थिते। कुण्डीवृषा नैकृतिकाः सुरापा ब्रह्मवादिनः॥३४॥

अश्वमेधेन यक्ष्यन्ते युगान्ते द्विजसत्तमाः।
याजयिष्यन्त्ययाज्यांस्तु तथाऽभक्ष्यस्य भक्षिणः॥३५॥

ब्राह्मण धनतृष्णार्ता युगान्ते समुपस्थिते। भोःशब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति॥३६॥

एकशङ्खास्तथा नार्यो गवेधुकपिनद्धकाः (?)।
नक्षत्राणि विवर्णानि विपरीता दिशो दश॥३७॥

शस्य (फसल) फलहीन होगी। तरुण भी वृद्ध लक्षणान्वित हो जायेंगे (अर्थान्तर है कि तरुणगण वृद्धों के द्वेषी होंगे)। दुश्चरित्र सुखी रहेंगे। वर्षाकाल में भी कठोर वायु बहेगी। वर्षा जल के साथ बालू का कण कंकण (ओला) पड़ेगा। परलोक की स्थिति के सम्बन्ध में लोगों को सन्देह होगा। राजा लोग वैश्यों की ही तरह (राजा अर्थात् क्षत्रिय) धन-धान्य से निर्वाह करेंगे। कोई किसी का हितचिन्तन नहीं करेगा। नियम शपथ का उल्लंघन किया जायेगा। ऋण लेकर व्यक्ति विनय नहीं करेगा (अकड़ दिखलायेगा)। यह युग क्षीण होने का लक्षण है। लोगों का हर्ष फलहीन होगा। क्रोध सफल होगा (क्रोध का आधिक्य होगा)। लोग दूध के लिये बकरी पालेंगे। पाण्डित्य का अभिमान रखते हुये लोग प्रमाणहीन तथा अशास्त्रीय यज्ञानुष्ठान करायेंगे। शास्त्रोक्ति का उल्लेख नहीं होगा (अर्थात् शास्त्रवक्ता नहीं मिलेंगे)। लोग वृद्धों की सेवा करके विद्यालाभ न करके स्वयं विद्याभिमानी हो जायेंगे। कलिकाल में कोई भी सरल नहीं रहेगा। द्विजगण विहित स्वकर्मानुष्ठान से विरत रहेंगे। नक्षत्र ज्ञाता दुर्लभ हो जायेंगे। युगान्तकालीन राजागण प्रतिहिंसापूर्ण एवं चोरवत् हो जायेंगे। जो मद्यप हैं, क्रूरकर्मी हैं, तथा जारज उत्पन्न लोग ब्रह्मवादी हो जायेंगे। लोग अश्वमेध यज्ञानुष्ठान करेंगे। हे द्विजसत्तमगण! वे अयोग्य लोगों को यज्ञ करायेंगे। वे अभक्ष्य का आहार करेंगे। ब्राह्मण धनलोलुप हो जायेंगे। वे केवल 'अहो' शब्दोच्चार करेंगे। कोई शास्त्रपाठ निरत नहीं होगा। नारीगण एक हाथ में शंख धारण करेंगी (?) नक्षत्र विकृत वर्ण होंगे। दसों दिशा विपरीत भाव वाली होंगी।।२६-३७।।

सन्ध्यारागो विदग्धाङ्गो भविष्यति युगक्षये। प्रेषयन्ति पितॄन्पुत्रा वधूः श्वश्रूः स्वकर्मसु॥३८॥

युगेष्वेवं निवत्स्यन्ति प्रमदाश्च नरास्तथा। अकृत्वाऽग्राणि भोक्ष्यन्ति द्विजाश्चैवाहुताग्नयः॥३९॥

भिक्षां बलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम्।
वञ्चयित्वा पतीन्सुप्तान्गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः॥४०॥

न व्याधितान्नाकुरुपान्नोद्यतान्नाप्यसूयकान्। कृते न प्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति॥४१॥

संध्याकाल की शोभा विकृताकार होगी। पुत्र पिता से तथा पुत्रवधूगण अपने श्वसुर से अनेक श्रमपूर्ण कार्य करायेंगे। नरनारीगण अग्नि में होम किये बिना तथा पितृगण को प्रदान किये बिना तथा भिक्षा प्रदान किये बिना आहार ग्रहण करेंगे। निद्रित पति को वंचित करके स्त्रियां अन्यत्र जायेंगी। इस युगक्षय में रूपगुण रहित, उपद्रव करने वाले, असूया रखने वाले (निन्दक) आदि को रोकने वाला कोई नहीं रह जायेगा।।३८-४१।।

मुनय ऊचुः

एवं विलम्बिते धर्मे मानुषाः करपीडिताः। कुत्र देशे निवत्स्यन्ति किमाहारविहारिणः॥४२॥

किङ्कर्माणः किमीहन्तः किम्प्रमाणाः किमायुषः।
कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम्॥४३॥

मुनिगण कहते हैं—एवंविध जब धर्म का नाश होगा तथा जनगण जब राज्य कर भार पीड़ित हो जायेगा, तब हे व्यासदेव! मनुष्यों का आहार-विहार कैसा होगा? उनकी चेष्टा, आयु, उनका आकार (लम्बाई, चौड़ाई आदि) क्या होगा? तदनन्तर किस समय सीमा के आने पर वे सत्ययुग प्राप्त कर सकेंगे?।।४२-४३।।

व्यास उवाच

अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्तथा। शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ति ह्रासमायुषः॥४४॥

आयुर्हान्यावलग्नानिर्बलग्नान्या विवर्णता।
वैवर्ण्याद्व्याधिसम्पीडा निर्वेदो व्याधिपीडनात्॥४५॥
निर्वेदात्मसम्बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता।
एवं गत्वा परां काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम्॥४६॥

व्यासदेव कहते हैं—उस समय धर्म से च्युत गुण रहित लोग प्रजावर्ग की दुश्चरित्रता के कारण नाना प्रकार की वासना से ग्रस्त होकर क्षीणायु हो जायेंगे। आयुहानि के कारण बलहानि होगी। बलहानि के कारण विवर्णता होगी। विवर्णता से व्याधि उत्पन्न होगी। व्याधि होने पर मन की बेचैनी तथा खेद उत्पन्न होगा। निर्वेद उत्पन्न होगा (निर्वेद अर्थात् जगत् से उदासीनता उत्पन्न होगी)। इससे आत्मज्ञान होने पर धर्म में अनुरक्ति बढ़ेगी। ऐसी दुरवस्था की जब चरम सीमा हो जायेगी, तब सत्ययुग प्रारम्भ होगा।।४४-४६।।

उद्देशतो धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः।
किं धर्मशीलाः केचित्तु केचिदत्र कुतूहलाः॥४७॥

प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणमिति निश्चिताः। अप्रमाणं करिष्यन्ति सर्वमित्यपरे जनाः॥४८॥

नास्तिक्यपरताश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः। भविष्यन्ति नरा मूढा द्विजाः पण्डितमानिनः॥४९॥

तदात्वमात्रंश्रद्धेया शास्त्रज्ञानबहिष्कृताः। दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति नरा ज्ञानविलोपिताः॥५०॥
तथा विलुलिते धर्मे जनाः श्रेष्ठपुरस्कृताः। शुभान्समाचरिष्यन्ति दानशीलपरायणाः॥५१॥
सर्वभक्षाः स्वयंगुप्ता निर्घृणा निरपत्रपाः।
भविष्यन्ति तदा लोके तत्कषायस्य लक्षणम्॥५२॥

(कलि में) कोई मन ही मन धर्मात्मा रहेगा। कोई धर्म के प्रति उदासीन रहेगा। कोई अधार्मिक रहेगा। कोई-कोई धर्म के प्रति कुतूहली रहेंगे। कोई क्षुद्रधर्मावलम्बी रहेगा। कोई मध्यमार्गी रहेगा। अनेक लोग प्रत्यक्ष-अनुमानादि द्वारा धर्म का अस्तित्व निर्णीत करेंगे। अन्य लोग धर्म के निर्णय में किसी प्रमाण को नहीं मानेंगे (अर्थान्तर-धर्म को अप्रमाणित मानेंगे)। कोई नास्तिक व्यक्ति धर्मविलोपक होगा (जैसे चार्वाक)। हे ब्राह्मणवृन्द! उस समय के मूढ़ जन भी स्वयं को सम्मानित पण्डित मानने लगेंगे। अनेक निर्बुद्धि लोग जो सामने है, उसे ही सत्य मान कर उसके प्रति सश्रद्ध रहेंगे। वे वर्त्तमान के प्रति ही विश्वास श्रद्धा रखेंगे (उनको पुनर्जन्म, प्रारब्ध आदि का अस्तित्व नहीं मान्य होगा)। लोग शास्त्रज्ञान हीन तथा ज्ञान रहित एवं दम्भी रहेंगे। धर्म का यह विपर्यय हो जाने के कारण कतिपय मुख्य लोगों की सहायता से कुछ लोग ही सुशील तथा दानी होकर शुभाचरणरत हो जायेंगे। कलिकाल में लोग सर्वभक्षी, घृणित कर्मरत, केवल अपनी ही रक्षा करने वाले (स्वयंगुप्त), लज्जाहीन हो जायेंगे। यह काल कषाय लक्षणान्वित काल कहा जायेगा।।४७-५२।।

कषायोपप्लवे काले ज्ञाननिष्ठाप्रणाशने।
सिद्धिमल्पेन कालेन प्राप्स्यन्ति निरुपस्कृताः॥५३॥
विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णावरे जनाः।
संश्रयिष्यन्ति भो विप्रास्तत्कषायस्य लक्षणम्॥५४॥

इस कषाय नामक विप्लवयुक्त काल में ज्ञाननिष्ठा का लोप होगा। तथापि यथायोग उपचार के अभाव के कारण भी (अर्थात् उपचारों के न रहने पर भी) मनुष्य अल्प काल में सिद्धिलाभ कर सकेंगे। हे ब्राह्मणवृन्द! ब्राह्मणों की चिरकाल से चली आ रही वृत्ति को नीच वर्ण के लोग अपने हाथों में लेंगे। यही कलि लक्षण है।।५३-५४।।

महायुद्धं महावर्षं महावातं महातपः। भविष्यति युगे क्षीणे तत्कषायस्य लक्षणम्॥५५॥
विप्ररूपेण यक्षांसि राजानः कर्णवेदिनः। पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥५६॥
निःस्वाध्यायवषट्काराः कुनेतारोऽभिमानिनः।
क्रव्यादा ब्रह्मरूपेण सर्वभक्ष्या वृथाव्रताः॥५७॥
मूर्खाश्चार्थपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः।
व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माश्च शाश्वतात्॥५८॥

कलियुग के क्षीण होते समय महायुद्ध, महावर्षा, महान् तूफान, महान् ताप उत्पन्न होगा। यह कलिलक्षण है। जब युगान्त काल होगा, तब राजा लोग कान के कच्चे (सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करने वाले) होंगे। यक्षगण विप्ररूपेण विचरण करेंगे (अर्थात् ब्राह्मण यक्ष के समान आचरण करेंगे, यह अर्थान्तर है)।

राजा लोग भी सुनी-सुनाई बातों पर आधारित रहकर राज्य करेंगे (अर्थात् वास्तविकता का पता नहीं करेंगे)। उस समय स्वाध्याय, वषट्कार नहीं रहेगा। ब्राह्मण लोग राक्षसवत् सर्वभक्षी होंगे तथा मिथ्या आचार का पालन करेंगे। वे मूर्ख, स्वार्थी, लोभी, नीच बुद्धि, अल्प परिवार वाले, अधार्मिक तथा व्यवहार वृत्ति वाले (व्यावसायिक बुद्धि वाले) तथा शाश्वत धर्म से च्युत होंगे।।५५-५८।।

हर्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः। कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः॥५९॥
तेषु प्रभवमाणेशु जनेष्वपि च सर्वशः। अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः॥६०॥

कलौ युगे समुत्पन्नाः प्रधानपुरुषाश्च ये।
कथायोगेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः॥६१॥
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः।
भोक्ष्यभोज्यहराश्चैव करण्डानां च हारिणः॥६२॥

चौराश्चौरस्य हर्तारो हन्त हन्तुर्भविष्यति। चौरैश्चौरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति॥६३॥

तब उस समय के मनुष्य पराये धनरत्नादि का हरण करने वाले, परस्त्रीगामी, विलासी, दुराचारी, कपट व्यवहारी, दुःसाहसी होंगे। इस प्रकार के मनुष्यों का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त होने पर अभावग्रस्त लोग (जीविकार्थ) बहुरूपिया तथा मुनिवेशधारी हो जायेंगे। कलिकाल में जिसे प्रधान माना जायेगा, लोग उसके बारे में नाना प्रकार का कथानक बनाकर उसे पूजित बनायेंगे। कलिकाल के मानव खेती की फसल का हरण करने वाले, वस्त्र चोर, भक्ष्य तथा पेय पदार्थ चोर, जलपात्र के चोर, चोर के यहां भी चोरी करने वाले, हत्यारों की भी हत्या करने वाले भर जायेंगे। जब चोरों द्वारा ही चोरों का वध हो जायेगा, तब कृतयुग में लोगों का कल्याण होगा।।५९-६३।।

निःसारे क्षुभिते काले निष्क्रिये संव्यवस्थिते।
नरा वनं श्रयिष्यन्ति करभारप्रपीडिताः॥६४॥

यज्ञकर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च। कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान्॥६५॥

एवंविध शासन व्यवस्था के ध्वस्त हो जाने के कारण, राज्य कर भार से पीड़ित लोग ऐसा निःसार, क्षुब्ध क्रिया रहित समय आने पर वन में भाग जायेंगे, लेकिन वहां भी यज्ञकर्म नष्ट हो जाने के कारण वे सभी राक्षस, हिंस्र पशु, कीट, मूषक, सर्पादि से पीड़ित होकर कष्ट प्राप्त करेंगे (तथा मृत होते रहेंगे)।।६४-६५।।

क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामग्र्यं चैव बन्धुषु। उद्देशेषु नराः श्रेष्ठा भविष्यन्ति युगक्षये॥६६॥

जब यह कषाय युग (कलिकाल) समाप्त होगा, तब मानव जाति सुभिक्ष, आरोग्य, क्षेम तथा साधन सम्पन्न हो सकेगी। इस युगक्षय में (कलि के अन्त में) मनुष्य को यह सब प्राप्त होगा।।६६।।

स्वयम्पालाः स्वयं चौराः प्लवसम्भारसम्भृताः।
मण्डलैः सम्भविष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक्॥६७॥
स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्टा निःसाराः सह बन्धुभिः।
नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात्॥६८॥

ततः सर्वे समादाय कुमारान्प्रद्रुता भयात्।
कौशिकीं सन्तरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिताः॥६९॥
अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गांश्च काश्मीरानथ कोशलान्।
ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवाः॥७०॥
कृत्स्नं च हिमवत्पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः।
विविधं जीर्णपत्रं च वल्कलान्यजिनानि च॥७१॥
स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति तस्मिन्भूते युगक्षये।
अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा म्लेच्छगणैः सह॥७२॥
नैव शून्या नवारण्या भविष्यति वसुन्धरा।
अगोप्तारश्च गोप्तारो भविष्यन्ति नराधिपाः॥७३॥
मृगैर्मत्स्यैर्विहङ्गैश्च श्वापदैः सर्पकीटकैः। मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः॥७४॥
शीर्णपर्णफलाहारा वल्कलान्यजिनानि च। स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति यथा मुनिजनस्तथा॥७५॥

कलिकाल में पालक ही चोर होगा। लोग अपने कुशल हेतु इन उपद्रवों से पीड़ित होकर अपना-अपना पृथक् मण्डल बनायेंगे। इस कालक्षय में लोग धनहीन होकर अपने बन्धु-बान्धवों के साथ भटकते फिरेंगे। वे लोग क्षुधा तथा भयपीड़ित होकर बालक-बालिकाओं के साथ कौशिकी नदी को पार करके पलायित होंगे। वे लोग अंग, बंग, कलिंग, कश्मीर, कोशल में निवास करेंगे। वे पर्वतों की तराई का आश्रय लेंगे। वे क्षार समुद्र के तट पर पत्ते खाकर, वृक्ष वल्कल पहन कर तथा इसी हालत में हिमालय की तराई में रहेंगे। अनेक लोग म्लेच्छों के साथ अरण्यों में निवास करेंगे। उस समय धरती पूर्णतः मनुष्यों से शून्य नहीं होगी, तथापि अनेक वन भी उत्पन्न हो जायेंगे। राजा लोग तब रक्षक की जगह भक्षक हो जायेंगे। उस काल में मानवगण मधु, शाक, फल, मूल, मृग, मत्स्य, पक्षी, हिंस्र जन्तु, सर्प तथा कीटादि से जीवन निर्वाह करेंगे। वे गलित पत्ते (पेड़ से गिरे पत्ते) तथा फल खाकर रहेंगे। वे वल्कल तथा पशुचर्म धारण करके मुनियों जैसे रहेंगे।।६७-७५।।

बीजानामकृतस्नेहा आहताः काष्ठशङ्कुभिः। अजैडकं खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति नित्यशः॥७६॥
नदीस्त्रोतांसिरोत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रिताः। पक्वान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम्॥७७॥
तनूरुहैर्यथाजातैः समलान्तरसम्भृतैः। बह्वपत्याः प्रजाहीनाः कुलशीलविवर्जिताः॥७८॥
एवं भविष्यन्ति तदा नराश्चाधर्मजीविनः। हीना हीनं तथा धर्मं प्रजा समनु वत्स्यति॥७९॥
आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशद्भविष्यति। दुर्बला विषयग्लाना जराशोकैरभिप्लुताः॥८०॥
भविष्यन्ति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः। आयुःप्रत्ययसंरोधाद्विषायादु (यैरु) परंस्यते॥८१॥
शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः। सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति व्यवहारोपसंक्षयात्॥८२॥
भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशीलिनः।
करिष्यन्ति च संस्कार स्वयं च क्षयपीडिताः॥८३॥

वे विविध बीजों से स्वयं तैल पदार्थ उत्पादित करके उपयोग करेंगे। वन में विचरते समय वे कांटे, काष्ठ आदि द्वारा क्षत-विक्षत होंगे। वे बकरी, भेड़ें, गर्दभ, ऊंट इत्यादि पालन करेंगे। वे जल हेतु बांधों से नदियों का स्रोत अवरुद्ध करते रहेंगे। वे परस्पर पके अन्नों का विनिमय तथा क्रय-विक्रय करेंगे। उनके देह घने रोम तथा मैल से भरे रहेंगे। वे कुलशील रहित लोग कोई तो अनेक सन्तति वाले तो कोई सन्तति रहित रहेंगे। वे सभी अधर्मजीवी, धर्महीन तथा कदाचारी होंगे। इस प्रकार वे जीवन धारण करेंगे। सभी दुर्बल, जरा-शोकादि से अभिभूत, विषयी, ऐश्वर्य रहित होंगे। तीस वर्ष से अधिक किसी की आयु नहीं रहेगी। रोगों से सभी की इन्द्रियवृत्ति क्षीण रहेगी। दीन प्रजा तुच्छ धर्मावलम्बी रहेगी। इस प्रकार वे आयुक्षय होते देख कर विषयों से विमुख होकर साधु-महात्मा की सेवा तथा उनका दर्शन करेंगे। ऐसी हालत में लोक व्यवहार का जब क्षय हो जायेगा, तब उनमें सत्य का उन्मेष होगा। तब उनको श्रेय में प्रवृत्ति होगी। तब वे हानि क्षय पीड़ित लोग अपना संस्कार करेंगे।।७६-८३।।

एवं शुश्रूषवो दाने सत्ये प्राण्यभिरक्षणे। ततः पादप्रवृत्ते तु धर्मे श्रेयो निपत्स्यते।।८४।।
तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम्। स्वादु किन्त्विति विज्ञाय धर्म एव च दृश्यते।।८५।।
यथा हानिक्रमं प्राप्तास्तथा ऋद्धिक्रमं गताः।
प्रगृहीते ततो धर्मे प्रपश्यन्ति कृतं युगम्।।८६।।

कामना पूर्ति न होते देख कर वे धर्म का आश्रय ग्रहण करेंगे। वे पापों से नितान्त उत्पीड़ित होकर पुत्रादि के संस्कार कार्य में प्रवृत्त हो जायेंगे। क्रमशः जब अनेक लोग दान, दया तथा सत्यपरायण होंगे, तब धर्म के पादों का उदय होने पर उनका कल्याण होगा। तब वे लोग विविध कार्यों के गुण-अवगुण का विचार करके अनुमान द्वारा धर्म को ही श्रेष्ठ समझ सकेंगे। अतः धर्मानुष्ठान न किये जाने के कारण जो दुर्दशा प्राप्त हो गई थी, वह क्रमशः धर्माचरण के कारण उन्नति में बदल जायेगी। यही स्थिति सत्ययुग अथवा कृतयुग है।।८४-८६।।

साधुवृत्तिः कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते। एक एव तु कालोऽयं हीनवर्णो यथा शशी।।८७।।
छन्नश्च तमसा सोमो यथा कलियुगं तथा। मुक्तश्च तमसा सोम एवं कृतयुगं च तत्।।८८।।
अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थ इति तं विदुः। अविविक्तमविज्ञातं दायाद्यमिह धार्यते।।८९।।
इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्थविरीकृतः।
गुणैः कर्माभिनिवृत्तिर्गुणाः शुध्यन्ति कर्मणा।।९०।।
आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी। युगे युगे यथा कालमृषिभिः समुदाहृता।।९१।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां देवानां च प्रतिक्रिया।
आशिषश्च शिवाः पुण्यास्तथैवाऽऽयुर्युगे युगे।।९२।।
तथा युगानां परिवर्तनानि, चिरप्रवृत्तानि विधिस्वभावात्।
क्षणं न सन्तिष्ठति जीवलोकः, क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः।।९३।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे भविष्यकथनं नाम एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३१।।

सत्ययुग में सदाचार तथा कषाय (कलि) युग में कदाचार घटित होता है। एक अखण्ड काल ही तमोरूपी आवरण से आच्छन्न होकर सत्य-त्रेतादि नाना नामों से कहा गया है। जैसे चन्द्र राहु से आच्छन्न होता है, यह भी वही स्थिति है। तमोगुण से आच्छन्न काल ही कलि है। तमोगुण मुक्त काल ही सत्यगुण है। वेद प्रतिपाद्य परब्रह्म का यह सब अर्थवाद मात्र है। वास्तव में कालतत्व अविज्ञात तत्व है। ब्रह्म का अर्थवाद ही वेद है। वह स्वयं से अविविक्त (अपृथक्) अविज्ञात है। यही काल है। तपस्या को इष्टवाद कहते हैं। सत्व आदि गुणों से तपस्या स्थिर होती है। इन गुणों द्वारा व्यक्ति कर्म-निवृत्त होता है। कर्म से ही गुण का शोधन हो जाता है। ऋषिगण युग-युगान्त में देशकालानुरूप पुरुषों को आशीर्वाद प्रदान करते रहते हैं। इस मंगलप्रद पुण्यमय आशीर्वाद के फलस्वरूप धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष मिलता है तथा देवगण की आशीर्वाद रूपी प्रतिक्रिया होती है। वे कल्याणपूर्ण पवित्र आशीर्वाद प्रदान करते हैं। विधाता के स्वभावानुरूप यह युगपरिवर्त्तन चिरकाल से प्रवृत्त होता रहता है। जीवगण क्षणकालार्थ भी स्थिर नहीं रह सकते। क्षय एवं उत्पत्तिमय परिवर्तन सतत् होता रहता है।।८७-९३।।

।।एकत्रिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यास तथा मुनियों के संवादक्रम में प्रकृत प्रलय वर्णन

व्यास उवाच

सर्वेषामेव भूतानां त्रिविधः प्रतिसञ्चरः। नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवाऽऽत्यन्तिको मतः॥१॥
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसञ्चरः। आत्यन्तिको वै मोक्षश्च प्राकृतो द्विपरार्धिकः॥२॥

व्यासदेव कहते हैं—समग्र प्राणीगण हेतु प्रलय त्रिविध है। यथा—नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक। ब्राह्म प्रलय ही नैमित्तिक है। मोक्ष लाभ आत्यन्तिक प्रलय है। दो परार्ध अतिवाहित होने पर जो प्रलय घटित होता है, वही प्राकृतिक प्रलय पदवाच्य है।।१-२।।

मुनय ऊचुः

परार्धसङ्ख्यां भगवंस्त्वमाचक्ष्व यथोदिताम्। द्विगुणीकृतयज्ज्ञेयः प्राकृतः प्रतिसञ्चरः॥३॥

मुनिगण कहते हैं—हे प्रभो! आपने इस द्विगुणी कृत परार्द्ध परिमित (दो परार्द्ध परिमित) काल में प्राकृत प्रलय का वर्णन किया है। उस परार्द्ध की संख्या यथायथ रूप से कहिये।।३।।

व्यास उवाच

स्थानात्स्थानं दशगुणमेकैकं गण्यते द्विजाः। ततोष्टादशमे भागे परार्धमभिधीयते॥४॥

परार्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतः स लयो द्विजाः।
तदाऽव्यक्तेऽखिलं व्यक्तं सहेतौ लयमेति वै॥५॥
निमेषो मानुषो योऽयं मात्रामात्रप्रमाणतः।
तैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत्काष्ठास्तथा कला॥६॥
नाडिका तु प्रमाणेन कला च (श्च) दश पञ्च च।
उन्मानेनाम्भसः सा तु पलान्यर्धत्रयोदश॥७॥

हेममाषैः कृतच्छिद्रा चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः। मागधेन प्रमाणेन जलप्रस्थस्तु स स्मृतः॥८॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजगण! एक स्थान से (प्रथम संख्या से) द्वितीय एक-एक स्थान की दसगुणित गणना करे। उसके पश्चात् अट्ठारहवें स्थान तक गणना करने पर जो संख्या उपलब्ध होती है, वही परार्द्ध है। इस परार्द्ध संख्या को दूना कर देने पर प्राकृत प्रलयकाल ज्ञात होगा तब अखिल कारण ब्रह्म में ही समस्त लय होता है। मनुष्य का एक निमेष ही एक मात्रा है। पन्द्रह मात्रा = १ काष्ठा। ३० काष्ठा = १ कला। १५ कला = १ नाड़िका। जल प्रमाण से वही साढ़े तेरह पल होगा। एक मात्रा वाले अक्षर के उच्चारण में जो काल लगता है, वही निमेष है। ताम्र पात्र के भरे हुये जल से नाड़ी ज्ञान होगा। ताम्रपात्र में ४ अंगुल लम्बी ४ माशा की स्वर्ण शलाका से एक छिद्र करे। उस छिद्र को ऊर्ध्व में करके यह पात्र जल में निमज्जित करे। जितनी देर में पात्र जलपूर्ण हो जाये, वह नाड़ी काल होगा। मगध देश के माप के अनुसार यह पात्र ही जलप्रस्थ है।।४-८।।

नाडिकाभ्यामथ द्वाभ्यां मुहूर्तो द्विजसत्तमाः। अहोरात्रं मुहूर्तास्तु त्रिंशन्मासो दिनैस्तथा॥९॥
मासैर्द्वादशभिर्वर्षमहोरात्रं तु तद्दिवि। त्रिभिर्वर्षशतैर्वर्षं षष्ट्या चैवासुरद्विषाम्॥१०॥
तैस्तु द्वादशसाहस्रैश्चतुर्युगमुदाहृतम्। चतुर्युगसहस्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम्॥११॥
स कल्पस्तत्र मनवश्चतुर्दश द्विजोत्तमाः। तदन्ते चैव भो विप्रा ब्रह्मनैमित्तिको लयः॥१२॥
तस्य स्वरूपमत्युग्रं द्विजेन्द्रा गदतो मम। शृणुध्वं प्राकृतं भूयस्ततो वक्ष्याम्यहं लयम्॥१३॥

हे द्विजप्रवरगण! एक नाड़िका में मागध प्रमाण से एक प्रस्थ जल क्षरित होता है। दो नाड़िका = १ मुहूर्त। ३० मुहूर्त = १ अहोरात्र। १२ मास = १ वर्ष मानवों का। यह मानवों का एक वर्ष देवगण का अहोरात्र होगा। तीन सौ साठ मानव वर्ष = १ देववर्ष। द्वादश सहस्र (देव वर्ष में) चार युग होते हैं। चार हजार युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। वही कल्प है। इसमें चौदह मनुओं का आविर्भाव होता है। इस कल्प के अन्त में ब्रह्मा का नैमित्तिक प्रलय होता है। इसका स्वरूप अतीव उग्र है। हे द्विजसत्तमगण! उसका मैं वर्णन करता हूं। आप लोग श्रवण करिये, तदनन्तर प्राकृत लय कहूंगा।।९-१३।।

चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले। अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी॥१४॥
ततो यान्यल्पसाराणि तानि सत्त्वान्यनेकशः।
क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठाः पार्थिवान्यतिपीडनात्॥१५॥

ततः स भगवान्कृष्णो रुद्ररूपी तथाऽव्ययः।
क्षयाय यतते कतुमात्मस्थाः सकलाः प्रजाः॥१६॥
ततः स भगवान्विष्णुर्भानोः सप्तसु रश्मिषु।
स्थितः पिबत्यशेषाणि जलानि मुनिसत्तमाः॥१७॥
पीत्वाऽम्भांसि समस्तानि प्राणिभूतगतानि वै।
शोषं नयति भो विप्राः समस्तं पृथिवीतलम्॥१८॥
समुद्रान्सरितः शैलाञ्शैलप्रस्त्रवणानि च। पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम्॥१९॥

एक सहस्त्र बार चारों युग व्यतीत हो जाने पर महीतल क्षीण हो जाता है। तब अत्यन्त उग्र अनावृष्टि (अवर्षण) सौ वर्ष तक होता है। इससे अति क्लेश से अल्प काल में अल्प सत्व प्राणियों का विनाश हो जाता है। इसके पश्चात् सद् रूपी भगवान् अव्यय कृष्ण सभी जीवों को आत्मसात् करने हेतु यत्नतत्पर हो जाते हैं। भगवान् विष्णु सूर्य की सप्त रश्मियों में आविष्ट होकर जगत् का समग्र जल पान कर लेते हैं। वे तब प्राणीगण तथा समग्र भूतसमूह में स्थित जल का पान कर जाते हैं। वे समस्त पृथिवी का जल, समुद्र, सरिता, पर्वत, झरने तथा पातालतलस्थ जल का भी पान कर जाते हैं।।१४-१९।।

ततस्तस्याप्यभावेन तोयाहारोपबृंहितः। सहस्त्ररश्मयः सप्त जायन्ते तत्र भास्कराः॥२०॥
अधश्चोर्ध्वं च ते दीप्तास्ततः सप्त दिवाकराः।
दहन्त्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विजाः॥२१॥
दह्यमानन्तु तैर्दीप्तैस्त्रैलोक्यं दीप्तभास्करैः। साद्रिनगार्णवाभोगं निःस्नेहमभिजायते॥२२॥
ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिलं द्विजाः। भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृष्ठोपमाकृतिः॥२३॥

इस जल का पान कर लेने के कारण पुष्ट होकर अनेक सहस्त्र रश्मियों वाले सात सूर्य का उदय होता है। हे ब्राह्मणवृन्द! ये सात सूर्य अधः, ऊर्ध्व, सर्वदिक् प्रदीप्त होकर रसातल के साथ त्रैलोक्य को दग्ध कर देते हैं। वे ऊर्ध्व-अधः सर्वत्र तप्त हो जाते हैं। तब पर्वत एवं समुद्र तक दग्ध हो जाता है। उस काल में वृक्ष-जलादि सब कुछ दग्ध हो जाता है। पृथिवी कमठ पृष्ठ (कछुए की पीठ) जैसी हो जाती है।।२०-२३।।

ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ भूतगर्संहरो हरः। शेषाहिश्वाससन्तापात्पातालानि दहत्यधः॥२४॥
पातालानि समस्तानि स दग्ध्वा ज्वलतो महान्।
भूमिमभ्येत्य सकलं दग्ध्वा तु वसुधातलम्॥२५॥
भुवो लोकं ततः सर्वं स्वर्गलोकं च दारुणः। ज्वालामालामहावर्तस्तत्रैव परिवर्तते॥२६॥
अम्बरीषमिवाऽऽभाति त्रैलोक्यमखिलं तदा। ज्वालावर्तपरीवारमुपक्षीणबलास्ततः॥२७॥
ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः। हृतावकाशा गच्छन्ति महर्लोकं द्विजास्तदा॥२८॥
तस्मादपि महातापतप्ता लोकास्ततः परम्।
गच्छन्ति जनलोकं ते दशावृत्या परैषिणः॥२९॥

ततो दग्ध्वा जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः। मुखनिःश्वासजान्मेघान्करोति मुनिसत्तमाः॥३०॥

इसके अनन्तर सर्व संहारक कालाग्निरुद्र पाताल तल को दग्ध करने लगते हैं। वह अग्निरूप कालाग्निरुद्र शेषनाग के निःश्वास से तप्त पातालतल का दाह प्रारम्भ करते हैं। वे क्रमशः पाताल दहनोपरान्त भूमण्डल का दाह करने लगते हैं। भूलोक दग्ध हो जाने पर भुवर्लोक, तदनन्तर स्वर्गलोक का दाह करके वह अग्नि अति भयंकर रूपेण प्रज्वलन्त हो उठता है। इस समय त्रैलोक्य मण्डल तर्जन कर उठता है। उभय लोक स्वर्ग-मर्त्य के प्राणी द्विज (महर्षि) ज्वालामाला से तप्त होकर महर्लोक चले जाते हैं। वे लोग वहां से भी अति ताप से तप्त होकर जनलोक चले जाते हैं। हे मुनिसत्तमगण! रुद्ररूपी प्रभु जनार्दन एवंविध समस्त जगत् को दग्ध करने के उपरान्त अपने मुखमण्डल से मेघ की सृष्टि करते हैं।।२४-३०।।

ततो गजकुलप्रख्यस्तडिद्वन्तो निनादिनः।
उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्तका घनाः॥३१॥
केचिदञ्जनसङ्काशाः केचित्कुमुदसन्निभाः। धूमवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः॥३२॥
केचिद्धरिद्रावर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा। केचिद्वैदूर्यसङ्काशा इन्द्रनीलनिभास्तथा॥३३॥
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जातीकुन्दनिभास्तथा। इन्द्रगोपनिभाः केचिन्मनः शिलनिभास्तथा॥३४॥
पद्मपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना घनाः। केचित्पुरवराकाराः केचित्पर्वतसन्निभाः॥३५॥
कूटागारनिभाश्चान्ये केचित्स्थलनिभा घनाः। महाकाया महारावा पूरयन्ति नभस्तलम्॥३६॥
वर्षन्तस्ते महासारास्तमग्निमतिभैरवम्। शमयन्त्यखिलं विप्रास्त्रैलोक्यान्तरविस्तृतम्॥३७॥

तब वे हाथी की सूंड़ इतने मोटे मेघ विद्युत् चमकाते घोर शब्द करते नभोमण्डल को समाच्छादित कर देते हैं। ये ही संवर्त्तक मेघ हैं। उनमें से कोई काजल जैसे, कोई कुमुदवत्, कोई धूम्रवर्ण, कोई पीतवर्ण, कोई हल्दी के वर्ण वाले, कोई लाक्षारसवत्, कोई वैदूर्य जैसे, कोई इन्द्रनीलतुल्य, कोई जातीपुष्पवत्, कोई इन्द्रगोप के वर्ण के, कोई मैनसिल के वर्ण वाले तथा कोई-कोई पद्मपत्र वर्ण के हैं। कोई महान् नगराकार, कोई पर्वताकार, कोई क्रीड़ागृहाकार, कोई धरती के आकार के हैं। ये महाकृति, महाशब्दकारी मेघ आकाश को पूर्ण करने वाले होते हैं। ये अतीव उग्र वृष्टिकारी होते हैं। यह वृष्टि त्रैलोक्य व्याप्त अग्नि को बुझा देती है।।३१-३७।।

नष्टे चाग्नौ शतं तेऽपि वर्षाणामधिकं घनाः।
प्लावयन्तो जगत्सर्वं वर्षन्ति मुनिसत्तमाः॥३८॥
धाराभिरक्षमात्राभिः प्लायित्वाऽखिलां भुवम्।
भुवो लोकं तथैवोर्ध्वं प्लावयन्ति दिवं द्विजाः॥३९॥
अन्धकारीकृते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे। वर्षन्ति ते महामेघा वर्षाणामधिकं शतम्॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे संहारलक्षणकथनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३२।।

हे मुनिसत्तमगण! अग्नि के निर्वापित हो जाने पर भी ये मेघ सौ वर्षों तक रुद्राक्ष के दाने इतनी बड़ी बूंदों के रूप में मोटी धारा से वर्षण करते रहते हैं। इससे भूलोक, द्युलोक, स्वर्गलोकादि सभी जगत् प्लावित हो जाता है। उस समय स्थावर, जंगम सब कुछ का नाश होता है। समस्त जगत् गाढ़ अन्धकार से परिव्याप्त हो जाता है। इस अवस्था में भी वह वृष्टि नहीं रुकती। ऐसी वृष्टि सौ वर्ष से अधिक होकर तब शान्त होती है।।३८-४०।।

।।द्वात्रिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रकृत लय निरूपण

व्यास उवाच

सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि द्विजोत्तमाः।
एकार्णवं भवत्येतत्त्रैलोक्यमखिलं ततः।।१।।
अथ निःश्वासजो विष्णोर्वायुस्ताञ्जलदांस्ततः।
नाशं नयति भो विप्रा वर्षाणामधिकं शतम्।।२।।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान्भूतभावनः। अनादिरादिर्विश्वस्य पीत्वा वायुमशेषतः।।३।।
एकार्णवे ततस्तस्मिञ्शेषशय्यास्थितः प्रभुः। ब्रह्मरूपधरः शेते भगवानादिकृद्धरिः।।४।।
जनलोकगतैः सिद्धैः सनकाद्यैरभिष्टुतः। ब्रह्मलोकगतैश्चैव चिन्त्यमानो मुमुक्षुभिः।।५।।
आत्ममायामयीं दिव्यां योगनिद्रां समास्थितः। आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्तयन्परमेश्वरः।।६।।
एष नैमित्तिको नाम विप्रेन्द्राः प्रतिसञ्चरः। निमित्तं तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरिः।।७।।

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजवर! उस समय जलराशि ने सप्तर्षि के स्थान का भी अतिक्रमण करके समस्त त्रिलोकी को एकार्णवीकृत कर दिया। तदनन्तर विष्णु के निश्वास से उठा वायु इस जलदावलि को विनष्ट कर देता है। हे द्विजवृन्द! उस समय जो सर्वभूतात्मक, भूतभावन, अनादि, विश्व के आदि तथा अचिन्त्य देव हैं, वे प्रभु भगवान् विष्णु तत्काल समग्र वायु पान करके एकार्णव जल में शेषशय्या पर अवस्थित होकर शयनरत हो गये। क्रमशः आदिकर्त्ता ब्रह्मारूपधारी भगवान् हरि उस शय्या पर शयन करते अवस्थित हो गये। उस समय जनलोकवासी सिद्धगण, ब्रह्मलोकस्थ सनकादि महर्षिवृन्द ने वहां आकर उनका स्तव किया। मुमुक्षुगण उन श्रीहरि की ध्यान-धारणा में निरत हो गये। इस समय परमेश्वर हरि ने अपनी आत्मा का चिन्तन वासुदेव रूप में किया तथा अपनी आत्मा के समान दिव्य योगनिद्रा का आश्रय ग्रहण किया। हे

विप्रप्रवरवृन्द! यही है नैमित्तिक प्रलय। ब्रह्मरूपधारी हरि का जो शेषशय्या पर शयन है, यही नैमित्तिक प्रलय का निमित्त है।।१-७।।

यदा जागर्ति सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत्। निमीलत्येतदखिलं मायाशय्याशयेऽच्युते॥८॥
पद्मयोनेर्दिनं यत्तु चतुर्युगसहस्रवत्। एकार्णवकृते लोके तावती रात्रिरुच्यते॥९॥

जब ये सर्वात्मा जाग्रत हो जाते हैं, तब यह विश्व चेष्टारत हो जाता है। जब वे मायाशय्या पर शयन करते हैं, तब यह विश्व भी निमीलित हो जाता है। एक सहस्र चतुर्युग का ब्रह्मा का दिन होता है। इतने ही परिमाण की उनकी रात होती है। जब ब्रह्मा की रात्रि होती है, तब अखिल जगत् एकार्णवरूपी हो जाता है।।८-९।।

ततः प्रबुद्धो रात्र्यन्ते पुनः सृष्टिं करोत्यजः।
ब्रह्मस्वरूपधृग्विष्णुर्यथा वः कथितं पुरा॥१०॥
इत्येष कल्पसंहारो अन्तरप्रलयो द्विजाः।
नैमित्तिको वः कथितः श्रृणुध्वं प्राकृतं परम्॥११॥

रात्रि का अवसान होते ही ब्रह्मा द्वारा पुनः सृष्टि की जाती है। यह पूर्वकथित है कि विष्णु ही ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं। हे द्विजवृन्द! यही अन्तरप्रलय, कल्पसंहार, नैमित्तिक लय है। अब आप लोग प्राकृत प्रलय का वृत्तान्त श्रवण करें।।१०-११।।

अवृष्ट्यग्न्यादिभिः सम्यक्कृते शय्यालये द्विजाः।
समस्तेष्वेष लोकेषु पातालेष्वखिलेषु च॥१२॥
महदादेर्विकारस्य विशेषात्तत्र संक्षये। कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते प्रतिसञ्चरे॥१३॥
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धादिकं गुणम्।
आत्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयाय प्रकल्पते॥१४॥
प्रनष्टे गन्धतन्मात्रे भवत्युर्वी जलात्मिका। आपस्तदा प्रवृत्तास्तु वेगवत्यो महास्वनाः॥१५॥

हे विप्रगण! इस प्रलय में वृष्टि के बिना ही समस्त सागर, समस्त लोक तथा समस्त पाताल तल प्रवल अनल से सम्यक् रूप से घिर जाते हैं। महद् आदि समस्त विकार समूह का सविशेष रूप से संक्षय हो जाता है। इस प्रकार से कृष्ण की इच्छा के अनुरूप प्राकृत प्रलय होता है। उस समय जलराशि द्वारा पृथिवी का गुण जो गन्ध है, उसे ग्रसित किया जाता है। भूमि गन्धहीन होने के कारण प्रलयोन्मुखी हो जाती है। गन्धतन्मात्र के नष्ट हो जाने के परिणामस्वरूप पृथिवी जलमय हो उठती है। उस समय यह वेगवान् जलराशि गंभीर निर्घोष के साथ प्रवाहित होने लगती है।।१२-१५।।

सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च। सलिलेनैवोर्मिमता लोकालोकः समन्ततः॥१६॥
अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा पीयते तु सः। नश्यन्त्यापः सुतप्ताश्च रसतन्मात्रसंक्षयात्॥१७॥
ततश्चाऽऽपोऽमृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवन्ति वै।
अग्न्यवस्थे तु सलिले तेजसा सर्वतो वृते॥१८॥

स चाग्निः सर्वतो व्याप्य आदत्ते तज्जलं तदा।
सर्वमापूर्यतो चाभि (रयत्यग्नि) स्तदा जगदिदं शनैः॥१९॥
अर्चिभिः सन्तते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा। ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरत्ति प्रभाकरम्॥२०॥
प्रलीने च ततस्तस्मिन्वायु भूतेऽखिलात्मके। प्रनष्टे रूपतन्मात्रे कृतरूपो विभावसुः॥२१॥

यह समस्त जगत् उससे प्लावित हो उठता है। वह कभी तो स्तंभित सा अवस्थान करने लगता है, कभी जल विक्षुब्ध होकर बहने लगता है। उस समय लोकालोक पर्वत भी तरंगायित हो रही जलराशि द्वारा सम्यक्तः उसमें समाहित हो जाता है। इस समय तेजतत्व जल के रसतन्मात्रा गुण का पान कर लेता है। इससे रसतन्मात्र का क्षय हो जाने के कारण जलराशि सुतप्त होकर क्षीण हो जाती है। अब अमृतवत् जो जल था, वह सब शीघ्र तेजः रूप में परिणत हो जाता है। जल के अनलावस्था में हो जाने से उस तेजः से समग्र जगत् समावृत हो जाता है। तब अग्नि सभी दिशाओं में विस्तार पाकर पूर्णतः जलराशि का ग्रास कर लेता है। ऊपर, नीचे, इधर-उधर सर्वत्र अग्निशिखा ही परिलक्षित होती रहती है। उस समय तेजः के परमरूप भास्वरता को वायु ग्रास कर लेता है। इससे समस्त तेज के तिरोहित होकर वायुरूप हो जाने के कारण सब कुछ वायु रूप हो जाता है। इस प्रकार अग्नि का गुण रूपतन्मात्र विलीन हो जाने के कारण मूर्त्तिमान विभावसु प्रशमित हो जाते हैं।।१६-२१।।

प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोधूयते महान्।
निरालोके तदा लोके वायुसंस्थे च तेजसि॥२२॥
ततः प्रलयमासाद्य वायुसम्भवमात्मनः।
ऊर्ध्वं च वायुस्तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश॥२३॥
वायोस्त्वपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते ततः।
प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम्॥२४॥
अरूपमरसस्पर्शमगन्धवदमूर्तिमत्। सर्वमापूरयच्चैव सुमहत्तत्प्रकाशते॥२५॥
परिमण्डलतस्तत्तु आकाशं शब्दलक्षणम्।
शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति॥२६॥
ततः शब्दगुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः। भूतेन्द्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वैः॥२७॥
अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः।
भूतादिं ग्रसते चापि महाबुद्धिर्विचक्षणा॥२८॥

ज्योतिः का (अग्नि का) प्रशमन हो जाने के उपरान्त तब एकमात्र प्रभंजन (वायु) ही प्रवहमान रहता है। जब तेज वायु में प्रविष्ट होता है, तब समस्त जगत् अंधकाराच्छन्न हो जाता है। प्रलय में अवतीर्ण यह वायु ऊर्ध्व-अधः, आमने-सामने दशों दिशाओं को आलोड़ित कर देता है। तदनन्तर आकाश द्वारा वायु के गुण स्पर्शतन्मात्र का ग्रास कर लिया जाता है। वायु के प्रशमित होने पर अनावृत आकाश अकेले अवस्थित रह जाता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा मूर्त्तिमत्ता रहित वह महान् आकाश ही सर्वत्र व्याप्त रहता है। सर्वत्र सर्वदिक्

समूह में एकमात्र शब्दलक्षण आकाश ही परिमण्डलक्रमेण अवस्थान करता है। उस समय आकाश के गुण शब्द का ग्रास भूतादि अहंकार कर लेता है। यह अहंकार प्राणीगण में रहता है। यह तामस अहंकार है, जिसका ग्रास विचक्षण महाबुद्धि कर लेती है।।२२-२८।।

उर्वी महांश्च जगतः प्रान्तेऽन्तर्बाह्यतस्तथा।
एवं सप्तमहाबुद्धिः (?) क्रमात्प्रकृतयस्थया॥२९॥
प्रत्याहारैस्तु ताः सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम्। येनेदमावृतं सर्वमण्डमप्सु प्रलीयते॥३०॥
सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोकं सपर्वतम्। उदकावरणं ह्यत्र ज्योतिषा पीयते तु तत्॥३१॥

महाबुद्धि सप्तधा है। यथा उर्वी[१], महान्[२], जगत्[३] का आभ्यन्तर[४], वाह्य[५], प्रान्त[६] तथा प्रकृति[७]। अब ये प्रलय काल में एक दूसरे में अनुप्रविष्ट हो जाते हैं। एवंविध क्रमशः समस्त महाबुद्धि तथा प्रकृति प्रत्याहार परम्परा से एक दूसरे में प्रविष्ट हो जाती हैं। जिससे आवृत्त होकर यह समग्र ब्रह्माण्ड, सप्तद्वीप, सप्त सागर, सात लोक, सप्त कुलाचल (पर्वत), जल में प्रलीन हो जाता है, वह उदकावरण उस समय तेज द्वारा पुनः पी लिया जाता है।।२९-३१।।

ज्योतिर्वायौ लयं याति यात्याकाशे समीरणः।
आकाशं चैव भूतादिर्ग्रसते तं तथा महान्॥३२॥
महान्तमेभिः सहितं प्रकृतिर्ग्रसते द्विजाः। गुणसाम्यमनुद्रिक्तमन्यूनं च द्विजोत्तमाः॥३३॥
प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतुः प्रधानं कारणं परम्। इत्येषा प्रकृतिः सर्वा व्याक्ताव्यक्तस्वरूपिणी॥३४॥

क्रमशः तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में (भूतादि में) तथा यह भूतादि महत् में प्रलीन हो जाता है। हे ब्राह्मणवृन्द! तदनन्तर प्रकृति इनके साथ महत् का ग्रास करती है तथा गुणसाम्यमयी अवस्था मिल जाने के कारण अनुद्रिक्त अन्यूनरूपेण अवस्थित हो जाती है। हे द्विजप्रवरगण! यह प्रकृति ही प्रधान अथवा परम कारण नाम से कही जाती है। यह प्रकृति व्यक्त तथा अव्यक्त रूपा है।।३२-३४।।

व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्यां विप्राः प्रलीयते।
एकः शुद्धोऽक्षरो नित्यः सर्वव्यापी तथा पुनः॥३५॥
सोऽप्यंशः सर्वभूतस्य द्विजेन्द्राः परमात्मनः। नश्यन्ति सर्वा यत्रापि नामजात्यादिकल्पनाः॥३६॥
सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे। स ब्रह्म तत्परं धाम परमात्मा परमेश्वरः॥३७॥
स विष्णुः सर्वमेवेदं यतो नाऽऽवर्तते पुनः।
प्रकृतिर्या मयाऽऽख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी॥३८॥
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि। परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः॥३९॥

हे विप्रगण! प्रकृति के अव्यक्त स्वरूप में उसका समस्त व्यक्त स्वरूप प्रलीन रहता है। वे ही परमात्मा की एक अद्वय, नित्य, शुद्ध, सर्वव्यापी अक्षय आत्मा हैं। नाम, जाति आदि निखिल कल्पना इन सत्तामात्रात्मक ज्ञानस्वरूप ज्ञेय पदार्थ में ही विलीन हो जाती है। ये ही ब्रह्मा, परमधाम, परमात्मा, परमेश्वर विष्णु हैं। सब कुछ उनका ही रूप है। उनको पा लेने पर कोई भी पुनः संसार में नहीं लौटता। मैंने जिन व्यक्त तथा अव्यक्त रूपा

प्रकृति का वर्णन किया है, वे प्रकृति तथा पुरुष, दोनों (परमात्मा में) परमावस्था में प्रलीन रूप से ही स्थित रहते हैं। ये परमात्मा ही सब कुछ के आधार तथा परमेश्वर हैं।।३५-३९।।

विष्णुनाम्ना स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते। प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्॥४०॥
ताभ्यामुभाभ्यां पुरुषैर्यज्ञमूर्ति स इज्यते।
ऋग्यजुःसामभिर्मार्गैः प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ॥४१॥
यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान्पुरुषैः पुरुषोत्तमः। ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्तिः स इज्यते॥४२॥
निवृत्तैयागमार्गैश्च विष्णुर्मुक्तिफलप्रदः। ह्रस्वदीर्घप्लुतैर्यत्तु किञ्चिद्वस्त्वभिधीयते॥४३॥
यच्च वाचामविषयस्तत्सर्वं विष्णुरव्ययः।
व्यक्तः स एवमव्यक्तः स एव पुरुषोऽव्ययः॥४४॥

वेद तथा वेदाङ्गों में वे ही विष्णु नाम से गाये जाते हैं। सभी लोग प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप द्विविध वैदिक कर्मों द्वारा यज्ञमूर्त्ति विष्णु की उपासना करते रहते हैं। प्रवृत्ति पथ पर चलने वाले व्यक्ति ऋक्, यजु तथा साम मन्त्रों से इन यज्ञमूर्त्ति पुरुषोत्तम विष्णु की उपासना करते रहते हैं। जो निवृत्ति पथ पर चलने वाले हैं, वे ज्ञानमूर्त्ति विष्णु की उपासना ज्ञानयोग से करते हैं। ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत क्रमेण जो कुछ वस्तु अभिहित है तथा जो वाक्य का विषय ही नहीं है, वह सब अव्यय विष्णु का ही रूप है। वे विष्णु ही व्यक्त तथा अव्यक्त पुरुष हैं।।४०-४४।।

परमात्मा च विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरिः।
व्यक्ताव्यक्तात्मिका तस्मिन्प्रकृतिः सा विलीयते॥४५॥
पुरुषश्चापि भो विप्रा यस्तदव्याकृतात्मनि।
द्विपरार्धात्मकः कालः कथितो यो मया द्विजाः॥४६॥
तदहस्तस्य विप्रेन्द्रा विष्णोरीशस्य कथ्यते।
व्यक्ते तु प्रकृतौ लीने प्रकृत्यां पुरुषे तथा॥४७॥
तत्राऽऽस्थिते निशा तस्य तत्प्रमाणा तपोधनाः।
नैवाहस्तस्य च निशा नित्यस्य परमात्मनः॥४८॥
उपचारात्तथाऽप्येतत्तस्येशस्य तु कथ्यते।
इत्येष मुनिशार्दूलाः कथितः प्राकृतो लयः॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे प्राकृतलयनिरूपणं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३३।।

वे ही परमात्मा, विश्वात्मा तथा विश्वरूपधारी हरि हैं। प्रकृति का ही जो व्यक्त एवं अव्यक्त रूप है, वह सब उन विष्णु में लीन रहता है। हे विप्रगण! पुरुष भी परमात्मस्वरूप में प्रविलीन हो जाता है। हे द्विजवृन्द! मैंने जो द्विपरार्धात्मक कालपरिमाण को कहा है, वह सर्वशक्तिमान विष्णु का मात्र एक (दिन है रात नहीं) दिवस

है। जब व्यक्त प्रकृति में लीन होता है, तब प्रकृति पुरुष में लीन होती है। हे विप्रवृन्द! जब ये दोनों परमात्मा विष्णु में अवस्थान करते हैं, तब विष्णु के दिन के अनुसार उनकी एक रात्रि होती है। परमात्मा तो नित्य वस्तु हैं। वास्तव में उनकी रात्रि तो होती ही नहीं। उनका रात्रि-दिन कहा जाना मात्र औपचारिकता है। मैंने प्राकृत प्रलय का विषय आप लोगों से कह दिया।।४५-४९।।

।।त्रयस्त्रिंसदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिक लय निरूपण

व्यास उवाच

आध्यात्मिकादि भो विप्रा ज्ञात्वा ताप्यत्रयं बुधः।
उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्राप्नोत्यात्यन्तिकं लयम्।।१।।
आध्यात्मिकोऽपि द्विविधा शारीरो मानसस्तथा।
शारीरो बहुभिर्भेदैर्भिद्यते श्रूयतां च सः।।२।।
शिरोरोगप्रतिश्यायज्वरशूलभगन्दरैः। गुल्मार्शः श्वयथुश्वासच्छर्द्यादिभिरनेकधा।।३।।

व्यासदेव कहते हैं—हे विप्रवृन्द! बुद्धिमान् व्यक्ति आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक तापत्रय को जान कर ज्ञान एवं वैराग्यवान् हो जाते हैं। उनको आत्यन्तिक लय की प्राप्ति होती है। शारीरिक एवं मानस भेद से आध्यात्मिक ताप द्विविध कहा गया है। यथा—शारीर एवं मानस। इसमें शारीर ताप अनेक भेदों वाला है। इसका विस्तृत विवरण कहता हूं। श्रवण करिये। शिरोरोग, प्रतिश्याय, ज्वर, शूल, भगन्दर, गुल्म, अर्श, हाथीपांव, खांसी, नेत्ररोग, अतिसार, कुष्ठ आदि अनेक भेद शारीरिक ताप के होते हैं।।१-३।।

तथाऽक्षिरोगातीसारकुष्ठाङ्गामयसंज्ञकैः। भिद्यते देहजस्तापो मानसं श्रोतुमर्हथ।।४।।
कामक्रोधभयद्वेषलोभमोहविषादजः। शोकासूयावमानेर्ष्यामात्सर्याभिभवस्तथा।।५।।
मानसोऽपि द्विजश्रेष्ठास्तापो भवति नैकधा।
इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्याध्यात्मिकः स्मृतः।।६।।
मृगपक्षिमनुष्याद्यैः पिशाचोरगराक्षसैः। सरीसृपाद्यैश्च नृणां जन्यते चाऽऽधिभौतिकः।।७।।
शीतोष्णवातवर्षाम्बुवैद्युतादिसमुद्भवः। तापो द्विजवरश्रेष्ठाः कथ्यते चाऽऽधिदैविकः।।८।।
गर्भजन्मजराज्ञानमृत्युनारकजं तथा। दुःखं सहस्त्रशो भेदैर्भिद्यते मुनिसत्तमाः।।९।।

अब मानस तापों का विषय कहता हूं। काम-क्रोध-भय-द्वेष-लोभ-मोह-विषाद-शोक-असूया-अपमान-

ईर्ष्या-मात्सर्य तथा अभिभव (पराजय) ये सभी अनेक मानस ताप हैं। हे द्विजप्रवरगण! आध्यात्मिक ताप भी अनेक प्रकार से निरूपित हैं। मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, उरग, राक्षस, सरीसृपादि से मनुष्यों को जो ताप उत्पन्न होता है, उसी का नाम आधिभौतिक है। शीत, उष्ण, वायु, वर्षा जल तथा आकाशीय बिजली प्रभृति से जो क्लेश समुद्भूत होते हैं, हे द्विजगण! ये सब आधिदैविक ताप हैं। हे मुनीन्द्रगण! गर्भवास, जन्म, जरा, अज्ञान, मृत्यु, नरकभोगादि अनेक दुःख हैं। ये सब हजारों-हजार प्रकार के हैं।।४-९।।

सुकुमारतनुर्गर्भे जन्तुर्बहुमलावृते। उल्बसंवेष्टितौ भग्नपृष्ठग्रीवास्थिसंहतिः॥१०॥
अत्यम्लकटुतीक्ष्णोष्णावलणैर्मातृभोजनैः। अतितापिभिरत्यर्थं बाध्यमानोऽतिवेदनः॥११॥
प्रसारणाकुञ्चनादौ नागा (ङ्गा) नां प्रभुरात्मनः। शकृन्मूत्रमहापङ्कशायी सर्वत्र पीडितः॥१२॥

अनेक प्रकार के मलयुक्त गर्भ में कोमल देह युक्त जीव जो गर्भ की झिल्ली द्वारा वेष्ठित रहता है, तब उसके पृष्ठ, ग्रीवा तथा अस्थि आदि भग्नावस्था में रहते हैं। इसमें अस्थियां मुड़ी रहती हैं। जीव तब अत्यन्त यातना सहता रहता है। गर्भधारिणी माता जो कुछ अति अम्लयुक्त, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण तथा लवणाक्त वस्तु का भोजन करती है, वह सब तीव्र रस माता के उदर में प्रविष्ट होकर गर्भस्थ जीव को अत्यधिक प्रदाह पहुंचाता है। जीव इससे अतीव क्लिष्ट हो जाता है। इस अवस्था में गर्भ जो अपना अंग फैलाना अथवा सिकोड़ना चाहता है, वह यह सब कुछ नहीं कर पाता। वह विष्ठा-मूत्रमय महान् कीचड़ में शयन करने हेतु बाध्य रहता है, इसमें उसे सर्वत्र पीड़ा होती है।।१०-१२।।

निरुच्छ्वासः सचैतन्यः स्मरञ्जजन्मशतान्यथ। आस्ते गर्भेऽतिदुःखेन निजकर्मनिबन्धनः॥१३॥
जायमानः पुरीषासृङ्मूत्रशुक्राविलाननः। प्राजापत्येन वातेन पीड्यमानास्थिबन्धनः॥१४॥
अधोमुखस्तैः क्रियते प्रबलैः सूतिमारुतैः। क्लेशैर्निष्क्रान्तिमाप्नोति जठरान्मातुरातुरः॥१५॥
मूर्च्छामवाप्य महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना। विज्ञानभ्रंशमाप्नोति जातस्तु मुनिसत्तमाः॥१६॥
कण्टकैरिव तुन्नाङ्गः क्रकचैरिव दारितः। पूतिव्रणान्निपतितो धरण्यां क्रिमिको यथा॥१७॥
कण्डूयनेऽपि चाशक्तः परिवर्तेऽप्यनीश्वरः। स्तनपानादिकाहारमवाप्नोति परेच्छया॥१८॥
अशुचिस्त्रस्तरे सुप्तः कीटदंशादिभिस्तथा। भक्ष्यमाणोऽपि नैवेषां समर्थो विनिवारणे॥१९॥

तब वह निःश्वास भी नहीं त्याग पाता। तथापि वह चैतन्ययुक्त होकर सैकड़ों पूर्वजन्म की घटनाओं को स्मरण करता रहता है। स्वकीय कर्म के कारण जीव अत्यन्त दुःख के साथ गर्भ में निवास करता है। जब वह गर्भ से बाहर पैदा होने के लिये उपक्रम करता है, तब उसका मुख विष्ठा-मूत्र-रक्त तथा रजः द्वारा प्लावित हुआ रहता है। तदनन्तर अतीव कष्ट पूर्वक वह आतुर जीव मातृजठर से बाहर निकलता है। वह पैदा होते ही मूर्च्छित हो जाता है। तब बाहरी जगत् की वायु से स्पर्श होते ही उसका पूर्व जन्मों का ज्ञान विलुप्त हो जाता है। हे मुनिगण! वह उत्पन्न जीव ऐसा अनुभव करता है, मानों भयानक व्रण से भूमि पर गिरा कीट हो। वह अंग खुजला नहीं सकता। उसे अपने अंग कंटक विद्ध लगते हैं। वह करवट भी नहीं बदल सकता। तब मातृस्तन का दुग्ध ही उसका आहार रहता है। वह भी वह अपनी इच्छा द्वारा नहीं पाता। वह अपवित्र शय्या पर शयन करता रहता है। यदि उसे कीट-मशक आदि काटते भी हैं, तब भी वह उनको हटा नहीं पाता।।१३-१९।।

जन्मदुःखान्येकानि जन्मनोऽनन्तराणि च।
बालभावे यदाप्नोति आधिभूतादिकानि च॥२०॥
अज्ञानतमसा छन्नों मूढान्तःकरणो नरः।
न जानाति कुतः कोऽहं कुत्र गन्ता किमात्मकः॥२१॥
केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम्।
किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं न चोच्यते॥२२॥
को धर्मः कश्च वाऽधर्मः कस्मिन्वर्तेत वै कथम्।
किं र्तिव्यमकर्त्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत्॥२३॥

जन्म के उपरान्त ये सब अनेक दुःख उसे सहन करना पड़ता है। साथ ही अनेक आधिभौतिक दुःख भी सामने आते हैं। वह बालक अज्ञान रूपी अन्धकार से आच्छन्न रहने के कारण मूढ़ भाव में रहता है। वह यह नहीं जानता कि स्वयं वह कौन है? कहां से आया है? उसे कहां जाना है? किस बन्धन में वह आबद्ध है? वह कारण-अकारण, कार्य-अकार्य, वाच्य-अवाच्य, धर्म-अधर्म कुछ भी समझ नहीं पाता। कहां किसके साथ किस भाव का अवलम्बन लेना चाहिये? गुण क्या है, दोष क्या है? क्या कार्य है? क्या अकार्य है? वह कुछ भी नहीं जानता।।२०-२३।।

एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभवं महत्। अवाप्यते नरैर्दुःखं शिश्नोदरपरायणैः॥२४॥
अज्ञानं तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः। अज्ञानिनां प्रवर्तन्ते कर्मलोपस्ततो द्विजाः॥२५॥
नकरं कर्मणां लोपात्फलमाहुर्महर्षयः। तस्मादज्ञानिनां दुःखमिह चामुत्र चोत्तमम्॥२६॥

इस समय पशुप्राय मूढ़ बालक जन्म लेकर क्रमशः वर्द्धित होता है। वह शिश्न तथा उदर परायण हो जाता है। उसे अज्ञानजनित महादुःख सहना पड़ जाता है। हे द्विजप्रवरगण! यह तामस भाव ही अज्ञान रूप है। अज्ञानयुक्त मनुष्य का सभी कार्य तामसिक भाव से ही प्रवृत्त होता है। फलतः उनका वैध कर्म लुप्तप्रायः हो जाता है। महर्षिगण का वचन है कि "कर्मलोप के ही कारण मानव नरकफल भोग करते हैं।" इसलिये यह परिलक्षित होता है कि इहकाल तथा परकाल अज्ञानीजन के लिये दुःख का कारण हो जाता है।।२४-२६।।

जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवः पुमान्। विचलच्छीर्णदशनो वलिस्नायुशिरावृतः॥२७॥
दूरप्रनष्टनयनों व्योमान्तर्गततारकः। नासाविवरनिर्यातरोमपुञ्जश्चलद्वपुः॥२८॥
प्रकटीभूतसर्वास्थिर्नतपृष्ठास्थिसंहतिः। उत्सन्नजठराग्नित्वादल्पाहारोऽल्पचेष्टितः॥२९॥
कृच्छ्रचङ्क्रमणोत्थानशयनासनचेष्टितः। मन्दीभवच्छ्रोत्रनेत्रगल्लालाविलाननः॥३०॥

जब उसका शरीर वार्द्धक्य ग्रसित हो जाता है, उस समय उसके अंग-प्रत्यंग जरा-जर्जरित होते हैं, सभी अवयव शिथिल हो जाते हैं। दांत गिर जाते हैं। स्नायु तथा शिरा उपट जाते हैं, नेत्रों की ज्योति मन्द हो जाती है। नाकों से रोयें बाहर निकल आते हैं। आंखें धंस जाती हैं। देह कांपने लगती है। देह की हड्डियां झलकती हैं। पीठ झुक जाती है। जठराग्नि मन्द हो जाने के कारण अत्यल्प आहार होता है। शरीर चेष्टा भी अल्प हो जाती है। उठना-बैठना तक कष्टकर हो जाता है। कम सुनाई देता है। मुख से लार बहने से वह मलिन लगता है। नेत्र निर्बल दृष्टि वाले हो जाते हैं।।२७-३०।।

अनायत्तैः समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः। तत्क्षणेऽप्यनुभूतानामस्मर्ताऽखिलवस्तुनाम्॥३१॥
सकृदुच्चारिते वाक्ये समुद्भूतमहाश्रमः। श्वासकासामयायाससमुद्भूतप्रजागरः॥३२॥
अन्येनोत्थाप्यतेऽन्येन तथा संवेश्यते जरी। भृत्यात्मपुत्रदारणामपमानपराकृतः॥३३॥
प्रक्षीणाखिलशौचश्च विहाराहारसंस्पृहः। हास्यः परिजनस्यापि निर्विण्णाशेषबान्धवः॥३४॥

उसका इन्द्रियों पर कोई अधिकार नहीं रह जाता। वह मरणोन्मुख होता जाता है। सद्य जो कुछ अनुभव करता है, वह कुछ ही समय पश्चात् भूल जाता है। तनिक बोलने में भी उसे महाश्रम का बोध होता है। उसे खांसी तथा श्वास वायु के व्यतिक्रम के कारण निद्रा उचट जाता है। ऐसे जराग्रस्त व्यक्ति स्वयं उठ-बैठ नहीं सकता। लोग उसे उठाते-बैठाते हैं। उस स्थिति में भृत्य, सन्तान, पत्नी तक उसकी उपेक्षा करते हैं। उसकी देहशुद्धि कराना तक अन्य के आधीन हो जाता है। स्वयं नहीं कर पाता। आहार-विहार की इच्छा भी समाप्त सी हो जाती है। वह सदा परिजनों के उपहास का कारण हो जाता है। उसके बन्धु-बान्धव उससे उदासीन तथा परेशान होने लगते हैं।।३१-३४।।

अनुभूतमिवान्यस्मिञ्जन्मन्यात्मविचेष्टितम्। संस्मरन्यौवने दीर्घं निःश्वसित्यतितापितः॥३५॥
एवमादीनि दुःखानि जरायामनुभूय च।
मरणे यानि दुःखानि प्राप्नोति शृणु तान्यपि॥३६॥
श्लथग्रीवाङ्घ्रिहस्तोऽथ प्राप्तो वेपथुना नरः। मुहुर्ग्लानिपरश्चासौ मुहुर्ज्ञानबलान्वितः॥३७॥
हिरण्यधान्यतनयभार्याभृत्यगृहादिषु। एते कथं भविष्यन्तीत्यतीवममताकुलः॥३८॥
मर्मविद्भिर्महारोगैः क्रकचैरिव दारुणैः। शरैरिवान्तकस्योग्रैश्छिद्यमानस्थिबन्धनः॥३९॥
परिवर्तमानताराक्षिहस्तपादं मुहुः क्षिपन्। संशुष्यमाणताल्वोष्ठकण्ठो घुरघुरायते॥४०॥

तब वह वृद्ध अपने यौवन के कार्य स्मरण करके अत्यन्त संताप के साथ गहरी सांसें छोड़ता रहता है। लगता है, मानों वह पूर्वजन्मों के स्वकृत क्रियासमूह का स्मरण कर रहा हो। इस प्रकार से वह जरा जीर्ण वृद्धावस्था के जिन दुःखों का अनुभव करता है, तदनन्तर उसकी मरणदशा के दुःखों का श्रवण करिये। जराजीर्ण मनुष्य सदा कांपता रहता है। उसकी ग्रीवा, पैर, हाथ सदा कांपते रहते हैं। वह ग्लानि का अनुभव करता है। कभी उसमें चेतना आती है। उसका सांसारिक सम्बन्धों का ज्ञान प्रबल हो उठता है। तब वह यह विचार करता है कि अब मेरे संचित स्वर्ण (धनादि), धान्य, पुत्र, स्त्री, भृत्य तथा गृहादि का क्या होगा? वह ममतापूर्ण यह भावना करता रहता है। इसी के साथ क्रमशः दारुण आरे की तरह अथवा यम के मर्मघाती उग्र बाणों के समान कठिन रोग के आक्रमण से उसकी अस्थियों का बन्धन उच्छिन्न होने लगता है। वह बारम्बार हाथ-पैर फेंकता है। नेत्र की पुतलियां उलट जाती हैं। तालु, ओष्ठ तथा कंठ शुष्क हो जाते हैं। कण्ठ से घरघराहट की ध्वनि फूटने लगती है।।३५-४०।।

निरुद्धकण्ठदेशोऽपि उदानश्वासपीडितः।
तापेन महता व्याप्तस्तृषा व्याप्तस्तथा क्षुधा॥४१॥
क्लेशादुत्क्रान्तिमाप्नोति याम्यकिङ्करपीडितः। ततश्च यातनादेहं क्लेशेन प्रतिपद्यते॥४२॥

एतान्यन्यानि चोग्राणि दुःखानि मरणे नृणाम्।
शृणुध्वं नरके यानि प्राप्यन्ते पुरुषैर्मृतैः॥४३॥

उस समय उसका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। उदान श्वास पीड़ा प्रदान करने लगता है। उसके सम्पूर्ण शरीर में विषम ताप संचार हो जाता है। वह इस अवस्था में भी क्षुधाकुल रहता है। तदनन्तर वह यमदूतों से अत्यन्त पीड़ित होकर अत्यन्त क्लेश के साथ प्राण त्याग करके यातनादेह की प्राप्ति कर लेता है। मरण काल में मनुष्यगण ये सब कष्ट तथा इससे भी कठोर अन्यान्य दुःखों की अनुभूति करते हैं। हे ब्राह्मणगण! मृत पुरुष नरकगामी होकर जो दुःख भोग करते हैं, अब वह विवरण श्रवण करिये।।४१-४३।।

याम्यकिङ्करपाशादिग्रहणं दण्डताडनम्। यमस्य दर्शनं चोग्रमुग्रमार्गविलोकनम्॥४४॥
करम्भवालुकावह्नियन्त्रशस्त्रादिभीषणे। प्रत्येकं यातनायाश्च यातनादि द्विजोत्तमाः॥४५॥

क्रकचैःपीड्यमानानां मृ (मू) षायां चापि ध्माप्यताम्।
कुठारैः पाट्यमानानां भूमौ चापि निखन्यताम्॥४६॥
शूलेष्वारोप्यमाणानां व्याघ्रवक्त्रे प्रवेश्यताम्।
गृध्रैः सम्भक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभुज्यताम्॥४७॥

क्वथ्यतां तैलमध्ये च क्लिद्यतां क्षारकर्दमे। उच्चान्निपात्यमाननां क्षिप्यतां क्षेपन्त्रकैः॥४८॥

पापी लोग मरणोपरान्त यमकिंकरों द्वारा पाश में बांध कर दण्ड प्रहार से जर्जर किये जाते हैं, तब यम के समक्ष ले जाये जाते हैं। यमपुरी जाते समय वे उग्र पथ देखते हैं। उत्तप्त बालू, अग्नि, यन्त्र, शस्त्रादि से वे नाना यातना भोगते हैं। मृत पापी यमालय में आरे से काटे जाते हैं। कुठार से टुकड़े होते हैं। भूगर्भ में गाड़े जाते हैं। कभी-कभी शूली पर चढ़ाये जाते हैं। व्याघ्रमुख में फेंके जाते हैं, गृध्रों द्वारा भक्षित होते हैं। कभी खौलते तेल में पकाये जाते हैं। एवंविध वे विषम यातना भोगते रहते हैं। उनको कीचड़ में डुबा दिया जाता है, उच्च स्थान से गिराया जाता है। प्रक्षेपण यन्त्रों से फेंका भी जाता है।।४४-४८।।

नरके यानि दुःखानि पापहेतूद्भवानि वै। प्राप्यन्ते नारकैर्विप्रास्तेषां सङ्ख्या न विद्यते॥४९॥
न केवलं द्विजश्रेष्ठा नरके दुःखपद्धतिः। स्वर्गेऽपि पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृतिः॥५०॥
पुनश्च गर्भो भवति जायते च पुनर्नरः। गर्भे विलीयते भूयो जायमानोऽस्तमेति च॥५१॥
जातमात्रश्च म्रियते बालभावे च यौवने। यद्यत्प्रीतिकरं पुंसां वस्तु विप्राः प्रजायते॥५२॥
तदेव दुःखवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति। कलत्रपुत्रमित्रादिगृहक्षेत्रधनादिकैः॥५३॥
क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथाऽसुखम्। इति संसारदुःखार्कतापतापितचेतसाम्॥५४॥

उसे कीचड़ तथा क्षार से लिपटाया जाता है। हे विप्रवर्ग! नारकीय लोग नरक में अपने ही पापों के कारण दुःखभोग करते हैं। इन सबकी संख्या बतला सकना अत्यन्त दुष्कर है। हे द्विजेन्द्रगण! केवल उसे नरकभोग ही मिलता है, ऐसा न समझें। जो स्वर्गगामी होता है, उसे वहां से पतन की (पुण्य क्षीण होने पर) आशंका त्रस्त किये रहती है। क्षणार्द्ध हेतु भी उसे शान्ति नहीं मिलती। वह स्वर्ग से च्युत होकर पुनः गर्भस्थ होकर जन्म लेता है। पुनः मृत होता है। लोग जन्म लेते ही अथवा बाल्यावस्था किंवा यौवनावस्था में मृत्युमुख

में जा पड़ते हैं। हे ब्राह्मणों! जीवितावस्था में व्यक्ति को जो कुछ प्रिय रहता है, भावी काल में वही उसे दुःखवृक्ष के बीज रूप में अनुभूत भी होता है। स्त्री, पुत्र, मित्र, गृह, खेत, धनादि तो सुख से अधिक दुःखकारण बन जाते हैं। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि संसार रूप ताप से तप्त चित्त व्यक्ति हेतु मोक्षरूपी महान् वृक्ष की छाया के अतिरिक्त कहां सुख मिलेगा?।।४९-५४।।

विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम्।
तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य पण्डितैः।।५५।।
गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः। निरस्तातिशयाह्लादं सुखभावैकलक्षणम्।।५६।।
भेषजं भगवत्प्राप्तिरेका चाऽऽत्यन्तिकी मता।
तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः।।५७।।

अतएव गर्भ-जन्म-जरा आदि तीनों स्थान पर मिलने वाले महादुःखों का निवारण करना विद्वानों का एकमात्र कर्त्तव्य होना चाहिये। इसके लिये निरतिशय आह्लाद का नाश करने वाले दुःख के उच्छेद के लिये तथा आत्यन्तिक सुखलाभार्थ एकमात्र उपाय है भगवत्लाभ! यही भवरोग की एकमात्र औषधि कही गयी है। इसलिये इसे प्राप्त करने हेतु प्रयत्न करते रहना विज्ञ मनुष्य के लिये अतीव आवश्यक कार्य है।।५५-५७।।

तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं द्विजोत्तमाः।
आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते।।५८।।
शब्दब्रह्माऽऽगममयं परं ब्रह्म विवेकजम्। अन्धं तम इवाज्ञानं दीपवच्चेन्द्रियोद्भवम्।।५९।।

हे द्विजगण! भगवान् की प्राप्ति के दो उपाय कहे गये हैं। वे हैं ज्ञान तथा कर्म। ज्ञान भी द्विविध है। यथा—शास्त्रज्ञान एवं विवेकज्ञान। शास्त्रज्ञान (आगमज ज्ञान) ही शब्दब्रह्म है। विवेकोत्पन्न ज्ञान है परमब्रह्म। अज्ञान है अन्धकार तथा ज्ञान है दीपक।।५८-५९।।

यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्वै विप्रा विवेकजम्।
मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तमाः।।६०।।
तदेतच्छ्रूयतामत्र सम्बन्धे गदतो मम। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।।६१।।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।
द्वे विद्ये वै वेदितव्ये इति चाऽऽथर्वणी श्रुतिः।।६२।।
परया ह्यक्षरप्राप्तिर्ऋग्वेदादिमयाऽपरा। यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम्।।६३।।
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम्। वित्तं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिमकारणम्।।६४।।
व्याप्यं व्याप्तं यतः सर्वं तद्वै पश्यन्ति सूरयः।
तद्ब्रह्म परमं धाम तद्ध्येयं मोक्षकाङ्क्षिभिः।।६५।।
श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोः परमं पदम्।
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्।।६६।।

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति। ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः॥६७॥

भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः।
सर्वाणि तत्र भूतानि निवसन्ति परमात्मनि॥६८॥

विवेकज्ञान सूर्यवत् उद्भासित होता है। हे मुनिप्रवरगण! वेदार्थ के आधार पर भगवान् मनु का जो कथन है, आप लोग वह श्रवण करें। दो ब्रह्म ज्ञातव्य हैं। प्रथम शब्दब्रह्म तथा द्वितीय परब्रह्म। शब्दब्रह्म को जान कर वह व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। आथर्वणी श्रुति के अनुसार दो विद्या वेदितव्य है। जानने योग्य है। परा विद्या से ब्रह्मलाभ होता है। अपरा विद्या ऋग्वेदादि को कहते हैं। जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अकथ, अरूप, अनादि, अपाद, सर्वगति, नित्य, भूतयोनि, सर्वकारण, व्याप्त, व्याप्य तथा सर्वस्वरूप है, विवेकी बुद्धिमान् लोग उसका ही दर्शन करते हैं। वे ही परमब्रह्म, परमधाम प्रभु हैं। मोक्षकामी लोग इनका ही ध्यान करते रहते हैं। श्रुति-प्रतिपादित विष्णु का जो परमपद है, वही प्राणीगण की उत्पत्ति, प्रलय, गति, अगति का एकमात्र कारण है। वे ही विद्या-अविद्या दोनों के ज्ञाता हैं। वे ही भगवान् कहे जाते हैं। ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेजः प्रभृति भगवत्तत्व प्रतिपादक वाक्यों द्वारा उनके ही सम्बन्ध में कहा जाता है। अतः इन वाक्यों के वाच्य वे ही हैं। ये सभी भगवद् रूप ही हैं। समस्त भूतसमूह उन परमात्मा में अवस्थान करते हैं। वे सर्वात्मा वासुदेव ही भूतसमूह में विराजमान हैं।।६०-६८।।

भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः। उवाचेदं महर्षिभ्यः पुरा पृष्टः प्रजापतिः॥६९॥

नामव्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः।
भूतेषु वसते योऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्।
धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः॥७०॥

ससर्वभूतप्रकृतिर्गुणांश्च, दोषांश्च सर्वान्स (न) गुणो ह्यतीतः।
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा, तेनाऽऽवृतं यद्भवनान्तरालम्॥७१॥
समस्तकल्याणगुणात्मको हि, स्वशक्तिलेशादृतभूतसर्गः।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः, संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ॥७२॥

पूर्वकाल में महर्षियों द्वारा प्रश्न किये जाने पर प्रजापति ने स्वयं उनसे यही तत्व वर्णन किया था। अनन्त वासुदेव के नाम की व्याख्या भी प्रजापति के मुख से ही प्रकटित हो गयी थी। वासुदेव भूतसमूह के अभ्यन्तर में निवास करते हैं। ये भूतसमूह भी उनमें ही अवस्थित रहा करते हैं। वे वासुदेव ही धाता-विधाता तथा जगत्प्रभु हैं। वे सर्वभूत समूह की प्रकृति हैं। वे सगुण होकर भी सर्वगुणातीत हैं। उनका कोई आवरण नहीं है। वे अखिलात्मा हैं। यह भुवनान्तराल उनके ही द्वारा आवृत है। वे ही सर्वकल्याणगुणरूपी हैं। उनकी कणमात्र शक्ति के विकास के कारण भूतों की उत्पत्ति होती है। वे अपनी स्वेच्छा से ही विराट देहधारी हो जाते हैं। उनसे ही सर्व जगत् का हित साधन होता है।।६९-७२।।

तेजोबलैश्वर्यमहावरोधः, स्ववीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः।
परः पराणां सकला न यत्र, क्लेशादयः सन्ति परापरेशे॥७३॥

स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपोऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः।
सर्वेश्वरः सर्वदृक्सर्ववेत्ता, समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः॥७४॥
संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम्।
संदृश्यते वाऽऽप्यथ गम्यते वा, तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम्॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे आत्यन्तिकलयनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३४॥

समस्त तेज, बल आदि गुणराशि के वे ही एकमात्र आधार हैं। वे परात्पर हैं। उनमें क्लेशादि का लेश भी नहीं है। वे ही व्यक्ति तथा समष्टि के ईश्वर हैं। वे ही व्यक्त तथा अव्यक्तरूपेण स्थित रहते हैं। वे सर्वेश्वर, परमेश्वर तथा सर्व दोष रहित हैं। वे शुद्ध, निर्मल, एकमात्र ज्ञेय, दृश्य हैं। वे ही प्रभूत ज्ञान हैं। उनके अतिरिक्त सब कुछ अज्ञान है।।७३-७५।।

।।चतुस्त्रिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगाभ्यास निरूपण

मुनय ऊचुः

इदानीं ब्रूहि योगं च दुःखसंयोगभेषजम्। यं विदित्वाऽव्ययं तत्र युञ्जामः पुरुषोत्तमम्॥१॥
श्रुत्वा स वचनं तेषां कृष्णद्वैपायनस्तदा। अब्रवीत्परमप्रीतो योगी योगविदां वरः॥२॥

मुनिगण कहते हैं—"हे महर्षि! जिसके प्रभाव से हम उस अव्यय पुरुषोत्तम को जान कर उनमें विलीन हो सकें, आप अब उस दुःखसंयोगरूपी व्याधि के औषधिरूप योगतत्व को कहिये।" तब उन योगज्ञ लोगों में अग्रणी कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ऋषि ने यह सुनकर उन मुनिगण से प्रसन्न होकर कहा—।।१-२।।

व्यास उवाच

योगं वक्ष्यामि भो विप्राः शृणुध्वं भवनाशनम्।
यमभ्यस्याऽऽप्नुयाद्योगी मोक्षं परमदुर्लभम्॥३॥
श्रुत्वाऽऽदौ योगशास्त्राणि गुरुमाराध्य भक्तितः।
इतिहासं पुराणं च वेदांश्चैव विचक्षणः॥४॥
आहारं योगदोषांश्च देशकालं च बुद्धिमान्। ज्ञात्वा समभ्यसेद्योगं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥५॥

भुञ्जन्सक्तुं यवागूं च तक्रमूलफलं पयः। यावकं कणपिण्याकमाहारं योगसाधनम्॥६॥

न मनोविकले ध्माते न श्रान्ते क्षुधिते तथा।
न द्वन्द्वे न च शीते च न चोष्णे नानिलात्मके॥७॥

व्यासदेव कहते हैं—हे विप्रगण! जिसके अभ्यास से व्यक्ति योगी होकर परम दुर्लभ मोक्षलाभ कर सकता है, उस संसार विनाशन योग का वर्णन करता हूं। उसका श्रवण करिये। प्रथमतः योगशास्त्र सुनिये। भक्ति के साथ गुरु की आराधना द्वारा इतिहास-पुराण तथा वेद विद्या का पारंगत हो जाना चाहिये। तत्पश्चात् आहार, योगदोष तथा देशकालादि के सम्बन्ध में अभिज्ञता प्राप्त करके वह बुद्धिमान् साधक नियमतत्पर हो जाये। वह सत्तू, लपसी, मट्ठा, मूल, फल, दूध, यावक जो जौ अथवा साठी चावल से बनता है, चावल की खुद्दी, पिण्याक का आहार करे। योगसाधनार्थ यह सभी श्रेयस्कर आहार हैं। जहां पर मन विकल हो जाये (जहां नकारात्मक ऊर्जा वाला स्थान हो), शीत-उष्ण की अतिरेकता के कारण द्वन्द्व पीड़ा होने लगे, वहां योगाभ्यास कदापि न करे। अग्नि के सन्निकट भी योगाभ्यास न करे। जहां प्रबल वायु प्रवाह हो, वहां भी योगाभ्यास न करे।।३-७।।

सशब्दे न जलाभ्यासे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे। सरीसृपे श्मशाने च न नद्यन्तेऽग्निसन्निधौ॥८॥
न चैत्ये न च वल्मीके सभये कूपसन्निधौ। न शुष्कपर्णनिचये योगं युञ्जीत कर्हिचित्॥९॥

जल के निकट, शब्दबहुल स्थल पर, जीर्ण गौशाला में, चौराहे पर, सर्पपूर्ण स्थान में, श्मशान में, नदी के बीच, अग्नि के पास, जनसंकुल स्थल पर, दीमक की बांबी के पास, भयपूर्ण जगहों पर, कुयें के पास, सूखे पत्तों के ढेर पर कदापि योगाभ्यास करना विहित नहीं है।।८-९।।

देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै।
प्रवक्ष्ये तस्य ये दोषा जायन्ते विघ्नकारकाः॥१०॥

बाधिर्यं जडता लोपः स्मृतेर्मूकत्वमन्धता। ज्वरश्च जायते सद्यस्तद्वदज्ञानसम्भवः॥११॥

इन सब निषिद्ध स्थान की विवेचना बिना किये वहां जो योगानुष्ठान में प्रवृत्त होता है, उसके योग में जो विघ्नकारी दोष उत्पन्न होते हैं, उनका वर्णन सुनिये। निषिद्ध स्थल पर योग करने के कारण बधिरता, जड़ता, स्मृतिभ्रंश, मूकत्व, अन्धता तथा ज्ञान रहित स्थिति हो जाती है।।१०-११।।

तस्मात्सर्वात्मना कार्या रक्षा योगविदां सदा।
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः॥१२॥

आश्रमे विजने गुह्ये निःशब्दे निर्भये नगे। शून्यागारे शुचौ रम्ये चैकान्ते देवतालये॥१३॥

रजन्याः पश्चिमे यामे पूर्वे च सुसमाहितः।
पूर्वाह्णे मध्यमे चाह्नि युक्ताहारो जितेन्द्रियः॥१४॥
आसीनः प्राङ्मुखो रम्य आसने सुखनिश्चले।
नातिनीचे न चोच्छ्रिते निस्पृहः सत्यवाक्शुचिः॥१५॥

युक्तनिद्रो जितक्रोधः सर्वभूतहिते रतः। सर्वद्वन्द्वसहो धीरः समकायाङ्घ्रिमस्तकः॥१६॥

अतः योगीगण सदा देहरक्षा करें। धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष में शरीर ही एकमात्र साधन है। विजन आश्रम में, शून्यागार में, निभृत देवालय में, रात्रि के प्रथम प्रहर में तथा पर्वत पर, अन्तिम प्रहर में, पवित्र देश में, भय रहित स्थल में सुसमाहित होकर युक्ताहार करता हुआ जितेन्द्रिय योगी, पूर्वाह्न तथा मध्याह्न के समय पूर्वमुख आसीन हो जाये। उसका आसन न तो अधिक उच्च हो न अधिक निम्न हो। वह ऐसे सुन्दर अचंचल कोमल आसन पर बैठे। वह निस्पृह, सत्यवक्ता, पवित्र, युक्त (न अधिक न कम) निद्रा करने वाला, क्रोधजयी, सर्वप्राणीगण के हित में निरत, शीतोष्णादि द्वन्द्वों को तथा सुख-दुःख को सहन करने वाला और धीरबुद्धि होकर अपना शरीर-चरण तथा मस्तक समान करे।।१२-१६।।

नाभौ निधाय हस्तौ द्वौ शान्तः पद्मासने स्थितः।
संस्थाप्य दृष्टिं नासाग्रे प्राणानायम्य वाग्यतः॥१७॥

समाहृत्येन्द्रियग्रामं मनसा हृदये मुनिः। प्रणवं दीर्घमुद्यम्य संवृतास्यः सुनिश्चलः॥१८॥

तत्पश्चात् वह योगी नाभिप्रदेश के पास दोनों हथेली रख कर पद्मासन लगाये (यह गुरु के निर्देशानुसार ही लगाना चाहिये)। अपनी दृष्टि नासाग्र पर स्थापित करे। वह प्राणायाम करता, मौनी, इन्द्रियजित् तथा मुख बन्द करके निश्चल सा रहे। उस समय इन्द्रियों का निरोध करके हृदय में प्रणव ध्यान करना चाहिये।।१७-१८।।

रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा। सञ्छाद्य निर्मल शान्ते स्थितः संवृतलोचनः॥१९॥

हृत्पद्मकोटरे लीनं सर्वव्यापि निरञ्जनम्। युञ्जीत सततं योगी मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्॥२०॥

वह इस काल में रजोवृत्ति से तमः वृत्ति का तथा सत्व वृत्ति से रजः वृत्ति का निरोध करे। तब निर्मल शान्त स्वस्वरूप में स्थित हो जाये। इस प्रकार से योगी व्यक्ति हत्पद्मस्थ निरंजन मुक्तिदाता पुरुषोत्तम का सतत् ध्यान करे।।१९-२०।।

करणेन्द्रियभूतानि क्षेत्रज्ञे प्रथमं न्यसेत्। क्षेत्रज्ञश्च परे योज्यस्ततो युञ्जति योगवित्॥२१॥

मनो यस्यान्तमभ्येति परमात्मनि चञ्चलम्।
सन्त्यज्य विषयांस्तस्य योगसिद्धिः प्रकाशिता॥२२॥

यदा निर्विषयं चित्तं परे ब्रह्मणि लीयते। समाधौ योगयुक्तस्य तदाऽभ्येति परं पदम्॥२३॥

असंसक्तं यदा चित्तं योगिनः सर्वकर्मसु। भवत्यानन्दमासाद्य तदा निर्वाणमृच्छति॥२४॥

शुद्धं धामत्रयातीतं तुर्याख्यं पुरुषोत्तमम्। प्राप्य योगबलाद्योगी मुच्यते नात्र संशयः॥२५॥

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः सर्वत्र प्रियदर्शनः।
सर्वत्रानित्यबुद्धिस्तु योगी मुच्येत नान्यथा॥२६॥

पहले सभी कर्मेन्द्रियों को तथा अन्तःकरण एवं पञ्चभूतादि को क्षेत्रज्ञ में योजित करके तब परमात्मा में क्षेत्रज्ञ को योजित करे। एवंविध योगयुक्त को योग का अभ्यास करते रहना चाहिये। यह अभ्यास करते-करते जिसका चंचल मन परमात्मा में लीन हो जाता है, उस निस्पृह योगी में ही योगसिद्धि प्रकट हो जाती है। जब

तक निर्विशेष चित्त परमब्रह्म में लीन रहता है, तभी वह समाधिमग्न पुरुष परमपद लाभ कर लेता है। जब योगी का चित्त सर्वदा सर्व कर्म से असंसक्त पृथक् रहता है, तभी उसे परम आनन्द की प्राप्ति होती है। वही निर्वाण पदलाभ करेगा। योगी योग के प्रभाव से जब उन गुणातीत विशुद्ध तुर्याख्य पुरुषोत्तम को प्राप्त कर लेता है, तभी उसकी मुक्ति हो जाती है। वह सर्वत्र सभी कामनाओं से निस्पृह हो जाता है। उसकी दृष्टि में संसार के सभी व्यापार अनित्य भासित होने लगते हैं। ऐसा योगी मुक्त हो जाता है।।२१-२६।।

इन्द्रियाणि न सेवेत वैराग्येण च योगवित्। सदा चाभ्यासयोगेन मुच्यते नात्र संशयः॥२७॥
न च पद्मासनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात्। मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते॥२८॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठा योगः प्रोक्तो विमुक्तिदः। संसारमोक्षहेतुश्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥२९॥

जो व्यक्ति वैराग्यवान होकर इन्द्रियों की सेवा नहीं करता तथा योगाभ्यासी बना रहता है, उसे निःसन्देह मुक्तिलाभ होता है। केवल पद्मासनासीन होना अथवा नासाग्र पर दृष्टि एकाग्र करना ही योगानुष्ठान नहीं है। इन्द्रियों तथा मन का सम्यक् निरोध ही योग है। हे मुनिप्रवरगण! मैंने संक्षेप में भवबन्धन मोचन कारण मुक्तिदाता योगतत्व कहा है। अब आप लोग और क्या सुनना चाहते हैं?।।२७-२९।।

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वा ते वचनं तस्य साधु साध्विति चाब्रुवन्।
व्यासं प्रशस्य सम्पूज्य पुनः प्रष्टुं समुद्यताः॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे योगाभ्यासनिरूपणं नाम पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३५॥

लोमहर्षण कहते हैं—मुनिगण ने वेदवास्योक्त यह योगव्याख्या सुनकर उनको पुनः-पुनः साधुवाद प्रदान किया तथा वे सभी वक्ता वेदव्यास मुनि की यथेष्ट प्रशंसा करते हुये पुनः प्रश्नार्थ समुद्यत हो गये।।३०।।

।।पञ्चत्रिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सांख्ययोग का वर्णन

मुनय ऊचुः

तव वक्त्राब्धिसम्भूतममृतं वाङ्मयं मुने। पिबतां नो द्विजश्रेष्ठ न तृप्तिरिह दृश्यते॥१॥
तस्माद्योगं मुने ब्रूहि विस्तरेण विमुक्तिदम्।
साङ्ख्यं च द्विपदां श्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥२॥

प्रज्ञावञ्श्रोत्रियो यज्वा ख्यातः प्राज्ञोऽनसूयकः। सत्यधर्ममतिर्ब्रह्मन्कथं ब्रह्माधिगच्छति॥३॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वत्यागेन मेधया। साङ्ख्ये वा यदि वा योग एतत्पृष्टो वदस्व नः॥४॥
मनसश्चेन्द्रियाणां च यथैकाग्र्यमवाप्यते। येनोपायेन पुरुषस्तत्त्वं व्याख्यातुमर्हसि॥५॥

मुनिगण कहते हैं—हे द्विजप्रवर! आप के मुखरूपी सागर से सम्भूत वाक्यरूप अमृत का पान करके हमारी तृप्ति की परिसीमा नहीं हो रही है। अतः हे मुनिवर! हमें मुक्तिप्रद सांख्ययोग श्रवण की इच्छा है। हे ब्रह्मन्! श्रद्धावान्, यागशील, ख्यातियुक्त, असूया सम्पन्न, सत्यधर्मनिष्ठ, श्रोत्रिय, तप, ब्रह्मचर्य, सर्वत्याग, ज्ञान आलोचना तथा सांख्ययोग इनमें से किसके द्वारा व्यक्ति ब्रह्मलाभ में समर्थ होता है? पुरुषगण जिस उपाय द्वारा इन्द्रियों के साथ मन की एकाग्रता का साधन करते हैं, आप उसकी व्याख्या करने की कृपा करें।।१-५।।

व्यास उवाच

नान्यत्र ज्ञानतपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्। नान्यत्र सर्वसन्त्यागात्सिद्धिं विन्दति कश्चन॥६॥
महाभूतानि सर्वाणि पूर्वसृष्टिः स्वयम्भुवः। भूयिष्ठं प्राणभृद्ग्रामे निविष्टानि शरीरिषु॥७॥
भूमेर्देहो जलात्स्नेहो ज्योतिषश्चक्षुषी स्मृते। प्राणापानाश्रयो वायुःकोष्ठाकाशं शरीरिणाम्॥८॥

क्रान्तौ विष्णुर्बले शक्रः कोष्ठेऽग्निर्भोक्तुमिच्छति।
कर्णयोः प्रदिशः श्रोत्रे जिह्वायां वाक्सरस्वती॥९॥
कर्णौ त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
दश तानीन्द्रियोक्तानि द्वाराण्याहारसिद्धये॥१०॥
शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसं गन्धं च पञ्चमम्।
इन्द्रियार्थान्पृथग्विद्यादिन्द्रियेभ्यस्तु नित्यदा॥११॥

व्यासदेव कहते हैं—ज्ञान, तप, इन्द्रियनिग्रह, सर्व पदार्थ परिहार (सर्व त्याग) के अभाव में अन्य किसी उपाय से कोई भी सिद्धिलाभ नहीं कर सकता। स्वयम्भु ब्रह्मा द्वारा सर्वाग्र में पंचमहाभूतों को प्राणी शरीर में स्थापित किया है। भूमि से देह, जल से स्नेह, ज्योतिः से नेत्र तथा आकाश से देह के मध्य का अवकाश, वायु से प्राणादि पंचवायु उत्पन्न होता है। गमनादि देहक्रिया के देवता हैं विष्णु, बल के इन्द्र, उदरस्थ भोजनेच्छा के देवता अग्नि हैं। कान के सभी दिशायें तथा जिह्वा के देवता सरस्वती हैं। कर्ण, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका ये पांच इन्द्रियां हैं, परन्तु इनके आहारार्थ दस छिद्र हैं। इन्द्रियों के आर्ह्य विषय हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। इनको इन्द्रियों से अलग जाने।।६-११।।

इन्द्रियाणि मनो युङ्क्ते अवश्या (शा) निव राजिनः (लः)।
मनश्चापि सदा युङ्क्ते भूतात्मा हृदयाश्रितः॥१२॥
इन्द्रियाणां तथैवैषां सर्वेषामीश्वरं मनः। नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मनसस्तथा॥१३॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावाचेतना मनः।
प्राणापानौ च जीवश्च नित्यं देहेषु देहिनाम्॥१४॥

आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणशब्दो न चेतनाः।
सत्त्वं हि तेजः सृजति न गुणान्वै कथञ्चन॥१५॥
एवं सप्तदशं देहं वृतं षोडशभिर्गुणैः। मनीषी मनसा विप्राः पश्यत्यात्मानमात्मनि॥१६॥

मन ऐसा अश्व है, जो देही के वश में नहीं है। वह नित्य इन्द्रियों को परिचालित करता रहता है। हृदयस्थ भूतात्मा ने उस मन को विषयों में नियुक्त किया है। मन ही इन्द्रियों का ईश्वर है। मन के कार्य करने तथा उसके संयम में यह भूतात्मा ही कर्त्ता है। देहीगण के देह में इन्द्रियां, इन्द्रियों के विषय, स्वभाव, चेतना, मन, प्राणापान तथा जीव सदा निवास करते हैं। सत्व का कोई आश्रय ही नहीं है। वह स्वयं ही अपना आश्रयस्वरूप है। गुण शब्द से चेतना का (तेज का) द्योतन होता है। सत्व से ही चेतना (तेज) का उद्भव होता है, लेकिन गुणोत्पत्ति नहीं होती। उक्त सत्रह अवयव युक्त देह षोडश गुणों से समावृत है। मनीषी लोग मन द्वारा इस आत्मा का दर्शन आत्मा में ही करते हैं।।१२-१६।।

न ह्ययं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः। मनसा तु प्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते॥१७॥
अशब्दस्पर्शरूपं तच्च (च्चा) रसागन्धमव्ययम्।
अशरीरं शरीरे स्वे निरीक्षेत निरिन्द्रियम्॥१८॥
अव्यक्तं सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमार्चितम्। योऽनुपश्यति स प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयतः॥१९॥
विद्याविनयसम्पन्नब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुचि चैव श्वापके च पण्डिताः समदर्शिनः॥२०॥
स हि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च। वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिदं ततम्॥२१॥

आत्मा कदापि नेत्र तथा सर्वेन्द्रिय से नहीं प्राप्त हो सकता न देखा जा सकता है। तथापि प्रदीप्त मन से ही यह महान् आत्मा दृष्टिगोचर हो सकता है। आत्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से अतीत है। यह अशरीरी तथा इन्द्रिय रहित होकर भी शरीर में ही दृष्ट होता है। यह आत्मा सर्वभूतसमूह में अव्यक्तरूपेण विद्यमान है। यह मर्त्य लोगों द्वारा परम अर्चनीय है। जो व्यक्ति इनका दर्शन करता है, उसे ब्रह्मत्व लाभ होता है। पण्डितगण सदा विद्या-विनय सम्पन्न ब्राह्मणगण, गौ, हाथी, श्वान, चाण्डाल को समान रूप से देखते हैं। जिन्होंने समग्र जगत् की सृष्टि किया है, वह एक महान् आत्मा चर-अचर सर्वभूत समूह में निवास करता है।।१७-२१।।

सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि।
यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥२२॥
यावानात्मनि वेदाऽऽत्मा तावानात्मा परात्मनि।
य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते॥२३॥
सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतहितस्य च। देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः॥२४॥

जब मनुष्य आत्मा का सर्वभूत समूह में तथा सर्वभूत समूह को आत्मा में देखता है, तब वह सर्वभूतात्मा ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। यह निरन्तर अभिज्ञात रखे कि जो आत्मा मुझमें है, वही सर्वभूत समूह

में भी है। जो सभी प्राणियों में आत्मभूत तथा सभी का हितसाधक है, ऐसे अपद परमात्मा के अन्वेषण में निरत है, देवगण भी उसके मार्ग में मोहित से हो जाते हैं।।२२-२४।।

शकुन्तानामिवाऽऽकाशे मत्स्यानामिव चोदके।
यथा गतिर्न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः॥२५॥
कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि।
यस्मिंस्तु पच्यते कालस्तन्न वेदेह कश्चन॥२६॥
न तदूर्ध्वं न तिर्यक्च नाधो न च पुनः पुनः।
न मध्ये प्रतिगृह्णीते नैव किञ्चिन्न कश्चन॥२७॥
सर्वे तत्स्था इमे लोका बाह्यमेषां न किञ्चन।
यद्यप्यग्रे समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः॥२८॥
नैवान्तं कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजवः।
तस्मात्सूक्ष्मतरं नास्ति नास्ति स्थूलतरं तथा॥२९॥
सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥३०॥

आकाश में पक्षियों की तथा जल में मीन की जैसी अज्ञात गति है, तदनुरूप ज्ञानियों की गति भी बुद्धिगम्य नहीं होती। काल आत्मा में स्थित होकर सभी भूतों का स्वयं में पाक करता है, तथापि काल का भी जहां परिणाम (पाक) होता है, उसका तत्व कोई भी जान नहीं पाता। वह सर्वव्यापी होने के कारण ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्, मध्य किसी भी स्थल में कुछ ग्रहण नहीं करता (अर्थात् जो सर्वव्यापी है, उसके लिये ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्, मध्य कैसा?)। यह सभी लोग उसी में ही प्रतिष्ठापित रहते हैं। उसके बाहर कुछ भी नहीं है। यह उसी प्रकार अग्रगामी रहता है, जैसे धनुष की प्रत्यंचा से उन्मुक्त बाण। मन के समान वेगगामी होने पर भी कोई उस कारण (सर्व कारण) के स्वरूप का अनुमान तक नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि उससे अधिक स्थूल किंवा सूक्ष्म कुछ भी नहीं है। उसके हाथ, पैर, आंख, शिर, मुख, कान सर्वत्र हैं। वह सबको घेर कर स्थित है।।२५-३०।।

तदेवाणोरणुतरं तन्महद्भ्यो महत्तरम्। तदन्तः सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते॥३१॥
अक्षरं च क्षरं चैव द्वेधा भावोऽयमात्मनः। क्षरः सर्वेषु भूतेषु दिव्यं त्वमृतमक्षरम्॥३२॥
नवद्वारं पुरं कृत्वा हंसो हि नियतो वशी। ईदृशः सर्वभूतस्य स्थावरस्य चरस्य च॥३३॥
हानेनाभिविकल्पानां नराणां सञ्चयेन च। शरीराणामजस्याऽऽहुर्हंसत्वं पारदर्शिनः॥३४॥
हंसोक्तं च क्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम्। तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी॥३५॥

वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा महत् से भी महान् है। वह सर्वभूत समूह के अन्तर्गत् स्थित होकर भी दृश्यमान नहीं है। वह सबका लयस्थान है। भले ही वह स्थिरता से अवस्थित है, तथापि कोई उसे देख नहीं पाता। आत्मा के भाव द्विविध हैं। यथा—क्षर एवं अक्षर। क्षर आत्मा तो सर्वभूतस्थ है। अक्षर आत्मा परमाश्चर्यमय तथा मुक्ति

का हेतु है। हंस संज्ञा वाला आत्मा नवद्वार (देह) युक्त पुर में नियत निवास करता है। यह स्थावर-जंगम सभी प्राणी समूह की हानि (संहार) तथा संचय (पालन) करता है। हानि का 'हं' तथा संचय का 'स' लेकर इस अज आत्मा को हंस कहते हैं। क्षर पुरुष है हंस। अक्षर पुरुष है कूटस्थ। जो इस कूटस्थ को जान लेता है, वह जन्म-मरण से अव्याहति लाभ करता है।।३१-३५।।

व्यास उवाच

भवतां पृच्छतां विप्रा यथावदिह तत्त्वतः। साख्यं ज्ञानेन संयुक्तं तदेतत्कीर्तितं मया॥३६॥

योगकृत्यं तु भो विप्राः कीर्तयिष्याम्यतः परम्।
एकत्वं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः॥३७॥

आत्मनो व्यापिनो ज्ञानं ज्ञानमेतदनुत्तमम्। तदेतदुपशान्तेन दान्तेनाध्यात्मशीलिना॥३८॥

आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा।
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः॥३९॥

कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्।
क्रोधं शमेन जयति कामं सङ्कल्पवर्जनात्॥४०॥

व्यासदेव कहते हैं—हे विप्रगण! आप लोगों के प्रश्नानुरूप मैंने ज्ञानयुक्त सांख्य का यथावत् वर्णन कर दिया। तत्पश्चात् अब योगकृत्य कहता हूं। मन, बुद्धि, इन्द्रिय तथा सर्वव्यापी आत्मा—इनके एकत्व को जान लेना ही अनुत्तम ज्ञान है। उपशान्त, दान्त, अध्यात्म का अनुशीलन करने वाला, आत्माराम, प्रबुद्ध, सत्कर्मकर्त्ता व्यक्ति पंचविध योगदोषों का उच्छेद करके इस आत्मा को जान लेता है। योगदोष पांच हैं, जो एवंविध हैं। यथा—काम, क्रोध, लोभ, भय तथा निद्रा (निद्रा को स्वप्न भी कहा गया है)। शम से क्रोध को तथा काम को संकल्प छोड़ देने से जीता जाये।।३६-४०।।

सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति। धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा॥४१॥

चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा।
अप्रमादाद्भयं जह्याद्दम्भं प्राज्ञोपसेवनात्॥४२॥

एवमेतान्योगदोषाञ्जयेन्नित्यमतन्द्रितः। अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चाथ देवताः प्रणमेत्सदा॥४३॥

वर्जयेदुद्धतां वाचं हिंसायुक्तां मनोनुगाम्। ब्रह्मतेजोमयं शुक्रं यस्सर्वमिदं जगत्॥४४॥

एतस्य भूतभूतस्य दृष्टं स्थावरजङ्गमम्। ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा॥४५॥

शौचं चैवाऽऽत्मनः शुद्धिरिन्द्रयाणां च निग्रहः।
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति॥४६॥

धीमान् व्यक्ति सत्वगुण के सेवन से निद्रा को जीत लेता है। धैर्य द्वारा उदर एवं शिश्न को जीते। चक्षु द्वारा हाथ-पैर को, मन द्वारा चक्षु एवं कर्ण को तथा कर्म से मन एवं वाणी को जय करे। अप्रमाद से भय को, विज्ञ लोगों के संग से दम्भ को जय करे। इस प्रकार से प्रयत्न द्वारा योग के दोषों को जीते। ब्राह्मणों तथा

देवताओं को सदा प्रणति निवेदन करे। हिंसात्मक, उद्धत, मनमानी वाणी का त्याग करे। ब्रह्मतेजोमय विक्रम (वीर्य) को धारण करे। इसी से समग्र स्थावर-जंगमात्मक जगत् उत्पन्न होता है। ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, कोमलता, क्षमा, पवित्रता, आत्मशुद्धि, इन्द्रियनिग्रह से तेजवृद्धि तथा पाप नाश होता है।।४१-४६।।

समःसर्वेषु भूतेषु लभ्यालभ्येन वर्तयन्।
धूतपापा तु तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः॥४७॥
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निषेवेद्ब्रह्मणः पदम्।
मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वैकाग्र्यं समाहितः॥४८॥
पूर्वरात्रे परार्धे च धारयेन्मन आत्मनः।
जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य यद्येकं क्लिन्नमिन्द्रियम्॥४९॥
ततोऽस्य स्त्रवति प्रज्ञा गिरेः पादादिवोदकम्।
मनसः पूर्वमादद्यात्कूर्माणामिव मत्स्यहा॥५०॥
ततः श्रोत्रं ततश्चक्षुर्जिह्वा घ्राणं च योगवित्। तत एतानि संयम्य मनसि स्थापयेद्यदि॥५१॥

लाभ-अलाभ में तथा सभी प्राणीगण के प्रति समान व्यवहार तथा जो कुछ मिले उसी में सन्तोष करके जीवन व्यतीत करना चाहिये। ऐसा योगी निष्पाप तथा इन्द्रियजित होता है। वह काम-क्रोधादि को वश में करके ब्रह्मपद की सेवा करता है। समाहित मानव मन एवं इन्द्रियों की एकाग्रता द्वारा पूर्वरात्रि में रात्रि के पहले प्रहर में अथवा रात्रि के अंतिम प्रहर में मन द्वारा आत्मा को धारण करे। यदि मानव की पंच इन्द्रियों में से एक भी मलिन तथा निग्रह रहित हो जाये, तब उसकी प्रज्ञा उसी प्रकार निम्नगामी हो जाती है, जैसे पर्वत से जल नीचे की ओर बहता है। जैसे मछली पकड़ने वाला पहले कूर्म (कच्छप) को पकड़ता है, वैसे योगी मन को वशीभूत करे।।४७-५१।।

तथैवापोह्य सङ्कल्पान्मनो ह्यात्मनि धारयेत्।
पञ्चेन्द्रियाणि मनसि हृदि संस्थापयेद्यदि॥५२॥
यदैतान्यवतिष्ठन्ते मनःषष्ठानि चाऽऽत्मनि। प्रसीदन्ति च संस्थायां तदा ब्रह्म प्रकाशते॥५३॥

योगी को चाहिये कि वह चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा का संयम करके इनको मन में स्थापित करे। तत्पश्चात् मन को संकल्प रहित करके उसे आत्मा में स्थापित कर देना चाहिये। मन में इन पञ्च वृत्तियों को विलीन करके उसे हृदय में स्थापित कर देना चाहिये। जब पञ्चेन्द्रिय समन्वित मन इस प्रकार स्वयं में इन इन्द्रियों को विलीन करके आत्मा में स्थित हो जाता है, तब वह आत्मभाव में ही मुदित रहता है। उस समय उसमें ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है।।५२-५३।।

विधूम इव दीप्तार्चिरागत्य इव दीप्तिमान्।
वैद्युतोऽग्निरिवाऽऽकाशे पश्यन्त्यात्मानमात्मनि॥५४॥
सर्वं तत्र तु सर्वत्र व्यापकत्वाच्च दृश्यते।
तं पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिणः॥५५॥

धृतिमन्तो महाप्राज्ञाः सर्वभूतहिते रताः। एवं परिमितं कालमाचरन्संशितव्रतः॥५६॥
आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसाम्यताम्। प्रमोहो भ्रम आवर्तो घ्राणं श्रवणदर्शने॥५७॥

अद्भुतानि रसः स्पर्शः शीतोष्णमारुताकृतिः।
प्रतिभानुपसर्गाश्च प्रतिसङ्गृह्य योगतः॥५८॥
तांस्तत्त्वविदनादृत्य साम्येनैव निवर्तयेत्।
कुर्यात्परिचयं योगे त्रैलोक्ये नियतो मुनिः॥५९॥

गिरिशृङ्गे तथा चैत्ये वृक्षमूलेषु योजयेत्। सन्नियम्येन्द्रियग्रामं कोष्ठे भाण्डमना इव॥६०॥

उस समय योगी हृदय में धूम्र रहित अग्नि, आकाशस्थ आदित्य तथा विद्युत्वत् दीप्तिमान आत्मा का दर्शन आत्मा में ही प्राप्त कर लेता है। आत्मा व्यापक है। इसलिये आत्मा में सर्वत्र व्यापकता होने के कारण उसमें सभी पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। धृतिमान्, महाप्राज्ञ, सर्वभूतहितरत, महात्मा, मनीषी ब्राह्मणगण उसे देखने में समर्थ होते हैं। व्रतशील योगी निर्जन में एकाकी रहते हुये दीर्घकाल तक ऐसा आचरण करके अक्षय पुरुष में विलीन हो जाते हैं। योगप्रभाव से मोह, भ्रम, जड़त्व और अद्भुद विषयों की गंध, उन अद्भुद विषयों का श्रवण-स्पर्श, अद्भुद प्रतिभा का उदय (आदि सिद्धियों) की उपेक्षा करके वे योगी इनको सम ज्ञान से निवर्तित करें (हटायें)। मुनिजन त्रैलोक्य की सभी वस्तुओं की कामना की उपेक्षा करके इन्द्रियों पर नियन्त्रण करें। वे पर्वत शिखर, देवालय अथवा वृक्ष के तल में बैठ कर एकाग्रता पूर्वक आत्मचिन्तन रत रहें। वे अपने उदर को ही पात्र समझें।।५४-६०।।

एकाग्रं चिन्तयेन्नित्यं योगान्नोद्विजते मनः। येनोपायेन शक्येत नियन्तुं चञ्चलं मनः॥६१॥
तत्र युक्तो निषेवेत न चैव विचलेत्ततः। शून्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमेत्॥६२॥

नातिव्रजेत्परं वाचा कर्मणा मनसाऽपि वा।
उपेक्षको यताहारो लब्धालब्धसमो भवेत्॥६३॥

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमभिवादयेत्। समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम्॥६४॥
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत्। समः सर्वेषु भूतेषु सधर्मा मातरिश्वनः॥६५॥
एवं स्वस्थात्मनः साधो सर्वत्र समदर्शिनः। षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्माभिवर्तते॥६६॥

योग से मनोद्वेग शान्त होता है। जिस उपाय द्वारा चंचल मन की शान्ति हो जाये, मनोयोग पूर्वक उसी उपाय को ग्रहण करे। एकाग्र चित्त योगी शून्य स्थान को निवास बनाये। अपने कर्म-मन तथा वाक्य द्वारा किसी में भी उद्वेग उत्पन्न न करे। सभी विषयसमूह की उपेक्षा करे। लोभ तथा हानि में समान भावना रखे। जो आदर करे तथा जो निन्दा करे, इन दोनों के प्रति समभाव रखे। किसी के भी शुभ अथवा अशुभ की कामना नहीं करनी चाहिये। उसे वैसे ही सबके साथ व्यवहार करना चाहिये, जैसे वायु सबके साथ समान है।।६१-६६।।

वेदनार्तान्परान्दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकाञ्चनः। एवं तु निरतो मार्गं विरमेन्न विमोहितः॥६७॥

अपि वर्णावकृष्टस्तु नारी वा धर्मकाङ्क्षिणी।
तावप्येतेन मार्गेण गच्छेतां परमां गतिम्॥६८॥

अजं पुराणमजरं सनातनं, यमिन्द्रियातिगमगोचरं द्विजाः।
अवेक्ष्य चेमां परिमेष्ठिसाम्यतां, प्रयान्त्यनावृत्तिगतिं मनीषिणः॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे सांख्ययोगनिरूपणं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३६॥

इस प्रकार स्वस्थात्मा, सर्वत्र समदर्शी तथा नित्य योगयुक्त रहकर साधु व्यक्ति छः मास में ही शब्दब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं। साधुजन स्वर्ण तथा मिट्टी के ढेले में समान ज्ञान रखें। उसे परायी वेदना से व्यथित नहीं होना चाहिये। ऐसे ही लोग योगयुक्त होते हैं। इस योग से कभी न हटें। धर्म चाहने वाली स्त्री तथा शूद्र भी एवंविध योगयुक्त होकर परम गति प्राप्त करते हैं। हे ब्राह्मणवृन्द! मनीषीगण इस योगपथ पर चलकर अज, पुरातन, अजर, सनातन, इन्द्रियातीत परमपुरुष का दर्शन करते हैं। उन्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।।६७-६९।।

।।षट्त्रिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ज्ञानियों को मोक्षलाभ का वर्णन

मुनय ऊचुः

यद्येवं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च।
कां दिशं विद्यया यान्ति कां च गच्छन्ति कर्मणा॥१॥
एतद्वै श्रोतुमिच्छामस्तद्भवान्प्रब्रवीतु नः। एतदन्योन्यवैरूप्यं वर्तते प्रतिकूलतः॥२॥

मुनिगण कहते हैं—वेदों में दोनों वचन हैं। यथा—कर्म करो। कर्मत्याग करो। ये दोनों परस्परतः प्रतिकूल हैं। इनका तात्पर्य कहिये। कर्म से कौन सी गति मिलती है? विद्या द्वारा क्या मिलता है? यह हम सुनना चाहते हैं।।१-२।।

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला यत्पृच्छध्वं समासतः।
कर्मविद्यामयौ चोभौ व्याख्यास्यामि क्षराक्षरौ॥३॥
यां दिशं विद्यया यान्ति यां गच्छन्ति च कर्मणा।
शृणुध्वं साम्प्रतं विप्रा गहनं ह्येतदुत्तरम्॥४॥

अस्ति धर्म इति युक्तं नास्ति तत्रैव यो वदेत्। यक्षस्य सादृश्यमिदं यक्षस्येदं भवेदथ॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिशार्दूलगण! आपने जो पूछा है, उसका उत्तर श्रवण करिये। विद्या से तथा कर्म से जो गति मिलती है, सम्प्रति उसे सुनें। इसका उत्तर अत्यन्त कठिन है। जो कहता है धर्म है तथा जो यह कहता है कि धर्म नहीं है, इन दोनों का कहना सत्य है। "यह यक्ष का है।" यह दोनों यक्ष से सम्बन्धित हैं। यह अर्थ जिस प्रकार प्रतिपादित होता है तदनुरूप "धर्म है", "धर्म नहीं है" दोनों में धर्म की ही सत्ता स्वीकृत है। "धर्म नहीं है" इसमें पहले धर्म का अस्तित्व प्रतिपादित करके तब उसका निषेध करते हैं। 'नहीं' कहने से अव्यक्त अवस्था समझी जायेगी। तथापि इसे "आकाश का पुष्प" कहकर जैसे असत्ता प्रतिपादित होती है, वैसा यहां नहीं है; क्योंकि जो अव्यक्त है, कभी उसकी अवस्था व्यक्त थी अथवा व्यक्त होगी। यह स्वीकार किया जाता है।।३-५।।

द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो वा विभाषितः॥६॥
कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते। तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः॥७॥
कर्मणा जायते प्रेत्य मूर्तिमान्षोडशात्मकः।
विद्यया जायते नित्यमव्यक्तं ह्यक्षरात्मकम्॥८॥

धर्म का द्विविध पथ है प्रवृत्तिलक्षण तथा निवृत्तिलक्षण। इन पथद्वय में सभी वेद प्रतिष्ठित रहते हैं। कर्म से जीवगण बद्ध होते हैं। विद्या से उनकी मुक्ति होती है। तभी पारदर्शी यतिगण कर्मानुष्ठान नहीं करते। कर्म करने से षोडश अवयव होकर जन्म लेना पड़ता है। वह देहान्तोपरान्त सोलह विकार युक्त होकर जन्मता है, लेकिन विद्या द्वारा वह नित्य अव्यक्त तथा अक्षरात्मक हो जाता है।।६-८।।

कर्म त्वेके प्रशंसन्ति स्वल्पबुद्धिरता नराः। तेन ते देहजालेन रमयन्त उपासते॥९॥
ये तु बुद्धिं परां प्राप्ता धर्मनैपुण्यदर्शिनः। न ते कर्म प्रशंसन्ति कूपं नद्यां पिबन्निव॥१०॥

अल्प बुद्धि मनुष्य ही कर्म की प्रशंसा करते हैं। तभी वे लोग भौतिक पदार्थ द्वारा देहजाल में बद्ध रहते उसी में रमण करते कर्म द्वारा उपासना करते रहते हैं। पराबुद्धिशाली मनुष्य धर्म की निपुणता का ही अवलोकन करते हैं। वे कर्म की प्रशंसा नहीं करते, जैसे नदी का जल पान करने वाला कूपजल की प्रशंसा कदापि नहीं करता।।९-१०।।

कर्मणां फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ।
विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति॥११॥
न म्रियते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न जायते। न जीर्यते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते॥१२॥
यत्र तद्ब्रह्म परममव्यक्तमचलं ध्रुवम्। अव्याकृतमनायाममममृतं चाधियोगवित्॥१३॥
द्वन्द्वैर्न यत्र बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा। समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः॥१४॥
विद्यामयोऽन्यः पुरुषो द्विजाः कर्ममयोऽपरः।
विप्राश्चन्द्रसमस्पर्शः सूक्ष्मया कलया स्थितः॥१५॥

तदेतदृषिणा प्रोक्तं विस्तरेणानुगीयते। न वक्तुं शक्यते द्रष्टुं चक्रतन्तुमिवाम्बरे॥१६॥
एकादशविकारात्मा कलासम्भारसम्भृतः। मूर्तिमानिति तं विद्याद्विप्राः कर्मगुणात्मकम्॥१७॥
देवो यः संश्रितस्तस्मिन्बुद्धीन्दुरिव पुष्करे।
क्षेत्रज्ञं तं विजानीयान्नित्यं योगजितात्मकम्॥१८॥
तमो रजश्च सत्त्वं च ज्ञेयं जीवगुणात्मकम्। जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मनः॥१९॥
सचेतनं जीवगुणं वदन्ति, स चेष्टते जीवगुणं च सर्वम्।
ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति, प्रकल्पयन्तो भुवनानि सप्त॥२०॥

कर्म का फल है सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु प्राप्त करना। विद्या का आश्रय लेने वाले को शोक नहीं करना पड़ता। जहां जाने पर मरण, जन्म, ह्रास, वृद्धि नहीं होती, जहां अव्यक्त, अचल, विकाररहित, अपरिमेय, सर्वज्ञ, अमृतपदवाच्य परमेश्वर का स्थान है, जहां जाने पर मानसिक ताप तथा शीत-उष्णादि दुःख की अनुभूति नहीं होती, वहां पर सर्वत्र समदृष्टि, सर्वभूतसमूह का हित चाहने वाले ज्ञानीगण जाते हैं। हे ब्राह्मणों! विद्यामय तथा कर्ममय पुरुष अलग-अलग होते हैं। हे विप्रवृन्द! कोई पुरुष चन्द्रवत् सुखस्पर्श युक्त तथा सूक्ष्म कला समन्वित होता है। ऋषियों द्वारा कथित यह अनेक बार कहा जाता है, तथापि इस पुरुष के वास्तविक तत्व का निरूपण अतीव कठिन है। आकाशगत राशिचक्रस्थ सूक्ष्म तन्तु के समान इसके स्वरूप को कह सकना अथवा देख सकना अतीव दुष्कर है। हे द्विजगण! यह जो कर्ममय पुरुष है (पहले कहा गया था), वह एकादश इन्द्रियों तथा सूक्ष्म जीवांशों से (कलाओं) समन्वित तथा मूर्त्तिमान है। जैसे सरोवर में चन्द्रबिम्ब झलकता है, तदनुरूप जो देव हृत्पद्म में अधिष्ठित हैं, वे ही क्षेत्रज्ञ हैं। योग के सामर्थ्य से उनकी प्राप्ति होती है। ये ही नित्य, योगजितात्मा हैं। जीव के गुणत्रय हैं सत्व, रजः तथा तमः। आत्मा का गुण है जीव, परमात्मा का गुण है आत्मा। यह भी जाने। जीव का गुण है चेतनता। इस चेतनता द्वारा ही जीव समस्त चेष्टा करता है। क्षेत्रज्ञ व्यक्तिवर्ग उसके द्वारा ही सातों भुवनों की कल्पना करता है।।११-२०।।

व्यास उवाच

प्रकृत्यास्तु विकारा ये क्षेत्रज्ञास्ते परिश्रुताः।
ते चैनं न प्रजानन्ति न जानाति स तानपि॥२१॥
तैश्चैव कुरुते कार्यं मनः षष्ठैरिहेन्द्रियैः। सुदान्तैरिव संयन्ता दृढः परमवाजिभिः॥२२॥
इन्द्रियेभ्यः पर ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥२३॥

व्यासदेव कहते हैं—प्रकृति का विकारसमूह क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। वे क्षेत्रज्ञ आत्मा को नहीं जानते। आत्मा भी क्षेत्रज्ञ को नहीं जानता। जैसे सारथी सुशिक्षित अश्वों को हांक कर वांछित स्थान पर जाता है, आत्मा भी तद्रूप मन एवं पंचेन्द्रिय और क्षेत्रज्ञों द्वारा अपना कार्य साधित करता है। इन्द्रियों से परे है, उनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादि इन्द्रिय विषय। इन विषयों से मन परे है। मन से परे है बुद्धि। बुद्धि से परे है महान् आत्मा।।२१-२३।।

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम्। अमृतान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा परमा गतिः॥२४॥

एवं सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥२५॥
अन्तरात्मनि संलीय मनःषष्ठानि मेधया। इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांश्च बहुचित्तमचिन्तयन्॥२६॥
ध्यानेऽपि परमं कृत्वा विद्यासम्पादितं मनः।
अनीश्वरः प्रशान्तात्मा ततो गच्छेत्परं पदम्॥२७॥

महान् (आत्मा) से परे है अव्यक्त। अव्यक्त से परे है अमृत। तथापि अमृत से परे कुछ भी नहीं है। वही है परमस्थान तथा परमगति। इस प्रकार समस्त प्राणियों में यह गूढ़ आत्मा प्रकाशित ही नहीं होता। तथापि सूक्ष्मद्रष्टा लोग उसे विशुद्ध सूक्ष्म बुद्धि से देख पाते हैं। आत्मज्ञ प्रशान्तचित्त वाला व्यक्ति ज्ञाननेत्र के प्रभाव से मन का कलुष दूर करता है। वह बाह्य विषयों से मन को लौटा कर ध्यान योग में प्रवृत्त हो जाता है। वह बुद्धि द्वारा इन्द्रियों को, इन्द्रियों के विषयों को अन्तरात्मा में विलीन कर देता है। इस प्रकार इस विधि से उसे परम पद की प्राप्ति हो जाती है। जो (पांचों इन्द्रियों तथा मन इन) इन्द्रियगण को वश में करके उसे आत्मा में विलीन कर देता है, वह इन सबको बुद्धि द्वारा अन्तरात्मा में विलीन करके (इन्द्रियों को तथा इन्द्रियों के विषयों को विलीन करके) मन से विद्यायुक्त होकर ध्यान करे। ऐसा व्यक्ति अनीश्वर प्रशान्तात्मा होकर परमपद लाभ करता है।।२४-२७।।

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां वश्यात्मा चलितस्मृतिः।
आत्मनः सम्प्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाश्नुते॥२८॥
विहत्य सर्वसङ्कल्पान्सत्त्वे चित्तं निवेशयेत्।
सत्त्वे चित्तं समावेश्य ततः कालञ्जरो भवेत्॥२९॥
चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम्। प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमश्नुते॥३०॥

सभी संकल्पों को त्याग कर सत्व में चित्त योजित करने वाला कालकृत जन्म-मृत्यु चक्र को नहीं भोगता। यति भी चित्त की इस प्रकार की प्रसन्नता से (सत्व योजन जनित प्रसन्नता से) शुभ-अशुभ से छुटकारा पा लेता है। वह इस प्रकार से प्रसन्नचित्त तथा आत्मस्थ होकर अत्यन्त सुख की प्राप्ति करता है।।२८-३०।।

लक्षणं तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुखं भवेत्।
निर्वाते वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते॥३१॥
एवं पूर्वापरे रात्रे युञ्जन्नात्मानमात्मना। लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि॥३२॥
रहस्यं सर्ववेदानामनैतिह्यमनागमम्। आत्मप्रत्यायकं शास्त्रमिदं पुत्रानुशासनम्॥३३॥
धर्माख्यानेषु सर्वेषु सत्याख्यानेषु यद्वसु। दशवर्षसहस्राणि निर्मथ्यामृतमुद्धृतम्॥३४॥

प्रसन्नता का लक्षण यह है जिस प्रकार व्यक्ति को स्वप्न में सुखानुभूति होती है (जहां सुख का कोई हेतु न होने पर भी चित्त सुख का अनुभव करता है) तथा जिस प्रकार जहां वायु प्रवाह नहीं रहता, अतः दीपक की ज्वाला कम्पित नहीं होती, यही चित्त प्रासाद का लक्षण है। लघु आहार करने वाला विशुद्धात्मा यति रात्रि के प्रथम प्रहर अथवा अन्तिम प्रहर में योग द्वारा आत्मा में ही आत्मदर्शन करता है। यही सभी वेदों का रहस्य

है। यह आगम तथा इतिहास से पृथक् तत्व है। यह आत्मज्ञान कारक है। जैसे पिता पुत्र पर अनुशासन करता है, तदनुरूप यह योगी पर शासन करता है। यह समस्त धर्माख्यानों तथा सत्य आख्यानों का निचोड़ सार स्वरूप है। समस्त वेदों का दस सहस्त्र वर्ष पर्यन्त मन्थन करके यह अद्‌भुद अम्ल निकल सका है।।३१-३४।।

नवनीतं यथा दध्नः काष्ठादग्निर्यथैव च। तथैव विदुषां ज्ञानं मुक्तिहेतोः समुद्धृतम्।।३५।।

स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम्।
तदिदं नाप्रशान्ताय नादान्ताय तपस्विने।।३६।।

नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च। नासूयकायानृजवे न चानिर्दिष्टकारिणे।।३७।।

न तर्कशास्त्रदग्धाय तथैव पिशुनाय च।
श्लाघिने श्लाघनीयाय प्रशान्ताय तपस्विने।।३८।।

इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय तु। रहस्यधर्मं वक्तव्यं नान्यस्मै तु कथञ्चन।।३९।।

जैसे दधि से नवनीत निकलता है, जैसे काष्ठ से अग्नि उत्पन्न होती है, तदनुरूप उसी प्रकार से मुक्ति के हेतु रूप यह विद्वानों हेतु ज्ञान निकला है। पुत्र को उपदेश योग्य यह शास्त्र स्नातक ब्रह्मचारी को बतलाये। जो शान्त, दान्त, तपस्वी, वेदज्ञ, अनुगत तथा सरल स्वभाव नहीं हों, जो असूया युक्त, निंदक, कुटिल, बिना निर्देश पाये कार्य करने वाले, तर्कशास्त्र से दग्धबुद्धि, चुगलखोर हों, उनको यह न बताये। जो वेदानुगामी न हो, उसे भी न बतलाये। यह शास्त्र प्रशंसक, प्रशंसित, प्रशान्त, तपस्वी को, प्रिय पुत्र को तथा अनुगामी शिष्य को ही प्रदान करे। अन्य को कदापि प्रदान न करे।।३५-३९।।

यदप्यस्य महीं दद्याद्रत्नपूर्णामिमां नरः। इदमेव ततः श्रेय इति मन्येत तत्त्ववित्।।४०।।

अतो गुह्यतरार्थं तदध्यात्ममतिमानुषम्। यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते।।४१।।

तद्युष्मभ्यं प्रयच्छामि यन्मां पृच्छत सत्तमाः।
यन्मे मनसि वर्तेत यस्तु वो हृदि संशयः।
श्रुतं भवद्‌भिस्तत्सर्वं किमन्यत्कथयामि वः।।४२।।

तत्वज्ञ मानव रत्नपूर्णा समस्त धरणी की तुलना में इस शास्त्र को श्रेष्ठ कहते हैं। यह अतीव गुह्यतर अध्यात्म ज्ञान मनुष्य हेतु है। यह महर्षिगण द्वारा दृष्ट तथा वेदान्तों में वर्णित विद्या है। हे मुनिसत्तमगण! मैंने इस मनुष्यों के लिये भी दुर्लभ अध्यात्म विद्या को आप लोगों से कह दिया। जो आपका सन्देह था, उसे मैंने अपनी धारणा में स्थित ज्ञान द्वारा निराकृत कर दिया। अब आप लोग क्या श्रवण करना चाहते हैं?।।४०-४२।।

मुनय ऊचुः

अध्यात्मं विस्तरेणेह पुनरेव वदस्व नः। यदध्यात्मं यथा विद्यो भगवन्नृषिसत्तम।।४३।।

मुनिगण कहते हैं—हे ऋषिसत्तम! प्रभो! इस विषय को आप पुनः कहिये, जिससे हम इसे उत्तम रूप से जान सकें।।४३।।

व्यास उवाच

अध्यात्मं यदिदं विप्राः पुरुषस्येह पठ्यते।
युष्मभ्यं कथयिष्यामि तस्य व्याख्याऽवधार्यताम्॥४४॥
भूमिरापस्तथा ज्योतिर्वायुराकाशमेव च। महाभूतानि यश्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत्॥४५॥

व्यासदेव कहते हैं—लोकालय में जिसे अध्यात्म शास्त्र रूप से कहा जाता है, वह मैं आप लोगों से व्याख्या सहित कह रहा हूं। आप लोग उसे श्रवण करें। भूमि, जल, तेज (अग्नि), वायु, आकाश—ये पंचमहाभूत हैं। सृष्टिकर्त्ता इनके अभ्यन्तर में निवास करते हैं।।४४-४५।।

मुनय ऊचुः

आकारं तु भवेद्यस्य यस्मिन्देहं न पश्यति। आकाशाद्यं शरीरेषु कथं तदुपवर्णयेत्।
इन्द्रियाणां गुणाः केचित्कथं तानुपलक्षयेत्॥४६॥

मुनिगण कहते हैं—पंचभूतों का आकार तो है, तथापि उनमें देह नहीं है। अतः सृष्टिकर्त्ता उसमें निवास कैसे करेंगे? पंचभूतों में इन्द्रियगुण भी विद्यमान रहता है। इस कारण उनको अलग से कैसे पाया जा सकता है? वे गुण कैसे होते हैं, वह भी कहिये।।४६।।

व्यास उवाच

एतद्वो वर्णयिष्यामि यथावदनु दर्शनम्।
शृणुध्वं तदिहैकाग्र्या यथातत्त्वं यथा च तत्॥४७॥
शब्दः श्रोत्रं तथा खानि त्रयमाकाशलक्षणम्।
प्राणश्चेष्टा तथा स्पर्श एते वायुगुणास्त्रयः॥४८॥
रूपं चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते।
रसोऽथ रसनं स्वेदो गुणास्त्वेते त्रयोऽम्भसाम्॥४९॥
घ्रेयं घ्राणं शरीरं च भूमेरेते गुणास्त्रयः।
एतावानिन्द्रियग्रामो व्याख्यातः पाञ्चभौतिकः॥५०॥
वायोः स्पर्शो रसोऽद्भ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते।
आकाशप्रभवः शब्दो गन्धो भूमिगणः स्मृतः॥५१॥
मनो बुद्धिः स्वभावश्च गुणा एते स्वयोनिजाः।
ते गुणानतिवर्तन्ते गुणेभ्यः परमा मताः॥५२॥

व्यासदेव कहते हैं—मैंने इसे जिस तरह से जाना है, वैसे ही आप सबसे कहता हूं। आप सभी एकाग्रता पूर्वक श्रवण करें। शब्द, श्रोत्र तथा छिद्र रूप शून्य स्थल—ये तीन आकाश के गुण हैं। रूप, चक्षु तथा विपाक (परिणाम)—ये तेज (अग्नि) के गुण हैं। प्राण की चेष्टा तथा स्पर्श—ये वायु के गुण हैं। रस,

जिह्वा तथा स्वेद—ये तीन जल के गुण हैं। गन्ध, नासिका तथा देह—ये पृथिवी के गुण हैं। यह मैंने पांचभौतिक इन्द्रियग्राम का वर्णन कर दिया। अब इन पांचों के प्रधान गुण को सुनें। आकाश का शब्द, वायु का स्पर्श, तेज का रूप, जल का रस, पृथिवी का गन्ध प्रधान गुण है। मन-बुद्धि-स्वभाव—ये तीनों स्वयोनिज गुण कहे गये हैं। ये सभी गुणों का अतिक्रमण कर लेते हैं। अतः इन तीनों को गुणों की तुलना में प्रधान स्थान दिया गया है।।४७-५२।।

यथा कूर्म इवाङ्गानि प्रसार्य सन्नियच्छति। एवमेवेन्द्रियग्रामं बुद्धिश्रेष्ठो नियच्छति।।५३।।

यदूर्ध्वं पादतलयोरवार्कोर्द्ध्वं च (गधश्च) पश्यति।
एतस्मिन्नेव कृत्ये सा वर्तते बुद्धिरुत्तमा।।५४।।
गुणैस्तु नीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि।
मनःषष्ठानि सर्वाणि बुद्ध्या भावात्कुतो गुणाः।।५५।।
इन्द्रियाणी नरैः पञ्च षष्ठं तन्मन उच्यते।
सप्तमीं बुद्धिमेवाऽऽहुः क्षेत्रज्ञं विद्धि चाष्टमम्।।५६।।

चक्षुरालोकनायैव संशयं कुरुते मनः। बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते।।५७।।

जिस प्रकार से कछुआ अपने अंगों को बाहर फैलाता है तथा पुनः खोल के भीतर सिकोड़ लेता है, तदनुरूप ही बुद्धि से अधीष्ठित आत्मा भी इन्द्रियों का नियमन करता है (अर्थान्तर—इसी प्रकार योगी भी इन्द्रियों का नियमन कर लेता है।) ऊर्ध्व तथा अधः, यह बुद्धि सर्वत्र विस्तृत रहती है। गुणसमूह बुद्धि को परिचालित करते हैं। बुद्धि ही तब मन तथा इन्द्रियों को परिचालित करती है। बुद्धि के अभाव में गुण क्रिया ही नहीं कर सकते (वे तो बुद्धि के ही माध्यम से क्रिया करते हैं)। पांच इन्द्रियां, छठवां मन, सातवां बुद्धि, आठवां क्षेत्रज्ञ, ये आठ देह के प्रधान अवयव हैं। चक्षु द्वारा देखते हैं। मन संशय करता है। बुद्धि किसी बात का निश्चय करती है। क्षेत्रज्ञ तो साक्षीरूप है।।५३-५७।।

रजस्तमश्च सत्त्वं च त्रय एते स्वयोनिजाः। समाः सर्वेषु भूतेषु तान्गुणानुपलक्षयेत्।।५८।।
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत्। प्रशान्तमिव संयुक्तं सत्त्वं तदुपधारयेत्।।५९।।
यत्तु सन्तापसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत्। प्रवृत्तं रज इत्येवं तत्र चापयुपलक्षयेत्।।६०।।
यत्तु सम्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषमं भवेत्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्।।६१।।

प्रहर्षः प्रीतिरानन्दं स्वाम्यं स्वस्थात्मचित्तता।
अकस्माद्यदि वा कस्माद्वदन्ति सात्त्विकान्गुणान्।।६२।।
अभिमानो मृषावादो लोभो मोहस्तथा क्षमा।
लिङ्गानि रजसस्तानि वर्तन्ते हेतुतत्त्वतः।।६३।।
तथा मोहः प्रमादश्च तन्द्री निद्राऽप्रबोधिता।
कथञ्चिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणाः।।६४।।

मनः प्रसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी। हृदयं प्रियमेवेह त्रिविधा कर्मचोदना॥६५॥
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परः स्मृतः॥६६॥

सत्व, रजः, तमः—ये तीन गुण स्वयं उत्पन्न हैं। सभी भूतसमूह में तथा प्राणीगण में ये समभावेन उपस्थित रहते हैं। जब आत्मा में (स्वयं में) प्रीतिमय शान्तभाव लक्षित हो, तब वह सत्वगुण है। शरीर तथा मन में जो कुछ दुःख-सुखभाव है, वह रजः प्रवृत्ति है। जो मोहयुक्त है, अव्यक्त तथा विषम है, वही तमः है। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, स्वाधीनता, स्वस्थचित्तता—ये सभी सात्विक गुण हैं। अभिमान, मिथ्या कथन, लोभ, गर्व, क्रोध—राजस गुण हैं। मोह, प्रमाद, तन्द्रा, निद्रा, अज्ञान—तमोगुण हैं। मन भावों की उत्पत्ति करने वाला है। बुद्धि निश्चयात्मिका होती है। इन्द्रियों की अपेक्षा इन्द्रिय विषय, उसकी अपेक्षा मन, मन की अपेक्षा बुद्धि, उसकी अपेक्षा आत्मा श्रेष्ठ है।।५८-६६।।

बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवाऽऽत्मनायिका।
यदा विकुरुते भावं तदा भवति सा मनः॥६७॥
इन्द्रियाणां पृथग्भावाद्बुद्धिर्विकुरुते ह्यनु।
शृण्वती भवति श्रोत्रं स्पृशती स्पर्श उच्यते॥६८॥
पश्यन्ती च भवेद्दृष्टी रसन्ती रसना भवेत्।
जिघ्रन्ती भवति घ्राणं बुद्धिर्विकुरुते पृथक्॥६९॥

फलस्वरूप बुद्धि ही देहीगण की आत्मा है। वही आत्मनायिका है। वह बुद्धि जब विकसित हो जाती है, तभी उसे मन कहते हैं। बुद्धि ही विभिन्न इन्द्रियों में अधिष्ठित होकर विभिन्न संज्ञा वाली हो जाती है। वह श्रवण करती है, अतः श्रोत्र है। स्पर्श करते समय स्पर्श, देखते समय दृष्टि, रसग्रहणकाल में रसना, सूंघते समय घ्राण है। एक बुद्धि ही विभिन्न नाम धारण करती है।।६७-६९।।

इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेषां वृत्त्या वितिष्ठति।
तिष्ठन्ति पुरुषे बुद्धिर्बुद्धिभावव्यवस्थिता॥७०॥
कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदपि शोचति। न सुखेन न दुःखेन कदाचिदिह मुह्यते॥७१॥
स्वयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतानतिवर्तते।
सरितां सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान्॥७२॥
यदा प्रार्थयते किञ्चित्तदा भवति सा मनः।
अधिष्ठाने च वै बुद्ध्या पृथगेतानि संस्मरेत्॥७३॥

इन सभी को इन्द्रिय कहते हैं। ये सभी बुद्धि की ही वृत्ति हैं। बुद्धि के ही कारण जीव कभी प्रीति करता है। कभी शोक, कभी दुःख करता है। बुद्धि स्वयं भावात्मिका है। जैसे लहरों वाला सागर नदियों को आश्रय देने वाला है। तथापि वह कभी तट का अतिक्रमण नहीं करता। इसी प्रकार सर्वभावात्मिका बुद्धि कदापि इन्द्रिय, मन एवं बुद्धिरूप त्रिविध भाव का त्याग नहीं करती। जब बुद्धि संकल्प करती है, तब वही मन है। वास्तव में

एक ही पदार्थ में अधिष्ठान भेद के कारण पृथक्-पृथक् संज्ञा हो गई है। अर्थात् स्थान विशेष में होने के कारण बुद्धि का ही इन्द्रियों के रूप में अलग-अलग नाम दिया जाता है।।७०-७३।।

इन्द्रियाणि च मेध्यानि विचेतव्यानि कृत्स्नशः।
सर्वाण्येवानुपूर्वेण यद्यदा च विधीयते॥७४॥
अभिभागमना बुद्धिर्भावो मनसि वर्तते। प्रवर्तमानस्तु रजः सत्त्वमप्यतिवर्तते॥७५॥
ये वै भावेन वर्तन्ते सर्वेष्वेतेषु ते त्रिषु। अन्वर्थान्सम्प्रवर्तन्ते रथनेमिमरा इव॥७६॥
प्रदीपार्थं मनः कुर्यादिन्द्रियैर्बुद्धिसत्तमैः। निश्चरद्भिर्यथायोगमुदासीनैर्यदृच्छया॥७७॥
एवं स्वभावमेवेदमिति बुद्ध्वा न मुह्यति। अशोचन्सम्प्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः॥७८॥

इन्द्रियों को पवित्र रखे। उनका उपयोग विचार पूर्वक करे। बुद्धि कदापि मन से व्यतिरिक्त (पृथक्) नहीं है। भाव की स्थिति मन में रहती है। कोई भी क्रिया क्यों न हो, एक बुद्धि ही पृथक् भाव में वह कार्य सम्पन्न करती है। यही बुद्धि भावरूपा होकर रजोगुण तथा सत्वगुण को भी स्वायत्त कर लेती है। जिस प्रकार रथ के सभी अर (पहिये की तिल्लियां) रथ की नेमि से संलग्न रहते हैं, उसी प्रकार तीनों गुण भी भावानुसार बुद्धि के अधीन रहकर क्रिया में प्रवृत्त रहते हैं। मन तो दीपक के समान है, इन्द्रियां तो यन्त्र के तुल्य हैं। जिस प्रकार से आलोक विभिन्न यन्त्रों में जाकर पृथक् रूप हो जाता है, उसी प्रकार से बुद्धि चक्षु-कर्ण आदि पृथक्-पृथक् अधिष्ठान के कारण उन-उन नाम का वरण कर लेती है। "उसका स्वभाव ही यही है" यह जान कर मात्सर्यहीन होकर धीरता धारण करे तथा शोक एवं हर्ष से कभी आक्रान्त न हो।।७४-७८।।

न ह्यात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियैः कामगोचरैः। प्रवर्तमानैरनेकैर्दुर्धरैरकृतात्मभिः॥७९॥
तेषां तु मनसा रश्मीन्यदा सम्यङ्नियच्छति।
तदा प्रकाशतेऽस्याऽऽत्मा दीपदीप्ता यथाऽऽकृतिः॥८०॥

असंयत व्यक्तिगण स्वेच्छाचारी दुरन्त इन्द्रियों की सहायता से कदापि आत्मदर्शन नहीं पा सकते। मन से ही इन दुरन्त इन्द्रियों को नियमित करने पर आत्मा वैसे ही प्रकाशमान होता है, जैसे दीपालोक में हम वस्तु का रूप देख पाते हैं।।७९-८०।।

सर्वेषामेव भूतानां तमस्युपगते यथा। प्रकाशं भवते सर्वं तथैवमुपधार्यताम्॥८१॥
यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन्।
विमुक्तात्मा तथा योगी गुणदोषैर्न लिप्यते॥८२॥
एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयाश्चरन्। असज्जमानः सर्वेषु न कथञ्चित्प्रलिप्यते॥८३॥
त्यक्त्वा पूर्वकृतं कर्म रतिर्यस्य सदाऽऽत्मनि। सर्वभूतात्मभूतस्य गुणसङ्गेन सज्जतः॥८४॥

जैसे अन्धकार में दीपक का आलोक होने पर वस्तु का रूप प्रकाशित (दिखलाई देना) हो जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियों की वृत्ति की बहिर्मुखता को रोक कर बुद्धि को आत्मा से युक्त करे। इससे आत्मा प्रकट हो जाती है। जिस प्रकार जलचर पक्षी जल से भींगते नहीं, विमुक्त आत्मा योगी भी गुण-दोष लिप्त नहीं होता। प्रज्ञावान् मानव एवंविध अनासक्त चित्त से विषयों का अनुशीलन (भोग) करते हुये भी उससे लिप्त नहीं होते।

जो पूर्वकृत कर्मों की उपेक्षा करके आत्मरत हो जाते हैं, सभी प्राणीगण में स्वात्मा का दर्शन करते हैं, वे गुणों का स्पर्श होते रहने पर भी संसार में आबद्ध नहीं हो पाते।।८१-८४।।

स्वयमात्मा प्रसवति गुणेष्वपि कदाचन। न गुणा विदुरात्मानं गुणान्वेद स सर्वदा॥८५॥
परिदध्याद्गुणानां स द्रष्टा चैव यथातथम्। सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं लक्षयेन्नरः॥८६॥
सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान्। पृथग्भूतौ प्रकृत्यैतौ सम्प्रयुक्तौ च सर्वदा॥८७॥
यथाऽश्मना हिरण्यस्य सम्प्रयुक्तौ तथैव तौ।
मशकौदुम्बरौ वाऽपि सम्प्रयुक्तौ यथा सह॥८८॥
इषिका वा यथा मुञ्जे पृथक्च सह चैव ह।
तथैव सहितावेतौ अन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसम्वादे सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३७।।

आत्मा द्वारा ही गुणोत्पत्ति होती है, तथापि ये गुण आत्मा को नहीं जान पाते। आत्मा सदा गुणों को जानती है। गुण आत्मा को आवृत्त करते हैं, तथापि आत्मा मात्र द्रष्टा है। सत्व तथा क्षेत्रज्ञ का रहस्य इस प्रकार जानना चाहिये कि एक के द्वारा गुणों की सृष्टि की जाती है (प्रकृति)। अन्य (आत्मा) ऐसा नहीं करती। प्रकृति तथा आत्मा में स्वभावगत् पार्थक्य है, तथापि ये सदा सम्मिलित ही हैं। स्वर्ण के साथ पत्थर का संयोग (खानों में), गूलर के साथ कीट का संयोग (गूलर फल में कीट रहते हैं), मूंज के साथ सींक का संयोग रहता है, तथापि परस्परतः मिलित होकर भी ये पृथक् हैं। इसी प्रकार प्रकृति-पुरुष परस्परतः संयुक्त होकर (पृथक् प्रतीत होते रहते हैं) स्थित हैं।।८५-८९।।

।।सप्तत्रिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथाष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गुणसृष्टि का वर्णन

व्यास उवाच

सृजते तु गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वधितिष्ठति। गुणान्विक्रयतः सर्वानुदासीनवदीश्वरः॥१॥
स्वभावयुक्तं तत्सर्वं यदिमान्सृजते गुणान्। ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं सृजते तद्गुणांस्तथा॥२॥
प्रवृत्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते। एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिमिति चापरे॥३॥

व्यासदेव कहते हैं—प्रकृति द्वारा गुण सृष्ट होते हैं। ईश्वर उदासीन के समान इनकी विक्रिया का अवलोकन मात्र करता है। जैसे मकड़ी जाल के सूत्रों का सृजन करती है, तदनुरूप प्रकृति भी स्वभावानुरूप ही गुण-गण की सृष्टि करती है। बहुत से लोग यह मानते हैं कि प्रवृत्तिमार्गी लोग संसार में पुनः जन्म नहीं लेते, अतः वे प्रवृत्तिमार्ग पर ही चलते हैं। (अर्थान्तर है कि उनका यह मानना है कि तत्वज्ञान से गुण प्रलीन हो जाते हैं। वे गुण पुनः उत्पन्न नहीं होते। वे भ्रम निवृत्ति को ही मुक्ति मान लेते हैं)। अन्य के मत से निवृत्ति अर्थात् दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही यथार्थ मार्ग है। अतः वे निवृत्ति मार्ग पर चलते हैं।।१-३।।

उभयं सम्प्रधार्यैतदध्यवस्येद्यथामति। अनेनैव विधानेन भवेद्वै संशयो महान्।।४।।
अनादिनिधनो ह्यात्मा तं बुद्ध्वा विहरेन्नरः। अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः।।५।।
इत्येवं हृदये सर्वो बुद्धिचिन्तामयं दृढम्। अनित्यं सुखमासीनमशोच्यं छिन्नसंशयः।।६।।

वास्तव में ये दोनों मार्ग ही अवलम्बनीय हैं। अतः सविधि साधन करे। तथापि इस सम्बन्ध में महान् संशय भी उदित हो जाता है। मनुष्यगण अनादिनिधन आत्मा को जान कर क्रोध, हर्ष, मत्सरादि का त्याग करके विचरता रहे। सभी के हृदय में इस प्रकार की आत्मा विद्यमान है, जो बुद्धिमय तथा चिन्तनमय है। वह नित्य समासीन, शोक स्पर्श रहित है। ऐसे आत्मा को दृढ़ता पूर्वक जान लेने से संशय उच्छिन्न हो जाते हैं। यह जान कर मनुष्य अनित्य सुख, शोक, संशय त्यागे।।४-६।।

तरयेत्प्रच्युतां पृथ्वीं यथा पूर्णां नदीं नराः।
अवगाह्य च विद्वांसो विप्रा लोलमिमं तथा।।७।।
न तु तप्यति वै विद्वान्स्थले चरति तत्त्ववित्।
एवं विचिन्त्य चाऽऽत्मानं केवलं ज्ञानमात्मनः।।८।।
तां (तं) तु बुद्ध्वा नरः सर्गं भूतानामागतिं गतिम्।
समचेष्टश्च वै सम्यग्लभते शममुत्तमम्।।९।।

जैसे व्यक्ति नदी को पार करके अभीष्ट स्थान पर चला जाता है, तदनुरूप तत्वज्ञानमय शास्त्र का अवगाहन करने से व्यक्ति संसार में रहकर भी सृष्टि रहस्य, भूतगति (प्राणीगण की गति)-अगति आदि का ज्ञान पाकर सम्यक्तः उत्तम शान्ति लाभ करते हैं। तत्वज्ञ मनुष्य ज्ञानमय आत्मा की इस प्रकार से निर्णय करके ध्यान के फलस्वरूप निर्लिप्त होकर संसार में विचरण करे। मनुष्यगण सृष्टि तथा प्राणियों की गति सृष्टि तथा लयादि का सम्यक्तः विचार करके सर्वत्र समचेष्टारत होकर परमशान्ति लाभ करते हैं।।७-९।।

एतद्द्विजन्मसामग्र्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः। आत्मज्ञानसमस्नेहपर्याप्तं तत्परायणम्।।१०।।
तत्त्वं बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम्।
विज्ञायैतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः।।११।।
न भवति विदुषां महद्भयं, यदविदुषां सुमहद्भयं परत्र।
न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचिद्भवति हि या विदुषः सनातनी।।१२।।

ऐसा जान कर विशेषतया ब्राह्मण आत्मज्ञान रूप स्नेह से युक्त, परम गतिमय इस ज्ञान द्वारा कृतार्थ

हो जाते हैं। तत्वज्ञ ही बुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त प्रबुद्ध का और क्या लक्षण कहा जाये? इस तत्व को जो जानता है, उसे परलोक में भय नहीं होता। उसे मृत्यु के उपरान्त भय होता है, जो यह तत्व नहीं जानता। ज्ञानवान् जिस सनातनी गति को पाता है, अन्य कोई भी वैसी उत्तम गति नहीं पा सकते।।१०-१२।।

लोके मातरमसूयते नरस्तत्र देवमनिरीक्ष्य शोचते।
तत्र चेत्कुशलो न शोचते, ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम्॥१३॥
यत्करोत्यनभिसन्धिपूर्वकं, तच्च निन्दयति यत्पुरा कृतम्।
यत्प्रियं तदुभयं न वाऽप्रियं, तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः॥१४॥

संसार में लोग आत्मदेव का दर्शन नहीं पाते, तभी वे शोक के आवेश के कारण लोकमाता प्रकृति के प्रति द्वेष करते हैं। जो आत्मतत्व से कृतार्थ हैं, वह कर्तव्य, अकर्त्तव्य दोनों को जानते हैं। ऐसे लोग निष्कपट कर्मानुष्ठान करते हैं। जो अज्ञानावस्था में किये कर्म की निन्दा करता है, वह तत्वज्ञ व्यक्ति न प्रिय करता है न अप्रिय। वह कदापि शोकलिप्त नहीं होता।।१३-१४।।

मुनय ऊचुः

यस्माद्धर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन। यो विशिष्टश्च भूतेभ्यस्तद्भवान्प्रब्रवीतु नः॥१५॥

मुनिगण कहते हैं—जिस धर्म की तुलना में इस लोक में अन्य उत्तम धर्म है ही नहीं, वह कृपया कहिये।।१५।।

व्यास उवाच

धर्मं च सम्प्रवक्ष्यामि पुराणमृषिभिः स्तुतम्।
विशिष्टं सर्वधर्मेभ्यः शृणुध्वं मुनिसत्तमाः॥१६॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! सभी धर्मों की तुलना में श्रेष्ठ, ऋषियों द्वारा प्रशंसित जो धर्म हैं, जो विशेष है, वह कहिये।।१६।।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि बुद्ध्या संयम्य तत्त्वतः।
सर्वतः प्रसृतानीह पिता बालानिवाऽऽत्मजान्॥१७॥
मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः। विज्ञेयः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते॥१८॥
तानि सर्वाणि सन्धाय मनःषष्ठानि मेधया।
आत्मतृप्तः स एवाऽऽसीद्बहुचिन्त्यमचिन्तयन्॥१९॥
गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्थास्यन्ति वेश्मनि।
तदा चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं परं द्रक्ष्यथ शाश्वतम्॥२०॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! मैं ऐसे सर्वश्रेष्ठ, ऋषियों द्वारा प्रशंसा प्राप्त पुरातन धर्म को कहता हूं। जैसे पिता बालक सन्तान को नियमन करके साथ रखता है, तद्रूप तत्वज्ञान के बल से इतःस्ततः विचलित, उच्छृंखल इन्द्रियगण को संयत करके मन के साथ युक्त करे। मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता सम्पन्न

करना ही परम तप है। सर्व धर्म की तुलना में यही धर्म श्रेष्ठ कहा गया है। बुद्धि के द्वारा अनेक चिन्तनीय विषयों से विरत होकर मन तथा पांचों इन्द्रियों को समाहित करके साधक-योगी आत्मतृप्त हो जायें। जब मन समस्त विषयों से निवृत्त होकर स्वस्थान में स्थित हो जाता है, तभी वह आत्मा द्वारा शाश्वत परमात्मा की प्राप्ति कर सकेगा।।१७-२०।।

सर्वात्मानं महात्मानं विधूममिव पावकम्।
प्रपश्यन्ति महात्मानं ब्राह्मणा ये मनीषिणः॥२१॥

ब्राह्मण तथा महात्मा मनीषी लोग इस सर्वात्मा महान् आत्मा को धूयें से रहित (अज्ञान रूपी धूम से रहित) अग्निवत् देखते हैं।।२१।।

यथा पुष्पफलोपेतो बहुशाखो महाद्रुमः।
आत्मनो नाभिजानीते क्व मे पुष्पं क्व मे फलम्॥२२॥
एवात्मा न जानीते क्व गमिष्ये कुतोऽन्वहम्।
अन्यो ह्यस्यान्तरात्माऽस्ति यः सर्वमनुपश्यति॥२३॥
ज्ञानदीपेन दीप्तेन पश्यत्यात्मानमात्मना।
दृष्ट्वाऽऽत्मानं तथा यूयं विरागा भवत द्विजाः॥२४॥
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगाः।
परां बुद्धिमवाप्येहाप्यचिन्ता विगतज्वराः॥२५॥

जिस प्रकार से नाना पुष्प-फल-शाखा समन्वित महावृक्ष यह नहीं जानता कि "कहां मेरा पुष्प तथा फल है" तदनुरूप आत्मा भी "कहां जाना है, कहां से आया हूं" यह सब नहीं जानता। इस आत्मा के अतिरिक्त एक अन्तरात्मा भी है। वह यह सब कुछ देखता है। प्रदीप्त ज्ञानदीप की सहायता से आत्मा ही स्वयं को देखता है। हे द्विजगण! आप इस प्रकार देख कर विराग (वैराग्य) वान् हो जायें। जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुल त्याग देता है, तद्रूप आप लोग भी सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर तथा परमबोध की प्राप्ति करके निश्चिन्त, मुक्त तथा दुःख रहित हो जायें।।२२-२५।।

सर्वतःस्त्रोतसं घोरां नदीं लोकप्रवाहिणीम्। पञ्चेन्द्रियग्राहवतीं मनःसङ्कल्परोधसम्॥२६॥
लोभमोहतृणच्छन्नां कामक्रोधसरीसृपाम्। सत्यतीर्थानृतक्षोभां क्रोधपङ्कां सरिद्वराम्॥२७॥
अव्यक्तप्रभवां शीघ्रां कामक्रोधसमाकुलाम्।
प्रतरध्वं नदीं बुद्ध्या दुस्तरामकृतात्मभिः॥२८॥
संसारसागरगमां योनिपातालदुस्तराम्। आत्मजन्मोद्भवां तां तु जिह्वावर्तदुरासदाम्॥२९॥
यां तरन्ति कृतप्रज्ञा धृतिमन्तो मनीषिणः।
तां तीर्णः सर्वतो मुक्तो विधूतात्माऽऽत्मवाञ्शुचिः॥३०॥
उत्तमां बुद्धिमास्थाय ब्रह्मभूयाय कल्पते।
उत्तीर्णः सर्वसङ्क्लेशान्प्रसन्नात्मा विकल्मषः॥३१॥

भूयिष्ठानीव भूतानि सर्वस्थानान्निरीक्ष्य च। अक्रुध्यन्नप्रसीदंश्च ननृशंसमतिस्तथा॥३२॥
ततो द्रक्ष्यथ सर्वेषां भूतानां प्रभवाप्ययात्। एतद्धि सर्वधर्मेभ्यो विशिष्टं मेनिरे बुधाः॥३३॥

हे द्विजगण! आप इस सर्वदिक् प्रवाहित स्रोतवाली, लोकप्रवाहिणी, पंचेन्द्रियरूपी ग्राहयुता, मनःसंकल्परूपी तट वाली, काम-क्रोधरूपी जलसर्पों से पूर्ण, सत्यरूप तीर्थयुता, मिथ्या रूपी जलक्षोभ (तरंग) तथा क्रोधरूपी कीचड़ से भरी, अव्यक्त से समुद्भूता, अजितेन्द्रिय लोगों द्वारा जो पार न की जा सके, घोर शीघ्रगामी प्रवाह वाली, नदी को बुद्धि से उत्तीर्ण (पार) करें। धैर्ययुक्त विशुद्ध बुद्धि वाले लोग इस संसार-सागर से युक्त होने वाली, योनिरूपी पाताल पर्यन्त गहरी, आत्मजन्म से उद्भूता, जिह्वारूप आवर्त्त से सुदुस्तरा इस नदी को पार कर लेते हैं। पवित्रात्मा, पवित्र तथा आत्मवान् मानव उत्तम बुद्धि द्वारा इस नदी को पार करके सर्वदुःख रहित हो जाते हैं। वे ब्रह्मत्व लाभ करते हैं।

सर्वक्लेश रहित, प्रसन्नचित्त, निष्पाप, कोमलमति, क्रोधहीन तथा हर्ष-क्रूरता से रहित लोग सर्वभूतस्थ व्यापक आत्मा का दर्शन करके सर्वक्लेश विनिर्मुक्त हो जाते हैं। वे कल्मष रहित हो जाते हैं। जिस प्रकार पर्वतस्थ व्यक्ति धरातल पर स्थित प्राणियों को देख कर सभी को अपनी तुलना में नीचा देखता है, इसी प्रकार वह ज्ञानी भूतसमूह की उत्पत्ति तथा लयमात्र देखता है, तथापि उससे न तो सुखी होता है न दुःखी। धार्मिक प्रवर सत्यद्रष्टा बुद्धिमान् लोग इसे ही सभी धर्मों की तुलना में श्रेष्ठ धर्म मानते हैं। यह धर्म पुत्र से ही कहे (हर किसी से न कहे)।।२६-३३।।

धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठा मुनयः सत्यदर्शिनः।
आत्मानो व्यापिनो विप्रा इति पुत्रानुशासनम्॥३४॥
प्रयताय प्रवक्तव्यं हितायानुगताय च। आत्मज्ञानमिदं गुह्यं सर्वगुह्यतमं महत्॥३५॥
अब्रवं यदहं विप्रा आत्मसाक्षिकमञ्जसा। नैव स्त्री न पुमानेवं न चैवेदं नपुंसकम्॥३६॥
अदुःखमसुखं ब्रह्म भूतभव्यभवात्मकम्।
नैतज्ज्ञात्वा पुमान्स्त्री वा पुनर्भवमवाप्नुयात्॥३७॥
यथा मतानि सर्वाणि तथैतानि यथा तथा।
कथितानि मया विप्रा भवन्ति न भवन्ति च॥३८॥
तत्प्रीतियुक्तेन गुणन्वितेन, पुत्रेण सत्पुत्रदयान्वितेन।
दृष्ट्वा हितं प्रीतमना यदर्थं, ब्रूयात्सुतस्येह यदुक्तमेतत्॥३९॥

यह आत्मज्ञान पूर्ण अनुगत, संयमी, प्रयत्नशील, हितचिन्तक तथा समर्पित शिष्य को ही प्रदान करें। यह अत्यन्त गोपनीय ज्ञान है। मैंने आत्मा को परम शान्ति देने वाले इस शास्त्र का उपदेश आप लोगों से किया है। यह आत्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है। न तो नपुंसक ही है। यह सुख-दुःखरहित, भूत-भविष्य-वर्त्तमानात्मक है। जो स्त्री अथवा पुरुष इसे जान लेता है, उसे पुनर्जन्म नहीं मिलता। हे विप्रगण! यह तत्व मुझे जैसे ज्ञात है, मैंने तदनुरूप कहा। मेरे द्वारा कथित यह हितकारी तत्वशास्त्र गुणी हिताभिलाषी तथा प्रेमयुक्त दयालु पुत्र को ही प्रदान करे। इसे प्रसन्न मन से प्रदान करे।।३४-३९।।

मुनय ऊचुः

मोक्षः पितामहेनोक्त उपायान्नानुपायतः। तमुपायं यथान्यायं श्रोतुमिच्छामहे मुने॥४०॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिवर! पितामह ब्रह्मा का मत है कि मोक्ष उपाय रहित प्राप्त नहीं होता। हम सब उस उपाय को सुनना चाहते हैं।।४०।।

व्यास उवाच

अस्मासु तन्महाप्राज्ञ युक्तं निपुणदर्शनम्। यदुपायेन सर्वार्थान्मृगयध्वं सदाऽनघाः॥४१॥

घटोपकरणे बुद्धिर्घटोत्पत्तौ न सा मता। एवं धर्माद्युपायार्थे नान्यधर्मेषु कारणम्॥४२॥

पूर्वे समुद्रे यः पन्था न स गच्छति पश्चिमम्।
एकः पन्था हि मोक्षस्य तच्छृणुध्वं ममानघाः॥४३॥

क्षमया क्रोधमुच्छिन्द्यात्कामं सङ्कल्पवर्जनात्।
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति॥४४॥

अप्रमादाद्भयं रक्षेद्रक्षेत्क्षेत्रं च संविदम्। इच्छां द्वेषं च कामं च धैर्येण विनिवर्तयेत्॥४५॥

निद्रां च प्रतिभां चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित्।
उपद्रवास्तथा योगी हितजीर्णमिताशनात्॥४६॥

व्यासदेव कहते हैं—हे महान् विद्वानों! आप लोगों ने जिस मुक्ति उपाय का अवलम्बन लिया है, वह उचित ही है। उसके द्वारा सर्वार्थलाभ हो सकेगा। घटस्थ सामग्री का जो कारण है, वह कारण घटनिर्माण (घटोत्पत्ति) में नहीं होता। धर्मादि के उपाय के सम्बन्ध में यही ज्ञातव्य है। फलतः विविध धर्मों के नाना कारण को जानना होगा। पूर्व समुद्र तट पर जाने वाला जो मार्ग है, पश्चिम समुद्र तट पर जाने हेतु वह पथ उचित नहीं है, लेकिन मोक्ष के सम्बन्ध में तो मात्र एक ही पथ है। हे निष्पापगण! मैं वह कहता हूं। आप लोग श्रवण करें। धीर मानव क्षमा द्वारा क्रोध का उच्छेद करे। संकल्प त्याग कर काम को नष्ट करे और सत्व की सेवा द्वारा निद्रा जय करे। अप्रमाद से भय का नाश करे। शरीर तथा बुद्धि रक्षा करे। इच्छा, द्वेष तथा काम को धैर्य द्वारा निवारित करे। तत्वज्ञ मानव निद्रा तथा चंचलता को ज्ञानाभ्यास से दूर करे। योगी अन्य उपद्रवों को हितकारी, अल्प भोजन से दूर करे।।४१-४६।।

लोभं मोहं च सन्तोषाद्विषयांस्तत्त्वदर्शनात्। अनुक्रोशादधर्मं च जयेद्धर्ममुपेक्षया॥४७॥

आयत्या च जयेदाशां सामर्थ्यं सङ्गवर्जनात्।
अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधां योगेन पण्डितः॥४८॥

वह लोभ-मोह को सन्तोष से, विषयासक्ति को तत्व के अनुशीलन से, अधर्म को दया से तथा धर्म को उपेक्षा से विजित करे।।४७-४८।।

कारुण्येनाऽऽत्मनाऽऽत्मानं तृष्णां च परितोषतः।
उत्थानेन जयेत्तन्द्रां वितर्कं निश्चयाज्जयेत्॥४९॥

मौनेन बहुभाषां च शौर्येण च भयं जयेत्।
यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्ध्या तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा॥५०॥
ज्ञानमात्मा महान्यच्छेत्तं यच्छेच्छान्तिरात्मनः। तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा॥५१॥
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः।
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्॥५२॥

व्यक्ति भविष्यत् की भावना आगे के स्वप्न देखना छोड़कर आशा पर विजय पाये। संसार के अनित्यत्व का विचार करके स्नेह का तथा योग सामर्थ्य से क्षुधा का त्याग करे। करुणा द्वारा स्वभाव को, सन्तोष से तृष्णा को, उद्यम से तन्द्रा को, निश्चय द्वारा वितर्क को दूर करे। मौन द्वारा बकवाद की आदत को, शूरता से भय को विजित करे। बुद्धि में मन-वाणी को लीन करे। बुद्धि को ज्ञान में, ज्ञान को महत् आत्मा में तथा आत्मा को परमात्मा में लीन करने से व्यक्ति को शान्तिलाभ होता है। अशान्त तथा शुद्ध कर्म का अनुष्ठाता व्यक्ति कविगण कथित पञ्चविध योगदोष समूह का उच्छेद करके इस तत्व की अवधारणा करें। ये पंचयोग दोष हैं—काम, क्रोध, लोभ, भय तथा निद्रा।।४८-५२।।

परित्यज्य निषेवेत यथावद्योगसाधनात्। ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा॥५३॥
शौचमाचारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः। एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च॥५४॥
सिद्ध्यन्ति चास्य सङ्कल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते।
धूततापः स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः॥५५॥
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निर्विशेद्ब्रह्मणः पदम्।
अमूढत्वमसङ्गित्वं कामक्रोधविवर्जनम्॥५६॥
अदैन्यमनुदीर्णत्वमनुद्वेगो ह्यवस्थितिः। एक मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः।
तथा वाक्कायमनसां नियमाः कामतोऽव्ययाः॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे सांख्ययोगनिरूपणं नाम अष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२३८।।

इन योगदोष समूह का उच्छेद करे। योगसाधना के प्रभाव से इन पांचों का त्याग करके यथाविधि तत्वालोचना करे। ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, शौच, शुद्धाचार, इन्द्रिय संयम, इन दस द्वारा पापनाश, तेजवृद्धि, संकल्प सिद्धि तथा विज्ञान में प्रवृत्ति होती है। लघुभोजी, इन्द्रियजित्, पापरहित, तेजस्वी योगी काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्मपद में प्रविष्ट हो जाता है। अमूढत्व, संग रहित होना, काम-क्रोध को वशीभूत करना, दीनता रहित होना, उद्वेग रहित होना, वाणी-देह तथा मनः का यथायोग्य संयम, इन सब भावों में अवस्थित रहना मोक्षविषयक प्रसन्नता प्रदान करता है। यही विमल तथा शुद्ध पथ है।।५३-५७।।

।।अष्टत्रिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगविधि का निरूपण

मुनय ऊचुः

साङ्ख्यं योगस्य नो विप्र विशेषं वक्तुमर्हसि।
तव धर्मज्ञ सर्वं हि विदितं मुनिसत्तम॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिसत्तम! सांख्य तथा योग के सम्बन्ध में हमसे विशेषतया कहिये। हे धर्मज्ञ! आपको सब कुछ ज्ञात है।।१।।

व्यास उवाच

साङ्ख्याः साङ्ख्यं प्रशंसन्ति योगान्योगविदुत्तमाः।
वदन्ति कारणैः श्रेष्ठैः स्वपक्षोद्भवनाय वै॥२॥
अनीश्वरः कथं मुच्येदित्येवं मुनिसत्तमाः। वदन्ति कारणैः श्रेष्ठं योगं सम्यङ्मनीषिणः॥३॥
वदन्ति कारणं वेदं साङ्ख्यं सम्यग्द्विजातयः। विज्ञायेह गतीः सर्वा विरक्तो विषयेषु यः॥४॥
ऊर्ध्वं स देहात्सुव्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा।
एतदाहुर्महाप्राज्ञाः साख्यं वै मोक्षदर्शनम्॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—अपने पक्ष के समर्थनार्थ विशेष कारण प्रदर्शन के साथ सांख्यविद् लोगों ने सांख्य का तथा योगीगण ने योग का पक्ष रखा है। मनीषी योगियों ने यह कारण प्रदर्शित किया है कि "ईश्वर के बिना मृत्यु कैसे होगी?" इस प्रकार उन्होंने योग को ही प्रधान कहा है। अन्य द्विजों ने सांख्यमत से वेद को ही कारण कहा है। जो जगत् की समस्त गति को जान कर विशेष रूप से विरक्त हो गये, वे देहत्याग के उपरान्त अवश्य मुक्तिलाभ करेंगे। यह निःसंदिग्ध तथ्य है। महाप्राज्ञ लोगों ने इसे ही मोक्षदर्शन सांख्य कहा है।।२-५।।

स्वपक्षे कारणं ग्राह्यं समर्थं वचनं हितम्।
शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं भवद्भिः शिष्टसम्मतैः॥६॥
प्रत्यक्षं हेतवो योगाः साङ्ख्याः शास्त्रविनिश्चयाः।
उभे चैते मते तत्त्वे समवेत्ते द्विजोत्तमाः॥७॥
उभे चैते मते ज्ञाते मुनीन्द्राः शिष्टसम्मते। अनुष्ठिते यथाशास्त्रं नयेतां परमां गतिम्॥८॥
तुल्यं शौचं तयोर्युक्तं दया भूतेषु चानघाः। व्रतानां धारणं तुल्यं दर्शनं त्वसमं तयोः॥९॥

स्वपक्ष स्थापनार्थ शिष्टसम्मत तथा वेदवचन ग्राह्य होता है। योग प्रत्यक्ष प्रमाण पर तथा सांख्य शास्त्र प्रमाण पर आधारित है। हे द्विजोत्तमगण! ये दोनों मत यथार्थ हैं। दोनों मतों को जानकर मुनीन्द्र लोग यथाशास्त्र उसका अनुष्ठान करके परमगति का लाभ करते हैं। इन दोनों मत में शौचनियम, तप, दया एवं व्रताचरण एक ही समान है। तथापि दोनों के दर्शन पृथक्-पृथक् हैं।।६-९।।

मुनय ऊचुः

यदि तुल्यं व्रतं शौचं दया चात्र महामुने। तुल्यं तद्दर्शनं कस्मात्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम॥१०॥

मुनिगण कहते हैं—हे महामुनि! यदि उनका व्रत, शौच, दया प्रभृति समान हैं, तब उनका दर्शन तुल्य कैसे नहीं है?॥१०॥

व्यास उवाच

रागं मोहं तथा स्नेहं कामं क्रोधं च केवलम्।
योगास्थिरोदितान्दोषान्पञ्चैतान्प्राप्नुवन्ति तान्॥११॥
यज्ञा वाऽनिमिषाः स्थूलं जालं छित्त्वा पुनर्जलम्।
प्राप्नुवन्ति तथा योगात्तत्पदं वीतकल्मषाः॥१२॥
तथैव वागुरां छित्त्वा बलवन्तो यथा मृगाः।
प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः॥१३॥
लोभजानि ततो विप्रा बन्धनानि बलान्वितः।
छित्त्वा योगात्परं मार्गं गच्छन्ति विमलं शुभम्॥१४॥
अचलास्त्वाविला विप्रा वागुरासु तथाऽऽपरे। विनश्यन्ति न सन्देहस्तद्वद्योगबलावृते॥१५॥
बलहीनाश्च विप्रेन्द्रा यथा जालं गता द्विजाः।
बन्धं न गच्छन्त्यनघा योगास्ते तु सुदुर्लभाः॥१६॥
यथा च शकुनाः सूक्ष्मं प्राप्य जालमरिन्दमाः।
तत्राशक्ता विपद्यन्ते मुच्यन्ते तु बलान्विताः॥१७॥

व्यासदेव कहते हैं—राग, मोह, स्नेह, काम, क्रोध ये योग में बाधक हैं। ये सभी दोष हैं। योगपथ में अस्थिर चित्त वाले मनुष्य इन दोषों को प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार से मछलियां स्थूल जाल को भेद कर पुनः जल में प्रवेश करती हैं, बलवान् मृगगण जिस प्रकार से रस्सी काट कर भाग जाते हैं, मनुष्यगण भी उसी प्रकार सभी बन्धनों को त्याग कर विमल मुक्ति मार्ग प्राप्त करते हैं। योगबलहीन पापी मानव जलबद्ध दुर्बल मृग के समान नष्ट हो जाते हैं। जिस योग के सामर्थ्य के कारण व्यक्ति जालबद्ध पक्षी की तरह भव-बन्धन में नहीं पड़ता, वह योग अतीव दुर्लभ है। जैसे सूक्ष्म जाल में केवल दुर्बल पक्षी ही बद्ध होते हैं, तथापि बलवान् पक्षी जाल से छूट जाते हैं, उसी प्रकार योगबल सम्पन्न लोग मुक्त हो जाते हैं, तथापि जिनको ऐसा योगबल नहीं है, वे मुक्त ही नहीं हो पाते हैं। बलहीन ब्राह्मण जालबद्ध हो जाते हैं। तथापि जो निष्पाप योगी बद्ध ही नहीं होते॥११-१७॥

कर्मजैर्बन्धनैर्बद्धास्तद्वद्योगपरा द्विजाः। अबला न मुच्यन्ते च बलान्विताः॥१८॥

अल्पकश्च यथा विप्रा वह्निः शाम्यति दुर्बलः।
आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वद्योगबलः स्मृतः॥१९॥

स एव च तदा विप्रा वह्निर्जातबलः पुनः।
समीरणगतः कृत्स्नां दहेत्क्षिप्रं महीमिमाम्॥२०॥
तत्त्वज्ञानबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः।
अन्तकाल इवाऽऽदित्यः कृत्स्नं संशोषयेज्जगत्॥२१॥

हे ब्राह्मणगण! कर्मजनित बन्धनों से बद्ध बलहीन व्यक्ति मुक्त नहीं हो पाता। योगयुक्त बल से बली व्यक्ति को मुक्ति मिल जाती है। अल्प अग्नि पर जिस प्रकार काठ का ढेर रख दिया जाये, वह अग्नि बुझ जाती है, योगबल भी तद्रूप है। निर्बल योगी नष्ट हो जाता है, लेकिन यही अल्प अग्नि वायु की सहायता से धधक कर सम्पूर्ण धरती को जला सकता है, तद्रूप तत्वज्ञ, योगतेजयुक्त, महायोगबल से बलान्वित होकर योगी भी प्रलयसूर्यवत् समस्त जगत् को शुष्क कर सकता है।।१८-२१।।

दुर्बलश्च यथा विप्राः स्रोतसा ह्रियते नरः। बलहीनस्तथा योगी विषयैर्ह्रियते च सः॥२२॥
तदेव तु यथा स्रोतो विष्कम्भयति वारणः। तद्वद्योगबलं लब्ध्वा न भवेद्विषयैर्हतः॥२३॥

जिस प्रकार से दुर्बल मनुष्य जलस्रोत के प्रबल वेग में बह जाता है, उसी प्रकार दुर्बल योगी भी विषय प्रवाह में प्रवाहित हो जाता है। उस प्रबल जल धारा को एक महागज सहजता पूर्वक उत्तीर्ण कर लेता है, ऐसे ही योगबल से बलीयान योगी विषय प्रवाह को सहजता से उत्तीर्ण कर लेता है।।२२-२३।।

विशन्ति वा वशाद्वाऽथ योगाद्योगबलान्विताः।
प्रजापतीन्मनून्सर्वान्महाभूतानि चेश्वराः॥२४॥
न यमो नान्तकः क्रुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रमः।
विशन्ते तद्द्विजाः सर्वे योगस्यामिततेजसः॥२५॥

आत्मनां च सहस्राणि बहूनि द्विजसत्तमाः। योगं कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्॥२६॥
प्राप्नुयाद्विषयान्कश्चित्पुनश्चोग्रं तपश्चरेत्। संक्षिप्येच्च पुनर्विप्राः सूर्यस्तेजोगुणानिव॥२७॥
बलस्थस्य हि योगस्य बलार्थं मुनिसत्तमाः। विमोक्षप्रभवं विष्णुमुपपन्नमसंशयम्॥२८॥

बलानि योगप्रोक्तानि मयैतानि द्विजोत्तमाः।
निदर्शनार्थं सूक्ष्माणि वक्ष्यामि च पुनर्द्विजाः॥२९॥
आत्मनश्च समाधाने धारणां प्रति वा द्विजाः।
निदर्शनानि सूक्ष्माणि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः॥३०॥

योगबलान्वित अष्टैश्वर्यवान् मनुष्य योगमहिमा से प्रजापति, मनु तथा महाभूतों के स्थान में प्रवेश लाभ करते हैं। हे ब्राह्मणों! क्रोधित यम, अन्धक तथा भीमविक्रम मृत्यु भी अमित तेजस्वी योगी के शरीर में प्रविष्ट ही नहीं हो सकते। हे द्विजोत्तमगण! योगीगण योगप्रभाव द्वारा स्वयं को सहस्रधा विभक्त करके समग्र पृथिवी पर विचरण (एक साथ) कर सकते हैं। यदि योगी कभी विषयों से बद्ध हो जाये, तब वह उग्र तप करे। इससे वह सूर्यवत् तेजलाभ करेगा। योगबलयुक्त योगी अपनी शक्ति का क्षय करने हेतु मोक्ष के कारण विष्णु की दृढ़

रूप से शरण ग्रहण करे। हे द्विजोत्तमगण! आप लोगों को समझाने हेतु योगोक्त ऐश्वर्य से प्राप्त होने वाले स्थूल सामर्थ्य के सम्बन्ध में कहा। अब सूक्ष्म सामर्थ्य का वर्णन करता हूं। इससे आत्मा की समाधि तथा धारणा की प्राप्ति होती है। हे मुनिप्रवरगण! मैं आप लोगों के समाधानार्थ उसका वर्णन करता हूं। श्रवण करिये।।२४-३०।।

अप्रमत्तो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः।
युक्तः सम्यक्तथा योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्।।३१।।
स्नेहपात्रे यथा पूर्णे मन आधाय निश्चलम्। पुरुषो युक्त आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः।।३२।।
मुक्तस्तथाऽयमात्मानं योगं तद्वत्सुनिश्चलम्। करोत्यमलमात्मानं भास्करोपमदर्शने।।३३।।

जिस प्रकार से सावधान धनुर्धारी एकाग्र होकर लक्ष्य भेद करता है, तदनुरूप योगयुक्त योगी भी मोक्षलाभ कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। जिस प्रकार से तेलपूर्ण पात्र लेकर सोपान पर आरोहण करने वाला व्यक्ति पूर्ण एकाग्रता पूर्वक आरोहण करता है, योगी भी उसी प्रकार सावधानी से क्रम पूर्वक योगमार्ग पर आगे अग्रसर होता है। वह क्रमशः निर्मल मन होकर सूर्यवत् अमल रूप स्वात्मा का दर्शनलाभ करता है।।३१-३३।।

यथा च नावं विप्रेन्द्रां कर्णधारः समाहितः। महार्णवगतां शीघ्रं नयेद्विप्रांस्तु पत्तनम्।।३४।।
तद्वदात्मसमाधानां युक्ते योगेन योगवित्।
दुर्गमं स्थानमाप्नोति हित्वा देहमिमं द्विजाः।।३५।।

हे विप्रेन्द्रगण! जिस प्रकार से सावधान नाविक महासमुद्र से शीघ्र बन्दरगाह पर ले जाता है, तदनुरूप योगी पुरुष आत्मलाभोपरान्त देहत्याग के अनन्तर दुर्गम (उच्च) स्थान का लाभ करते हैं।।३४-३५।।

सारथिश्च यथ युक्तः सदश्वान्सुसमाहितः। देशमिष्टं नयत्याशु धन्विनं पुरुर्षभम्।।३६।।
तथैव च द्विजा योगी धारणासु समाहितः।
प्रोप्नोत्याशु परं स्थनं लक्ष्यमुक्त इवाऽऽशुगः।।३७।।
आविश्याऽऽत्मनि चाऽऽत्मानं योऽवतिष्ठति सोऽचलः।
पाशं बहत्वे मीनानां पदमाप्नोति सोऽजरम्।।३८।।
नाभ्यां शीर्षे च कुक्षौ च हृदि वक्षसि पार्श्वयोः।
दर्शने श्रवणे वाऽपि घ्राणे चामितविक्रमः।।३९।।
स्थानेष्वेतेषु यो योगी महाव्रतसमाहितः।
आत्मना सूक्ष्ममात्मानं युङ्क्ते सम्यग्द्विजोत्तमाः।।४०।।
सुशीघ्रमचलप्रख्यं कर्म दग्ध्वा शुभाशुभम्।
उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते।।४१।।

जिस प्रकार से सारथी अश्वों को हांककर रथारूढ़ धनुर्धर को अभीष्ट स्थान पर ले जाता है, योगी भी

धारणा का आश्रय लेकर अत्यल्प काल में परम स्थान पर जाते हैं, जैसे लक्ष्य पर छोड़ा गया बाण लक्ष्य पर पहुंच जाता है। मन द्वारा आत्मा को आविष्ट करके जो निश्चलभाव से स्थित रहते हैं, वे उसी प्रकार अजर पदलाभ करते हैं, जैसे जाल से छूट कर मछली पुनः जल में चली जाती है। हे ब्राह्मणगण! जो योगी नाभि, शीर्ष, कोख, हृदय, वक्ष, पार्श्व, चक्षु, कर्ण, नासिका पर मन द्वारा सूक्ष्म आत्मा को स्थापित करके अचलवत् समाधिस्थ हो जाते हैं, वे अति अल्प काल में उत्तम योग द्वारा अपने शुभाशुभ कर्मों को दग्ध करके स्वेच्छा पूर्वक मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।।३६-४१।।

मुनय ऊचुः

आहारान्कीदृशान्कृत्वा कानि जित्वा च सत्तम। योगी बलमवाप्नोति तद्भवान्वक्तुमर्हति॥४२॥

मुनिगण कहते हैं—हे सत्तम! योगी कैसा आहार करे? वह किस इन्द्रियवृत्तियों पर विजय पाकर योगबल प्राप्त करता है? आप कहिये।।४२।।

व्यास उवाच

कणानां भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भो द्विजाः।
स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात्॥४३॥
भुञ्जानो यावकं रूक्षं दीर्घकालं द्विजोत्तमाः।
एकाहारी विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात्॥४४॥
पक्षान्मासानृतूंश्चित्रान्सं चरंश्च गुहास्तथा।
अपः पीत्वा पयोमिश्रा योगी बलमवाप्नुयात्॥४५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विजगण! योगी व्यक्ति पिण्याक तथा चावल का महीन टुकड़ा खाये। स्निग्ध पदार्थों का वर्जन करे। उसे बललाभ होगा। वह दीर्घकाल तक मात्र नित्य एक बार रुक्ष यावक भक्षण करे। वह विशुद्धात्मा योगी योगबल लाभ करता है। दूध मिश्रित जल पीता हुआ पक्ष, मास, ऋतु तथा वर्ष पर्यन्त नाना गुफाओं में रहे। उसे बललाभ होगा।।४३-४५।।

अखण्डमपि वा मासं सततं मुनिसत्तमाः।
उपोष्य सम्यक्शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात्॥४६॥
कामं जित्वा तथा क्रोधं शीतोष्णं वर्षमेव च।
भयं शोकं तथा स्वापं पौरुषान्विषयांस्तथा॥४७॥
अरतिं दुर्जयां चैव घोरां दृष्ट्वा च भो द्विजाः।
स्पर्शं निद्रां तथा तन्द्रां दुर्जन्यां मुनिसत्तमाः॥४८॥

दीपयन्ति महात्मानं सूक्ष्ममात्मानमात्मना। वीतरागा महाप्राज्ञा ध्यानाध्ययनसम्पदा॥४९॥

हे मुनिप्रवरगण! सम्पूर्ण एक महीना तक उपवास करके शुद्धात्मा योगी योगबल साधन करे। काम, क्रोध, भय, शोक, गर्व, विषयानुराग, शीत-उष्णादि जनित क्लेशों को जय करे। घोर दुर्जय अशान्ति, निद्रा,

तन्द्रा का जय करे। संसार के प्रति अनुराग से रहित महाप्राज्ञ मनुष्य ध्यान-अध्ययन के बल से तब उस सूक्ष्म आत्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं।।४६-४९।।

दुर्गस्त्वेष मतः पन्था ब्राह्मणानां विपश्चिताम्।
यः कश्चिद्व्रजति क्षिप्रं क्षेमेण मुनिपुङ्गवाः॥५०॥
यथा कश्चिद्वनं घोरं बहुसर्पसरीसृपम्। श्वभ्रवत्तोयहीनं च दुर्गमं बहुकण्टकम्॥५१॥
अभक्तमटवीप्रायं दावदग्धमहीरुहम्। पन्थानं तस्कराकीर्णं क्षेमेणाभिपतेत्तथा॥५२॥
योगमार्गं समासाद्य यः कश्चिद्व्रजते द्विजः।
क्षेमेणोपरमेन्मार्गाद्बहुदोषोऽपि सम्मतः॥५३॥
आस्थेयं क्षुरधारासु निशितासु द्विजोत्तमाः।
धारणा सा तु योगस्य दुर्जेयमकृतात्मभिः॥५४॥

हे मुनिपुंगवगण! यह पथ अतीव दुर्गम है। परिणामदर्शी कोई-कोई ब्राह्मण कुशलता पूर्वक इस मार्ग को पार कर लेते हैं। जैसे अनेक सरीसृप आदि से भरा, अनेक गढ़ों वाला, जलहीन, नाना प्रकार के कांटों से युक्त, भोजन रहित, दावाग्नि से दग्ध वृक्षों से समाकीर्ण, घोर वनमध्यगत, चोरों से आक्रान्त दुर्गम पथ पर क्वचित कोई व्यक्ति ही कुशलता से जा पाता है। उसी प्रकार इस अनेक बाधा समाकुल योगमार्ग पर कभी-कभी कोई कुशलता से आगे बढ़ पाता है। यह योगमार्ग तीखी तलवार पर चलने के समान है। हे द्विजगण! योगमार्ग पर चलने वाले अत्यन्त कुशलता से इसे पार करें। ऐसी अनेक दुर्गमता से युक्त होने पर भी यह मार्ग अतीव कल्याणकारी भी है। ऐसे योग की धारणा भी कर सकना भी हीनात्मा के लिये कठिन है।।५०-५४।।

विषमा धारणा विप्रा यान्ति वै न शुभां गतिम्।
नेतृहीना यथा नावः पुरुषाणां तु वै द्विजाः॥५५॥
यस्तु तिष्ठति योगाधौ धारणासु यथाविधि।
मरणं जन्मदुःखित्वं सुखित्वं स विशिष्यते॥५६॥
नानाशास्त्रेषु नियतं नानामुनिनिषेवितम्। परं योगस्य पन्थानं निश्चितं तं द्विजातिषु॥५७॥
परं हि तद्ब्रह्ममयं मुनीन्द्रा, ब्रह्माणमीशं वरदं च विष्णुम्।
भवं च धर्मं च महानुभावं, यद्ब्रह्मपुत्रान्सुमहानुभावान्॥५८॥
तमश्च कष्टं सुमहद्रजश्च, सत्त्वं च शुद्धं प्रकृतिं परां च।
सिद्धिं च देवीं वरुणस्य पत्नीं, तेजश्च कृत्स्नं सुमहच्च धैर्यम्॥५९॥
ताराधिपं खे विमलं सुतारं, विश्वांश्च देवानुरगान्पितॄंश्च।
शैलांश्च कृत्स्नानुदधींश्च वाऽचलान्नदीश्च सर्वाः सनगांश्च नागान्॥६०॥
साध्यांस्तथा यक्षगणान्दिशश्च, गन्धर्वसिद्धान्पुरुषान्स्त्रियश्च।
परस्परं प्राप्य महान्महात्मा विशेत योगी नचिराद्विमुक्तः॥६१॥

कथा च या विप्रवराः प्रसक्ता, दैवे महावीर्यमतौ शुभेयम्।
योगान्स सर्वाननुभूय मर्त्या, नारायणं तं द्रुतमाप्नुवन्ति॥६२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे योगविधिनिरूपणं नाम एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३९॥

नाविकहीन नौका में व्यक्ति की जो हालत होती है, वैसे ही धारणा में विषमता आने पर वह व्यक्ति के लिये शुभ नहीं होती। जो धारणा का सहारा लेकर सविधि योगसाधना करते हैं, वे जन्म, मरणादि दुःखों से निवृत्त होकर सुखी हो जाते हैं। हे मुनिगण! यह नाना शास्त्रोक्त, नाना मुनि सेवित परम योगपथ द्विजों हेतु निरूपित है। इस योगविधि का अवलम्बन लेकर महात्मा योगी लोग क्रमशः ब्रह्ममय होकर ब्रह्मा, शिव, वरप्रद विष्णु, धर्म, महानुभाव ब्रह्मपुत्रगण, तम, कष्ट, रजः, सत्व, शुद्ध पराप्रकृति, सिद्धि, वरुण पत्नी, तेज, धैर्य, चन्द्र, सूर्य, विश्वेदेव, देवता, सर्प, पितृगण, पर्वत, समुद्र, नदी, नाग, साध्य, यक्ष, दिशा, गन्धर्व, सिद्धगण तथा स्त्रियों को परस्परतः प्राप्त करके (?) मुक्त हो जाते हैं। हे विप्रप्रवरगण! महावीर्यमय दैव से सम्बन्धित यह कथा अतीव शुभ है। इससे मानव इहलोक में समस्त योगों को आयत्त करके अल्प काल में नारायण की प्राप्ति करता है।।५५-६२।।

।।एकोनचत्वारिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सांख्यविधि का वर्णन

मुनय ऊचुः

सम्यक्क्रियेयं विप्रेन्द्र वर्णिता शिष्टसम्मता।
योगमार्गो यथान्यायं शिष्यायेह हितैषिणा॥१॥
सांख्ये त्विदानीं धर्मस्य विधिं प्रब्रूहि तत्त्वतः।
त्रिषु लोकेषु यज्ज्ञानं सर्वं तद्विदितं हि ते॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! शिष्यगण के हितार्थ आपने शिष्टजनसम्मत योगमार्ग का सम्यक् वर्णन किया है। अब सांख्य सम्मत विधि कहिये। त्रैलोक्य में जो कुछ ज्ञान है, वह सब आपको ज्ञात है। अतः कृपया सांख्य सम्मत धर्मविधि कहिये। त्रैलोक्य में जो कुछ ज्ञान है, सभी आप जानते हैं।।१-२।।

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वमाख्यानं विदितात्मनाम्।
विहितं यतिभिर्वृद्धैः कपिलादिभिरीश्वरैः॥३॥

यस्मिन्सुविभ्रमाः केचिद्दृश्यन्ते मुनिसत्तमाः।
गुणाश्च यस्मिन्बहवो दोषहानिश्च केवला॥४॥
ज्ञानेन परिसङ्ख्याय सदोषान्विषयान्द्विजाः। मानुषान्दुर्जयान्कृत्स्नान्पैशाचान्विषयांस्तथा॥५॥
विषयानौरगाञ्ज्ञात्वा गन्धर्वविषयांस्तथा।
पितॄणां विषयाञ्ज्ञात्वा तिर्यक्त्वं चरतां द्विजाः॥६॥
सुपर्णविषयाञ्ज्ञात्वा मरुतां विषयांस्तथा। महर्षिविषयांश्चैव राजर्षिविषयांस्तथा॥७॥
आसुरान्विषयाञ्ज्ञात्वा वैश्वदेवांस्तथैव च। देवर्षिविषयाञ्ज्ञात्वा योगानामपि वै परान्॥८॥
विषयांश्च प्रमाणस्य ब्रह्मणो विषयांस्तथा। आयुषश्च परं कालं लोकैर्विज्ञाय तत्त्वतः॥९॥
सुखस्य च परं कालं विज्ञाय मुनिसत्तमाः।
प्राप्तकाले च यद्दुःखं पततां विषयैषिणाम्॥१०॥
तिर्यक्त्वे पततां विप्रास्तथैव नरकेषु यत्।
स्वर्गस्य च गुणाञ्ज्ञात्वा दोषान्सर्वांश्च भो द्विजाः॥११॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिगण! कपिल आदि प्राचीन यतियों ने आत्मज्ञान तत्पर मनुष्यों हेतु जैसा विधान किया है, मैं वह सब कहता हूं। आप सुनें। हे मुनिसत्तमगण! आत्मज्ञान तत्पर मानव इस मार्ग में भ्रमित होते परिलक्षित होते हैं। जिसमें अनेक दोष की विद्यमानता तथा निर्दोषता भी इसमें परिलक्षित होती है। ज्ञान द्वारा ही यह निर्णीत होता है कि क्या दोष पूर्ण है तथा क्या निर्दोष है। अतः ज्ञान द्वारा यह विवेचित करके सदोष विषयों का त्याग करे। सांख्यज्ञान चाहने वाला व्यक्ति मनुष्य, पिशाच, सर्प, गन्धर्व, पितर, तिर्यक् प्राणी, पक्षी, मरुत्, महर्षि, राजर्षि, असुर, विद्याधर, देवर्षि, योगेश्वर ब्रह्मा—इन समस्त विषयों से अवगत हो जाये। वह लोकतत्व का अनुसन्धान करके आयु तथा सुख के परवर्ती कालतत्व को भी जाने। विषयासक्तिजनित दुःख, तिर्यक् प्रभृति हीन योनि में तथा नरक में जो क्लेश है, उसका सम्यक् निर्णय करे। हे ब्राह्मणगण! स्वर्ग के समस्त गुण-दोष को भी समझे।।३-११।।

वेदवादे च ये दोषा गुणा ये चापि वैदिकाः।
ज्ञानयोगे ये दोषा ज्ञानयोगे च ये गुणाः॥१२॥
सांख्यज्ञाने च ये दोषांस्तथैव च गुणा द्विजाः।
सत्त्वं दशगुणं ज्ञात्वा रजो नवगुणं तथा॥१३॥
तमश्चाष्टगुणं ज्ञात्वा बुद्धिं सप्तगुणां तथा।
षड्गुणं च नभो ज्ञात्वा तमश्च त्रिगुणं महत्॥१४॥
द्विगुणं च रजो ज्ञात्वा सत्त्वं चैकगुणं पुनः। मार्गं विज्ञाय तत्त्वेन प्रलयप्रेक्षणेन तु॥१५॥

वह योगी वेदवचन, वैदिक अनुष्ठान, ज्ञानयोग तथा सांख्यज्ञान के भी समस्त दोष गुण को जाने। हे द्विजगण! सत्व के दस, रजः के नौ, तमः के आठ, बुद्धि के सात, आकाश के छः, पुनः तम के तीन, पुनः

रज के दो, पुनः सत्व के एक गुणों को जाने। तदनन्तर वह योगी व्यक्ति प्रलय प्रेक्षण को भी तत्वतः जाने।।१२-१५।।

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नाः कारणैर्भावितात्मभिः।
प्राप्नुवन्ति शुभं मोक्षं सूक्ष्मा इव नभः परम्।।१६।।
रूपेण दृष्टिं संयुक्तां घ्राणं गन्धगुणेन च। शब्दग्राह्यं तथा श्रोत्रं जिह्वां रसगुणेन च।।१७।।
त्वचं स्पर्शं तथा शक्यं वायु चैव तदाश्रितम्।
मोहं तमसि संयुक्तं लोभं मोहेषु संश्रितम्।।१८।।
विष्णुं क्रान्ते बले शक्रं कोष्ठे सक्तं तथाऽनलम्।
अप्सु देवीं समायुक्तामापस्तेजसि संश्रिताः।।१९।।
तेजो वायौ तु संयुक्तं वायु नभसि चाऽऽश्रितम्।
नभो महति संयुक्तं तमो महसि संस्थितम्।।२०।।
रजः सत्त्वं तथा सक्तं सत्त्वं सक्तं तथाऽऽत्मनि।
सक्तमात्मानमीशे च देवे नारायणे तथा।।२१।।
देवं मोक्षे च संयुक्तं ततो मोक्षं च न क्वचित्।
ज्ञात्वा सत्त्वगुणं देहं वृत्तं षोडशभिर्गुणैः।।२२।।

ऐसे विशोधित चित्त वाला योगी ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न होकर परम ब्रह्म में विलीन हो जाता है, जैसे सूक्ष्म तत्व आकाश में लीन होते हैं। रूपदर्शन में दृष्टि का, गन्धगुण में नासिका का, शब्द में कर्ण का, रस में जिह्वा का, स्पर्श में त्वचा का सम्बन्ध होता है। तमोगुण में मोह, मोह में लोभ विद्यमान है। गमनागमन में विष्णु, बल में इन्द्र, जठर में अग्नि हैं। जल में देवी, तेज में जल, वायु में तेज, आकाश में वायु है। महत्तत्व में आकाश प्रतिष्ठापित है। तमोगुणात्मक महत्तत्व रजोगुण में, रजः सत्व में, सत्व आकाश में तथा आत्मा ईश्वर नारायण में प्रतिष्ठित है। देव मोक्ष से संयुक्त हैं। मोक्ष कहीं भी आसक्त नहीं रहता। सत्वगुणमय देह षोडश गुण से समावृत है, इसे जाने।।१६-२२।।

स्वभावं भावनां चैव ज्ञात्वा देहसमाश्रिताम्।
मध्यस्थमिव चाऽऽत्मानं पापं यस्मिन्न विद्यत।।२३।।
द्वितीयं कर्म वै ज्ञात्वा विप्रेन्द्रा विषयैषिणाम्।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च सर्वानात्मनि संश्रितान्।।२४।।
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञाय श्रुतिपूर्वकम्।
प्राणापानौ समानं च व्यानोदानौ च तत्त्वतः।।२५।।

देह में दो धर्म स्थित रहते हैं। यथा—स्वभाव एवं भावना। आत्मा मध्यस्थ है। वह कुछ भी नहीं करता। किसी में लिप्त नहीं होता। उसमें पाप का स्पर्श भी नहीं होता। विषयासक्त मनुष्यों में द्वितीय कर्म ही

समस्त इन्द्रियों तथा इन्द्रियार्थ (इन्द्रियों के विषयों) का आधार है। इस द्वितीय कर्म को जाने। वेदों में वर्णित मोक्ष अतीव दुर्लभ है। इसे जाने तथा प्राण-अपान-समान-व्यान-उदान पांच वायु को भी तत्वतः जानना आवश्यक है।।२३-२५।।

आद्यं चैवानिलं ज्ञात्वा प्रभवं चानिलं पुनः।
सप्तधा तांस्तथा शेषान्सप्तधा विधिवत्पुनः॥२६॥
प्रजापतीनृषींश्चैव सर्गांश्च सुबहून्वरान्। सप्तर्षींश्च बहूञ्ज्ञात्वा राजर्षींश्च परन्तपान्॥२७॥
सुरर्षीन्मरुतश्चान्यान्ब्रह्मर्षीन्सूर्यसन्निभान्। ऐश्वर्याच्च्यावितान्दृष्ट्वा कालेन महता द्विजाः॥२८॥
महतां भूतसङ्घानां श्रुत्वा नाशं च भो द्विजाः।
गतिं वाचां शुभां ज्ञात्वा अर्चार्हाः पापकर्मणाम्॥२९॥
वैतरण्यां च यद्दुःखं पतितानां यमक्षये। योनिषु च विचित्रासु सञ्चारानशुभांस्तथा॥३०॥

तत्पश्चात् सृष्टिवायु (आद्यवायु) तथा लयवायु (कारण वायु) को मिला कर सात वायु होते हैं। ये प्रत्येक सप्तभाग में विभक्त होने के कारण उनचास वायु हो जाते हैं। इनको भी सविधि जाने। प्रजापति तथा ऋषि अनेक हैं। इनको जाने तथा सर्ग (सृष्टि), राजर्षि, सप्तर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, मरुत् भी अनेक हैं। उनको जान कर सूर्यवत् लोगों को तथा ऐश्वर्य से च्युत हो गये लोगों को भी जाने। हे द्विजगण! अनेक भूतसंघ काल प्रवाह में विनष्ट हो गये। इनके नाश से अवगत होकर पापकर्म जनित गतियों तथा शुभ वाणी को भी जाने। वैतरणी में गिरे पतितों को महादुःख उठाना पड़ता है। यममार्ग गमन काल में पापीगण जिस दुःखभार से पीड़ित होते हैं, वह जाने। नाना योनि में संचार तथा (नाना अशुभ योनियों में प्राणी जन्म लेता है) जो उनमें भ्रमण जनित क्लेश होता है, वह भी जाने।।२६-३०।।

जठरे चाशुभे वासं शोणितोदकभाजने। श्लेष्ममूत्रपुरीषे च तीव्रगन्धसमन्विते॥३१॥
शुक्रशौणितसङ्घाते मज्जास्नायुपरिग्रहे। शिराशतसमाकीर्णे नवद्वारे पुरेऽथ वै॥३२॥

वह प्राणी श्लेष्मा, मूत्र, रक्त, कफ, मल, तीव्र गन्धयुक्त वीर्य से लिप्त गर्भ में निवास करता है। मज्जा-स्नायु से युक्त शताधिक शिराओं से समाकीर्ण नवद्वार युक्त मातृगर्भरूपी अशुभ उदर में वह निवास करता है। योगी यह भी शरीर का हेयत्व जाने।।३१-३२।।

विज्ञाय हितमात्मानं योगांश्च विविधान्द्विजाः।
तामसानां च जन्तूनां रमणीयानृतात्मनाम्॥३३॥
सात्त्विकानां च जन्तूनां कुत्सितं मुनिसत्तमाः।
गर्हितं महतामर्थे साङ्ख्यानां विदितात्मनाम्॥३४॥
उपप्लवांस्तथा घोराञ्शशिनस्तेजसस्तथा। ताराणां पतनं दृष्ट्वा नक्षत्राणां च पर्ययम्॥३५॥
द्वन्द्वानां विप्रयोगं च विज्ञाय कृपणं द्विजाः।
अन्योन्यभक्षणं दृष्ट्वा भूतानामपि चाशुभम्॥३६॥

बाल्ये मोहं च विज्ञाय पक्षदेहस्य चाशुभम्।
रागं मोहं च सम्प्राप्तं क्वचित्सत्त्वं समाश्रितम्॥३७॥

योगीगण अपना हित, यह योग एवं नाना योग, रमणीय, कुत्सित एवं हीनात्मा, तामस जीवों के परिणाम, सात्विक प्राणीगण का परिणाम जाने। हे मुनिसत्तमगण! वह योगी ऐसे विदितात्मा सांख्यवेत्ताओं की सुगति को जाने। वह योगी घोर उपद्रव, शशि का तेज, ताराओं का गिरना, नक्षत्रों का विपर्यय, सुख-दुःख रूपी द्वन्द्व, कृपण, अशुभ अन्न भक्षण, बाल्यकाल के मोह, देह का अशुभ कल्याण न होना तथा प्राणीगण को प्राप्त होने वाले राग-मोह का भी ज्ञान करे।।३३-३७।।

सहस्त्रेषु नरः कश्चिन्मोक्षबुद्धिं समाश्रितः।
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञानं श्रुतिपूर्वकम्॥३८॥
बहुमानमलब्धेषु लब्धे मध्यस्थतां पुनः।
विषयाणां च दौरात्म्यं विज्ञाय च पुनर्द्विजाः॥३९॥

हजारों में से किसी एक मनुष्य में कोई-कोई ही मोक्षविषयक बुद्धि का आश्रय लेता है। मोक्ष अतीव दुर्लभ स्थिति है। इसे तथा श्रुति पूर्वक विज्ञान को भी जाने। लब्ध विषय के प्रति अनुरागराहित्य को तथा अलब्ध विषय के प्रति जो तीव्र अनुराग उसे पाने के लिये होता है, वह जाने। (अर्थात् जो प्राप्त हो गया है, उसे पाने की इच्छा नहीं होती।) जो अप्राप्त है, मानव उसे ही पाने के लिये व्याकुलित रहता है। हे द्विजगण! विषयों के दौरात्म्य को उनके परिणाम की विरसता को जाने (विषयों का परिणाम पतन होता है, यह जाने)।।३८-३९।।

गतासूनां च सत्त्वानां देहान्भित्त्वा तथा शुभान्।
वासं कुलेषु जन्तूनां मरणाय धृतात्मनाम्॥४०॥
सात्त्विकानां च जन्तूनां दुःखं विज्ञाय भो द्विजाः।
ब्रह्मघ्नानां गतिं ज्ञात्वा पतितानां सुदारुणाम्॥४१॥
सुरापाने च सक्तानां ब्राह्मणानां दुरात्मनाम्।
गुरुदारप्रसक्तानां गतिं विज्ञाय चाशुभाम्॥४२॥
जननीषु च वर्तन्ते येन सम्यग्द्विजोत्तमाः। सदेवकेषु लोकेषु येन वर्तन्ति मानवाः॥४३॥
तेन ज्ञानेन विज्ञाय गतिं चाशुभकर्मणाम्।
तिर्यग्योनिगतानां च विज्ञाय च गतीः पृथक्॥४४॥
वेदवादांस्तथा चित्रानृतूनां पर्ययांस्तथा। क्षयं संवत्सराणां च मासानां च क्षयं तथा॥४५॥
पक्षक्षयं तथा दृष्ट्वा दिवसानां च संक्षयम्।
क्षयं वृद्धिं च चन्द्रस्य दृष्ट्वा प्रत्यक्षतस्तथा॥४६॥
वृद्धिं दृष्ट्वा समुद्राणां क्षयं तेषां तथा पुनः।
क्षयं धनानां दृष्ट्वा च पुनर्वृद्धिं तथैव च॥४७॥

संयोगानां तथा दृष्ट्वा युगानां च विशेषतः।
देहवैक्लव्यतां चैव सम्यग्विज्ञाय तत्त्वतः॥४८॥
आत्मदोषांश्च विज्ञाय सर्वानात्मनि संस्थितान्।
स्वदेहादुत्थितान्गन्धांस्तथा विज्ञाय चाशुभाम्॥४९॥

मृत व्यक्ति को होने वाले जन्मान्तर ग्रहण करने के कष्ट को, मरणभय रहित सात्विक लोगों की गति को, ब्रह्मघाती लोगों की दुर्गति को, पतित, सुरापायी, परदारागामी, माता के प्रति दुर्व्यवहार करने वाले, देवार्चन से जीविका चलाने वाले, तिर्यक् तथा कुयोनि प्राप्त प्राणियों के कष्ट को, वेदवाक्य तथा ऋतुविपर्यय को, संवत्सर क्षय को, मास के अपचय को, पक्षों के परिवर्तन को, दिन के विकास को, चन्द्र की क्षय-वृद्धि को, समुद्र की ह्रास-वृद्धि को, धन के संग्रह तथा क्षय को, युगों के विविध संयोग-वियोग को, दैहिक वैकल्य को, (विकलता को), अपने नाना दोष को, शरीर से उत्पन्न अशुभ गन्धों को भी जाने।।४०-४९।।

मुनय ऊचुः

कानुत्पातभवान्दोषान्पश्यति ब्रह्मवित्तम। एतं नः संशयं कृत्स्नं वक्तुमर्हस्यशेषतः॥५०॥

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मज्ञ! आपने देह के किन-किन विघ्नसमूह का अवलोकन किया है? हमें इस सम्बन्ध में सन्देह है। उसका उच्छेद करिये।।५०।।

व्यास उवाच

पञ्च दोषान्द्विजा देहे प्रवदन्ति मनीषिणः।
मार्गज्ञाः कापिलाः साङ्ख्याः शृणुध्वं मुनिसत्तमाः॥५१॥
कामक्रोधौ भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते। एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम्॥५२॥
छिन्दन्ति क्षमया क्रोधं कामं सङ्कल्पवर्जनात्। सत्त्वसंसेवान्निद्रामप्रमादाद्भयं तथा॥५३॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! कपिल के मतानुसार चलने वाले सांख्यशास्त्रज्ञ शरीरस्थ पांच दोषों का उल्लेख करते हैं। ये दोष प्राणीमात्र के शरीर में व्यक्त हैं। ये हैं काम, क्रोध, भय, निद्रा तथा श्वास। क्षमा से क्रोध को, संकल्पहीनता द्वारा काम को, सत्वसेवा से निद्रा को, सावधानी (अप्रमाद) से भय को उच्छिन्न करे।।५१-५३।।

छिन्दन्ति पञ्चमं श्वासमल्पाहारतया द्विजाः। गुणान्गुणशतैर्ज्ञात्वा दोषान्दोषशतैरपि॥५४॥
हेतून्हेतुशतैश्चित्रैश्चित्रान्विज्ञाय तत्त्वतः।
अपां फेनोपमं लोकं विष्णोर्मायाशतैः कृतम्॥५५॥
चित्रभित्तिप्रतीकाशं नलसारमनर्थकम्। तमःसम्भ्रमितं दृष्ट्वा वर्षबुद्बुदसन्निभम्॥५६॥
नाशप्रायं सुखाधानं नाशोत्तरमहाभयम्। रजस्तमसि सम्मग्नं पङ्के द्विपमिवावशम्॥५७॥
सांख्या विप्रा महाप्राज्ञास्त्यक्त्वा स्नेहं प्रजाकृतम्।
ज्ञानज्ञेयेन सांख्येन व्यापिना महता द्विजाः॥५८॥

राजसानशुभानान्धांस्तमसांश्च तथाविधान्।
पुण्यांश्च सात्त्विकानान्धास्पर्शजान्देहसंश्रितान्॥५९॥
छित्त्वाऽऽत्मज्ञानशस्त्रेण तपोदण्डेन सत्तमाः।
ततो दुःखादिकं घोरं चिन्ताशोकमहाह्रदम्॥६०॥
व्याधिमृत्युमहाघोरं महाभयमहोरगम्। ततःकूर्मं रजोमीनं प्रज्ञया सन्तरन्त्युत॥६१॥

हे ब्राह्मणवृन्द! अल्पाहार से श्वास जय करना चाहिये। सैकड़ों गुण द्वारा गुणों को जाने। सैकड़ों दोषों को देख कर दोषों को जाने। सैकड़ों हेतु (कारणों) को देखकर कारणों को यथायथ रूप से जाने। सांख्य योगीगण विष्णुमाया से रचित जल के बुलबुले के समान क्षणिक, इन्द्रजाल जैसे अलीक, निःसार इस संसार को वर्षा के जल बुद्बुद्वत् विनष्टप्रायः, महादुःखप्रद तथापि सुखवत् प्रतीत होने वाले, कीचड़ में फंसे हाथी की तरह रजः, तमः रूपी पंक में निमग्न जाने। वह योगी ज्ञातव्य सांख्यबल से पुत्र-परिजनगण का स्नेह त्यागे। वह आत्मज्ञान से तथा तपः रूपी दण्ड से देहस्थ राजस, तामस, सात्विक त्रिविध स्पर्शादि धर्म (पसीना) को तथा सत्व पुण्य को दूरीभूत कर दे। तत्पश्चात् वह दुःख रूपी जल से भरे, चिन्ता शोकात्मक महाह्रद को उत्तीर्ण करे। वह व्याधि एवं मृत्यु से अतीव भयानक है। वहां महाभयरूपी सर्प बैठा है। वहां तमोगुणरूपी कूर्म तथा रजोरूपी मछली हैं। इसे ज्ञान (प्रज्ञा) से पार करे।।५४-६१।।

स्नेहपङ्कं जरादुर्गं स्पर्शद्वीपं द्विजोत्तमाः। कर्मागाधं सत्यतीरं स्थितं व्रतमनीषिणः॥६२॥
हर्षसङ्घमहावेगं नानारससमाकुलम्। नानाप्रीतिमहारत्नं दुःखज्वरसमीरितम्॥६३॥
शोकतृष्णामहावर्तं तीक्ष्णव्याधिमहारुजम्। अस्थिसङ्घातसङ्घट्टं श्लेष्मयोगं द्विजोत्तमाः॥६४॥

इस ह्रद में यहां स्नेह ही कीचड़ है, जरा दुर्ग है। स्पर्श द्वीप है, कर्म ही गहराई है। सत्य तट है। हर्ष इसके जल का महावेग है। यह नाना रसों से कल्लोलमय है। यह प्रीतिरूपी महारत्नमय, दुःखज्वर रूपी वायु से, शोक एवं तृष्णारूपी महा आवर्त्त से, तीव्र व्याधिरूपी तटभंग से (महारोग से), अस्थि संघट्ट से युक्त है। हे द्विजोत्तमगण! यह कफ से पूर्ण है (श्लेष्मा ही इस ह्रद के जल का फेन है)।।६२-६४।।

दानमुक्ताकरं घोरं शोणितोद्गारविद्रुमम्। हसितोत्क्रुष्टनिर्घोषं नानाज्ञानसुदुष्करम्॥६५॥
रोदनाश्रुमलक्षारं सङ्गयोगपरायणम्। प्रलब्ध्वा जन्मलोको यं पुत्रबान्धवपत्तनम्॥६६॥
अहिंसासत्यमर्यादं प्राणयोगमयोर्मिलम्। वृन्दानुगामिनं क्षीरं सर्वभूतपयोदधिम्॥६७॥
मोक्षदुर्लभविषयं वाडवासुखसागरम्। तरन्ति यतयः सिद्धा ज्ञानयोगेन चानघाः॥६८॥

दान ही मुक्ताकर है (मुक्ता का आकर, खान है)। शोणित का भयंकर उद्‌गार ही मूंगा है। यहां हास्य ही इस ह्रद का कलरव है। विविध अज्ञान के कारण यह ह्रद पार करने योग्य नहीं है। यह रुदन के अश्रुओं से उत्पन्न मल एवं क्षार से भरा है। यह संग-योग परायण है। पुत्र तथा बन्धुरूप पत्तन से युक्त है। यह अहिंसा एवं सत्यरूप सीमा वाला, प्राणस्पन्दनरूपी लहरों वाला है। अनेक लोगों का आनुगत्य ही इसका क्षार है। प्राणीगण इस समुद्र के दुग्ध अथवा जल के सागर हैं। यह मोक्षरूपी दुर्लभ पदार्थ वाला सुखरूपी बड़वानल समन्वित संसार-सागर है। इसे सिद्ध निष्पाप योगीगण ज्ञानयोग से पार करते हैं।।६५-६८।।

तीर्त्वा च दुस्तरं जन्म विशन्ति विमलं नभः।
ततस्तान्सुकृतीञ्ज्ञात्वा सूर्यो वहति रश्मिभिः॥६९॥
पद्मतन्तुवदाविश्य प्रवहन्विषयान्द्विजाः। तत्र तान्प्रवहो वायुः प्रतिगृह्णाति चानघाः॥७०॥

वे इस दुस्तर जन्म-मरणात्मक सागर को पार करके निर्मल नभ में प्रविष्ट होते हैं। उनको सुकृति जान कर सूर्य कमलतन्तु ऐसी अपनी रश्मियों से आविष्ट करते हैं, ऊर्ध्वोत्थित करते हैं। उस समय प्रवह नामक मरुत् उस कमल तन्तु में प्रविष्ट होकर उनको उनका आहार प्रदान करते हैं।।६९-७०।।

वीतरागान्यतीन्सिद्धान्वीर्ययुक्तांस्तपोधनान् ।
सूक्ष्मः शीतः सुगन्धश्च सुखस्पर्शश्च भो द्विजाः॥७१॥
सप्तानां मरुतां श्रेष्ठो लोकान्गच्छति यः शुभान्।
स तान्वहति विप्रेन्द्रा नभसः परमां गतिम्॥७२॥
नभो वहति लोकेशान्रजसः परमां गतिम्।
रजो वहति विप्रेन्द्राः सत्त्वस्य परमां गतिम्॥७३॥
सत्त्वं वहति शुद्धात्मा परं नारायणं प्रभुम्। प्रभुर्वहति शुद्धात्मा परमात्मानमात्मना॥७४॥
परमात्मानमासाद्य तद्भूता यतयोऽमलाः।
अमृतत्वाय कल्पन्ते न निवर्तन्ति च द्विजाः॥७५॥
परमा सा गतिर्विप्रा निर्द्वन्द्वानां महात्मनाम्। सत्यार्जवरतानां वै सर्वभूतदयावताम्॥७६॥

हे विप्रगण! वे वीतराग यदि सिद्ध तथा शक्ति सम्पन्न तपोधनगण वहां शीतमय सुगन्ध वायु का सुखस्पर्श लाभ करते हैं। हे विप्रेन्द्रगण! वह प्रवह वायु उनको निष्पाप यति जानकर तमोमण्डल तक ले जाता है। तदनन्तर तमः रजोगुण तक तथा रजोगुण उनको सत्वगुण पर्यन्त उन्नीत कर देता है। सत्वगुण उन यतिगण को प्रभु नारायण पर्यन्त ले जाता है। वे शुद्धात्मा प्रभु नारायण उसे परमात्मा तक ले जाते हैं। हे ब्राह्मणगण! वे यतिगण परमात्मा में एकीभूत होकर अमृतत्व लाभ करते हैं। उनको पुनः संसार में वापस नहीं आना पड़ता। हे ब्राह्मणगण! निर्द्वन्द्व सत्य तथा ऋजुता रत, सर्वभूत समूह के प्रति दयावान् महात्मागण की यह परमगति है।।७१-७६।।

मुनय ऊचुः

स्थानमुत्तममासाद्य भगवन्तं स्थिरव्रताः। आजन्ममरणं वा ते रमन्ते तत्र वा न वा॥७७॥
यदत्र तथ्यं तत्त्वं नो यथावद्वक्तुमर्हसि। त्वदृते मानवं नान्यं प्रष्टुमर्हाम सत्तम॥७८॥
मोक्षदोषो महानेष प्राप्य सिद्धिं गतानृषीन्। यदि तत्रैव विज्ञाने वर्तन्ते यतयः परे॥७९॥
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं पश्याम परमं द्विज। मग्नस्य हि परे ज्ञाने किन्तु दुःखान्तरं भवेत्॥८०॥

मुनिगण कहते हैं—हे व्यास! हे सत्तम! वे स्थिरव्रत महात्मागण परमात्मा में प्रलीन होकर क्या चिरकाल तक इसी भाव में विराजित रहते हैं? इस अवस्था में क्या वे आनन्दानुभूति करते रहते हैं? इस

सम्बन्ध में जो वास्तविक तत्व है, कृपया कहिये। आपके अतिरिक्त इस प्रश्न का समाधान करने वाला कोई दूसरा नहीं है। महामोक्ष प्राप्त सिद्धगण वहां भी पृथक्तः विज्ञान में रत रहते हैं, तब तो यह मोक्षदोष है। इसमें सुख क्या? यह तो साक्षात् प्रवृत्तिलक्षणात्मक धर्म है। यह परम ज्ञान तत्पर के लिये एक अन्य श्रेणी का दुःख ही तो है।।७७-८०।।

व्यास उवाच

यथान्यायं मुनिश्रेष्ठाः प्रश्नः पृष्टश्च सङ्कटः।
बुधानामपि सम्मोहः प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः॥८१॥
अत्रापि तत्त्वं परमं शृणुध्वं वचनं मम। बुद्धिश्च परमा यत्र कपिलानां महात्मनाम्॥८२॥
इन्द्रियाण्यपि बुध्यन्ते स्वदेहं देहिनां द्विजाः।
करणान्यात्मनास्तानि सूक्ष्मं पश्यन्ति तैस्तु सः॥८३॥
आत्मना विप्रहीणानि काष्ठकुड्यसमानि तु।
विनश्यन्ति न सन्देहो वेला इव महार्णवे॥८४॥

व्यासदेव कहते हैं—हे सत्तम मुनिप्रवरगण! आप लोगों का प्रश्न अत्यन्त दुरूह है। इस प्रकार के प्रश्न से तो विद्वान् भी विचलित हो जाते हैं। इस विषय में महात्मा कपिल के मत को मानने वाले लोगों द्वारा अनुमोदित तत्व का मैं वर्णन कर रहा हूं। हे ब्राह्मणों! देहस्थ इन्द्रियां भी बोधयुक्त होती हैं। वे स्वदेह को जानती हैं। मानवगण हेतु ये आत्मा का करण मात्र हैं। मानव इन्द्रियों द्वारा ही आत्मा के सूक्ष्म तत्वों को देखता है। जब आत्मा इन्द्रियों को त्याग देता है, तब ये ऐसे ही नष्ट होते हैं, जैसे काष्ठ पर अंकित चित्र उस काष्ठ के नष्ट होते ही स्वतः नष्ट हो जाते हैं। आत्मा से पृथक् होते ही इन्द्रिय समूह वैसे ही नष्ट होते हैं, जैसे समुद्र की तरंग नष्ट हो जाती है। यह निःसंदिग्ध है।।८१-८४।।

इन्द्रियैः सह सुप्तस्य देहिनो द्विजसत्तमाः। सूक्ष्मश्चरति सर्वत्र नभसीव समीरणः॥८५॥
स पश्यति यथान्यायं स्मृत्वा स्पृशति चानघाः।
बुध्यमानो यथापूर्वमखिलेनेह भो द्विजाः॥८६॥
इन्द्रियाणि ह सर्वाणि स्वे स्वे स्थाने यथाविधि।
अनीशत्वात्प्रलीयन्ते सर्पा विषहता इव॥८७॥
इन्द्रियाणां तु सर्वेषां स्वस्थानेष्वेव सर्वशः।
आक्रम्य गतयः सूक्ष्माव (श्च) रत्यात्मा न संशयः॥८८॥
सत्त्वस्य च गुणान्कृत्स्नानरजसश्च गुणान्पुनः।
गुणांश्च तमसः सर्वान्गुणान्बुद्धेश्च सत्तमाः॥८९॥
गुणांश्च मनसश्चापि नभसश्च गुणांस्तथा।
गुणान्वायोश्च सर्वज्ञाः स्नेहजांश्च गुणान्पुनः॥९०॥

अपां गुणास्तथा विप्राः पार्थिवांश्च गुणानपि।
सर्वानेव गुणैर्व्याप्य क्षेत्रज्ञेषु द्विजोत्तमाः॥९१॥
आत्मा चरति क्षेत्रज्ञः कर्मणा च शुभाशुभे।
शिष्या इव महात्मानमिन्द्रियाणि च तं द्विजाः॥९२॥

हे ब्रह्मणश्रेष्ठगण! जब प्राणी सुषुप्ति में रहता है, तब इन्द्रियां सुप्त हो जाती हैं, अर्थात् उस अवस्था में निद्रित व्यक्ति की इन्द्रियों के साथ आत्मा मिल कर आकाश में वायुवत् सूक्ष्मभावेन विचरता रहता है। वह तब भी यथावत् विषयों का स्मरण तथा दर्शन करता है। उस समय इन्द्रियां विषहीन सर्पवत् अस्वाधीन रूप से वहां अपने-अपने स्थान में विराजित रहती हैं। सूक्ष्म आत्मा उनको व्याप्त करके विचरता रहता है। सत्व, रजः, तमः, बुद्धि, मन, आकाश, वायु, तेजः, जल, पृथिवी के समस्त गुणों को व्याप्त करके शुभाशुभ कर्मानुरूप क्षेत्र में विचरता है। हे द्विजगण! जैसे शिष्य गुरु के अनुगामी होते हैं, तदनुरूप इन्द्रियां भी आत्मा का अनुसरण करती हैं।।८५-९२।।

प्रकृतिं चाप्यतिक्रम्य शुद्धं सूक्ष्मं परात्परम्। नारायणं महात्मानं निर्विकारं परात्परम्॥९३॥
विमुक्तं सर्वपापेभ्यः प्रविष्टं च ह्यनामयम्। परमात्मानमगुणं निर्वृत्तं तं च सत्तमाः॥९४॥
श्रेष्ठं तत्र मनो विप्रा इन्द्रियाणि च भोः द्विजाः।
आगच्छन्ति यथाकालं गुरोः सन्देशकारिणः॥९५॥

वे प्रकृति का अतिक्रमण करके शुद्ध, सूक्ष्म, परात्पर, नारायण, महात्मा, निर्विकार, सर्वपाप विनिर्मुक्त, अनामय, निर्गुण शाश्वत परमात्मा में प्रविष्ट हो जाती है। जैसे गुरु की आज्ञा के पालक शिष्य यथासमय गुरु के पास आते हैं, तदनुरूप वे भी उपस्थित हो जाती हैं।।९३-९५।।

शक्यं वाऽल्पेन कालेन शान्तिं प्राप्तुं गुणांस्तथा।
एवमुक्तेन विप्रेन्द्राः साङ्ख्य योगेन मोक्षिणीम्॥९६॥
साङ्ख्या विप्रा महाप्राज्ञा गच्छन्ति परमां गतिम्।
ज्ञानेनानेन विप्रेन्द्रास्तुल्यं ज्ञानं न विद्यते॥९७॥
अत्र वः संशयो मा भूज्ज्ञानं साङ्ख्यं परं मतम्।
अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्वं ब्रह्म सनातनम्॥९८॥
अनादिमध्यनिधनं निर्द्वन्द्वं कर्तृ शाश्वतम्।
कूटस्थं चैव नित्यं च यद्वदन्ति शमात्मकाः॥९९॥
यतः सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः। एवं शंसन्ति शास्त्रेषु प्रवक्तारो महर्षयः॥१००॥
सर्वे विप्राश्च वेदाश्च तथा सामविदो जनाः। ब्रह्मण्यं परमं देवमनन्तं परमाच्युतम्॥१०१॥
प्रार्थयन्तश्च तं विप्रा वदन्ति गुणबुद्धयः।
सम्यगुक्तास्तथा योगाः साङ्ख्याश्चामितदर्शनाः॥१०२॥

अमूर्तिस्तस्य विप्रेन्द्राः साङ्ख्यं मूर्तिरिति श्रुतिः।
अभिज्ञानानि तस्याऽऽहुर्महान्ति मुनिसत्तमाः॥१०३॥
द्विविधानि हि भूतानि पृथिव्यां द्विजसत्तमाः।
अगम्यगम्यसंज्ञानि गम्यं तत्र विशिष्यते॥१०४॥

हे विप्रेन्द्रगण! मैंने मोक्षसाधक जिस सांख्ययोग का यहां उल्लेख तथा वर्णन किया है, उसकी सहायता से योगी अत्यल्प काल में गुणों का अतिक्रम करता है। उसे तब शान्ति प्राप्त होती है। महाप्राज्ञ सांख्य योगी परमगति लाभ करता है। हे विप्रेन्द्रगण! इस ज्ञान के बराबर अन्य ज्ञान नहीं है। इस विषय में आप लोग सन्देह न करें। सांख्यज्ञान सर्वोत्तम है। मैंने पूर्व में अक्षय ब्रह्म का वर्णन किया था। वे ही सनातन, स्थिर, सुख-दुःख से रहित, आदि-मध्य-अन्त रहित, शाश्वत, कूटस्थ, कर्त्ता हैं। शान्त ज्ञानी लोगों का यही कथन है। शास्त्रवक्ता महर्षिगण कहते हैं कि उनसे ही सृष्टि-स्थिति-संहारात्मक सभी कार्य प्रवृत्त होता है। इन अनन्त, अच्युत, परम ब्रह्मण्य देव से प्रार्थना करके समस्त वेद तथा सामवेदज्ञ विप्र, गुणविचार में आसक्त मन वाले कामना परायण योगी तथा अमित दर्शन सांख्यवेत्ताओं का कथन है कि मूर्त्तिहीन (निराकार) इन परमपुरुष की मूर्त्ति है सांख्यशास्त्र! ऐसी श्रुति भी है। इन भगवान् के अभिज्ञान के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि चराचर भूतसमूह द्विविध है। यथा—गम्य-अगम्य। इनमें से गम्य ही श्रेष्ठ है।।९६-१०४।।

ज्ञानं महद्वै महतश्च विप्रा, वेदेषु साङ्ख्येषु तथैव योगे।
यच्चापि दृष्टं विधिवत्पुराणे, साङ्ख्यागतं तन्निखिलं मुनीन्द्राः॥१०५॥
यच्चेतिहासेषु महत्सु दृष्टं, यथार्थशास्त्रेषु विशिष्टदृष्टम्।
ज्ञानं च लोके यदिहास्ति किञ्चित्साङ्ख्यागतं तच्च महामुनीन्द्राः॥१०६॥
समस्तदृष्टं परमं बलं च, ज्ञानं च मोक्षश्च यथावदुक्तम्।
तपांसि सूक्ष्माणि च यानि चैव, साङ्ख्ये यथावद्विहितानि विप्राः॥१०७॥
विपर्ययं तस्य हितं सदैव, गच्छन्ति साङ्ख्याः सततं सुखेन।
तांश्चापि सन्धार्य ततः कृतार्थाः, पतन्ति विप्रायतनेषु भूयः॥१०८॥
हित्वा च देहं प्रविशन्ति मोक्षं, दिवौकसश्चापि च योगसाङ्ख्याः।
अतोऽधिकं तेऽभिरता महार्हे, साङ्ख्ये द्विजा भो इह शिष्टजुष्टे॥१०९॥
तेषां तु तिर्यग्गमनं हि दृष्टं, नाधो गतिः पापकृतां निवासः।
न वा प्रधाना अपि ते द्विजातयो, ये ज्ञानमेतन्मुनयो न सक्ताः॥११०॥

हे ब्राह्मणवृन्द! वेद, सांख्य, योग, पुराण, इतिहास, अर्थशास्त्र तथा लौकिक जो भी ज्ञान है, उन सबके सारभूत उत्तम ज्ञान का उपदेश मैंने प्रदान किया है। यह परम बल अथच मोक्षसाधक है। हे विप्रगण! मानव सांख्यगत सूक्ष्म तप से नाना सुख, यहां तक कि देवत्व भी पा जाता है। तत्पश्चात् पुनः ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर यथायथ तत्व विनिश्चित करके देहत्यागोपरान्त मोक्षलाभ करता है। इसलिये सुधीजन इस शिष्ट सम्मत

परमोत्तम सांख्यशास्त्र में निरत रहते हैं। उनमें कभी भी तिर्यक् योनिजन्म अथवा अधोगति नहीं देखी जाती। कदापि उनका जन्म पातकी कुल में नहीं होता। जो द्विजगण इस सांख्ययोग का सहारा नहीं लेते, वे कभी प्रधान नहीं कहे जाते।।१०५-११०।।

सांख्यं विशालं परमं पुराणं, महार्णवं विमलमुदारकान्तम्।
कृत्स्नं हि सांख्या मुनयो महात्मानारायणे धारयताप्रमेयम्॥१११॥
एतन्मयोक्तं परमं हि तत्त्वं, नारायणाद्विश्वमिदं पुराणम्।
स सर्गकाले च करोति सर्गं, संहारकाले च हरेत भूयः॥११२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे सांख्यविधिनिरूपणं
नामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४०।।

हे द्विजों! यह पुरातन अति विशाल सांख्यशास्त्र उदारकान्ति विमल महासागर है। आप लोग इसका अनुशीलन करके नारायण की धारणा करें। मैंने आप लोगों से यह परमतत्व कहा है। नारायण से ही जगत् की उत्पत्ति है। नारायण सृष्टिकाल में सृजन तथा संहार काल में लय (संहार) करते हैं।।१११-११२।।

।।चत्वारिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठ-करालजनक संवाद के अन्तर्गत् क्षर-अक्षर निरूपण

मुनय ऊचुः

किं तदक्षरमित्युक्तं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः। किंस्वित्तत्क्षरमित्युक्तं यस्मादावर्तते पुनः॥१॥
अक्षराक्षरयोर्व्यक्तिं पृच्छामस्त्वां महामुने। उपलब्धुं मुनिश्रेष्ठ तत्त्वेन मुनिपुङ्गव॥२॥
त्वं हि ज्ञानविदां श्रेष्ठः प्रोच्यसे वेदपारगैः। ऋषिभिश्च महाभागैर्यतिभिश्च महात्मभिः॥३॥
तदेतच्छ्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सर्वं महामते। न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तोऽमृतमुत्तमम्॥४॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिप्रवर! जहां से पुनः वापस संसार में नहीं आना पड़ता, वह अक्षरपद किसे कहते हैं तथा जहां से पुनः संसार में आना पड़ता है, उस 'क्षर' संज्ञा द्वारा किसे निर्देशित किया गया है? हे महामुनिवर! हम क्षर तथा अक्षर का विवरण आपसे जानना चाहते हैं। हम इन दोनों के वास्तविक तत्व की उपलब्धि करने के इच्छुक हैं। वेदों के ज्ञाता ऋषिगण तथा महाभाग्यशाली महात्मा यतिगण का कथन है कि

आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। हे महामति! हम यह तत्व आपसे सुनने की कामना कर रहे हैं। आपके वचनामृत का पुनः-पुनः पान करके भी हमें तृप्ति नहीं हो रही है। जितना हम आपसे सुनते जाते हैं, उतनी ही और श्रवण करने की इच्छा जाग्रत होती जा रही है।।१-४।।

व्यास उवाच

अत्र वो वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्। वसिष्ठस्य च संवादं करालजलकस्य च।।५।।
वसिष्ठं श्रेष्ठमासीनमृषीणां भास्करद्युतिम्। पप्रच्छ जनको राजा ज्ञानं नैःश्रेयसं परम्।।६।।
परमात्मनि कुशलमध्यात्मगतिनिश्चयम्। मैत्रावरुणिमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः।।७।।
स्वच्छन्दं सुकृतं चैव मधुरं चाप्यनुल्बणम्। पप्रच्छर्षिवरं राजा करालजनकः पुरा।।८।।

व्यासदेव कहते हैं—मैं इस प्रसंग में वसिष्ठ तथा करालजनक का एक प्राचीन इतिहास कह रहा हूं। एक बार परमात्मनिष्ठ, सूर्य तुल्य कान्तिसम्पन्न, अध्यात्मगतिज्ञ ऋषि वसिष्ठ एकान्त में आसनासीन थे। राजा जनक ने उस समय हाथ जोड़कर उनका अभिवादन करने के पश्चात् उनसे निश्रेयस प्रदान करने वाले परम ज्ञान के सम्बन्ध में प्रश्न किया।।५-८।।

करालजनक उवाच

भगवञ्श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनम्। यस्मिन्न पुनरावृत्तिं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः।।९।।
यच्च तत्क्षरमित्युक्तं यत्रेदं क्षरते जगत्। यच्चाक्षरमिति प्रोक्तं शिवं क्षेममनामयम्।।१०।।

राजा करालजनक कहते हैं—हे भगवान्! जिसको पाकर मनीषी लोग संसार में पुनर्जन्म नहीं लेते, मैं उस सनातन परम ब्रह्म के विषय में सुनने की इच्छा करता हूं। जिसे क्षर नाम से अभिहित करते हैं, जिससे जगत् क्षरित होता है, जो अक्षर नाम से निरूपित होकर शिव, क्षेम, अनामय वस्तु है, वह मैं आपसे सुनना चाहता हूं।।९-१०।।

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां पृथिवीपाल क्षरतीदं यथा जगत्। यत्र क्षरति पूर्वेण यावत्कालेन चाप्यथ।।११।।
युगं द्वादशसहस्रं कल्पं विद्धि चतुर्युगम्। दशकल्पशतावर्तमहस्तद्ब्राह्ममुच्यते।।१२।।
रात्रिश्चैतावती राजन्यस्यान्ते प्रतिबुध्यते। सृजत्यनन्तकर्माणि महान्तं भूतमग्रजम्।।१३।।
मूर्तिमन्तममूर्तात्मा विश्वं शम्भुः स्वयम्भुवः। यत्रोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि मूलतो नृपसत्तम।।१४।।

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—हे भूपाल! यह जगत् जिस परिमित काल में क्षरित होता है, वह कह रहा हूं। यह जिस काल से उत्पन्न तथा नष्ट होता है, वह श्रवण करें। सत्य-त्रेता-द्वापर-कलियुग मिलाकर एक चतुर्युग होता है। ऐसे बारह हजार युग का एक कल्प कहा गया है (यहां यह विचारणीय है कि बारह हजार चतुर्युगों का एक कल्प कहा गया है अथवा बारह हजार युग मात्र का, विद्वान् निर्णय करेंगे)। ऐसा कल्प जब दस सौ बार बीत जाते हैं, तब वह ब्रह्मा का एक दिन है। इतने ही अर्थात् दस सौ कल्पों की ब्रह्मा की एक रात्रि भी होती है। इस रात्रि के अवसान होने पर ब्रह्मा जागकर अनन्त कर्मपरम्परा का तथा भूतादि महान् का सृजन करते

हैं। अमूर्त्तात्मा शम्भु इस मूर्तिमान विश्व का विस्तार कर देते हैं। हे राजन्! जैसे उनसे इस विश्व की मूलतः उत्पत्ति होती है, मैं वह कहता हूं।।११-१४।।

अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानं ज्योतिरव्ययम्।
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्॥१५॥
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति। हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतिः॥१६॥
महानिति च योगेषु विरिञ्चिरिति चाप्यथ।
साङ्ख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः॥१७॥
विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः।
धृतमेकात्मकं येन कृत्स्नं त्रैलोक्यमात्मना॥१८॥
तथैव बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति श्रुतः। एष वै विक्रियापन्नः सृजत्यात्मानमात्मना॥१९॥

जो अणिमा, लघिमा, प्राप्ति ईश्वत्व तथा अव्यय ज्योति हैं, जिनका हाथ-पैर सर्वदिक् प्रसारित है, जो सर्वतः श्रुतिमान रूपेण विराजमान होकर सर्वत्र व्याप्त हैं, वे ही हैं भगवान् हिरण्यगर्भ तथा यही हिरण्यगर्भ की बुद्धि कहे गये हैं। योग तथा सांख्य आदि शास्त्र में इनको ही महान् तथा विरिंचि आदि नाम से अनेक रूप से कहा तथा गाया गया है। ये विचित्र रूप विश्वात्मा ही एकाक्षर नाम से निरूपित किये गये हैं। ये विश्वात्मा इस समग्र त्रैलोक्य को आत्मा द्वारा धारण करते हैं। अपनी विश्वरूपता के कारण इनको विश्वरूप कहा गया है। जब ये विक्रियापन्न (विकार सम्पन्न) होकर स्थित होते हैं, तभी आत्मा द्वारा आत्मा का सृजन करते हैं।।१५-१९।।

प्रधानं तस्य संयोगादुत्पन्नं सुमहत्परम्। अहङ्कारं महातेजाः प्रजापतिनमस्कृतम्॥२०॥
अव्यक्ताद्व्यक्तिमापन्नं विद्यासर्गं वदन्ति तम्।
महान्तं चाप्यहङ्कारमविद्यासर्ग एव च॥२१॥
अचरश्च चरश्चैव समुत्पन्नौ कथैकतः। विद्याऽविद्येति विख्याते श्रुतिशास्त्रनुचिन्तकैः॥२२॥
भूतसर्गमहङ्कारात्तृत्तीयं विद्धि पार्थिव। अहङ्कारेषु नृपते चतुर्थं विद्धि वैकृतम्॥२३॥

इनके साथ जब प्रकृति का संयोग होता है तब अहंकारोत्पत्ति होती है। यह अहंकार प्रजापति द्वारा भी सम्मानित एवं नमस्कृत है। जो अव्यय से व्यक्त है, वही है **प्रथम सृष्टि विद्यासृष्टि**। महत् तथा अहंकार प्रभृति को **द्वितीय सृष्टि अविद्यासर्ग (अविद्यासृष्टि)** कहा गया है। समस्त चर तथा अचर एक ही कर्मतत्व से समुत्पन्न है। वेद तत्वद्रष्टा विबुध लोग इस प्रकार से विद्या एवं अविद्यामार्ग का निर्देश करते हैं। हे पार्थिव! भूतसर्ग ही अहंकार से **तृतीय सृष्टि** है। अहंकार से **चौथी वैकृत सृष्टि** ही चतुर्थ सृष्टि है।।२०-२३।।

वायुर्ज्योतिरथाऽऽकाशमापोऽथ पृथिवी तथा।
शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च॥२४॥
एवं युगदुत्पन्नं दशवर्गमसंशयम्। पञ्चमं विद्धि राजेन्द्र भौतिकं सर्गमर्थकृत्॥२५॥
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणमेव च पञ्चमम्।
वाग्हस्तौ चैव पादौ च पायुर्मेढ्रं तथैव च॥२६॥

बुद्धीन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च।
सम्भूतानीह युगपन्मनसा सह पार्थिव॥२७॥
एषा तत्त्वचतुर्विंशा सर्वाऽऽकृतिः प्रवर्तते।
यां ज्ञात्वा नाभिशोचन्ति ब्राह्मणस्तत्त्वदर्शिनः॥२८॥

एवमेतत्समुत्पन्नं त्रैलोक्यमिदमुत्तमम्। वेदितव्यं नरश्रेष्ठ सदैव नरकार्णवे॥२९॥
सयक्षभूतगन्धर्वे सकिन्नरमहोरगे। सचारणपिशाचे वै सदेवर्षिनिशाचरे॥३०॥
सदंशकीटमशके सपूतिकृमिमूषके। शुनि श्वपाके चैणेये सचाण्डाले सपुल्कसे॥३१॥
हस्त्यश्वखरशार्दूले सवृके गवि चैव ह। या च मूर्तिश्च यत्किञ्चित्सर्वत्रैतन्निदर्शनम्॥३२॥
जले भुवि तथाऽऽकाशे नान्यत्रेति विनिश्चयः। स्थानं देहवतामासीदित्येवमनुशुश्रुम्॥३३॥
कृत्स्नमेतावतस्तात क्षरते व्यक्तसंज्ञकः। अहन्यहनि भूतात्मा यच्चाक्षर इति स्मृतम्॥३४॥
ततस्तत्क्षरमित्युक्तं क्षरतीदं यथा जगत्। जगन्मोहात्मकं चाऽऽहुरव्यक्ताद्व्यक्तसंज्ञकम्॥३५॥

वायु, अग्नि, आकाश, जल, भूमि, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की सृष्टि युगपतरूपेण (एक साथ) मानी गई है। यही है **पञ्चम संख्यक भौतिक सृष्टि**। हे राजन्! तत्पश्चात् श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण नामक पञ्च ज्ञानेन्द्रियां तथा वाक्, हस्त, पाद, पायु तथा मेढ्र नामक पंच कर्मेन्द्रियां एक साथ युगपत् उत्पन्न हो गयीं। इस प्रकार चौबीस तत्व उत्पन्न हो गये। तत्वदर्शी ब्राह्मणगण यह जानकर कभी शोक तथा मोह से ग्रस्त नहीं होते। हे नरप्रवर! इस प्रकार उत्तम त्रैलोक्य को उत्पन्न जानिये। स्वर्ग, नरक, सागर, यक्ष, भूत, गन्धर्व, किन्नर, महासर्प, चारण, पिशाच, देवता, ऋषि, निशाचर, दंश, कीट, मशक, कृमि, मूषक, श्वान, चाण्डाल, कृष्णमृग, श्वपाक, पुक्कस, हाथी, अश्व, गर्दभ, शार्दूल, भेड़िया, गौ ये सब तथा अन्य जो जी हैं, वे त्रैलोक्य में रहते हैं। मैंने सुना है कि प्रलय में जल, भूतल, आकाश में अथवा अन्य कहीं भी देहीगण का कोई अस्तित्व ही नहीं था। जो नष्ट होता है, जिस लिये नष्ट होता है (जैसे जगत्) अतः वह क्षर है। जगत् मोहात्मक है। यह अव्यक्त से ही निकला होने के कारण व्यक्त कहा गया।।२४-३५।।

महांश्चैवाक्षरो नित्यमेतत्क्षरविवर्जनम्। कथितं ते महाराज यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः॥३६॥

(यह क्षर ही अव्यक्त से निकला है, तभी इसे मुग्ध कहा गया है। मोहात्मक है) जो अक्षर है, वह क्षर रहित नित्य तथा महान् है। इस अक्षर की जो प्राप्ति कर लेता है, वह पुनः संसार में वापस नहीं आता। हे महाराज! आपसे मैंने यह क्षर-अक्षरात्मक विवरण व्यक्त कर दिया।।३६।।

पञ्चविंशतिकोऽमूर्तः स नित्यस्तत्त्वसंज्ञकः। सत्त्वसंश्रयणात्तत्वं सत्त्वमाहुर्मनीषिणः॥३७॥
यदमूर्तिः सृजद्व्यक्तं तन्मूर्तिमधिष्ठिति। चतुर्विंशतिमो व्यक्तो ह्यमूर्तिः पञ्चविंशकः॥३८॥
स एव हृदि सर्वासु मूर्तिष्वातिष्ठताऽऽत्मवान्। चेतयंश्चेतनो नित्यं सर्वमूर्तिमान्॥३९॥
सर्गप्रलयधर्मेण स सर्गप्रलयात्मकः। गोचरे वर्तते नित्यं निर्गुणो गुणसंज्ञितः॥४०॥
एवमेष महात्मा च सर्गप्रलयकोटिशः। विकुर्वाणः प्रकृतिमान्नाभिमन्येत बुद्धिमान्॥४१॥

यह जो अक्षर है, वह पचीसवां तत्व है, जो नित्य अमूर्त्त वस्तु है। मनीषीगण ने सत्वसंश्रय होने के कारण इसे सत्व कहा है। यह तत्व मूर्त्ति रहित होकर भी स्वसृष्ट व्यक्त मूर्त्ति में विराजित रहता है। चौबीस तत्व तो व्यक्त हैं। यह पचीसवां तत्व सदा अव्यक्त रहता है। यह मूर्त्तिवर्जित है। यही आत्मवान् रूप से सभी मूर्त्तियों (आकार में) में सदा विद्यमान रहता है। अर्थात् निराकार द्वारा सृष्ट व्यक्त साकार रूप है। भूतसमूह के चेतन व्यापार में वही नित्य स्थित है। वह देव सर्वमूर्त्ति होकर भी अव्यक्त है। अमूर्त्त है। वही सृष्टिकाल में सृष्टिधर्मात्मक है। वही प्रलयकाल में प्रलयात्मक भी है। वह सभी के समक्ष नित्य विराजमान रहता है। वह (निर्गुण) गुणसंज्ञा से संज्ञित (सगुण) है। यही महात्मा प्रकृतिमान होकर करोड़ों सृष्टि तथा विस्तार भी करते हैं। ये उस सृष्टि आदि के अभिमानी नहीं होते।।३७-४१।।

तमःसत्त्वरजोयुक्तस्तासु तास्विह योनिषु। लीयते प्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात्।।४२।।
सहवासनिवासत्वाद्बालोऽहमिति मन्यते। योऽहं न सोऽहमित्युक्तो गुणानेवानुवर्तते।।४३।।
तमसा तामसान्भावान्विविधान्प्रतिपद्यते। रजसा राजसांश्चैव सात्त्विकान्सत्त्वसंश्रयात्।।४४।।

वे सत्व, रजः तथा तमोगुणान्वित निखिल जीवपरम्परा में प्रबोध रूप से अबुद्ध लोगों के संसर्ग में निवास करते हैं। उन-उन योनियों में सहवास गुण के कारण वे जीव स्वयं को कहते हैं "मैं बालक हूं। मैं सोऽहं नहीं हूं।" यह कहकर वे गुण का अनुवर्त्तन करते हैं। उस समय वे जीव तमोगुण के कारण तामस भावापन्न, रजोगुण के संश्रयण से रजःभावापन्न तथा सत्व के संचार के कारण सत्वभावापन्न अनुभव करता है।।४२-४४।।

शुक्ललोहितकृष्णानि रूपाण्येतानि त्रीणि तु।
सर्वाण्येतानि रूपाणि जानीहि प्राकृतानि तु।।४५।।
तामसा निरयं यान्ति राजसा मानुषानथ।
सात्त्विका देवलोकाय गच्छन्ति सुखभागिनः।।४६।।
निष्केवलेन पापेन तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्। पुण्यपापेषु मानुष्यं पुण्यमात्रेण देवताः।।४७।।
एवमव्यक्तविषयं मोक्षमाहुर्मनीषिणः। पञ्चविंशतिमो योऽयं ज्ञानादेव प्रवर्तते।।४८।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे क्षराक्षरविचारनिरूपणं नाम
एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४१।।

उसके गुणत्रय का यह रूप शुक्ल-लोहित तथा कृष्ण भेद के कारण त्रिविध है। उसके इन सभी रूपों को प्राकृत जाने। तामसिक लोग नरक जाते हैं। राजसिक भावापन्न लोग मनुष्य लोक में बारम्बार जन्म लेते हैं तथा सात्विकगण सुखलाभार्थ देवलोक जाते हैं। निरवच्छिन्न पापाचरण से तिर्यक् योनि मिलती है। पुण्य-पाप मिलित आचरण वाला मनुष्य होता है। केवल पुण्य संचय वाले देवत्व लाभ करते हैं। मनीषीगण अव्यक्त विषयों को ही मोक्ष कहते हैं। उल्लिखित पचीसवां तत्व ही मोक्षरूप है। वह ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होता है।।४५-४८।।

।।एकचत्वारिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठ-करालजनक के संवाद का वर्णन

वसिष्ठ उवाच

एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धमनुवर्तते। देहाद्देहसहस्राणि तथा च न स भिद्यते॥१॥
तिर्यग्योनिसहस्रेषु कदाचिद्देवतास्वपि। उत्पद्यति तपोयोगाद्गुणैः सह गुणक्षयात्॥२॥
मनुष्यत्वाद्दिवं याति देवो मानुष्यमेति च। मानुष्यान्निरयस्थानमालयं प्रतिपद्यते॥३॥
कोषकारो यथाऽऽत्मानं कीटः समभिरुन्धति।
सूत्रतन्तुगुणैर्नित्यं तथाऽयमगुणो गुणैः॥४॥
द्वन्द्वमेति च निर्द्वन्द्वस्तासु तास्विह योनिषु। शीर्षरोगेऽक्षिरोगे च दन्तशूले गलग्रहे॥५॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—जीव जब तक प्रतिबुद्ध (प्रबुद्ध) नहीं हो जाता, अज्ञानमूलक कर्म करता है, तब तक वह एक से अन्य देह में यातायात क्रमेण हजारों-हजार देह बदलता है, लेकिन गुणक्षोभ के कारण सैकड़ों-हजारों तिर्यक् जन्मों में ही वह उक्त अज्ञान से आच्छन्न बना रहता है। उस अज्ञान से वह रहित नहीं हो पाता, जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही सूत्र के (सूत के) कोष में (खोल में) बन्द होकर घिरा रहता है, तदनुरूप प्राणी मनुष्य से देवता, वहां से पुनः मनुष्य, वहां से नरकागमन इत्यादि रूप से गुणत्रय से घिरा रहता है। यद्यपि स्वरूपतः वह निर्द्वन्द्व है, तथापि वह (गुणत्रय के कारण) स्वयं को दुःखी-सुखी इत्यादि रूप से द्वन्द्वयुक्त मानता है। शिर पीड़ा, नेत्र रोग आदि से वह स्वयं को गुणों में ही फंसा लेता है। वह दन्तशूल, गलगण्ड रोग से पीड़ित होता रहता है।।१-५।।

जलोदरेऽतिसारे च गण्डमालाविचर्चिके।
श्वित्रकुष्ठेऽग्निदग्धे च सिध्मापस्मारयोरपि॥६॥
यानि चान्यानि द्वन्द्वानि प्राकृतानि शरीरिणाम्।
उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येवाऽऽत्माऽभिमन्यते॥७॥

जलोदर, अतिसार, गण्डमाला, विचर्चिका, श्वेत कुष्ठ, अग्निदाह, ताप, खुजलाहट, मिरगी तथा अन्य प्राकृत द्वन्द्व भी देह में होते हैं, लेकिन जीवात्मा उनको अपना मान लेता है। यह उसका अज्ञान है।।६-७।।

अभिमानातिमानानां तथैव सुकृतान्यपि। एकवासाश्चतुर्वासाः शायी नित्यमधस्तथा॥८॥
मण्डूकशायी च तथा वीरासनगतस्तथा। वीरमासनमाकाशे तथा शयनमेव च॥९॥

उस समय वह सुकृति-दुष्कृति रूपी कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त हो जाता है। वह सिद्धिकामना से कभी एक वस्त्र तो कभी चार वस्त्र धारण करता है। इस प्रकार से वह कभी भूमि पर सोता है, कभी मण्डूक ऐसा सोता है, कभी वीरासन पर बैठता है। कभी आकाश में वीरासन लगाकर शयन करता है (लगता है इसका तात्पर्य है कि ऊंचा मचान बनाकर शयन करता है)।।८-९।।

इष्टकाप्रस्तरे चैव चक्रकप्रस्तरे तथा। भस्मप्रस्तरशायी च भूमिशय्यानुलेपनः॥१०॥
वीरस्थानाम्बुपाके च शयनं फलकेषु च।
विविधासु च शय्यासु फलगृह्यन्वितासु च॥११॥
उद्याने खललग्ने तु क्षौमकृष्णाजिनान्वितः। मणिवालपरिधानो व्याघ्रचर्मपरिच्छदः॥१२॥
सिंहचर्मपरीधानः पट्टवासास्तथैव च।
फलकं (?) परिधानश्च तथा कटकवस्त्रधृक्॥१३॥
कटैकवसनश्चैव चरिवासास्तथैव च।
वस्त्राणि चान्यानि बहून्यभिमत्य च बुद्धिमान्॥१४॥
भोजनानि विचित्राणि रत्नानि विविधानि च। एकरात्रान्तराशित्वमेककालिकभोजनम्॥१५॥
चतुर्थाष्टमकालं च षष्ठकालिकमेव च। षड्रात्रभोजनश्चैव तथा चाष्टाहभोजनः॥१६॥

कभी वह ईंटों पर, कभी पाषाणों पर, कभी मण्डलाकृति पत्थर पर, कभी भस्मों पर सोता है। कभी वह भूमि को लीप कर उस पर शय्या जैसा शयन करता है। कभी वह वीरस्थल, जलस्रोतस्थ कीचड़ पर, फल-पत्र पर, फलक पर, खलिहान के उद्यान में, खेत में आदि नाना स्थल पर शायित होता है। कभी रेशमी वस्त्र, तो कभी मृगचर्म धारण करता है। कभी मणियों को तथा मयूरपुच्छ आदि पुच्छ बालों को धारण करता है। वह व्याघ्रचर्म, सिंहचर्म, स्वर्ण के तार के वस्त्र धारण करता है। ऐसे विविध वस्त्र कभी खण्डवस्त्रादि विविध वस्त्र पहनता है। नानाविध आहार ग्रहण करता है। नाना रत्नधारी रहता है। कभी एक रात्र छोड़कर, कभी दिन में एक बार, तो कभी दिन के चतुर्थ प्रहर में, कभी अष्टम अथवा षष्ठ प्रहर में भोजन करता है। कभी माह में छः रात्रि भोजन करता है अथवा माह में आठ दिन भोजन करता है।।१०-१६।।

मासोपवासी मूलाशी फलाहारस्तथैव च। वायुभक्षश्च पिण्याकदधिगोमयभोजनः॥१७॥
गोमूत्रभोजनश्चैव काशपुष्पाशनस्तथा। शैवालभोजनश्चैव तथा चान्येन वर्तयन्॥१८॥
वर्तयञ्शीर्णपर्णैश्च प्रकीर्णफलभोजनः।
विविधानि च कृच्छ्राणि सेवते सिद्धिकाङ्क्षया॥१९॥
चान्द्रायणानि विधिवल्लिङ्गानि विविधानि च।
चातुराश्रम्ययुक्तानि धर्माधर्माश्रयाण्यपि॥२०॥
उपाश्रयानप्यपरान्पाखण्डान्विविधानपि। विविक्ताश्च शिलाछायास्तथा प्रस्रवणानि च॥२१॥
पुलिनानि विविक्तानि विविधानि वनानि च।
काननेषु विविक्ताश्च शैलानां महतीर्गुहाः॥२२॥
नियमान्विविधांश्चापि विविधानि तपांसि च।
यज्ञांश्च विविधाकारान्विद्याश्च विविधास्तथा॥२३॥

कभी वह एक मास उपवास रखता है, कभी मात्र जड़ों को अथवा फलों को खा कर रहता है। कभी

वह वायुभक्षी रहता है, जो कभी मात्र तिल का काढ़ा खाकर, तो कभी गोमय, तो कभी दधि खा कर उपवासी रहता है। कभी मात्र गोमूत्र एवं कास के पुष्पों को खा कर निर्वाह करता है। कभी पेड़ से गिरे फल-पत्र खाकर दिन व्यतीत करता है। कभी चान्द्रायण आदि अनेक व्रत करता है। इस प्रकार वह सिद्धि हेतु विभिन्न व्रत करता रहता है। वह लिंगोपासना, आश्रम चतुष्टय (चारों आश्रम नियम पालन) धर्माधर्म साधन रूप अनेक कार्य करता है। विविध शिला, छाया, झरने, पुलिन, विविध वन, कानन पर्वत गुफा में आश्रय ग्रहण करता है। वह विविध नियम, तप, यज्ञ, विद्या तथा वाणिज्य का अनुष्ठान करता है।।१७-२३।।

वणिक्पथं द्विजक्षत्रवैश्यशूद्रांस्तथैव च। दानं च विविधाकारं दीनान्धकृपणादिषु॥२४॥

अभिमन्येत सन्धातुं तथैव विविधान्गुणान्।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव धर्मार्थौ काम एव च॥२५॥

वह वाणिज्य, विप्रत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रादि का भावग्रहण करता है। वह कभी दीन, दरिद्र, अन्ध तथा वधिरों को नाना दान देता है। आत्मा अपनी प्रकृति के वश में होकर धर्म-अर्थ, काम, सत्व, रजः, तम इत्यादि गुणों के विचित्र संयोगों के कारण इन अलग-अलग भाव से अपना विभाग कर लेता है (स्वयं को विभक्त कर लेता है)।।२४-२५।।

प्रकृत्याऽऽत्मानमेवाऽऽत्मा एवं प्रविभजत्युत। स्वाहाकारवषट्कारौ स्वधाकारनमस्क्रिये॥२६॥

यजनाध्ययने दानं तथैवाऽऽहुः प्रतिग्रहम्।
याजनाध्यापने चैव तथाऽन्यदपि किञ्चन॥२७॥

जन्ममृत्युविधानेन तथा विशसनेन च। शुभाशुभमयं सर्वमेतदाहुः सनातनम्॥२८॥

प्रकृतिः कुरुते देवी भयं प्रलयमेव च। दिवसान्ते गुणानेतानतीत्यैकोऽवतिष्ठते॥२९॥

रश्मिजालमिवाऽऽदित्यस्तत्कालं सन्नियच्छति। एवमेवैष तत्सर्वं क्रीडार्थमभिमन्यते॥३०॥

आत्मरूपगुणानेतान्विविधान्हृदयप्रियान्। एवमेतां प्रकुर्वाणः सर्गप्रलयधर्मिणीम्॥३१॥

क्रियां क्रियापथे रक्तस्त्रिगुणस्त्रिगुणाधिपः। क्रियाक्रियापथोपेतस्तथा तदिति मन्यते॥३२॥

तब स्वाहाकार, स्वधाकार, नमस्कार, यजन, अध्ययन, दान, प्रतिग्रह, याजन, अध्यापन, अन्य नाना कार्य (धार्मिक कृत्य), जन्म, मृत्यु, हत्या इत्यादि शुभाशुभमय क्रियापथ उद्धृत होते हैं। प्रकृति देवी ही भय एवं प्रलय करती हैं अर्थात् जैसे सूर्य दिन समाप्त होने पर अपनी रश्मियों का संकोच कर लेते हैं, प्रकृति देवी भी अपनी क्रीड़ा के कारण इन सबका (सृष्टि तथा) संहार कार्य करती हैं। सृष्टि-संहारकारिणी प्रकृति के रजः तमः गुणों द्वारा यह जगत् अंगीभूत है। सम्पूर्ण जगत् आत्मा का क्रीड़ांगन है। यह आत्मा कर्म मार्ग पर स्थित रहता है। तब यही त्रिगुणात्मक एवं त्रिगुण का अधिपति होकर कर्ममार्गात्मक क्रम सम्पादित करता रहता है।।२६-३२।।

प्रकृत्या सर्वमेवेदं जगदन्धीकृतं विभो। रजसा तमसा चैव व्याप्तं सर्वमनेकधा॥३३॥

एवं द्वन्द्वान्यतीतानि मम वर्तन्ति नित्यशः।
मत्त एतानि जायन्ते प्रलये यान्ति मामपि॥३४॥

निस्तर्तव्याण्यथैतानि सर्वाणीति नराधिप।
मन्यते पक्षबुद्धित्वात्तथैव सुकृतान्यपि॥३५॥
भोक्तव्यानि ममैतानि देवलोकगतेन वै। इहैव चैनं भोक्ष्यामि शुभाशुभफलोदयम्॥३६॥
सुखमेवं तु कर्तव्यं सकृत्कृत्वा सुखं मम।
यावदेव तु मे सौख्यं जात्यां जात्यां भविष्यति॥३७॥
भविष्यति न मे दुःखं कृतेनेहाप्यनन्तकम्।
सुखदुःखं हि मानुष्यं निरये चापि मज्जनम्॥३८॥
निरयाच्चापि मानुष्यं कालेनैष्याम्यहं पुनः।
मनुष्यत्वाच्च देवत्वं देवत्वात्पौरुषं पुनः॥३९॥
मनुष्यत्वाच्च निरयं पर्यायेणोपगच्छति। एष एवं द्विजातीनामात्मा वै स गुणैर्वृतः॥४०॥

हे विभु! इस प्रकृति ने समस्त सचराचर को अन्ध कर दिया है। सब कुछ रजः तमः से व्याप्त है। ये सब जीव के लिये द्वन्द्व रूप हैं। ये सब जीव से उत्पन्न होकर जीव में ही प्रलीन होते हैं। हे राजन्! इन द्वन्द्वों को पार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार पुण्य भी हैं। जब पुरुष देवलोक जाता है, तब पुण्यभोग ही करता है। व्यक्ति शुभ कर्मों का फल सुख तथा अशुभ कर्मों का फल दुःख तब तक भोग करता है, जब तक जन्म-मरण चक्र लगा है। जीवगण सुख-दुःख-नरक गमन तथा मनुष्य होने आदि भोगते हैं। तदनन्तर समय पर नरक भोग कर पुनः मनुष्य जन्मलाभ करता है। तत्पश्चात् वह मनुष्यत्व से देवत्व को तदनन्तर पुनः देवत्व से मनुष्यत्व लाभ करके मनुष्यत्व में समय व्यतीत करके कालक्रमेण पुनः नरकलाभ करता है। (द्विजों) मनुष्यों का आत्मा गुणसमूह से आवृत रहता है।।३३-४०।।

तेन देवमनुष्येषु निरयं चोपपद्यते। ममत्वेनाऽऽवृतो नित्यं तत्रैव परिवर्तते॥४१॥
सर्गकोटिसहस्रग्णि मरणान्तासु मूर्तिषु। य एवं कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम्॥४२॥
स एव फलमाप्नोति त्रिषु लोकेषु मूर्तिमान्।
प्रकृतिः कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम्॥४३॥
प्रकृतिश्च तथाऽऽप्नोति त्रिषु लोकेषु कामगा।
तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च॥४४॥
त्रीणि स्थानानि चैतानि जानीयात्प्राकृतानि ह।
अलिङ्गप्रकृतित्वाच्च लिङ्गैरप्यनुमीयते॥४५॥
तथैव पौरुषं लिङ्गमनुमानाद्धि मन्यते। स लिङ्गान्तरमासाद्य प्राकृतं लिङ्गमव्रणम्॥४६॥
व्रणद्वाराण्यधिष्ठाय कर्माण्यात्मनि मन्यते।
श्रोत्रादीनि तु सर्वाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यथ॥४७॥
रागादीनि प्रवर्तन्ते गुणेष्विह गुणैः सह। अहमेतानि वै कुर्वन्ममैतानीन्द्रियाणि ह॥४८॥

निरिन्द्रयो हि मन्यते व्रणवानस्मि निर्व्रणः। अलिङ्गो लिङ्गमात्मानमकालं कालमात्मनः॥४९॥
असत्त्वं सत्त्वमात्मानममृतं मृतमात्मनः। अमृत्युं मृत्युमात्मानमचरं चरमात्मनः॥५०॥
अक्षेत्रं क्षेत्रमात्मानमसङ्गं सङ्गमात्मनः। अतत्त्वं तत्त्वमात्मानमभवं भवमात्मनः॥५१॥
अक्षरं क्षरमात्मानमबुद्धत्वाद्धि मन्यते। एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात्॥५२॥
सर्गकोटिसहस्राणि पतनान्तानि गच्छति। जन्मान्तरसहस्राणि मरणान्तानि गच्छति॥५३॥

यही कारण है कि (गुणसमूह के प्रभाव से) प्राणी देव, मनुष्य योनी में एवं नरक में भी गमन करता है। ममत्व से आवृत्त प्राणी सहस्रों कोटि-कोटि सृष्टि पर्यन्त सुख-दुःख भागी बना रहता है। एवंविध शुभ-अशुभ फलदायक कर्म जो करते हैं, वे त्रैलोक्य में इसी तरह निरन्तर भटकते रहते हैं। त्रैलोक्यगामिनी प्रकृति ही शुभ-अशुभ नाना कर्म कारिणी है। इस प्रकार तदनुरूप फलभागिनी होती है। तिर्यक् जाति, मनुष्यत्व, देवत्व ये तीन स्थान प्राकृत हैं अर्थात् प्रकृति के हैं। इन चिह्नों (लिंग) के द्वारा उसमें ऐसा कोई चिह्न नहीं है, जिससे उसे जाना जाये। वह अलिंग-प्राकृतिक जीव लिंगों से ही ज्ञात होता है। समझा जाता है। पुरुष का कोई लिंग (चिह्न) नहीं है, जिसके द्वारा उसे पहचान सकें। उसे अनुमान से ही जान पाते हैं। (यहां श्लोक ४६ के अर्द्धांश "स लिङ्गान्तरमासाद्य प्राकृतं लिंगम् व्रणम्" का कोई अर्थ ही नहीं प्रतीत होता लगता है। यह अशुद्ध पाठ है।) जीव मूलतः स्वयं दोषयुक्त नहीं होता। तथापि वह उक्त रूप से नाना दोष समन्वित कर्मों में लिप्त हो जाता है। तब उसकी श्रोत्र, चक्षु आदि पांचों कर्मेन्द्रियां गुणों के संग के कारण राग आदि गुणों से सम्पृक्त रहती हैं। तब इन्द्रिय रहित निर्दोष आत्मा "मैं यह करता हूं, यह मेरा है" इत्यादि वृथा अभिमान करता है। वह अलिंग होकर भी स्वयं को लिंगवान् (साकार), असत्व को सत्वयुक्त, अमृत को मृत, अमर को मृतधर्मा, अचल को चंचल, अक्षेत्र रूप होकर भी क्षेत्र, असंग होकर भी संगवान्, अतत्व होकर भी तत्वाश्रय, जन्महीन होकर भी जन्मवान्, अक्षय होकर भी क्षयशील, बुद्ध होकर भी स्वयं को अबुद्ध समझने लगता है। वह अभव को भव, अक्षर को क्षर मानने लगता है। इस प्रकार आत्मबोध के अभाव में वह अज्ञान की सेवा करता सैकड़ों-कोटि प्रकार की योनि में अधः पतित होता है। हजारों जन्म लेकर वह जन्म-मरण में पड़ा रहता है।।४१-५३।।

तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च। चन्द्रमा इव कोशानां पुनस्तत्र सहस्रशः॥५४॥
नीयतेऽप्रतिबुद्धत्वादेवमेव कुबुद्धिमान्। कला पञ्चदशी योनिस्तद्धाम इति पठ्यते॥५५॥
नित्यमेव विजानीहि सोमं वै षोडशांशकैः।
कलया जायतेऽजस्रं पुनः पुनरबुद्धिमान्॥५६॥
धीमांश्चायं न भवति नृप एवं हि जायते।
षोडशी तु कला सूक्ष्मा स सोम उपधार्यताम्॥५७॥
न तूपयुज्यते देवैर्देवानपि युनक्ति सः। ममत्वं क्षपयित्वा तु जायते नृपसत्तम॥५८॥
प्रकृतेस्त्रिगुणायास्तु स एव त्रिगुणा भवेत्॥५९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४२।।

तिर्यक् योनि, मनुष्य योनि, देवलोक में वह भ्रमण करता रहता है। जैसे चन्द्र सोलह कला वाला है। उसकी पन्द्रह कला पन्द्रह योनि है। इन कलाओं में वह नित्य प्रकट होता है। सोलहवीं कला ही वस्तुतः चन्द्र है। वह अतीव सूक्ष्मरूप है। उसी अंश में नित्य वह विद्यमान रहता है। देवता भी इस सोलहवीं कला का भोग नहीं कर पाते। अज्ञान मोहित लोग उक्त प्रकार से जैसे चन्द्रमा नित्य कला (कोष) परिवर्तन करता है, उसी तरह प्राणी योनि परिवर्तन करता रहता है। सोम देवगण से उपयुक्त न होकर देवताओं को उपयुक्त करते हैं। त्रिगुणात्मिका प्रकृति की ममता त्याग करने वाले गुण रहित (त्रिगुणरहित) होकर मुक्तिलाभ करते हैं।।५४-५९।।

।।द्विचत्वारिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से करालजनक द्वारा प्रश्न

जनक उवाच

अक्षरक्षरयोरेष द्वयोः सम्बन्ध इष्यते। स्त्रीपुंसयोर्वा सम्बन्धः स वै पुरुष उच्यते॥१॥
ऋते तु पुरुषं नेह स्त्री गर्भान्धारयत्युत। ऋते स्त्रियं न पुरुषो रूपं निर्वर्तते तथा॥२॥
अन्योन्यस्याभिसम्बन्धादन्योन्यगुणसंश्रयात्। रूपं निर्वर्तयेदेतदेवं सर्वासु योनिषु॥३॥
रत्यर्थमतिसंयोगादन्योन्यगुणसंश्रयात्। ऋतौ निर्वर्तते रूपं तद्वक्ष्यामि निदर्शनम्॥४॥
ये गुणाः पुरुषस्येह ये च मातुर्गुणास्तथा।
अस्ति स्नायु च मज्जा च जानीमः पितृतो द्विज॥५॥
त्वङ्मासशोणितं चेति मातृजान्यनुशुश्रुम। एवमेतद्द्विजश्रेष्ठ वेदशास्त्रेषु पठ्यते॥६॥
प्रमाणं यच्च वेदोक्तं शास्त्रोक्तं यच्च पठ्यते। वेदशास्त्रप्रमाणं च प्रमाणं तत्सनातनम्॥७॥
एवमेवाभिसम्बन्धौ नित्यं प्रकृतिपूरुषौ। यच्चापि भगवंस्तस्मान्मोक्षधर्मो न विद्यते॥८॥
अथवाऽनन्तरकृतं किञ्चिदेव निदर्शनम्।
तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन प्रत्यक्षो ह्यसि सर्वदा॥९॥
मोक्षकामा वयं चापि काङ्क्षामो यदनामयम्।
अजेयमजरं नित्यमतीन्द्रियमनीश्वरम्॥१०॥

जनक कहते हैं—हे मुनिगण! क्षर तथा अक्षर का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा है? क्या वह स्त्री-पुरुष सम्बन्धवत् है? पुरुष के अभाव में स्त्री कदापि गर्भधारिणी नहीं होती। स्त्री से पुरुष की रूपतृष्णा का निवारण नहीं होता। पारस्परिक सम्बन्ध तथा एक दूसरे के गुणों के परस्परतः आयन तथा प्रदान करने से ही सभी

प्राणीगण में रूपोत्पादन हो पाता है। रतिक्रीड़ा हेतु जो पारस्परिक संयोग रूपमिलन के आधार पर ऋतुकाल में होता है, वह रूपोत्पादन है (काम क्रीड़ा है)। उसका निदर्शन कहता हूं। हे द्विजराज जनक! स्त्री-पुरुष के इस पारस्परिक गुण संयोग द्वारा (कामक्रिया से) देह बनती है। स्त्री तथा पुरुष के गुण संयोग द्वारा त्वचा, मांस, रक्त की उत्पत्ति माता से (मातृरजः से) होती है। वेद का कथन है कि पति से (पितृवीर्य से) अस्थि, स्नायु, मज्जा उत्पन्न होता है। ऐसा हमने भी सुना है। समाज में वेद तथा शास्त्र के जो-जो प्रमाण प्रचलित हैं, सनातन प्रमाण वेदशास्त्र से उद्धृत होने के कारण उनको प्रमाण रूप में स्वीकृति दी गयी है। जैसे स्त्री तथा पुरुष का मिलन होता है, वैसे ही प्रकृति-पुरुष नित्य मिलन स्थिति में रहते हैं। हे भगवान्! तब मोक्षधर्म कहां रह गया? अथवा इसमें अन्य विशेषत्व है। आप तो सदैव तत्वों का साक्षात्कार करते रहते हैं, अतः इस सम्बन्ध में उपदेश करें। मैं मोक्ष की कामना से इस अनामय, अजेय, अजर, अतीन्द्रिय, ईश्वरातीत, नित्य पदार्थ का तत्व जानना चाहता हूं।।१-१०।।

वसिष्ठ उवाच

यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम्। एवमेतद्यथा वक्ष्ये तत्त्वगाही यथा भवान्।।११।।

धार्यते हि त्वया ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः।
न च ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथातत्त्वं नरेश्वर।।१२।।

यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः। न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्धारणं वृथा।।१३।।

भारं स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः।
यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा।।१४।।

ग्रन्थस्यार्थं स पृष्टस्तु मादृशो वक्तुमर्हति। यथातत्त्वाभिगमनादर्थं तस्य स विन्दति।।१५।।

न यः समुत्सुकः कश्चिद्ग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान्।
स कथं मन्दविज्ञानो ग्रन्थं वक्ष्यति निर्णयात्।।१६।।

अज्ञात्वा ग्रन्थतत्त्वानि वादं यः कुरुते नरः।
लोभाद्वाऽप्यथवा दम्भात्स पापी नरकं व्रजेत्।।१७।।

वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! आपने जिस वेद शास्त्र निदर्शन का उल्लेख किया है, आप जैसे तत्वग्रहण करने वाले को तदनुरूप बतलाऊंगा। यद्यपि आपने वेद-शास्त्रों का अध्ययन तो किया अवश्य है, तथापि आपको इन सबका यथायथ तत्व ज्ञात ही नहीं है। जो वैदिक तथा लौकिक ग्रन्थों का अभ्यास करके उसके प्रकृत तत्व को नहीं जानते, वे केवल ग्रन्थों का भार वहन करते हैं। उनका वह ग्रन्थाभ्यास वृथा है। तथापि जो ग्रन्थतत्व के ज्ञाता हैं, उनका ग्रन्थाभ्यास वृथा नहीं है। वे मेरी तरह यथायथ उत्तर दे सकते हैं। वे ही ग्रन्थाभ्यास के मुख्य फल का लाभ उठाते हैं। जो स्थूलबुद्धि व्यक्ति ग्रन्थार्थ आयत्त करने का यत्न नहीं करते, उनका विज्ञान अत्यल्प होने के कारण वे ग्रन्थ का सिद्धान्त कैसे कहेंगे। ग्रन्थ का तत्व जाने बिना लोभ तथा दम्भ के कारण जो उसके वाद में अथवा विवाद में प्रवृत्त होते हैं, उनको नरकगामी होना पड़ता है। वे छिद्रान्वेषी तत्व निर्णय नहीं दे सकते।।११-१७।।

निर्णयं चापि च्छिद्रात्मा न तद्वक्ष्यति तत्त्वतः।
सोऽपीहास्यार्थतत्त्वज्ञो यस्मान्नैवाऽऽत्मवानपि॥१८॥
तस्मात्त्वं शृणु राजेन्द्र यथैतदनुदृश्यते। यथा तत्त्वेन साङ्ख्येषु योगेषु च महात्मसु॥१९॥
यदेव योगाः पश्यन्ति साङ्ख्यं तदनुगम्यते।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स बुद्धिमान्॥२०॥

शास्त्रसिद्धान्त के ज्ञाता होकर भी जो लोग उसका यथायथ उपदेश नहीं देते, वे भी प्रकृततत्व नहीं जान पाते। वे आत्मज्ञान विहीन ही हैं। हे राजेन्द्र! सांख्य तथा योग के अनुसार महात्मागण इस तत्व का दर्शन जिस प्रकार से करते हैं, मैं वह यथार्थतः कहता हूं। योगीगण जो सिद्धान्त कहते हैं, सांख्यमत से भी वही निरूपित होता है। जो व्यक्ति सांख्य तथा योग को एकरूप जानते हैं, वे ही यथार्थ बुद्धिशाली हैं। हे तात! आपने मुझसे त्वगादि सम्बन्ध में कहा है, वह श्रवण करें।।१८-२०।।

त्वङ्मांसं रुधिरं मेदः पित्तं मज्जाऽस्थि स्नायु च।
एतदैन्द्रियकं तात यद्भवानित्थमात्थ माम्॥२१॥
द्रव्याद्द्रव्यस्य निर्वृत्तिरिन्द्रियादिन्द्रियं तथा। देहाद्देहमवाप्नोति बीजाद्बीजं तथैव च॥२२॥
निरिन्द्रियस्य बीजस्य निर्द्रव्यस्यापि देहिनः।
कथं गुणा भविष्यन्ति निर्गुणत्वान्महात्मनः॥२३॥
गुणा गुणेषु जायन्ते तत्रैव विरमन्ति च।
एवं गुणाः प्रकृतिजा जायन्ते न च यान्ति च॥२४॥
त्वङ्मांसं रुधिरं मेदः पित्तं मज्जाऽस्थि स्नायु च।
अष्टौ तान्यथ शुक्रेण जानीहि प्राकृतेन वै॥२५॥
पुमांश्चैवापुमांश्चैव स्त्रीलिङ्गं प्राकृतं स्मृतम्। वायुरेष पुमांश्चैव रस इत्यभिधीयते॥२६॥

त्वचा, मांस, रक्त, मेद, पित्त, मज्जा, अस्थि, स्नायु वीर्य से उत्पन्न होते हैं। पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसक ये तीनों इन्द्रियोत्पन्न हैं। द्रव्य से द्रव्य, बीज से बीज, देह से देह, इन्द्रियों से इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। निरिन्द्रिय, निर्बीज, द्रव्य रहित से गुणोत्पत्ति की संभावना ही कहां है? गुण से ही गुणोत्पत्ति होती है। वह गुण में ही लीन हो जाता है। वास्तव में ये प्रकृति से उत्पन्न गुण कहीं नहीं जाते। त्वक्, मांस, रक्त, मेद, पित्त, मज्जा, अस्थि, स्नायु ये आठ वीर्य से ही उत्पन्न होते हैं। प्रकृति से स्त्रीत्व उत्पन्न होता है। वायु से पुरुषत्व उत्पन्न होता है। वह रस कहा गया है।।२१-२६।।

अलिङ्गा प्रकृतिर्लिङ्गैरुपलभ्यति साऽऽत्मजैः।
यथा पुष्पफलैर्नित्यं मूर्तं चामूर्तयस्तथा॥२७॥
एवमप्यनुमानेन स लिङ्गमुपलभ्यते। पञ्चविंशतिकस्तात लिङ्गेषु नियतात्मकः॥२८॥
अनादिनिधनोऽनन्तः सर्वदर्शनकेवलः। केवलं त्वभिमानित्वाद्गुणेषु गुण उच्यते॥२९॥

गुणा गुणवतः सन्ति निर्गुणस्य कुतो गुणाः।
तस्मादेवं विजानन्ति ये जना गुणदर्शिनः॥३०॥

प्रकृति अलिंग है। लिंगहीना प्रकृति आत्मजात लिंग द्वारा इस प्रकार से उपलब्ध होती है। पुष्प फल देख कर यह विदित हो जाता है कि इससे वृक्ष होगा। अभी पुष्पफल मूर्त्त है तथा वृक्ष अमूर्त्त है, पैदा नहीं है। तथापि उसे बीजफल देख कर भावी वृक्ष उत्पन्न होने का अनुमान हो जाता है। अतः अनुमान से ही प्रकृति की उपलब्धि होती है। हे तात! चौबीसों तत्वों से परे जो पचीसवां तत्व है, वह पुरुष अभिमान के कारण गुणों में गुणयुक्त कहा जाता है। अतः उसे पचीसवां तत्व कहते हैं। तथापि वह निर्गुण है। गुण तो गुणवान् के होते हैं। निर्गुण में गुण कहां? इसलिये पचीसवां तत्व आदि-अन्त-मरण रहित है। वह नियतलिंग है। गुणदर्शी लोग यह तथ्य जानते हैं।।२७-३०।।

यदा त्वेष गुणानेतान्प्राकृतानभिमन्यते। तदा स गुणवानेव गुणभेदान्प्रपश्यति॥३१॥
यत्तद्बुद्धेः परं प्राहुः साङ्ख्ययोगं च सर्वशः।
बुध्यमानं महाप्राज्ञाः प्रबुद्धपरिवर्जनात्॥३२॥
अप्रबुद्धं यथा व्यक्तं स्वगुणैः प्राहुरीश्वरम्। निर्गुणं चेश्वरं नित्यमधिष्ठातारमेव च॥३३॥
प्रकृतेश्च गुणानां च पञ्चविंशतिकं बुधाः।
साङ्ख्ययोगे च कुशला बुध्यन्ते परमैषिणः॥३४॥
यदा प्रबुद्धमव्यक्तमवस्थात (प) ननी (भी) रवः।
बुध्यमानं न बुध्यन्तेऽवगच्छन्ति समं तदा॥३५॥
एतन्निदर्शनं सम्यङ्न सम्यगनुदर्शनम्। बुध्यमानं प्रबुध्यन्ते द्वाभ्यां पृथगरिन्दम्॥३६॥
परस्परेणैतदुक्तं क्षराक्षरनिदर्शनम्। एकत्वमक्षरं प्राहुर्नानात्वं क्षरमुच्यते॥३७॥

जब यह आत्मा इन सब प्राकृत गुणों का अभिमान करता है, तभी वह गुणवान् होता है। वह गुण के भेदों को देखता है। बुद्धि से परे होकर भी सांख्य-योग को समझ लिया जाता है। यह महाप्राज्ञ लोगों का मत है। अर्थात् महाप्राज्ञ व्यक्तियों के मतानुसार बुद्धि के परवर्त्ती, सांख्य-योगगम्य प्रबुद्ध के अतिरिक्त जो बुध्यमान-अप्रबुद्ध ईश्वर है, वह अपने गुणों के कारण परिव्यक्त रहता है। परन्तु अधिष्ठान रूप परमेश्वर निर्गुण है। परमार्थ तत्वान्वेषी सांख्ययोग निष्णात मनीषी लोग प्रकृति तथा गुणों से अतीत पचीसवें तत्व पुरुष का अनुमान करते हैं। जब तक प्रबुद्ध भाव अव्यक्त रहता है, तब तक वाणी से उसे व्यक्त नहीं कर सकते। तब तक "जीव समझ कर भी नहीं समझ पाता।" ऐसे अस्पष्ट रूप से वह अनुभूत होता है। इसके पश्चात् कुछ काल व्यतीत होने पर परमपुरुष का साक्षात्कार लाभ होता है। यह क्षर अक्षर तत्व का संकेत मात्र है। अतः एकत्व अक्षर है, नानात्व है क्षर। यह पचीसवां तत्व एकत्व ज्ञान में अक्षर है। नानात्व ज्ञान में वह क्षर पुरुष है।।३१-३७।।

पञ्चविंशतिनिष्ठोऽयं तदा सम्यक्प्रचक्षते।
एकत्वदर्शनं चास्य नानात्वं चास्य दर्शनम्॥३८॥
तत्त्ववित्तत्त्वयोरेव पृथगेतन्निदर्शनम्। पञ्चविंशतिभिस्तत्त्वं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः॥३९॥

निस्तत्त्वं पञ्चविंशस्य परमाहुर्मनीषिणः। वर्ज्यस्य वर्ज्यमाचारं तत्त्वं तत्त्वात्सनातनम्॥४०॥

कोई-कोई मनीषी कहते हैं कि पुरुष को मिलाकर समस्त तत्व संख्या २५ है। इसके आगे वाला जो पुरुष है, वह निस्तत्व है। चौबीस तत्व के जो कारण स्वरूप हैं, उनको तत्व (पचीसवें पुरुष तक) कहा गया। इन पचीसवें के जो कारण हैं, २६वें पुरुष हैं, उनका निदर्शन सनातन शब्द से कहा गया।।३८-४०।।

करालजनक उवाच

नानात्वैकत्वमित्युक्तं त्वयैतद्द्विजसत्तम। पश्यतस्तद्धि सन्दिग्धमेतयोर्वै निदर्शनम्॥४१॥
तथा बुद्धप्रबुद्धाभ्यां बुध्यमानस्य चानघ। स्थूलबुद्ध्या न पश्यामि तत्त्वमेतन्न संशयः॥४२॥
अक्षरक्षरयोरुक्तं त्वया यदपि कारणम्। तदप्यस्थिरबुद्धित्वात्प्रनष्टमिव मेऽनघ॥४३॥
तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि नानात्वैकत्वदर्शनम्।
द्वन्द्वं चैवानिरुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः॥४४॥
विद्याविद्ये च भगवन्नक्षरं च क्षरमेव।
साङ्ख्ययोगं च कृत्स्नेन बुद्धाबुद्धिं पृथक्पृथक्॥४५॥

करालजनक कहते हैं—हे द्विजप्रवर! आपने जिस नानात्व तथा एकत्वजनित भेद का वर्णन किया है, उसका असंदिग्ध निदर्शन मैं नहीं देख रहा हूं। हे निष्पाप! मेरी स्थूल बुद्धि द्वारा अप्रबुद्ध, बुध्यमान तथा बुद्ध की अवधारणा नहीं हो पा रही है। आपने क्षर तथा अक्षर सम्बन्धित जो उपदेश दिया है, बुद्धि की अस्थिरता के दोष स्वरूप मैं उसे भी विस्मृत कर गया! बुध्य, बुध्यमान, अप्रबुद्ध के नानात्व तथा वह एकत्व दर्शनतत्व मैं जानना चाहता हूं। आप सांख्य योग विषयक महाबुद्धि, क्षर, अक्षर, विद्या, अविद्या इत्यादि का वर्णन सम्यक्तः कहिये।।४१-४५।।

वसिष्ठ उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि यदेतदनुपृच्छसि। योगकृत्यं महाराज पृथगेव शृणुष्व मे॥४६॥
योगकृत्यं तु योगानां ध्यानमेव परं बलम्।
तच्चापि द्विविधं ध्यानमाहुर्विद्याविदो जनाः॥४७॥
एकाग्रता च मनसः प्राणायामस्तथैव च। प्राणायामस्तु सगुणो निर्गुणो मानसस्तथा॥४८॥
मूत्रोत्सर्गे पुरीषे च भोजने च नराधिप (?)।
द्विकालं नोपभुञ्जीत शेषं भुञ्जीत तत्परः॥४९॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो निवर्त्य मनसा मुनिः।
दशद्वादशभिर्वाऽपि चतुर्विंशात्परं यतः॥५०॥
स चोदनाभिर्मतिमान्नाऽऽत्मानं चोदयेदथ। तिष्ठन्तमजरं तं तु यत्तदुक्तं मनीषिभिः॥५१॥
विश्वात्मा सततं ज्ञेय इत्येवमनुशुश्रुम। द्रव्यं ह्यहीनमनसो नान्यथेति विनिश्चयः॥५२॥

वसिष्ठ देव कहते हैं—हे महाराज! मैं आपके पूछे गये विषय का उत्तर देता हूं। अब सम्यक्तः पृथक् रूप से योगकृत्य को सुनें। योगकृत्यों में ध्यान प्रधान है। योगविद्याविद लोग प्राणायाम तथा चित्त की एकाग्रता—इन योगद्वय का उल्लेख करते हैं। प्राणायाम सगुण, निर्गुण तथा मानस रूप से त्रिविध है। मूत्रत्याग, मलत्याग तथा भोजन के समय यह अनुभूत होता है। प्राणायाम करने वाला दोनों संध्याकाल में आहार न करे। एक बार ही यथाविधि भोजन करे। मुनिवृत्ति वाले दस, बारह अथवा २४ बार प्राणायाम करके समस्त इन्द्रियार्थ से मन का प्रत्याहार करें। मतिवान् योगी स्थिर रहकर विश्वात्मा का चिन्तन करें। अन्य किसी विषय में चित्त न लगाये। अक्लेश भाव से यह करने पर अवश्य सिद्धि मिलती है। इससे विपरीत अथवा नियम विरुद्ध न करे।।४६-५२।।

विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः। पूर्वरात्रे परार्धे च धारयीत मनो हृदि।।५३।।

स्थिरीकृत्येन्द्रियग्रामं मनसा मिथिलेश्वर।
मनो बुद्ध्या स्थिरं कृत्वा पाषाण इव निश्चलः।।५४।।
स्थाणुवच्चाप्यकम्प्यः स्याद्दारुवच्चापि निश्चलः।
बुद्ध्या विधिविधानज्ञस्ततो युक्तं प्रचक्षते।।५५।।
न शृणोति च चाऽऽघ्राति न च पश्यति किञ्चन।
न च स्पर्शं विजानाति न च सङ्कल्पते मनः।।५६।।
न चापि मन्यते किञ्चिन्न च बुध्येत काष्ठवत्।
तदा प्रकृतिमापन्नं युक्तमाहुर्मनीषिणः।।५७।।

सर्व संग त्याग कर सदा लघु आहार करे। जितेन्द्रिय रहकर प्रथम अथवा अंतिम रात्रिकाल में हृदय में मन को स्थापित करे। हे मिथिलापति! योगी व्यक्ति मन द्वारा इन्द्रियों की तथा बुद्धि द्वारा मन की स्थिरता करे। वह पाषाणवत् निश्चल, स्थाणुवत् स्थिर होकर लकड़ी जैसा अचल हो जाये। अब विधिविहित क्रम से बुद्धि द्वारा योगाभ्यास करना चाहिये। एवंविध जब श्रवण, आघ्राण, दर्शन, स्पर्श, संकल्प, मनन तथा अनुभवादि सर्ववृत्ति निरुद्ध हो जाये, तब योगी प्रकृतिस्थ हो जाता है। मनीषीगण कहते हैं कि उसने प्रकृति को प्राप्त कर लिया।।५३-५७।।

न भाति हि यथा दीपो दीप्तिस्तद्वच्च दृश्यते।
निर्लिङ्गश्चाधरचोर्ध्वं च तिर्यग्गतिमवाप्नुयात्।।५८।।

तदा तदुपपन्नश्च यस्मिन्दृष्टे च कथ्यते। हृदयस्थोऽन्तरात्मेति ज्ञेयो ज्ञस्तात मद्विधैः।।५९।।

निर्धूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान्।
वैद्युतोऽग्निरिवाऽकाशे पश्यत्यात्मानमात्मनि।।६०।।

क्रमशः उसके हृदय में अधः-ऊर्ध्व तथा तिर्यक् गतिहीन दीपवत् अन्तरात्मा परिव्यक्त होती है। योगी धूम रहित अग्नि, दीप्तिमान आदित्य, विद्युल्लता की अग्नि के समान आत्मा में आत्मा को देखता है।।५८-६०।।

यं पश्यन्ति महात्मानो धृतिमन्तो मनीषिणः।
ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ह्ययोनिममृतात्मकम्॥६१॥
तदेवाऽऽहुरणुभ्योऽणु तन्महद्भ्यो महत्तरम्। सर्वत्र सर्वभूतेषु ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते॥६२॥
बुद्धिद्रव्येण दृश्येन मनोदीपेन लोककृत्। महतस्तमसस्तात पारे तिष्ठन्न तामसः॥६३॥
तमसो दूर इत्युक्तस्तत्त्वज्ञैर्वेदपारगैः। विमलो विमतश्चैव निर्लिङ्गोऽलिङ्गसंज्ञकः॥६४॥
योग एष हि लोकानां किमन्यद्योगलक्षणम्। एवं पश्यन्प्रपश्येन आत्मानमजरं परम्॥६५॥
योगदर्शनमेतावदुक्तं ते तत्त्वतो मया। सांख्यज्ञानं प्रवक्ष्यामि परिसङ्ख्यानिदर्शनम्॥६६॥

इस अयोनिज अमृतात्मक आत्मा को बुद्धिमान् महात्मा, मनीषी, ब्रह्मपथरत, ब्राह्मण सतत् देखते हैं। वे अणु से अणुतर, महत् से भी महत्तर, स्थिर तमः सम्पर्क रहित तथा सर्वत्र सर्वभूतस्थ हैं। सामान्य चक्षु द्वारा उनको देखा नहीं जाता। परन्तु तमोराशि के पार उस आत्मा को बुद्धितैलयुक्त मनोदीप द्वारा देखा जाता है। वेदज्ञ जनगण के मत से वे तमः से दूरवर्त्ती, विमल, मननहीन, अलिंग तथा संज्ञाशून्य हैं। लोक समाज में यही योग है। इसके अतिरिक्त योग का क्या लक्षण होगा? यह विचार कर अजर परमात्मा का दर्शन करे। यह मैंने आपसे योगदर्शन कहा। अब सांख्य ज्ञान की परिसंख्या कहता हूं।।६१-६६।।

अव्यक्तमाहुः प्रख्यानं परां प्रकृतिमात्मनः। तस्मान्महत्समुत्पन्नं द्वितीयं राजसत्तम॥६७॥
अहङ्कारस्तु महतस्तृतीय इति नः श्रुतम्। पञ्चभूतान्यहङ्कारादाहुः साङ्ख्यात्मदर्शिनः॥६८॥
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्चापि षोडश।
पञ्च चैव विशेषाश्च तथा पञ्चेन्द्रियाणि च॥६९॥
एतावदेव तत्त्वानां साङ्ख्यमाहुर्मनीषिणः।
साङ्ख्ये साङ्ख्यविधानज्ञा नित्यं सङ्ख्यपथे स्थिताः॥७०॥
यस्माद्यदभिजायेत तत्तत्रैव प्रलीयते। लीयन्ते प्रतिलोमानि गृह्यन्ते चान्तरात्मना॥७१॥

(जिसमें विहित वस्तु के स्थान पर अन्य वस्तु निषिद्ध हो वही परिसंख्यान है) हे नृपप्रवर! नामरूपादि कल्पना के हेतुभूत अव्यक्त भाव को ही आत्मा की पराप्रकृति कहा गया है। उसी से द्वितीय तत्व महत् उत्पन्न होता है। महत् से तृतीय तत्व अहंकार जन्म लेता है। अहंकार से पंचभूत उत्पन्न होता है। सांख्य आत्मदर्शी यही कहते हैं। ये अष्ट प्रकृति हैं। इसके अतिरिक्त अन्य षोडश विकार हैं। पांच विकार तथा पांच इन्द्रियां भी इसी में गिनी जाती हैं। जिससे जो उत्पन्न होता है, उसका लय उसमें ही हो जाता है। परमात्मा प्रतिलोम क्रमेण लय करते हैं तथा अनुलोम क्रम से सृष्टि करते हैं।।६७-७१।।

आनुलोम्येन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमतः। गुणा गुणेषु सततं सागरस्योर्मयो यथा॥७२॥
सर्गप्रलय एतावान्प्रकृतेर्नृपसत्तम। एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च तथा सृजि॥७३॥
एवमेव च राजेन्द्र विज्ञेयं ज्ञानकोविदैः। अधिष्ठातारमव्यक्तमस्याप्येतन्निदर्शनम्॥७४॥
एकत्वं च बहुत्वं च प्रकृतेरनुतत्त्ववान्। एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तनात्॥७५॥

बहुधाऽऽत्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसवात्मिकाम्।
तच्च क्षेत्रं महानात्मा पञ्चविंशोऽधितिष्ठति॥७६॥
अधिष्ठातेति राजेन्द्र प्रोच्यते यतिसत्तमैः।
अधिष्ठानादधिष्ठाता क्षेत्राणामिति नःश्रुतम्॥७७॥
क्षेत्रं जानाति चाव्यक्तं क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते। अव्यक्तिके पुरे शेते पुरुषश्चेति कथ्यते॥७८॥

हे महाराज! यही है प्रकृति का सर्गप्रलय। प्रलय में एकत्व तथा सृष्टि में बहुत्व होता है। आत्मा प्रकृति के अधिष्ठानरूपेण वर्तमान है। उक्त प्रकृति के अनुवर्तन के कारण एकत्व तथा बहुत्व अनुमेय है। पचीसवां तत्व महान् आत्मा प्रकृति क्षेत्र में अधिष्ठित होकर प्रकृति को बहुधा विभक्त करते हैं। यह महान् आत्मा क्षेत्रों का अधिष्ठान करके अधिष्ठाता कहा गया है। मैंने यह सुना है। यह महान् आत्मा क्षेत्रों का ज्ञाता है, तभी क्षेत्रज्ञ है। ये अव्यक्त पुर में शयन करने के कारण पुरुष हैं।।७२-७८।।

अन्यदेव च क्षेत्रं स्यादन्यः क्षेत्रज्ञ उच्यते।
क्षेत्रमव्यक्त इत्युक्तं ज्ञातारं पञ्चविंशकम्॥७९॥
अन्यदेव च ज्ञानं स्यादन्यज्ज्ञेयं तदुच्यते। ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयो वै पञ्चविंशकः॥८०॥
अव्यक्तं क्षेत्रमित्युक्तं तथा सत्त्वं तथेश्वरम्।
अनीश्वरमतत्त्वं च तत्त्वं तत्पञ्चविंशकम्॥८१॥
साङ्ख्यदर्शनमेतावत्परिसङ्ख्या न विद्यते।
सङ्ख्यां प्रकुरुते चैव प्रकृतिं च प्रवक्ष्यते॥८२॥
चत्वारिंशच्चतुर्विंशत्प्रतिसङ्ख्याय तत्त्वतः।
सङ्ख्या सहस्रकृत्या तु निस्तत्त्वः पञ्चविंशकः॥८३॥
पञ्चविंशत्प्रबुद्धात्मा बुध्यमान इति श्रुतः।
यदा बुध्यति आत्मानं तदा भवति केवलः॥८४॥
सम्यग्दर्शनमेतावद्भाषितं तव तत्त्वतः। एवमेतद्विजानन्तः साम्यतां प्रतियान्त्युत॥८५॥

क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ परस्पर पृथक् हैं। अव्यक्त ही क्षेत्र है तथा उससे अतीत पचीसवां जो तत्व है, उसे क्षेत्रज्ञ कहा गया है। ज्ञान अव्यक्त है। ज्ञेय २५वां तत्व है। क्षेत्र अव्यक्त तथा सत्व ईश्वर है। यह दर्शन अनीश्वरवादी तथा तत्वशून्य है। तथापि २५ तत्व इसे मान्य हैं। अथवा गिनती नहीं की जाती। अथवा इसे चतुर्विंश (२४) अथवा ४४ संख्या कहते हैं। वे प्रकृति को निर्णय में उद्युक्त करते हैं। तथापि वे प्रकृति के अनन्तत्व के कारण तत्व संख्या निरूपित नहीं कर पाते। तत्वतः यह संख्या सहस्रों भी है, किंवा निस्तत्व है पचीसवां तत्व। इन पचीस पर्यन्त तत्व की अवधारणा कर सकने से जीव बुध्यमान हो जाता है। जब सम्यक् आत्मबोध जन्म लेता है, तब वह ब्रह्ममय हो जाता है। मैंने यह सांख्यतत्व कह दिया। इसे जानने से जीव ब्रह्म में उपशम प्राप्त करता है। वे साम्य प्राप्त करते हैं।।७९-८५।।

सम्यङ्निदर्शनं नाम प्रत्यक्षं प्रकृतेस्तथा।
गुणवत्त्वाद्यथैतानि निर्गुणेभ्यस्तथा भवेत्॥८६॥
न त्वेवं वर्तमानानामावृत्तिर्वर्तते पुनः। विद्यते क्षरभावश्च न परस्परमव्ययम्॥८७॥
पश्यन्त्यमतयो ये न सम्यक्तेषु च दर्शनम्। ते व्यक्तिं प्रतिपद्यन्ते पुनः पुनररिन्दम॥८८॥
सर्वमेतद्विजानन्तो न सर्वस्य प्रबोधनात्।
व्यक्तीभूता भविष्यन्ति व्यक्तस्यैवानुवर्तनात्॥८९॥
सर्वमव्यक्तमित्युक्तमसर्वः पञ्चविंशकः। य एवमभिजानन्ति न भयं तेषु विद्यते॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४३।।

यह शास्त्र पूर्णतः निदर्शन युक्त है तथा प्रकृति की प्रत्यक्षता का सम्पादक है। जैसे वह सगुण है, वैसे निर्गुण है। यह सबके लिये हितजनक है। इस शास्त्र का अनुष्ठान करने से वह व्यक्ति इस संसार में वापस नहीं आता। जिनमें क्षरभाव है, परस्परतः जो अव्ययभाव नहीं देखते, ऐसे के लिये यह शास्त्र कोई फल नहीं दे सकता। हे अरिन्दम! वे पुनः-पुनः जन्म-मरणात्मक व्यक्त भाव को पाते हैं। इस शास्त्र को सम्यक्तः आयत्त कर लेने पर भी जो सर्वतत्व का प्रबोध नहीं पाते, वे मात्र व्यक्ततत्व का ही अनुवर्त्तन करके व्यक्त भावापन्न रहते हैं। 'सर्व' शब्द से अव्यक्त तथा 'असर्व' शब्द से २५वें तत्व पुरुष को समझें। इस तत्व को (पचीसवें को) जो जानते हैं, उनको पुनः संसार में जन्म लेने का भय नहीं रह जाता।।८६-९०।।

।।त्रिचत्वारिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

विद्या-अविद्या का स्वरूप वर्णन

वसिष्ठ उवाच

सङ्ख्यदर्शनमेत्ते यदुक्तं ते नृपसत्तमः। विद्याविद्ये त्विदानीं मे त्वं निबोधानुपूर्वशः॥१॥
अभेद्यमाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मिणः। सर्गप्रलय इत्युक्तं विद्याविद्ये च विंशकः॥२॥
परस्परस्य विद्या वै तन्निबोधानुपूर्वशः। यथोक्तमृषिभिस्तात सङ्ख्यस्यातिनिदर्शनम्॥३॥
कर्मेन्द्रियाणां सर्वेषां विद्या बुद्धीन्द्रियं स्मृतम्।
बुद्धीन्द्रियाणां च तथा विशेषा इति नः श्रुतम्॥४॥

विषयाणां मनस्तेषां विद्यामाहुर्मनीषिणः। मनसः पञ्च भूतानि विद्या इत्यभिचक्षते॥५॥
अहङ्कारस्तु भूतानां पञ्चानां नात्र संशयः। अहङ्कारस्तथा विद्या बुद्धिर्विद्या नरेश्वर॥६॥
बुद्ध्या प्रकृतिरव्यक्तं तत्त्वानां परमेश्वरः। विद्या ज्ञेया नरश्रेष्ठ विधिश्च परमः स्मृतः॥७॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—हे सत्तम! मैंने अब तक सांख्यदर्शन कहा। अब आप विद्या-अविद्या के सम्बन्ध में श्रवण करिये। सृष्टि-प्रलय तत्वज्ञ लोग अव्यक्त को अभेद्य कह गये हैं। सृष्टि-प्रलय तथा पचीसवें तत्व पुरुष विद्याविद्यात्मक हैं। हे तात! सांख्य तत्वज्ञ ऋषिगण का मत है कि समस्त सृष्टि ही पारस्परिक रूपेण विद्या ही है। समस्त कर्मेन्द्रिय की विद्या है बुद्धिन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय)। इस इन्द्रिय में विद्या विषय प्रमुख है। विषय की विद्या है मन। मन की विद्या है पञ्चभूत। पंचभूत की विद्या है अहंकार। अहंकार की विद्या है बुद्धि। उसकी विद्या है अव्यक्त प्रकृति। २४ तत्वात्मक प्रकृति की विद्या है परम पुरुष। हे राजन्! विधि ही परमविद्या है।।१-७।।

अव्यक्तमपरं प्राहुर्विद्या वै पञ्चविंशकः। सर्वस्य सर्वमित्युक्तं ज्ञेयज्ञानस्य पारगः॥८॥
ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयं वै पञ्चविंशकम्। तथैव ज्ञानमव्यक्तं विज्ञाता पञ्चविंशकः॥९॥
विद्याविद्ये तु तत्त्वेन मयोक्ते वै विशेषतः। अक्षरं च क्षरं चैव यदुक्तं तन्निबोध मे॥१०॥

अव्यक्त को अपर कहते हैं। पंचविंशतितम पुरुष को 'पारग' कहा गया है। वे ही परम विद्याश्रय हैं। यह तत्व जान लेने पर जीव ज्ञान तथा ज्ञेय के विषय में पारग हो जाता है। ज्ञान अव्यक्त कहा जाता है। ज्ञेय पचीसवां तत्व है। एवंविध ज्ञान अव्यक्त है। पचीसवां तत्व ज्ञाता है। यह इस प्रकार कह सकते हैं—

अव्यक्त = ज्ञान। २५वां पुरुष ज्ञेय। जब ज्ञान अव्यक्त है, तब पचीसवां पुरुष है ज्ञाता। मैंने इस प्रकार आपसे विद्याविद्या तत्व विशेषतया कहा है। अब पहले जिस क्षर-अक्षर के विषय में उल्लेख किया था, उसके विशेष विवरण से अवगत हो जाईये।।८-१०।।

उभावेतौ क्षरावुक्तौ उभावेतावन (था) क्षरौ।
कारणं तु प्रवक्ष्यामि यथाज्ञानं तु ज्ञानतः॥११॥
अनादिनिधनावेतौ उभावेवेश्वरौ मतौ। तत्त्वसंज्ञावुभावेव प्रोच्यते ज्ञानचिन्तकैः॥१२॥
सर्गप्रलयधर्मित्वादव्यक्तं प्राहुरव्ययम्। तदेतद्गुणसर्गाय विकुर्वाणं पुनः पुनः॥१३॥
गुणानां महदादीनामुत्पद्यति परस्परम्। अधिष्ठानं क्षेत्रमाहुरेतद्वै पञ्चविंशकम्॥१४॥
यदन्तर्गुणजालं तु तद्व्यक्तात्मनि संक्षिपेत्।
तदहं तद्गुणैस्तस्तु पञ्चविंशे विलीयते॥१५॥
गुणा गुणेषु लीयन्ते तदेका प्रकृतिर्भवेत्। क्षेत्रज्ञोऽपि तदा तावत्क्षेत्रज्ञः सम्प्रणीयते॥१६॥
यदाऽक्षरं प्रकृतिर्यं गच्छते गुणसंज्ञिता। निगुर्णत्वं च वै देहे गुणेषु परिवर्तनात्॥१७॥
एवमेव च क्षेत्रज्ञः क्षेत्रज्ञानपरिक्षयात्। प्रकृत्या निर्गुणस्त्वेष इत्येवमनुशुश्रुम॥१८॥
क्षणो भवत्येष यदा गुणवती गुणेष्वथ। प्रकृतिं त्वथ जानाति निर्गुणत्वं तथात्मनः॥१९॥

तथा विशुद्धो भवति प्रकृतेः परिवर्जनात्।
अन्योऽहमन्येयमिति यदा बुध्यति बुद्धिमान्॥२०॥

दोनों पुरुष ही क्षर तथा अक्षर हैं। मैं यथास्थान इसका कारण कहता हूं। ये उत्पत्ति नाशहीन ईश्वर हैं। ज्ञानानुशीलन करने वाले लोग इन दोनों को ही तत्व संख्या प्रदान करते हैं। सृष्टि-प्रलय धर्म होने के कारण इस अव्यक्त को अव्यय कहा गया है। इस अव्यक्त को गुणसंगवशात् निरन्तर विकार प्राप्त होता है। इसी से ही महत्तत्वादि उत्पन्न होते हैं। इसका अधिष्ठान है क्षेत्र। जो २५वां पुरुष है। इस अधिष्ठान के कारण अव्यक्त गुणसमूह व्यक्तरूपेण संसृष्ट हो जाते हैं। अहंकार इन गुणगण के साथ २५वें पुरुष में लीन रहता है। गुणसमूह का इस भाव से आविर्भाव तथा तिरोभाव ही प्रकृति है। इस अवस्था में क्षेत्र भी क्षेत्रज्ञ रूप में उत्पन्न होता है। जब गुणमयी प्रकृति अक्षय पुरुष का आश्रय लेती है, तब गुणगण के परिवर्त्तन के अभाव के कारण निर्गुणत्व आविर्भूत हो जाता है। क्षेत्रज्ञ पुरुष इस प्रकार क्षेत्रज्ञान हीन होकर निर्गुण हो जाते हैं। यह मैंने सुना है। भगवती प्रकृति जब गुणों में आसक्त रहती है, तब यह क्षेत्रज्ञ प्रकृति को गुणवती तथा स्वयं को निर्गुण मानते हैं। वे जब प्रकृति का वर्जन करके यह समझते हैं कि मैं अन्य हूं तथा प्रकृति भी अन्य है, तब उनमें आत्मबोध उदित हो जाता है।।११-२०।।

तदैषोऽव्यथतामेति न च मिश्रत्वमाव्रजेत्।
प्रकृत्या चैव राजेन्द्र मिश्रोऽन्योऽन्यस्य दृश्यते॥२१॥
यदा तु गुणजालं तत्प्राकृतं विजुगुप्सते। पश्यते च परं पश्यस्तदा पश्यन्नु संसृजेत्॥२२॥
किं मया कृतमेतावद्योऽहं कालनिमज्जनः।
यथा मत्स्यो ह्यभिमानादनुवर्तितवाञ्जलम्॥२३॥
अहमेव हि सम्मोहादन्यमन्यं जनाज्जनम्। मत्स्यो यथोदकज्ञानादनुवर्तितवानिह॥२४॥
मत्स्योऽन्यत्वमथाज्ञानदुदकान्नाभिमन्यते ।
आत्मानं तदवज्ञानादन्यं चैव न वेद्म्यहम्॥२५॥

वे जब प्रकृति के साथ निर्लिप्त एवं दुःख रहित हो जाते हैं। जब प्राकृत गुणों के प्रति उनमें अवहेलना आ जाती है, तब वे शान्ति का अनुभव करते हैं। वे अब सृष्टि व्यापार के प्रति आसक्त नहीं होते। तब वे सोचते हैं कि मैंने काल सागर में निमग्न होकर यह क्या किया? जैसे मत्स्य अज्ञान के कारण जल में अनुवर्त्तन करता है, मैं भी तदनुरूप एक के बाद एक का अनुवर्त्तन कर रहा था। जैसे मत्स्य स्वयं को जल से पृथक् नहीं मानता, मैंने भी तदनुरूप आत्मा का स्वतन्त्रत्व नहीं जाना तथा वृथा क्लेश उठाया। जैसे मत्स्य जल के अतिरिक्त कुछ नहीं जानता, मैंने भी अज्ञानवशात् अन्य पदार्थ की तरह आत्मा को जाना ही नहीं।।२१-२५।।

ममास्तु धिक्कुबुद्धस्य योऽहं मग्नं इमं पुनः।
अनुवर्तितवान्मोहादन्यमन्यं जनाज्जनम्॥२६॥
अयमनुभवेद्बन्धुरनेन सह मे क्षयम्। साम्यमेकत्वतां यातो यादृशस्तादृशस्त्वहम्॥२७॥
तुल्यतामिह पश्यामि सदृशोऽहमनेन वै। अयं हि विमलो व्यक्तमहमीदृशकस्तदा॥२८॥

योऽहमज्ञानसम्मोहादज्ञया सम्प्रवृत्तवान्।
संसर्गादतिसंसर्गात्स्थितः कालमिमं त्वहम्॥२९॥

सोऽहमेवं वशीभूतः कालमेतं न बुद्धवान्। उत्तमाधममध्यानां तामहं कथमावसे॥३०॥
समानमायया चेह सहवासमहं कथम्। गच्छाम्यबुद्धभावत्वादिहेदानीं स्थिरो भव॥३१॥

सहवासं न यास्यामि कालमेतं विवञ्चनात्।
वञ्चितो ह्यनया यद्धि निर्विकारो विकारया॥३२॥

मुझ कुबुद्धि को धिक्कार है। परमात्मा ही मेरे बन्धु हैं। इसके पहले मैं प्रकृति का अनुगामी था। अब मैं अब तक संसार का अनुवर्त्तन कर रहा था। अब मैं परमात्मा के साथ एकीभूत होकर जैसे परमात्मा हैं, वैसा ही हो गया। मेरी तथा इनकी तुल्यता है। किन्तु परमात्मा तो विमल हैं और मैं ऐसी दशाग्रस्त हूं। मैंने अज्ञानमयी प्रकृति से प्रेरित होकर इतना काल नाना संसर्ग में (व्यर्थ) व्यतीत किया। मैं इनके वशीभूत होकर भी यह हालत समझ नहीं पाया था। भले ही यह प्रकृति उत्तम-मध्यम-अधम तथा समान क्यों न हो, मेरा कर्तव्य यह नहीं है कि उसके साथ रहूं। मैं इतने समय तक आबद्ध रहा हूं। इसने मुझे आबद्ध करके ठग लिया। स्वयं स्वरूपतः निर्विकार होकर भी मैं सविकारा प्रकृति द्वारा ठगाया जाता रहा हूं।।२६-३२।।

न तत्तदपराद्धं स्यादपराधो ह्ययं मम। योऽहमत्राभवं सक्तः पराङ्मुखमुपस्थितः॥३३॥

ततोऽस्मिन्बहुरूपोऽथ स्थितो मूर्तिरमूर्तिमान्।
अमूर्तिश्चाप्यमूर्तात्मा ममत्वेन प्रधर्षितः॥३४॥

इसमें प्रकृति का अपराध नहीं है। मेरा अपराध है। क्योंकि मैं आत्मचिन्तन से विमुख रहता हुआ प्रकृति में आबद्ध था। उसी में आसक्त था। मैं आकार रहित आत्मा होकर भी ममता द्वारा बहुरूपी तथा आकारयुक्त हो गया (देहधारी हो गया)। स्वरूपतः ममता रहित होकर भी प्रकृति ने उन-उन योनियों में, जिनमें मैंने जन्म लिया (साकार हो गया)। मुझे विकारग्रस्त कर दिया। आश्चर्य यह है कि मुझ अमूर्त्तात्मा, अमूर्त की यह पराजय!।।३३-३४।।

प्रकृत्या च तया तेन तासु तास्विह योनिषु। निर्ममस्य ममत्वेन विकृतं तासु तासु च॥३५॥
योनिषु वर्तमानेन नष्टसंज्ञेन चेतसा। समता न मया काचिदहङ्कारे कृता मया॥३६॥

आत्मानं बहुधा कृत्वा सोऽयं भूयो युनक्ति माम्।
इदानीमवबुद्धोऽस्मि निर्ममो निरहङ्कृतः॥३७॥

ममत्वं मनसा नित्यमहङ्कारकृतात्मकम्। अपलग्नामिमां हित्वा संश्रयिष्ये निरामयम्॥३८॥
अनेन साम्यं यास्यामि नानयाऽहमचेतसा। क्षेमं मम सहानेन नैवैकमनया सह॥३९॥
एवं परमसम्बोधात्पञ्चविंशोऽनुबुद्धवान्। अक्षरत्वं निगच्छति त्यक्त्वा क्षरमनामयम्॥४०॥

वह प्रकृति अभी भी मुझे उन योनियों में भेजती रहती तथा वहां यह ममता मुझे भटकाती रहती। मैं भी संज्ञा रहित होकर नाना योनियों में भ्रमण करता रहता था। यह अज्ञान मुझमें इतना अधिक था कि उसकी

तुलना नहीं है। वह प्रकृतिमय अज्ञान स्वयं को अनेक रूप में बांटकर मुझे पुनः कुपथगामी बना रहा है। तथापि अब परिस्थिति बदल गई है। मैं जान गया कि मेरा स्वरूप मायातीत है। मैं अहंकारजित् प्रबुद्ध हो गया। पुनः इस अचैतन्य प्रकृति के साथ सम्बद्ध नहीं हो सकता। मैं निर्विकार रूप परमात्मा की शरण लूंगा। उन निरामय की समता प्राप्त करूंगा। माया का नहीं। उन निरामय के साथ ही मेरा कल्याण होगा। प्रकृति के साथ कोई कल्याण नहीं हो सकता। जब यह परम ज्ञान उदित हो जाता है, तब वह पञ्चविंशात्मक पुरुष यह परम बोधलाभ करके क्षरत्व त्याग कर देता है और अक्षरत्व में उपनीत हो जाता है।।३५-४०।।

अव्यक्तं व्यक्तधर्माणं सगुणं निर्गुणं तथा। निर्गुणं प्रथमं दृष्ट्वा तादृग्भवति मैथिल॥४१॥

हे मिथिलानरेश! यह दो पुरुष हैं, अव्यक्त तथा व्यक्त। व्यक्त सगुण तथा अव्यक्त निर्गुण है। इन निर्गुण का अनुभव रूप दर्शन करने वाला अब जान जाता है कि यही उसका पूर्वरूप है तथा यही श्रेय देने वाला है। वह अब निरामयत्वलाभ करता है।।४१।।

अक्षरक्षरयोरेतदुक्तं तव निदर्शनम्। मयेह ज्ञानसम्पन्नं यथा श्रुतिनिदर्शनात्॥४२॥

निःसन्दिग्धं च सूक्ष्मं च विशुद्धं विमलं तथा।
प्रवक्ष्यामि तु ते भूयस्तन्निबोध यथाश्रुतम्॥४३॥
साङ्ख्ययोगो मया प्रोक्तः शास्त्रद्वयनिदर्शनात्।
यदेव साङ्ख्यशास्त्रोक्तं योगदर्शनमेव तत्॥४४॥
प्रबोधनपरं ज्ञानं साङ्ख्यानामवनीपते।
विस्पष्टं प्रोच्यते तत्र शिष्याणां हितकाम्यया॥४५॥

बृहच्चैवमिदं शास्त्रमित्याहुर्विदुषो जनाः। अस्मिंश्च शास्त्रे योगानां पुनर्भवपुरःसरम्॥४६॥

पञ्चविंशात्परं तत्त्वं पठ्यते च नराधिप। साङ्ख्यानां तु परं तत्त्वं यथावदनुवर्णितम्॥४७॥

बुद्धमप्रतिबुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः। बुध्यमानं च बुद्धत्वं प्राहुर्योगनिदर्शनम्॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४४।।

मैंने आपसे श्रुतिदर्शनानुरूप यह परम ज्ञान साधन क्षराक्षर विज्ञान कह दिया। अब इसी क्षण निःसंदिग्ध रूप से आप समझ सकें, इसलिये यह विशुद्ध, विमल सूक्ष्मतत्व जैसा मैंने सुना है, उसे कहता हूं। आप एकाग्र हो जायें। मैंने सांख्यशास्त्र तथा योगशास्त्र के आधार पर यह सांख्यशास्त्र कहा है। हे भूपाल! सांख्यज्ञान आत्मप्रबोधक है। शिष्यों की हितकामना से इसे विशिष्ट रूप से वर्णन करना गुरु का कर्त्तव्य होता है। विद्वान् लोग इस शास्त्र को बृहद् कहते हैं। हे राजन्! इस योग सांख्यशास्त्र में पुनर्भव से योग तथा पंचविंश के परवर्त्ती वाले तत्व का भी वर्णन है। सांख्ययोगीगण के इस परतत्व का इतिपूर्व यथायथ वर्णन मैंने किया था। इस योग में बुद्ध, अप्रतिबुद्ध तथा बुध्यमान को भी तत्वरूप कहा तो गया है, तथापि बुध्यमान एवं बुद्धत्व स्थिति को ही योग का निदर्शनरूप माना गया है। अब इस तत्वालोचना द्वारा उसे प्राप्त करो।।४२-४८।।

।।चतुश्चत्वारिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अज का (अजन्मा) भी विक्रिया से नाना होना

वसिष्ठ उवाच

अप्रबुद्धमथाव्यक्तमिमं गुणनिधिं सदा। गुणानां धार्यतां तत्त्वं सृजत्याक्षिपते तथा॥१॥
अजो हि क्रीडया भूप विक्रियां प्राप्त इत्युत। आत्मानं बहुधा कृत्वा नानेव प्रतिचक्षते॥२॥
एतदेवं विकुर्वाणो बुध्यमानो न बुध्यते। गुणानाचरते ह्येष सृजत्याक्षिपते तथा॥३॥

अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमानं वदन्त्यपि।
न त्वेवं बुध्यतेऽव्यक्तं सगुणं तात निर्गुणम्॥४॥

कदाचित्त्वेव खल्वेतत्तदाहुः प्रतिबुद्धकम्। बुध्यते यदि चाव्यक्तमेतद्वै पञ्चविंशकम्॥५॥
बुध्यमानो भवत्येष ममात्मक इति श्रुतः। अन्योन्यप्रतिबुद्धेन वदन्त्यव्यक्तामच्युतम्॥६॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—ये अप्रबुद्ध, अव्यक्त गुणों द्वारा सतत् सृष्टि संहार क्रीड़ा करते रहते हैं। आप इस तत्व को धारण करिये। हे भूपति! ये अज पुरुष ही निज लीला के कारण विकार प्राप्त करते हैं तथा स्वयं का बहुधा विभाग करते हुये नानारूपेण प्रतिभात होते हैं। विकार के कारण आत्मा स्वयं को जान कर भी नहीं जानता! वह आत्मस्थ त्रिगुणों द्वारा सृष्टि-संहार कार्य में लग जाता है। हे तात! तब उनको उनका (यथार्थ) अव्यक्तत्व तथा निर्गुणत्व बतलाने पर भी वे उसे धारण नहीं कर पाते। वह आत्मा जब कदाचित् अपना अव्यक्त पंचविंशकत्व समझ पाता है, तब उसे प्रतिबुद्ध कहते हैं। ममताभिमान से आबद्ध पंचविंशक पुरुष जब प्रतिबुद्ध होकर अव्यक्त को भी बोधित करते हैं, तब उनको बुध्यमान कहा जाता है। "यह मेरी आत्मा है" इस प्रकार से यह प्रसिद्ध है। परस्परतः ज्ञान होने के कारण यही अव्यक्त तथा अच्युत भी है।।१-६।।

अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमानं वदन्त्युत। पञ्चविंशं महात्मानं न चासावपि बुध्यते॥७।
षड्विंशं विमलं बुद्धमप्रमेयं सनातनम्। सततं पञ्चविंशं तु चतुर्विंशं विबुध्यते॥८॥
दृश्यादृश्ये ह्यनुगततत्स्वभावे महाद्युते। अव्यक्तं चैव तद्ब्रह्म बुध्यते तात केवलम्॥९॥
पञ्चविंशं चतुर्विंशमात्मानमनु पश्यति। बुध्यमानो यदाऽऽत्मानमन्याऽहमिति मन्यते॥१०॥

तदा प्रकृतिमानेष भवत्यव्यक्तलोचनः।
बुध्यते च परां बुद्धिं विशुद्धाममलां यथा (दा)॥११॥
षड्विंशं राजशार्दूल तदा बुद्धः कृतो व्रजेत्।
ततस्त्यजति सोऽव्यक्तसर्गप्रलयधर्मिणम्॥१२॥

निर्गुणां प्रकृतिं वेद गुणयुक्तामचेतनाम्। ततः केवलधर्माऽसौ भवत्यव्यक्तदर्शनात्॥१३॥
केवलेन समागम्य विमुक्तात्मानमाप्नुयात्। एतत्तु तत्त्वमित्याहुर्निस्तत्त्वमजरामरम्॥१४॥

अव्यक्त की अभिज्ञतावशात् यह बुध्यमान संज्ञा वाला है। तथापि यह पंचविंश महानात्मा को नहीं जानता। छब्बीसवां तत्व विमल, बुद्ध, अप्रमेय तथा सनातन है। २४वां तत्व जब विस्तारित होता है, तब वही पंचविंश (२५वें) संज्ञा से अभिहित किया जाता है। अव्यक्त ब्रह्म उन-उन स्वभाव का अनुगत होकर दृश्य एवं अदृश्याकृति को प्राप्त करता है। यही २४वां तत्व बुध्यमान होने पर स्वयं को पच्चीसवें तत्व के रूप में जान पाता है। जब वह अज्ञानवशात् स्वयं को प्रकृतिमान समझता है, उस समय उसे अव्यक्त भाव की प्राप्ति होती है। जब अमल विशुद्ध बुद्धि का वह आश्रय लेता है, तब वह २६वें तत्व को जानकर कृतार्थ हो जाता है! तब वह अचेतन गुणयुक्त प्रकृति के निर्गुण रूप को जान लेता है। अव्यक्त दर्शन के कारण वह केवल धर्मस्थ होकर केवल के साथ मिलित होकर चिन्मयात्मा हो जाता है। यहीं तक तत्व है। इसके पश्चात् निस्तत्व है अर्थात् तत्वों से परे ब्रह्म है, जो अजर-अमर है।।७-१४।।

तत्त्वसंश्रवणादेव तत्त्वज्ञो जायते नृप। पञ्चविंशतितत्त्वानि प्रवदन्ति मनीषिणः॥१५॥

न चैव तत्त्ववांस्तात संसारेषु निमज्जति।
एषामुपैति तत्त्वं हि क्षिप्रं बुध्यस्व लक्षणम्॥१६॥
षड्विंशोऽयमिति प्राज्ञो गृह्यमाणाऽजरामरः।
केवलेन बलेनैव समतां यात्यसंशयम्॥१७॥
षड्विंशेन प्रबुद्धेन बुध्यमानोऽप्यबुद्धिमान्।
एतन्नानात्वमित्युक्तं साङ्ख्यश्रुतिनिदर्शनात्॥१८॥

चेतनेन समेतस्य पञ्चविंशतिकस्य ह। एकत्वं वै भवेत्तस्य यदा बुद्ध्याऽनुबुध्यते॥१९॥

बुध्यमानेन बुद्धेन समतां याति मैथिल। सङ्गधर्मा भवत्येष निःसङ्गात्मा नराधिप॥२०॥

तत्वज्ञानवान् मानव कदापि संसार में मग्न नहीं हो पाता। उसे परमतत्व प्राप्त होता है। आप भी सभी तत्वलक्षणों का ज्ञानलाभ करें। प्रबल प्रयत्न द्वारा इस अजर-अमर छब्बीसवें तत्व को चित्त में धारण कर लेने से इस प्रबुद्ध छब्बीसवें तत्व की महिमा द्वारा समता मिलेगी, इसमें संशय नहीं है। मैंने चेतनसमन्वित पंचविंश पुरुष के नानात्व का वर्णन इस सांख्यश्रुति के अनुसार कह दिया। जब वे बुद्धि द्वारा बोधित होते हैं, तब बुध्यमान होकर बुद्ध के साथ समतालाभ करते हैं। हे मिथिलापति! ये वस्तुतः निःसंग होकर भी संगवान् हैं।।१५-२०।।

निःसङ्गात्मानमासाद्य षड्विंशं कर्मजं विदुः।
विभुस्त्यजति चाव्यक्तं यदा त्वेतद्विबुध्यते॥२१॥

चतुर्विंशमगाधं च षड्विंशस्य प्रबोधनात्। एष ह्यप्रतिबुद्धश्च बुध्यमानस्तु तेऽनघ॥२२॥

उक्तो बुद्धश्च तत्त्वेन यथाश्रुतिनिदर्शनात्।
मशकोदुम्बरे यद्वदन्यत्वं तद्वदेतयोः (कता)॥२३॥

मत्स्योदकं यथा तद्वदन्यत्वमुपलभ्यते। एवमेव च गन्तव्यं नानात्वैकत्वमेतयोः॥२४॥

एतावन्मोक्ष इत्युक्तो ज्ञानविज्ञानसंज्ञितः। पञ्चविंशतिकस्याऽऽशु योऽयं देहे प्रवर्तते॥२५॥

एष मोक्षयितव्येति प्राहुरव्यक्तगोचरात्। सोऽयमेवं विमुच्येत नान्यथेति विनिश्चयः।।२६।।

निःसंग आत्मारूप ब्रह्मोपलब्धि होने पर उसे २६ कर्मजों का ज्ञानलाभ हो जाता है। अर्थात् निःसंग आत्मा सहित षडविंशात्मक पुरुष को कर्मज संज्ञा से अभिहित किया जाता है। २४वां तत्व विशुद्ध होकर ही षड्विंशत्व प्राप्त करता है। हे निष्पाप राजन्! श्रुतिवाक्य के अनुसार मैंने बुद्ध, बुध्यमान तथा अबुद्ध तत्व को कहा। जैसे गूलर में कीट है, मछली तथा जल है। इनमें ये दोनों परस्परतः विरुद्ध हैं, तथापि दोनों में एकता है (गूलर है तो कीट है, जल है तो मछली है) यही इनका अन्यत्व न होना है। एवंविध जो देह में प्रवृत्त होते हैं, उन पंचविंशतितम पुरुष का यह ज्ञान-विज्ञानात्मक मोक्ष कहा गया है। अव्यक्त के साथ से इनको ही मुक्त करना पड़ता है। ये एवंविध ही मुक्त होते हैं। अन्य उपाय है ही नहीं। यह ध्रुव सत्य है।।२१-२६।।

परश्च परधर्मा च भवत्येव समेत्य वै। विशुद्धधर्माशुद्धेन साहचार्यत्त्वं बुद्धिमान्।।२७।।
विमुक्तधर्मा बुद्धेन समेत्य पुरुषर्षभ। वियोगधर्मिणा चैव विमुक्तात्मा भवत्यथ।।२८।।
विमोक्षिणा विमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत्।
शुचिकर्मा शुचिश्चैव भवत्यमितबुद्धिमान्।।२९।।
विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना। केवलात्मा तथा चैव केवलेन समेत्य वै।
स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमवाप्यते।।३०।।

फलतः यह विशुद्ध धर्मी जीव परधर्मानुयायी होकर अन्य के संयोग द्वारा शुद्ध किंवा अशुद्ध होता है। इसकी शुद्धि के लिये शुद्ध ज्ञानाश्रय ही आवश्यक है। अशुद्ध ज्ञानाश्रय वरणीय नहीं है। यह जीव परपुरुष मिलन (अन्य धर्मयुत होकर) परधर्मी हो जाता है। विशुद्ध संयोग से वह विशुद्ध धर्मा, वियोगधर्मी के संसर्ग से विमुक्तात्मा, विमोक्षकर्त्ता के संसर्ग से विमोक्षयुक्त, पवित्र के संसर्ग से पवित्रधर्मा, विमलात्म के साथ संसर्ग से विमलात्मा, केवल स्थिति के संसर्ग से केवलात्मा होता है। स्वतन्त्र के साथ मिलित होकर वह स्वतन्त्रतालाभ करता है।।२७-३०।।

एतावदेतत्कथितं मया ते, तथ्यं महाराज यथार्थतत्त्वम्।
अमत्सरस्त्वं प्रतिगृह्य बुद्ध्या, सनातनं ब्रह्म विशुद्धमाद्यम्।।३१।।
तद्वेदनिष्ठस्य जनस्य राजन् , प्रदेयमेतत्परमं त्वया भवेत्।
विधित्समानाय निबोधकारकं, प्रबोधहेतोः प्रणतस्य शासनम्।।३२।।
न देयमेतच्च यथानृतात्मने, शठाय क्लीबाय न जिह्मबुद्धये।
न पण्डितज्ञानपरोपतापिने, देयं तथा शिष्यविबोधनाय।।३३।।
श्रद्धान्वितायाथ गुणान्विताय, परापवादाद्विरताय नित्यम्।
विशुद्धयोगाय बुधाय चैव, कृपावतेऽथ क्षमिणे हिताय।।३४।।
विविक्तशीलाय विधिप्रियाय, विवादहीनाय बहुश्रुताय।
विनीतवेशाय नहैतुकात्मने, सदैव गुह्यं त्विदमेव देयम्।।३५।।

एतैर्गुणैर्हीनतमे न देयमेतत्परं ब्रह्म विशुद्धमाहुः।
न श्रेयसे योक्ष्यति तादृशे कृतं, धर्मप्रवक्तारमपात्रदानात्॥३६॥
पृथ्वीमिमां वा यदि रत्नपूर्णां, दद्याददेयं त्विदमव्रताय।
जितेन्द्रिताय प्रयताय देयं, देयं परं तत्त्वविदे नरेन्द्र॥३७॥

हे महाराज! मैंने यहां तक यथार्थतत्व आपके समक्ष प्रकट करके कहा है। आप मात्सर्य रहित होकर बुद्धि द्वारा इस विशुद्ध आद्य सनातन ब्रह्मतत्व को हृदयंगम करें। हे राजन्! जो व्यक्ति वेदनिष्ठ है, उसे ही आप यह तत्व प्रदान करें। जो व्यक्ति वैध कार्य हेतु उत्सुक हो, जैसे विनयी प्रणत व्यक्ति को प्रबोधार्थ तत्वोपदेश प्रदान किया जा सकता है। जो असत्यवादी, शठ, नपुंसक, कुटिल बुद्धि हैं, जिनका पाण्डित्व मात्र दूसरे को उपदेश देने हेतु है, ऐसे व्यक्ति को यह प्रदान नहीं करना। परन्तु यह प्रकृत शिष्यों को ही बोधबुद्धि हेतु देना चाहिये। जो श्रद्धावान्, गुणी, नित्य परस्त्री से विमुख, योगविशुद्ध, कृपालु, क्षमाशील, परहितरत, प्रकृत (वास्तविक) पाण्डित्य सम्पन्न हैं, जो व्यक्ति एकान्त प्रेमी, विधिप्रिय, विवादरहित, बहुश्रुत अथवा विनीत वेश हैं, ऐसे व्यक्ति को ही गोपनीय तत्वोपदेश प्रदान करे। पूर्व में मैंने जिन सब गुणों का उल्लेख किया है, जिसमें नहीं हो, विद्वानों के मतानुसार उसे कदापि इस विशुद्ध ब्रह्मतत्व का उपदेश प्रदान ही न करे। यदि कोई ऐसे अनधिकारी को यह उपदेश देगा, ऐसे धर्मवक्ता को कदापि श्रेय की प्राप्ति नहीं होगी। हे नरेन्द्र! भले ही यह रत्नगर्भा धरती अव्रती अथवा अपात्र को दान कर दे, तथापि इस ब्रह्मतत्व का उपदेश ऐसे अनधिकारी को कदापि प्रदान न करे। मैं पुनः कहता हूं कि इन्द्रियजित् तत्वज्ञ व्यक्ति ही इस तत्वोपदेश के अधिकारी हैं।।३१-३७।।

कराल मा ते भयमस्ति किञ्चिदेतच्छ्रुतं ब्रह्म परं त्वयाऽद्य।
यथावदुक्तं परमं पवित्रं, विशोकमत्यन्तमनादिमध्यम्॥३८॥
अगाधमेतदजरामरं च, निरामयं वीतभयं शिवं च।
समीक्ष्य मोहं परवादसंज्ञमेतस्य तत्त्वार्थमिमं विदित्वा॥३९॥
अवाप्तमेतद्धि पुरा सनातनाद्धिरण्यगर्भाद्धि ततो नराधिप।
प्रसाद्य यत्नेन तमुग्रतेजसं, सनातनं ब्रह्म यथा त्वयैतत्॥४०॥
पृष्टस्त्वया चाऽस्मि यथा नरेन्द्र, तथा मयेदं त्वयि नोक्तमन्यत्।
यथाऽवाप्तं ब्रह्मणो मे नरेन्द्र, महाज्ञानं मोक्षविदां परायणम्॥४१॥

हे करालजनक! आज इस परमब्रह्मतत्व का श्रवण किया है। आपको अब इस संसार से कोई भय नहीं है। जो परम पावन है, जिसमें शोकलेश नहीं है, जो आदि, मध्य, अन्त रहित है, मैंने उस अगाध, अजय, अमर, भय रहित परम शिवस्वरूप की कथा को कहा। हे नराधिप! मैंने इस संसार प्रपञ्च के मोह की महिमा जान लिया। तब मुझे सनातन हिरण्यगर्भ से पूर्वकाल में यह तत्वार्थ मिला था। मैंने उन उग्रतेजा देवदेव को यत्नतः प्रसन्न करके इस ब्रह्मतत्व को प्राप्त किया था। हे नरेन्द्र! आपने मुझे प्रसन्न करते हुये यह प्रश्न किया था। अतः मैंने जैसा ब्रह्मा से उपदेश पाया था, अविकल मैंने वही आपसे कहा है। यह एक महाज्ञान मोक्षविद् लोगों हेतु एकमात्र उपादेय एवं अवलम्बनीय है।।३८-४१।।

व्यास उवाच

एतदुक्तं परं ब्रह्म यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः। पञ्चविंशं मुनिश्रेष्ठा वसिष्ठेन यथा पुरा॥४२॥
पुनरावृत्तिमाप्नोति परमं ज्ञानमव्ययम्। नाति बुध्यति तत्त्वेन बुध्यमानोऽजरामरम्॥४३॥
एतन्निःश्रेयसकरं ज्ञानं भोः परमं मया।
कथितं तत्त्वतो विप्राः श्रुत्वा देवर्षितो द्विजाः॥४४॥
हिरण्यगर्भादृषिणा वसिष्ठेन समाहृतम्। वसिष्ठादृषिशार्दूलो नारदोऽवाप्तवानिदम्॥४५॥
नारदाद्विदितं मह्यमेतदुक्तं सनातनम्। मा शुचध्वं मुनिश्रेष्ठाः श्रुत्वैतत्परमं पदम्॥४६॥
येन क्षराक्षरे भिन्ने न भयं तस्य विद्यते। विद्यते तु भयं यस्य यो नैनं वेत्ति तत्त्वतः॥४७॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! पूर्वकाल में महर्षि वसिष्ठदेव ने जनकराज से जो परम ब्रह्मतत्व कहा था, वही तत्व मैंने आज व्यक्त किया। यह तत्व जानकर संसार में कोई बद्ध नहीं रह सकता। जो व्यक्ति इस अव्यय परम ज्ञान को नहीं जानता, संसार में उसे पुनरपि जन्म लेना ही होगा। किम्बहुना, जो इसका यथार्थ ज्ञानलाभ कर लेता है, उसे संसार प्रवाह में डूबना नहीं पड़ता। हे ब्राह्मणवृन्द! यह परम निःश्रेयसप्रद ज्ञान है, जिसे पूर्वकाल में मैंने ऋषियों से भी श्रवण किया था। मैंने आप लोगों से भी वही व्याख्या कहा है। हिरण्यगर्भ से वसिष्ठ ऋषि को यह तत्व मिला, जिनसे देवर्षि नारद ने यह तत्व पाया। यह सनातन तत्व नारद ने मुझसे कहा था। मैंने उनके ही उपदेश से इसे जाना। हे मुनिप्रवरगण! इस परम पद का विषय जानकर अब आप लोग शोकग्रस्त न हों। जो क्षर तथा अक्षर को अभिन्न जानते हैं, उनके लिये भय है ही नहीं। भय तो उसे करना होगा, जो इस परमतत्व को नहीं जानता।।४२-४७।।

अविज्ञानाच्च मूढात्मा पुनः पुनरुपद्रवान्। प्रेत्य जातिसहस्राणि मरणान्तान्युपाश्नुते॥४८॥
देवलोकं तथा तिर्यङ्मानुष्यमपि चाश्नुते। यदि वा मुच्यते वाऽपि तस्मादज्ञानसागरात्॥४९॥
अज्ञानसागरे घोरे ह्यव्यक्तागाध उच्यते।
अहन्यहनि मज्जन्ति यत्र भूतानि भो द्विजाः॥५०॥
तस्मादगाधादव्यक्तादुपक्षीणात्सनातनात्।
तस्माद्यूयं विरजस्का वितमस्काश्च भो द्विजाः॥५१॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः सारात्सारतरं परम्। कथितं परमं मोक्षं यं ज्ञात्वा न निवर्तते॥५२॥
न नास्तिकाय दातव्यं नाभक्ताय कदाचन। न दुष्टमतये विप्रा न श्रद्धाविमुखाय च॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादसमाप्तिनिरूपणं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२४५॥

मूढ़ लोग अज्ञान के कारण बारम्बार संकटग्रस्त होकर हजारों-हजार जन्म-मरण का मोह करता है। ऐसे मनुष्य कभी पुण्यातिरेक से देवलोक जाते हैं तथा कभी पापातिरेक के कारण तिर्यक् योनि अथवा मनुष्य योनि

पाते हैं। तथापि यदि कभी वे भाग्यवशात् अज्ञान सिन्धु से उत्तीर्ण होते हैं, तब उनको मुक्ति प्राप्ति हो जाती है। हे ब्राह्मणों! प्राणीगण नित्यप्रति अगाध अनन्त अज्ञानसिन्धु में डूबते रहते हैं। आप लोग अब अज्ञान रहित होकर सनातन उपक्षीण क्षयवान् अज्ञान से अछूते हैं। आप लोग अज्ञानजनित रजः-तमः स्पर्श से रहित हैं। हे मुनिप्रवरगण! मैंने यह परम सार का भी सार कह दिया, यह परम मोक्षज्ञान पाकर व्यक्ति आवागमन रूप जन्म-मरण चक्र से मुक्त हो जाता है।।४८-५२।।

हे ब्राह्मणवृन्द! इसे कदापि नास्तिक, अभक्त, दुष्ट बुद्धि, अश्रद्धावान् को न प्रदान करें।।५३।।

।।पञ्चचत्वारिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मपुराण पठन-श्रवण फल

लोमहर्षण उवाच

एवं पुरा मुनीन्यासः पुराणं श्लक्ष्णया गिरा। दशाष्टदोषरहितैर्वाक्यैः सारतरैर्द्विजाः॥१॥
पूर्णमस्तमलैः शुद्धैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः। जातिशुद्धसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम्॥२॥
पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम्। श्रावयित्वा यथान्यायं विरराम महामतिः॥३॥
तेऽपि श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठाः पुराणं वेदसम्मितम्।
आद्यं ब्रह्माभिधानं च सर्ववाञ्छाफलप्रदम्॥४॥
हृष्टा बभूवुः सुप्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः। प्रशशंसुस्तदा व्यासं कृष्णद्वैपायनं मुनिम्॥५॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे द्विजवृन्द! पूर्वकाल में महामति वेदव्यास ने इस प्रकार मुनिगण को अपने मधुर वाक्यों से इस पुराणप्रबन्ध का सविधि श्रवण कराया तथा विरत हो गये। उन्होंने पुराण सुनाते समय जो कुछ वाक्य कहा, वह सब निर्दोष, निर्मल, सारस्वत तथा सर्वविध साधु वाक्यों से शोभित है। यह सर्वशुद्ध सहज शुद्ध पूर्वपक्ष कथन एवं सिद्धान्तकथन से समन्वित पुराण है। वे प्रधान मुनिगण भी सर्वकामना परिपूरक्त, वेदतुल्य आद्य ब्रह्मपुराण का श्रवण करके प्रीति में भरकर विस्मित होने के साथ आनन्दित हो गये। वे बारम्बार कृष्ण द्वैपायन मुनि की प्रशंसा करने लगे।।१-५।।

मुनय ऊचुः

अहो त्वया मुनिश्रेष्ठ पुराणं श्रुतिसम्मितम्। सर्वाभिप्रेतफलदं सर्वपापहरं परम्॥६॥
प्रोक्तं श्रुतं तथाऽस्माभिर्विचित्रपदमक्षरम्।
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु वै प्रभो॥७॥

सर्वज्ञस्त्वं महाभाग देवेष्विव बृहस्पतिः। नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वां महामुनिम्॥८॥
येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः। कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तव सर्वान्महामुने॥९॥
अधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गान्व्याकरणानि च।
कृतवान्भारतं शास्त्रं तस्मै ज्ञानात्मने नमः॥१०॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिप्रवर! आपने सर्व अभीष्टप्रद, सर्वपापहारी, श्रुति के समान परम पुराण का वर्णन किया। हम इस विचित्र पदयुक्त पुराण प्रबन्ध आप से सुनकर आनन्दित हैं। हमने यह समझ लिया कि हे प्रभो! हे महाभाग! त्रैलोक्य में आपके लिये अज्ञात कुछ भी नहीं है। आप देवगुरु बृहस्पतिवत् सभी विषयों के ज्ञाता हैं। हे महाप्राज्ञ! तपोनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ, महामुनि! हम आपका अभिवादन करते हैं। हे महामुनि! कौन ऐसा है, जो आपके समस्त गुणों को कह सके? आपने समस्त व्याकरण तथा अंगों सहित चारों वेदों का अध्ययन करके भारतशास्त्र का प्रणयन किया। आप ज्ञानात्मा हैं। आपको प्रणाम!।।६-१०।।

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥११॥
अज्ञानतिमिरान्धानां भ्रामितानां कुदृष्टिभिः। ज्ञानाञ्जनशलाकेन त्वया चोन्मीलिता दृशः॥१२॥
एवमुक्त्वा समभ्यर्च्य व्यासं ते चैव पूजिताः। जग्मुर्यथागतं सर्वे कृतकृत्याः स्वमाश्रमम्॥१३॥
तथा मया मुनिश्रेष्ठा कथितं हि सनातनम्। पुराणं सुमहापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥१४॥
यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं सम्प्रश्नं द्विजसत्तमाः।
व्यासप्रसादात्तत्सर्वं मया सपरिकीर्तितम्॥१५॥
इदं गृहस्थैः श्रोतव्यं यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः। धनसौख्यप्रदं नृणां पवित्रं पापनाशनम्॥१६॥
तथा ब्रह्मपरैर्विप्रैर्ब्राह्मणाद्यैः सुसंयतैः। श्रोतव्यं सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभिः॥१७॥
प्राप्नोति ब्राह्मणो विद्यां क्षत्रियो विजयं रणे।
वैश्यस्तु धनमक्षय्यं शूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥१८॥
यं यं काममभिध्याञ्शृणोति पुरुषः शुचिः।
तं तं काममवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः॥१९॥
पुराणं वैष्णवं त्वेतत्सर्वकिल्विषनाशनम्। विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम्॥२०॥

"हे व्यापक बुद्धिशाली, प्रफुल्ल कमल के पत्र के समान आयत नेत्र! आपको प्रणाम! आपने महाभारत रूपी तेल से भरे ज्ञानदीपक को प्रज्वलित किया है। आपने ज्ञानरूपी अंजनशलाका द्वारा अज्ञानतिमिरान्ध, कुदर्शन से भ्रमित मानवों के नेत्रों को खोला है।" वे मुनिगण यह कहने के पश्चात् व्यासदेव की पूजा द्वारा स्वयं को पूजित एवं कृतकृत्य मानने लगे। तब वे लोग अपने-अपने आश्रम चले गये। हे मुनिप्रवरगण! व्यासदेव ने जिस प्रकार मुनियों से इस महापुण्यजनक सनातन महापुराण को कहा था, मैंने भी तद्रूप आप लोगों से इस पापनाशक महापुराण को कहा। हे द्विजप्रवरगण! आपने मुझसे जो प्रश्न पूछा था, व्यासदेव की कृपा से उन

सबका उत्तर मैंने प्रदान कर दिया। गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी आदि सभी लोग इस पुराण का पाठ श्रवण करें। यह पापहारी पुराण धन तथा सुखसम्पदा प्रदायक भी है। ब्रह्मनिष्ठ सुसंयत ब्राह्मणादि सभी वर्णों वाले परम मंगलकामना से अति यत्न के साथ पुराण पाठ करें। यह पुराण सुनकर ब्राह्मणगण विद्या, क्षत्रियगण युद्धजय, वैश्यगण अक्षय धन तथा शूद्रगण सुखसम्पदालाभ करते हैं। पवित्र होकर मनुष्य जिस-जिस कामना के साथ इस पुराण का श्रवण करता है, उसे वह कामना फलसहित हाथों पर प्राप्त हो जाती है अर्थात् कामनापूर्त्ति हो जाती है। यह वैष्णव पुराण समस्त आन्तरिक मलिनता का नाश करने वाला, सभी शास्त्रों से विशिष्ट तथा पुरुषार्थ फलोत्पादक है।।११-२०।।

एतद्वो यन्मयाऽऽख्यातं पुराणं वेदसम्मितम्।
श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थः पापराशिः प्रणश्यति॥२१॥
प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथाऽर्बुदे। उपोष्य यदवाप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः॥२२॥
यदग्निहोत्रे सुहुते वर्षे नाऽऽप्नोति वै फलम्।
महापुण्यमयं विप्रास्तदस्य श्रवणात्सकृत्॥२३॥
यज्ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति पुरुषः फलम्॥२४॥
तदाप्नोति फलं सम्यक्समाधानेन कीर्तनात्।
पुराणेऽस्य हितो(?)विप्राः केशवार्पितमानसः॥२५॥
यत्फलं क्रि (श्रि) यमालोक्य पुरुषोऽथ लभेन्नरः।
तत्फलं समवाप्नोति यः पठेच्छृणुयादपि॥२६॥
इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसम्मितम्।
यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भुवनं हरेः॥२७॥

मैंने आप लोगों से जो इस वेद के समान अप्रतिम पुराण-प्रबन्ध को कहा है, उसे सुनकर सर्वदोष जनित पापराशि प्रनष्ट हो जाती है। प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र किंवा अर्बुद क्षेत्र में उपवास का जो फल मिलता है, इस पुराण को सुनने मात्र से मनुष्य अनायास वही फल पा लेता है। जो फल लगातार अग्निहोत्र में एक वर्ष पर्यन्त आहुति देने से भी प्राप्त नहीं होता, हे ब्राह्मणगण! इस पुराण को एक मास सुनने से ही वह महापुण्यफल मिल जाता है। मनुष्य ज्येष्ठमासीय शुक्ला द्वादशी तिथि के दिन यमुनाजल में स्नात होकर मथुरा स्थित हरि के दर्शन का जो फल पाता है, एकाग्रता के साथ इस पुराण के पाठ द्वारा उसे वही फल अधिगत हो जाता है।।२१-२७।।

श्रावयेद्ब्राह्मणो यस्तु सदा पर्वसु संयतः।
एकादश्यां द्वादश्यां च विष्णुलोकं स गच्छति॥२८॥
इदं यशस्यमायुष्मं सुखदं कीर्तिवर्धनम्। बलपुष्टिप्रदं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम्॥२९॥

त्रिसन्ध्यं यः पठेद्विद्वाञ्श्रद्धया सुसमाहितः।
इदं वरिष्ठमाख्यानं स सर्वमीप्सितं लभेत्॥३०॥

जो मानव नित्यप्रति सश्रद्धभाव से नित्य इस वेदसम्मत पुराण का पाठ किंवा श्रवण करता है, उसकी गति हरिलोक तक होती है। जो ब्राह्मणगण संयत होकर एकादशी अथवा द्वादशी के दिन इस वैष्णव पुराण को श्रोतागण को सुनाते हैं, उनकी गति विष्णुलोक तक होती है। यह पुराण यश, आयुष्य, सुखपद तथा कीर्त्तिवर्द्धक, बल-पुष्टिप्रद, दुःस्वप्नहारी है। त्रिसंध्या जो इसे श्रद्धा के साथ पढ़ता है, उसे समस्त वांछित की प्राप्ति हो जाती है।।२८-३०।।

रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयाद्विमुच्यते भीत आपदापन्न आपदः॥३१॥
जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान्मेधां पशून्धृतिम्।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं तु लभते नरः॥३२॥
यान्यान्कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रयतमानसः। तांस्तान्सर्वानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः॥३३॥
यश्चेदं सततं श्रृणोति मनुजः स्वर्गापवर्गप्रदं,
विष्णुं लोकगुरुं प्रणम्य वरदं भक्त्येकचित्तः शुचिः।
भुक्त्वा चात्र सुखं विमुक्तकलुषः स्वर्गे च दिव्यं सुखं,
पश्चाद्याति हरेः पदं सुविमलं मुक्तो गुणैः प्राकृतैः॥३४॥

इस पुराण श्रवण फल द्वारा रोगी रोग से, बन्दी बन्धन से, भयभीत भय से, आपत्तिग्रस्त उस आपत्ति से मुक्त होता है। मनुष्य पूर्वजन्म की स्मृति, विद्या, पुत्र, पशु, धृति, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षलाभ करता है। किम्बहुना जिस-जिस कामना को करके एकाग्र होकर व्यक्ति यह पुराण पढ़ेगा, उसकी वे सभी कामना पूर्ण हो जायेंगी। जो मानव चराचरगुरु, स्वर्गापवर्गप्रद वरद विष्णु को भक्तिभावेन एकाग्रता पूर्वक प्रणाम करके यह पुराण सतत् श्रवण करता है, वह निष्पाप होकर इहलोक में सुखभोगान्त में स्वर्ग जाकर दिव्य सुखलाभ करता है। तदनन्तर समस्त प्राकृत गुणों से वह मुक्त होकर हरिपदलाभ करता है।।३१-३४।।

तस्माद्विप्रवरैः स्वधर्मनिरतैर्मुक्त्येकमार्गेप्सुभि
स्तद्वत्क्षत्रियपुङ्गवैस्तु नियतैः श्रेयोर्थिभिः सर्वदा।
वैश्यैश्चानुदिनं विशुद्धकुलजैः शूद्रैस्तथा धार्मिकैः
श्रोतव्यं त्विदमुत्तमं बहुफलं धर्मार्थमोक्षप्रदम्॥३५॥
धर्मे मतिर्भवतु वः पुरुषोत्तमानां, स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना, नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्॥३६॥

अतः जो स्वधर्मानुरागी लोग हैं, मुक्तिपद लाभार्थ जिनमें प्रबल इच्छा है, ऐसे प्रधान-प्रधान ब्राह्मणगण, मंगलार्थी नियत चित्त वाले क्षत्रिय, सत्कुलोत्पन्न वैष्णवगण, धार्मिक शूद्रगण नित्य इस धर्म-अर्थ-

मोक्ष फल साधनरूप पवित्र महापुराण का श्रवण करें। आप लोगों की मति धर्म में रहे। वह धर्म ही परलोकगत पुरुषों का एकमात्र बन्धु है। आप पुरुषपुंगवगण यह जानें कि परमकुशल बुद्धि मानव भी यदि अर्थ एवं स्त्रीगण की सेवा करता है, तब भी वे उसके सहायक नहीं होते। धन तथा स्त्री कभी स्थिर नहीं है।।३५-३६।।

धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति।
आयुश्च कीर्ति च तपश्च धर्मं, धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः॥३७॥
धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य, धर्मः सखा चात्र परे च लोके।
त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च, धर्मादृते नास्ति तु किंचिदेव॥३८॥

व्यक्ति धर्मबल से राज्यलाभ, स्वर्गलाभ, आयु-कीर्त्ति-तप-धर्म-मोक्षलाभ तक करते हैं। धर्म ही लोक में माता-पिता, परकाल (परलोकगमन काल में) सखा, भ्राता तथा मोक्षप्रद है। धर्म के अतिरिक्त कोई नहीं है। यही वेदसम्मत सर्वश्रेष्ठ है।।३७-३८।।

इदं रहस्यं श्रेष्ठं च पुराणं वेदसंमितम्। न देयं दुष्टमतये नास्तिकाय विशेषतः॥३९॥
इदं मयोक्तं प्रवरं पुराणं, पापापहं धर्मविवर्धनं च।
श्रुतं भवद्भिः परमं रहस्यमाज्ञापयध्वं मुनयो व्रजामि॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे रोमहर्षणमुनिसंवादे पुराणप्रशंसनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२४६।।

समाप्तमिदमादिब्रह्माभिधं महापुराणम्

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

यह पुराण अति गोपनीय है। इसे दुष्ट मति वालों, नास्तिकों को कदापि प्रदान न करे। यह धर्मविवर्द्धन, पापहरण पुराण है, जिसे मैंने कहा। आप सभी ने इस परम रहस्य का श्रवण कर लिया। हे मुनिगण! अब आज्ञा दीजिये। मैं यथास्थान जा रहा हूं।।३९-४०।।

।।षट्चत्वारिंशदधिक द्विशततम अध्याय समाप्त।।

॥ब्रह्मपुराण द्वितीय खण्ड समाप्त॥

।।ब्रह्मपुराण समाप्त।।